

S/O  
294 59214  
V 414 y-v

81.00.080574.









H. P. 5

वाजसनेयसंहिता ( वेदार्थप्रदीपाख्य-  
हिन्दीभाष्यसंहिता )

भाष्य-गिरिप्रसाद-  
देववर्मा

”

Mathura,  
Saka 1795

4/12/21

# शुक्लयजुर्वेदे

दनीया वाजसनेयसंहिता

ऋग्वेदपाण्डुगिरिप्रसाददेववर्मसंचित

प्रदीपाख्यगिरिधरभाष्यसहिता

वश्रीगुरुडध्वजदेववर्मलिरविता

त ब्रह्मावर्तेकदेशे मथुरामण्डले धरणीधाक्षेने

रीथनवलदुर्गस्थ श्रीव्याघ्रपादप्रकाशकाशमयन्त्रालये

कुलोद्भवद्वारकानाथदेवशर्मणोऽधिकारान्मुद्रिता

---

वेङ्कटार्कगते १४३० शके शालिवाहनीये १७४५

---



ब्रह्मयज्ञ इत्यादि व्रतस्याव्यवच्छेदे  
 १०० श्रुतिओं करि ब्रह्मयज्ञ की विधि  
 बाध्याय (साधारणत्व से अपने पितृ-  
 आत्मा वेदशारवा) तिस में विद्यमान  
 भी दिन-दिन अध्ययन करना सोही  
 यज्ञ में अन्न पशु सुचिस्तुवा इत्यादिक  
 नहीं इस में तो वाणी ही जुहू मन उप-  
 सत्य अवभृथ स्वर्गलोक उदय है जि-  
 वित्त करि पूर्ण देते लोक को जीतता है उस  
 और अक्षय जो विद्वान् कि दिन-दिन  
 है तिस से स्वाध्याय अध्ययन करना जो  
 वा गायत्र्यादि चतुर्दश छन्दयुक्ता ऋचाएँ  
 हंता वा देव्यादि छन्दयुक्त वारहित मन्त्र सा-  
 री ऋचाएँ अथर्वान्तरसः (अथर्वसंहिता  
 अन्तरों करि देखे मन्त्र) दिन-दिन स्वाध्याय  
 क पय घृत सोम मेद आहुतियों करि देवता  
 और तृप्त हुए देवता तिसै तृप्त करते हैं योगक्षे-  
 समस्त पुण्य सम्पदाओं करि तथा तिस के पि-  
 तृ स्वधा करिके स्वर्ग में घृत की नदी बहती है  
 सबै सम्भारान्सम्भरतीत्यादि विधिवाक्यों वाशि-  
 विद्या (उपासनविधिवाक्यों वा न्याय मीमांसा

आदिकों) तथा बाकोवाक्य (सर्वे  
 त्युक्ति प्रत्युक्तिरूप ब्राह्मण वा उक्ति  
 (आपो ह वाऽइदमग्रे सलिलमेवास  
 ह्यण वा महाभारथादिकों) पुराणों  
 मेत्यादिक पुरातन पुरुष वृत्तान्त प्रति  
 गाथाओं (महाहिमिव वै हृदात् इत्या  
 न्सदमुक्षन्ति हयान् इत्यादिक मनुष्य  
 शंस्योगाथाः (मनुष्यों की प्रशंसा प्रति  
 स्वाध्याय अध्ययन करता है सो मधु  
 ओं को तृप्त करता है और तृप्त हुए देव  
 और सह वै देवानां चासुराणां यज्ञो  
 रीयारण्यक द्वितीय प्रपाठक में ब्रह्मयज्ञदि  
 में यज्ञोपवीत धारण २ सन्ध्यापासन ३४  
 होम ७ तिस होम की आख्या ८ दीक्षादिक ६  
 पारव्यान १० पञ्च महायज्ञों के लक्षण ११ ब्र  
 से बाहिर पूर्व उत्तर वा ऐशानी दिशा में जाक  
 म के छप्पर में पड़ी न दीरेवं तहां सूर्य के अभ्यु  
 क्त प्रकार से यज्ञोपवीत लेकर शुद्ध प्रदेश में वी  
 ध्ययन करें और जहां पर आज का पाठ समाप्त  
 कलिह प्रारम्भ करें) १२ अशक्त का अनुकल्प (३  
 त्रि समय मन करि वा वाणी करिके खड़े होते च

प्रायश्चित्त है १७. आपदा में अपाजयाजन का प्रायश्चित्त  
जाकर स्वाध्याय करना इत्यादिक १८. प्रायश्चित्ता-  
पसङ्ग से अवकीर्ण प्रायश्चित्त है १९. सर्वयज्ञारम्भ  
कालीन सन्ध्यावन्दन से ऊपर ध्रुवमण्डल में परब्र-  
ह्म और शिशुमारोपस्थान के मन्त्र कहे २०. दिगुपस्था  
ग्रन्थ के मन्त्र हैं ॥

यज्ञारम्भ का शरीर न्यास कात्यायनभगवान् ने स-  
त्र अध्याय ४. खण्ड १३. में कहा है जिस की व्याख्या  
गा। यहां पर इतना ही कहिता हूं कि स्वाध्याय अध्य-  
पृथिवी आकाश में कोई पुरुषार्थ नहीं और जो कुछ  
विषय है सो सब वेद में है। तिस वेद के दो विभाग हैं  
संहिता दूसरा ब्राह्मण जिस में मन्त्रों की विधि और अर्थ  
पर भी आतशम्भार वेद के अर्थवबोध के लिये महर्षि-  
णानुसार शिक्षादि षडङ्ग तथा षडङ्गवत् इतिहासपु-  
त्रासादिशास्त्र कहे ॥

में वेदवेदाङ्गों और ऊग्रट माधव सायन महोदय आ-  
कहे भाष्यों का अनुसरण करिके ऋषिछन्द देवतावि-  
त माध्यन्दिनीया वाजसनेय संहिता का वालकों  
वृजभाषा में भाष्य लिखता हूं विद्वानों से प्रार्थना  
पर कृपा करिके इस वेदार्थप्रदीप का अवलोकन

॥ इत्युपक्रमः ॥

लुक्ते न स्मर्यते। अध्या० १०. श्लो० ३. पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः।  
विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दशेति ॥



अध्याय अध्ययन करना और शौच आनेय महर्षि के म  
पक्ष है १३ मध्याह्न में प्रवृत्त अध्ययन करे १४ वेदग्रहण  
अविजली आदिक अनध्यायकरण हैं सो यज्ञाङ्ग होने से  
१५ यहां पर केवल दो अनध्याय (यज्ञकर्ता आप अशु  
जहां यज्ञ करे सो स्थान सूत्रपुरीषादि करि अशुचि होवे)  
त्व फलसिद्धि अनृणात् पापस्पर्शरहित्य दिखलाया  
वेद का वाङ्मात्र निष्पादन करि अध्ययन करता है तिस  
द्वारा और मोक्षपर्यन्त उत्तम गति देने से वेद प्यारा सखा  
चिन्तामणिरूप स्वाध्याय का जो त्याग करि कदाचित् वि  
त्तादिक सुनता है सो पुरुषार्थ पर्यवसान से अनृत् ने  
व्यनाटकालङ्कारादि श्रवण करि आयु की वृथा क्ष  
पुरुषार्थ नहीं दीखता जो काव्यादि पढ़ता है सो वृथा का  
न यहां का न वहां का यहां के लिये हृषीवाणिज्यादि ज  
वहां के लिये वेद है + जो स्वाध्याय में वाजपेय राजसूयाश्वमे  
जिस क्रतु भाग को पढ़ता है तिस के फल को प्राप्त होता है  
यिक वाचिक मानसिक त्रिविध याग है तहां अध्ययन  
तथा उस के अर्घ्य का अध्ययन काल में सन्धान से मा  
है और द्रव्यार्जन रहित के अनधिकारित्व से कायिक क  
कार ही नहीं इस हेतु वाचिक मानसिक से ही कायिक  
विद् ब्राह्मण में समस्त देवता वास करते हैं तिस की नि  
१६ अनापदा में अयाजयाजन का उपवास पूर्वक स्वा

मनुना स्पर्धते च । अध्या १२ वेदमिव महाभ्यस्येत्तपस्तप्यन्ति तेजसः । वे  
प्रसू तपः परमिहोच्यते ॥ १६६ ॥ आहोब समवायभ्यः परमे तप्यते नपः । य  
मे स्वाध्यायं शक्तिनाम्बुहम् ॥ १६७ ॥ गोऽनर्थाय हि जो वेदानव्यव कुर्वते अ  
वमासु गच्छति सान्वरः ॥ १६८ ॥ इति ॥

हुआ। तहां व्यास का शिष्य वैशम्पायन याज्ञ  
 के अर्थ यजुर्वेद को पढ़ता हुआ। तहां देवयो  
 ए वैशम्पायनं याज्ञवल्क्यं प्रति कहां कि मुरु रू  
 सनें योग सामर्थ्य से अग्निरूप मूर्तिमती विद्या  
 उगिले हुए यजुओं को ग्रहण करें यह गुरु ने शिष्य  
 और वैशम्पायन के शिष्य लोग तिनिरि होके यज्ञ  
 गये। ते यजुः बुद्धि की मलीनता से कृष्ण (काले)  
 दुःखित हो सूर्य को आराधन करि और शुक्ल यजुः  
 र तिन्हें जावाल गौधेय का एव माध्यन्दिन प्रभृति  
 को पढ़ाया तथा च श्रुतिः शतपथब्राह्मण १४.४  
 मानि शुक्लानि यजूंश्चैषि वाजसनेयेन याज्ञव  
 ति। अस्यायमर्थः। 'इमानि' ये, 'आदित्यानि' अ  
 किये हुए, 'शुक्लानि' शुद्ध, 'यजूंश्चैषि' यजुः, 'वाजसं  
 न' जिस का तिस के पुत्र, 'याज्ञवल्क्येन' याज्ञवल्क्य  
 यन्ते (शिष्यों के अर्थ) कहे गये, इत्यर्थः। तहां म  
 लव्य यजुर्वेद का शारवा विशेष माध्यन्दिन है। २  
 और जावालप्रभृति चतुर्दश शारवाओं को याज्ञ  
 व्यों के अर्थ उपदेश किया तथापि ईश्वर की वृ  
 द्वा शिष्यों के सम्बन्ध करि लोक में प्रख्यात हूं  
 वेद की जे अध्ययन करते जानते वा शिष्य पर  
 हैं तेभी माध्यन्दिन कहिलाते हैं ॥ ॥

Gurukharan Bhashya

गिरिः श्रोत्रम्॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय॥

भगवते तस्मै कृष्णायानुतकर्मणे । रूपनामवि-  
तियो यतः ॥२॥ नमामि बल्लभाधीशं परं ब्रह्म-  
तुतं विह्वलेशं च तत्सुतं गिरिधारिणम् ॥२॥ तद्वश्यं  
नन्द प्रदायिनम् । तथा चारुमतीमम्बां प्रणामा-  
मीशान् । सुमनसः सर्वार्थानामुपक्रमे । यं न-  
स्तं नमामि गजाननं ॥४॥ नमामि माधवाच्चा-  
दरम् । ऊष्णं भाष्यकारं च प्रणामामि महीध-  
रुनाथं च नमामि भवरूपिणम् । वेदार्थदीपकं  
मालबुद्धये ॥६॥ दूरादसूयां निर्धूय कृपां कृत्वा ममो-  
क्तभाष्योऽयं बुद्धिमद्भिर्बुद्धिजोतमेः ॥७॥  
मं ब्रह्मपरम्परा करि प्राप्त वेद को भगवान्वेदव्या-  
नुष्यो को सोचि तिन्हों पर कृपा करि चारि प्रका-  
जुः सामाथर्व नामा चारों वेदों को पैल वैशम्पा-  
मनु के अर्थ क्रमसे उपदेश किया और तिन्हों  
के अर्थ एवं परम्परा करि सहस्रशारवा वेद

## सर्वानुक्रमणीये

मंत्रा एतमृषिर्देवा वा प्रजापत्या इवे त्वाशा  
कल्पकारोक्त एवमूर्जे त्वा वायवो वायव्यं  
मानस्य शाखा वसोवायव्यं द्यौर्मातरिष्वन  
देवस्त्वापयः कामधुक्षः प्रश्नः सा विश्वायुस्त्री  
पुन्रं विष्णो पयः ॥२॥ योः

इदमाग्नेये कस्त्वा प्राजापत्या कर्मणे सुक शूर्पे  
क्षसे उरु ब्रह्म रक्षोघ्नं सर्वत्र धूर्गसि धृदेवानां विष्णा  
रु हविष्या अपहतं रक्षो यच्छन्तारं हविष्या देवस्य त्वा सा  
॥४॥ सर्वत्राग्नेये लिङ्गोक्ते भूताय त्वा हविः स्वः शूर्पो हर्तृह-  
ता गृहाः पृथिव्यास्त्वा हव्यं पवित्रे लिङ्गोक्तं सवितुर्देवीः ओ-  
क्षता अपान्यग्नेये लिङ्गोक्ते देव्याय पात्राणि ॥३॥

शर्मास्यदित्याः कृष्णाजिनमवधूतं रक्षममद्रिग्रीवां  
रवले अग्नेर्हविर्बृहत्स इदं मौसले हविर्बृहदधिदेवतं वागाधि-  
यज्ञं पत्नी कुक्कुटो वागवेषेवृद्धं शूर्पे प्रति त्वा हादेः परापृतम-  
पहतं रक्षसे वायुर्वो देवावस्ताण्डुला धृष्टिरुपवेशोऽपाग्न  
आ देवयजमाग्नेये ध्रुवमसि षण्णं कयालान्यग्ने ब्रह्माग्ने-  
यं धिषणासि दार्षदं दिवः शम्या धिषणोपलं धान्यमसि षण-  
धं हविर्महीनामाज्यं ॥४॥ ठं

सं वपामि हविः समाग्र आपं जनयत्ये त्वेदं हविरिषे  
त्वाज्यं घर्मो षण्णं पुरेडाशस्त्रिताय त्वा त्रयाणां त्रितो द्वि-  
त एकत कर्मेणादद इन्द्रस्य स्फ्यः पृथिवि वेदिर्ब्रजं पुरीषं

हरिः शोम्

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्वदु रूपं  
स्वानन्द दायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तु.

मण्डलं दक्षिणमक्षिहृदयं चाधिष्ठितं येन शु-  
जुंश्वि भगवान्याज्ञवल्क्यो यतः प्राप तं विवस्वन्त्रं त्रयीमयम्.  
ष्मन्तमभिध्यायेमां माध्यन्दिनीये वाजसनेयके यजुर्वेदाम्नां  
सर्के सरित्ते सप्तुक्रिय जषिदैवतछन्दांस्स्यनुक्रमिष्यामो, य-  
पामनियताक्षरत्वादेकेषां छन्दो न विद्यते, द्रष्टार ऋषयः स-  
रः परमेश्वरादयो, देवता मन्त्रान्तर्भूता अग्न्यादिका हविर्भाजः स-  
तिभाजो वाऽनः शारवोरवाशम्योपवेषकपालेध्मोलूखलद्वयश्च  
प्रतिमाभूताः, छन्दांश्चसि गायत्र्यादीन्येतान्यविदित्वा योऽधीते  
ऽनुब्रूते जपति जुहोति यजते याजयते तस्य ब्रह्म निवीर्यं यातया-  
मैभवत्यथान्तर्गन्धर्गं वा पद्यते स्थाणुं वर्धति प्रमीयते वा पापी-  
यान्मभवत्यथ विज्ञायेतानि योऽधीते तस्य वीर्यवदथ योऽर्थवित्त-  
स्य वीर्यवत्तरं भवति जपित्वा हुत्वेष्ट्वा तत्फलैर्न युज्यते ॥१॥ त-  
इषे त्वादि स्वं ब्रह्मान्तं विवस्वानपश्यन्ततः प्रतिकर्मवि-  
भागेन ब्राह्मणानुसारेण ऋषयो वेदितव्याः परमेशी प्राजाप-  
म इति वा पाठः

धानान्तर्वानिति पंचार्षयो यज्ञो देवताग्नेऽहध्यायो ग  
 ज्गनये दक्षिणाग्निः सरस्वत्यै लिङ्गोक्ते वेदोसि वेदो  
 सस्पतिर्वातदेवत्या विराजठं सं बर्हिर्लिङ्गोक्ता त्रिष्टुवि  
 कस्त्वा प्राजापत्यठं रक्षसाठं राक्षसं ॥७॥ ठं

अथ याजमानठं सं वर्चसा त्वाष्ट्री त्रिष्टुब्धि  
 वैष्णवान्यस्माद्वागोऽस्यै भूमिरगन्म देवतथं सं ज्यो  
 या स्वयंभूः सूर्यस्य सोरे अग्ने गृह्यते गार्हपत्यः २,  
 मग्न इहमाग्नेये ॥८॥

पितृयज्ञः प्रजापतेरार्षमग्नये सोमाय द्वे २  
 श्रुतेरयहता आसुरं ये रूपाणि कव्यवाहनोऽग्नि  
 मक्ता पित्र्ये नमो वः षड्विङ्गोक्तानि परे पित्रं  
 गायत्र्यूर्जमापी विराट् ॥९॥ उ

अग्न्याथेयं प्रजापतेरार्षं देवानामगं  
 मिधाग्नेय्यश्चतस्रो गायत्र्यः समिधा विरू  
 द्वाय वसुश्रुतस्तं त्वा भरद्वाजो भूर्भुवः  
 तयोऽग्निवायुसूर्यदेवत्याः क्रमेण द्यौः  
 कदेवतायं गौः सर्पराक्षस्त्रुचो गायत्र्यो  
 वता ॥१०॥

अग्निहोत्रं प्रजापतेरार्षमग्नि  
 वता गायत्र्य आद्याः पंचैकपद ३  
 जीवलक्षिलकिः ॥११॥

वेदार्थप्रदीपेगिरिधर हरिः

वेदिर्वधान सावित्रमपाररुमररो आसुरे ह्यस्ते वेदि-  
ण त्रीणि वैष्णवानि सुक्ष्मा त्रयाणां वेदिः पुरा घर्षा-  
श्रयच्छान्द्रमसीं त्रिष्टुभं प्रोक्षणीः त्रैषो द्विवत आभिचा-  
निशितः सुवोऽनिशितः सुगदित्यै विष्णोर्योक्त्रमूर्जे त्रया-  
र्धं सवितुरापं तेजोसि धामाज्यं ॥३॥

ऽणोऽसीध्मो वेदिर्वर्हिर्लिङ्गोक्ते अदित्या आपं विष्णोः  
मिदं वेदिर्भुवपतये त्रीण्याग्नेयानि गन्धर्वस्त्र-  
ध्यो वीतिहोत्रं विश्वावसुराग्नेयीं गायत्रीर्धं समिदा-  
त्त्वा लिङ्गोक्तर्धं सवितुर्विधत्तीः ऊर्णमिदं समा त्वा-  
पसि त्रयाणां जुह्वपभृद्भुवाः क्रमेण प्रियेण  
रदन्याहि मां वैष्मवे वाजजिह्वाग्नेयं नमो देव-  
तिं सुयमे सुवावधिणा वैष्णावं वसुमतीमाग्नेय-  
प्रतिनिषाज्यं मयीदमाशीः प्रति ग्रहणं मुपहृता  
ऽनुब्रू

मैभवरेष्ठानं ब्रह्मपतिराङ्गिरसोऽपश्यदग्नेष्ठा प्राशि-  
यान्मया तेऽनुष्टुबग्ने वाजजिह्वाग्नेयमग्नीषोमयो-  
स्य वीर्यं पुभ्यस्त्रयाणां परिधयः सं जानाथां व्यन्तु  
ऽप्रास्तरीमन्त्यः पाद आग्नेयो यं परिधिं  
भागेन आ विराड्पुं यजुस्ताग्नेः प्रियं यजुः स-  
मं इति वा पावैश्वदेवी त्रिष्टुभं यजुस्ताधं साहा-  
रमाः सूर्यं पवमान्छवि रुदालवा-

युञ्जते प्रयावाम्बः सावित्रीं जगतीमिदं ।  
 वैष्णवीं गायत्रीमिरावती वसिष्ठस्त्रिष्टुभं देवश्रुता  
 चीस्वं गोष्ठमत्रहविर्धोने विष्णोर्नु तिस्रो वैष्णव्यः ॥  
 यद्वुरन्ते विष्णोर्नु प्रतर्हीर्धतमा औतथ्यो विष्णो ॥  
 वान्याददेभिरिदमर्हं रक्षोघ्नं बृहन्नौ परवाणीद  
 ङ्गेक्तानि स्वराडस्योपरवाणि चत्वारि रक्षोहणो  
 वानि यवोऽसि यवो दिवे त्वौदुम्बरीं सुन्धन्तां पित्र्ये  
 नामौदुम्बरी घृतेन द्यावापृथिव्यमिन्द्रस्यैन्द्रं परि त्वा  
 निरुक्तामेन्द्रीमनुष्टुभमिन्द्रस्यैन्द्राणि त्रीणि चतुर्थं

विभूरस्यष्टानां धिषण्या अग्नयः संम्राडाह  
 रिषद्यो वहिष्यवमानदेशो नभोऽसि चात्वालो मृ  
 त्त्रः ऋतधामौदुम्बरी समुद्रोऽसि ब्रह्मासनमजोऽसि  
 ऽहिरसि प्राजहितो वागसि सदऋतस्य द्वार्ये अ  
 मित्रस्यर्त्विजोऽग्नयो धिषण्याः ॥२१॥

ज्योतिरसि वैश्वदेवं त्वं सोमः क्रतुर्भार्गवः  
 मनवसानां जुषाणोऽपुदेवत्यैकपदविराड्यजुर  
 स्त्य आग्नेयीं त्रिष्टुभमयं नस्त्रिष्टुव्यजुरन्ताग्नेय्यु  
 व्यनुष्टुव्यजुरन्ता देव सवितः सावित्रमेतत्त्वं स्वा  
 वतमग्ने व्रतपाऽआग्नेयमत्यन्यान्वनस्यतिरोष  
 स्वधिते परशुर्धामतस्त्वं वनस्यतिः ॥२२॥

अग्नेणीः शकलं देवस्त्वा यूपः सुपिष्ट



निर्वेद

॥ त्रीण्यं चिरसि गोः सोमक्रयणी वागूपाऽध्यारोपकल्प  
प्रयच्च

निष्कृतस्यनुष्टुप् हती वा सोमक्रयण्यास्तुतिरदित्या आ-  
र्धं लिङ्गोक्तादेवताः समख्ये यत्यांशीरास्तारपङ्क्तिरेष-  
एवतामास्मा कोऽसि सौम्यमभित्यर्धं सावित्र्यष्टि प्रजाभ्य-  
त्वा शुक्रं त्वा सौम्यानि समेऽस्मे लिङ्गोक्ते तपसोऽर्धेजार्धे  
। न इन्द्रस्य सौम्ये स्वानादीनि धिषायनामानि परि मार्गे  
इहती प्रति यन्थामनुष्टुप्यधिदेवत्यादित्याः कृष्णाजिन-  
यमस्तम्ना विष्टुभौ वारुण्यो सूर्यस्यानुष्टुप् कृष्णाजिनमु-  
थानडुही भद्रो मे सौम्य नमो मित्रस्यामितपनः सूर्यः  
। वरुणस्य पंच वारुणानि याते सौमीं विष्टुभं गौतमः ॥१८॥  
ग्नेस्तनूरसि पञ्च वैष्णवान्यग्नेः शकलं वृषणो दर्म-  
वश्यसि त्रयाणं लिङ्गोक्तादेवता गायत्रेण त्रीण्यानि-  
नं नः पङ्क्तिरग्नावग्निर्विराडेतयोर्निर्मथ्या हवनी-  
आपतये वायव्यमनाधृष्टमाज्यमग्ने व्रतया आ-  
र्धंभ्युः प्रकृतिश्चतुरवसाना सौम्यमन्त्योऽर्धर्चो लि-  
या ते त्रीण्याग्नेयानि तप्तायनी चत्वारि पार्थिवानि वि-  
पङ्क्तिरो योऽस्यामनु त्वा लिङ्गोक्तानि सिर्धं ह्यसि  
इन्द्र घोषश्चतुर्णमुत्तरवेदिरिदमहमापठं सिर्धं ह्यसि  
भूतेभ्यः सुगंध्रुवोऽसि परिधयस्त्रयाणामग्नेः  
ह्यः ॥१९॥

यज्ञामे मारुत्यनुष्टुवेऽनिरुक्तामोषूणोर्गस्त्य ऐन्द्रा  
मकन्ननिरुक्ताग्नेय्यनुष्टुबवभृथ यज्ञदैवतं पूर्णा दा  
म ऐन्द्रावनुष्टुभावक्षं हे गौतम ऐन्द्रो पङ्क्ति मनो नु  
बन्धुर्गायत्रं वयटं सौमी गायत्री बन्धुरेषते हे ऐन्द्रे अ  
द्यावेका पंक्तिरपरा ककुप्त्र्यं वकं हे अनुष्टुभो पूर्वस्  
एतदास्तारपङ्क्तिस्त्रायुषं नारायण उष्णिह यजमान  
वो नाम क्षीरं निवर्तयामि लिङ्गोक्तदेवतामाशीः प्रा  
अग्निष्टोमः प्रजापतेरार्षं एदं हे अत्यष्टी ॥

द्यावर्द्धर्चो देवयजनदेवत्या विमा आय श्रोषधे कुश  
धितेक्षोरमापो अस्मानापं दीक्षातपसोर्वासो महीनां  
वृत्रस्थाञ्जनंचित्पतिर्दे प्रजापत्ये देवो मा सावित्रमा  
ष्टुवाशीः स्वाहा यज्ञं चतुर्णी यज्ञ आकृत्ये चतुर्ण  
नामग्निरापो देवी लिंगोक्तदेवता विराट् ॥१६॥

विश्वो देवस्य स्वस्त्रात्रेयः सावित्रीमनुष्टु  
यो कृष्णाजिनेशर्मासि कृष्णाजिन मूर्गस्यङ्गिरोरि  
ठं सोमस्य नीविर्विष्टो वसि इन्द्रस्य सुसम्पा कृष्णा  
स्य दण्डेव्रतं यज्ञो दैवी धीर्ये देवा वाक्प्राणोदानं  
मध्यात्ममग्निर्मित्रावरुणावादित्यो विश्वे देवा ॥  
त्रा आपी जगतीयं ते लोष्टमपो मूत्रं पृथिव्या लं  
माग्नेय्यनुष्टुभुनर्मन आग्नेर्य त्वमाग्ने वा  
यत्रीठं राखे यत्सोममेषा ते हिरण्यव्यदैवतं

आनाग्न्युपस्थानं बृहद्देवानामार्षमुप प्रयन्तइत्यनु-  
आग्नेय्यो गायत्र्यावुपवत्यो गीतमो गृह्णणो मूर्द्ध-  
स उभा वां भरद्वाज ऐन्द्रानीत्रिष्टुभमयं ते देवश्वा-  
भारतावाग्नेयीमनुष्टुभमयमिह वामदेवो जगतीम-  
वत्सारो गव्यां वाग्नेयीं वा पयो देवत्यां वागायत्री त-  
यानींधाना आग्नेयी महापङ्क्तिं स्वयवसाना ॥१२॥

जावसो रात्रिदेवत्यमुषयोऽपश्यन्तं त्वमाग्नेयमन्धस्थ-  
हितेति त्रीणि गव्यान्त्युप त्वाग्नेयं तृचं गायत्रं मधुच्छं-  
मेवोऽग्नेत्वं चतस्रो द्विपदा आग्नेयीबन्धुः सुबन्धुश्चतबन्धु-  
कैकश इडे काम्या गव्ये सोमानं ब्राह्मणस्पत्यं तृचं गा-  
णस्पतिर्मेधांतिथिर्वा महित्रीणार्धं सत्यधृतिर्वोरुणि-  
देवतं तृचं गायत्रं पथि स्वस्त्ययनं कदा चनैन्द्री प-  
मधुच्छंदास्तत्सवितुर्विश्वा मित्रः सावित्री गायत्री य-  
त्र आग्नेयीमनिरुक्ता गायत्री ॥१३॥

लकोपस्थानमासुरेण्यं भूर्भुवः स्वः प्रक्त्स्यदुपस्था-  
गार्धं नर्यगार्हपत्यः शर्धं स्याहवनीयोऽथर्यदक्षिणा-  
वनीयोऽनुष्टुबयमग्निनर्यकुसारिणीवृहती गार्हप-  
ज्वाहार्यपचनोऽनुष्टुबृहा मा त्रिष्टुबिराष्ट्र पा ये-  
ता महापङ्क्तिः स्वयवसाना तिस्रोऽपि वास्तेवीः  
ये ॥१४॥

स्थानि प्रजापतेर्यं प्रघासिनो मारुती गायत्री

द्यामग्रेण यूपो या ते दीर्घतमा यूपदेवत्यां त्रिष्टुभं ब्रह्मवनि ब्र  
ह्महर्षं यूपदेवत्ये विष्णोः कर्माणि द्वे मेधातिथिर्वैष्णव्योग  
यज्यो परिवीर्यूपो दिवः स्वरुरेष ते यूप उपावीस्तृणमुप देवां  
लिङ्गोक्तमृतस्य त्वा यशुरग्नीषोमाम्यां लिङ्गोक्तमज्योऽप्यां य  
शुरापो देवीरापठं सं ते यशुर्धृतेन स्वरुणासौ रेवति वाग्वर्षो  
तृणधं स्वाहा देवे ॥२३॥

माहिर्मूर् रज्जुर्नमस्ते यज्ञो देवीरापोऽर्धमापमर्धमाशीर्वा  
चं ते मनस्ते यशुः शं लिङ्गोक्तमोषधे तृणधं स्वधितेऽसी रक्ष  
सां लिङ्गोक्तं निरस्तमिदमहर्षं रक्षोहणं घृतेन द्यावापृथिव्यं वा  
नायव्यमग्निराज्यस्याग्नेयं धं स्वाहा कृते वपाश्रपण्याविद

॥ महापङ्क्तिः स्रजवसाना पावमानश्चान्त्यः पादः सं ते  
रिडसि वसा प्रयुतं लिङ्गोक्तं घृतं वैश्वदेवं दिशः य-  
न्येन्द्रः प्राणः पञ्चङ्गप्राणदानां लिङ्गोक्तं देव त्वाष्ट्री  
॥

तं लिङ्गोक्तानि द्वादश दिवं ते स्वरुर्मापो हृदयशू  
त्रो वारुणं यदाहुर्वारुणी गायत्र्यनवसानाः सुमित्रि  
रविष्मतीर्लिङ्गोक्तदेवतानुष्टवग्नेर्वश्वत्वार्यापान्य  
धातिथिर्हृदे सौम्यनुष्टुप्सोमराजन्तसौम्ये श्रु-  
ता त्रिष्टुन्देवीराप आयीपङ्क्तिः कार्ष्णि राज्यम-  
प आये यमग्ने मधुछन्दा आग्नेयीं गायत्री  
ध्या आपमिन्द्राय त्वा पञ्च सौम्यानि य

ने सौमी विपरीताबृहती आचाः पथ्याबृहती माभेः सौम्यमर्धं  
द्यावापृथिव्यमर्धं प्रागयावसौम्युष्णिह्वा मङ्गं गोतम ऐन्द्री प-  
थ्याबृहतीम् ॥२५॥

वाचस्पतये प्राणदेवत्या विराणमधुमती लिङ्गोक्तं यत्ते  
सौम्यं स्वाहोरु यजुषी लिङ्गोक्ते स्वाङ्कतोऽस्युपाथं शुर्वेदेभ्य-  
त्त्वा देवं देवाङ्कशो लिङ्गोक्तमभिचारिकं प्राणाय ग्रहो व्याना-  
योपाङ्कसुसवनऽउपयामगृहीतोऽस्यन्तरेन्द्रमन्तस्ते मधव देवत्या  
त्रिष्टुबुदानाय ग्रह आ वायो वसिष्ठो वायव्यां त्रिष्टुभमिन्द्रावाच  
मधुच्छन्दा ऐन्द्रवायवी गायत्रीमयं वां गृत्समदो मैत्रावरुणाङ्कशो  
वयं त्रसदस्युस्त्रिष्टुभं या वां मेधातिथिराश्विनीं गायत्रीं तं अन्न-  
या वत्सारः काश्यपो वैश्वदेवीं जगतीमच्छिन्नस्य सौम्यं सा  
यमैन्द्री त्रिष्टुभम्यन्त याङ्गनील्लिङ्गोक्ते ॥२६॥

अयं वेनो वेनस्य त्रिष्टुप् सोमस्तुतिरधिदैव  
ज्ञं च मनो न त्रिष्टुप्सोमस्तुतिरधियज्ञानुवादिन्य  
ऽपमृष्टो मर्क आभिचारिके देवास्त्वा शुक्रमन्त्रि-  
ष्टासि दक्षिणोत्तरे वेदिश्रोण्यो सुवीरः सुप्रजाः  
निरस्तो द्वे आभिचारिके शुक्रस्य मन्थिनः शवर्ह्य-  
रुद्धेपो वैश्वदेवीं त्रिष्टुभमाग्रयणोऽसि लिङ्गोक्ते पा ये  
सोमः ऋते वैश्वदेवमिन्द्राय त्वा यत्तवीः  
छानं भरद्वाजो वैश्वानरीं त्रिष्टुभं ध्रुवोऽसि  
बृहती पूर्वोऽर्धर्चो ध्रौव उत्तर ऐन्द्री यस्ते देती गायत्री

यजुरन्तां देवानां चात्वालदैवतं प्राणाय मे लिङ्गोक्तदेवतान्येका-  
दश कोऽसि प्राजापत्योषिाग्वर्धमाना मधवे त्वा लिङ्गोक्तदेव-  
तानि त्रयोदश ॥२८॥

इन्द्राग्नी विश्वामित्र ऐन्द्राग्नी गायत्रीमाघ त्रिशोक  
आग्नेन्द्र मोमासो मधुछन्दा वैश्वदेवीं विश्वे देवासो गुत्समह  
इन्द्र मरुत्वश्चतस्रो विश्वामित्र ऐन्द्रामारुतीस्त्रिष्टुभो मरुतां त्वा  
यजुर्मरुत्वतीयं महं २॥ इन्द्रो भरद्वाजो माहेन्द्री त्रिष्टुभं य ओ-  
जसा वत्सो गायत्रीमुदुत्यं प्रस्कएवः सौरीं गायत्रीं चित्रं कुत्स आ-  
ङ्गिरसस्त्रिष्टुभं रूपेण वो दक्षिणाश्चतुर्णां ब्राह्मणमद्य लिङ्गो-  
क्तदेवतान्यष्टौ ॥२९॥

विष्णो वैष्णवं कदाचनादित्यदेवत्ये बृहत्यो यज्ञो दे-  
वानां कुत्सस्त्रिष्टुभं विवस्वन्यजुः अदस्मे जगत्याशीर्वा ममद्य  
भरद्वाजो बार्हस्पत्यः सावित्री त्रिष्टुभं सावित्रोऽसि सावित्रं सुश-  
र्मासि वैश्वदेवं बृहस्पतिसुतस्य लिङ्गोक्तमहं प्रजापतिरूपेणात्स  
देवता त्रिष्टुबग्ना इन्द्र पत्नी वन्नाग्नेयं प्रजापतिः प्राजापत्यं १  
रिरस्पृक्सामे हर्योर्यस्ते लिङ्गोक्ते देवकृतस्याग्नेयानि षट् ॥३०॥

समिन्द्रात्रिर्वैश्वदेवी त्रिष्टुभं धाता लिङ्गोक्त बहुदेव  
सुगावो देवी या ३॥ आवहे वयमाग्नेयौ यज्ञयज्ञमेष ते ि  
क्ते यजुषी उरुर्हीहि सुनः शेषो वारुणीं त्रिष्टुभं नमो वारुण  
रनीकमाग्नेयी त्रिष्टुप्समुद्रे ते सौमी विराट् देवीरायः पर्ष  
ती वा पूर्वोऽर्धर्च आप उत्तरः सौम्यो देवानामाग्नेय

अवसानामहापङ्क्तिर्यस्यै ते वशा पुरुदस्मो गर्भो मरुतो यस्य  
गोतमो मारुतीं गायत्रीं मही द्यौर्मिधातिथिर्द्यावापृथिव्यामि-  
त्यग्निष्टोमः ॥३१॥

अथ षोडश्यातिष्ठज्ञोतम ऐन्द्रीमनुष्टुभं युस्वाहिमधु-  
च्छन्दान्द्रमिज्ञतमो यस्मान्नेन्द्रीं त्रिष्टुप्परब्रह्मरूपेण षोडशिनः  
स्तुतिरिन्द्रश्चैन्द्रावारुणी षोडशिदेवत्या वा यजुरन्ताग्ने पवस्व  
वैरवानस आग्नेयीं गायत्रीस्तुतिष्ठन्कुरुस्तुतिरैन्द्रीमहं प्रस्क-  
एवः सौरीं तिस्रोपि यजुरन्ता उदुत्यं देवानामार्षमाजिघ्रेडे कौसुरु-  
विन्दुर्गव्ये महापङ्क्तिः प्रस्तारपङ्क्तिः विनः शासो भरद्वाज ऐन्द्री मनुष्टुभं  
वाचस्पतिं वैश्वकर्मणीं त्रिष्टुप्वैश्वकर्मनेन्द्री वैश्वकर्मण्यग्नये  
त्वा देवार्षाण्यदाभ्यदेवत्यानि त्रेणीनां त्वा सौम्यानि ॥३२॥

सत्रोत्थानं देवानामार्षमिह रतिः पशुदैवतमुपसृजन्नुषिण-  
गाग्नेयी सत्रस्य बृहती यजमानानामात्मस्तुतिर्युवं तं परुच्छेप ऐ-  
न्द्रीमत्यष्टिं अवसानामाद्योर्ध्वं ऐन्द्रापार्वतः परमेष्ठी नैमित्तिका-  
पाध्यायाद्वसिष्ठस्यार्षं लिङ्गोक्तदेवतानि चतुस्त्रिंशद्ययोर्यैवैष्ण-  
वारुणीत्रिष्टुप्देवां दिवमाशीर्लिङ्गोक्तदेवता चतुस्त्रिंशत्  
देवत्या पङ्क्तिस्त्रिष्टुब्बा यज्ञस्य यज्ञदेवत्या त्रिष्टुब्बा पवस्व  
गायत्री नैधुविः कश्यपः ॥३३॥

अथ वाजपेयो बृहस्पतेरार्षमिन्द्रस्य च देव सवितः सा-  
त्रेष्टुप्प्रभुवसदमैन्द्राणि त्रीण्यपार्षं रसदेवत्यानुष्टुप्ग्रहलि-  
वतानुष्टुप्संपृचो यजुषी इन्द्रस्य रथो वाजस्य पार्थिव्यति-

अन्त्यः पादः सावित्रीः स्वन्तरश्च देवत्याऽनवसाना पुरउषिगवा  
। तिस्रोऽश्वस्तुतय उषिक्किष्टुङ्गगत्यो वाजिनोऽश्वादेवस्या  
ङ्गोक्तानि वाजिनोऽश्वा एषस्य द्वे दधिक्कावा वामदेव्योऽश्वदे  
जगत्यो शन्नो वसिष्ठो विराजं तेनोनामानेदिष्टो जगतीं वाजे  
रस्त्रिष्टुभमा मा प्राजापत्यां वाजिनोऽश्वाः॥३४॥

आपय आयुर्यज्ञेन प्राजापत्यानि प्राजापतेः स्वरमृता  
यजमानोऽस्मे दिशो नमः पृथिवीयमासन्दी यन्ता सुन्वन्वाज  
स्य प्राजापत्यं तृचं त्रैष्टुभं सोमं तृचं तापस आद्या वैश्वदे  
व्यनिरुक्तानुष्टुप् द्वितीया लिङ्गोक्तदेवता तृतीयाग्नेयी प्र नो  
लिङ्गोक्ता गायत्री सरस्वत्यै सुन्वन्नग्निः सप्तदश लिङ्गोक्तदे  
तानि॥३५॥

अथ राजसूयो वरुणस्यार्षमेव ते पार्थिवमग्निनेत्रेभ्यं  
देवार्षाण्याध्यायाद्दृशाद्यानि देवान्यग्ने सहस्व देवश्रवादेवव  
तश्च भारतावाग्नेयीमनुष्टुभमुपार्थं शोस्त्रीणि रक्षोघ्नानि र  
विता द्वे यजमानः॥३६॥

अपो देवा आपी त्रिष्टुवृषा ऊर्मिलिङ्गोक्तानि मधुम  
रनाथृष्टा आपे सोमस्य चर्माग्नये लिङ्गोक्तान्यनिभृष्टमाय  
सधमादो वारुणी त्रिष्टुपक्षत्रस्य चतुर्णां तार्यपाण्डुधीव  
षाणीन्द्रस्य धनुर्मित्रस्य बाहू त्वयायं धनुर्हवाषण  
आविः प्राजापत्यं पराणि लिङ्गोक्तानि॥३७॥

अवेष्टा मृत्युनाशनं प्राचीं पञ्चानां



मासुरं मृत्योरोजोसि रुक्मो हिरण्यरूपो भैत्रावरुणी ।  
जुरन्ता सोमस्य सुन्वन्प्रपर्वतस्यापी त्रिष्टुविष्णोस्त्रीणि  
क्तानि सुन्वन्प्रजायतेन प्राजापत्यात्रिष्टुव्यजुर्मध्याय  
यजू रुद्र यद्वौद्रम् ॥३८॥

इन्द्रस्य लिङ्गेक्तानि मा ते संवरणः प्राजामृष्टम् ।  
त्रिष्टुभमग्नये लिङ्गेक्तानि पृथिवी मातर्भूमि हर्षसो वामदेवः ।  
सोरीर्षं सप्रपञ्च परब्रह्माभिधायिनीमतिजगतीमियच्छतमाना-  
वूर्गसि शारवेन्द्रस्य बाहू स्योनास्यासन्दी क्षत्रस्याधीवासर्षं स्यो-  
नाथं सुन्वन्निषसाद शुनः श्रेयो वारुणी गायत्रीमभिभूरस्यक्षा  
यजमानो वा ब्रह्मस्त्वमाभन्वणानि पञ्चलिङ्गेक्तानीन्द्रस्यस्यो-  
ग्निः पृथुरग्नेयर्षं स्वाहाकृताऽक्षः सवित्रा लिङ्गेक्तदेवतम् ॥३९॥

अथ चरक सौत्रामण्यश्विनोऽरार्षमश्विभ्यां त्रीणि लि-  
ङ्गेक्तानि वायुः सौमी गायत्री कुवित्चर्षं सुकीर्तिः काक्षीवित  
आद्या सौम्यनिरुक्ता त्रिष्टुव्युवमनुष्टुप्पुत्रमिव त्रिष्टुवश्विसर-  
स्वतीन्द्रदेवत्येऽश्विसरस्वतीन्द्रदेवत्ये ॥४०॥

इति सर्वानुक्रमणीये प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

अथाग्निं प्रजापतिरपश्यत्साध्यावापश्यन्त सोऽग्निः

चितिकः प्रथमा चितिः प्रजापतेर्द्वितीया देवानां तृतीयेन्द्रा-  
वकर्मणश्च चतुर्थयुषीणं पञ्चमी परमेश्विनोऽथ  
षोडशी युक्षानोऽष्टौ सान्वित्राणि सवितापश्यत्साध्या  
तृतीयैवश्यो जगत्यो द्वितीया गायत्री पञ्चमी

त्रिष्टुबिमं नो यजुरन्ता गायत्र्यनवसानाद्देभिर्हस्तेऽनुष्टु  
ब्यजुरन्ता ॥१॥

प्रतूर्तं नाभानेदिष्व आश्वीमास्तारपङ्क्तिः पुञ्जायां कु  
श्चिर्गार्दभी गायत्रीं योगे-योगे शूनः शेष आजीं प्रतूर्तं स्त्रि  
ष्टुबिराङ्गपा यजुर्गर्भोरुयजुः पृथिव्यास्त्रीण्याग्नेयान्यन्वग्नि  
राग्नेयीं त्रिष्टुभं पुरोधस आगत्यमयो भुव आश्वीमनुष्टुभमा  
क्रम्यानुष्टुब्धोस्ते बृहत्युक्ताम विराडुदक्रमीत्रिष्टुवा त्वा द्वे गृ  
त्समद् आग्नेय्यो परि सोमको गायत्रीं परि त्वा पायुरनुष्टुभं त्व  
मग्ने गृत्समंदो जगतीम् ॥२॥

पृथिव्या आग्नेयमपां पुष्करपर्णीं स्वराट्पङ्क्तिः श  
र्मा द्वे अनुष्टुभौ कृष्णाजिनपुष्करपर्णे पुरीष्योऽग्निस्त्वामग्ने तृ  
चं भरद्वाज आग्नेयं गायत्र्यं सीदहोतर्देवश्रवादेववातश्च त्रि  
भं नि होता गृत्समदः सठं सीदस्व प्रस्कण्वो बृहतीन् ॥३॥

अपो देवीः सिन्धुदीप आपीं न्यङ्कुसारिणीं सं ते नि  
ष्टुष्यार्थिवोऽर्थो वायव्योऽर्थः सु जातोऽनुष्टुबाग्नेय्युदुतिष्ठ  
श्चमनाः पथ्याबृहतीमूर्धः कण्व उपरिष्ठाबृहतीं स  
तस्त्रिष्टुभं स्थिरो रासभेय्यनुष्टुबुष्णिग्वा शिखे  
य्याबृहती त्रेतु लिङ्गीक्ता महापङ्क्तिस्त्र्यवसा  
कपदाग्नेय्युतमग्निमाग्नेये ओषधयस्त्रि  
देवत्ये व्यस्यन्नाग्नेयोऽर्थर्चो विपा  
वमम् ॥४॥

आपो ह्यापर्धं सिन्धुद्वीपस्तचं गायत्रं मित्र उपरिष्ठा बृह-  
ती मैत्री रुद्रा अनुष्टुब्रौह्मी सधं सधं हे सिनीवालीदेवत्ये उ-  
षामदित्या मरुवस्य मृत्पिण्डो वसवस्त्वा लिङ्गोक्तानि सर्वत्रादि-  
त्ये रास्त्रादिति रैस्व कृत्वायादित्योषिण गदितिरावतं देवानां प-  
ञ्चौरवानि मित्रस्य विश्वामित्रो मैत्रीं गायत्रीं देवस्त्वा सावित्री  
बृहत्पुत्याय पूर्वोऽर्धं च और्व उत्तरो मैत्रः ॥५॥

आकूर्तिं लिङ्गोक्तान्योद्भूतानि मा स्वीरव्यो गायत्री  
त्रिष्टुभावग्निरश्च पाद आग्नेयोद्भूतः सोमाहुतिराग्नेयीं गाय-  
त्रीं परस्या विरूप आङ्गिरसः परमस्या आरुणिरनुष्टुभं यदग्ने-  
दे जमदग्निरहरहर्नाभानेदिष्ठस्त्रिष्टुभो याः सेना अनुष्टुभः  
सर्वा आग्नेय्योन्त्योपरिष्ठा बृहती ॥६॥

दृशानो वत्सप्रीस्त्रिष्टुभं रैवमी नक्तोषासा कुत्स आ-  
ग्नेयीं विश्वा प्रयावाश्च सावित्रीं जगतीं सुपर्णः कतिश्चतुर-  
साना गारुत्मी विषघ्नी विष्णोर्लिङ्गोक्तान्यक्रन्द इत्सप्रीरा-  
मीं त्रिष्टुभमग्न ऊर्ध्वबृहत्पुत्याग्ने महाबृहती पुनर्गायत्र्या-  
बृहत्पूर्वानुष्टुभमुत्तमं शुनः शेषो वारुणीं त्रिष्टुभम-  
ग्नेयीं हंस उक्ता जमती हयजुरन्तान्ते बृहद्य-  
नेयी त्रिष्टुबन्तरग्नेः त्रिष्टुभो ॥७॥

नेयं त्रिष्टुभं द्वादशार्धं वत्सप्रीर्भीलन्दनः  
आङ्गिरस आग्नेयं गायत्रमुद्भूत्वा ताप

वीरस्वर्गने विरूप आग्नेयीं गायत्रीं गर्भो असि तिस्रोऽनुष्टु-  
भो बोधा मे दीर्घतमा त्रिष्टुभं स बोधि सोमाकृति राग्नेयीं य-  
जुरन्तां गायत्रीं यजुर्वेचकर्मणं पुनस्त्वा त्रिष्टुबाग्नेयी ॥ ८ ॥

अपेत लिङ्गोक्तबहुदेवत्या संज्ञानमूषदेवत्यानि त्री-  
ण्यग्ने सिकताश्रितः परिश्रितोऽयं सः पञ्चर्चमाग्नेयं त्रै-  
ष्टुभं विश्वामित्र चतुर्थ्यनुष्टुभं ते नुष्टुपचिदैष्टके लोकं  
लिङ्गोक्तानुष्टुप्ता अस्यापीं प्रियमेध ऐन्द्र इन्द्र जेता माधुक्-  
न्दसऐन्द्रीं समितं चतस्रोऽग्निरग्नेदेवत्या उष्णिगुपरिष्ठाबृह-  
त्युष्णिग्व्यङ्ग्यो मा ते वोस्वास्तुतिस्त्रिष्टुप् ॥ ९ ॥

असुन्वन्तं नैर्ऋतं त्विचं त्रैष्टुभं यं ते यजमानदेवत्या  
नमो विरुद्धतिदेवत्यैकपदा निवेशन आग्नेयीं त्रिष्टुभं दि-  
श्ववसुर्देवगन्धर्वः सीरा द्वे सीरदेवत्ये बुधः सौम्यो गाय-  
त्रीत्रिष्टुभो शुनंचतस्रः सीतादेवत्याः कुमारहारितो द्वे  
त्रिष्टुभो तृतीयापङ्क्तिश्चतुर्थ्यनुष्टुबिमुच्यध्वमानडुही ग-  
यत्री सजूर्लिङ्गोक्तदेवतम् ॥ १० ॥

या ओषधीः सप्तविंशतिमनुष्टुभ ओषधी  
माथर्वणी भिषङ्मुचन्तु बन्धुर्द्वादशाना रभ्या  
हिरण्यगर्भः कायीं त्रिष्टुभमभ्यावर्तस्त्रोष्णिग  
षं त्रिष्टुवर्गने तव पावकोऽग्निरग्नेयं व-  
यं तिस्रः सतो बृहत्युपरिष्ठाव्योतिः

अग्ने गायत्री त्रिष्टुबुष्णिगह ॥

विरूपस्तिस्त्रो गायत्र्यग्नेय्यः ॥११॥

मयि ककुबाग्नेयी ब्रह्मादित्यदेवत्या त्रिष्टुप् हिरण्य-  
गर्भो हिरण्यगर्भः कार्या त्रिष्टुभं द्रुप्सो देवश्रवा आदित्यो न-  
मोऽस्तु सार्यं तृचमानुष्टुभं हणुष पञ्च प्रतिसरा रक्षोघ्ना देवा-  
नामार्षेः सर्वस्त्रिष्टुभः आग्नेयीर्वामदेवश्चापश्यदग्नेष्टुय-  
जुराग्नेयमिन्द्रस्येन्द्रं सुवस्त्रिशिराग्नेयीं त्रिष्टुभम् ॥१२॥

ध्रुवास्पृर्ध्वबृहती प्रजापतिरनुष्टुब्भूरसि प्रस्तारप-  
ङ्क्तिरासाथं स्वयमातृणा देवता विश्वस्मा इत्येतस्य च यजु-  
षः काण्डात्काण्डादानुष्टुभं हृचमग्निना हृष्टं दूर्वेष्टकदेव-  
तं यास्त आग्नेयं हृचमानुष्टुभमिन्द्राग्निभ्यां हृष्टं विराडयं  
लोकः स्वराडसौ लोकः प्रजापतिष्ठा वैश्वज्योतिषं मधुश्चर्तुदे-  
वतमषाढासि सवितापश्यद्देवा वापश्यन्निष्टकादेवतम् ॥१३॥

मधु वाता वैश्वदेवं तृचं गायत्रं गोतमोऽयां गम्भन्पङ्क्ति-  
स्त्रीन्समुद्रंस्त्रिष्टुष्कोर्म्यं हृचं ध्रुवासि त्रिष्टुविषे बृहत्पौरवंदु-  
प्रग्ने युक्ताग्नेयं हृचं गायत्रमाद्यायां भरद्वाजो द्वितीयस्यां  
सम्यक् त्रिष्टुब्धिर्ज्ञोक्तदेवतर्चं त्वा बृहत्पुत्रिज्योति-  
वै त्वं गर्भं पञ्चर्चमाग्नेयं त्रैष्टुभमिमं मा पञ्चर्च-  
भूमेव द्वे द्वे चान्ते यजुषी त्वं यविष्टोशनाः का-  
रुक्ता गायत्रीमयां त्वा विष्टिशतिरेष्टकान्य-  
भूदेवत्यानि लोकं ता इन्द्रं तिष्ठताञ्ज

अथ द्वितीया चितिर्ध्रुवक्षितिः पञ्चाश्विन्यस्तासां प्रथ-  
मा विराड्भुवस्त्रिष्टुभो यजुरन्ताः शुक्रश्चर्तव्यं सजूः पञ्च  
विश्वेषां देवानामार्षे ता एव देवताः प्राणं मे पञ्च वायव्यान्य-  
पः पञ्चापानि मूर्धा वय एकोनविंशतिर्लिङ्गेक्तदेवतानि ॥१५॥

अथ तृतीयेन्द्राग्नी अनुष्टुप्पूर्वोऽर्धे च ऐन्द्राग्न उतरः स्व-  
प्रमातृष्टदेवतो विश्वकर्मा वायव्यं सत्यसि पञ्च दिग्देव-  
त्यानि विश्वकर्मा वायव्यं नभश्चैषश्चर्तव्ये आयुर्मे दश लि-  
ङ्गेक्तदेवतानि मा छन्दश्चष्टिर्दशान्मूर्धानुष्टुव्यन्त्री परोषि-  
क्ततुर्दश यजूंषि प्राणदेवतानि ॥१६॥

अथ चतुर्थ्याश्चुरष्टादशाग्नेर्देशैकया सप्तदश सर्वा-  
णि लिङ्गेक्तदेवतानि सहश्चर्तव्यम् ॥१७॥

अथ पञ्चम्यग्ने जातानाग्नेय्यो त्रिष्टुभो षोडशी चतु-  
श्चत्वारिंशो लिङ्गेक्ते अग्नेस्त्रिष्टुवेव चत्वारिंशद्रूपिमने-  
कोनत्रिंशद्राक्षसि पञ्चायं पुरः पञ्चैतानि सर्वाणि लि-  
ङ्गेक्तदेवतानि ॥१८॥

अग्निमूर्धाग्नेयोऽनुवाकः प्रथमस्तृचो गायत्रो द्विती-  
यस्त्रेष्टुभो भुवस्तृतीयो जागतोऽयमिह चतुर्थ आनुष्टुभः  
सरवायः सं पञ्चमः प्रगाथ एनावस्तत्र पूर्वा बृहती सतो बृ-  
हत्युत्तरा ताभ्यां तिस्रो बृहत्यः संपादिताः षष्ठ उषिाहोऽग्ने-  
वाजस्य सप्तमः पुनः काकुभः प्रगाथो भद्रो नस्तत्र पूर्वा क-  
कुप्सतो बृहत्युत्तरा ताभ्यां तिस्रः काकुभः संपादिता अष्टमः पा

होऽग्निं तं पदपाङ्क्तो नवमोऽग्ने तमग्निर्हं होतारमतिच्छ-  
न्दास्त्रयवसानाग्ने त्वं द्वैपदस्तृचः ॥१४॥

अयमग्निर्विरूपोऽबोधि बुधगविष्टिरो जनस्य सुत-  
भरः सरवाय इषः सर्हं समित्संवन्नस्त्वां प्रस्कएवऽएना वो व-  
सिष्ठोऽग्ने वाजस्य गोत्तमो भद्रो नः सौभरिरग्निं तं कुमारवृषो-  
येनाष्टावाग्नेय्यः षड्विष्टुभौ द्वे अनुष्टुभौ तपश्चर्तव्यं परमे-  
ष्ठी सोरं प्रोथदश्चो वसिष्ठस्त्रिष्टुभमाग्नेयीमायोर्द्वे स्वयमा-  
नृष्टदेवते सहस्रस्य पञ्चाग्नेयानि ॥१५॥

रोदोऽध्यायः परमेष्ठिन आर्षं देवानां वा प्रजापतेर्वाद्यो-  
ऽनुवाकः षोडशर्चं एकरुद्रदेवत्यः प्रथमा गायत्री तिस्रोऽनुष्टु-  
भास्तिस्त्रः पङ्क्तयः सप्तानुष्टुभौ द्वे जगत्थो मा नो द्वे कुत्सः ॥१६॥

अन्त्याऽनुवाके सप्तैकरुद्रस्तुतिराद्योपरिष्ठाद्बृहतीमा-  
कुत्सस्य तृतीयानुष्टुब्दे त्रिष्टुभौ द्वे अनुष्टुभावसंख्याता बह-  
रुद्रदेवत्या दशानुष्टुभौ मन्त्रा अवतानसंज्ञकास्ततोन्त्यानि  
त्रोणि यजूर्हंसि बहुरुद्रदेवत्यानि प्रत्यवरोहसंज्ञका मन्त्रा ॥१७॥

मध्ये सर्वाणियजूर्हंसि हिरण्यवाहव इति तिस्रोऽशीत-  
यो रुद्राणां तेषामुभयतो नमस्कारा अन्येऽन्यतरतो नम-  
स्कारा अपरे ज्ञानानामरुद्राः सभाभ्य इत्यादयो नमोवः कि-  
रिकेभ्यः इत्यग्निवायुसूर्यहृदयभूताः पञ्च व्याहृतयो बहुरुद्र-  
देवत्याः ॥१८॥

अश्रमन्मारुतमश्रमस्तेऽश्रममय्याशीर्यं द्विष्म आभि-

चारिकमिमा म आग्नेयमृतवो बृहती पङ्क्तिर्वा समुद्रस्य द्वे गा-  
यत्र्योऽन्मज्जगती त्रिष्टुष्वापामिदं बृहत्याग्ने पावक वसूयवः  
स नो मेधातिथरेते आग्नेय्यो गायत्र्यो पावकया जगतीं भर-  
द्वाजो नमस्ते बृहतीमाग्नेयीमृषिसुतालोपामुद्रा ॥२४॥

नृषदे पञ्चाग्नेयानि ये देवा जगत्यौ प्राणदेवत्ये प्रा-  
णदा बृहती पङ्क्तिर्वाग्नेय्यग्निस्तिग्मेनाग्नेयीं गायत्रीं भरद्वा-  
जो य इमा वैश्वकर्मणीस्त्रिष्टुभो विश्वकर्माभौवनः ॥२५॥

आशुरेन्द्रीर्द्वादश त्रिष्टुभोऽप्रतिरथोऽवसृष्टानुष्टुविष्टु  
देवत्या प्रेतयोऽहन्तेत्यनुष्टुवसौ या मारुती त्रिष्टुव्यत्र लिङ्गोक्तदे-  
वता पङ्क्तिर्मर्माणि लिङ्गोक्तैव त्रिष्टुबुदेनं तिस्रोऽनुष्टुभ आद्या-  
ग्नेयी द्वितीयेन्द्री तृतीया लिङ्गोक्तदेवता पञ्चदिशः पञ्च यज्ञा-  
ग्निसाधनवादिन्य आद्ये द्वे त्रिष्टुभौ तृतीया पङ्क्तिर्बृहती वाचतुर्थी  
बृहत्येवान्त्या त्रिष्टुविमा नो द्वे आदित्यदेवत्ये आद्या विश्वाव-  
सोर्द्वितीयाऽप्रतिरथस्य देवहर्विधृतिरनुष्टुव्यत्तदेवत्या वाज-  
स्येन्द्रानुष्टुबुद्धाममेन्द्राग्न्यानुष्टुवेव ॥२६॥

क्रमध्वं पञ्चाग्नेय्यः आद्यानुष्टुप्ततस्त्रिष्टुप्ततो बृहती पि-  
पीलिकमध्या ततोऽनुष्टुप्त्रिष्टुवन्त्याग्ने सहस्राक्ष विराडाग्नेयीमु-  
पर्णे द्वे पङ्क्तिस्त्रिष्टुभौ तारं सवितुः सावित्रीं त्रिष्टुभं परस्ताज्यो-  
तिषं कण्वो ददर्श विधेमाग्नेयी गृत्समदस्त्रिस्थानोऽग्निर्देवता  
प्रेद्धो विराडाग्नेयी वसिष्ठस्य चित्तिं वैश्वकर्मण्यतिजगती सप्तत  
आग्नेयी त्रिष्टुप्सप्तकृषीणाम् ॥२७॥



शुक्रज्योतिः षण्मासुत्य आद्या चतुर्थी चोषिणक् द्वितीया  
च तृतीया च गायत्री पञ्चमी जगती षष्ठी गायत्र्युषिणवेन्द्रं दे-  
वीर्मासुतमिमं त्रयोदशर्च आग्नेयस्त्रैष्टुभोऽनुवाको यज्ञस्तुति-  
र्नस्तुतिर्वा व सौर्धाराभिवादिनी वा घृतं मिमिक्षे गृत्समदः स-  
मुद्राह्वामदेवश्चत्वारिंशद्भ्यः यज्ञं पुरुषदेवत्यः ऋषभो मन्त्रः ॥२८॥

वाजश्च मे देवानामार्षमेतैर्यजुर्भिर्यजमानोऽग्नेः कामान्या-  
चते वाजप्रसवीयर्षं सप्तर्चं विश्वे त्रैष्टुभं वैश्वदेवं लुशोधानाको वा-  
जोनस्तिस्त्रोऽन्नदेवत्या आद्यानुष्टुब्धे त्रिष्टुभो सं मा विराजावाग्ने-  
य्यो सरस्वत्ये लिङ्गोक्तदेवतम् ॥२९॥

ऋताषाङ्गन्धर्वाप्सरसः स नः प्राजापत्याः प्रस्तारयङ्किः स-  
मुद्रोऽसि वायव्यानि त्रीणि रुचमाग्नेय्यनुष्टुप्त्वा वारुणीं त्रिष्टुभं  
शुनः शेषः स्वर्माग्नेयानि पञ्चाग्निं युनज्याग्नेय्यस्तिस्त्र आद्ये दे-  
विष्टुभो यङ्किः तृतीया दिवो दे आग्नेय्यो परोषिणङ्गहापदपङ्किः इष्टो  
यज्ञो ह्यृचं यजमानाग्निदेवत्यं गालव आद्योषिणङ्गिद्वितीया गायत्री ॥३०॥

यदाकृतादष्टर्चमाग्नेयं विश्वकर्मणस्तृतीया देवी वाद्या जग-  
ती तिस्रस्त्रिष्टुभश्चतस्रोऽनुष्टुभोऽग्निरस्म्यग्न्यद्वैतवादिनीं त्रिष्टुभं  
देवश्चवादेववाताश्च भारतावृचो यजुर्ये अग्नयोऽनुष्टुवाग्नेयी ॥३१॥

वार्वाहत्याय सप्तर्चमिन्द्रोऽपश्यदाद्ये दे वार्वाह्यो गायत्री त्रि-  
ष्टुभो विश्वमित्रस्य च वि नोऽनुष्टुम्मृगो न त्रिष्टुभ्रथमार्धं शासो  
भारद्वाजो द्वितीया जय ऐन्द्रो दे विश्वानर्यो गायत्री त्रिष्टुभो पृथे दि-  
वि कुत्सस्य चाश्याम दे त्रिष्टुभावाग्नेय्यो कामवत्यावश्याम भर-

हाजस्य च वयं ने कात्यस्योत्कीलस्य धामछदनुष्टुब्धैश्चदेवी ॥३२॥

अथ सौत्रामणी प्रजापतेरर्षमश्विनो सरस्वत्याश्च स्वांही त्वा  
नुष्टुप्सुरासोमदेवत्या सोमोऽसि चत्वारि सौरणि परितो भारद्वाजः  
सौमीं बृहतीं वायोस्तृचो गायत्रः सौम्य आभूतेर्ब्रह्मक्षत्रं त्रिष्टुप्सु-  
रासोमदेवत्या नाना हि जगती सुरासोमदेवत्या तेजोऽसि पयो देव-  
त्यान्योजोऽसि सुरादेवत्यानि याव्याघ्रं हैमवर्चं रनुष्टुब्धिषूचिकासु-  
तिर्यदा पियेषाग्नेयी बृहती संपृचस्थ पयग्रहा विपृचस्थ सुराग्र-  
हा देवा यज्ञं ब्राह्मणानुवाको विठं प्रतिरनुष्टुभः सोमसंपत् ॥३३॥

सुरावन्तं चतुर्ऋचं वैष्टुभमश्वि सरस्वतीन्द्रदेवत्यं पितृ-  
भ्यः सप्तपित्र्याणि पुनन्तु मा नवर्चं पावमानमाद्ये द्वे पित्र्ये अनु-  
ष्टुभौ प्रजापतिस्तृतीयां वैशानस आग्नेयीं गायत्रीं चतुर्थी लि-  
ङ्गाक्तदेवतानुष्टुप्पञ्चम्याग्नेयी गायत्री षष्ठ्याग्नेयी ब्राह्मी च गा-  
यत्री ब्राह्मस्तृतीयः पादः सौमी सप्तमी सावित्र्यष्टमी नवमी त्रि-  
ष्टुब्धैश्चदेवी ये समाना अनुष्टुभौ पित्राद्या द्वितीया यजमानाशी-  
र्द्धं सती त्रिष्टुब्धेवयानपितृयाणो पन्थानो ब्रवीतीदं हविष्यव-  
नाष्टिर्यजमानाशीः ॥३४॥

उदीरतां त्रयोदशर्चं पित्र्यं वैष्टुभं शङ्ख एकादशी तु ज-  
गत्याच्या जानु दशर्चोऽनुवाको नव पित्र्या दशम्येन्द्री गायत्री तृ-  
तीया चतुर्थी नवम्योऽनुष्टुभस्त्रिष्टुभ इतराः सोमो राजाष्टर्चमश्वि-  
सरस्वतीन्द्रा अपश्यन्नाद्यास्तिस्रो महाबृहत्युपान्त्या च चतुर्थ्यन्त्ये  
अतिजगत्यो शेषे अतिशक्न्येो अयवसाने सीसेन तन्त्रमश्वि सरस्वतीन्द्र-

देवत्याः षोडश जगत्यः ॥३५॥

क्षत्रस्य योनिर्द्विपदा गायत्र्यासन्दी देवताका मा त्वा कृ-  
ष्णाजिनं मृत्यो रुक्मावश्विनोर्भेषज्येन लिङ्गेक्तदेवतानि  
त्रीणि कौंसि प्राजापत्या गायत्री शिरो मे यञ्चर्चमिन्द्रशरीरा-  
वयवदेवताकं तृतीया गायत्र्यन्त्या महापङ्क्तिस्त्र्यवसानानुष्टु-  
भोग्न्याः प्रति क्षत्रे वैश्वदेवं त्रया देवा देवीपङ्क्तिस्त्र्यवसाना  
प्रथमा द्वितीयैर्वैश्वदेवमाशीर्लिङ्गं लोमान्यनुष्टुब्धिर्लोक्तदेवता ॥३६॥

यद्देवास्त्रिस्रोऽग्निवायुसूर्यदेवत्या अनुष्टुभः कूष्माण्डीर्यङ्गा-  
मे लिङ्गेक्तदेवतर्हं समुद्रे ते द्विपदाविराडापौ द्रुपदादिवानुष्टु-  
वाप्युद्वर्यर्हं सौर्यनुष्टुप्प्रस्कावस्यापो अद्याग्नेयीपङ्क्तिरेधोऽसिस-  
मिहदेवत्ये यजुषी समाववर्त्यनिरुक्ता गायत्री वैश्वानरज्योतिर्यजुर-  
भ्यादधाम्याग्नेयं तृचमानुष्टुभमाश्वतराश्विरर्हं शुना सौर्यनु-  
ष्टुप्सिञ्चन्ति परि सौर्येन्द्री वानुष्टुप्प्रधानावन्तमैन्द्री गायत्री वि-  
श्वामित्रस्य च बृहदिन्द्राय बृहती नृमेध पुरुषमेधयोरर्धयो गायत्री ॥३७॥

यो भूतानामात्म प्रवादा यङ्किर्नारायणीया कौण्डिन्यस्य प्रा-  
णपा मे द्वे अनुष्टुबुपरिष्ठाद्बृहत्यौ लिङ्गेक्तदेवते समिद्ध इन्द्रका-  
दशाप्रीस्त्रिष्टुभ आङ्गिरस इध्मस्तनूनपान्नराशर्हंस इडो बर्हिर्द्वार  
उषासानक्ता देव्या होतारा तिस्रो देवीस्त्वष्टा वनस्पतिः स्वाहाकृतय  
इत्येता अप्रीदेवता आयातु सप्त त्रिष्टुभ ऐन्द्र्य आमन्त्रे बृहत्याया-  
तु वामदेवं स्वातार गर्ग आमन्त्रेर्विश्वामित्र एवेद्वसिष्ठः ॥३८॥

अथ होत्रं त्रिपशोः समिद्धो अग्निराप्रीर्द्वादश विदर्भिर-

अश्विसरस्वतीन्द्रदेवत्या अनुष्टुभोऽश्विना हविस्तिस्त्रोऽनुष्टुभ एकैका-  
 श्वि सरस्वतीन्द्रदेवत्या य इन्द्रसवितृवरुणदेवत्या तिस्रोऽनुष्टुभोऽ-  
 श्विना गोमिस्तिस्त्रोऽनुष्टुभो युवं पुत्रमिवानुष्टुप्प्रिष्टुभो यस्मिन्न-  
 श्वास आग्नेय्योजगती त्रिष्टुभावश्विना तेजसेकादशर्चैर्गोम-  
 द्भृत्समदस्तृचमाश्विनं गायत्रं पावकानो मधुछन्दाः सारस्वतमिन्द्रा-  
 यात्यैन्द्रं मधुछन्दा एवानुक्तमानुष्टुभमश्विसरस्वतीन्द्रदेवत्यम् ॥ ३४ ॥

इमं मे गायत्री त्रिष्टुभौ वारुण्यौ शुनः श्रेयस्त्वन्नस्त्रिष्टुभावा-  
 ग्निवारुण्यौ वामदेवो मही मूषु त्रिष्टुवादित्या सुत्रामाणं गयस्त्रा-  
 त सुनावं नोः स्वर्ग्या गायत्र्या नो मैत्रावरुणीं गायत्रीं विश्वामित्रः  
 प्र बाहवा वशिष्टस्त्रिष्टुभर्तुं समिद्धोऽग्निरेकादशा प्रमाऽनुष्टु-  
 भर्तुं स्वस्त्यात्रेयस्पर्षं वयोधा इन्द्रो देवता वसन्तेन ऋतुना षडृच-  
 मानुष्टुभं लिङ्गोक्तदेवतर्तुं होता यक्षद्वादशाग्नी प्रैषा अश्विसरस्व-  
 तीन्द्रदेवत्या अश्विनौ छागस्य सप्तलिङ्गोक्तदेवताः प्रैषा वनस्पति-  
 मभि यूपोऽग्निरर्तुं स्विष्टकृतरर्तुं स्विष्टकृदग्निर्देवं बर्हिरेकादशानु-  
 याजप्रैषा अश्विसरस्वतीन्द्रदेवत्याऽग्निमद्यसूक्तावाकप्रैषो  
 लिङ्गोक्तदेवतो लिङ्गोक्तदेवतः ॥ ४० ॥

इति सर्वानुक्रमणीये द्वितीयोऽध्यायः २

अथाश्वमेधश्चतुरोऽध्यायान्प्रजापतिरपश्यत्तेजोऽसि सौव-  
 र्णीनिष्कमिमामगृह्णन्तं वत्सरो यज्ञपुरुषस्त्रिष्टुभमभिधा लिङ्गोक्ता-  
 नियो अर्वन्तं गायत्र्यर्धेनाश्वस्तुतिः परोऽर्थो लिङ्गोक्तोऽग्नये लिङ्गोक्ता-  
 न्येव हिङ्गागयेत्यश्वस्यैकान्नपञ्चाशच्चैष्ठितानि हिरण्यपाणिं पञ्चर्चैर्सा-

वित्रं मयत्रमाद्यां मेधातिथिरग्निर्हं स्तोमेनाग्नेयं तृचं गायत्रिर्हं सु-  
तंभरो विश्वामित्रो विरूपो यथासंख्यमजीजनो हि पावमानीक-  
तिं पिपीलिकमध्यामनुष्टुभं अरुणत्रसदस्यू विभूरश्वदैवतं दे-  
वादैवमिह रन्तिराग्नेयानि चत्वारि कायैर्द्रुमणानि लिङ्गोक्ता-  
न्या ब्रह्मल्लिङ्गोक्तान्येवाध्यायात् ॥१॥

प्रजापतये प्राजापत्यं यस्ते देवं यः प्राणतः स्त्रिष्टुफापी  
हिरण्यगर्भस्य युञ्जन्ति मधुहन्ता आदित्यदेवत्यां गायत्रीं यु-  
ञ्जन्त्यस्याश्वस्तुतिर्यद्वातो बृहती वसवस्त्वा लिङ्गोक्तानि लाजी  
नश्वदेवत्यं कः स्वित्तस्त्रोऽनुष्टुभः प्रश्नप्रतिप्रश्नभूता ब्रह्मोद्ये  
होतुर्ब्रह्मणश्च वायुष्टु लिङ्गोक्तानि सर्हं शितस्त्रिस्तोऽश्वदेवत्या  
अनुष्टुबिराङ्गिष्टुभोऽग्निः पशुराश्वानि त्रीण्यश्वेऽनुष्टुवश्चस्तुति-  
र्मणानां त्वा चत्वारि लिङ्गोक्तानि ॥२॥

उत्सवथ्या गायत्र्याश्वीयका दशर्चमानुष्टुभं द्वितीयातू-  
परिष्टाद्बृहत्यध्वर्यादीनां कुमार्यादिभिरश्लीलभाषणं ता एव  
देवता दधिकावणो दधिकावा वामदेव्यः सुरभिमतीमनुष्टुभ-  
माश्वीं गायत्रीर्हं षडृचमाश्वमुषिणागाद्या चतस्त्रोऽनुष्टुभोऽन्या  
त्रिष्टुक्स्त्वा षडृचमाश्वमाद्या गायत्री पञ्चानुष्टुभः कः स्वित्तस्त्रो-  
दशर्चं ब्रह्मोद्यर्हं होत्रादीनां प्रश्नप्रतिप्रश्नभूतमाद्याश्चतस्त्रोऽ-  
नुष्टुभः कास्विदाद्याश्चतस्त्रश्चतस्त्रश्चान्या दश त्रिष्टुभः सुसूरनु-  
ष्टुव् लिङ्गोक्तदेवता होता यक्षत्राजापत्यः प्रेषः प्रजापते हिरण्यग-  
र्भः प्राजापत्या त्रिष्टुभम् ॥३॥

अश्वस्तूपर इत्यादयः पशवोऽध्यायेनोक्ता देवता चाप-  
र्यङ्ङ्रास्तथा रोहितादयो गुणयुक्ता आरण्याश्च कपिञ्जलादय-  
आध्यायाच्छादं दद्वि रित्यादि त्वगित्येतदन्तं द्रव्यदेवतमुक्तम् ॥४॥

अश्वस्तूपरो ब्राह्मणोऽध्यायः शादं दद्विस्त्वचान्तश्च जुम्ब-  
काय वारुणीं द्विपदं मुण्डिभ ओदन्य एषा चाघनाशिन्यन्तर्जले  
यस्येमे कायो त्रिष्टुभौ हिरण्यगर्भः प्राजापत्य आनो दशार्चं जा-  
गतं वैश्वदेवं गोतमः स्वस्तिनो विराट्स्थाना भद्रं कर्णेभिस्त्व-  
चं त्रैष्टुभं मानोऽश्वस्तोमीयं दीर्यतमस्त्रैष्टुभं द्वाविठं शतृचमश्व-  
स्तुतिस्तृतीयां षष्ठ्यो जगत्या विमा नु द्वैपदं वैश्वदेवं तृचं भौव-  
न आप्त्यो वा साधनो भौवनो वा ॥५॥

अग्निश्च सप्त लिङ्गोक्तानि प्रियो देवानां लोगाक्षिरनुष्टु-  
भमनवसानां बृहस्पते गृत्समदो ब्राह्मीं त्रिष्टुभमिन्द्र गोमन्त्रे-  
ष्ट्यो गायत्र्यो रम्याक्षिर्ऋतावानं प्रादुराक्षिर्वैश्वानरीयां वैश्वान-  
रस्य त्रिष्टुभं कुत्सोऽग्निर्ऋषिराग्नेयीं गायत्रीं वसिष्ठ भरद्वाजो  
महो २ ॥ इन्द्रो माहेन्द्री वसिष्ठस्तं व ऐन्द्री पथ्या बृहती नोधा  
गोतमो यद्वाहिष्ठं वसूयव आग्नेयीमनुष्टुभमेहि भरद्वाजो गाय-  
त्रीमृतवस्ते बृहत्युपवहरे वत्सो गायत्रीम् ॥६॥

उच्चाते गायत्रं तृचं सौम्यमामहीयवोऽनुवीरैर्मुद्गलो-  
यज्ञपुरुषस्त्रिष्टुभमग्ने पत्नीर्मेधातिथिराग्नेयीं गायत्रीमभि-  
यज्ञं ऋचमृतुदेवतं मेधातिथिस्तवायमेन्द्रीं त्रिष्टुभं विश्वामित्रो-  
मेव नो जगतीं गृत्समदः स्वादिष्ट्या मधुच्छन्दाः सौम्यावनु-

ज्ञानं गायत्रम् ॥ ७ ॥

समास्त्वाग्निर्कोऽध्यायः प्रजापतेरर्षेऽर्षेण सामिधेन्यो नवाग्नेयस्त्रिष्टुभोऽग्निना हृष्टा अग्निर्ऋषिः कर्मोद्भूतमग्निर्ऋत्तोत्सूधा द्वादशर्चमाप्रियमौषिहं विषमयदं प्राजापत्यमाग्नेयमग्निरपश्यदग्निर्हि प्रजापतित्वेन संस्तूयते तेन प्राजापत्यम् ॥ ८ ॥

पीवो अन्ना द्वे वायव्ये त्रिष्टुभौ वसिष्ठ आपो ह द्वे प्राजापत्ये हिरण्यगर्भः प्राजापत्यः प्र याभिर्द्वे वायव्ये वसिष्ठो नियुत्वान्वायव्याः षड्वायोश्चक्रोऽनुष्टुवेकया च त्रिष्टुवन्या (न्त्या) गायत्र्यो नियुत्वान्वायो ये गृत्समदो वायो शुक्रं पुरुमीढाजमीदौ तव वायो व्यश्व आङ्गिरसोऽभि त्वा वसिष्ठ ऐन्द्रं प्रगाथं अथमा बृहती द्वितीया सतो बृहती त्वामिदेवर्षेण शंयुर्वर्हस्पत्यः कया न ऐन्द्रं तृचं गायत्रं वामदेवोऽन्त्या तु पादनिचृद्यज्ञायज्ञा व ऊर्जो नपातर्षेण शंयुः पाहि नो भर्गः प्रगाथ एतं (तत्) तृचं प्रगाथमाग्नेयं द्वे बृहत्यौ तृतीया सतो बृहती संवत्सरोऽस्याग्नेयम् ॥ ९ ॥

इन्द्रमिडः सौत्रामणिकोऽध्यायः एकादश प्रयाजप्रेषा ऐन्द्रा आप्रीदेवत्या (ता) आद्येऽनुवाके देवं बर्हिरनुयाजप्रेषा ऐन्द्रा एकादशैवाग्निमद्येन्द्रः सूक्तवाकप्रेषस्त्वामद्य प्रतीक उभयत्रापि समिधानं महद्वायोधस आप्रिय एकादश प्रयाजप्रेषास्तथैव देवं बर्हिस्तुयाजप्रेषा अग्निमद्य वायोधसः सूक्तवाकप्रेषः ॥ १० ॥

समिद्धो अज्जन्नाश्वमेधिकोऽध्याय आद्या आप्रीस्त्रिष्टुभ ए-  
कादशाश्वस्तुतिर्बृहदुक्थो वामदेव्यो ददर्शाश्वो वा सामुद्रिर्यदक्र-  
न्दस्त्रयोदशाप्रीरश्वस्तुतिस्त्रिष्टुभो भार्गवो जमदग्निर्ददर्श दीर्घत-  
माश्व समिद्धो अद्य द्वादशाप्रीस्त्रिष्टुभोजमदग्निः ॥११॥

केतुं कृण्वन्नाग्नेयीमनिरुक्तां गायत्री मधुच्छन्दा जीमूत-  
स्येव पायुर्भारद्वाजः सङ्ग्रामाङ्गान्पृक्षोऽक्षोऽस्तौषीत्संनाहं कार्मु-  
कं गुणमार्त्ती तूणं जगत्यर्धेन सारथिमर्धेन रश्मीन्हरीन्त्रयर्धं  
रथगोपायितृन् जगत्या लिङ्गोक्तदेवता द्वाभ्यां त्रिष्टुबनुष्टुभ्या-  
मिष्टुमनुष्टुभा कशां ततो हस्तघ्नं ततस्तृचौ रथदुन्दुभिदेवत्या-  
वेन्द्रोर्ध्वचौऽन्त्यः सर्वास्त्रिष्टुभोऽनुक्ता आग्नेयः कृष्णाग्नीव इत्या-  
द्या एकादशिन्योर्द्वयोः पशुदेवता अग्नये गायत्रायेति दशह-  
विषो वेष्टिर्देवताः ॥१२॥

देव सवितर्द्वावध्याय्यो पुरुषमेधो नारायणः पुरुषो ददर्श वि-  
श्वानि देव गायत्रीर्धं सावित्रीर्धं श्यावाश्वो विभक्तारं मेधातिथिर्ब्रह्म-  
णे ब्राह्मणमिति द्वे कण्डिके तपसेऽनुवाकश्च ब्राह्मणम् ॥१३॥

सहस्रशीर्षो षोडशार्चमानुष्टुभं त्रिष्टुवन्त्यं पुरुषो जगद्दी-  
जमन्त्रदेवताद्वयः षडृच उत्तरनारायणो मन्त्र आद्यास्तिस्त्रिष्टु-  
भो द्वे अनुष्टुभावन्त्या त्रिष्टुपू ॥१४॥

तदेव सर्वमेधोऽध्यायः आत्मदेवतः सप्तमेऽहनि सर्वहो-  
मे विनियुक्तः सर्वमेधं ब्रह्मस्वयंभैक्षं तदीयं मन्त्रगाणं प्र वायुम-  
हेत्येतस्मादाद्ये द्वे अनुष्टुभौ नतस्य द्विपदागायत्री हिरण्यगर्भ-



अतसो मा माहिर्हसीद्यस्मान्न द्वे एताः प्रतीकचोदिता ब्रह्मयज्ञेऽध्ये-  
याः सर्वत्रैवमेषो ह चतस्रस्त्रिष्टुभ आपो ह यश्चित्प्रतीकचोदिते ॥ १५ ॥

वेनस्तत्पञ्च त्रिष्टुभः सदसस्पतिं तृचेन मेधाकामो मेधाया-  
चते प्रथमा गायत्री लिङ्गोक्तदेवता द्वितीयाग्नेय्यनुष्टुप् तृतीया  
लिङ्गोक्तदेवतानुष्टुबिदं मे मान्नवर्णिक्यनुष्टुवेतथा देवेभ्यः  
श्रीकामोयाचते श्रियम् ॥ १६ ॥

अस्याजरासः सप्तदशाग्निष्टोमिके प्रथमेऽहनि पुरोरु-  
च आग्नेय्य आद्ये द्वे ऐन्द्रवायवस्यास्याजरासो वत्सग्रीहं रयोधूम-  
केतवो विस्वो यजानो द्वे मैत्रावरुणस्य यजानो गोतमो द्वे वि-  
रूपे सुक्रस्य कुत्सोऽयमिह मन्थिनो वैश्वदेवग्रहग्रहणे त्रीणि शता  
विश्वामित्र ऐन्द्राग्नस्याग्निवृत्राणि भरद्वाजो वैश्वदेवस्य विश्वे-  
भिः सोम्यं मेधातिथिरायन्मरुत्वतीययोर्द्वे आयत्पराशरः शाक्तयो-  
ऽग्ने शार्धात्रिदुहिता विश्ववारां त्वार्ठं हि भरद्वाजस्त्वे अग्नेर्द्वे बृह-  
त्यावादित्यस्य त्वे अग्ने वसिष्ठ श्रुधि प्रस्कएव आदित्यग्रहग्रह-  
णे (अयणे) विश्वेषामदितिर्वामदेवो गोतमो महो अग्नेः सावित्र-  
स्य लुशोधानाकोऽनुक्तं गायत्रं त्रैष्टुभम् ॥ १७ ॥

इन्द्रस्तुत्युक्थ्ये द्वितीयेऽहन्येन्द्रः पुरोरुचो द्वादश प्रती-  
क चोदिते च द्वेतिस्त्रिष्टुभश्चिद्वसिष्ठो गाव उप पुरुमीढाजमीढो  
यदद्य वसिष्ठ आसुते सुनीतिरातिष्ठन्तं विश्वामित्रं प्रवः सुचीको  
बृहन्नित्रिशोक इन्द्रो हि मधुछन्दा इन्द्रो वृत्रं विश्वामित्रः कुतस्त्वम-  
गस्य आतङ्गौरीवितिः शाक्त्यदमांते कुत्सो जगतीमनुक्तं गायत्रं

यजानो द्वे मैत्रावरुणस्य यजानो गोतम इत्येव पाठः यजान इत्यनया ग्रहणं तस्य अयणं तु प्रकृतिप्राप्तेन धत्तां  
धेनुमग्नीं पुन न इत्युहितेनैव युक्त्वाहीत्यनया अग्निग्रहणं प्रकृतिबन्धनकमाल्लिगाच्च । अतोऽनपुस्तके लिखितः  
पाठः प्रमाद एवेति निश्चयः । एवमेव देवः भाष्ये पठ्यते सर्वानुक्रमसूत्रभाष्ये पठ्यते संहिताभाष्ये च

मजानो मैत्रावरुणस्य गोतम इत्येव पाठः यजान इत्यनया ग्रहणं तस्य अयणं तु प्रकृतिप्राप्तेन धत्तां  
धेनुमग्नीं पुन न इत्युहितेनैव युक्त्वाहीत्यनया अग्निग्रहणं प्रकृतिबन्धनकमाल्लिगाच्च । अतोऽनपुस्तके लिखितः  
पाठः प्रमाद एवेति निश्चयः । एवमेव देवः भाष्ये पठ्यते सर्वानुक्रमसूत्रभाष्ये पठ्यते संहिताभाष्ये च

त्रैष्टुभम् ॥ १८ ॥

सूर्यस्तुत्युक्थ्ये तृतीयेऽहनि सौर्यश्चतुर्दश पुरोरुचस्तिस्त्रश्च  
प्रतीकोक्ता विभ्राड्बृहज्जगतीं विभ्राट् सौर्य उदुत्यं तिस्रः प्रस्कएव  
आनोऽगस्त्यो यदद्य श्रुतकक्ष सुतंकक्षौ तरणिः प्रस्कएव तत्सूर्यस्य  
द्वे कुत्सो वरामहा रं॥ द्वे जमदग्निर्बृहतीसतोबृहत्यो आयन्त इवनृ-  
मेधो बृहत्यद्या देवाः कुत्सः आ कृणो न हिरण्यस्तूप आङ्गिरसोऽ-  
नारव्यातर्हं सौर्यं गायत्रं त्रैष्टुभम् ॥ १८ ॥

वैश्वदेवस्तुति चतुर्थेऽहनि वैश्वदेव्यः पुरोरुच एकादश  
षट् प्रतीकोक्ताः प्रवावृजे वसिष्ठस्त्रिष्टुभ इन्द्रवायूबृहस्पतिं द्वे  
मेधातिथि अधि नः कुसीदी काणवोऽग्न इन्द्रं प्रतिक्षत्रं इन्द्राग्नी-  
मित्रावरुणा जगतीं काश्यपोऽवत्सारोऽस्मे रुद्राः प्रगाथोऽवाञ्छो  
अद्य कूर्मो गात्समदो विश्वे अद्य लुशोधानाको विश्वे देवाः सु-  
होत्रो देवेभ्यो हि वामदेवो जगतीमनुक्तं गायत्रं त्रैष्टुभम् ॥ १९ ॥

अथानाराभ्याधीतं मन्त्रगणमर्वा विपतृमेधादादित्यया-  
न्तवल्क्यो ददर्शतुः प्र वायुं पञ्चदशर्चः पुरोरुग्गणो द्वे च प्रती-  
कोक्ते प्रवायुमृजि श्वो मित्रं हुवे द्वे मधुछन्दा मित्रं लिङ्गोक्ता-  
दस्त्रा युवा कव आश्विनीं विदद्यद्येन्द्रीं कुशिको न हि स्पशं  
विश्वामित्रो वैश्वानरीमुग्रा विघनिनेन्द्राग्नीं भरद्वाज उपास्मे सो-  
मीं देवलोऽसितो वा ये त्वा विश्वामित्रो जनिष्ठा उग्रो गोरीवितिरतू वाम-  
देवस्तु च ऐन्द्रस्त्वभिन्द्रेन्द्र्यो नृमेधः पथ्याबृहतीसतोबृहत्यो यज्ञो देवानां  
कुत्सोऽद्व्येभिः सावित्रीं जगतीं भरद्वाजः ॥ २१ ॥

प्रवीरया पञ्चदशार्चः पुरोरुग्गणो द्वे च प्रतीकोक्ते प्रवीरया  
वसिष्ठो वायव्यां काव्ययो राजानेषु दक्षस्तिरश्वीनः परमेष्ठी प्रजाप-  
तिर्भाववृत्तं तृचमारोदसी जगती विश्वासित्र उक्थ्येभिर्वृचहन्त-  
मा वसिष्ठ उप नः सुहोत्रो वैश्वदेवीं ब्रह्माणि मे गस्त्यो द्वे इन्द्रमा-  
रुत्संवादे तदिदाथर्वणो बृहद्विष इमा उ त्वा द्वे बृहत्यौ मेधाति-  
थिर्यर्यं सहस्रं मेधातिथिः सतो बृहतीम् ॥ २२ ॥

आनस्त्रयोदर्शार्चः पुरोरुग्गणश्चतुर्चर्चं प्रतीकचोदितं चा-  
नो वायव्यां जमदग्निरिन्द्रवायू सुसंहशैन्द्रवायव्यां तापस ऋधगि-  
त्या मैत्रावरुणी जमदग्निरायातमाश्विनीं वसिष्ठः प्रेतु वैश्वदेवीं  
करवश्चन्द्रमा अप्सेन्द्रीमाहुतिपरिणामवादिनीं त्रित आप्त्यो देव-  
देवं वोमनुर्वेवस्वतो वैश्वदेवीं दिविष्टुष्टो मेध ऐन्द्र इन्द्राग्नी अपात्सु-  
होत्रो देवासो हिमनुरपाधम द्वे नृमेधोऽस्येन्मेधातिथिर्दशम्येकाद-  
श्यन्त्या च सतो बृहत्यः शेषा बृहत्यः शेषा बृहत्यः ॥ २३ ॥

इति सर्वानुक्रमणीयेतृतीयोऽध्यायः ३

यज्जाग्रतः षड्च मानसं त्रैष्टुभं शिवसंकल्पः पितुं नूष्णि-  
हमगस्त्योऽन्वस्तुतिम(१)न्विचतुर्चर्चमानुष्टुभं द्वयोरनुमतिर्द्वयोः  
सिनीवालीसरस्वत्यो सिनीवालि पृथुष्टुके द्वे गृत्समदस्त्वमग्ने  
द्वे आग्नेय्यो जगत्यो हिरण्यस्तूप आङ्गिरस उत्तानायां द्वे देवश्वा  
देववातश्च भारतावाद्या त्रिष्टुब्धितीयानुष्टुप् मन्महे नोधा ह्यच-  
मेन्द्रं त्रैष्टुभमिच्छन्ति त्वा ह्यचमेन्द्रं त्रैष्टुभमेव देवश्वादेववात-  
श्च भारती ॥ १ ॥

अषाढं युत्सु गोतमश्चतुर्ऋचं त्रैष्टुभं सौम्यमष्टौ व्य-  
ख्यच्चतुर्ऋचं त्रैष्टुभं सावित्रमाङ्गिरसो हिरण्यस्तूपो द्वितीया ज-  
गत्युभा पिवतमाश्विनं तृचमुभा पिवतं प्रस्कण्वो गायत्री मप्र-  
स्वतीमश्विना त्रिष्टुभो कुत्सः आ रत्रि पथ्याबृहतीर्हं रत्रिदेव-  
त्यां कशिपा भरद्वाजदुहितोषस्तदुषस्यां परोषिाहं गोतमः  
प्रातरग्निं वसिष्ठः सप्तर्चमाद्या जगती बहुदेवत्या पञ्च भगदे-  
वत्यास्त्रिष्टुभोन्त्योषस्या ॥२॥

पूषं तव सुहोत्रः प्रथमस्थः परिपतिमृजिष्वेते पोषण्यो गा-  
यत्रीत्रिष्टुभो त्रीणि पदा वैष्णव्यो गायत्र्यो मेधातिथिर्घृतवती मु-  
दनानां भरद्वाजो द्यावापृथिव्यां जगतीं ये नो लिङ्गेक्तदेवतां त्रि-  
ष्टुभं विहव्य आ नासत्या हिरण्यस्तूप आश्विनीं जगतीं मेषवो  
मारुतीं त्रिष्टुभमगस्त्यः सहस्तोमा ऋषिसृष्टिप्रतिपादिकां त्रिष्टु-  
भं यज्ञः प्राजापत्य आयुष्यं वर्चस्यं तृचं दक्ष उषिाक् शक्वरीत्रिष्टु-  
भो हिरण्यस्तुतिरुत न ऋजिष्वो बहुदेवत्यां त्रिष्टुभमिमा गिरः  
कूर्मो गार्त्समद आदित्यदेवत्यां त्रिष्टुभं सप्तऋषयोऽध्यात्मवादि-  
नी जगत्युत्तिष्ठ तृचो ब्राह्मणस्पत्य आद्ये बृहत्यो कण्वोऽधो रो-  
न्त्या त्रिष्टुभं गृत्समदो य इमा चतुर्ऋचं प्रतीकोक्तम् ॥३॥

अपेतोऽध्यायः पित्र्य आदित्यस्य देवानां वाद्या गायत्री  
परं यजुः सविता ते गायत्री वायुः पुनातु चत्वारि लिङ्गेक्ता-  
नि सविता ते गायत्री परं मृत्योः संकसुकस्त्रिष्टुभं मृत्युदेवत्यार्हं  
शं वातोऽनुष्टुबृहत्यो वैश्वदेव्यावश्मन्वती सुचीकस्त्रिष्टुभं

वैश्वदेवीमपाद्यं लिङ्गोक्तदेवतामनुष्टुभं शुनः शेषो दुःस्वप्ना-  
 शनीमनङ्गाहमानडुह्यनुष्टुबिमं जीवेभ्यः संकसुको मृत्युदे-  
 वत्यां त्रिष्टुभमायुष्मानग्नः आग्नेयीं त्रिष्टुभं वैरवानसः परी-  
 मेऽनुष्टुभमैन्द्रां भारद्वाजः शिरिम्बिठः क्रव्यादमग्निं त्रिष्टु-  
 भमाग्नेयीं दमनो वह वपां जातवेदसी त्रिष्टुप्स्योना पृथिवि  
 मेधातिथिः पार्थिवीं गायत्रीमस्मात्त्वमाग्नेयी गायत्र्यनि-  
 रुक्ता ॥४॥

ऋचं वचं पञ्चाध्यायीं दध्यङ्गाथर्वणो ददर्शाग्निकश्च-  
 मधिकवज्जमाद्योऽध्यायः शान्त्यर्थे वैश्वदेव आद्यानि यजूर्ठ-  
 षि यन्मे वार्हस्पत्या यङ्किः कया त्वमेन्द्र निरुक्ता गायत्रीन्द्रो वि-  
 श्वस्य विराट्द्विपदा शं नो द्वे अनुष्टुभावहानि द्विपदा गायत्री शं  
 न इन्द्राग्नी त्रिष्टुब्बायत्र्यावन्त्याशीर्धोः शान्तिर्यजूर्ठषि नमस्ते  
 अस्त्वनुष्टुभो तच्चक्षुः पुरउषिणक्सोरी ॥५॥

आददे नारिरस्यभिदैवतं देवी द्यावा पृथिव्यं देव्यो चम्यो  
 दल्मीकवपेयत्यग्ने वराहविहतमिन्द्रस्योज आदाराः प्रेतु मरव-  
 स्याश्वस्यर्जवे यमाय देवस्त्वाचिंरसि घर्मदेवत्यानि यो घर्मः स  
 आदित्यो य एष तपत्यनाधृष्टा पुरस्तात्सप्त पार्थिवानि यजमा-  
 नाशीर्मधुप्राणदेवत्यानि गर्भे देवानामवकाशा मा माहिर्ठ-  
 सी रित्येतदन्ता घर्मदेवत्या धर्ता दिव ऊर्ध्वबृहत्पश्यं गोपां  
 त्रिष्टुभं दीर्घतमा हृदं त्वा परोषिणक् त्वष्टमन्तः पत्न्याशीरहः  
 केतुना यजुषी घर्मदेवत्ये ॥६॥

आददेऽदित्यै रज्जुरिड एहि गौर्यस्ते त्रिष्टुभं दीर्घतमा  
इन्द्राश्विना वैश्वदेवानि समुद्राय त्वा वातनामानि स्वाहा घर्मो-  
य घर्मदेवत्ये विश्वा आशाश्विन्यनुष्टुब्दिविधा घर्मदेव-  
त्यामश्विना घर्ममुष्णिगपातां ककुवमेन्यस्मे रवरः स्वाहा  
पूषो सप्त लिङ्गोक्तदेवतानि स्वाहा सं पयो देवत्यं मधुहुतं घ-  
र्मोऽभीमं गायत्री बृहत्यावनवसाने अतिशक्करीवाग्नेयी स-  
मस्ता अयवसाना या ते घर्म क्षत्रस्य बृहती चतुः सक्तिर्महा-  
बृहती घर्मोतदनुष्टुवच्चिक्रदत्परोष्णिग्यावती द्यावापृथिवी द-  
धिघर्मोमयित्यदित्यङ्गिर्यजमानाशीः पयसो रेतो गायत्र्यनव-  
साना त्विषः सं वृग्दधिघर्मोऽनुक्तं घर्म देवतं ॥७॥

स्वाहा आणेभ्यो मन्त्रवर्णिको देवता मनसः कामम-  
नुष्टुव्यजमानाशीः श्रीर्देवता प्रजायन्तिः संम्रियमाणो यथा-  
कालं प्रायश्चित्तदेवताः सविता प्रथमेऽहन्प्रत्यहं क्रमेणोग्रश्च  
मारुती गायत्री विमुखारव्यो मन्त्रोऽग्नेो विनियुक्तस्तस्मादा-  
ग्निक एवास्य ऋषिः परमेष्ठी प्राजापत्यो वाग्निर्ऽहं हृदयेना-  
श्वमेधिकानि त्रीणि तत्रोक्त एव ऋषिलोमभ्यः स्वाहेति प्रा-  
यश्चिन्नाहुतयो द्विचत्वारिंशत् ॥८॥

ईशा वास्यमात्मदेवत्य आनुष्टुभोऽध्यायोऽग्नेजदेकं  
त्रिष्टुप्परि जगती वायुरनिलं यजुषी उँश्मिति परमाक्षरस्य  
योगिनामालम्ब भूतस्य परस्य ब्रह्मणः प्रणवारव्यस्य स्थूला-  
दिगुणयुक्तस्य ब्रह्मार्षिश्छन्दो गायत्रं परमात्मा देवता ब्रह्मर-

म्मे विरामे च यागहोमादिषु शान्तिपुष्टिकर्मसु चान्येष्वपि  
काम्यनैमित्तिकादिषु विनियोगोऽस्य क्रतो विभिर्यजुर्भिर-  
न्ते यज्ञान्योगी स्मारयत्यग्ने नयान्ते नमस्कारोक्तिर्हिरण्यमये-  
नादित्योपासनमोमिति नामनिर्देशो ब्रह्मणः खं ब्रह्मेत्याका-  
शरूपमन्ते ब्रह्म ध्यायेत् ॥ ६ ॥

हरिः ओम्

ओं नमो कात्यायनाय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थः प्रदीपके  
देवर्षिछन्दबोधायानुक्रमार्थः समीर्यते

आदि में भगवान् कात्यायनाचार्य प्रारप्सितग्रन्थ के  
निर्विघ्नता पूर्वक परिसमाप्ति के अर्थ देवताध्यानलक्षण म-  
ङ्गलाचरण करिके श्रोतृबुद्धि के अव्याकुलत्व के प्रतिपाद्यग्र-  
न्थ को प्रकट करता है मण्डलं दक्षिणमक्षिहृदयं चाधिष्ठितं  
येन शुक्लानि यजूंश्चि मगवान्यान्तवल्क्यो यतः प्रापस्तं वि-  
वस्वन्तं त्रयीमयमर्चिष्मन्तमभिध्यायेति में तिसविवस्वन्त(सूर्य)  
तीनों वेदमय दीप्तिमन्त को कि जो जो आकाश में जगत्प्रकाश-  
कात्वं करि दृश्यमान मण्डल और पुरुष के दक्षिणनेत्र तथा

हृदय तीनों को आक्रमण करि स्थितहुआ पुनः जिस विवस्वन्त  
 से भगवान् याज्ञवल्क्य ने शुक्ल यजुः प्राप्त किये भले प्रकार  
 ध्यान करिके इसां माध्यन्दिनीये वाजसनेयके यजुर्वेदाम्ना-  
 ये सके सरिवले सशुक्रियः ऋषिदेवत छन्दार्थं स्यनुक्रमिष्या-  
 म इति इस यजुर्वेद की आम्नाय में ऋषि, छन्द, देवता कहता  
 हूँ तहां यजुर्वेद के छयासी भेद होने से नहीं समझ पड़ता कि कौन-  
 से यजुर्वेद की आम्नाय इसलिये कहता है कि वाजसनेयके और वा-  
 जसनेयक यजुर्वेद के भी पञ्चदश भेद होने से नहीं जानि पड़-  
 ता इस हेतु फिर भी कहता है कि माध्यन्दिनीय इति तहां यजु-  
 ओं का वेद यजुर्वेद है इस कारण ऋचाएँ पढ़कर न भूलै सकै य-  
 ह युक्त है पुनः कैसा कि सरिवले, रिवल शब्द करि अनारभ्या-  
 धीताः क्वचित्कर्मण्यविनियुक्ता मन्त्रगणा कहिये हैं, प्रवायुम-  
 च्छा संहिता अध्या० ३३, काण्डी ५५, मुञ्चन्तु मा अध्या० १२, काण्डी  
 ४०, अग्निश्च अध्या० २६, काण्डी १, इत्यादि मन्त्र हैं तिन्हों सहि-  
 त ननु रिवलों का यजुर्वेद के मध्य होने से किस लिये न्याराज्य-  
 देश किया यों कि इन्हों के क्वचित्कर्म में अविनियुक्त होने से ऋ-  
 ष्यादिज्ञान निष्प्रयोजन होगा इस शङ्का के निरास करने को  
 क्यों कि इन्हों का भी ब्रह्मयज्ञ पारायण वाचस्लोमादि में विनि-  
 योग होने से ऋष्यादिज्ञान आवश्यक है पुनः सशुक्रिय इति  
 शुक्र (आदित्यधर्म) सम्बन्धि जो मन्त्र विभाग ऋचं वाचमि-  
 त्यादि अध्या० ३६, काण्डी १, तिस सहित और इस के भी पृथक्



कहने का यह कारण है कि यह शुक्रिय दिवस में तथा अरण्य में पड़ा जाता है और इस से अन्य वेद का भाग विनानियम के रात्रि दिन अरण्य ग्रामादिक में पड़ा जाता है

यजुषामनियताक्षरत्वादेकेषां छन्दो न विद्यत इति यजुषां के अनियताक्षर होने से किसी-किसी का छन्द नहीं है अयमर्थः जे यजुः अनियताक्षर हैं अर्थात् जिन्हों के १७० १४० २१० २३० २५० ३१० ३४० ३५० ३७० ३८० ४१० इत्यादिक अक्षर हैं तिन्हों का छन्द नहीं है और जो इषे त्वादिक नियताक्षर हैं तिन्हों का छन्द है क्यों कि दूसरे खण्ड में उक्त कात्यायनाचार्य कहेंगा यथा इषे त्वा शारवानुष्टुबिति इषे त्वा इस मन्त्र का शारवा देवता अनुष्टुप् छन्द तहां अनुष्टुप् छन्द तो वनीस अक्षर का और यहां पर तीनि अक्षर हैं तो यह कौनसा अनुष्टुप् है तहां पिङ्गल सूत्र से इस का निर्णय करना यदुक्तम् । छन्दः । गायत्री । दैव्येकम् । आसुरी पञ्चदश । प्राजापत्याष्टौ । यजुषां षट् । साम्नां द्विः । ऋचां त्रिः । द्वौ द्वौ साम्नां वर्धेत । त्रींस्त्रीनृचाम् । चतुरश्वतुरः प्राजापत्यायाः । एकैकं शेषे । जह्यादासुरी । तान्युषिणानुष्टुब्बहती पङ्क्तिः त्रिष्टुब्जगत्यः । तिस्रस्तिस्रः सनाम्य एकैका ब्राह्म्यः प्राग्यजुषामार्ष्ये इति । पिङ्गल छन्दः सूत्र खण्ड ३ अर्थः संक्षेपतः । दैवी गायत्री छन्द एक अक्षर का आसुरी गा० छ० पञ्चदश अ० प्राजापत्या गा० अष्ट अ० यजुषी गा० षट्० साम्नी० द्वादश० आर्ची० अष्टादश० ब्राह्मी० षट्त्रिंशत्० आर्षी० चतुर्विंश

ति. है तहां देवी उषिणादि छन्दों पर एक-एक अक्षर बढ़ावै आसुरी से एक-एक घटावै प्रजापत्या पर चारि-चारि बढ़ावै याजुषी पर एक-एक साम्नी पर दो-दो आर्षी पर तीन-तीन ब्राह्मी पर छे-छे आर्षी पर चारि-चारि जैसे इस ब्रह्मसप्तति ७२ कोष्ठ के यन्त्र में

छन्द	गा०	उ०	अ०	बृ०	प०	त्रि०	ज०
आर्षी	२४	२८	३२	३६	४०	४४	४८
देवी	१	२	३	४	५	६	७
आसुरी	१५	१४	१३	१२	११	१०	९
प्रजापत्या	८	१२	१६	२०	२४	२८	३२
याजुषी	६	७	८	९	१०	११	१२
साम्नी	१२	२४	१६	१८	२०	२२	२४
आर्षी	१८	२१	२४	२७	३०	३३	३६
ब्राह्मी	३६	४२	४८	५४	६०	६६	७२

और जहां एक छन्द की संख्या दूसरे के समान हो जैसे देवी त्रिष्टुप् याजुषी गायत्री तथा साम्नी गायत्री याजुषी जगती आसुरी बृहती इत्यादि और यह सन्देह होवे कि यहां कौनसा छन्द है तहां गायत्र्यादि छन्दों के देवताओं से कि जो चतुर्थ्याध्याय के स्वाङ्क १०.११.१२. में हैं निर्णय करें और उन देवताओं से व्यतिरिक्त अन्य देवता हों तो जो छन्द होसके तिनमें से चाहे जोनसा छन्द समझे अन्यच्च आर्षी गायत्री से आदि ले सत्तों छन्द और

पञ्चमाध्यायोक्त गायत्र्यादि सप्तछन्दों की अक्षर संख्या तो समान है परन्तु वहाँ पाद नियम है और यहां पाद नियम नहीं और यह सन्देह हो कि उन गायत्र्यादि छन्दों में भी तो कोई-कोई अनवसाना अनियताक्षरा हैं तहां यह समाधान है कि उन गायत्र्यादि छन्दों की ऋचाओं पर आचार्य ने छन्द दिया है और इन्हें पर नहीं इति

ऋषि देवतछन्दश्चस्यनुक्रमिष्याम यह पहिले कहा गया अब ऋषि का स्वरूप कहिता है द्रष्टार ऋषयः स्मृतारः परमेष्ठ्यादय इति

परमेष्ठी से आदिले ऋषि हैं यह युक्त है क्योंकि संहिता की आदिमें दर्शपोर्णमास के मन्त्र हैं तिन्हों का परमेष्ठीप्राजापत्य ऋषि है। तहां परमेष्ठी से आदिले जिन्होंने जिस मंत्र को देखा ते उसके ऋषि हुए। अतएव यास्कः ऋषिर्दर्शनादिति। और देखे हुए के आख्यान को स्मरण किया ते ही स्मर्ता हुए। तिन वेद की प्राप्ति के अर्थ तप करते हुआ पुरुषों की स्वयंभू वेद पुरुष प्राप्त हुआ। तथाच श्रूयते। अजान् वै पृथ्वीं स्तपमानान् त्रल्लस्वयं च न्यानर्षत दृषयोऽभवन्निति। तथा अतीन्द्रिय वेद के परमेश्वरानुग्रह करि दर्शन से ऋषित्व है इत्यभिप्रेत्य स्मर्यते। युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेति हासान्महर्षयः। लेमिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाता स्वयं भुवेति। यहां दर्शन मानस है क्योंकि मन्त्रों के वर्णोत्पत्तिक होने से नेत्रों करि दर्शन असम्भव है

अथ देवता स्वरूपमाह । देवता मन्त्रान्तर्भूता अग्न्यादिका हविर्भाजः स्तुतिभाजो वा । अयमर्थः । जे मन्त्र के मध्य पढ़े गये अग्निसोमेन्द्रविष्णवादयः देवता तिन्हो में कोई हविर्भोक्ता कोई सूक्तभोक्ता हैं । तथा च यास्कः । इतीमा देवता अनुक्रान्ताः । सूक्तभाजो हविर्भाज इति निरु० ७.१३. अपि च । यत्काम ऋषिर्यस्या देवतायामर्थयत्यमिच्छन्स्तुतिं प्रयुञ्क्ते तद्देवतः स मन्त्रो भवतीति निरु० ७.१. अयमर्थः । जिस कामना को ऋषि जिस देवता में अर्थपत्य की इच्छा करि स्तुति करते हैं तिस मन्त्र का सो देवता है ।

भला अग्न्यादिक तो देवता हैं परन्तु अन्नः शाखा शम्या उपवेशादिक कैसे देवता हो सकते हैं क्यों कि वे न तो हवि ग्रहण समर्थ और न करी हुई स्तुति को जान संकते हैं । तथाह । अन्नः शाखा शम्योपवेशकपालेध्मोलूरवलादयश्च प्रतिमाभूता इति यद्यपि अन्नः शाखादिक अचेतन हैं तथापि तिन्हों के अभिमानीदेवताओं के होने से देवतात्व है । अभिमानीव्यपदेशस्त्वेति व्याससूत्रोक्तेः अ० २. पा० १. सू० ५. मृदब्रवीदापोऽब्रुवन्निति श्रुतेश्च । अथ वा अग्न्यादिकों से उत्पन्न होने के कारण तिन्हों के प्रतिनिधि हैं । तथाच श्रुतिः । उतत्यं चमसं नवं त्वष्टुर्देवस्य निष्कृतम् । अकृते चतुरः पुनः ॥ ऋक्सं० अष्ट० १. अध्या० २. वर्ग २. ऋचा ६. अस्यार्थः ॥ और त्वष्टा देवता के बनाये हुए तिस चमस (सोमधारणक्षम काष्ठपात्रविशेष) को उसके शिष्य ऋम्वादिकों ने चारि प्रकार

रका किया ॥ यद्वा यज्ञ के साधक होने से देवत्व है। जो अनः शा-  
खादिकों की स्तुति वोह अग्न्यादिकों की वा यज्ञ की ही है। अपि  
ह्यदेवता देवतावत्सूयन्ते यथाश्व प्रभृतीन्योषधिपर्यन्तानिति या-  
स्कः निरु. ०. ७. ४. ॥

छन्दाथंसि गायत्र्यादीनि इति अथ छन्दाथंसि गाय  
त्र्युषिागनुष्टुबिति पञ्चमाध्यायोक्त गायत्री आदि छन्द जानने  
चाहिये। छन्दशब्दस्यायमर्थः। पुरुष के पापसम्बन्ध वारण कर-  
ने के लिये आच्छादक होने से छन्द यह कहलाया। तथा च ऐत-  
रेयारण्यकारण्डे समागनायते। छादन्ति ह वा एनं छन्दासि पा-  
पात्कर्मण इति। अथ वा चीयमान अग्निसन्ताप के आच्छा-  
दक होने से छन्दः। तच्च तैतिरीया आमनन्ति। प्रजापतिरग्नि-  
मचिनुत। स क्षुरपविर्भूत्वातिष्ठत्। तं देवा विभ्यतो नोपायन्।  
ते छन्दोभिरात्मानं छादयत्वोपायन्। तच्छन्दसां छन्दस्त्वमिति।  
यद्वा अप मृत्यु वारण करने के लिये आच्छादन करता है इति  
छन्दः। तदपि छन्दोग्योपनिषद्याम्नातं। देवा वै मृत्योर्विभ्युः। त्रयी  
विधां प्राविशान्। तं छन्दोभिरात्मानमाच्छादयन्। यदेभिराच्छा-  
दयंस्तच्छन्दसां छन्दस्त्वमिति॥

ऋषिदेवतछन्दों के ज्ञान बिना ही अध्ययनादि की सि-  
द्धि है और किस लिये ते कहे गये यह शङ्का ही तहां अनजानने  
में अनिष्ट कहिता है। एतान्यविदित्वा योग्धीतेः नुब्रूते जपति जु-  
होति यजते याजयते तस्य ब्रह्म निर्वीर्यं यातयाम भवतीति।

इन ऋषिदैवतछन्दों के विन जाने जो वेद पढ़ता और दूसरे को पढ़ाता गायत्र्यादि जपता व्याहृत्यादि होमता अपने अर्थ याग करता दूसरे को ऋत्विज हो याग कराता तिस पुरुष का ब्रह्म (वेद) नेवीर्य (स्वकार्यसाधन में शक्तिहीन) यातयाम (अकिंचित्कर-निःफल) होता है॥

अनिष्टान्तरामाह। अथान्तराश्वगर्तं वापद्यते स्थाणुं वःर्हति प्रमीयते वा पापीयान्भवति। अथानन्तरं (ऋष्यादि विन जाने अध्ययन करने के अनन्तर) श्वगर्तं (अश्वों का गर्त-अशुचिस्थान-नरक) में पड़ता है। तथा अर्हति (अतीन्द्रियप्रलयमूर्ति करि) स्थाणु (वातादिकरि भानशाख द्वा शृङ्खलवृक्षयोनि) को प्राप्त होता है। तथा प्रमीयते (इस पाप से अचिर मृत्यु को पाता है)। अथ वा विप्रमीयते (अन्ध वा वधिर होता है) एष ह वै प्रप्रमायुषान्धो वा वधिरो वैति। तथा पापीयान्भवति (अतिशयेन पापाचारी होता है) पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति पापापापेनेति श्रुतेः॥ अतिशय पाप करि चाण्डालस्नेह्यादिजाति में उत्पन्न होता है इत्यर्थः॥ तथा च स्मर्यते। अविदित्वा ऋषिछन्दो देवतं योगमेव च। योऽध्यापयेज्जपेद्वापि पापीयाञ्जायते तु सः॥ ऋषिच्छन्दो देवतानि ब्राह्मणार्थं स्वराद्यपि। अविदित्वा प्रयुज्जानो मन्त्रकण्ठक उच्यत इति॥

एवं ऋष्यादि के अज्ञान में अनिष्टप्राप्त कहि कर ज्ञान से इष्टप्राप्ति कहता है। अथ विज्ञायेतानि योऽधीते त-

स्य वीर्यवदिति। ऋष्यादिदो को विशेषेण जानिकर जो वेद पढ-  
ता है तिस का वेदवीर्यवान् (बलशक्तियुक्त होता है) ॥

अर्थज्ञाने फलविशेषमाह। अथ योऽर्थविनस्य वीर्य-  
वत्तरं भवतीति। जो द्विज मन्त्रों का ऋष्यादिज्ञानवान् और अर्थ  
जानने हारा तिस का वेद अतिशयेन वीर्यवत् वेद में अर्थज्ञान  
शून्य की निन्दा और अर्थज्ञ की प्रशंसा सुनियें है तहां आखान्त-  
र्गत दो वचन यास्क ने उदाहरण किये हैं निरु० अ. ११८ स्थाणुरसं-  
भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थः। योऽर्थज्ञ इ-  
त्सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा ॥ यद्गृहीतमविज्ञा-  
तं निगदे नैव शब्ध्यते। अनागनाविव शुक्रेधो न तज्ज्वलति कर्हि  
चित् ॥

जपित्वा ह्रत्वेष्टा तत्फलेन युज्यते ॥१॥ ऋषिदेवत छ-  
न्द विनियोग अर्थ के ज्ञानपूर्वक पुरुषों को किये हुए जप होम  
इष्ट अवश्य फलदायक होते हैं। यतः वेदनविधिश्च स्मर्यते। स्व-  
रो वर्णोऽक्षरं मात्रा विनियोगोऽर्थ एव च। मन्त्र जिज्ञासमाने-  
न वेदितव्यं पदे पद इति ॥

इति सर्वानुक्रमणि भाष्ये

गिरिप्रसादरचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे प्रथमो खण्डः १  
अथ संहितापठितसर्वमन्त्रसाधारण ऋषिमाह। इषे त्वादि  
खं ब्रह्मानं विवस्वानपश्यदिति। इषे त्वा इस से आरम्भ  
करि रं ब्रह्मपर्यन्त (समस्तसंहिता) को विवस्वान् ने देखाऔ-

र स्मरण किया। आदित्यानीमानि यजूंषीति वा आहुरिति श्रुतेः॥ ततः प्रतिकर्मविभागेन ब्राह्मणानुसारेण ऋषयो वेदितव्या इति। फिरि सबों का साधारण ऋषि जानिकर सब कर्मों के विभाग करके इस कर्मका यह- इस कर्मका यह शतपथादिब्राह्मणानुसार ऋषि जानना। तत एतं परमेष्ठी प्राजापत्यो यज्ञमपश्यद्यहर्षापूर्णमासाविति श्रुतेः॥ अथ सर्वेषां दर्शपूर्णमासमन्त्राणां साधारमृषिमाह। परमेष्ठी प्राजापत्यो दर्शपूर्णमासमन्त्राणामृषि इति। यहिले अध्याय से आरम्भ करि दूसरे अध्याय की अष्टाविंशति २८ कण्डिका पर्यन्त दर्शपूर्णमास के मन्त्र हैं तिनहों का परमेष्ठी प्राजापत्य (प्राजापति से उत्पन्न परमेष्ठी संज्ञक) ऋषि हैं। और जहां ऋषिविशेष हैं जैसे पुराघ शर्ह से पश्यत् वीति होत्रं वा विश्वावसुरित्यादिकाः (पुरा कूरस्येति अघशर्हं सदृष्टा १० २८ वीति होत्रमिति विश्वावसुदृष्टा २० ४) तहां दोनों ऋषि हैं॥ दर्शपूर्णमासमन्त्राणामेव पुनरपि वैकल्पिकानृषीनाह देवा वा प्राजापत्या इति। अथवा प्राजापति के पुत्र देवता दर्शपूर्णमासमन्त्रों के ऋषि हैं। ते देवा अकामयन्तेत्युपक्रम्य त एतं हविर्यज्ञदहसुर्यहर्षापूर्णमासाविति श्रुतेः॥ तत्र प्रकृतित्वादादौ दर्शपूर्णमासमन्त्राः। जहां कृत्वाङ्गों का उपदेश करिये है वोह प्रकृति। जहां विशेषाङ्गमात्र का उपदेश है और अङ्गान्तर प्रकृति में बताए गये वोह विकृति है॥ तहां प्रकृति तीन प्रकार की है। अग्निहोत्र १ इष्टि २ और



सोम ३ इति। तहां यद्यपि कृताधान के ही दर्शपूर्णमास में अधिकार से आदि में अग्न्याधान के मन्त्र कहिने उचित थे तथापि आधान में पवमान इष्टियें करनी तिन्हें के अनन्तर आधान की असिद्धि से। और पवमान इष्टियों की दर्शपूर्णमास के विकृतत्व से सोम में भी दीक्षणीयाप्रायणीयादि में दर्शपूर्णमास के सापेक्षत्व से आदि में दर्शपूर्णमास के मन्त्र पढ़ने के लिये युक्त हैं। ते च इषे त्वादयः भगवान्चेदपुरुष आह। तत्राद्यायां कण्डिकायां पञ्चमन्त्राः॥ द्वौ अक्षरौ। तृतीयश्चतुरक्षरः॥ चतुर्थो द्विषष्ट्यक्षरः॥ पञ्चमो नवाक्षर इति॥ इषे त्वा शाखानुष्टुपिति। इषे त्वेत्यस्य यजुषः शाखादेवता दैव्यनुष्टुप्छन्दः॥ विनियोगः कल्पकारोक्त इति। विनियोगः कल्पकारोक्तो वेदितव्य इति शेषः॥ इस मन्त्र का किस कर्म में विनियोग है इस से क्या करते हैं यह कल्पकार का कहा जानना चाहिये इति शेषः कर्मानुष्ठान के समय विनियोग का जानना अत्यावश्यक है क्योंकि तिस के न जानने में दोष है। और जो कि कल्पकार महर्षि कात्यायनाचार्य ने नाना शाखागत विधिवाक्यों का संगृह करि श्रौतसूत्र निर्माण किया। तहां। पर्णशाखां छिनति शामीलीं वेषे त्व्यूर्जे त्वेति वा। छिनग्नीति वोभयोः॥ सकांक्षत्वात् संनमयामिति वीतरेः॥ इत्यादि विनियोग सूत्रों करि कहा है इस हेतु से यहां नहीं कहा। ततः इषे त्वेत्यस्य शाखा छेदने विनियोगः॥ एवमूर्जे त्वेति। ऐसे ही ऊर्जे त्वेत्यस्य शाखादेवता दैव्यनुष्टुप्छन्दः शाखाया अनुमार्जने विनियोगः॥

† यहां से आदि ने चतुर्थीध्याय के नवमे खण्ड पर्यन्त का अर्थ मन्त्र-मन्त्र की आदि में कटि कर शेष पीछे कहा जायगा

हरिः ओम्

ॐ नमो यज्ञपुरुषाय

श्री शुक्लयजुःसंहिताविवस्वदृष्टा  
ॐ पञ्चात्मकं द्विरूपं च सार्धैर्बहुरूपकम्  
स्थानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः १  
तत्रादौ

दशैर्पूज्यमासमन्त्राः परमेष्ठी प्राजापत्यदृष्टा देवदृष्टा वा

प्रथमोऽध्यायः १

प्रथमोऽनुवाकः १

इ॒ये त्वे॒र्जे त्वा वा॒यव॑स्य दे॒वो वः॑ सवि॒ता प्रार्पि॑यतु अ॒ष्टुत॑  
भा॒य क॑र्मणः॒ आप्या॑यध्वम॒घ्न्या इन्द्रा॑य भा॒गं प्र॑जावतीर॒  
न्ममी॑वा अ॒यक्ष्मा॑ मा व॒ स्तेन॑ ई॒शत॑ मा॒घशर्द॑सो ध्रु॒वा  
स्मि॒नो य॑तो स्या॒त ब॒ह्वीर्य॑ज॒मान॑स्य प॒शून्पा॑हि ॥१॥

इति संहितायां प्रथमोऽनुवाकः १

इ॒ये त्वा॑ ॥१॥ ऊ॒र्जे त्वा॑ ॥२॥ वा॒यव॑स्य ॥३॥ दे॒वो वः॑ सवि॒ता  
प्रार्पि॑यतु अ॒ष्टुत॑भा॒य क॑र्मणः॒ आप्या॑यध्वम॒घ्न्या इन्द्रा॑य भा॒गं  
प्र॑जावतीर॒न्ममी॑वा अ॒यक्ष्मा॑ मा व॒ स्तेन॑ ई॒शत॑ मा॒घशर्द॑सो ध्रु॒वा  
स्मि॒नो य॑तो स्या॒त ब॒ह्वीः ॥४॥ य॑ज॒मान॑स्य प॒शून्पा॑हि ॥५॥ १॥

इति मन्त्रपाठः

हरिः श्रोम्

ओं ई नमो भगवते यान्तवल्क्याय

राज्ञा गिरिप्रसादिन श्रीविदार्थप्रदीपके

शारवाद्याज्यग्रहान्तोऽयं वर्ण्यतेऽध्याय आदिमः॥१॥

प्रतिपदा में दर्शयाग करने की इच्छा रखता यजमान अमावास्या में प्रातःसमय का अग्निहोत्र होमिके दर्शयाग के अर्थ कात्यायन मुनिप्रणीत श्रौत्रसूत्र अध्याय २ काण्डी १ सूत्र ३ में कहे हुए म-  
मार्गे वर्चो विहवेश्वस्तु वयं त्वेधानास्तन्वं पुषेम मह्यं नम-  
न्तां प्रदिशश्चतस्रस्त्वयाध्यक्षेण पृतना जयेम इति मन्त्र में अ-  
ग्निश्रेष्ठों में समिदाधानरूप अन्वाधान करिके वत्सापाकरण क-  
रै॥ दर्शयाग में तीनि हवियें हैं। अष्ट कपालों में पाक किया हुआ अग्निदेवताकश्रोदन, इन्द्रदेवताक दधि, इन्द्रदेवताक पय इति तहां प्रतिपदा में दधि होमने के लिये तिस की निष्पत्तिके अ-  
र्थ अमावास्या की रात्रि में गौएँ दोहनी चाहियें। तिन्हों के दोह-  
ने के अर्थ प्रातः लौकिकदोहन के ऊपर अपनी माताश्रेष्ठों के साथ चरते वत्साश्रेष्ठों की तिन माताश्रेष्ठों से पलाशाशारवा करि पृथक् कर-  
ना है। तिस के अर्थ पलाशाशारवाछेदन है। गायत्री में पक्षिरूप धारण करिके जब कि सोमबल्लि का आहरण किया तब सोम-  
बल्लि का पत्र (फला) वा गायत्री का पार्ण (पक्ष) भूमिमें गिरा तिस से पलाशा हुआ यह श्रुति शतपथब्राह्मण काण्ड १ अध्या-  
य ० ब्राह्मण १ काण्डी १ तथा अध्या ०८ ब्रा ०२ का ०१० में

पलाश का प्राशस्त्य और ब्रह्मत्व कहा है तिस हेतु पलाश-  
शारवा छेदन है ॥

अथ मन्त्रः ॥ इषे त्वा । इषे त्वेति दैव्युनुष्टुप्छन्दः  
परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषिर्देवा वा प्राजापत्याः शारवादेवता य-  
लाशशारवाछेदने विनियोगः । तदुक्तं कात्या० ४.२.१ चतुर्द-  
शी कि जिस में चन्द्रमा उदय न हो वा अमावास्या में पलाश-  
वृक्ष वा शमीवृक्ष से इषे त्वेति मन्त्र वा ऊर्जे त्वेति मन्त्र से शा-  
रवाछेदन करे ॥ इति सूत्रार्थः ॥ ॥ अथ मन्त्रार्थः ॥ क्रियाप-  
दमध्याहारेण । हे शारवे वृष्टि के अर्थ तुम्हें छेदन करता हूँ (वा-  
ञ्छा की जाती है) सर्वों से धान्यनिधिति के अर्थ बोह इष्ट । श्रुति  
कारि वृष्टि कही गई चृष्ट्ये तदाह यदाहेषे त्वेति श्रुतेः शत० १.  
७.१.२ । का० ४.२.२.३ पलाशशारवा वा शमीशारवा की यहां  
विकल्पिता । तिस के छेदन में इषे त्वेर्जे त्वेति दोनों मन्त्रों का  
विकल्प है । तिन्हों में क्रियापद के आकांक्षत्व से अर्थावबोध के  
लिये छिनत्नीतिपद अध्याहर्तव्य है इत्येकः पक्षः । इषे त्वेति  
छेदनार्थो मन्त्रः । ऊर्जे त्वेति संनमनार्थः । संनमन (ऋजूकरण-  
शारवामलधूल्यादि का दूर करना यह पक्षान्तर है) अर्थात् यह  
कर्म काण्वशारवापाठाश्रयों का है परन्तु माध्यन्दिनीय पाठाश्रय  
लोग दोनों मन्त्रों से विकल्पेन शारवाछेदन करते हैं ॥ इति मन्त्रा-  
र्थः ॥ ऊर्जे त्वा । ऋषिछन्द देवताविनियोगश्च पूर्ववत् ॥ मन्त्रा-  
र्थस्तु । हे शारवे ऊर्ज (बल यद्वा प्राणन) के अर्थ तुम्हें छेदन क-

रता हूं वा संनमन करता हूं। ऊर्जति (सब मनुष्य पश्यादिकों को ब-  
ल्यति पानादि करि दृढशरीर करती। यद्वा प्राणयति (प्रकर्षण  
चेष्टा कराती। इन दोनों व्युत्पत्तिओं से वृष्टिगत जलात्मक र-  
स ऊर्ज्यब्द करि कहा। तिस रस के अर्थ तुम्हें छेदन करता हूं।  
यौ वृष्ट्यादूर्गसे जायते तस्मै तदाहेति श्रुतेः १७. १२। इन  
दोनों मन्त्रों के पाठसे अध्वर्यु दूष्यमाण अन्न और बलकर  
आज्यक्षीरादि रस को अजमान में संपादन करता है। इषे त्वो-  
र्जे त्वेत्याहेशमेवोर्जे यजमाने दधातीति श्रुतेः तैत्तिरीय ब्राह्म-  
ण काण्ड ३ प्रपाठ २ अनुवाक १॥ का० ४. २७. छे ई गोओं  
कि साथ से छेओ ई वत्साओं को पृथक् करि प्रतिवत्स को वायव स्थं-  
ति मन्त्र से शारवा करि उपस्पर्श करे। इति सूत्रार्थः॥ देवी बृहती बन्दे  
वायुदेवता। मन्त्रार्थस्तु। हे वत्साओ तुम माताओं के स-  
काश से अन्यत्र चलनहारे होओ। माताओं के साथ चलने  
से साथ समय दोह न मिलेगा यह अभिप्राय है। यद्वा वायुसा-  
दृश्य से वत्सों का वायुत्व है। जैसे पादप्रक्षालन मलमूत्रादि से  
अशुद्ध हृद् भूमि को शोषन करि वायु पवित्र करता है ऐसे  
वत्सा भी अनुलेपन भूतगोमयादिदान से भूमि को पवित्र क-  
रते हैं। अथवा मनुष्यों की जैसे अपने निवास के लिये गृह-  
निर्माण सामर्थ्य है ऐसे पशुओं की तिस के न होने निरावरण  
अन्तरिक्ष में चरने से अन्तरिक्ष ही पशुओं का देवता तिस अ-  
न्तरिक्ष का वायु अधिपति। और सौ वायु अपने अवयव ऐसे

पशुओं को पालन करता है यह पशुओं का वायुरूपत्व है। तैसे पालन के अर्थ पशुओं को वायु के अर्थ समर्पण करने के लिये वायुरूपत्व को संपादन करि वायवस्येति मन्त्र प्रवर्त हुआ। तदुक्तं निगिरिणा। वायव स्येत्याह वायुर्वाऽन्तरिक्षस्याध्यक्षोऽन्तरिक्षदेवत्याः खलुपशवो वायवऽएवेतान्परिदत्तातीति तै० ब्रा० ३० का० २० अ० १० अ०। यद्वा तृणभक्षण के अर्थ दिवस में तिस-तिस आरण्य में चरि करि सायंकाल में वायुवेग करि यजमान के घर में समागमन के अर्थ पशुओं को प्रवर्त करने के लिये वायुरूपत्व कहा गया ॥ का० ४० २० ६० १० वत्साओं की माता जे ६ गौएँ हैं तिन्हों में से एक गौ को पृथक् करिके देवा व इति मन्त्रेण शारवा करि उपस्पर्श करै। तैसा करते गोसबन्धि दधिरूप हवि इन्द्र वा महेन्द्र का होता है ॥ इति सू० ॥ देवो व इति इन्द्रदेवत्यं यजुः। हे गोओ सविता (स्वस्वव्यापार में प्रेरणोद्धार) देवः (द्योतमानः परमेश्वरः) तुम्हें प्रभूत तृणोपेत वन को प्राप्त करै। किमर्थ कि श्रेष्ठतम कर्म के अर्थ (लोक में चारि ४ प्रकार का कर्म है, अप्रशस्त प्रशस्त श्रेष्ठ और श्रेष्ठतम। लोक विरुद्ध बधबन्धचौर्यादिक अप्रशस्त ॥ १॥ लोक करि श्लाघनीयवन्धुवर्गपोषणादिक प्रशस्त ॥ २॥ स्मृत्युक्त वापीकूपतडागादिक श्रेष्ठ ॥ ३॥ वेदोक्त यज्ञरूप श्रेष्ठतम है तत्तत्क्षणं ॥ ४॥ यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्मेति श्रुतेः १०७० १०५० हे अघ्न्याः (गावः गोबध के उपपातकरूप होने से अनमार्ने योग्याः) तुम इन्द्र के अर्थ भाग (इ

न्द्र की उद्देश करि संपादयिष्यमाण हवि के हेतुरूपक्षीर) की  
 आप्यायध्वम् (समन्तात् बटाओ) सब गौशों में क्षीर करौ। तुम्हें  
 अपहरण के लिये स्तेन (चोर) समर्थ मत हूजियों। अधशंस (अ-  
 क्षणादि तीव्रपाप करि घातक व्याघ्रादि) भी तुम्हारे की हिंसक  
 मत हूजियों। कैसी हो तुम कि प्रजावतीः (बह्वपत्याः॥ अनमीवाः  
 (अमीवाः) व्याधि से नहीं है जिन्हें के ताः कृमिदुष्टत्वादिस्वल्प-  
 रोगरहिताः) अयक्ष्माः (यक्ष्मा रोगराजः प्रबलरोगरहिताः॥  
 किं च तुम अपने स्वामी यजमान के यहां बहुविधा होओ॥  
 का० ४० २० ११० अन्यागार (आहवनीयागार वा गार्हपत्यागार)  
 के पूर्वभाग में यजमानस्य पशुनिनि तिस शाखा को खुरसे॥  
 याजुषी बृहती शाखा देवत्या। हे यलाशाशाखे तू उन्नतप्रदेश में  
 स्थित हो प्रतीक्षा करती हुई यजमान के पशुओं की अरण्य में  
 चरते हुए चोर व्याघ्रादिभय से रक्षा करि। आशय यह है कि  
 शाखा करि रक्षा की हुई गौएँ निरुपद्रव पूर्वक सायं समय  
 भले प्रकार घर को लौटेंगी॥ १॥ प्रथमा कण्डिका के मन्त्र  
 पूर्ण लिखे गये आगे की कण्डिकाओं के आर्वल पर आद्य-  
 न्त के अक्षरों की समस्या से लिखे जावेंगे॥ यथा॥ इषे त्वा-  
 इ-त्वा। ऊर्जे त्वा- ऊ-त्वा। वायव स्थ- वा-स्थ। दे-ह्वीः॥ य-  
 हि॥ और तहां मन्त्रों के पृथक् करने के लिये अकारादि अक्षर दि-  
 ये जावेंगे। यथा॥ इ-त्वा। अ० क-त्वा। इ० वा-स्थ। उ० दे-ह्वीः। ऋ०  
 य-हि। ल०॥ १॥ ॥ इति श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये प्रथमोऽनुवाकः १





धाम (उत्तम बहुक्षीरधारण सामर्थ्यरूपतेज) से हे उखे तू हटा हो  
तेरे हट होने से क्षीर न गिरेगा नहो कि तेरे भग्न होने से छिद्र क-  
रि दुग्ध गिरे। किं च हे उखे कुटिला (टेटी) मत हो (जो उखा कुटिला  
होवे तो टेटे मुख होने से तत्स्थ क्षीर गिरे) इस कारण क्षीरधारण के  
लिये दारुण और अकौटिल्य प्रार्थना किया। किं च तेरा यज्ञपति  
(सम्बन्धी-यजमान) कुटिल नहो क्यों कि त्वन्निष्ठक्षीरस्कन्दन  
करि अनुष्ठानविघ्न में ही यजमान का कौटिल्य है और सो तेरे  
दारुण और अकौटिल्य से न होगा यह प्रार्थनी है ॥ २ ॥

वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सह  
स्रधारम् । देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण  
शतधारेण सुष्टु कामधुक्षः ॥ ३ ॥ +

का० ४. २. २१. वसोः पवित्रमिति हाँडी के मुख पर प्रागग्र वा  
उत्तराग्र कुशाओं का पवित्रा शारवा से खोलि वा शारवावद्ध  
ही स्थापन करें ॥ वायुदेवत्यं यजुः ॥ हे शारवापवित्र वसु (इन्द्र-  
देवता के निवास हेतु यय) का शोधक (पवित्र) तू है। पवित्रा करि  
ढकने से दुग्ध सहित स्थाली में गिरते नृणपर्णादिकों के बध्यमा-  
नत्व से पवित्रा का क्षीरशोधकत्व है। कैसा पवित्रा कि शतसंख्या  
धारण जिसमें। तथा सहस्र धारण। सूक्ष्मों पवित्र छिद्रों से स्था-  
ली में गिरती क्षीरधाराओं के शतसहस्रसंख्याक होने से शोध-  
कत्व है वसोः पवित्रमिति द्विरुक्तिः + ॥ का० ४. २. २३. देवस्त्वेति  
स्थाली में आसिच्यमान यय विषे अध्वर्यु जपे ॥ साम्नी त्रिष्टुप्

+ व-म। अ० दे-चा। इ०। का-क्षः। उ० ॥ ३ ॥

+ अ० अ० से भूयासमर्थं मन्यते निरु १००४२.

पयोदेवत्या। दोहन से ऊर्ध्व स्थाली में स्थितमान हेदुग्ध सविता  
(अथैक) देव पूर्वोक्तरीति से वसु के शतधार पवित्रा करि तुम्हें शोध्ये।  
कैसे पवित्रा कि भले प्रकार पवित्र करता ॥ का० ४० २० २४ एक  
गौ के दुहने में दोग्धा को अध्वर्यु पूछे कामधुक्ष इति ॥ देवी बृ-  
हती प्रश्नदेवत्या। हे दोग्धः विद्यमान गौश्लो के मध्य कौनसी  
दुही ॥ ३॥

सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा सा विश्वधायाः। इ-  
न्द्रस्यत्वा भागर्हसोमेनातेनचि विष्णो हव्यर्ह-  
रक्ष ॥ ४॥ †

का० ४० २० २५ पूर्वोक्तप्रश्न के उत्तर में अमुकी गौ यह दोग्धा  
करि कहते सा विश्वायुरिति मन्त्र करि दोग्धा प्रति अध्वर्यु बो-  
ले ॥ जीणि गोदेवत्यानि १० देवी बृहती २० ३० देवी पङ्क्त्यो। जो गौ  
तू ने दुही और मैंने पूछी वोह विश्वायु शब्द करि जानना।  
विश्वायु (यजमान की सम्पूर्ण आयु की देने वाली है ॥ का० ४० २०  
२६० जैसे पहिली गौ पूछी ऐसे ही दूसरी तीसरी गौश्लो को दोहने  
से ऊपर में कामधुक्ष इति मन्त्र करि पूछे। और दोग्धा करि अ-  
मुकी यह उत्तर देते सा विश्वकर्मा सा विश्वधाया इन मन्त्रों से क-  
म करि आशिष कहें ॥ जो दूसरी गौ तुरु से पूछी वोह विश्व-  
कर्मा (यजमान को समस्त कर्मफल की देने वाली है ॥ जो ती-  
सरी तुरु से पूछी वोह विश्वधायाः (सब देवताओं की क्षीरदध्या-  
दि हवि के दान करि पुष्ट करने वाली वा समस्त इन्द्र देवता-

ओं को क्षीरादि हव्य पिलाने हारी हैं ॥ का० ४० २० २३० ओंटे दूध को अग्नि से उतारि मन्दोष्ण (सुहाते) में दधि जमाने के लिये प्रातः काल के होमावसिष्ठ दधि करि आतञ्चन करें (जामन-सहेजा दे ॥ यजुर्जंगती इन्द्रदेवत्या । हे दुग्ध इन्द्र के भाग को तु-  
 में सोमवल्लीरस करि दधि के लिये आतञ्चन (कठिन) करता हूं । यद्यपि यहां आतञ्चनहेतु दधिशेष है तथापि भावना करि-  
 तिस का सोमत्व सम्पादन करिये हैं । जैसे कोई पुरुष बन्धुत्व करि चाहा बन्धु होता है और प्रातिकूल्य करि चाहा शत्रु हो-  
 ता है । तदुक्तं वशिष्ठेन । बन्धुत्वे भावितो बन्धुः परत्वे भावितः परः । विषामृतदृशेवेह स्थितिर्भावनिबन्धिनीति । अथवा भोज्य-  
 पदार्थ विषत्व करि भावना किया वान्ति को करता है । अमृत-  
 त्व करि भावित जीर्ण हो बलहेतु होता है । तैसे यहां दधिशेष का भावना करिके सोमत्व है ॥ का० ४० २० ३४० विष्णो हव्यमिति  
 दोहस्थाली को जलसहिति अमृन्मयपात्र करि ठकें ॥ यजुर्गय-  
 त्री पयदेवत्या । हे विष्णो इस हवि (क्षीर) को रक्षा करि । सर्वत्र  
 सृजन पालन और संहार में ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः अभिमानिदे-  
 वता हैं इस हेतु विष्णु को सम्बोधन करि हवि की रक्षा प्रार्थना  
 करिये हैं ॥ ४॥

अ० ३० अग्नै ब्रतपते ब्रतं चरिष्यामि तच्छ्रेयं तन्मे  
 राध्यताम् । इदमुहमनृतात्सत्यमुपैमि ॥ ५॥ +

का० २० १० ११० यजमान स्फुल्ले गार्हपत्य दक्षिणाग्निओं के अ-

न्तराल में चलिकर आहवनीय के पश्चात् समीप में पूर्वाभिमुख  
ख खडे हो आहवनीय को देवते जल को दक्षिण हस्त से स्पर्श  
करि अग्ने व्रतपते इस मन्त्र अथवा इदमहम् इस मन्त्र से स-  
त्यवदनादि नियमों को अङ्गी करै ॥ अग्ने व्रतपते आर्ची उषिण-  
क इदमहम् सामगायत्री हे अग्निदेवत्ये । हे व्रतपते (अनुष्ठेय-  
कर्म के पालक) हे अग्ने तेरी अनुज्ञा करि कर्म को करूंगा ।  
तिस कर्म करने को समर्थ होऊँ । तेरे प्रसाद से । सो मेरा कर्म  
निर्विघ्न होके फलपर्यन्त सिद्ध हो ॥ इदमहम् । में यजमान इ-  
स अनृत (मनुष्यजन्मात्मक) से निकलि कर सत्य (देवताश-  
रीर) को प्राप्त होता हूँ ॥ ॥ शीघ्रविनाशित्व से मनुष्यजन्म  
अनृत है जैसे स्वप्नगजादिक बोधमा से निवर्त हुए अनृत क-  
हिलाते हैं । बहुकालस्थायित्व से देवजन्म सत्य है जैसे जाग-  
रण गजादयः ५ । यद्वा लोक प्रसिद्धे सत्यानृते ग्राह्ये । नानृतं व-  
देदिति (नहीं कूँठ बोलें) कर्म में कूँठ बोलने के निषेध से । कूँठ  
बोलने से निकल करि सत्य बोलने को प्राप्त होता हूँ । इस  
हेतु यह सत्यवदन कमाङ्ग होने से कर्म काल में पालनी-  
य है ॥ ५ ॥

कत्वा युनक्ति स त्वा युनक्ति कस्मै त्वा युनक्ति  
तस्मै त्वा युनक्ति । कर्मणे वां वेषाय वाम् ॥ ६ ॥

एवं सत्यवदनादिव्रत को अङ्गी करि ब्रह्मा को वरण करि के अ-  
था प्राणयन करै ॥ का० २०३०२ ब्रह्मन्पः प्रणोष्या यह य-

१ सत्यमनुष्ठीयमान कर्मरूपिण प्रत्यक्षमिति मन्वान इदमिति विशिष्टम् ॥

५ इदमहमन्तरात्सत्यमुपैमीति तन्मनुष्येभ्यो देवानुपावर्तत इति १११०४ शतश्रुतेः ॥

अग्निर्वै देवानां व्रतपतिरिति शत० १०१०१

+ क-क्ति।अ०क-म।दे०॥ ६॥

जमान ब्रह्मा को पूछता है ॥ का० २०  
 ध्वयत्वं नाकस्य पृष्ठे यजमानोऽस्तु १०८ प्रणय यज्ञं देवता च  
 तां यत्र लोकस्तत्रेयं यज्ञं यजमानं च धी सप्तऋषीणां सुक-  
 त्या पठिकर ओम् प्रणय यह ऊँचे स्वर से ॥ यह धीरे-धीरे ब्र-  
 ध्वर्यु सुनें ॥ का २० ३० ३० फिरि अध्वर्यु चमस को प्रज्ञा करे कि जैसे अ-  
 य से उत्तरदिशा में वेदि के बाहिर दर्भों पर प्रणय लेकर आहवनी-  
 स्त्वा पुनर्होति मन्त्र करि सम्प्रति (सीधेसे) स्थापना चमस को द-  
 त्रिष्टुप् प्रजापतिदेवत्या । यहां मन्त्र को प्रयुक्त करता पुन करे ॥ साम्नी  
 र्यु यज्ञारम्भकर्म में अपना कर्तृत्व त्यागि कर प्रजापति देवता अध-  
 र्जकर्तृत्व प्रश्नोत्तररूप मन्त्रवाक्यों से प्रतिपादन करता प्रति का य-  
 णीता (जल) के धारक है पात्र तुम्हें कौन पुरुष आहवनीय है । प्र-  
 उत्तरभाग में स्थापन करता है इति प्रश्नः । सब वेदों में जगन्नि-  
 वाहकत्व से प्रसिद्ध जो प्रजापति है सोही परमेश्वर है पात्र तु-  
 में स्थापन करता है इति उत्तरम् । पुनरपि किस प्रयोजन के  
 लिये तुम्हें स्था० इति प्रश्नः । तिस प्रजापति के प्रीत्यर्थ तुम्हें  
 स्था० इत्युत्तरम् ॥ परित्तरण करि दो-दो पात्रों को रखि श्रू-  
 र्ध और अग्निहोत्रहवणी को लेवें । का० २० ३० १०० कर्मणो वामि-  
 ति श्रूर्पाग्निहोत्रहवणी का अध्वर्यु आदान करे ॥ प्राजापत्या  
 गायत्री सुक्श्रूर्पा देवते । हे अग्निहोत्रहवणी हे श्रूर्य तुम दो-  
 नों को कर्म के अर्थ में ग्रहण करता हूं इति शेषः । और सूचित  
 कर्म के अर्थ तुम दोनों को मैं ग्रहण करता हूं ॥ शकट में अ-

† सर्वे कर्मणि परमेश्वर प्रीत्यर्थमनुष्ठेयानीति भगवद्गीतास्वर्जुन प्रति भगवतीकृतम् अ० गी० ४०  
 २४ ब्रह्मार्पणं ब्रह्मविद्ब्रह्माग्निं ब्रह्मणाहुतम् । ब्रह्मेव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥ ४० ॥  
 यत्करोषि यदश्नासि यजुर्होषि ददासि यत् । यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्थम् ॥ १८० ॥ ४६  
 सर्वे कर्मोपपि सदा कुर्वन्ते मध्यमाश्रयः । मन्त्रसाहायवाप्नोति शम्भतपदमव्ययम् ॥

वस्थित ब्रीहियों का हवि के अर्थ पृथक् करना प्रोक्षण के अर्थ जल धारण करना इत्यादिक अग्निहोत्रहवणि के व्यापार हैं और ब्रीहियों का निर्वोप (फटकने) के लिये धारण उलूरवल में डालना फिर निकालना इत्यादि श्रृष के व्यापार हैं ॥ ६ ॥

प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टा अरातयः निष्टुष्टं रक्षो  
निष्टुष्टा अरातयः । उर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥ ७ ॥ +

का० २० ३० ११० प्रत्युष्टं वा निष्टुष्टमिति अग्निहोत्रहवणि और श्रृष का गार्हपत्य में प्रतपन है ॥ आसुरी वृहत्यो द्वे रक्षसे रक्षसजाति प्रत्येक जलाया अर्थात् इस अग्निहोत्रहवणि और श्रृष में स्थित रक्षसलोग जलाये । और अरातयः (हवि वा दक्षिणादान के प्रतिबन्धकलोग) भी जलाये अर्थात् अन्यथा यज्ञसाधन नहीं है ॥ श्रृषादि में निगूढ रक्षस निःशेष करि तप्त हुए । और अरातयः भी निष्टुष्ट हुए ॥ का० २० ३० १२० उर्वन्तरिक्षमिति शकट (गाड़ा) छकडा प्रति जावे ॥ प्राजापत्या गायत्री अक्षरक्षोभदेवत्या सर्वत्रः । विस्तीर्ण अवकाश को अनुसरण करि चलता हूँ । आशय यह है कि चलते हुए पुरुष के पार्श्वस्थित रक्षस इस मन्त्र से निकाले जाते हैं ॥ ७ ॥

धूरसि धूर्व धूर्वनं धूर्व तं योऽस्मान्धूर्वति तं  
धूर्व यं वयं धूर्वामः । देवानामसि वह्नितमृष्टं स  
स्त्रितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमम् ॥ ८ ॥ +

का० २० ३० १२० १३० गार्हपत्य के पश्चात् स्थित ब्रीहियुक्तसर्वा-

+ प्र-यः ॥ ७० ॥ ने-यः ॥ ७० ॥ उ-मि ॥ ७० ॥ ७० ॥

+ धू-मः ॥ ७० ॥ दे-तः ॥ ७० ॥ वि-मः ॥ ७० ॥ उ-यः ॥ ७० ॥ अ-क्षः ॥ ७० ॥ ल-यः ॥ ७० ॥ अ-यः ॥ ७० ॥ ७० ॥

१२ अतिशयेन ब्रीहि रूप हवि का प्रापक ।  
नथा अतिशयेन शुद्ध वा दृढता के अर्थ चर्मादि से अतिशयेन वे-  
ष्टित । अतिशयेन ब्रीहिओं से पूरित । देवताओं का अतिशयेन  
प्यार । देवताओं का अतिशयेन आह्वान करनेहार । ब्रीहिओं से पू-  
र्ण शकट को देखि देवता आह्वान करते ही शीघ्र आते हैं ॥८॥

झोपेत शकट के धुर (बलीवर्द वहन योग्य प्रदेश) को धूरीति म-  
न्त्र करि स्पर्श करें ॥ धूर्देवत्यं यजुः । ब्रीहिरूप हवि के धारक शक-  
ट के दोनों बलीवर्दों के (गाता) वहनप्रदेशों में कोइ हिंसक अ-  
ग्नि शास्त्रदृष्ट है तिसै प्रार्थना करिये है । हे बन्हे तू धूः (हिंसक) है ।  
जो कि धूः है इस हेतु हिंसा करते पापी को विनाश करि । किं च जो  
राक्षसादि यागविघ्न करि हमारी हिंसा करने को उद्युक्त है तिसै  
नाश करि और जिस आलस्यादिरूपवैरि को हम अनुष्ठान कर-  
नेहारे हिंसा करने को उद्दिष्ट हैं तिसै भी विनाश । शकटस्थिता-  
ग्न्यतिक्रमणनिमित्त अपराध दूर करने को अग्न्याधारभूता श-  
कट की धूः इस मन्त्र करि स्पर्श करिये है ॥ का० २. ३. १४. देवा-  
नामित्यादि हार्षीदित्यन्त मन्त्र करि शकट के दीर्घकाष्ठ ईषाति-  
सके अग्र का भूमिस्पर्श नही इस लिये तिसके आधारत्व क-  
रि स्थापित उपस्तम्भनकाष्ठ के पश्चाद्भाग में तिस ईषा ( )  
को स्पर्श करें ॥ ब्राह्मनुष्ठु शकटदेवत्या । हे शकट तू देवता-  
ओं का सम्बन्धि है । कैसा कि अतिशयेन ब्रीहिरूप हवि का प्रापक ।  
नथा अतिशयेन शुद्ध वा दृढता के अर्थ चर्मादि से अतिशयेन वे-  
ष्टित । अतिशयेन ब्रीहिओं से पूरित । देवताओं का अतिशयेन  
प्यार । देवताओं का अतिशयेन आह्वान करनेहार । ब्रीहिओं से पू-  
र्ण शकट को देखि देवता आह्वान करते ही शीघ्र आते हैं ॥८॥

अहुतमसि हविर्धानं दृढह्रस्व मा ह्वामी ते यज्ञ-  
पतिह्वामीन् । विष्णुस्त्वा क्रमतामुरु वातायाप-

हृत् रक्षो यद्धन्ताम्यञ्च ॥४॥+

पूर्वमन्त्रशेष ॥ अद्भुत (अकुटिल) है अर्थात् आरोहण में भङ्ग होने की भय नहीं है। ब्रीहिरूप हवि का धारक पोषक है। इस हेतु दृढ ह्रस्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्हवीषीदिति पूर्ववद्व्यारव्येम् काण्डीय ॥ का० २३१५ पीछे फिरिके विष्णुस्त्वेति दक्षिण चक्र (पहिया) पर चढ़े ॥ यजुर्गायत्री शकटदेवत्या। हे शकट विष्णु (व्यापक-यज्ञ) तुम्हें चरण उठाकर चढ़े भाव यह है कि मैं चढ़ने को समर्थ नहीं हूँ ॥ का० २३१६ उरु बातायेति हवियों (शकट में भरे हुए धान्य वा यवों) को देखे ॥ देवीपङ्क्तिर्हविष्याः ॥ हे शकट अपने अन्तर्वर्ति ब्रीहिओं में वायुसंचार कं अर्थ विस्तीर्ण हो। अर्थात् शकट स्थित ब्रीहिओं के तृणदिकों करि आच्छादित होने से संकोच में वायुप्रवेशन होने से आच्छादन को दूर करि जैसे वायु प्रवेश करे तैसे संकोच को त्यागि। वायुरूप प्राणप्रवेश से मन्त्र करि हवि को संप्राण करिये है। किं च वायुप्रवेशरहित सब वस्तु वरुणदेवत्य होती है। और वरुण बन्धकारित्व से यज्ञनिरोधक तिस की निवृत्त्यर्थ यह मन्त्र है ॥ का० २३१७ १८ अपहतमिति ब्रीहिओं से अन्यत्र तृणदिक जो हों तिन्हें निकाले और तृणदिकों के अभाव में ब्रीहिओं को ही स्पर्श करे ॥ यजुर्गायत्री राक्षसम्। राक्षस (यज्ञविधातक-तृणदिक) निकाले ॥ का० २३१८ यच्चन्तामिति पञ्चाङ्गुलियुक्त हस्त करि ब्रीहिओं का ग्रहण करे ॥ देवीपङ्क्तिर्हविष्याः ॥ पञ्चसंख्याका अङ्गुलियें ब्रीहि

+ पूर्व कण्डिकाया मन्त्राण्युक्तानि



रूप हवि को ग्रहण करें ॥४॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूषणो  
हस्ताभ्याम् । अग्नये जुष्टं गृह्णाम्यग्नीषोमीभ्यां  
जुष्टं गृह्णामि ॥१०॥

का० २३०-२२० देवस्य त्वेति अग्निहोत्रहवणि में तीनि मुष्टि  
मन्त्रपूर्वक चौथी चुपके से डालें एवं अग्नीषोमीय को यथा  
देवताओं को ॥ देवस्य त्वा प्राजापत्या बृहती सविरुदेवत्या  
सर्वत्र । अग्नये जुष्टम् प्राजापत्या गायत्री लिङ्गोक्तदेवत्या । अ-  
ग्नीषोमाभ्याम् याजुषी पङ्क्तिः लिङ्गोक्तदेवत्या । हे हविः सविता  
देवता का प्रेरित में अग्नि के अर्थ तुम्हारे को ग्रहण करता  
हूँ । और अग्नीषोम व्यासक्तदेवताओं के अर्थ तुम्हारे को ग्रहण कर-  
ना । किन्हीं करि कि अश्विनीकुमारों के बाहुओं (अंस मणि बन्ध के  
मध्यभाग दण्डाकार) और पूषा के हस्तों (पञ्चाङ्गुलियुक्त अ-  
ग्रभाग) करि । क्योंकि अश्विनीकुमार देवताओं के अध्वर्यु हैं  
और पूषा देवताओं का भागधुक इस हेतु ग्रहणसाधन में अ-  
पनी बाहुओं प्रति अश्विनीकुमार के बाहुओं की भावना कर-  
ना और हस्तों में पूषा के हस्तों की । अर्थात् सर्वात्मक अग्नि  
के हवि को तादृश मनुष्य कैसे ग्रहण करने को समर्थ है  
इसलिये सविता से अनुज्ञात अश्विनीकुमारों के बाहुओं पूषा  
के हाथों से ग्रहण करता हूँ । किं च सत्यं देवा अनृतं मनुष्या  
इति १०१२१७ श्रुतेः देवताओं के सत्यरूपत्व से तिन्हीं के

स्मरणपूर्वक हवि को ग्रहण करना फलपर्यवसायित्व से सत्य होता है। और देवतास्मरण के अभाव में मनुष्यों के अनृतरूपत्व से सो किया अनुष्ठान निःफलत्व से अनृत होता है यह देवतास्मरण का अभिप्राय है। हवि ग्रहण करते अध्वर्यु को देवता सेवन करते हैं कि मेरा नाम ग्रहण करेगा। विन नाम लिये हवि ग्रहण करते में तिन्हें का कलह होवे यह कि इससे मेरे अर्थलिया। तिस कलह के निवृत्त्यर्थ अग्नये जुष्टम् अग्नीषोमाभ्यां जुष्टम् इस देवतानिर्देशपूर्वक हविर्यग्रहण है इत्यभिप्रायः ॥१०॥

भूताय त्वानारातये स्वरभिविरव्येषं दृढं हन्तां दुर्या  
पृथिव्यामुर्वन्तरिक्षमन्वेमि पृथिव्यास्त्वानाभौ साद  
याम्यदित्या उपस्थेऽग्ने हव्यर्धरक्ष ॥१२॥

का० २३२३ भूतायत्वेति शकट में जो परिशिष्ट हवि तिसें स्पर्श  
करे ॥ प्राजापत्या गायत्री हविदेवत्या ॥ हे शकटावस्थित ब्रीहिशेष  
भूत (भुवन) यागान्तर ब्राह्मणभोजन और फिरि भी सद्भाव  
के अर्थ तुमैं शेष छोड़ना हूं इति शेषः । कुछ अगति (अदान)  
के अर्थ नहीं ॥ का० २३२४ स्वरिति पूर्वाभिसुख हो यज्ञभूमि को देखे  
यनुर्गायत्री सूर्यदेवत्या । में स्वः (यज्ञ+) को देखता हूं ॥ दृष्टं ह  
न्तामिति शकट से उतरे ॥ प्राजापत्या गायत्री गृहाः देवताः । पृ  
थिवी में वर्तमानाः दुर्योः (गृहाः) दृढाः हैं । हवि लेकर उतरने  
अध्वर्यु के भार करि गृहक्षोम की सम्भावना है सो इस मन्त्र  
से दूर करिये है ॥ का० २३२६ उर्वन्तरिक्षमिति उत्तरदेश प्र

+ यमः वे स्वर्गदेवाः सूर्य इति १०९२२३३ भूमिः।

ति चले ॥ व्याख्यातम् काण्डी ७ ॥ का० २. ३. २७. गार्हपत्य वा  
आहवनीय के पश्चात् कि जिस में पाक करे तहा शूर्पस्थ हवि-  
यों को पृथिव्यास्त्वेति स्थापन करे ॥ साम्नी पङ्क्तिः हविदेवत्या। हे  
हविः पृथिवि के नाभि (मध्य) में तुम्हें स्थापन करता हूँ। जैसे सो-  
ते हुए बालक पुत्र को माता अपनी गोदी में स्थापन करती है ऐ-  
से इस हवि को अदिति (अखण्डता-पृथिवी) के अङ्क में स्थाप-  
न करता हूँ। हे अग्ने अपने समीप में इस स्थापित हव्य को तू  
रक्षा करि। पुत्र ऐसे सोते को बाधकों से पालि ॥ ११ ॥

अ० ४. पवित्रे स्थो वैष्णव्यो सवितुर्वः प्रसवः उत्पुनाम्य-  
छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। देवीरापोऽ-  
अग्ने गुवोऽअग्ने पुवोऽग्रं दुममद्य यज्ञं नयता-  
ग्रे यज्ञपतिर्दं सुधातुं यज्ञपतिं देवयुवम् ॥ १२ ॥ +

का० २. ३. ३२. दो वा तीन कुशा के अन्तर्गर्भ पत्र साग्र पवि-  
त्रे स्थ इति क्षुरिकास्थानीय कुशाओं से छेदें ॥ देवी जगती  
लिङ्गोक्त देवत्या। हे पवित्रे (शोधके कुशाद्वयरूपे) तुम वैष्ण-  
व्यो (यज्ञसम्बन्धिनी +) हो ॥ का० २. ३. ३३. हविग्रहण में ज-  
ल करि तिन्हों से उत्पवन करे सवितुर्व इति ॥ प्राजापत्याय-  
ङ्किरापो देवता। सबों के प्रेरक की आज्ञा से हे जल तुम्हें उ-  
त्पवन करता हूँ किस करि कि अछिद्र पवित्र (शोधक वायु-  
रूप) करि के। सूर्य की रश्मियों करिके उत्पवन करता हूँ।  
वायु और सूर्य रश्मियों का पाद प्रक्षालनादि करि उपहतभू-

+ यज्ञो वै विष्णुपतिर्यस्य इति १. १.  
३. १. श्रुतिः ॥

+ प-व्यो। प्र०। स-भिः। द०। दे-ये। उ०। प्रो-स्थ। अ०। अ-मि। लु०। आ०। दे-मि। ई०॥ १२। १३॥  
३० यो वा अयं पवत एषोऽछिद्रं पवित्रमिति १. १. ३. ६. श्रुतिः ॥

मिका शुद्धि हेतुत्व प्रसिद्ध है ॥ का० २० ३० ३५० उत्पूता जल  
करि पूरिता अग्निहोत्रहवणि की सव्यहस्त में स्थापन करिके  
देवीराप इति दक्षिणहस्त करि ऊपर को चलावै ॥ देवीराप इ-  
त्यारभ्य वृत्रतूर्य इत्यन्तस्य यजुषः आपो देवता । हे देवीः (द्यो-  
तन्मतिमाः) आपः तुम आज के दिन में इस प्रवर्तमान यज्ञ  
को अग्ने नयतः (निर्विघ्न समाप्त करौ) । कैसी हो जल कि पुरतः  
निम्न देश प्रति गमनशीलाः । तथा अग्ने पुवः (जहां पूर्वभाग में  
चलती हो तहां अपहृतिनिवारण करिके शोधनशीलाः) । य-  
द्वा अग्ने पुवः (प्रथम सोमरस की पान करती हो) । किं च यज्ञप-  
ति (यजमान) को फलभोग के अर्थ प्रेरो कैसे यजमान कि भ-  
ले प्रकार से दक्षिणादानादि करि यज्ञ को पुष्ट करता तिस यज्ञ  
के पालक को तथा देवयुवम् (देवताओं को) यज्ञादि करि मि-  
श्री करते वा चाहते को ॥ १२॥

युष्मा इन्द्रो वृणीत वृत्रतूर्ये यूयमिन्द्रमवृणीध्वं  
वृत्रतूर्ये प्रोक्षितास्थः अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षाम्यग्नी-  
षोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि देव्याय कर्मणे शुभ-  
ध्वं देवयज्याये यदो शुद्धाः पराजघुरिदं वस्तु  
क्षुन्धामि ॥ १३॥ + पूर्वकण्डिकायां मन्त्राणि

पूर्वमन्त्रशेषः । हे आपः इन्द्रो देवः वृत्रबधनिमित्तभूत में  
तुम्हें अपने सहाय होने को प्रार्थना करता हुआ और तुम्हीं  
उसके सहायक हुए ॥ का० २० ३० ३६० प्रोक्षिता स्थिति तिन्हों का

हाथ से प्रोक्षण करें ॥ देवी बृहती आपो देवता । हे आपः तुम प्रोक्षिता हो । अ-  
संस्कृता अन्यसंस्कारक्षमा नहीं होती ॥ का० २. ३. ३७. ३८. ह-  
वि को अग्नयेत्वा. अग्नीषोमाभ्यां त्वा. और यथा देवत अन्य-  
हवियों को प्रोक्षण करें ॥ हे लिङ्गोक्ते याजुषी बृहती. याजुषी त्रि-  
ष्टुप् । हे हवि अग्नि के अर्थ तुम्हारे को प्रोक्षण करता हूँ ॥ अ-  
ग्नीषोम ॥ का० २. ३. ३६. कृष्णाजिनो लूरवत्सादि पात्रों को देव्या-  
येति प्रोक्षण करें ॥ पात्रदेवत्यं यजुः । हे यज्ञपात्रओ तुम शुद्ध  
होओ किमर्थम् कि देव्य (देवतासम्बन्धि) कर्म के अर्थ । तदेव क-  
र्म विशिष्यते देवयज्या (देवसम्बन्धिनि यागक्रिया दर्शदि-  
का) के अर्थ किं च नीचजाति तक्षादिकों ने तुम्हारे जिस अ-  
ङ्ग को पीड़ा दीई (छेदनतक्षणादिकाल में अपने अशुद्ध हा-  
थों से स्पर्श किया । तिस तुम्हारे अङ्ग को प्रोक्षण करिके शुद्ध  
करता हूँ ॥ १३॥

अ० ५. शर्मास्यवधूतर्हं रक्षोऽवधूता आरोतयोऽदित्यस्त्वग-  
सि प्रति त्वादितिर्वेतु । अद्रिसि बानस्यत्योग्रावांसि ।  
पृथुबुध्नः प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेतु ॥ १४॥ †

का० २. ४. १. शर्मासीति कृष्णाजिन को हाथ से ग्रहण करें ॥ दे-  
व्यनुष्टुप् । कृष्णाजिनदेवत्या । हे कृष्णाजिन (काले हिरण के च-  
र्म) तू उलूखल के धारणार्थ शर्म (सुरवहेतु) है + ॥ का० २. ४. २. -  
पात्रों से परे कृष्णाजिन को ढाँड़े अवधूतमिति ॥ आसुर्यनुष्टुप्  
राक्षसम् । कृष्णाजिन गुप्त राक्षस ढाँड़ने से भूमि में गिराये ऐसे

† श-सि । अ० ५-यः । इ० अ-तु । उ० अ-त्य ॥ क० । ग्रा-तु । लृ० ॥ १४॥

† अजिनस्य चर्ममिति भानुषे नामशर्ममिति देव नाम ।

अरातयः भी गिरये ॥ का० २४०३० अदित्यास्त्वगिति कृष्णाजि-  
न की दैनों हाथों से प्रत्यग्गीव विछावै ॥ आसुर्यनुष्टुप् कृष्णा-  
जिनम् । हे कृष्णाजिन तू अदिति (भूमिदेवता) की त्वग्रूप है  
तिस हेतु भूमि तुम्हें जानें कि यह मेरी त्वचा है ॥ का० २४०४०  
५० वामहस्त से न छूटे कृष्णाजिन पर दक्षिणहस्त से अदिरसि  
अथवा ग्रावासि इति उलूरवल को स्थापन करें । विकल्पितमन्त्रों  
में प्रतित्वेति शेष जोड़ें ॥ हे उलूलदेवत्ये यजुरनुष्टुप् आसुरी  
गायत्री । हे उलूरवल यद्यपि तू दारुमय है तथापि दृढत्व से पाष्पा-  
ण है । कैसा कि पृथुबुधः (मुसलघातोपद्रव से चाञ्चल्यरहित-  
स्थूलमूलः) हे उलूरवल तैसा तू ग्रावा (दार्येन पाषाणसदृश)  
है । नीचे विछाई हुई कृष्णाजिनरूपा भूमि की जो त्वचा है सो  
तुम्हें अपना करिके जानें ॥ १४ ॥

अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनं देववीतये त्वा गृ-  
हामि बृहद्वासि वानस्पत्यः स इदं देवेभ्यो  
हविः शमीषु सुशमि शमीषु । हविं हृदेहि हवि-  
ं हृदेहि ॥ १५ ॥ †

का० २४०६० अग्नेस्तनूरिति ओरवली में छरने केलिये हवि डा-  
लें ॥ आर्ची उषाकू हविदेवत्या । हे हविः तू आहवनीयाग्निका  
शरीर है । जो कि अग्नि डालते ही हवि अग्नि हो जाता है इस  
कारण हवि अग्नि का शरीर है । कैसा हवि कि यजमान की बा-  
णी का खोलने वाला । अथा प्रणयनकाल में खोलने वाला अ-

† अ-मि।अ०।३०-त्यः।६०।स-ष।उ०।ह-हि।अ०॥१५॥

पुरं यज्ञो देवेषु तृष्टः कृष्णामृगो भूत्वागमत्तदा देवा ज्ञात्वा नदीयां त्वचमुत्क्षिप्य जग-  
द्भस्तस्माच्चर्ममसि स्तरणमित्यभिप्रायः श्रुतावाग्मातः १०१४११।

पां प्रणयनकाल में मौनहुई यजमानवाणी का हवि आवपनकाल में विसर्ग होता है। तिस हेतु हवि वाणी का खोलने वाला है। इस हेतु देवताओं की तृप्ति के अर्थ तुम्हें ग्रहण करना (उलूखल में डालता) हूँ॥ का० २४० ११० बृहद्भावेति मुसल को ग्रहण करें॥ आसुरी जगती मुसल दे०। हे मुसल तू यद्यपि दानरुमय है तथापि दृढता करिके पाषाण सदृश है। तथा दीर्घत्व करि बड़ा है॥ का० २४० १२० स इदमिति मुसल को उलूखल में स्थापन करें॥ मुसलदेवत्वं यजुः। हे मुसल तू देवताओं (अग्न्यादिकों) के उपकारार्थ इस हवि (व्रीहिरूप) को शमन (भक्षणविरोधि) तुषों के दूर करने में शान्त) करि। तस्मैव पदस्यव्याख्यानम्। भले प्रकार शान्त जैसे तैसे शमन करि। द्विविधा शान्ति है वाह्यतुषापनचनाद्या सो पहिले अवयात से होती है। और अन्तः स्थित मालिन्य के अपनयन से दूसरी फलीकरण करिके होती है। तिस द्विविध तण्डुलसंस्कार को करि इत्यर्थः॥ का० २४० १३० हविष्कृदेहंति हवि कूटने वाली (बाले) यजमान की पत्नी वा अग्नीध को अध्वर्यु तीन बार कहि कर बुलावै॥ यजुः पङ्क्तिः अधिदैवतं वागधियज्ञं पत्नीदे०। हे हविष्कृत् (हवि करनेहारी, हारे) यहां आ। तीन बार कहे अर्थ को देवता मानते हैं इस हेतु तीन बार आह्वान है॥ १५॥

कुक्कुटोसि मधुजिह्व इषमूर्जमावद त्वया वयं  
हं संघातर्हं संघातं जेष्य वर्षवृद्धमसि प्रति





मनुगजा का एक वृषभ था तिस में असुरघ्नीवाणी स्थित हो शब्द करती थी तिसै सुन करि असुर मरते थे फिर किलात और अकली नामा असुरों के याजकोंने मनु के निकट जाकर तिस ही वृषभ से यज्ञ कराया तिस वृषभ के मरते वोह वाणी मनु की स्त्री में प्रविष्ट हुई फिर तिस स्त्री से भी तिन्हों ने मनु को यज्ञ कराया ततः सो वाणी यज्ञपात्रों में प्रविष्ट हुई इस हेतु से असुरों के पराभव के लिये तिस वाणी के प्रकार नार्थ प्राम्या करि दृषत् और उपल का हनन हे इति श्रुत्युक्तोऽभिप्रायः शत० २० १४० १४० ॥ का० २० ४० १६० तुषों के विमुक्त होने पर अध्वर्यु शूर्प को हाथों से ग्रहण करे वर्षवृद्धमसीति ॥ यजुर्गायत्री शूर्पदेवत्या ॥ हे शूर्प-तू वर्षवृद्ध है (वर्षों में बड़े वंश की शलाकाओं से बनने के हेतु शूर्प का वर्षवृद्धत्व है ॥ का० २० ४० १७० प्रति त्वेति उत्तरवल से बाहिर निकाल कर हवि को शूर्प में डाले ॥ यजुर्बृहती हविदेवत्या ॥ हे हविः वर्षवृद्ध (शूर्प) तू मे अपना करिके जाने ब्रीहि शूर्प का वर्षवृद्धत्व से भ्रातृत्व है ॥ का० २० ४० १८० परापूतमिति तुषों को फट के ॥ आसुरी उषिाक् राक्षसम् । राक्षसलोग निकाले (शूर्प करिके तुषों के निकालने में राक्षस भी तिन्हों के साथ भूमि में गिराये ॥ और अरातयः (हवि के प्रतिकूल आलस्यादि शत्रु) निकाले ॥ का० २० ४० १९० अपहतमिति पृथिवी में गिरे तुषों को भेले करि उत्करदे-शमें डाले ॥ यजुर्गायत्री राक्षसम् । राक्षसलोग दूर में चला-

के मारे ॥ का० २०४२० वायुर्व इति सतुषों श्रौर निस्तुषोंको  
पृथक् करे ॥ यजुरुषिाक् तण्डुलदेवत्या । हे तण्डुलश्रो श्रूय  
चलने से उठा वायु तुम्हें सूक्ष्मकणों से पृथक् करे ॥ का० २०४  
२१ श्रूर्य में स्थिति तण्डुलों को पात्र में रख देवो व इति मन्त्र  
से अभिमन्त्रण करे ॥ सास्त्री विष्णु तण्डुल देवत्या । हे तण्डुल-  
श्रो सविता देवता तुम्हें अछिद्र पाणि (मिली अङ्गुलियों के हा-  
थ) करि ग्रहण करे ॥ पात्री प्रक्षेपसमय भूमि में पतन न हो इ-  
स हेतु सवितृ ग्रहण प्रार्थना करिये हैं । केसा सविता कि हिर-  
ण्यपाणि । (हिरण्य युक्त अङ्गुलीयादि आभरण युक्त पाणि जि-  
सके यद्वा दैत्यों से प्राशित्रहार करि छिन्न हुए सविता के हाथ  
देवताओं ने स्वर्णमय किये यह सविता का हिरण्यपाणित्व  
है इति बहुच श्रुती कथा ॥ १६ ॥

अ० ६ धृष्टिरस्य पाग्नेऽग्निमामादे जहि निष्क्रव्या  
दं सेधा देवयजं वह । ध्रुवमसि पृथिवीं दृढं ह  
ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्पुषदधामिभ्रा  
तृवस्य वधाय ॥ १७ ॥ +

का० २०४०२६० धृष्टिरसीति उपवेश को ग्रहण करिके + ॥ देवी  
बृहती उपवेश देवत्या । हे उपवेश तू धृष्टि ( प्रागल्भ्यधीठ ) हे  
तीव्र अङ्गारों के इधर उधर चलाने में प्रसुत्व से इस का  
प्रागल्भ्य है ॥ का० २०४०२६० अपाग्न इति उपवेश से खर-  
स्थ अपरभाग अङ्गारों को खर के प्रागभाग में करे । तहां

५ का. १४. ३. १२. पल्ल्या सांगवा के मल्ले उपपञ्च वनां

तीनि अग्निये हे । पहिली आमान् (अपक को भक्षण करने वाला लौकिकी अग्नि । दूसरा क्रव्यात् (मांस का खानेवाला चित्ताग्नि । तीसरा देवयज (यागयोग्य) । तैसै तीनि अङ्गारों को गार्हपत्य से प्राग्भाग में पृथक् कर के तिष्ठों में से यागयोग्यताहीन आमान् क्रव्यात्संज्ञक दोनों अग्निओं की छोड़ि गार्हपत्य प्रति कहिता है ॥ प्राजपत्यानुष्टुप् अग्निदेवत्या । हे अग्ने हे गार्हपत्य आमान् अग्नि को परित्याग करि । तथा क्रव्यादग्नि को दूर में छोड़ि ॥ का० २० ४० २७० उपवेश करि दूरस्थ अङ्गारों से आदेवयजमिति एक अङ्गार को लेकर ॥ देवी जगती अग्निदेवत्या ॥ हे गार्हपत्य देवताओं के योग्य तीसरे अङ्गार को समीप में ला ॥ का० २० ४० २७० ध्रुवमसीति देवयज अङ्गार को कपाल करि ठकै ॥ कपालदेवत्यं यजुः ॥ हे कपाल तू स्थिर है (अङ्गार के ऊपर में होने से भी ऊपर उधर नहीं गिरता) पृथिवी को हठी करि अर्थात् पुरोडाशपाकसमय में तेरे किये व्यवधान से भूमि का दाहकत शैथिल्य न होगा । किं च तुम्हें अङ्गार परस्थापन करता हूँ । किस लिये कि भ्रातृव्य (शत्रु-असुर-पापी) के बध के अर्थ । कैसे तुम्हें कि ब्राह्मण ने पुरोडानिष्यति के अर्थ स्वीकार किया । तथा क्षत्रियों ने और समानकुल में हुए यजमानों ने पुरो- किया ॥ २७॥

अग्ने ब्रह्म गृभणीष्व धरुणं तस्मिन्तरिक्षं दृष्ट्वह  
ब्रह्मवर्ति त्वा क्षत्रवर्ति राजान्वन्युपदधामिभ्रा-

नृव्यस्य वधायाध्वर्मसि दिवं हर्षं ब्रह्मवनि  
त्वा क्षत्रवनि सजातवन्पुपदधामिभ्रातृव्यस्य  
वधायाविश्वाम्यस्तृवाशाभ्य उपदधामि चित्त-  
स्थोर्ध्वचितो भृगूणामङ्गिरसां तपसा तप्यध्वम् ॥१८॥

का० २४० ३०० मध्यम कपाल को उपधानान्तर सव्याङ्गुलिके  
वि न छोडे अग्ने ब्रह्मेति मध्यम कपाल में अङ्गार स्थापन क-  
रे ॥ याजुषी उषिणक् अग्निर्देवता। हे अग्ने निधीयमानाङ्गार  
रूप हम लोगों करि कियमाण ब्रह्म (प्रोट) कर्म को ग्रहण क-  
रि ॥ नाशक राक्षसों को बध करिके अनुग्रहण करि यद्वा  
सुम् ब्राह्मण को अनुग्रहण करि अर्थात् सुम् अङ्गुलिदा-  
नासक्त को हट करि ॥ का० २४० ३१० पूर्ववत् स्थापित कपाल  
के पश्चिम भाग में दूसरे कपाल को धरुणमिति स्थापन करे ॥  
कपाल देवत्यं यजुः ॥ हे द्वितीय कपाल तू पुरोडाश काधारक  
हे इस हेतु अन्तरि को हट करि। पुरोडाश पाकोत्पन्नाज्वाला  
करि अन्तरिक्ष लोकोपद्रव जैसे नही तैसे करि। यद्यपि य-  
ह कपाल ज्वाला और अन्तरिक्ष के मध्य में व्यवधायक न-  
हीं है तथापि अन्तरिक्ष को हटता के अर्थ कपालदेवता प्रार्-  
थना करिये है। ब्रह्मवनीत्यादि पूर्ववत् ॥ का० २४० ३२० म-  
ध्यम के पूर्व भाग में धर्ममिति तीसरे को स्थापन करे अर्थात्  
विष्टुप् कपाल देवत्या। हे कपाल तू धारक है। दिव को ह-  
ट करि ज्वालाग्र करि दाहका अभाव दुलोक का दाहक है

अन्यत्पूर्ववत् का० २४३३ प्रथम के दक्षिण भाग में चौथे को विश्वाम्य इति स्थापन करे ॥ यजुस्त्रिष्टुप् । हे चतुर्थ कपाल सब दिशाओं की दृढता के अर्थ तुम्हें स्थापन करता हूँ । एवं तीनों कपालों के उपधान करि तीनों लोकों को जीतता हूँ । चौथे से दिशाओं को जीतता हूँ । आशय यह है कि तद्गत पुरोडाश लोकत्रयरूप होके देवताओं को वृष करता है । का० २४३४ आग्नेय पुरोडाश के अष्टाकपालत्व और चारों के स्थापितत्व से अविशिष्ट चारों के मध्य में दो-दो दक्षिण और उत्तर में चितस्थेति प्रत्येक को स्थापन करे ॥ यजुगार्यत्री कपालदेवत्या । हे कपालविशेषाः तुम प्रथम कपालोपचयकारिणः हो तथा ऊर्ध्व उपहित द्वितीयादि कपालों के उपचयकारिणः हो ॥ का० २४३५ भृगूणामिति अङ्गुरों से कपालों को आच्छादन करे ॥ आसुर्यनुष् कपालदेवत्या । हे कपालओ तुम भृगुनामकों और अङ्गिरानामकों देवर्षियों के तपोरूप इस अग्नि करि तप्त होओ ॥ इस अग्नि का तदीय तपोरूप से भावना करे इत्यर्थः ॥ १८ ॥ †

अ० ७. शर्मास्यवधूतं रक्षोऽवधूता अरातयोदित्यास्त्व-  
गसि प्रति त्वादितिर्वेतु । धिषणासि पर्वती प्रति  
त्वादित्यास्त्ववेतु दिव स्कम्भनीरसि धिषणासि  
पार्वतेयी प्रति त्वा पर्वती वेतु ॥ १९ ॥ †

का० २५२ जैसे अन्ध्रात के अर्थ कृष्णाजिन प्रयोग है ते-

सै यहां भी ॥ शर्मासि । अवधूतम् । अदित्याः इति मन्त्रत्रयं व्याख्यातम् काण्डी १४ ॥ का० २० ५ ३ तिस चर्म पर धिषणासीति दृषद (चाकी के नीचेले पाट) को स्थापन करै ॥ आसुरी गायत्री दृषदेवत्या । हे शिले पेषणाधारभूते तू पवनात्मिका तदुत्पन्ना तू धिषणा (बुद्धि वा कर्म को व्याप्त वा देती) हे वा पर्वतवत् धारण करने वाली है । अदिति (भूमि) की त्वचा कृषणाजिनरूपा तुरू तेसी और तेरे अवस्थान को अनुजानै ॥ का० २० ४ ॥ दृषद के पश्चिमभाग में नीचे को शम्या स्थापन करै दिव इति । यजुरुषिणक् शम्यादेवत्या । हे शम्ये धुलोक की सन्मन करने वाली तू है । पतनवारण के अर्थ अन्तरिक्षरूप करि सन्मन कारित्व है । ॥ का० २० ५ ५ धिषणासीति दृषद पर उपला (चाकी के ऊपरले पाट) को स्थापन करै ॥ प्राजापत्यानुष्टुप् उपलादेवत्या । हे उपले (उपरितनशिल) तू धिषणाव्यापारधारिका है । कैसी कि पार्वतेयी (अधस्तनदृषद की पुत्री) बालस्वरूपा ॥ अतः पर्वती मातृसमा तुरू पुत्री को जानै ॥ १४ ॥

धान्यमसि धिनुहि देवान्प्राणाय त्वोदानाय  
य त्वा व्यानाय त्वा दीर्घामनु प्रसितिमायुषे  
धां देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णा  
त्वछिद्रेण पाणिना चक्षुषे त्वा महीना पयो  
मसि ॥ २० ॥ +

का० २० ५ ६ धान्यमसीति तण्डुलों को चाकी में डालिकर

+ धा-ना।अ०।प्रा-त्या।द०।उ-त्वा।उ०।व्या-त्वा।ऋ०।दी-ना।लृ०।च-त्वा।आ०।म-सि।ई०॥२०॥

+ कनीयसी हेषा दुहित्वे भवतीति श्रुतेः १२११६

प्राणायत्वेति प्रतिमन्त्र करि पीसे ॥ धान्यमसीति षण्ण हवि-  
 देवता १. यजुर्वृहती २. ४. ६. देवी बृहती ३. देवी यदुः ५. आ-  
 ची त्रिष्टुप् । हे हविः तू धान्य (तृप्तिकरनेवाला) है इस का-  
 रण अग्न्यादिक देवताओं को तृप्त करि ॥१॥ हे तण्डुलओ तु-  
 म्हे प्राण (प्रकर्षण अनिति सर्वदा मुखमें चेषा करने वाले श्वास वायु-  
 प्राणदान) के अर्थ पीसता हूं इति शेषः एवमुत्तरमन्त्रयोर्येज्य-  
 म् ॥२॥ उदान (ऊपर से चेषा करनेवाले उत्क्रान्त वायुदान)  
 के अर्थ ॥३॥ व्यान (व्याप्त हो चेषा करनेवाले बलहेतु वायुः)  
 के अर्थ ॥ अभिप्राय यह है कि देवताओं का हवि सजीव हो-  
 ता है इस हेतु इन मन्त्रों से हवि का प्राणदिदान करि सजीव-  
 त्व करिये ॥४॥ का. २. ५. ७. दीर्घामिति पिसे तण्डुलों को  
 कृष्णाजिन पर पतन करे ॥ दीर्घा (अविच्छिन्ना) प्रसिति (कर्मसं-  
 तति) को अनुलक्षण करि आयु (यजमान की आयुवृद्धि) के अ-  
 र्थ हे हवि तुम्हें कृष्णाजिन पर स्थापन करता हूं । भाव यह  
 है कि यजमान की आयुवृद्धि के होते में कर्मसंतति वर्तते  
 है । यद्वायमर्थः । पूर्वमन्त्रों से हवि का प्राणदिदान करि स-  
 जीवत्व किया इस करि पुनः आयु दीजिये है । हे हविः दी-  
 र्घा प्रसिति (कृष्णाजिनारव्या) में तुम्हें स्थापन करता हूं । कि-  
 मर्थम् कि तेरी आयु की वृद्धि के लिये । देवो व इत्यादि म-  
 न्त्रशेषो व्याख्यातः काण्डी १६. ई. ॥ का. २. ५. ८. कृष्णाजि-  
 न पर ररे पिष्ट को चक्षुषे त्वेति देरें ॥ हे हवि यजमान की

† प्रसितिः प्रसपनात्तन्तुर्वा जालं वेति निरु. ६. १२. यास्कौक्तेः पिष्टयाहकत्वात्  
 सिति शब्देन कृष्णाजिनमुच्यते ।

चक्षुषादिव के अर्थ तुम्हें देखता हूँ इति शेषः॥ यद्वा चक्षु  
आदि बाह्येन्द्रियादिदान के अर्थ तुम्हें देखता हूँ। भाव यह है  
कि हवि के सजीवत्व करने में चक्षुषादि कौनों की अपेक्षा हो  
ती है सो इस से करिये है॥ का० २५. ४. पात्रान्तर से आज्यस्था  
ली में आज्य को करे महीनामिति॥ आज्य देवत्या देवी त्रिष्टुप्।  
आज्य तू महीओं (गोओं) का पय (क्षीर) है॥ २०॥

अ० ८. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूषो  
हस्ताभ्याम्। सं वपापि समाप ओषधीभिः समो  
षधयो रसेन। सठि रेवतीर्जगतीभिः पुच्यन्ताम्  
सं मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्ताम्॥ २१॥+

का० २५. १०० पवित्र सहित बड़े पात्र में देवस्य त्वेत्यादि सं-  
वपामीति पिष्टों को आवपन करे॥ देवस्य त्वेत्यादि हस्ताभ्या-  
मित्यन्तं व्याख्यातम् कण्डिका १०० अ०। संवपामि देवी वृ-  
हती हविर्देवत्या। इन पिष्टों (पिसेहुओं) को बड़े पात्र में भले  
प्रकार स्थापन करता हूँ॥ का० २५. १२. १३. उपसर्जन्यः (पि-  
ष्ट में डालने योग्य जल) आग्नी ध्र के डालते अक्षर्यु पवित्रा-  
ओं से ग्रहण करे समाप इति॥ समापो यजुः आपो देवता।  
उपसर्जनीरूप जल पिष्टरूप ओषधीओं के साथ भले प्र-  
कार एकी हों। तथा ओषधीः (पिसीहुई) रस (उपसर्जनी-  
रूपजल) करि भले प्रकार एकी हों। तथा रेवत्यः (जल)  
ओषधीओं (पिष्टारव्याओं) करि भले० ५॥ मधुमतीः (माधुर्यो-

+ दे-मू। अ०। सं-मि। २०। स-मू। उ०॥ २१॥

१ आपो हि ओषधीना रसः।

५ रेवत्य आपो जगत्य ओषधय इति श्रुतेः



पेता जल) माधुर्यो येतों (पिष्टरूपा ओषधीओं के साथ भले)।  
अर्थात् जल और ओषधीओं के परस्पर प्रीतिहेतुत्व से संप-  
र्क होंवे ॥ २१ ॥

जनयत्ये त्वा संयौमीदमग्नेरिदमग्नीषोमयोरिषे  
त्वा घर्मोऽसि विश्वायुरुप्रया उरु प्रयस्वोरु ते  
यज्ञपतिः प्रथतामग्निष्टे त्वचं मा हिंसीद्देव-  
स्त्वा सविता अपयतु वर्षिष्ठे ऽधि नाके ॥ २२ ॥

का० २० ५० १४० जल और पिष्टों को मिश्रित करे जनयत्ये त्वे-  
ति ॥ प्राजायत्या गायत्री हविदेवत्या । हे जलपिष्ट रूपपदार्थ-  
द्वय तुम्हें भली भाँति मिश्री करता हूँ । किमर्थ कि यजमान  
की प्रजा के उत्पादनार्थ । जल और पिष्ट का जैसे मिश्रण  
तैसै शुक्रश्रोणित के मिश्रण करि यजमान की प्रजोत्पत्ति  
होती है तिस लिये तुम्हें मिश्रण करता हूँ । यद्वा पुरोडा-  
श की उत्पत्ति के अर्थ तुम्हें मिश्र ॥ का० २० ५० १५० मिश्री-  
किये पिष्ट के अवदानाङ्कित समान दो पिण्ड बनाकर पु-  
नः विनमिलाये इदमग्नेः इदमग्नीषोमयोरिति क्रमपूर्व-  
कस्पर्श करे ॥ हे हवि देवते १ देवी बृहती २ देवी जगती । यह अग्निसं-  
म्बन्धि होवें ॥ यह अग्नीषोमसम्बन्धि हो ॥ का० २० ५० १७०  
दूषे त्वेति आज्य को गलाने के अर्थ पात्र में अग्नि पर रखे ॥  
देव्यनुष्टुप् आज्यदेवत्या । हे आज्य वृष्टि के अर्थ तुम्हें ग-  
लाता हूँ ॥ का० २० ५० १८० घर्मोऽसीति पुरोडाश (पिण्ड) को

† ज-मि-अ-ग्नेः ॥ इ० ॥ इ-योः ॥ उ० ॥ इ-त्वा ॥ क० ॥ घ-युः ॥ ल० ॥ उ-मू ॥ आ० ॥  
अ-तू ॥ इ० ॥ इ-के ॥ क० ॥ २१ ॥

अधर्यु कपालों में पकावै ॥ यजुर्गायत्री पुरोडाशदेवत्या । हे पुरोडाश तू धर्म (दीप्यमान-प्रवर्ग्य) + है । तथा विश्वायुः (सर्वायुः) है । जिस से यजमान सर्वायु को पाता है इति भावः ॥ का० २५० २० ॥ उरुप्रथा इति पुरोडाश को बटावै जितना कि कपाल में समावै ॥ आर्ची गायत्री पुरोडाश ॥ हे पुरोडाश तू स्वभाव से उरुप्रथाः (विस्तीर्ण जैसे तैसे प्रसरनेहारा) इस कारण यहां भी विस्तीर्ण प्रख्यात हो । किं च तेरा यज्ञपति (यजमान) उरु (विस्तीर्ण पुत्रपश्चादिकरिक्के) प्रख्यात हो ॥ का० ५० २० २१ ॥ अग्निष्टु इति जल करि पुरोडाश को सर्वतः स्पर्श करै ॥ प्राजापत्या गायत्री पुरोडाश ॥ हे पुरोडाश अग्निः अपण के अर्थ तेरी त्वचा (त्वक्महश् ऊपरले भाग) को विनाश न करै । अर्थात् अतिदाह करि प्यामता न हो । अवघात पोषण से उठा और अपण में उत्पन्न हुआ हवि का उपद्रव जलस्पर्श करि शमन करिये है इति भावः ॥ का० २५० २३ ॥ देवस्त्वेति पकावै ॥ प्राजापत्यानुष्टुप् पु० ॥ हे पुरोडाश सविता देवता वर्षिष्ठ (अत्यन्तबृद्ध) नाक (द्युलोकवर्ति नाकनामा अग्नि +) में तुम्हें ररि कर पक्का करै । मनुष्य का अपण करने में कर्तृत्व नहीं है यह समझ कर देवस्त्वेति कहा गया ॥ २२ ॥ +

मा भेर्मा संविक्था अतमेरुर्यज्ञोऽतमेरुर्यजमानस्य प्रजा भूयात्रिताय त्वा द्विताय त्वैकताय त्वा ॥ २३ ॥ +

+ मा-क्याः । अ० अ-तू । इ० वि-त्वा । उ० द्वि-त्वा । क्र० ए-त्वा । त्वा ॥ २३ ॥  
+ अव्यमाणतया दीप्यमानत्वात्

को नाम स्वर्गस्थोऽग्निः । किति रिरुनानि रक्षो हति नामाग्नी रक्षो हति

का० २० ५० २४० पक्वापक्वज्ञान के लिये मा भेरिति दोनों पुरोडा-  
शों के स्पर्श करें॥ यजुर्गायत्री पु०॥ हे पुरोडाश तू भय मत क-  
रि। चलन मत करि॥ का० २० ५० २५० अतमेरुरिति अपक्व  
को भूमल करिके दावै वेद वा उपवेश करिके॥ आर्ची गा-  
यत्री पु०॥ यज्ञः (याग का हेतु पुरोडाश) अतमेरुः (भस्माच्छा-  
दन करि ग्लानिरहित) होवै। यजमान की पुत्रपौत्रादि प्रजा  
ग्लानरहिता हो। अर्थात् यजमान की प्रजा को कदापि दुःख-  
न हो॥ का० २० ५० २६० पिष्टलिप्तपात्र का प्रक्षालन और पिष्ट-  
लिप्ताङ्गुलियों का प्रक्षालन पात्र में स्थित ही उल्मुक से तपाक-  
र गार्हपत्य के उत्तरतः परस्पर संगति को न प्राप्त होते को औ-  
धावै त्रितायत्वेति प्रति मन्त्र से॥ १० देवी बृहती त्रितदेवत्या २०  
देवी बृहती द्वित देवत्या ३० देवी पङ्क्तिः एकतदेवत्या। हे पात्र्य-  
ङ्गुलिप्रक्षालनोदक त्रितनामक देवता के अर्थ तुम्हें ओज-  
ता हूँ इति शेषः। तथा द्वित के अर्थ तु०। तथा एकत के अ०॥

॥ पहिले किसी हेतु से डरे हुए अग्नि ने जल में प्रवे-  
श किया फिर देवताओं ने तिसै जानि कर ग्रहण किया तहां  
अग्नि ने जल में वीर्य छोडा फिर त्रित द्वित एकत तीनिपुत्र  
हुए ते देवताओं के साथ यज्ञ में पात्री प्रक्षालनजललक्षण  
भाग को लेते हुए यह श्रुति में कथा है शत० १० २० ३० १॥ २३॥

अ० ४० देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनौर्बाहुभ्यां पूषणौ  
हस्ताभ्याम्। आददेऽध्वरकृतं देवेभ्य इन्द्रस्य

बाहु रसि दक्षिणः सहस्रभृष्टिः शततेजा वायु-  
रसि तिस्रस्तेजा द्विषतो बधः ॥२४॥ +

का० २०६१३ देवस्य त्वेति स्फ्य लेकर ॥ देवस्य त्वेति व्याख्या-  
तम् कण्डिका १०० अ० आददे यजुः पङ्क्तिः स्फ्यदेवत्या । देव-  
ताओं के उपकारार्थ वेदिरवननादिद्वारेण अध्वर करने हारे  
स्फ्य को ग्रहण करता हूँ ॥ का० २०६१३ तृणसहित सव्यहस्त में करि-  
के दक्षिणहस्त से स्पर्श करि संहितास्वर से इन्द्रस्य बाहुः यह  
जपे ॥ प्राजापत्या जगती स्फ्यदेवत्या । हे स्फ्य तू इन्द्र का दक्षि-  
ण बाहु है + । कैसा कि सहस्रभृष्टिः (सहस्रं व्याक शत्रुओं का भू-  
जने हारा । शततेजाः (बहुधा दीप्यमानः) किं च वायु (केवल  
इन्द्र बाहु सदृश ही नहीं किन्तु वायु सदृश भी) है । अत एव  
तीक्ष्णतेजाः (जैसे वायु वह्नि को प्रदीपन करि तीव्रज्वाला को  
उत्पन्न करने से तीव्रतेजा होता है । एवं स्फ्य भी स्तम्बछेदरू-  
प कर्म करने से तीव्रतेजा है । तथा द्विषतो बधः (द्वेषि असुरों  
का हन्ता ॥२४॥

पृथिवि देवयजन्योषध्यास्ते मूलं माहिर्दसि-  
षं ब्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बिधान  
देव सवितः परमस्यां पृथिव्याथं प्रातेन पाशै-  
र्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा भौ-  
क ॥२५॥ + पृ-म। अ० ब्र-म। इ० व-द्यौः । उ० व-क। अ० ॥२५॥

का० २०६१५१६ पृथिवि देवयजनीति तृण के नीचे भूमि-

को स्फ्य से प्रहार करे ॥ वेदिदेवत्यं यजुः ॥ हे पृथिवि हे देवयज-  
 नि (देवता यजे जाते हैं जिसमें) तेरी ओषधीओं (तृणरूपाओं)  
 का मूल नहीं विनाश करता हूँ ॥ का० २६१७० ब्रजं गच्छेति पु-  
 रीष (स्फ्यप्रहार करि खुदी मृदा) को ग्रहण करे ॥ देवी जग-  
 ती पुरीषदेवत्या ॥ हे पुरीष (स्फ्यप्रहारोत्पन्ना मृदा) तू ब्रज (स्थि-  
 त होने के लिये चलती है) गोएँ जहां तिस) को प्राप्त हो ॥ तिस  
 कैसे कि गोष्ठान (गोयुक्तस्थान गोत) को ॥ का० २६१८० जि-  
 सस्थान से पुरीष ग्रहण किया तिस वेदि के स्थान को वर्षतु  
 नः इति देखे ॥ देवी षड्भिः वेदिदेवत्या ॥ हे वेदे तेरे अर्थ दुलोका-  
 भिमानी देव वर्षे (जलसेक करे) अर्थात् वर्षण करि खननजनि-  
 तदुःखशान्ति हो ॥ का० २६१९० बधानेति स्फ्योत्खाता मृदा  
 को उत्कर में डाले ॥ सावित्रं यजुः ॥ हे देव सवितः जो हमलो-  
 गों को द्वेष करता और जिस शत्रु को हम द्वेष करते हैं तिस  
 उभयविध शत्रु को इस पृथिवी के छोर पर बन्धन करि (तहां  
 उत्कर में डाली हुई धूलि विषे निगूढ़ शत्रु का बन्धन करि  
 कि जहां भूमि के छोर पर अन्धतामिश्रनरक है) ॥ किन्हीं से  
 बन्धन करना तदाह कि शतसंख्या कों बन्धनरज्जुओं से ॥  
 किं च इस अन्धतामिश्रनरक से तिसे कभी भी मत छूट-  
 ने दे ॥ २५ ॥

अपारं पृथिव्यै देवयजनाद्ध्यासं ब्रजं-  
 गच्छ गोष्ठानं वर्षतु नु द्यौर्बधान देव स-

+ अन्धे नमसि बधानेति यवाव य-  
 मस्या येष व्याभानि २०४१६ बुनेः।

+ अ-मू.अ.०.ब्र-मू. २०४.ब-द्यौः ॥ ३०४.ब-कु. ॥ अ०.अ-मू. ॥ ल०.द्र-मू. ॥ आ०.ब-मू.  
 २०४.ब-द्यौः ॥ ४०४.ब-कु. ॥ अ०.॥ २६ ॥

वितः परमस्यां पृथिव्यां शान्तं पाशैर्योऽस्मान्देष्टि-  
यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक्। अररो दिवं मा  
पप्नो द्रप्सस्तु द्यां मा स्कन् व्रजं गच्छ गोष्ठ्याम्  
वर्षतु ते द्यौर्विधान देव सवितः परमस्यां पृथि-  
व्यां शान्तं पाशैर्योऽस्मान्देष्टि यं च वयं द्वि-  
ष्मस्तमतो मा मौक् ॥२६॥+

का० २०६० २१० अपाररुमिति दूजीवार प्रहरण आदिक करे ॥  
आसुरी गायत्री असुरदेवत्या। पृथिवी के सम्बन्धि देवयजनारव्य-  
वेदिस्थान में अररुनामा असुर को अपबध्यासमू (निकालिकरजे-  
से हत हो तैसे करता हूँ ॥ इस मन्त्र से दूसरी वार प्रहार करे और व्रजम्  
वर्षतु वधानंति तीनों मन्त्रों का प्रयोग तथा अर्थ पूर्ववत् ॥ का० २०६० २२० अ-  
ररो दिवमिति उत्कर के अभिमुख हाथों को रखे ॥ यजुरनुष्टुपं हे अररो  
(असुर) दिव (द्युलोक यागफलरूप) को तू मत प्राप्त हो ॥ का० २०६० २३०  
द्रप्सस्त इत्यादि तीसरी वार प्रहरणादिक करे ॥ यजुर्गायत्री वेदिदेवत्या  
हे वेदिदेवते तुरू पृथिवी से जो द्रप्स (उपजीव्य रस) है सो द्युलोक  
को न जावे ॥ व्रजं गच्छेत्यादि पूर्ववत् ॥ २६॥

गायत्रेण त्वा छन्दसां परि गृह्णामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्द-  
सां परि गृह्णामि जागेतेन त्वा छन्दसां परि गृह्णामि।  
सुक्ष्मा चासि शिवा चासि स्योना चासि सुप्रदाचा-  
स्यूर्जस्वती चासि ययस्वती च ॥२७॥+

का० २०६० २४० जिम स्थान से अररु निकाला तहां वेदिका परिमा-

+ अ-म। अ० ब्र-म। द० व-द्यौ ॥ उ० व-क। अ० अ-ह ॥ ल० द० न० आ० ब्र-म। द० व-द्यौ ॥ उ०  
+ गा-मि। अ० त्रै-मि। द० जा-मि। उ० सु-सि। अ० स्यो-सि। ल० उ-च। आ० ॥ २७॥

ण निश्चय करने के लिये दक्षिण पश्चिम उत्तर तीनों दिशाओं में  
 स्फ्य से तीनी रेखाएँ करे गायत्रेणेति प्रतिमन्त्र करि। इस कर्म को  
 पूर्वपरिग्रह कहिते हैं ॥ गायत्रेण १ त्रैष्टुभेन २ जागतेन ३ त्रयाण-  
 मासुरी अनुष्टुबिष्णुर्देवता। ते प्राञ्च विष्णु निषाद्य छन्दोभिर-  
 भितः पयगृह्णन्ति श्रुतेः १.२.५.६.। हे विष्णो तुम्हें गायत्र्यादि  
 तीनों छन्दों की स्फ्य में भावना करि तीनों दिशाओं में परिग्रह-  
 ण करता हूँ। एवं त्रैष्टुप् जागत उत्तर मन्त्रों में। ततः छन्दोदेवता ती-  
 नों दिशाओं में असुरों से तम्हें पालन करेंगे। पूर्वदिशा में आहवनी-  
 य पालक है इति भावः। प्रजापति के पुत्र देवता और असुरों ने स्पर्धा  
 (लड़ाई) की ई जब देवताओं को हारे जानि भूमि को असुरों ने बाँटा  
 तहां देवताओं ने वामन रूपविष्णु को आगे में करिके असुरों के निक-  
 ट जाकर याचना की ई कि हमारे अर्थ भी भूमि का अंश देना उचित  
 है। फिर असुरों ने देवताओं को निरादर से कहा कि यह विष्णु जि-  
 तने भू भाग में शयन करें तितना आप लोगों का है। फिर देवता  
 ओं ने हम को इतना ही बड़ुत है यह कहिकर पूर्व में विष्णु को डा-  
 लि गायत्रेणेत्यादि मन्त्रों से यज्ञभूमि को ग्रहण किया। सो यज्ञो  
 विष्णुः जहां ठहरा है वोह ही यज्ञभूमि है यह तिन्हें करि विदित  
 होने से वेदि यह तिस भूमि का नाम हुआ यह शत० १.२.५.१-७.  
 श्रुति कथा समर करि वेदि ग्रहण है ॥ का० २.६.३१. वेदिखनन से  
 पहिले किया पूर्व परिग्रह पीछे किया उत्तर परिग्रह है। तहां भी पूर्व-  
 वत् तीनों दिशाओं में सुक्ष्मा स्पोना ऊर्जस्वतीति मन्त्रों करि स्फ्य

से तीन रेरवाएँ करें ॥ त्रयाणां वेदिर्देवता १. प्राजापत्या गायत्री २. आसुरी जगती ३. आसुरी पङ्क्तिः ॥ हे वेदे तू सुक्ष्मा (खनन करि अप्रमादि दोष दूरि होने से शोभना भूमि) है। शिवा (उग्र असर के निकालने से शान्ता) है। गुणद्वयस्यान्योन्यसमुच्चयार्थो चकारौ एकोऽयं मन्त्रः ॥ स्योना (सुखरूपा) है। सुरवदा (देवताओं के भली भाँति बैठने योग्या) है। चकारौ पूर्ववत्। द्वितीयोऽयं मन्त्रः ॥ ऊर्जस्वती (अत्रवती) है। ययस्वती (दध्यावती) है। चो पूर्ववत्। तृतीयो मन्त्रः ॥ २३ ॥

पुरा क्रूरस्य विसृषो विरप्षिन्नुदादाय पृथिवीं जीवदोनुम्। यामैरयं चन्द्रमसि स्वधाभिस्तामु धीरांसोऽपनुदिष्य यजन्ते ॥ प्रोक्षणीरासादाय द्विषुतो बधोऽसि ॥ २८ ॥ +

का० २. ६. ३२. पुरा क्रूरस्येति मन्त्रेण खोदी हुई वेदि में लोष्टकृत विषमता की निवृत्ति के अर्थ समीकरणरूपमार्जनं करें ॥ अथ शर्षसदृष्टा चन्द्रदेवत्या त्रिष्टुप्। आत्रेयमारव्यायिका मन्त्रेऽभिप्रेता। कभी देवताओं का असुरों के साथ संग्राम उपस्थित हुआ तब देवताओं ने आपुस में मन्त्र किया कि जो इस भूमि का उत्कृष्ट देवयजनस्थल है तिसे चन्द्रमा में स्थापन करिके युद्ध करें तहां जो हमारी पराजय हो तो देवयजन में याग करिके फिरि देव्यों को पराजय करेंगे यह भली भाँति विचारि भूमि के सारभाग देवयजन को चन्द्रमा में स्थापन करते हुए सो कृष्णावर्णा अवनी चन्द्रमा में दीरवता है इस आख्यान को मन्त्र कहिता है शत० १. २. ५. १८ ॥ मन्त्रार्थस्तु।



हं विगच्छान् (विष्णोऽपरमेश्वरः) तू सुनि अनुग्रह करि इति  
 शेषः॥ विसृप (नानायोधयुतः) क्रूर (युद्धः) सै पहिले अर्थात् दे-  
 वता जीवदानु (जीव की धारण करने हारी सारभूता) जिस पृथि-  
 वी को ऊँची ग्रहण करिके स्वधाओं (वेदों) सहित चन्द्रमा में स्था-  
 पन करते हुए भीराः (मेधावीलोग) तिसी (चन्द्रस्था पृथिवी) की अ-  
 नुदिश्य (दर्शन से संपादन करिके सोही भूमि इस वेदी में है यह  
 भावना करि) याग करते हैं॥ का० २०६३४ प्रोक्षणी रासादयेति आ-  
 ग्नीध्र प्रति शेषा (अधर्यु का वचन) है॥ यजुरुष्णिक् प्रेषः॥ हे आग्नी-  
 ध्र तू प्रोक्षणी (जलों) को वेदी में स्थापन करि॥ का० २०६४२ द्विषतो  
 बध इति स्य को उदगग्र करि उत्कर में फेंके॥ यजुर्गायत्री अभिचा-  
 रिकम्॥ हे स्यः तू द्वेषीओं (शत्रुओं) का हिंसक है॥ २८॥

अ० १०० प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टा अरातयो निष्टं रक्षो नि-  
 ष्टं अरातयः॥ अनिशितो गसि सपत्नक्षिद्वाजिनी त्वा  
 बाजेध्याये संमार्ज्मि॥ प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टा अरात-  
 यो निष्टं रक्षो निष्टं अरातयः॥ अनिशिता-  
 सि सपत्नक्षिद्वाजिनी त्वा बाजेध्याये संमा-  
 र्ज्मि॥ २९॥

का० २०६४६ जैसै सूर्य और अग्नि होत्र हवीण प्रतपन कि-  
 या (तैसै खुब का भी करना)॥ हे व्याख्याते काण्डी ७॥ का०  
 २०६४६ वेदाग्र करि भीतर से पूर्व को संमाजन करे मूल से  
 ले अग्रपर्यन्त अनिशितोऽसीति मन्त्र से फिरि वेदमू-

ल से बाहिर में सुवपुष्कर का बुध्र से ले मूलपर्यन्त पश्चिम  
को संमार्जन करे इसी मन्त्र से फिरि अग्निसमीप में जाकर  
पूर्ववत् तपाके जल उपस्पर्श करि अध्वर्यु के अर्थ समर्पण  
करे ॥ प्राजापत्या बृहती सुवदेवत्या । हे सुव तू अनिशित  
(हमारे विषय में तीक्ष्ण उपद्रवकारी नहीं होता) है यत्तः  
सपत्नक्षित् (शत्रुओं का मारने हारा) अत एव तुम्हें मल प्रका-  
र शुद्ध करता हूं । कैसे तुम्हें कि वाजिन (अन्नवन्तः) यद्वा य-  
न्नवन्तः) को । किसलिये संमार्जन करता हूं कि वाजिध्या (यज्ञ-  
की दीप्ति के अर्थ) अर्थात् शोधित सुवा करि घृत लेते और होम  
ते में अग्नि प्रकाशे हैं । तिस के प्रकाश से आहुतिफलभूत अ-  
न्न प्रकाशित होता है ॥ का० २० ६० ४० ४०० अनिशितेति मन्त्रे-  
ण तीनों सुचाओं (जुहु उपभृत् ध्रुवां) को संमार्जनकरि (प्रत्यु-  
ष्टमिति तपा-तपाकर) वेदि में स्थापन करने को अध्वर्यु के  
अर्थ देवे ॥ प्रत्युष्टम् निष्टप्तम् व्याख्याते । अनिशितेत्यपि व्या-  
ख्यातम् । सुव के पुरुष होने से आदि में संमार्जन है ।  
सुचा का स्त्री होने से पीछे ॥ जुह्वादिक सुचाओं के स्त्रीलि-  
ङ्गत्व से अनिशिता वाजिनीमिति विशेषणों का स्त्रीत्व वि-  
शेष है ॥ २६ ॥

अदित्ये रास्नासि विष्णोर्वेष्ट्योऽस्यूर्जे त्वादव्येन  
त्वा चक्षुषावपश्यामि ॥ अग्नेर्जिह्वासि सुहृद्वे  
भ्यो धाम्नेधाम्ने मे भव यजुषेयजुषे ॥ ३० ॥ †

† अ-मि। अ० वि-सि। २० ४० ४०० अ-वे। अ० ३० ॥

‡ यक्षो हि देवानामन्नमिति श्रुतिः ॥ ५० १० २० वाजं यज्ञारव्यमन्नमहतीति वाजिनः ॥

यस्यैवाग्निं हेतुं तद्वत्तवन्तः  
अग्निं २० ४० ४०० अग्निं  
अग्निं २० ४० ४०० अग्निं  
अग्निं २० ४० ४०० अग्निं

का० २०७१० आग्नीध्र योक्त्र (त्रिगुणा मुञ्जमयी रशाना) करि गार्हपत्य से नैऋत्य दिशा में ईशानाभिमुखी बैठी हुई यजमानभार्या को परिधानवस्त्र से बाहिर नाभि से नीचे कटि प्रदेश में अदक्षिण वेष्टित करे अदित्यै रस्तासीति॥ हे योक्त्र देवत्ये १० यजुर्गायत्री २० दैव्यपङ्क्तिः हे योक्त्र तू अदिति (पृथिवी) की रशाना (करधनी) है॥ का० २०७२३ तिस योक्त्र के दक्षिणपाश को प्राङ्मुखस्थानीय उत्तरपाश में द्विगुण खुरसि करि दक्षिणयोक्त्रपाश को ऊपर की उड़हन करे विष्णोर्वेष्योऽसीति ग्रन्थि न करे॥ हे दक्षिणपाश तू विष्णु (यज्ञ) का वेष्य (व्यापक) है॥ का० २०७४० ऊर्जे त्वेति आज्य को गार्हपत्य से उतारि करि पत्नी के आगे में खरि पत्न्याज्यमवेक्षस्वेति कहे॥ आज्यदेवत्यानि त्रीणि १० दैव्यनुष्टुप् २० यजुः ३० साम्नी जगती॥ हे आज्य तुम्हें ऊर्ज (उत्तररसलाभ) के अर्थ अग्नि परसे उतारता हूँ इति शेषः॥ उतारद्वारा घृत सुखादु होता है॥ का० २०७४० अदव्येनेति पत्नी आज्य को देखे॥ हे आज्य तुम्हें अनुपहिंसित आरवों से अधोमुखी होकर देखती हूँ किं च हे आज्य तू अग्नि की जिह्वा है (जब आज्य अग्नि में होमा जाता है तब जिह्वा ऐसी ज्वाला उत्पन्न होती है अतः तू अग्नि की जिह्वा है) कैसा है तू कि देवताओं के अर्थ सुहूँ (भले प्रकार होमिये है वोह) यद्वा जिह्वा विशेषणम् भली भांति बुलाइये हैं देवता जिस से वोह अर्थात्

ज्वाला देखि देवता आते हैं। इस हेतु मेरा धाम्ने धाम्ने (तत्तद्यागफलोपभोगस्थानसिद्ध्यर्थ) हो। यजुषे यजुषे (तत्तद्यागसिद्धि के अर्थ योग्य) हो ॥३०॥

सवितुस्त्वा प्रसवः उत्पुनाम्यहि द्रेण पवित्रेण  
सूर्यस्य रश्मिभिः। सवितुर्वः प्रसवः उत्पुनाम्यहि  
द्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। तेजोऽसि शुक्र  
मस्य मृतमसि धाम नामासि प्रियं देवानामना  
धृष्टं देवयजनमसि ॥३१॥ +

इति संहितायां दशमोऽनुवाकः १०

इति श्री शुक्लयजुर्वेदे माध्यन्दिनीयायां वाजस-  
नेयसंहितायां दीर्घपाठे प्रथमोऽध्यायः १

का० २० ७० सवितुस्त्वेति आज्य को उत्पवन करें ॥ सविता  
देवता की आज्ञा में वर्तमान हो तुम्हें उत्पवन करता हूँ।  
व्याख्यातमन्यत् काण्डी १२॥ का० २० ७० ८० और प्रोक्ष-  
णी को पूर्ववत् उत्पवन करें सवितुर्व इति ॥ प्राजापत्याप-  
ङ्गिरापो देवता। तुम्हें उत्पवन करता हूँ इति व्याख्यातम्  
काण्डी १२॥ का० २० ७० ४० तेजोऽसीति अक्षर्यु वा यजमान  
आज्य को देरेवे ॥ आज्यदेवत्ये द्वे १ यजुस्त्रिष्टुप् २ आर्ची

उष्णिक् । हे आज्य तू तेज (शरीरकान्ति का हेतु होने से तेज) है । शुक्र (स्निग्धरूपत्व से दीप्तिमान्) है । अमृत (विनाशरहित) है । बहुत दिवस ररबने से ओदनादिवत् पर्युषितत्वादि दोषों के अभाव से वा यज्ञहेतुत्व से अविनाशित्व है ॥ का० २० ७० ११० १२० धाम नामेति एकवार मन्त्र पूर्वक और तीनिवार चुपके से चारि सुवाओं को घृत से पूर्ण करें ॥ हे आज्य तू धाम (देवताओं की चित्तवृत्ति का स्थान) है । तथा नाम (अपने प्रति नमानेवाला) आज्य को देखि भोजन के लिये सब नमते हैं । तथा देवताओं का प्रिय है । अनाधृष्ट (अनभिभूत) गतसारत्व दोष करि अतिरस्कृत चरुपुण्ड्रादि कच्चिरस्थिति से गतसार होते हैं ऐसा नहीं है । देवयजन (यागसाधन) है ऐसे तुम्हें ग्रहण करता हूँ इति वाक्य शेषः ॥ ३१ ॥

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्द निवारयन्

पुमार्थीश्चतुरो देयाद्यज्ञपुरुषः सनातनः १

इति भाष्ये दशमोऽनुवाकः १०

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीयशारवाध्येतृवेयाघ्रपक्ष-  
न्वयविश्वामित्रपुराधिप श्रीमज्जयकिशोरदेववर्मात्मजं ऐकि-  
ण्य नृपतिगिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये  
शारवाद्याज्यग्रहान्तः प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

ॐ तत्सत् ब्रह्मार्पणमस्तु

हरिः ओम्

ओं नमो यज्ञ पुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च माधनेर्वह्मरूपकम्

स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं सुमः२

अ.१०.१० कृष्णोऽस्याखरेष्टोऽनये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि वेदिरमि ब-  
र्हिषे त्वा जुष्टं प्रोक्षामि बर्हिरसि सुगम्यस्त्वा जुष्टं प्रो-  
क्षाम्यदित्ये व्युन्दनम् ॥१॥

ओं नमो याज्ञवल्क्याय

राजागिरिप्रसादेन श्रीवेदार्थप्रदीपके ॥

इध्मप्रोक्षादि पित्र्यान्तोद्वितीयोऽध्यायइत्येते२

कृष्णोऽसीति आसुरी उष्णिक् इध्मो देवता। वेदिरसीति आसुरीअनुष्टुप्  
लिङ्गेऽक्तदेवता। बर्हिरसीति प्राजापत्या उष्णिक् लिङ्गेऽक्तदेवता॥ का०  
२.७.१४ इध्म पूलक को छुडाकर प्रोक्षण करें। और वेदि को प्रोक्षण  
करें। बर्हि ले वेदि में पूर्वग्रन्थि करिके प्रोक्षण करें क्रमपूर्वक कृष्ण  
सीति प्रतिमन्त्र से इति सूत्रार्थः॥ अथमन्त्रार्थः॥ हे इध्म तू कृष्ण  
(कृष्णामृगरूपयज्ञ) है +। केसा है कि आखरेष्टः (समन्तात् कठिनं वृ-  
क्ष में स्थित। यद्वा खं (स्वर्ग) को राति (देता) खर (आवनीय) तहां स-  
मन्तात् स्थित ॥ यज्ञ कभी देवताओं से दुरिखत हो अपने छिपने के  
अर्थ कृष्णामृग होके वन में यज्ञियतरु के मध्य में प्रवेश करि कहीं  
कठिन वृक्ष में स्थित हुआ सो इस अभिप्राय से कृष्ण आखरेष्ट ये  
दो शब्द कहे गये तथा च शत० १.१.४.१ यज्ञो ह देवेभ्योऽपचक्राम

इध्म पूलकस्य यज्ञमाधनत्वात् यज्ञत्वोपचारः।

† पुष्पिणी गायत्री वेदः प्राजापत्या गायत्री आपोदे० हे प्रोक्षणा शेषो  
दक नू अदिति (भूमि) का क्लेदन (प्रस्वेद) है॥ का० २०७० २१० अर्धयु  
हाथ करि यवित्रा प्राणिता में रख तिस बहि पूलक के पूर्व भाग से वि  
षोरिति प्रस्तर को निकाले॥ देवी यङ्कुः प्रस्तरों दे० हे प्रस्तर दर्भसु  
ष्टिरूप नू विष्णु (यज्ञ) की शिरवा है॥ का० २०७० २२० ऊर्णम्रद समिति  
वेदि को दर्भों से आछादन करे॥ आसुरी गायत्री वेदिर्दे० हे वेदे तुम्हें  
दर्भों में आछादन करता हूँ। कैसी तुम्हें ऊर्ण जैसी कोमल को (जैसे  
स्वामी के विठलाने की भूमि की काठिन्यता के अभावार्थ कम्बलादि  
विछाते हैं तैसे दर्भों से आछादिता वेदि कोमल हो। पुनः कैसी कि  
देवताओं के उपकार के लिये स्वास्था (सुखपूर्वक भोजन के लिये)  
आसन करि बैठते हैं जिसपर तिस) को॥ का० २५० २०७० भुवपये

स हृषणो भूत्वा चचारेत्यादि श्रुतिः। अतः अग्नि देवता के अर्थ प्रिय  
तुम्हें प्रोक्षण करता हूँ शुद्ध्यर्थ जल से इति शेषः॥ वेदि रसीति वेदी  
को प्रोक्षण करे। नू वेदि (देवताओं की असुरों से लब्ध होने के कास  
ण वेदि) हे इस हेतु बहिओं के धारणोपयोगिता करि प्रिय तुम्हें प्रो०।  
दहि रसीति बहिः प्रोक्षणम्। हे दर्भ बहिः (बहुत होने से वेदि की वृद्धि  
करने समर्थ) हैं। अतः स्तुचिधारण से प्रिय तु०॥ १॥

अदित्यै व्युन्दनमसि विषणोः स्तुपोऽम्यूर्णम्रदसं त्वा  
स्तृणामि स्वामस्थं देवेभ्यो भुवपतये स्वाहा भुवनप  
ये स्वाहा भूतानां पतये स्वाहा॥ २॥†

का० २०७० २०० प्रोक्षणी के शेषजल को बहि पूलक के मूल में ओंधावे  
अदित्यै व्युन्दनमिति॥ प्राजापत्या गायत्री आपोदे० हे प्रोक्षणा शेषो  
दक नू अदिति (भूमि) का क्लेदन (प्रस्वेद) है॥ का० २०७० २१० अर्धयु  
हाथ करि यवित्रा प्राणिता में रख तिस बहि पूलक के पूर्व भाग से वि  
षोरिति प्रस्तर को निकाले॥ देवी यङ्कुः प्रस्तरों दे० हे प्रस्तर दर्भसु  
ष्टिरूप नू विष्णु (यज्ञ) की शिरवा है॥ का० २०७० २२० ऊर्णम्रद समिति  
वेदि को दर्भों से आछादन करे॥ आसुरी गायत्री वेदिर्दे० हे वेदे तुम्हें  
दर्भों में आछादन करता हूँ। कैसी तुम्हें ऊर्ण जैसी कोमल को (जैसे  
स्वामी के विठलाने की भूमि की काठिन्यता के अभावार्थ कम्बलादि  
विछाते हैं तैसे दर्भों से आछादिता वेदि कोमल हो। पुनः कैसी कि  
देवताओं के उपकार के लिये स्वास्था (सुखपूर्वक भोजन के लिये)  
आसन करि बैठते हैं जिसपर तिस) को॥ का० २५० २०७० भुवपये

स्वाहेति स्कन्न (हवि के ग्रहण काल में परिधियों से बाहिर विखरे ह-  
वि) की स्पर्श करे ॥ भुवपत्या इति देवीजगती । भुवन पतयेति द्वौ प्रा-  
जापत्या गायत्र्यौ । त्रयाणामग्निर्देवता । एतन्मन्त्रत्रयस्यात्रोत्क-  
र्षः । भुवनपत्यादयः तीनों अग्नि के भ्राता । स्वाहा शब्द निपात  
देवताओं प्रति दानवाची । मन्त्रार्थस्तु । हविग्रहण काल में परिधि-  
यों से बाहर जो हवि विखिरा सो भुवपत्यादयः अग्नि के भ्राताओं  
को दिया इति ॥ आशय यह है पहिले अग्नि के भ्राता वषट्कार की  
भय से भूमि को प्रवेश करते हुए और तिस दुःख करि अग्नि भी  
भाग करि जल में प्रवेश करता हुआ फिर देवताओं करि लाया अ-  
पने अधिकार पर स्थाप्यमान ऐसे बोला कि जो दून मेरे भाइयों क-  
रि मुँसे धारण करें और तिन के लिये यज्ञ भाग की कल्पना करें ।  
फिर ते अग्नि के भाई परिधि हुए और तिन्हों का स्कन्न हवि भाग  
किया इति कथा तथा च शत० १०३०३०१३-१६ ॥२॥

गन्धर्वस्त्वा विश्वावेसुः परिदधातु विश्वस्यारिष्ट्ये य-  
जमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः । इन्द्रस्य मि-  
त्रावरुणो दक्षिणो विश्वस्यारिष्ट्ये यजमानस्य परिधि-  
रस्यग्निरिड ईडितः । मित्रावरुणो त्वोत्तरतः परिधि-  
त्तां ध्रुवेण धर्मेण विश्वस्यारिष्ट्ये यजमानस्य प-  
रिधिरस्यग्निरिड ईडितः ॥३॥†

का० २०८०१ मध्यम दक्षिण उत्तर परिधियों को गन्धर्वः इन्द्रस्य मि-  
त्रावरुणो प्रांतमंत्र करि स्थापन करे ॥ गन्धर्वस्त्वा इन्द्रस्य मित्रा-

स्वाहाकार च वषट्कार च  
च उपजीवनीति पुनः ।



वरुणो वीणियजूर्ध्वित्रयः परिधयो देवता । आदौ पश्चात् । हे प-  
रिधे विश्वावसु नामा गन्धर्वः । तुम्हें आहवनीय में पीछे सर्वतः स्था-  
पन करें (सर्वत्र वास करता विश्वावसु) द्युलोकस्थ सोम की रक्षा  
करने तिस के मर्माप में सर्वत्र गन्धर्व वास करते हैं इति श्रुत्यन्तर-  
कथा । किसलिये स्थापन करें । आहवनीय स्थानरूप के हिंसा परि-  
हारार्थ । परिधि के अभाव में असुर हिंसा करते हैं । किं च तू केव-  
ल अग्निही का परिधि नहीं यजमान को भी असुरों से रक्षा कर-  
ने पश्चिम दिशा में स्थापित है । ओम् आहवनीय का प्रथम आता  
भुवपतिनामा अग्निरूप तू है । स्तुति योग्य अत एव होताओं क-  
रि स्तुति किया ॥ दक्षिणं परिधिं परिदधाति । हे अग्नि के द्वितीय  
आता भुवनपतिनामा द्वितीय परिधे तू रक्षा करने को समर्थ है  
इस हेतु इन्द्र का दक्षिण बाहू है विश्वस्येत्यादि व्याख्यातम् ॥ तृ-  
तीयमुत्तरं परिधिं परिदधाति । हे तृतीय परिधे (अग्नि के तीसरे आ-  
ता भूतानांपते) मित्रावरुणो (वाय्वादित्यो) स्थिरधारण करि उत्तर  
दिशा में तुम्हें सर्वतः स्थापन करें । अन्यत्पूर्ववत् ॥ ३ ॥

वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तं समिधीमहि । अग्ने  
बृहन्तमध्वरे ॥ ४ ॥

का० २. ८. २. प्रथम परिधि को समिध छुवा करि वीतिहोत्रमिति  
मन्त्र से आहवनीय में आधान करें ॥ विश्वावसु दृष्टा अग्निदेवत्या गा-  
यत्री छन्दस्का । हे कवे (क्रान्तदर्शिनू भूतभविष्यतवर्तमान दूरवर्ती  
पदार्थों के जाननेवाले) हे अग्ने यागनिमित्त में तुम्हें हम इस इधम

काष्ठकरि दीपन करते हैं। कैसे तुम्हें कि वीति होत्र। पुत्रपौत्र पशुध-  
नादि की समृद्धि के अर्थ होम जिस का वा होतृ कर्म में अभिला-  
ष जिस का तिसे तथा कान्तिमान और महान्त को ॥ ४॥

समिदसि सूर्यस्त्वा पुरस्तात्यानु कस्याश्चिदभिशा-  
स्ये। सवितुर्बाहू स्थ ऊर्णम्रदसं त्वा स्तृणामि स्वा-  
सस्थं देवेभ्य आ त्वा वसवो रुद्रा आदित्याः  
सदन्तु ॥ ५॥ †

का० २० ८३ परिधि को विन स्पर्श किये समिदरसीति मन्त्र क-  
रि दूसरी समिधा अग्निमें स्थापन करै॥ देवी बृहती अग्निर्दे-  
वता। हे इध्मकाष्ठ तू अग्नि का सम्यग्दीपन है ॥ का० २० ८४  
अध्वर्यु बैठकर आहवनीय को देवता संहितास्वर से सूर्यस्त्वा इ-  
ति पठे ॥ आसुरी गायत्री लिङ्गोक्तदेवता। हे आहवनीय पूर्वदि-  
शा में सब हिंसाओं से सूर्य तुम्हें रक्षा करे। अर्थात् जे कोई हिंसा  
प्रसक्ता तिन्हें परिहरे। इतर तीनि दिशा में तीनों परिधिरक्षक हैं  
पूर्व में तिन्हों के अभाव से सूर्य है † ॥ का० २० ८५ दो तृण प्र-  
स्तरस्थापनार्थ उदगग्रे स्थापन करै सवितुरिति मन्त्र करि ॥  
याजुषी गायत्री विधृति० हे तृणे तुम दोनों सविता की बाहू हो।  
(प्रस्तराधारण करि सूर्य की बाहू तुल्य हो ॥ का० २० ८६ तिन्हों  
पर प्रस्तर बिछावै ऊर्णम्रदसमिति मन्त्र करि ॥ आसुरी गायत्री प्र-  
स्तरो दे०। ऊर्णवत् कोमल देवताओं के सुखासन के अर्थ तुम्हें  
बिछाता हूँ ॥ का० २० ८७ आत्वा इति मन्त्र से प्रस्तर प्रति हा-

† स-सि। अ-सू-स्ये। इ-स-स्यः। उ-क-भ्यः। क-आ-स्तुल्य० ॥ ५॥

कोगेतीति शत० १०३८८ अनेः।  
परिधयोभवन्त्येते तस्यैव पुत्रस्तादृशं व-  
† शुक्ले वा अमितिः परिधयोभवन्त्येते तस्यैव पुत्रस्तादृशं व-

ए ररवे ॥ आसुरी अनुष्टुप् प्रस्तरो दे०। वसवो रुद्रा आदित्याः (क्रमेण प्रातः-माध्यन्दिन-तृतीय) तीनों सवनों के देवता तुम्हें सर्वतः प्रसारें ॥५॥

घृताच्यसि जुहूर्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियर्धं सद आसीद घृताच्यस्युपभृन्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियर्धं सद आसीद घृताच्यसि ध्रुवा नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियर्धं सद आसीद प्रियेण धाम्ना प्रियर्धं सद आसीद ध्रुवा असदन्तृतस्य योनौ ता विष्णो पाहि पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं पाहि मां यज्ञन्यम् ॥६॥

का० २० ८१२१३ अध्वर्यु आग्नीध्र करि समर्पिता जुहू को लेकर सव्य हस्त से अविमुक्त प्रस्तर पर प्रागग्र ररवे इतर मन्त्रों से उपमृत् और ध्रुवा को ररवे ॥ घृताच्यसि जुहूर्नाम्नेति साम्नी त्रिष्टुप् जुहूर्दे०। हे जुहू तू घृताची (घृतपूर्णा) और नाम करि जुहू (होमनेवाली) है। सो तू प्रियधाम (देववल्लभमध्युत) सहित इस प्रस्तर पर स्थित हो ॥ उपभृत् को ररवे ॥ सा-त्रि० उपभृदे०। उप (समीप में स्थित हो आज्य को धारण करता) उपभृत्। अन्यद्वारव्यातम् ॥ ध्रुवा को ररवे ॥ सा-त्रि ध्रुवादे०। जैसे होम के अर्थ जुहू उपभृत् चलते हैं तैसे यह नहीं चलता इस हेतु नाम करि ध्रुवा है। अन्यदुक्तम् ॥ का० २० ८१४ प्रियेण धाम्नेति आज्यस्थालीं पुरोडाशादि प्रत्येक हवियों को वेदिपर रखिके ॥ माजुषी जगती हविर्दे०। हे हवि घृत सहित प्रियस्थान में स्थित हो इत्येकैक हविः सम्बो-

+ प्रियधाम प्रकीर्तनम् + एतदे देवता प्रियतमं यदप्यभिनि शत० १३२ २९ अन्ते।

+ घृ-दा० अ० १३० उ०। प्रि-दा० अ० १३०। ध्रु-माल०। पा-मू०। आ० १६॥

अवचनम् ॥ का० २० ८ १६ ध्रुवाभ्यसदन्निति सर्वों को स्पर्श करै ॥ यजुः विष्णुर्दे० ॥ ऋत (अवश्य भाविफलोपेत सत्य यज्ञ) के स्थान में जे हवि ररेवे तिन्हें हे विष्णो (व्यापक यज्ञ पुरुष) रक्षा करि और यज्ञ को तथा यज्ञपति (यजमान) को रक्षा करि ॥ का० २० ८ २० पाहि मामिति अपने को स्पर्श करै ॥ याजुषी गायत्री विष्णुर्दे० ॥ मुख्य यज्ञ करानेवाले अध्वर्यु को रक्षा करि ॥ ६ ॥

अ० २० अग्ने वाजजिह्वाजं त्वा सरिष्यन्तं वाजजितर्हं सम्मार्ज्मि । नमो देवभ्यः स्वधा पितृभ्यः सुयमे मे भूयास्तमस्केन्नमद्य ॥ ७ ॥ †

अस्केन्नमद्य देवेभ्य आज्यर्हं सम्भ्रियासमङ्घ्रिणा विष्णो मा त्वावक्रमिष वसुमतीमग्ने ते छाया मुपस्थेषु विष्णो स्थानमसीत इन्द्रो वीर्यमकृणोद्धूर्ध्वध्वर आस्थात् ॥ ८ ॥ †

अग्ने वेर्होत्रं वेदूत्युमवतां त्वा द्यावापृथिवी अब त्वं द्यावापृथिवीस्विष्टकृद्देवेभ्य इन्द्र आज्येन हविषा भूत्स्वाहा सं ज्योतिषा ज्योतिः ॥ ९ ॥ †

का० ३० ११३ इध्मवोधने के तृणमय जून से दक्षिण परिधि के समीप अग्नि को तीन बार मार्जन करै अग्ने वाजजित् मन्त्र करि एकवार चुपके से दो बार तैसे ही मध्यमोत्तर परिधियों को ॥ यजुः अग्निदे० ॥ हे वाजजित् (अन्नों के जीतनेवाले) हे अग्ने तुम्हें शोधन करता हूँ । कैसे तुम्हें कि अन्नसम्पा-

† अ-ज्मि । अ० न-म्यः । इ० स्व-म्यः । उ० सु-म । ऋ० ॥ ७ ॥

† अ-मू । लु० क-सि । आ० इ-हा । ई० ॥ ८ ॥

† सं-तिः । ऊ० ॥ ९ ॥

तस्य भाष्यं निपातः पितृ उदिष्य देवदत्तस्य दत्ते वर्तते।

दत्तोपयुक्तं तथा अन्नप्रतिबन्धनिवारकं को ॥ का० ३० १० १५० आह-  
वनीयं सै पश्चिम हाथ जोड़ें नमो देवेभ्य इति ॥ दैवीपंक्तिः देवा  
दे०। जे देवता अनुष्ठान को अनुग्रह करते हैं तिन्हों के अर्थ  
नमस्कार ॥ का० ३० १० १५० पूर्वमुख करि आदि में देवताओं  
को अत्यर्थ अञ्जलि करी स्वधा पितृभ्य इति पितरों को अ-  
त्यर्थ दक्षिणमुख उत्तान अञ्जलि करै ॥ दैवीपंक्ति पितरों  
दे०। जे पितर (पालक) हैं तिन्हों के अर्थ स्वधा हो + अर्थीतु जे  
देने योग्य है सो दूंगा ॥ अनन मन्त्र द्येन देवाः पितरश्चोपच-  
र्यन्ते ॥ का० ३० १० १६० सुयमे मः इति जुहु उपभृत को लेंके ॥  
आर्ची उषिाक जुहूपभृद्देवते। हे जुहूपभृतो मेरे अर्थ जैसे  
तुम में स्थित आज्य न गिरै तैसे धारण करै ॥ ७॥ तथा सति आ-  
ज इस अनुष्ठानदिन में देवताओं के उपकारार्थ तुम में स्थि-  
त धृत भूमि में जैसे न गिरै तैसे पोषण वा धारण करता हूँ ॥  
का० ३० १० १६० अङ्घ्रिणा विष्णो विति दक्षिणदिशा (यजने के स्था-  
न) प्रति गमन करै ॥ याजुषी विष्णुपू विष्णुर्दे०। हे विष्णो (व्या-  
पक यज्ञपुरुष) पाद करि तुम्हें अवक्रमण नहीं करता अर्थी-  
तु पाद करि अतिक्रमणदोष मुम्हें न हो ॥ का० ३० १० १७० वसुम-  
तीमिति अवस्थान करि ईशानाभिमुख स्थित होके ॥ अग्निदेव-  
त्यं यजुः। हे अग्ने तेरी छाया (छायावत्समीपवर्तिनी) वसुमती  
(भूमि) की सेवन करूंगा। स एव सेवाप्रकारः कथ्यते। हे वसु-  
मति तू विष्णु (यज्ञ) का स्थान है। अर्थीतु यहां बैठि कर यज्ञ



अ० ३. मयीइमिन्द्र इन्द्रियं दधात्वस्मान्नायौ मघवीनः स-  
चन्ताम् । अस्माकर्तुं सन्त्वाशिषः सत्या नः सन्त्वा-  
शिष उपहृता पृथिवी मातोप मायुपृथिवी माता  
ह्वयतामग्निराग्नी धात्स्वाहा ॥१०॥

का० ३.४.२४. प्रधानयाग के अनन्तर पुरोडाशशेष आशन के स-  
मय होता के आशिष देते यजनान जपे ॥ आशीः प्रतिग्रहणं यजुः ॥  
इन्द्र (परमेश्वर) मेरा अपेक्षित इन्द्रिय (वीर्य) मुझ यजमान में स्था-  
पन करें । किं च देवमानुषमंद करि द्विविध धन और धनवन्त ह-  
म यजमानों को सेवन करें । किं च हम यजमानों के आशिष अभी-  
ष्टार्थ के आशंसन हों । किं च हमारे पूर्वोक्ता आशिषः सत्य हों ॥  
का० ३.४.१८-२०. जब कि होता द्यावापृथिवी का उपह्वान करें  
तब दोनों पुरोडाशों से एक-एक अंश को छै-छै भाग करि आग्नी-  
ध के अर्थ देवों और सो उपहृतेति मन्त्र करि भक्षण करें ॥ पृथिवी दे-  
यजुः ॥ जो यह पृथिवी दीरेवे है सो जगत की माता (निर्मात्री) मु-  
झ करि अभ्यनुज्ञाता और सो पृथिवी मातृत्व करि हमलोंगों  
से भावितासती मुझे हविः शेष भक्षण के अर्थ आज्ञा दे । और  
में आग्नीध (अग्नि कर्म करने वाला) हूं तिस कारण अग्नि हो ति-  
स भाग को भोजन करता हूं इति शेषः । स्वाहा (जाठराग्नि में सुहु-  
त हो ॥१०॥

उपहृतो द्यौष्यतोप मां द्यौष्यता ह्वयतामग्निराग्नी-  
धात्स्वाहा ।

ब्रह्मत्वम् आङ्गिरसो बृहस्पतेरार्षभू  
 देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूषणो हस्ता-  
 भ्याम् । प्रतिगृह्णाम्यग्नेष्टुास्येन प्राञ्जामि ॥१२॥  
 द्वितीयं प्रश्नाति उपहृतोद्यौरिति यजुः द्यौर्दे० । एव द्यौः पिता  
 (जगत्यालक) उपहृत्यतामित्यादि समानार्थ हैं ॥ देवस्य त्वा ।  
 इतः प्रश्नाति ताम् प्रातिष्ठेत्यन्त कण्ड० १३ ब्रह्मत्वम् तिस का अ-  
 ङ्गिरा का पुत्र बृहस्पति ऋषि है ॥ का० २.२.१६ ब्रह्मा देवस्य त्वे-  
 ति प्राशिन्न को गृहण करें ॥ देवस्य त्वा व्याख्याता १२१० प्रतिगृ-  
 ह्णामि देवीपति । प्रतिगृह्णामि स्वीकार करता हूँ इति शेषः ॥  
 का० २.२.२० अग्नेष्टिति विनदांत लगाये प्राशिन्न को ब्रह्मा अ-  
 नामिका अङ्गुष्ठ में ले भोजन करें ॥ प्राजापत्या गायत्री प्राशिन्न-  
 दे० । हे प्राशिन्न अग्नि के मुख करि तुम्हें भक्षण करता हूँ ॥१२॥  
 एतं ते देव सवितर्यज्ञं प्राहुर्बृहस्पतये ब्रह्मणे । ते-  
 न यज्ञमेव तेन यज्ञपतिं तेन मामेव ॥१२॥  
 मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं ते-  
 नोत्वरिष्टं यज्ञं समिमं दधातु । विश्वे देवांस इह  
 मादयन्तामोऽम्प्रतिष्ठ ॥१३॥

का० २.२.२१ समिदाधान करने को आज्ञाप्रदान के अर्थ बोधन  
 किया ब्रह्मा एतं त इत्यादि ओम्प्रतिष्ठेत्यन्त मन्त्र करि आज्ञा दे ॥  
 वैश्वदेवं यजुः । हे देव दातादिगुणयुक्त हे सवितः उत्पन्नकारक  
 इस समय क्रियमाण यह यज्ञ तेरे अर्थ यजमान कहिते हैं । किं



च तुम् कारे प्रेरित देवताओं के यज्ञ में जो ब्रह्मा तिस ब्रह्मा और  
 बृहस्पति के अर्थ भी कहते हैं। जैसे बृहस्पति देवताओं का ब्रह्मा  
 ऐसे ही तदधिष्ठित यह मनुष्य ब्रह्मत्व को करता है किं च तिस  
 हेतु करि अपने यज्ञ को रक्षा करि। तथा तिस ही हेतु से यज्ञपति  
 (यजमान) को रक्षा करि। तथा मुम् ब्रह्मा को पालन करि ॥१२॥  
 किं च हे सवितः अपन्न मन (चित्त) को यज्ञ सम्बन्धि-आज्य में स्था-  
 पन करि। कैसा मन कि भूतमविष्यद्वर्तमान तीनों कालगत पदा-  
 र्थों में गमन शील को। किं च बृहस्पति इस यज्ञ को विस्तार करे,  
 क्यों कि ब्रह्मा है। फिर इस यज्ञ का हिंसारहित करि के स्थापन  
 करे। क्यों कि इडामक्षणा से मध्य में यज्ञ विच्छन्न हुआ इस हेतु क-  
 हा। और सब देवता इस यज्ञ कर्म में तृप्त हों। एवं प्रार्थितः सविता  
 ओम्प्रतिष्ठ यह अनुज्ञा दे। ओम्-अङ्गीकारार्थः। प्रतिष्ठ-प्रयाण  
 कुरु। अर्थात् समिदाधान काल में यजमान के अभिप्रेत प्रयाण  
 को जानि सविता देवता अङ्गीकरि प्रयाण में प्रेरणा करे ॥१३॥

॥ ब्रह्मत्वं समाप्तम् ॥

एषा तेऽग्ने समित्तया वर्धस्व चा च प्यायस्व ॥  
 वर्धिषीमहि च वयमा च प्यासिषीमहि। अग्ने  
 वाजजिह्वाजं त्वा सस्वार्धसं वाजजितुर्धं सम्मा-  
 र्जिम् ॥१४॥ + ए-हि। अ०। अ-जि। दृ०॥ १४॥

का० ३.५.२. एषा त इति होता समिधा को अनुमन्त्रण करे। अ-  
 तः प्राकृतमार्घ्यम्। इयमनुष्टुबग्निदेवत्या। हे अग्ने यह तेरी



को प्राप्त होंगा। अन्न (पुरोडाशादि) की अभ्यनुज्ञा करि में जुहूरूपधारी यजमान प्रकृष्ट उत्साह को पहुंचेंगा॥ उपभृत् को पश्चिम में स्थापन करें अग्नीषोमाविति। जो असुरादि शत्रु हमारे यज्ञ विनाश के अर्थ द्वेष करें और जिस आलस्यादिरूप हमारे अनुष्ठानविरोधी शत्रु को विनाश के अर्थ हम उद्योग करें तिन उभयविध शत्रु को अग्नीषोमों देवों निरा करें। किं च में भी इन द्विविधशत्रुओं को उपभृद्रूप पुरोडाशदेवता की अनुज्ञा करि तिरस्कार करूंगा॥ उत्तरी मन्त्री दर्श देवता विषयो समानार्थी॥ १५॥

वसुभ्यस्त्वा रुद्रेभ्यस्त्वा दित्येभ्यस्त्वा संजानाथाद्य-  
वापृथिवी मित्रावरुणो त्वा वृष्ट्यावताम्। व्यन्तु  
वयोऽक्तं रिहाण मरुतां पृषतीर्गच्छ वशां पृश्नि-  
भूत्वा दिवं गच्छ ततो नो वृष्टिमावह। चक्षुष्या  
अग्नेऽसि चक्षुर्म पाहि॥ १६॥ +

का० ३५२४० अध्वर्यु जुह्व उपभृत् का प्रोक्षण करि पूर्ववत् यथा स्थान लाके उपभृत् को स्थापन करि जुह्व से मार्जन करें वसुभ्यस्त्वेति प्रति-  
मन्त्र करि प्रत्येक परिधियों को॥ वसुभ्यस्त्वेति द्वे १२ देवीबृहती आदित्ये-  
भ्यस्त्वा ३ देवीपङ्क्तिः त्रयाणां परिधयो देवता। हे मध्यम परिधे वसुदे-  
वताओं की प्रीत्यर्थ तुम्हें मार्जन करता हूँ। एवं दक्षिणोत्तरपरिधिमा-  
न्त्री व्याख्याये। तीनों परिधियों के मार्जन करि तीनों सबनों के देवता तृप्त  
होते हैं इति भावः॥ का० ३६३ संजानाथामिति अध्वर्यु प्रस्तरग्र-

हण करे ॥ प्रस्तरदेवत्यं यजुः ॥ हे द्यावापृथिवी (धुलोकभूलोकदे-  
व्यो) तुम गृह्यमाण प्रस्तर को भले प्रकार जानों ॥ किं च हे प्रस्तर  
मित्रावरुणौ (प्राणापानवायू) जलवर्षण करि तुम्हें रक्षा करें ॥ वायु  
वैवर्षस्येष्टे १.८.३.१२ इत्युक्तवात् वायु वर्षा का स्वामी है ॥ और  
र वोह अध्यात्मगतः प्राणोदानरूप मित्रावरुणशब्दसे कहिला  
ता है ॥ और सो प्रस्तररूपयजमान की वृष्टि से रक्षा करे ॥ का  
३.६.५.१० ग्रहण किये प्रस्तर के अग्र मध्यमूल भागों को क्रम  
से जुहु उपभुत् ध्रुवास्थित घृत से लिप्त करे व्यन्तु वय इति ॥  
प्रास्तरं यजुः ॥ यक्षिरूपापन्न गायत्र्यादि छन्द मृतलिप्त प्रस्तर  
को लेंके आस्वादन करते हुए जावें ॥ का. ३.६.८ मरुतामिति  
एक तृण को प्रस्तर से पृथक् करिके प्रस्तर को नीचे ले अग्नि  
में डालें ॥ प्रस्तरदेवत्योपरिष्ठाहृहती कपिहृष्टा चतुर्थः पादश्रा  
ग्नेयः ॥ हे प्रस्तर तू मरुन्नामक देवताओं सम्बन्धिनी पृषतीः (वा  
हनरूपा चित्रवर्णा अश्वारुणौ) को प्राप्त हो (वायुवाहनवहेग, अ-  
न्तरिक्ष को जा ॥ वशा (स्वाधीना) पुष्णि (अल्पशरीरगो) (कामधेनु  
वत्पुष्पिकरी) होकर स्वर्ग को जा ॥ फिर स्वर्गप्राप्ति के अनन्तर हमा-  
रे अर्थ भूलोक में वृष्टि ला ॥ यद्वा ॥ वशा पुष्णि (पृथिवी) सम्बन्धि  
भागों को लेकर स्वर्ग को जा ॥ हे प्रस्तर तू अन्तरिक्ष को जाके तत्र  
स्थ सवाहन मरुतों को तृप्त करिके स्वर्ग को जाकर और देवता-  
ओं को तृप्त करिके वृष्टि करि इत्याहुति परिणाम सूचित इति भा-  
वः ॥ का. ३.६.१५ चक्षुष्या इति अपने को स्पर्श करे ॥ हे अग्ने

यजमानः वे प्रम्न इति १.८.३.१२

प्रास्तरं यजुः ॥ यक्षिरूपापन्न गायत्र्यादि छन्द मृतलिप्त प्रस्तर को लेंके आस्वादन करते हुए जावें ॥ का. ३.६.८ मरुतामिति एक तृण को प्रस्तर से पृथक् करिके प्रस्तर को नीचे ले अग्नि में डालें ॥ प्रस्तरदेवत्योपरिष्ठाहृहती कपिहृष्टा चतुर्थः पादश्राग्नेयः ॥ हे प्रस्तर तू मरुन्नामक देवताओं सम्बन्धिनी पृषतीः (वाहनरूपा चित्रवर्णा अश्वारुणौ) को प्राप्त हो (वायुवाहनवहेग, अन्तरिक्ष को जा ॥ वशा (स्वाधीना) पुष्णि (अल्पशरीरगो) (कामधेनु वत्पुष्पिकरी) होकर स्वर्ग को जा ॥ फिर स्वर्गप्राप्ति के अनन्तर हमार

तू जिस कारण ज्वाला से अन्धकार को निवारण करिके नेत्रों का पालक है इस हेतु मेरे नेत्रों को पालि (प्रस्तर प्रहरण प्रसक्त नेत्रों के उपद्रव को निवारण करि ॥१६॥

यं परिधिं पर्यधत्वा अग्ने देव परिधिर्गुह्यमानः।  
तं तः एतमनु जोषम्भराम्येष नेत्रदपचेतया-  
ना अग्नेः प्रियं पाथोऽपीतम् ॥१७॥†

का० ३.६.१७. अध्वर्यु परिधिओं को आहवनीयाग्नि में डाले यं परिधिमिति प्रथम को ॥ विरडूपात्रिष्टुबाग्नयी यजुरन्ता। अग्नेः प्रियमिति यजुः। देवलदृष्टा। हे अग्ने देव आहवनीयाप-  
रि असुर करि संरुध्यमानः सन् तू जिस परिधि को पश्चिम दि-  
शा में असुरोंपद्रवनिवारण के अर्थ स्थापन करता हुआ। तिस-  
तेरे प्यारे इस परिधि को अग्नि में डालता हूँ। अनुः (भिन्न-  
क्रमः)। यह परिधि तेरे सकाश से अपगत चित्त न हो। तुरू में  
ही स्थित हो ॥ का० ३.६.१७. अग्नेः प्रियमिति दक्षिणोत्तरप-  
रिधिओं को साथ ही डाले ॥ हे परिधी तू म आहवनीयाग्नि-  
के अभिप्रेत अन्न (अन्नत्व) को प्राप्त होओ ॥१७॥

सथं स्रवभागा स्थेया बृहन्तः प्रस्तरेष्टाः परिधि-  
योश्च देवाः। इमां वार्विमभि विश्वे गृणान्त आ-  
सद्यास्मिन्वर्हिषि मादयध्वं स्वाहा वाट ॥१८॥†

का० ३.६.१८. सथं स्रवभागा इति सथं स्रवों को होमें ॥ वैश्व-  
देवी त्रिष्टुब्यजुरन्ता। स्वाहा वाडिति यजुः। सोमसुक्ष्मदृष्टा।

† सं-मं. अ. १. स्वा-ट. १८॥

† यं-ते। अ. १. अ-मू. १७॥

† सं-मं. अ. १. स्वा-ट. १८॥

नम उपशब्दाभ्यां यत्तस्य यदतिरिक्तं पञ्च न्यूनं जातं तदगूर्णं जायते । तथा च श्रुतिः । स यदतिरेचयति तन्नम-  
स्कारेण शमयति अथ यदगूर्णं करोषुप चेति तेन तदगूर्णं भवतीति

का० ३६१४ जुह उपभूत को शकर की धुरि (बैल जोड़ने के स्था-  
न) पर घृताची इति रखे ॥ सुत्रो देवते प्राजापत्यानुसूप हे जुहूप  
भृतो तुम घृताच्यो (घृत को प्राप्त हों) तथाविधे तुम धुर्यो (बैलों)  
को रक्षा करो। किं च तुम सुखरूप हों तिस हेतु हमारे सुख को  
स्थापन करो ॥ का० ३६२१ यज्ञ नमश्च त इति वेदि को स्पर्श क  
रे ॥ यज्ञ देवत्यं यजुः अस्य मन्त्रस्य श्रूयं यवमान् कृषिः उद्वाल  
वान् धानान्तर्धान् इति पञ्चर्षयः ॥ हे यज्ञ तेरे अर्थ नमस्कार औ  
र उप (वृद्धि) हो ॥ किं च यज्ञ के शिव में संतिष्ठस्व (अन्यूनानि

रिक्त यज्ञ को करें †। मेरी शोभनयाग में प्राप्ति करें ॥१५॥

अ० ५० अग्नेऽब्ध्यायोऽशीतम पाहि आ दिद्योः पाहि प्रसि-  
त्ये पाहि दुरिच्छे पाहि दुरद्वन्याऽअविष नः पितुं  
कृणु सुषदा योनौ स्वाहा वाङ्मनये संवेशयतये  
स्वाहा सरस्वत्ये यशोभगिन्ये स्वाहा ॥२०॥ †

का० ३०७० १७० सुक् और सुवा को होम के अर्थ अध्वर्यु ग्रहण  
करें। अग्नेऽब्ध्यायविति संस्त्रवों को होमें ॥ गार्हपत्याग्निदेवत्यं य-  
जुः ॥ हे अब्ध्यायो (अहिंसितयजमान) हे अशीतम (भोक्तृत्तम वा  
व्यापकतम) हे अग्ने गार्हपत्य मुझे वज्र (शत्रु प्रयुक्त वज्रस-  
म आयुध) से रक्षा करि। प्रसिति (बन्धनहेतु भूतजाल) से मुझे रक्षा  
करि। अशास्त्रीययाग से मुझे र०। दूषित भोजन से मुझे ॥ किं-  
च हमारे पितु (अन्न हविरूप) को विष रहित करि। सुषदा यो-  
नौ (सम्यगवस्थानयोग्य घर में) मुझे स्थापन करि इति शे-  
षः ॥ यहा घर में स्थित हमारे अन्न को अविष करि। स्वाहा  
वाङ्मिति पदे व्याख्याते ॥ का० ३०७० १८० दक्षिणाग्नि में होमें  
अग्नये इति और सरस्वत्ये इति ॥ अग्नये दक्षिणाग्निदे० स-  
रस्वत्ये लिङ्गोक्त दे० हे यजुस्त्रिष्टुबो। स्त्रीपुरुष के अभिलाष-  
पूर्वक शयन के पति अग्निके अर्थ स्वाहा (हवि दिया ॥ जीवन  
पर्यन्त पुरुष के यश (प्रशंसा) की बहिनि सरस्वती (वाग्वृष)  
के अर्थ स्वाहा ॥२०॥

वेदोऽसि येन त्वं देव वेद देवेभ्यो वेदोऽभवस्तेन

महं वेदो भूयाः॥ देवा गातुविदो गातुं विन्त्वा गातुमि-  
 त॥ मनसस्यत इमं देव यज्ञं स्वाहा वाते धाः ॥२१॥  
 का० ३.८.१. यजमानपत्नी वेद (कुशमुष्टिपूलक) को खोलने वेदो-  
 सीति॥ वेददेवत्यं यजुः॥ हे कुशमुष्टिनिर्मित पदार्थ तू वेद (ऋगाद्या-  
 त्मक यज्ञा ज्ञाता) है। हे द्योतनात्मक वेद जिस कारण करि तू देवताओं  
 का ज्ञापक हुआ तिसी कारण मेरा ज्ञापक हो॥ का० ३.८.४. समिष्ट-  
 यजु हमें देवा गातुविद इति॥ मनसस्यति दृष्टा विराट् चन्द्रस्का वा-  
 तदेवत्या॥ अस्याः पूर्वार्धेन देवता विसृजति॥ हे गातुविदः (यज्ञवेता-  
 रे देवाः) हमारा यज्ञ प्रवृत्त हुआ यह जानिकर यज्ञ प्रति आण वा-  
 गातुं (मन्तव्य-मार्ग) हमारे यज्ञ करि तुष्ट हुआ स्वमार्ग को जाओ। ग-  
 वं देवान्विसृज्य चन्द्रं प्रत्याह॥ हे मनसस्यते (मनके अधिपते चन्द्रः) वा-  
 देवताओं के यजने के लिये मन के प्रवर्तक परमेश्वरः तं प्रत्युच्यते॥ हेम-  
 नसस्यते (परमेश्वरः) हे देव यह अनुष्ठित यज्ञ स्वाहा (तं हाथ में  
 देता हूँ) और तू तिस यज्ञ को वायुरूप देवता में स्थापन करि वाते  
 हि यज्ञोऽवतिष्ठते॥ तदुक्तं श्रुत्या॥ वायुरेवाग्निस्तस्माद्यदेवाध्वर्यु-  
 रुत्तमं कर्म करोत्यथैतमेवाप्येतीति॥ २१॥

सम्बर्हि रङ्गाथं हविषा घृतेन समादित्येव मुमिः सम्म-  
 रुद्धिः॥ समिन्द्रो विश्वदेवेभिरङ्गा दिव्यं तमो गच्छतु  
 यत्स्वाहा॥ २२॥

का० ३.८.५. सम्बर्हिरिति बर्हि हमें॥ लिङ्गोक्तदेवत्या त्रिष्टुब्धिरङ्गाः  
 इन्द्रहविः संस्कारयुक्त घृत करिके बर्हि हैं भले प्रकार अञ्जनीपेत (लिप्त)

मनसस्यते मन के अधिपते चन्द्रः वा-  
 देवताओं के यजने के लिये मन के प्रवर्तक परमेश्वरः तं प्रत्युच्यते॥ हेम-  
 नसस्यते (परमेश्वरः) हे देव यह अनुष्ठित यज्ञ स्वाहा (तं हाथ में  
 देता हूँ) और तू तिस यज्ञ को वायुरूप देवता में स्थापन करि वाते  
 हि यज्ञोऽवतिष्ठते॥ तदुक्तं श्रुत्या॥ वायुरेवाग्निस्तस्माद्यदेवाध्वर्यु-  
 रुत्तमं कर्म करोत्यथैतमेवाप्येतीति॥ २१॥



करे। और केवल सो इन्द्र ही नहीं किं नु आदित्य वसु मरुत और विश्व नामक गण देवों सहित लिप्त करे। वस्वादि सहित इन्द्र करि लिप्त करी सो बहि जो कि दिव्य नभो (आदित्यलक्षणा ज्योति) है तिसै प्राप्त हो। स्वाहा (यह बहि देवता के उद्देश करि दिया)॥२२॥

कस्त्वा विमुञ्चति स त्वा विमुञ्चति कस्मै त्वा विमुञ्चति तस्मै त्वा विमुञ्चति। पोषय रक्षसाम्भोगोऽसि ॥२३॥ + - + क-य।अ.१.र-सि.दू०॥२३॥

का० ३.८.६. अध्वर्यु आहवनीयाग्नि को परिक्रमा दे वेदी के दक्षिणभाग में उदङ्मुख बैठि प्रणीता ले वेदी के मध्य में रख तहां ही ओंधावे कस्वेति॥ कस्वेति यजुः प्रजापतिदे०। व्याख्यातो अध्या० १०.६. मन्त्रः तहां यज्ञयोग में परं तु यहां यज्ञविमोक में नियुक्त है। पोषय (यजमान के पुत्रादिकों के पोषण के अर्थ तुम्हें) ओंधाता हूं इति शेषः +॥ का० ३.८.७. पुरोडाशकपाल करि कृष्णाग्नि के नीचे ही कणों को उत्कर में डालें॥ रक्षसामिति याजुषी गायत्री रक्षो देवता। हे कण समूह तू रक्षसों का भाग है (तिन्हों के नीचजातित्व से निरुष्टभाग युक्त है)॥२३॥

अथ याजमानम्

अ० ६. सं वर्चसा पर्यसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सर्गं शिवेन। त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रक्षोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम्॥२४॥

+ यो वे यज्ञं यजुष्य न विमुञ्चत्यप्रतिशान्तिं वे स भवतीति श्रुत्यन्तरवचनात्।

त्वष्ट्रदेवत्या त्रिष्टुप्। का० ३.८.८-१० पूर्णपात्र की ले पूर्व से आहवनीय को फेर दे दक्षिण से उत्तर्गभिमुख यजमान की अञ्जलि में संतत जल छोड़े छूटते पूर्णपात्र को यजमान संवर्चसेति अञ्जलि करि गृहण करे फिरि चुपके से मुँह धोवै ॥ अर्थः। ब्रह्मतेज करि हम संगत हुए। क्षीरादिरस करि संग०। तनूः (अनुष्ठानक्षम शरीरावयवों वा भार्यापुत्रादि) करि संग०। शान्त कर्म श्रद्धा युक्त मन करि संग०। यज्ञ को समीप जाते मनुष्य के ब्रह्मतेजादि प्राप्त होते हैं तिनहें फिरि भी इस से पूर्ण करता है। किं च शोभनदानः त्वष्टा धनों को विविध स्थापन करे। हमारे शरीर का जो न्यून अङ्ग तिसे न्यूनत्वपरिहारेण अनुकूल करिके शोधै। अर्थात् धन शरीर की पुष्टि करे ॥ २४ ॥

दिवि विष्णुर्व्यक्रंस्त जागतेन छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्देष्टि यं च वयं द्विष्मोन्नरिक्षे विष्णुर्व्यक्रंस्त त्रैष्टुभेन छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्देष्टि यं च वयं द्विष्मः पृथिव्यां विष्णुर्व्यक्रंस्त गायत्रेण छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्देष्टि यं च वयं द्विष्मोस्मात्तन्नादस्यै प्रतिष्ठायाऽअगन्म स्वः सं ज्योतिषाभूम ॥ २५ ॥ +

का०। ३.८.११.१२ यजमान अपने आसन से उठि वेदी की दक्षिणश्रीणि से ले आहवनीय के पूर्व में तीनि विष्णुक्रमसंज्ञक प्रदक्षिणा (विष्णुपाद बुद्धि करि अपने पाद का भूमि में क्षपण) क-

+ दि-ष्मः। अ०। अ-ष्मः। त्रै०। पृ-ष्मः। उ०। अ-त्। अ०। अ-पै। ल०। अ-स्वः। शा०। सं-म। इ०॥ २५॥

रे दिवि विष्णुरित्यादि तीन मन्त्रों वा पृथिवी अन्तरिक्षदिवी-  
 त्यादि ऊँचे आरोहण क्रम सैं ॥ दिवि विष्णुरिति त्रीणि यजूंश्च  
 यि विष्णुदेवत्यानि । विष्णु (यज्ञपुरुष) जगती छन्दस्स्य अपने  
 पाद सैं द्युलोक में विशेषेण परिक्रमा करता हुआ । तथा सति त-  
 तो द्युलोक सैं निर्भक्तः । भागरहित करिके निकाला । कोन कि जो हमें देखितीति  
 नहीं करता और जिसें देखि हम गीति नहीं करते सो द्विविध शत्रु ॥ एव मुत्तराव-  
 पि विष्णुक्रममन्त्रो आख्येयौ ॥ का० ३. ८. १३. अस्मादन्नादिति  
 अपने भाग को देखे ॥ अस्मादन्नादिति देवी बृहती भागो दे०  
 जो यह भाग दीखता है मुझ यजमान के भाग सैं निर्भक्त इति  
 वाक्य शेषोऽनुवर्तनीयः ॥ का० ३. ८. १४. अस्मै प्रतिष्ठाया इति  
 भूमि को देखे ॥ याजुषी गायत्री भूमिर्दे० । इस साम्ने दृश्यमाना  
 प्रतिष्ठा हेतु यज्ञभूमि सैं निर्भक्त इत्यादि पूर्ववत् ॥ का० ३. ८. १५.  
 अगन्मस्वरिति पूर्व को देखे ॥ देवी बृहती देवा देवता । पूर्वदिशामें  
 स्थिति स्वः (सूर्य वा आकाश) को हम यज्ञानुष्ठान करि प्राप्त हुऐ ॥  
 का० ३. ८. १६. संज्योतिषेत्याहवनीय को देखे ॥ याजुषी गाय-  
 त्री आहवनीयाग्निदे० आहवनीयलक्षणज्योति करि हम  
 संगत हुए ॥ १५ ॥

स्वयम्भूरसि श्रेष्ठो रश्मिर्वचोदा असि वर्चो मे देहि ।

सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते ॥ १६ ॥ +

का० ३. ८. १७. स्वयम्भूरिति सूर्य को देखे ॥ सूर्य देवत्यं यजुः ॥ हे सूर्य  
 तू स्वयंसिद्ध है । श्रेष्ठ (प्रशस्यतम) रश्मि (माण्डलशरीर) अभिमानी

हिरण्यगर्भः है। सूर्य की सप्त रश्मियाँ हैं। चारोंदिशा में चारि। एक ऊपर। एक नीचे। सातवीं मण्डलाभिमानि हिरण्यगर्भ पुरुष वोह श्रेष्ठ है सो तू है। यतः तू वर्चोदा (तेजकादाता) है + अतः मुझे ब्रह्म तेज दे ॥ का० ३० १५० सूर्यस्येति प्रदक्षिणा करे ॥ याजुषी बृहती सूर्य दे० सूर्य की सम्बन्धिनी आवर्तन को अनुसरण करि में भी आवर्तन करता हूँ ॥ २६ ॥

अग्ने गृहपते सुगृहपतिस्त्वयाग्नेऽहं गृहपतिना भूयामर्षं सुगृहपतिस्त्वमयाग्ने गृहपतिना भूयाः ॥ अस्थूरि रौ गार्हपत्यानि सन्तु शतर्षं हिमाः सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते ॥ २७ ॥ + अ-माः ॥ अ० स-र्ते ॥ इ० ॥ २७ ॥

का० ३० २१० अग्ने गृहपते इति गार्हपत्याग्नि को उपस्थान (प्रकाश) करे ॥ ब्राह्मी बृहती गार्हपत्याग्नि दे० हे मेरे गृह के पालक हे अग्ने तू गृहपालक के प्रसाद करि में शोभन गृहपालक होऊँ। तथा हे अग्ने तू भी मुझे गृहपति की करी सेवा से शोभन गृहपति हो। एवं सति हम गृहपतियों (स्त्रीपुरुषों) करि निष्पाद्य कर्म शतवर्ष पर्यन्त अस्थूरीव हों (निरन्तर अव्यवहित प्रवर्ते) एक पार्श्व में बलीवर्द युक्त शकट को स्थूरि कहिते हैं। लुप्तोपमानम् बलीवर्द युक्त शकट जैसे निरन्तर अव्यवहित चर्ते हैं तैसे हम गृहपतियों के हों ॥ का० ३० २३० सूर्यस्येति प्रदक्षिणा दे ॥ याजुषी बृहती सूर्य दे० व्याख्याता २६० इ० ॥ २७ ॥

अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषं तदशकं तन्मेऽराधीद-

† का० ३० १८० अथवा वर्चोदा के स्थान पर पुत्ररा धनरा गोदा अथवा इत्यादि जो काम्य रखता है तिसमें उच्चारकरे ॥

महं य एवास्मि सोऽस्मि ॥२८॥†

का० ३. ८. २४. व्रतग्रहण में दो मन्त्र कहे गये अध्या० १. का-  
ण्डी ५. तिन्हें के मध्य जिस (पहिले वा दूसरे) से व्रतादान किया  
हो यहां भी तिसी के अनुसार से व्रत की विसर्जन करें ॥ अग्ने  
व्रतपतः इति साम्नी यङ्क्तिः इदमहमिति याजुषी यङ्क्तिः हे आ-  
ग्नेये। हे अग्ने हे व्रतपते (कर्मपालक) मैं नें कर्म का अनुष्ठान  
किया और तेरे प्रसाद से कर्मशक्त हुआ और तूने मेरा कर्म सि-  
द्ध किया ॥ द्वितीयो मन्त्रः ॥ हे अग्ने यह कर्म समाप्ति करि जो मैं  
पहिले था वोह ही मनुष्य हूं ॥२८॥

॥ इति यजमानर्धसमाप्तम् ॥

॥ इति भाष्येषष्ठोऽनुवाकः ॥

॥ इति दर्शपूर्णमासेष्टि मन्त्राः समाप्ताः ॥

अतः परं पिण्डपितृयज्ञमन्त्रास्तेषां प्रजापतिर्ऋषिः

अ० ७० अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा सोमाय पितृमते स्वा-  
हा। अपहता असुरा रक्षा धंसि वेदिषदः ॥ २४ ॥ +  
का० ४० १०७० अग्नि से थोड़े दके चावल कि जिन्हों से स्थाली  
पूरण न होवै आसादित आज्य करि अभिघारि दक्षिणतः  
निकालि दक्षिणाग्नि के पूर्वमार्ग करि प्रदक्षिण उत्तरतः ला-  
करि सव्य करिके ठैरि तीनि समिधाँ आधान करि वैरि प्रा-  
कुमुद मेक्षण करि अग्नये और सोमाय दो मन्त्र करि चरु  
की होमें ॥ हे देव देवत्ये यजुयी स्वाहाकारस्य श्रुतेः। कवयः  
(कान्तदर्शिनः) पितरों के सम्बन्धि हवि के बहाने का अधि-  
कार जिस का बौह कव्यवाहन तिस अग्नि के अर्थ स्वाहा (हवि दिया)।  
पितृसंयुक्त सोमनामक देवता के अर्थ हवि दिया ॥ स्वाहाकारेण ब-  
षट्कारेण वा देवेभ्योऽन्नदानश्रुतेर्देवाविमो मन्त्रौ ॥ का० ४० १०८०  
दक्षिण से उल्लेखन करे अपहता इति ॥ आसुरी उष्णिक् आसु-  
रम्। वेदी में स्थित असुर वेदी के सकाश से निकाले तथा राक्ष-  
स भी निकाले (असुर और राक्षस जाति हैं देवताविरोधीओं की) ॥ २४ ॥  
ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना असुराः सन्तः स्वश्रया  
चरन्ति। परापुरं निपुरं ये भरन्त्यग्निमन्त्रान्तीका-

कात्प्रणुदात्यस्मात् ॥३०॥

का० ४० १० ६० रेखा के उल्मुक को दक्षिणाम्नि के एकदेश में स्थापन करें ॥ ये रूपाणीति त्रिष्टुप् कव्यवाहनग्निदेवत्या ॥ (स्वधा) पितृकान्न निमित्त पितरों का अन्न हमलोग भक्षण करें इस हेतु करि अपने रूपों को प्रतिमुञ्चमान (पितृसमान रूपों को स्वीकार) करते हुए जे असुर देवविरोधि पितृयज्ञस्थान में प्रसरते हैं । तथा जे असुर पग पुरों (स्थूलदेहों) और निपुरों (सूक्ष्मदेहों) को धारण करते हैं अपने असुरत्व छिपाने के लिये । उल्मुकरूप अग्नि इस लोक (पितृयज्ञस्थान) से तिन असुरों को प्रकर्षण निकाले ॥ ३० ॥

अत्र पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वम् ।

अमीमदन्त पितरो यथाभागमावृषायिषत ॥३१॥

का० ४० १० १३० १४० अत्र पितरः इति पिण्डों के संमुख संहितास्वर करि पटि के प्रदक्षिण लौटि उदङ्मुख हो यथाशक्ति आसधारण करि बैठे । प्रदक्षिण फिरि लौटि कर पिण्डसंमुख हो अमीमदन्त इति संहितास्वर से ही पढ़ें ॥ हे साम बृहत्यो पित्र्ये । हे पितर्यो तुम इन बर्हिओं पर हृष्ट होओ । फिरि हवि में यथा भाग (अपने-अपने भाग) को बाँटि भले प्रकार वृषवत् आचरो (जैसे वृष अपने अभीष्ट घास को प्राप्त हो तृप्तिपर्यन्त स्वी करता है तद्वत् स्वी करो ॥ जिन पितरों प्रति हृष्ट होओ यह कहा ते हृष्ट हो यथाभाग वृषवत् स्वी करते हुए अर्थात् अपने भाग को खाते हुए ॥३१॥

नमो वः पितरो रसाय नमो वः पितरः शोषाय

नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरः स्वधा-  
ये नमो वः पितरो यौराय नमो वः पितरो म-  
न्यवे नमो वः पितरः पितरो नमो वो गृहान्नः  
पितरो दत्त सतो वः पितरो देवैतहः पितरो वासु-  
आधत्त ॥३२॥+

का० ४० १० १५ नमो व इति छै चार नमस्कार करे ॥ नमो वः १-  
५ यजुर्वेदहयः षष्ठ्यर्ची उषिणक् ई षड्विज्जोक्तदेवत्याः ॥ षड्वाक्-  
तवः पितर इति श्रुते रसादि शब्देन वसन्तादि षडृतव जन्यन्ते ॥  
ते च पितृणां स्वरूपभूता अतस्तेभ्यो नमस्करोति ॥ हे पितरः ॥  
तुम्हारे रस (रसभूत वसंत) के अर्थ नमस्कार ॥ क्यों कि मध्यादि  
रस वृक्षों में उत्पन्न होते हैं इस हेतु रसशब्द करि वसन्त है ॥ अ-  
र्थात् तुमरूप वसन्त के अर्थ नमः ॥ १ ॥ एवमग्नेतना मन्त्राव्य-  
ख्येयाः ॥ शोषाय (शुष्क होती हैं ओषधीं जहं ग्रीष्म ॥ २ ॥ जीव (जीव-  
नहेतुजलवर्षनेहारी वर्षा ॥ ३ ॥ स्वधा (शरद् स्वधा वै शरत्स्वधा  
वै पितृणामन्नमिति श्रुते ॥ शरद् में ही प्रायशः अन्न होते हैं ॥ ४ ॥  
घोर (विषम हेमन्त हेमन्त शीत प्रचुरत्व करि दुःखदान होनेसे  
घोर है ॥ ५ ॥ मन्यु (क्रोध तद्रूपी शिशिर) शिशिर ही ओषधीं  
जलाती हैं ॥ हे पितरः ॥ एवंविध तुम ऋतुरूपी ॥ के अर्थ नम-  
स्कार हे पितरः ॥ तुम्हारे अर्थ नमः इत्यभ्यास आदरातिशया-  
र्थः ॥ ६ ॥ गृहान्न इति साम्नी अनुष्टुप् पितरो देवता ॥ हे पितरः ॥  
हमारे अर्थ धरौ (भार्या पुत्रपौत्रादिकों) को दे ॥ हे पितर ओ तु-



सूत्रों से देवें। अर्थात् दत्ते हुए हमारा द्रव्यक्षय कभी नहो॥ का० ४० १० १६-१८ एतद् इति प्रति पिण्ड के ऊपर तीन-तीन सूत्र स्थापन करें वा ऊर्ण के वस्त्र से ऊर्ण निकालि वाप-चाशवर्ष से ऊँची अवस्था का यजमान अपने हृदय के रोमों से पिण्डों को ढँके॥ आज्ञापत्या गायत्री पितरो दे० हे पितरःओ तुम्हारे अर्थ यह सूत्र ही परिधान हो॥ ३२॥

आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम्। यथेह पुरुषोऽसत्॥ ३३॥

का० ४० १० २२ आधत्तेति धर्मयत्नी पुत्रकामा मध्यमपिण्डको प्राशन करें॥ पितृदेवत्या गायत्री हे पितरःओ जैसे जिस प्रकार यह पुरुष देवपितृ मनुष्यों के अपेक्षितार्थ का पूरण करने हारा होवे तैसे इस ही ऋतु में कुमार (पुत्ररूप) गर्भ को तुम सम्पादन करें। कैसे कुमार कि पुष्करस्रज। जैसे अश्विनी कुमार देवताओं के वैद्य कमलों की माला धारण करें हैं तिस तुल्य को। अश्विसमान कहने से रोगहीन और सुन्दर पुत्र आधान करो यह सूचना की॥ ३३॥

ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्नुतम्॥

स्वधा स्थ तर्पयत मे पितॄन्॥ ३४॥

इति सर्गं हितायां सप्तमोऽनुवाकः॥

इति श्री शुक्लयजुषि माध्यन्दिनीयायां वाजसनेयस-

सर्गहितायां दीर्घपाठे द्वितीयोऽध्यायः॥ ३॥

का० ४. १. १४. ऊर्जं वहन्तीति उदपात्रस्थं अवनेजनाव-  
शिष्ट उदक को पिण्डों के ऊपर सींचें ॥ अबदेवत्या विराट् ।  
हे जल तुम स्वधा (पितरों की हविः स्वरूपा) हो इस हेतु मेरे  
पितरों को तृप्त करौ। कैसी जल कि परिस्रुत् (पुष्पों से निक-  
लेसार) को वहतीओं। और वोह सार ऊर्जशब्द घृतशब्द प-  
यशब्द करि तीन विध है। तहां ऊर्ज शब्द करि अन्नगत स्वा-  
दु है और घृत तथा पय प्रसिद्ध हैं। और वोह त्रिविध भी कैसा  
कि अमृत (सर्वरोगनाशक और मृत्युनाशक। पुनः कैसा कि  
कीलाल (सर्वबन्धनिवर्तक) है। ऐसे त्रिविधसार वहने से ज-  
लों का पितृतर्पकत्व उपपन्न है ॥ ३४ ॥

इति श्री गिरिधरभाष्ये सप्तमोऽनुवाकः ७

श्री वेदार्थप्रदीपेन तमो हार्दं निवारयन्  
पुमार्थाश्चतुरो देयाद्यज्ञपुरुषः सनातनः २

श्रीमच्छुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीय शारवा ध्येत् वैया-  
घ्रपदान्वय श्री विश्वामित्र पुराधिप श्रीमज्जयकिशोरदेववर्मा-  
त्मज रौक्मिणेय नृपति गिरिप्रसाद रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपेगिरि-  
धरभाष्ये इधमप्रोक्षादिपितृयज्ञान्तो द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

हरिः ओम्

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरुपं च साधनैर्वहु रूपकम्  
स्वानन्द दायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः ३

अग्न्याधेयं प्रजापतेराधं देवानामग्नेर्गन्धर्वाणां वा

अ० १० समिधाग्निं दुवस्यत घृतेर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन्ह  
व्या जुहोतन ॥ १॥

ओं नमो याज्ञवल्क्याय

राज्ञा गिरिप्रसादेन श्रीवेदार्थप्रदीपके

अग्न्याधानादिपित्र्यान्तस्तृतीयोऽध्याय इर्यते ३

प्रथमद्वितीय अध्यायों में दर्शपौर्णमासेष्टिविषयक मन्त्र कहे  
अव अष्टमी कण्डिका पर्यन्त आधान के मन्त्र कहे जाते हैं ॥  
का० ४० ७० १० अमावास्या में अग्न्याधान करना इस से आदि  
ले कालविशेषादि कों और ब्रह्मोदनपाकपर्यन्त कार्यों को क-  
हिकर पीछे यह कहिता है ॥ का० ४० ८० ४-७० चारि ऋत्विजों  
करि भोजनयोग्य ओदन पकाकर स्थाली में बाहिर निकालि  
तिस के मध्य घृतसेन के अर्थ गर्त करि तिस में घृत भरि आश्व-

त्थी तीनि समिधाँ उसी घृत में डुबो समिधाग्निमिति तीनि ऋचाओं से प्रत्येक समिधा को अग्नि में आधान करे। पहिली दूसरी तीसरी ऋचा से आधान करे चौथी को जपे। वा पहिली से आधान करि दूसरी को जपे फिर तीसरी चौथी करि आधान करे॥ चतस्रणां गायत्री छन्दोऽग्निर्देवता १ विरूपाङ्गिरसहृष्टा २ वसुश्रुतः ३ भर्द्वाजः॥ मन्त्रार्थस्तु॥ हे ऋत्विजः तुम समिधा (मलीभाति से दीपन करिये) है अग्नि तिस काष्ठरूपा समित्) करि अग्नि को परिचरो। पूर्णहृति सम्बन्धि होष्यमाण घृत करि अतिथि (आतिथ्यकर्म करि पूजनीय अग्नि) को बोधन (प्रज्वलित) कराओ। इस प्रज्वलित अग्नि में नानाविध हविषों को सर्वतः होमो॥ १॥

सुसमिधाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन। अग्नये जातवेदसे॥ २॥

हे ऋत्विजः अग्नि के अर्थ तुम घृत करिके होम करो। कैसे अग्नि कि सुसमिध (शोभनदीप्त) अत एव शोचिष्मन्त (ज्वलित) जातवेद (जात वेनि वा वेदयति वा जात प्रज्ञान)। कैसे घृत कि तीव्र (स्वादुतम वा समग्र वा पटुतर) ग्रहणोद्वासनाधिश्रयणावेशणादि करि संस्कृत॥ २॥

तं त्वा समिधिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि। बृहच्छौचा यविष्ट॥ ३॥

हे अङ्गिरः (तत्तद्भागों में गमन्वन्नग्ने) तिस (उक्तगुणस्तथाविध) तुम्हें समिधाओं और संस्कृताज्य से प्रबृद्ध करते हैं। हे यवि

ष्ट्र (कदाचिदपि स्थविरत्वरहित) प्रवृद्ध जैसे जैसे दीप्त हो ॥३॥  
उप त्वाग्ने हविर्युक्ता घृताक्ताः ये समिधाँ तुम् प्रति प्राप्त हों। हे हर्यत  
मम ॥४॥

हे अग्ने हविर्युक्ता घृताक्ताः ये समिधाँ तुम् प्रति प्राप्त हों। हे हर्यत  
(प्रेप्सावन्) मेरी समिधाँ तू सेवन (अङ्गी) करि ॥४॥

अ. २. भूर्भुवः स्वर्धैरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा। तस्यास्ते पृ-  
थिविदेवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्त्रादमुन्नाद्यायादधे ॥५॥†

का. ४. २. १. १६. आपः हिरण्य ऊषा आरून्कर और शर्करा इन  
पाँच सम्भारों का सम्पादन करि स्फ्य से लिरवी हुई शुद्ध भूमि में  
तिन सम्भारों को स्थापि तिन्हें पर यज्ञियकाष्ठ करि ज्वलित अ-  
ग्नि को भूर्भुवः इन तीनि अक्षरों का उच्चारण करि आधान करें।  
यह आहवनीय का आधान है। एवं अष्टाक्षर होने से अग्नि का गा-  
यत्री होना श्रुति में कहा है। गायत्री सहित अग्नि का प्रजापति के मुख  
से उत्पन्न होने से इति सूत्रार्थः ॥ मन्त्रार्थस्तु। भूरिति देवी गायत्री अ-  
ग्निदेवता। भुवरिति देव्युष्णिग्वायुदेवता। सुवरिति देवी गायत्री सू-  
र्यो देवता। इन आधानमन्त्रों में ये तीनों व्याहृति हैं। ये ही तीनों  
व्याहृति हैं पृथिव्यादि तीनों लोकों के नाम हैं। इन्हीं के उच्चारण पूर्व-  
क प्रजापति करि तीनों लोकों के उत्पन्न होने से। अतः इन्हीं से  
स्थापन करि तीनों लोकों को इन्हों करि स्मरण करें इन व्याहृतिओं  
की महिमा हो। यद्वा भूर्भुवः स्वः शब्द करि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ती-  
नों जातियों वा आत्मप्रजापशु ये सब भैरवशवर्तिनः हों यह प्रार्थना

करि अग्निओं को स्थापन करै इत्यर्थः॥ का० ४. २५. १७. फिर यजमान ईधन के पूर्वार्ध को ग्रहण करि द्यौरिव भूमेति जपे॥ यजुषो यजमानाशीर्लिङ्गोक्तदेवता। हे पृथिवि देवयजनि (देवता पूजियें हैं जिसमें वोह) तिसनेरे पृष्ठ (ऊपर) में अन्नाद (अन्न की आहुतिके भक्षण करनेहारे) अग्नि (गार्हपत्यादिरूप) को स्थापन करती हूँ। किमर्थम् कि भक्षणायोम्य अन्न की सिद्धि के अर्थ वा अन्न भक्षण के अर्थ। जिस पृष्ठ में अग्नि रखि के जैसे आकाश में तारे बहुत हैं ऐसे हम पुत्र पश्चादिकरि बहुत होवें इति शेषः। जैसे पृथिवी सब प्राणियों का आश्रय है ऐसे हम० यज्ञा पूर्वार्धस्यायमर्थः। कैसे अग्नि को कि जैसे द्यौः नक्षत्रादि बहुत करि युक्त है तैसे ज्वाला बहुत करि युक्त को। किंच जैसे पृथिवी सब प्राणिओं के आश्रयत्वरूप करि श्रेष्ठत्व से युक्त है तैसे सब वस्तुओं के शोधकत्वरूप करि श्रेष्ठत्व से युक्त को। अत एव क्वचिद्विधिवाक्ये अग्नये पावकायेत्याम्नातम्॥ ५॥

आयं गौः पृश्निरकमीदसदन्मातरं पुरः। पितरं च प्रयन्स्वः॥ ६॥  
का० ४. २५. १८. १८. और आयं गौरिति तीन ऋचाओं सार्वराज्ञीनामाओं से आहवनीय का उपस्थान करै। फिर अध्वर्यु गार्हपत्य से कर्पर करि अग्नि ले दक्षिणाग्नि को आधान करै आयं गौरिति तिसृणाम् च सार्वराज्ञी (कद्रू पृथिव्यभिमानी) दृष्टी गायत्री छन्द अग्निः परावरूपेण देवता। अग्निः परावरूपेण स्तूयते। यह हृष्यमान अग्निः सर्वतः आहवनीय गार्हपत्य दक्षिणाग्नि स्थानों में क्रमेण (पादविक्षेप) करता हुआ। वेसा अग्नि कियज्ञनिष्पतिके अर्थ तिस-ति-

स यजमानगृह में चलता। तथा चित्रवर्ण (लोहितशुक्लादिबहुविधज्वालो-  
पेत) आक्रमण में वाह। आचीदिशा में माता (पृथिवी) को आहवनीयरू-  
प करि प्राप्त हुआ और तैसे ही आदित्यरूप करि स्वर्ग में चलता पिता (द्यु-  
लोक) को प्राप्त हुआ + ॥ ६ ॥

+ सः शब्देन सूर्यः निय० १४. ध्रुव लोक भूलोक कयोर्महाभितृत्वं मन्यन्तापि श्रूयते। धीः पिता पृथिवी मातरि।  
\* अन्नरिषेऽयं निय० १४. ध्रुव लोक भूलोक कयोर्महाभितृत्वं मन्यन्तापि श्रूयते। धीः पिता पृथिवी मातरि।

अन्नश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती। व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥ ७ ॥

एवमादित्य रूपेणग्निं स्तुत्वा वायुरूपेण स्तोति। इस अग्नि की दीप्ति  
कोइक शक्ति वायुनामा अन्नः (द्यावापृथिवी के शरीर मध्य में) चल-  
ती +। क्या करती कि प्राणादपानती (सर्वशरीरों में प्राणव्यापार के अनन्त-  
र अपान व्यापार को करती। अपान के अनन्तर प्राण तीत्यप्यर्थो लभ्य-  
ते सामर्थ्य से प्राणापानवायुविशेष का प्रेरक है इत्यर्थः। क्योंकि जठ-  
रग्नि में जीवन हेतु उष्णता के सद्भाव से शरीर में प्राणापान प्रवर्तते हैं  
तिस हेतु से अग्नि प्राणापान रूप है। एवं स्वशक्तिभूत वाय्वादित्य  
करि इस जगत का अनुग्रह करिके जो ऐसे को उपतिष्ठे है तिस का  
क्या करता है। इत्याह। कि महिषोऽग्निः दिवं व्यख्यत् (द्युलोकभो-  
गस्थान को अनुष्ठाताओं के अर्थ विशेषेण प्रकाश करता हुआ और  
प्रकाश करता है। महि (महात्म्य यागकर्तृस्वरूप) को देता + ॥ ७ ॥

त्रिंशद्दामविराजति वाक्पतङ्गाय धीयते। प्रतिवस्तो-  
रह द्युभिः ॥ ८ ॥

त्रिंशत् धामों (तीस ३० महूर्तनामा स्थानों +) में जो बाणी विरा-  
जै (शोभे) है सो स्तूयमाना बाणी पतङ्ग (अग्नि ५) के अर्थ उ-  
च्चारण करिये है (सर्वदेवसम्बन्धिनी स्तुतिओं करि अग्नि ही स-

+ अग्निर्वै महिषः स इदं जातो महा निति श्रुते ॥

\* धामानि त्रयाणि भवन्ति स्थानानि नामानि जन्मानि निरु० ८. १८. २६ ॥ अत्र धामशब्देन स्थानमुच्य-  
ते। अहोरात्रस्य त्रिंशन्मुहूर्तं धामशब्देनाभिप्रेताः। ५ पतन् गच्छति पतङ्गः। अग्निः।  
सह्यरण्ये। पतन् गार्हपत्यभाव गच्छति गार्हपत्यात्यतन्नाहवनीजतामित्यादि।

वात्मक होने से स्तुति करिये है। केवल विंशत् धामों में जो वाणी  
 विराजे है सो ही अग्नि के अर्थ उच्चारण करिये है यही नहीं किंतु प्र-  
 ति वस्तोः (दिन) में जो स्तुतिलक्षणावाणी और जो युग्मों (याग-  
 पारायणद्युत्सवभूतदिनों) करि स्तुतिलक्षणावाणी विराजे है  
 सो अग्नि० नही अन्यदेवता के अर्थ०। सब काल में सब स्तु-  
 ति वाचा अग्नि के ही अर्थ है इत्यर्थः॥ यद्वा स्या ऋचोऽयमर्थः।  
 धाम (स्थान) और सो विंशत्संख्याक मासगत दिनभेद करि-  
 के विशेषेण राजे (दीपे) है (आलस्यरहित यजमानों के अ-  
 नुष्ठान करि आहवनीयाद्यग्नीष्मों का स्थान मास गतविंश-  
 त्संख्याक दिनों में विशेषेण शोभे है। स्तुति रूपा वाणी पतङ्ग  
 (अग्नि) के अर्थ उच्चारण करिये है। पतङ्गः पक्षी तिसके सदृश हो-  
 ने से अग्नि पतङ्ग है क्योंकि जैसे पक्षी एक स्थान से दूसरे स्थान को  
 जाता है तैसे अग्नि भी गार्हपत्यस्थान से आहवनीयस्थान को जाता  
 है। अहेति निपातः पूर्वोक्तनिषेधार्थः॥ इस ऋचा के पूर्वार्द्ध में अ-  
 ग्निमाहात्म्यज्ञापक दो वाक्यों करि जो दो अर्थ कहे गये तैसे ही  
 नहीं होता किंतु और भी कहिये है इत्यर्थः। प्रति वस्तः (दिन) युग्मों  
 (द्योतनों) करि यह अग्नि स्तुति करिये है इत्यध्याहारः॥ ८॥ इत्य-  
 ग्न्याध्येयमन्त्राः समाप्ताः॥ ॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः २

अथाग्निहोत्रहोममन्त्राः प्रजापतिदृष्टाः

अ० ३ अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा॥ अग्निवर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा सूर्यो वर्चो ज्यो-

† वस्तोः युः भानुरित्यहर्नामसुयुक्तम् निघ० १०४ अहेति निपातो विनिग्रहे।



तिर्वर्चः स्वाहा ॥ ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ॥ ४ ॥ +  
 अग्निर्ज्योतिरिति दो कण्डिका में अग्निहोत्र के मन्त्र हैं। सप्तलिङ्गो-  
 क्तदेवता। पञ्चैकपदा गायत्र्यः। द्वे गायत्र्ये। अग्निर्ज्योतिः सूर्यो  
 ज्योतिः एते द्वे तक्षा मुनिरपश्यत्। ज्योतिः सूर्यः इमां चेलकस्य पुत्रो  
 जीवल ऋषिरपश्यत् ॥ का० ४. १४. १४. प्रकाशित समिध के मध्य में  
 अग्निर्ज्योति इस मन्त्र से होम करे ॥ काएव शारवीया वाजसनेयस-  
 र्हं हिता के अध्या० ३. अनु० २. मन्त्र १. अग्निर्ज्योतिषं त्वा वायुमर्तो  
 प्राणवतीम् ॥ स्वर्ग्योर्हं स्वर्गयोपदधामि भास्वतीम् ॥ अग्निर्ज्योति  
 र्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥ सै समित्प्रक्षेप है ॥ मन्त्रार्थस्तु। जो यह अग्नि-  
 देव सोही ज्योति (दृश्यमान ज्योतिः स्वरूप) है। जो यह दृश्यमान  
 ज्योति सोही अग्निदेव है। देव और ज्योति का कभी भी अविद्योग से  
 एकत्व करि प्रतिपादन है। स्वाहा (ज्योतीरूप अग्नि के अर्थ हविदिया।  
 अयं सायंकालीनोऽग्निहोत्रहोममन्त्रः ॥ काएव ३. २. २. सूर्यज्योतिषं  
 स्वाहा ॥ प्रातर्होममन्त्रः ॥ सायं होममन्त्रवद्ध्या ख्ययः। सूर्यसम्बन्धि-  
 तेज एत्रि में अग्नि को प्रवेश करता है इस हेतु सायं समय अग्नि-  
 र्ज्योति यह मन्त्र युक्त हुआ। उदयकाल में अग्निसम्बन्धि ज्योति सूर्य  
 को प्रवेश करती है तिस से प्रातः समय सूर्यो ज्योति यह मन्त्र है +  
 का० ४. १४. १५. ब्रह्मतेज का चाहनेवाला अग्निर्वर्चः सूर्यो वर्चः  
 इन्हों से साँर और सवेरे होम करे ॥ जो अग्निर्वर्चः (ब्रह्मतेज) अन-  
 न्यभूत है। जिस का सो ज्योतिर्वर्चः अनन्यभूत है। तिस के अर्थ सु-  
 हुत हो। एवं सूर्यो वर्च इति ॥ का० ४. १५. ११. अथवा प्रातः समय ज्यो-

+ अ-हा। अ०। सू-हा। उ०। अ-हा। उ०। सू-हा। अ०। ज्यो-हा। लु० ॥ ४ ॥

+ अग्निमादित्यः सायं प्राविशति तस्मादग्निदेवत्वं दृश्ये। उमे हि तेजसी सम्पद्यते उद्यन्तं वा-  
 दित्यमग्निरनु समारोहति। तस्माद्भूम एवाग्नेर्दिवौ दृश्ये इति तिनिरिश्चुते ॥

तिः सूर्य इति होम करै ॥ जो ज्योति सो सूर्य ही है । जो सूर्य सो ज्योति ही है । तिस के अर्थ सुद्धत हो ॥ ४ ॥

सजूर्देवेन सवित्रा सजूरग्येन्द्रवत्या ॥ जुषाणोऽग्निर्वेतु  
स्वाहा ॥ सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या । जुषाणः  
सूर्यो वेतु स्वाहा ॥ १० ॥ † इतिसं० अ० ३०

का० ४० १४० १४० पूर्वोक्त मन्त्रों (अग्निर्ज्योतिः सूर्यो ज्योतिः) के साथ ये दोनों मन्त्र विकल्पित हैं ॥ मन्त्रार्थः ॥ अग्निः वेतु (हमारे कर्म को प्राप्त हो यद्वा आहुति को भक्षण करै) कैसा अग्नि कि सविता देव (अथवा परमेश्वर) करि सहित सजूरः (सामान प्रीति जिस की वोह) तथा इन्द्रवती (इन्द्रदेवयुक्ता) रात्रिदेवता करि सजूरः । तथा हमारे विषे प्रीतियुक्त । जो उक्तगुणवान् अग्निदेव तिस के अर्थ स्वाहा हुयमान यह द्रव्यदिया ॥ प्रातः सूर्य उच्यते । अग्निमन्त्रवदयं सूर्यमन्त्रो व्याख्येयः ॥ पूर्वार्धे रात्रिदेवतायाः स्थाने उषादेवता योजनीया ॥ १० ॥

यजमानाग्न्युपस्थानं बृहदुपस्थानं देवदृष्टम्

अ० ४० उपप्रयन्तोऽध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये । आरेऽस्मे च शृण्वते ॥ ११ ॥

का० ४० १२० १-३ सायंसमय के अग्निहोत्रहोम में काएव० ३० ३० मन्त्र ० समिद्धसि समिद्धो मेऽग्ने दीदिहि ॥ समेद्धा तै अग्ने दीद्यासम् ॥ सै समिधाधान के अनन्तर उपप्रयन्त ११ से लेकर ते ३६ तक वात्सप्रसंज्ञक उपस्थान करिके आहवनीय

गार्हपत्य देने को अग्नियों को उपतिष्ठे अथवा न करे। तहां उप-  
स्थानपक्ष में उप प्रयन्त ११ अस्यां प्रत्ना १६ परि ते ३६ इन तीनों  
ऋचाओं और चित्रावसविति १८ ई० को यथा स्थानास्थित ती-  
नि-तीनि वारजये॥ आद्ये द्वे आग्नेय्यौ गायत्र्यौ क्रमेण गोतम-  
विरूपाभ्यामपि दृष्टे॥ आहवनीयोपस्थानमन्त्रा आदौ। हम  
अनुष्ठान करने हारे अग्नि के अर्थ मन्त्र (मनन करिके वाणक-  
रने वाला शब्द समूह कहते हैं। कैसे हैं हम कि अध्वर (यज्ञ) को  
समीप में चलते। कैसे अग्नि कि दूर और समीप में इति शेषः  
हमारे वाक्य सुनने को उद्युक्त॥ ११॥

अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्।

अपाथं रेताथं सि जिन्वति॥ १२॥

यह अग्नि जलों के रेतों (द्युलोक में वृष्टिरूप करि गिरती हुई  
ई जलों के सार व्रीहियवादिरूपों करि परिणतों को प्रीति कर-  
ता (बटाता) है। यद्वा जलों के कारणों को पुष्ट करता है। आहुति  
परिणाम करि वृष्टि को उत्पन्न करता है इत्यर्थः\*। कैसा अग्नि  
कि द्युलोक के शिरः समान (जैसे शिर शरीर के ऊपर में बैठे  
हैं तैसे अग्नि दिन में अपने तेज करि आदित्य में प्रविष्ट हो-  
ने से आदित्यरूप करि द्युलोक के ऊपर में बैठे हैं। तथा ककुत्  
(गोपृष्ठवत् आदित्यरूप करि सर्वोपरि स्थित होने से ककुत्सह-  
श है। यद्वा महत् जगत्कारण है†। तथा पृथिवी कापालक। दा-  
हपाकप्रकाश करि भूलोकस्थों का उपकारी होने से॥ १२॥

\* ने बा एते आहुती उत्क्रामत इत्यादि श्रुतेः॥ अग्नेो प्रास्ताहुतिः सम्पगादित्यमुपतिष्ठते॥  
आदित्याज्जायते वृष्टिर्दृष्टेरन्तः ततः प्रजेति स्पृतेश्च।

† ककुदमिति महन्नाम निघ० ३. ३

उ॒भा वा॒मिन्द्रा॒ग्नीः॑ आ॒हुव॒ध्याः॑ उ॒भा राध॑सः सह मा-  
द॒यध्वैः॑ उ॒भा दा॒तारा॑वि॒षाथं॑ र॒यीणा॑मु॒भा वा॒जस्य॑ सा-  
तये॑ हुवे वाम् ॥ १३ ॥

भारद्वाजहृष्टा इन्द्राग्नी त्रिष्टुप्। इन्द्रशब्देनाज्ञाहवनीयः। तस्य  
यज्ञसाधकत्वरूपैश्वर्ययुक्तत्वात्। अग्निशब्देन गार्हपत्यः। अ-  
ग्रे नीयत इत्यग्निरिति यास्कव्युत्पत्तेः। स हि प्रथममाधीयते।  
हे इन्द्राग्नी तुमदेनों को बुलाने की इच्छा रखता हूँ इति शेषः।  
और हविलक्षण धन से तुम देनों को प्रसन्न करने के लिये इ-  
च्छा। क्यों कि तुम देनों अन्न और धन के दातार हो इस लिये अ-  
न्नदान के अर्थ तुम देनों को बुलाता हूँ ॥ १३ ॥

अ॒यं ते॒ योनि॑र्ऋ॒त्वियो॒यतो॑ जा॒तोऽअ॒रोच॑थाः। तं जा-  
नन्ना॒ग्नः॑ आ॒रोहा॒था नो॑ वर्धयार्॒यिम् ॥ १४ ॥

भारतौ देवश्च देववानश्च हृष्टाग्निदेवत्यानुष्टुप्। हे अग्ने (आ-  
हवनीय) तेरी यह गार्हपत्य योनि (उत्पत्तिस्थान) है। कैसी कि  
ऋत्वियः (उत्पादनयोग्य काल को प्राप्त) जिस ऋतुकालोपे-  
त गार्हपत्य से उत्पन्न हो तू कर्मकाल में दीप्त हुआ। हे अग्ने  
तिस गार्हपत्य अपने जनक को आरोहण करि (पुनः उद्धारण के  
अर्थ कर्म के अन्त में प्रवेश करि। अथानन्तर हमारे अर्थ ध-  
न बढ़ाय (पुनर्याग के अर्थ समृद्ध करि ॥ १४ ॥

अ॒यमि॒ह प्र॒थमो॑ धा॒यिधा॒तृभि॒र्होता॑ यजि॒ष्ठोऽअ-  
ध्व॒रेष्ठी॑ डः। यम॒प्रवा॒नो भृ॒गवो॑ विरु॒रुचु॒र्वने॑षु चि-

योनिः काले उत्पादनयोग्यो योनिः  
मायं जातः काले उत्पादनयोग्यो योनिः

त्रं विम्बं विशेषे विशेषे ॥१५॥

आग्नेयी वामदेवदृष्टा जगती। यह आहवनीय इस कर्मानु-  
ष्ठानस्थान में मुख्य + होते आधान कर्ताओं करि आहित हुआ।  
कैसा कि होता (देवताओं का बुलानेवाला। अतिशयेन यथा।  
तथा अध्वर्ये (सोमयागादिकों) में ऋत्विजों करि स्तुतियोग्य।  
अप्रवानः (पुत्रवन्तः) भृगुवंश में हुए मुनयः वा अप्रवान् (भृगु-  
प्रमृति मुनिलोग) जिस आहवनीय को विशेषे विशेषे (वनों में वा  
विडिति मनुष्यनाम निघं ०२२ यजमानरूपमनुष्यों के अर्थ  
ग्राम से बाहिर यजनारव्य अरण्य प्रदेश में) दीपन करते हुए।  
कैसे जिस अग्नि को कि चित्र (विविध कर्मोपयोगित्व करि  
आश्चर्यकारि। अत एव विभूत्व शक्तियुक्त को ॥१५॥

अस्य प्रत्नामनु द्युतं शुक्रं ददुहे अहयः। पयः सह-  
स्रसामृषिम् ॥१६॥

गायत्र्यवत्सारदृष्टा गोऽग्निपयोदेवत्या। इस अग्नि की प्रत्ना।  
(चिरंतनकालभवा) ज्योति को अनुसरण करि के अहय (लज्जा  
रहिता दोग्धारः) ऋषि (दोहस्थान में चलती गौ) को होम के  
अर्थ शुद्ध पय दुहते हुए। सायंदोहनकाल में अग्नि के प्रकाश  
न होने से दुहा दुग्ध भूमि में गिरेगा इस प्रका करि दोग्धाओं  
को लज्जा होती है जब कि अग्नि का प्रकाश हुआ फिरि यह शं-  
का कहा। कैसी ऋषि कि सहस्रसंख्याक कर्मों को क्षीरदध्यादिह-  
विः प्रदान करि समाप्त करती ॥ यद्वास्या ऋचोऽर्थान्तरम्। गा-

म्प्रकृत्याग्निहोत्रब्राह्मणे श्रूयते २.२.४. १५. तामु हाग्निरभिदध्या-  
वित्यादि। तद्भिन्नायमेषा ऋग्वदति। अहयः (अलज्जा उज्जला  
प्रशस्या) गोएँ इस अग्नि की अपने में चिरंतनी अनुषक्ता शुक्र-  
रूपापन्ना दीप्ति (पय) को क्षरती हैं। अग्नि करि शुक्ररूप से सींची  
अपनी कान्ति को ही गोएँ दुग्धरूप से मरती हैं इत्यर्थः। कैसे प-  
य कि सहस्र सा (चातुर्मास्य पशुसोम के सम्भक्तार। तथा ऋषि  
द्रष्टारः) को ॥ यद्वा सहस्रमृषिमिति विभक्तिलिङ्गवचनव्यत्य-  
येन अहय इत्यस्य विशेषणद्वयम्। कैसे अहयः कि सहस्रसाः  
ऋषयः। पूर्ववदर्थो वा ॥ १६ ॥

तनूपा अग्नेऽसि तन्व मे पाह्यायुर्दो अग्नेऽस्यायुर्मे  
दिहि वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि। अग्ने यन्मे तन्वा  
कुनं तन्मः आप्राणा ॥ १७ ॥†

चत्वार्यग्निदेवत्यानि यजूंश्च १. तनूपा आसुरीपंक्तिः २. आ-  
युर्दो आसुरीचिष्टुप ३. वर्चोदा आसुरीपङ्क्तिः ४. अग्ने आसुरी-  
चिष्टुप। हे अग्ने तू स्वभाव से ही तनूओं (अग्निहोत्रियों के शरीरों)  
का पालक है। उदराग्नि के होते अन्न के जीएँ होने में शरीर का  
पालन है अतः मेरे शरीर को पालि ॥ १ ॥ हे अग्ने तू आयु का दा-  
ता है अतः मुझे आयु दे। अपमृत्यु परिहार करके। जितने काल  
शरीर में उषणता दीरवै है तितने नही मरता यह प्रसिद्ध है  
२॥ हे अग्ने तू वर्चः (वेदिकानुष्ठानप्रयुक्त तेजः) का दाता  
है अतः मुझे वर्चः दे ॥ ३ ॥ किंच हे अग्ने मेरे शरीर के जो अङ्ग-

अग्नि ऐसे प्रकाशित है कि यह ब्राह्मण बड़ा अग्नि है कि यह ब्राह्मण बड़ा अग्नि है कि यह ब्राह्मण बड़ा अग्नि है

† त-हि। अ-। आ-हि। इ-। व-हि। उ-। अ-णा। ऋ-० ॥ १७ ॥

† गवि वर्तमानं दृष्ट्वं पयस्युपवर्चयते। सा हे नानुदीक्ष्य हि चकारेत्युपक्रम्य ते देवा विदा चकुरेष साम्ना हिंकार इत्यादिना ग्रन्थेन गोभिर्हिंकारो दृष्ट इति प्रत्ययादि।

(चक्षुःश्रोत्रादिरूप) ऊन (दृष्टिपाटवादिरहित) तिन मेरे अङ्गों  
को सर्वतः पूरि ॥ ४ ॥ १७ ॥

इन्धानास्त्व। श्रुतं हिमा द्युमन्तं समिधीमहि। वय-  
स्वन्तो वयस्कृतं सहस्वन्तः सहस्कृतम्। अग्ने सप-  
त्नदम्भेन मदब्धासोऽअदाभ्यम्। चित्रावसो स्वस्तिते  
पारमशीय ॥ १८ ॥ † इ-म्। अ०। चि-य। इ० ॥ १८ ॥

इन्धानास्त्विति महाप्रद्विस्त्रवसानाग्निदेवत्या। हे अग्ने श-  
तवर्षं पर्यन्तं हम अपनी आयु में वर्तमान तुम्हें निरन्तर दी-  
पन करते हैं। हम कैसे कि तेरे अनुग्रह करिके दीप्यमान  
तथा अन्नवन्त तथा बलवन्त किसी करि भी न मारे जावें।  
तुम्हें कैसे को कि दीप्तिमन्त। अन्न के करनेवाले। बल करनेवाले।  
शत्रुओं के मारनेहारे। किसी करिके भी मारने के लिये अयोग्य  
को ॥ चित्रावसो। इति रात्रिदेवत्यं ऋषिदृष्टं यजुर्जगतीच्छन्दः।  
हे चित्रावसो (चित्र-विविध चन्द्रनक्षत्रान्धकाररूप वास  
करते जिस में रात्रे) जैसे कल्याण हो तैसे तेरे पार (समाप्ति)  
को पहुँचें। जैसे लोक में मनुष्यों के सौने पर घर में चोर प्र-  
वेश करते हैं तैसे यहां देवयजन में राक्षस प्रवेश करते हैं  
इस शंका के निवारणार्थ रात्रि से प्रार्थना है ॥ १८ ॥

सं त्वमग्ने सूर्यस्य वर्चसागथाः समृषीणाश्च स्तुतेन।  
सं प्रियेण धाम्ना समहमायुषा सं वर्चसा सं प्रजया  
संह रायस्योर्षेण मिषीय ॥ १९ ॥

† रात्रिर्वै चित्रावसुः सा हीयते संगृह्येव चित्राणि वसतीति २. ३. ४. २२. श्रुतेश्चित्रावसु-  
शब्देन रात्रिः।

का० ४.१२.४. उपप्रयन्त इत्यादि चित्रावसो इत्यन्त मन्त्रों करि  
खंडे होके उपस्थान है इस से वै० कर यह विशेष है ॥ अग्नि  
देवत्या ब्राह्मन्नुष्टुप् । हे अग्ने तू सूर्य के तेज करि रात्रि में सं  
गत है + । ऋषीणो (मन्त्रों) के स्तोत्रों करि संगत है (बहुत से  
मन्त्र अग्नि को स्तुति करते हैं) । प्रियधामों (आहुतिओं) क  
रि सं० ५॥ जैसे तू इन तीनों करि सं० । तैसे में भी तेरे प्रसाद  
से आयु (अपमृत्यु दोष राहित्य) करि संगत होऊँ । तथा वर्च  
(विद्येश्वर्यादितेज) करि सं० । तथा प्रजा (पुत्रादि) करि सं० ।  
तथा रायस्योष (धन की पुष्टि) करि सं० । आयुरादि मेरे हों  
इत्यर्थः ॥ १४ ॥

अन्ध स्थान्धो वो भक्षीय महस्थ महो वो भक्षी  
योज्जं स्थोज्जं वो भक्षीय रायस्योष स्थ रायस्योष वो  
भक्षीय ॥ २० ॥

का० ४.१२.५. अन्धस्थ रेवती रमध्वम् इन दो मन्त्रों से गो  
प्रतिजावे ॥ वीणि गोदेवत्यानि १. यजुः २. प्राजापत्याविष्टु  
प् । हे गोओ तुम अन्ध (अन्नरूपा) हो । क्षीराज्यादिरूप  
अन्न के जनक होने से । अतः तुम्हारे प्रसाद से तुम सम्ब  
न्धि क्षीराज्यादिरूप अन्न को मैं भक्षण करूँ । तथा तुम  
महः (पूज्य) हो अतः तुम पूज्यों के प्रसाद में भी पूज्य होऊँ ।  
यद्वा महः शब्द करि दश वीर्य कहियें हैं । यथा गौर्वे प्रतिधु  
क् तस्यै शृतं तस्यै शरस्तस्यै दधि तस्यै मस्तु तस्या आतञ्च

प्रसिद्धम् ।  
पूज्यत्वं प्रसिद्धम् ।  
गौर्वे यदा साष्टव्येत्यादि स्मृतेर्गोवा पूज्यत्वं प्रसिद्धम् ।

+ तद्यदस्त्वयन्नादित्य आहवनीयं प्रविशति ते नैतदाहीते श्रुतेः २.३.४.२४.

‡ तद्यदुपतिष्ठते ते नैतदाहीते श्रुतेः २.३.४.२४.

‡ आहुतयो वा अस्य प्रियधामेति श्रुतेः २.३.४.२४.



१०९.८.८.८.

नं तस्यै नवनीतं तस्यै घृतं तस्या आमिक्षा तस्यै वाजिनमि-  
ति श्रुत्युक्तानि॥ प्रतिधुक् सद्यदुग्ध १ शृत उष्णादुग्ध  
२ शर दुग्ध का मण्ड ३ दधि दही ४ मस्तु दही का रस  
५ पातञ्जन दही का पिएडा ६ नवनीत लोनी ७ घृत  
घी ८ आमिक्षा फटादुग्ध ९ वाजिन फटे दुग्ध का जल  
१० इति श्रुत्यर्थः॥ ये दशवीर्यरूपा तुमहो अतः तुम दश-  
पात्रों के प्रसाद से मैं दशवीर्य सेवन करूँ। तथा तुम ऊर्ज  
(बलरूपा) हो गौ के क्षीरादि बल का हेतु होने से बलरूपत्व  
है। तुम्हारे प्रसाद से मैं बल का सेवन करूँ। तथा धनपुष्टिस्-  
याहो। क्यों कि वैश्यलोग क्षीराज्यादिविक्रय करि धन को  
पुष्ट करते हैं। अतः धनपुष्टित्वोपचारः॥ तुम्हारे प्रसाद से ध-  
न की पुष्टि को सेवन करूँ॥ २०॥

रेवन्ती रमध्वमस्मिन्योनावस्मिन्नोष्ठेऽस्मिन्ल्लोकेऽ-  
स्मिन्न्क्षये ॥ इहैव स्त मायगात ॥ २१ ॥

हे रेवत्यः (धनवती गौत्रो) इस योनि (अग्निहोत्रहविर्दोहन, स्थान) में तुम रमों (क्रीडाकरों) दोहन के उपर इस यजमान सम्बन्धि गोष्ठः (गौत) में रमों। सर्वदा इस लोक (यजमान की दृष्टि) में रमों। रात्रि समय इस यजमान के घर में रमों। इस यजमान के घर में ही रहो। अन्यत्र मत जाओ ॥२१॥

संहितासि विश्वरूप्यूर्जा माविश गौपत्येन । उ-  
प त्वाग्ने दिवेदिवे दौषावस्तर्धिया वयम् । नमो

† धनहेतुत्वेन धनवत्त्वं गवाम् । रयिर्विद्युतौ आहंता रेवत्यः । पशदो वै रेवन्त इति  
श्रुतेः २.३.४.२६.      ‡ गोष्ठशब्देन गृहाद्विहिर्विश्रम्भेण संचारप्रदेशः ।

ॐ गोष्ठप्रान्देन गृहाद्वहिर्विश्रम्भेण संचारप्रदेशः ।

भरन्त एमसि॥२२॥† स-न।अ०।उ-सि।दू०॥२२॥

का० ४.१२.६. गौतम में जाकर संहितेति गौ को हाथ से ग्रहण  
करे ॥ ३. सामान्यनुष्ठुप। हे गौः तू संहिता (क्षीराज्यरूप हविर्दान  
के अर्थ यज्ञकर्मी करि संयुक्त) है। कैसी कि विश्वरूपी (शुक्ल-  
कृष्णादिवद्रूप युक्ता। सो तू क्षीरादिरस और गोपतित्व क-  
रि मुरु में सर्वतः प्रवेश करि (तेरे प्रसाद से मेरे बहुविध रस  
और बहु विध गोस्वामित्व होवै ॥ का० ४.१२.७. गार्हपत्य प्र-  
ति चलि कर उप त्वेति तूच से सर्वतः उपस्थान करे ॥ तिस्रो  
गायत्र्य आग्नेय्यो विश्वामित्रसुतमधुच्छन्दोदृष्टाः। हे अग्ने दो-  
षावस्तः (रात्रि में वास करने हारे) अजस्रं धार्यमाणत्वान्नोप-  
शाम्यति यद्वा अग्नेो ह देवा इत्युपक्रम्य तैः संगृह्य रात्रिं प्र-  
विवेश इतिहास करि अग्नि में रात्रि के समय प्रवेश कहा  
तिसे यह मन्त्र कहिता है। हे दोषावस्तः (रात्रि में वसनशील गा-  
र्हपत्य) प्रति दिन हम यजमान तुरु प्रति गमन करते हैं। कैसे ह-  
म किथी (अह्वायुक्त बुद्धि) करि नमः (नमस्कार) करते वा नमः (ह-  
वि +) देते ॥ २२ ॥

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् । वर्धमानं  
ॐ स्वे दमे ॥२३॥

क्रियापद मनुवर्तेते । हम ऐसे अग्नि को गमन करते हैं । कैसे  
को कि दीप्यमान यज्ञों का रक्षक । सत्यवदन लक्षणाव्रत का  
प्रकाश करने द्वारा आशय यह है कि अग्नि समीप में व्रत लेके

सत्यबोलै। हमारे घर में वर्धमान (चातुर्मास्य सोमपञ्चादि करि वृ-  
द्धि को प्राप्त ॥२३॥

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव। सचस्वा-  
नः स्वस्तये ॥२४॥

हे अग्ने गार्हपत्य सो पूर्वोक्त गुणयुक्त तू हमारा सूपायनः (सु-  
ख करिके समीप में प्राप्त होने केलिये समर्थ) हो। तत्र दृष्टा-  
न्तः। जैसे पुत्र के अर्थ पिता विना भय के सुख क०-मर्थ है।  
किं च हमारी क्षेम के अर्थ सचस्व (इस कर्म करि समवेता हो वा  
सेवन करि ॥२४॥

अग्ने त्वं नोऽनन्तम ऊन ज्ञाता शिवो भवा वस्तुष्य ॥

वसुश्च नक्षिद्युर्मन्त्रं गृहिता ॥२५॥  
चतस्रो द्विपदा विराज आग्नेयः बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुः विप्रब-  
न्धुः दृष्टाः क्रमेण। हे अग्ने गार्हपत्य तू हमारे सर्वदा समीप व-  
र्ती वा साधु हो। और पालन करने हारा। शान्त। वस्तुष्य (पुत्रादि-  
समूह वा घर के अर्थ हित) हो। कैसा है तू जनों का वास करा-  
नेवाला। तथा अग्निः (आहवनीयादिरूप करि गमनशील।  
तथा वसुश्च (धन करिके कीर्ति जिसकी धन देनेवाला य-  
ह कीर्ति जिसकी। किं च हे अग्ने तू हमलोगों को अछा न-  
क्षि (अमिव्याप्त हो वा हे निर्मल स्वभाव अग्ने हमारे होम-  
स्थान को प्राप्त हो। जब-जब हम होम करें तब-तब भले  
प्रकार आगमन करि। किं च अतिदीप्ति युक्त धन दे ॥२५॥

तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे स-  
खिम्यः। सनोवोधि शुधी हवसुरुष्याणोऽपघाय-  
तः समस्मात् ॥२६॥ तं तं-म्यः॥ अ० स-त। इ० ॥२६॥

हे शोचिष्ठ (दीप्तिमन्तम) हे दीदिवः (सब के प्रकाश करनेवा-  
रे) तिस (पूर्वोक्तगुणयुक्त) तुम्हें सखियों के अर्थ सुरवको नि-  
अयेन याचना करते हैं। वा सुरव के अर्थ और सखियों के  
उपकारार्थ तुम्हें याचना करते हैं। सो नूहम (अपनेसेवकों) को बो-  
धनकरि हमारे आत्मानों को सुनि सब शत्रुओं से हमें रक्षा करि ॥२६॥

इडग्रह्यदितग्रहि काम्या एत। मयि वः काम-  
धरणा भूयात् ॥२७॥ + इ-हि। अ० का-त। इ० ॥२७॥

का० ४. १२. ८. इडग्रहीति फिरि तिसी गौ प्रति जावै ॥ गोदेव-  
त्या प्राजापत्या गायत्री। हे इडे (मनुषुत्री) आगमन करि। हे  
अदिते (देवमाता) आगमन करि होमस्थान को। इडा मनु  
को ऐसे हमलोगों प्रति आ। अदिति आदित्यों को ऐसे हम  
लोगों प्रति आ ॥ का० ४. १२. ८. काम्या एतेति तिस गौ का  
ग्रहण करै ॥ साम्नी उषिणगोदेवत्या। हे काम्याः (सर्वों  
करि कामयितव्याः) + तुम आओ तुम्हारा अपेक्षितफल  
धारकत्व मुरु अनुष्ठातार विषे होवै (तुम्हारे प्रसाद से मैं  
अभीष्टफल का धारयिता होऊँ) ॥२७॥

सोमान्ध्रं स्वराणं कण्वहि व्रतणस्यते। कक्षाव-  
न्तं य औशिजः ॥२८॥

इति काम्या इति काम्या इति काम्या इति काम्या इति काम्या

का० ४.१२.१०. व्रतोपायनवत् (का० २.१.११.) विना जलका  
उपस्पर्श किये आहवनीय को पूर्व में खड़े हो देरवता हुआ सो-  
मानमिति नौ २८-३६. ऋचाओं को जपे ॥ सोमानं च स्वरणं  
तृचो गायत्रो ब्रह्मणस्पतिदेवत्यस्तेनैव दृष्टो मेधातिथिदृ-  
ष्टो वा । अग्निमीक्षमाणस्य यजमानस्य जपे विनियुक्तः ॥ हे  
ब्रह्मणस्पते (वेद के पालक) सोमान (सोमयागकर्तार) और  
स्तुतिरूपशब्दयुक्त धनप्रदान करिके मुझे करि । तत्रोपमान-  
मुच्यते । जैसा कि कक्षीवन्त (दीर्घतमा के पुत्र कक्षीवन्नाम-  
क ऋषि को सोमयागयुक्त और स्तुतियुक्त किया तैसा मु-  
झे करि + । कोन कक्षीवान् कि जो उशिजा (अङ्गिराजी की  
दासी) में हुआ ॥ २८ ॥

यो रेवान्योऽग्नीवहा वसुवित्पुष्टिवर्धनः । स-  
नः सिषक्तु यस्तुरः ॥ २९ ॥

जो ब्रह्मणस्पति धनवान् और जो रोगहन्ता धन का दाता  
पुष्टि का बढ़ानेवाला और जो अविलम्बकारी सो हमें से-  
वन करें ॥ यद्वानयर्चा पुत्रः प्रार्थ्यते । जो पुत्र धनवान् और जो  
जपादि करि व्याधि का हन्ता जो धन का लानेवाला और पुष्टि  
का बढ़ानेवाला जो शीघ्रकारी तैसा पुत्र हे अग्ने तेरे प्र-  
साद से हमें सेवन करें ॥ २९ ॥

मानः शर्गसोऽग्निरुषो धूर्तिः अण्डगर्तस्य । र-  
क्षाणो ब्रह्मणस्पते ॥ ३० ॥

+ कक्षीवन्तः नुष्टान्तेषु मुनिषु प्रसिद्धिर्लैनिरीये रम्भायते । एवं धे पर आहारः कक्षीवानो-  
शिजा वीतहव्यः आयसस्त्र सुदस्युः प्रजाकामा अचिन्वतेति । ऋगन्तरेऽप्यष्टित्वकथ-  
नेना नुष्टान्तत्वं प्रसिद्धिः सच्यते । अहं कक्षीवा ऋषिरस्मि विप्र इति । तस्मादस्यानुश-  
तारं शति दृष्टान्तत्वं युक्तम् ।

अरुषः (हविर्दान को न करने वाला वा उपद्रवी मनुष्य) का शं-  
सन (अनिष्टचिन्तन) और धूर्ति (हिंसा) हमें प्रकर्षण व्याप्त न हो  
अर्थात् शत्रुक्रतमनिष्टचिन्तन और शत्रुक्रताहिंसा हमें व्याप्त न हो।  
तिस के लिये हे ब्रह्माणस्पते (वेद के पालक अग्ने) हमें रक्षा करि ॥ ३० ॥

महि त्रीणामवोऽस्तु द्युक्ष मित्रस्यार्यम्णाः ॥ दुराधर्षं  
वरुणस्य ॥ ३१ ॥

वरुण सुतसत्यधृतिदृष्ट आदित्यदेवत्यस्तृचो गायत्री जपे वि-  
नियुक्तः पथिजप्त उपद्रवनाशकश्च । मित्र अर्यमा वरुण इन्  
तीनों देव सम्बन्धि पालन हो । कैसा पालन कि बडा तथा जिस  
पालन में सुवर्णादि द्रव्यें वास करती हैं तैसा । तिरस्कार कर-  
ने को अशक्य ॥ ३१ ॥

नहि तेषाममा च न नाध्वसु वारुणेषु । ईशे रिपु-  
घशर्ठसः ॥ ३२ ॥

अमाओं (घरों) में भी वर्तमानों तथा वारुणों (चोरव्याघ्रादि-  
क जहां स्थित हुए निवारण करते हैं पथिकों को तिन्हें) में अ-  
थवा चोरव्याघ्रभयादयमार्गों में वर्तमान तिन मित्र अर्य-  
मा वरुण तीनों देवताओं करि पालन किये यजमानों को  
उपद्रव के अर्थ इति शेषः ॥ अधशंस (सर्वदा पाप का प्रशंस-  
क) शत्रु समर्थ नहीं होता । अर्थात् मित्रादि करि पालित हम  
लोगों का घर और वन में शत्रुबाधा नहीं है ॥ ३२ ॥

तेहि युवांसोऽदितेः प्र जीवसे मर्त्याय ॥ ज्योतिर्य-

† अमायाब्दीगृहनामसु निघ ० ३० ४०

छन्त्यजस्वम् ॥३३॥

कैसे तिन्हों करि रक्षाकिये यजमानों को शत्रुभय नहीं होती  
तहां कहिता है। क्यों कि ते अदिति (अरवाण्डितशक्ति देवमाता)  
के पुत्र (पूर्वोक्त मित्रार्यमवरुण) मनुष्य (यजमान) के अर्थ नि-  
रन्तर अनुपक्षीण तेज देते हैं। किसलिये कि जीवन को। जैसे  
चिरजीवन हो तैसे तिसके उपाय का ज्ञान देते हैं इत्यर्थः ॥३३॥

कदा च न स्तरीरसि नेन्द्रसञ्चसि दाश्रुषे। उपोपेन्नु म-  
घवन्भूय इन्नुते दानं देवस्य पृच्यते ॥३४॥

ऐन्द्री पथ्याबृहती मधुछन्दोहृष्टा जपे विनियुक्ता। हे इन्द्र परमे-  
श्वर्ययुक्त कदापि तू स्तरीः (हिंसक) नहीं है किं तर्हि हविदेनेवा-  
ले यजमान को सेवन करता है। किं च हे मघवन् (धनवन्)  
तेरा प्रकाशमान बहुतर दान यजमान के साथ सम्पर्क को  
प्राप्त होता है। भाव यह है कि कभी यजमान प्रति क्रुद्ध नहीं हो-  
ता और सेवन कर्ता है तिस तेरा बहुतर धन यजमान को स-  
म्पर्क होता है ॥३४॥

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो  
नः प्रचोदयात् ॥३५॥

विश्वामित्रहृष्टा गायत्री सावित्री जपे विनियुक्ता। 'यः' जो  
सविता देव, 'नः' हमारे, 'धियः' धर्मोदिविषया कर्मों वा  
बुद्धि को, 'प्रचोदयात्' प्रेरण करता है, 'तत्' तिस, 'देवस्य'  
प्रकाशमान, 'सवितुः' सर्वों के अन्तर्यामि प्रेरक जगत् सृ-

जनेवाले परमेश्वर विज्ञानानन्दस्वभाव वा हिरण्यगर्भोपाध्यव-  
 छिन्न वा आदित्यान्तरपुरुष वा ब्रह्मके, 'वरेण्यं' सर्वों से उपासना  
 और ज्ञान करि के संभजनीय (अद्वापूर्वक सेवनीय), 'भर्गो' अ-  
 विद्या के कार्यों सब पापों और सब संसार के भर्जनसमर्थ, सत्य-  
 ज्ञानादिवेदान्तप्रतिपाद्य स्वयंज्योतिः परब्रह्मात्मक तेज को,  
 'धीमहि' हम ध्याय करते हैं ॥ यद्वा तदिति भर्गोविशेषणम्। मण्ड-  
 लं पुरुषो रश्मय इति त्रयं भर्गः शब्दवाच्यम्। भर्गो वीर्यं वा। ब्र-  
 ह्माण्ड वा अभिविधिविज्ञानाद्भर्गोऽप्यचक्राम। वीर्यं वै भर्ग इति ५-  
 ४. ५. १. श्रुतेः। सवितुर्देवस्य सविता देवता के, 'तत्' तैसे, भर्ग  
 को ध्यान करते हैं। तिस कैसे को कि जो भर्ग धियः प्रचोदया-  
 त् तिसें ध्यान करते हैं इति समन्वयः ॥ यद्वा जो सविता (सूर्य) धि-  
 यः कर्मों को सत्कर्मानष्ठान के अर्थ, 'प्रचोदयात्' प्रेरणा करता  
 है, तिस 'सवितुः' सब के प्रसविता, 'देवस्य' द्योतमान सूर्य के,  
 'तत्' सर्वों से दृश्यमान करि के प्रसिद्ध, 'वरेण्यं' सर्वोंकरि संभ-  
 जनीय, 'भर्गः' पापों के तपानेवाले तेजोमण्ड को, 'धीमहि' मनसे  
 ध्यान करि के धारण करते हैं ॥ यद्वा भर्गः शब्देनान्नमभिधीयते।  
 जो सविता देव धियः प्रचोदयात् तिस के प्रसाद से अन्नादिलक्ष-  
 ण फल को 'धीमहि' धारण करते हैं (अर्थात् तिस के आधार भूता  
 होंवें) ॥ भर्गः शब्दस्यान्नपरत्वे धी शब्दस्य कर्मपरत्वे चाथर्वणम्।  
 वेदांश्छन्दांसि सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य कवयोऽन्नमाहुः क-  
 र्माणि धियस्तद्गु ते प्रब्रवीमि प्रचोदयन्सविता याभिरेताति।



गोपथ ब्रा० १०३२॥ अयमर्थः सायनानुसारेण (ऋक्संहिताभा-  
 श्वेदार्थ प्रकाश अष्टक ३ अध्याय ४ वर्ग १० मण्डल ३ अ-  
 नुवाक ५ सूक्त ६२ ऋचा १०) महीधरानुसारेण च ॥ ३५ ॥

परि ते दूढभो रथोऽस्मां २॥ अश्रोतु विश्वतः । येन र-  
 क्षसि दाशुषः ॥ ३६ ॥

आग्नेयी गायत्र्यनिरुक्ता वामदेवदृष्टा जपे विनियुक्ता । हे अग्ने  
 तेरा रथ हम यजमानों को सब दिशाओं में परितः व्याप्त है (ह-  
 मारी रक्षा के अर्थ सर्वतः तिष्ठे) । कैसा रथ कि किसी करि भी  
 सहसा हिंसा करने के लिये अशक्य । जिस रथ करि तू यजमानों  
 को रक्षा करता है ॥ ३६ ॥ इति बृहदुपस्थानं समाप्तम् ॥

अथ क्षुल्लकोपस्थानमासुरिदृष्टम्

अ० ५ भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याथ सुवीरौ वीरेः  
 सुपोषः पोषैः ॥

प्रवत्स्यदुपस्थानमागतोपस्थानंचादित्यदृष्टम्

नर्य प्रजा में पाहि शशंस्य पशून्मैपात्यथर्य पितु मे  
 पाहि ॥ ३७ ॥

का० ४१२०१२० अथवा पूर्वोक्त उपप्रयन्त इत्यादिकरि कहेहु-  
 ए उपस्थान के स्थान में भूर्भुवः स्वरित्यादि सुपोषः पोषैरित्य-  
 न्तमन्त्र करि आहवनीय का उपस्थान करिके इसी से गार्हप-  
 त्य का उपस्थान करै ॥ आहवनीय गार्हपत्य देवत्यं यजुः । हे अ-  
 ग्ने भूर्भुवः स्वः तू व्याहृति त्रयात्मक वा तिस के अर्थ भूतलो-

कत्रयात्मक है। अतः तेरे प्रसाद से मैं प्रजा (बन्धुभृत्यादिरूपा) करिके सुप्रजाः (अनुकूलत्वेन शोभनप्रजावाला) हों। तथा वीरों (पुत्रों) करि सुवीर (शास्त्रीयमार्गवर्ति शोभनपुत्रयुक्त) हों ॥  
क्षुल्लकोपस्थानं + समाप्तम् ॥

+ पूर्वोक्तरीतिपि स्थानायेक्ष-  
यास्य लेख्यं तेन क्षुल्लको-  
पस्थानम्

का० ४.१२.१३. जब यजमान प्रवास + करे (अपने ग्राम से दूसरे ग्राम को जावे) तब सब अग्नियों को नर्येत्यादिमन्त्रों करि उप-  
तिष्ठे ॥ नर्य प्रजामिति गार्हपत्यो देवता यजुरुषिाक्छन्दः गार्हप-  
त्योपस्थाने विनि०। हे नर्य (मनुष्यों- यजमानों- के अर्थहितकारी गार्हपत्य) मेरी प्रजा को रक्षा करि ॥ शरिं स्येति आहवनीयो देवता यजुरुषिाक् आहवनीयोपस्थाने वि०। हे शंस्य (अनुष्ठाताओं) करि शंसा करने के लिये योग्य आहवनीय) मेरी प्रजा पुत्रादिका को पालि ॥ अथर्येति दक्षिणाग्निर्देवता प्राजापत्या गायत्री द-  
क्षिणाग्न्युपस्था०। हे अथर्य (गार्हपत्य से अपने ध्यान को चलंत दक्षिणाग्ने) मेरे पितु (अन्न) को रक्षा करि ॥ ३७॥ प्रवत्स्यदुप-  
स्थानं समाप्तम् ॥ ॥

आगन्म विश्ववैदसमस्मभ्यं वसुवित्तमम् ॥ अग्नौ  
सम्राडभि ह्युन्नमभिसह आयच्छस्व ॥ ३८॥

का० ४.१२.१८. अन्यग्राम से लौटि अपने ग्राम को प्राप्तहुआ समिधा हाथ में लिये उपस्थान से पहिले पिता गुरु वा राजा के निकट न जावे तथा अपने समीप में आये हुएओं को भी नमस्कारदि न करे तत्काल स्नान करि अन्यागार में प्राप्त हो आगन्मेत्या-

† प्रवास शब्दार्थमाह कारिकाकारः। ग्रामान्तरं नगर्यो वा यत्न्या वान्यत्र वा क्वचित्। सीमा-  
मतीत्य चेद्वात्रो वासः प्रवसनं स्मृतमिति ॥

दि तीनों मन्त्रों से आहवनीयादिकों को उपतिष्ठे ॥ आदावाहवनी-  
यमुपतिष्ठते । अनुष्टुबाहवनीयदेवत्या । हे अग्ने सम्म्राट् । सम्यक्  
राजमान् आहवनीयः । हम तुरु को उद्देश करि ग्रामान्तर से लौटि-  
के आये । तुरु कैसे को कि विश्ववेदा (सर्वज्ञ चा सर्वधन) तथा हमारे  
अर्थ धन के लब्धार्थ को । किं च हे अग्ने हमारे विषे द्युम्न (पशुवा  
अन्न) तथा सह (बल) को आयच्छस्व । (आगमन वा स्थापन करि ॥ ३६ ॥

अयमग्निर्गृहपतिर्गार्हपत्यः प्रजाया वसुवित्तमः । अग्ने गृ-  
हपतेऽभि द्युम्नमभि सह आयच्छस्व ॥ ३७ ॥

गार्हपत्यमुपतिष्ठते । न्यङ्कुः सारिणी बृहती गार्हपत्याग्निदेवत्या ।  
यह सामने उपस्थित गार्हपत्यनामा अग्नि घर का पालक है ।  
प्राजा (पुत्र पौत्रादिका) के अनुग्रहार्थ अतिशयेन धन का  
लब्ध । हे अग्ने गृहपते सो तू द्युम्न और सह दे ॥ ३७ ॥

अयमग्निः पुरीष्यो रयिमान्पुष्टिवर्धनः ॥ अग्ने पुरीष्या-  
भि द्युम्नमभि सह आयच्छस्व ॥ ३८ ॥

दक्षिणाग्निमुपतिष्ठते । दक्षिणाग्निदेवत्यानुष्टुप् । जो यह अ-  
ग्नि पुरीष्य (पशुव्य) धनवान् पुष्टिका बढ़ानेवाला है तिसे याचना  
करता हूं । हे अग्ने पशुहित द्युम्न और सह सर्वतः दे ॥ ३८ ॥

अ० ६० गृहा मा विभीत मा वेपथ्वसूर्जं विश्रत एमसि । ऊर्जं  
विभ्रद्वः सुमनाः सुमेधा गृहानेमि मनसा मोदमानः ॥ ३९ ॥  
का० ४० १२० २२० गृहामेत्यादि घर को प्राप्त होवे ॥ तिस्रोऽपि वास्तुदे-  
वत्याः बृहस्पतिसुतशम्युदृष्टाः । आद्यानिष्ठुद्विराडूपा । हे घर-

† द्युम्नं द्योतते यज्ञो वा न वा निरु ० ३० २१ ॥

औ तुम भय मत करो यह कि पालक यजमान गया। और कोई शत्रु आके विनाश करेगा यह बुद्धि करिके मत काँपौ। क्यों कि हम ऊर्ज (अक्षीणअन्न) को धारण किये तुम में आये जैसे तुम ऊर्ज धारण किये हो तैसे हम भी ऊर्ज को धारण किये शोभनमनस्क शोभनधारणप्रज्ञोपेत मन से दुःख रहित करि प्रसन्न तुम घरों को आये हैं ॥४१॥

येषामध्येति प्रवसन्त्येषु सौमनसो बहूः। गृहानुपहृत्यामहे ते नो जानन्तु जानतः ॥४२॥

अनुष्टुप्। देशान्तर को गया यजमान जिन गृहों का स्मरण करता (गृहविशेषक्षेम को सदाचिन्तन करता) है। तथा जिन गृहों में यजमान की बहुत करिके प्रीति है। हम तिन गृहों को बुलाते हैं (गृहाभिनानीदेव हमारे समीप आवें। ते गृहदेवा आकर के हमें उपकाराभिज्ञ जानें (येकतज्ञ नहीं हुए यह जानें ॥४३॥

उपहृता इह गाव उपहृता अजावयः। अथोः अन्नस्य कीलाल उपहृतो गृहेषु नः। क्षेमाय वः शान्त्ये प्रयच्छे शिवर्धं शुग्मर्धं शुम्योः शुम्योः + ॥४३॥

अवसानामहापट्टिः। इन घरों में गौएँ और बलीवर्द सुख करिके तिष्ठें यह हमने आज्ञा दी। तथा छेरियें और भेड़ियें सुखपूर्वक रहें यह हमने आज्ञा दी। और अन्न सम्बन्धि रसविशेष हमारे घरों में समृद्ध हो ऐसी हमने आज्ञा दी ॥का०४०॥ १२० २३ क्षेमायव इति गृह में प्रवेश करें ॥ हे गृहओं तुम को

प्राप्त होता हूं। किमर्थम् कि क्षेम (विद्यमान धन की रक्षा) के  
अर्थ। शान्ति (अपने सर्वानिष्ट शमन) के अर्थ। मुरुशाम्य  
(सुरव चाहने हारे+) का शिव (ऐहिक सुरव) शग्म (आमु-  
ष्मिक सुरव)† उभयविध सुरव होवै इति शेषः॥ शाम्योरि-  
त्यभ्यासोऽत्यादरार्थः॥ ४३॥ इत्युपस्थानमन्त्राः समाप्ताः॥

अथ चातुर्मास्यमन्त्राः प्रजापतिदृष्टाः

अ० ७. प्रधासिनो हवामहे मरुतश्च रिशादसः। कुरुम्भेण  
सुजोषसः॥ ४४॥

चातुर्मास्य के मन्त्र प्रजापति ने देरवे। सो चातुर्मास्यनामा य-  
ज्ञ पर्वचतुष्टयात्मक है। वैश्वदेव १. वरुणप्रधास २. साक-  
मेध ३. शुनासीरीय ४. नामा चारि पर्व हैं। तहां वरुणप्रधा-  
सारव्य दूसरे पर्व में दक्षिणोत्तर दोनों वेदियों पर हविःओं  
के रखने में प्रतिप्रस्थाता यजमानपत्नी से पूछें 'केन चर-  
सि' अपने पति से व्यतिरिक्त किस पुरुष के साथ मैथुनसु-  
ख का अनुभव करती है। यदि लज्जा करि जार का नाम  
न कहै तदा प्रति जार का एक-एक तृण हाथ से गृहण करें।  
और जो जार न हो तौ भर्तृव्यतिरेकेण न केनापि चरमिं भ-  
र्तार से व्यतिरिक्त किसी से भी मैथुन नहीं करती- यह कहै॥  
का० ५. ५. १०. पत्नी करि प्रतिवचन देते प्रतिप्रस्थाता तिस-  
पत्नी को उठाकर आहवनीय प्रति लाके प्रधासिनः यह म-  
न्त्र बुलवावै॥ मारुती गायत्री। हम मरुतों और ५ तदीयपरि

† शिवः शाम्यमिति ह्ये सुरवनामनी निघ० ३. ६. तत्कामवर्ते इति श्रुत्युः। इदम्युदि कामयमान इति निरु० ६. ३१ याज्ञोक्त्यात्।

† शिवं शाम्यमिति ह्ये सुरवनामनी निघ० ३. ६.

‡ चकारेण तदीयपरिचारका समुच्चीयन्ते

चारकों को बुलाते हैं। कैसे मरुतों कि प्रधासिनः (प्रकर्षण भक्षण करिये हैं) हविर्विशेष तिस युक्तों प्रधासीनामाञ्जो तदुपलक्षितों को। पुनः कैसे कि रिशादसों (वैरिहता हिंसा के नाश करनेवालों वा हिंसकों के मारनेवालों) को। तथा करम्भ (यवमय हविर्विशेष) से समान प्रीति है जिन्हों की तिन्हों को ॥४४॥

यद्गामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये । यदेनश्चक्रमा  
व्यमिदं तदवयजामहे स्वाहा ॥४५॥

का. ५. ५. ११. यवपिष्ट करि बनाये एकाधिक संतानपरिमित वर्तुलादिरूप करम्भ पात्रों को जुहूस्थानापन्न शूर्प करिके दक्षिणाग्नि में पत्नी होमें इत्येकः पक्षः। अथवा जायापती दोनों होमें इत्यपरपक्षः। और सो जायापती दक्षिणामागे करि तिन पात्रों को लेके वेदि के पूर्व दिशा वा पश्चिमदिशा में स्थित हो होमें ॥ मरुदेवत्यानुष्टुबनिरुक्ता । ग्राम में वास करि जो हमनें ग्रामोपद्रवरूप पाप किया। तथा अरण्यमें वास करि जो पाप मृगोपद्रवरूप किया। तथा सभा में स्थित हो जो पाप महाजनतिरस्कारादिक किया। तथा इन्द्रियों जिह्वोपस्थरूपाञ्जो करि हमनें प्रीति करिके जो पाप कलञ्ज भक्षण परस्त्री गमनादि किया। तथा अन्यत्र भी भृत्यस्वाम्यादि में जो पाप ताडनावज्ञादिक किया तिस इस सब पाप को नाश करते हैं। स्वाहा (यह हवि पापविनाशिनी देवता के अर्थ दिया ॥४५॥

+ शुक्लज्योतिरित्यादयः सप्त सप्तका मरुता गणाः । तत्र स्वतर्वाश्च प्रधासी चेति पठ्यते अध्या. ० १७. ४५।

मो घू ण इन्द्राच्च पृत्सु देवैरस्ति हि ष्मा ते शुष्मि-  
न्नवयाः । महश्चिद्यस्य मीढुषीयव्या हविष्मतो  
मरुतो वन्दते गीः ॥४६॥

का० ५. ५. १२. त्याग के अनन्तर यजमान जपे ॥ आगरत्यह-  
ष्टा ऐन्द्रमरुदेवत्या चतुष्यदा विराट् । हे इन्द्र इन संग्रामों में  
वर्तमान सरव्य को प्राप्त मरुदेवताओं सहित हमलोगों को वि-  
नाश न करि इति शेषः । मोषाब्दो निषेधार्थः सुषाब्दो विना-  
शाभावस्य सौष्टवं ब्रूते । तथा सति विनाशालेशा न हो इत्यर्थः  
संपद्यते । क उपकार इति चेत् । हे शुष्मिन् (बलवन्निन्द्र +)  
तेरा अवयाः (अवयुतो यागः पृथग्भागः) विद्यमान है ।  
हे मीढुषः (वृष्टिप्रदत्वेन सेक्तुः) । तुरू हविर्योग्य की यव्या  
(यवमयः करम्भयात्रों करि निष्पन्ना) होमक्रिया महश्चि-  
त्पूजा है भाव यह है कि तिस तुरू यथोक्त पूजोपेत का हम-  
लोगों में कृपालुत्व युक्त है । किं च मेरी स्तुतिरूपा वाणी तेरे  
मरुत् सरवाओं को नमस्कार करती है । अर्थात् मरुद्विषय-  
नमस्कार करि तुरू तुष्ट की कृपा युक्त है ॥४६॥

अक्रन्कर्म कर्मकृतः सह वाचा मयो भुवा । देवेभ्यः  
कर्म कृत्वास्तं प्रेत सच्चाभुवः ॥४७॥

का० ५. ५. १३. यजमान जपे ॥ आग्नेय्यनुष्टुबनिरुक्ता । वरुण-  
प्रधासारव्यकर्मकारिणः ऋत्विजलोग स्तुतिरूपा वाणी सहित  
वरुणप्रधासानुष्ठानरूपकरते हुए । कैसी वाणी कि मयो भुवा (सुख

† अर्थात् तिस सरवाओं को नमस्कार करती है । अर्थात् मरुद्विषय-  
नमस्कार करि तुरू तुष्ट की कृपा युक्त है ॥४६॥

† नमो मरुद्व्य इत्येवमाकारयाः स्तुतेर्नमस्काररूपत्वात् ।

होता है जिस करि तिस मन्त्ररूपस्तुति से। हे सचाभुवः (सहभवनशीलाः) परस्पर यजमान वा पत्नी करि इस कर्म में साथ बैठे ऋत्विज लोगो (देवताओं के अर्थ वरुणप्रधासारव्य कर्म करि के घरो को जाओ ॥४७॥

अवभृथ निचुम्पुण निचेरुसि निचुम्पुणः। अवदेवैर्देवकृतमेनोऽयासिषमवमर्त्यैर्मर्त्यकृतं पुरुषाणां देव रिषस्याहि ॥४८॥

का० ५. ५. ३०. ३१. वरुणप्रधास कर्म के अन्त में तदङ्गभूत जो अवभृथनामा कर्म जलसमीप में होता है तहां। दम्पती (यजमान यजमान्या) इस मन्त्र करि जल में स्नान करते हैं ॥ यज्ञदेवत्यम् ब्राह्मनुष्टप्। हे अवभृथ (अवाचीनपात्र जलमें डालते हैं तिस यज्ञविशेष में सो) हे निचुम्पुण (निरन्तर मन्द चलनेहारे यद्वा नीचशब्द करि कर्म करते हैं) तथाविधावभृथ यद्यपि नू निचेरुः (निरन्तर गमनशील) है तथापि यहां निचुम्पुण हो। किस प्रजयोन को सो कहिता है। देवों (द्योतनात्मकों अपयनी इन्द्रियों) करि देवकृत (हविः स्वामिओं देवताओं में किया) जो पाप है सो इस जल में डालता हूं। तथा मनुष्यों (अपने सहायभूत ऋत्विजों) करि किया मनुष्यों (यज्ञदर्शिनार्थ आप्ये हुओं) में अवज्ञारूप जो पाप है तिसै भी जल में डालता हूं। यह मेरा त्याग हुं या पाप जैसे तुम्हें व्याप्त न हो तैसे मन्द चलि इति भावः। किं च हे देव (अवभृथारव्य यज्ञ) रिषः (बध)



सै रक्षा करि। कैसारिषः कि पुरुरावाः (बहुत विरुद्ध फल को देता। अ-  
र्थात् विरुद्ध फलदायी बध तेरे प्रसाद हमलोगों को नहो ॥४८॥  
अ० ८. पूर्णं दर्वि परं पत सुपूर्णं पुनरपत। वस्त्रेव विक्रीणा-  
वहा इषमूर्जं शतक्रतो ॥४९॥

साकमेधगतं कर्म किंचिदुच्यते ॥ का० ५. ६. ३६. पूर्णं दर्वीति  
दर्वी करि स्थाली से ओदन ग्रहण करें ॥ हे ऐन्द्रावनुष्टुभी ओ-  
र्णवाभट्टे। हे दर्वि (अन्नप्रदान साधनभूते काष्ठादिनिर्मिते) तू  
पूर्ण (स्थाली) के सकाश से अन्न ग्रहण करिके पूर्ण (पूर्णत्वसे  
ही उत्कृष्ट) हुई पत (इन्द्र प्रति गमन करि। सुपूर्ण (कर्मफल  
करि भलीभाँति से पूर्ण) हुई फिरि हमारे प्रति आगमन करि।  
एवं दर्वीमुक्त्वा इन्द्रमाह। हे शतक्रतो (बहुकर्मन् इन्द्र) तू ओर  
हम दोनों वस्त्रेव (मूल्य करिके ही। इष (अभीष्ट हवि रूप अन्न)  
ओर ऊर्ज (हविर्दानफल रूप रस विशेष) को विक्रीणावहै (परस्पा-  
र द्रव्यविनियमरूप विक्रय करें। मैं तेरे अर्थ हवि देता हूँ तू  
मेरे अर्थ फल दे इत्यर्थः ॥४९॥

देहि मे ददामिते निमै धेहिनि ते दधे। निहारं च हरा-  
सि मे निहारं निहरणि ते स्वाहा ॥५०॥

का० ५. ६. ४० देहि मे इससे होम करें ॥ इन्द्र कहिता है। हे यज-  
मान तू मूर् इन्द्र के अर्थ प्रथम हवि दे। पश्चात् तू यजमान के  
अर्थ में अपेक्षित देता हूँ। एवं प्रथमपादोक्त एवार्थो द्वितीयपा-  
देनाद्वार्थ पुनरुच्यते। पहिले मूर् इन्द्र के अर्थ निरन्तर हवि

दे। तुरु यजमान के अर्थ अपेक्षित फल निरन्तर देता हूँ। ऐसा इन्द्र का वाक्य सुनि उत्तरार्ध करि यजमान कहिता है। निहार (मूल्यकरि केतव्य वस्तुरूपफल) तुरु यजमान के अर्थ दे। निहार (मूल्यभूत हवि) तुरु इन्द्र के अर्थ निरन्तर समर्पण करता हूँ। स्वाहाशब्दो हविर्दानार्थः। पूर्वार्ध में दो पादों से आदर करि इन्द्र के दो बार कहे अर्थ को उत्तरार्ध करि यजमान भली भाँति से अङ्गीकार करता है इत्यर्थः॥५०॥

अ०४. अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अपधूषत। अस्तौषत स्वभानवो विप्रा नविष्टया मती योजा त्विन्द्र ते हरी॥५१॥  
साकमेधगतपितृयज्ञारव्यकर्मणि आहवनीयोपस्थानम्॥  
का० ५.४.२१ सव्य यज्ञोपवीत करि सब ऋत्विग्यजमान निकलि के उत्तराभिमुख हो आहवनीय के समीप में अक्षन्नमीमदन्त सुसंहशं त्वेति दो कण्डिकाओं करि आहवनीय को उपतिष्ठें॥  
हे इन्द्रदेवत्ये गौतमदृष्टे पञ्चपदा पङ्क्तौ॥ पितृयज्ञारव्य कर्म में जे पितर हैं ते हमलोगों करि दिये हविःस्वरूप अन्न को भक्षण करते हुए। यह कैसे जाना। यों कि हमारी भक्ति को जानि प्रीति युक्त हो अपने शिरो को कम्पाते हुए वा अपनी प्यारी देही को कम्पाते हुए। किंच स्वभानवः (स्वयंदीप्ति युक्ताः) विप्राः (मेधाविनः) नवीन बुद्धि करिके युक्त स्तुति करते हुए (अहो बहुत स्वादिष्ट अन्न हमको दिया भली भक्ति है) अतः हे इन्द्रक्षिप्र अपने हरीनामा (हरितवर्ण) घोड़े रथ में जोड़ि अपनी अभीष्टा पितृतृप्ति करि संपन्न होने से

तिन पितरों के साथ तुम्हें जाना चाहिये इत्यर्थः ॥५१॥

सुसंहर्षो त्वा वयं मधवन्वन्दिषीमहि । प्रनूनं पूर्णव-  
न्धुरं स्तुतो यासि वशं ॥ अनुयोजान्विन्द्र ते हरी ॥५२॥  
हे मधवन् हम तुम्हें (तेरे) स्तुति करने वाले हैं यह प्रार्थना करते हैं ।  
कैसे तुम्हें कि शोभनदर्शन (अनुग्रहदृष्टि करि सब के द्रष्टार को ।  
ऐसे हमलोगों करि स्तुति किया तू कामयमानयजमानों को ल-  
रिवके अवश्य जाता है कैसा कि पूर्णवन्धुरः (स्तोत्रों के अर्थ दात-  
व्य धन करिके सम्पूर्णस्थनी डोपित होके जाता है । हे इन्द्र सो तू क्षिप्रः ॥५२॥

मनो न्वाह्वामहे नाराशंसोऽस्मिन् स्तोमेन । पितॄणां च म-  
न्मभिः ॥५३॥

का० ५० ४० २२० मनो न्वाह्वामहे इनतीनि ऋचाओं करि गार्हपत्य  
को उपतिष्ठे ॥ तिस्र ऋचो मनोदेवत्या गायत्र्यो बन्धुदृष्टाः ॥ हमशीघ्र  
मन को बुलाते हैं (पितृयज्ञानुष्ठान करि चित्त पितृलोक को  
गया था अतः बुलाइये हैं । यद्वा मनोऽभिमानि देवता को बु-  
लाते हैं । किस साधन कि स्तोम (स्तोत्र) करिके कैसे स्तोत्र कि ना-  
राशंस (मनुष्यों के योग्य शंस- नराशंस तिस सम्बन्धि) करिके ।  
स्तोत्र द्विविध है एक देव दूसरा मानुष जहां देवता स्तुति करिये हैं  
सो देव और जहां मनुष्य प्रशंसा करिये हैं सो मानुष तैसे मानुष स्तो-  
त्र करिके यह युक्त है कि च पितर जिस स्तोत्र को मानते हैं  
तैसे स्तोत्र करि के बुलाते हैं ॥५३॥

आ न एतु मनः पुनः कृत्वे दक्षाय जीवसे । ज्यो-

क्व सूर्ये दृशे ॥५४॥

हमारा मन (पूर्वोक्तचित्त) फिरके आगमन करें किमर्थ कि क-  
तु (यज्ञसंकल्प) के लिये दक्ष (कर्म में उत्साह) के लिये +। ज्यो जी-  
वन (चिरजीवन) के लिये और सूर्य वलोकन के लिये। इन सं-  
कल्पादिकों की सिद्धि के अर्थ मनः पुनः आगमन करें ॥५४॥

पुनर्नः पितरो मनो ददातु देव्यो जनः। जीव व्रात-  
तं सचेमहि ॥५५॥

हे पितरओ आपकी अनुज्ञा करि देवसम्बन्धि पुरुष हमारे अर्थ पू-  
र्वोक्त चित्त को पुनः देवों (ऐरण) करें। तथा सति अनुष्ठान करिके आप  
के प्रसाद से जीवनवन्त व्रात (पुत्रपश्चादिगण) को हम सेवन करें ॥५५॥

वयं सोम व्रते तव मनस्तनूषु विभ्रतः। प्रजावन्तः  
सचेमहि ॥५६॥

सोमदेवत्या गायत्री बन्धुदृष्टा जपे विनियुक्ता। अत्र पितृयज्ञे सोम-  
नामको देवो गतिः। सोमाय पितृमते २० २४ ३० इत्येवं हविषो  
विहितत्वात्। हे सोम हम यजमानाः तेरे व्रत (कर्म) में वर्तमानाः  
तेरे शरीरों में अपने चित्त को धारण करते हुए तेरी कृपा से प्र-  
जावन्तः (पुत्रपौत्रादिसंपन्नाः) होकर सेवन करते हैं सेवित-  
व्य वस्तुओं की इति शेषः। यद्वा सर्वदा तेरे सम्बद्धा हों ॥५६॥

अ० १० एष ते रुद्र भागः सह स्वस्वामि कया तं जुषस्व स्वा-  
ह्वेष ते रुद्र भाग आषुस्ते पशुः ॥५७॥ +

साकमेधगतत्र्यम्बकहविर्विषया मन्त्रा उच्यन्ते ॥ का०

+ तथा च श्रुतिः यदेव मनसा कामयत इदं मे स्यादिदं कुर्वीयेति स एव  
कतुरथ यदस्मै तत्समृद्धयेति मदक्ष इति। + ए-हा। अ० १० ए-शु। इ० ॥५७॥

२०१०१२ एष ते इस से होमें ॥ एष ते हे रोद्रे यजुषी १० प्राजापत्या  
 बृहती अवदान होमे विनि० हे रुद्र (विरोधियों के भाँतिभाँति  
 से रुलानेवाले) तेरी स्वसा (भगिनी-बहनि) अम्बिकानाम्नी  
 करि सहित यह हमलोगों करि दीयमान पुरोडाश भाग (भज-  
 नीय-स्वीकरने के लिये योग्य है) तिस तैसै पुरोडाश को तू से-  
 वन करि स्वाहा (यह दिया हवि सुहुत हो ॥ अम्बिका का रुद्र  
 की भगिनी होना श्रुति में कहा है। शत० २०६२०४ अम्बिका  
 ह वैनामास्य स्वसा तयास्यैष सह भाग इति। जो यह रुद्रना-  
 मा क्रूरदेव है तिस की विरोधि को मारने के लिये इच्छा होती है  
 तब इस भगिनी क्रूरदेवता साधन मूता करि तिसै मारता है।  
 और सो अम्बिका शरद्वय को प्राप्त हो जरादिक को उत्पन्न करि  
 तिस विरोधि को मारती है। तिन रुद्र और अम्बिका का उग्रत्व  
 इस हवि करिके शान्त होता है। तथा च तित्तिरिः। एष ते रुद्र भा-  
 गः सह स्वस्वाम्बिकयेत्याह शरद्वयः अस्याम्बिका साभियाः  
 एषा हिनस्ति यर्धं हिनस्ति तयैवैनर्धं सह शमयतीति ॥ का०  
 ५०१०१२०१३ यजमान के जितने पुत्र मृत्यादिक पुरुष हैं  
 तिन्हें गिनिकर प्रति पुरुष एक-एक पुरोडाश बनाकर फि-  
 रि एक अधिक बनावै सो अतिरिक्त कहिलाता है। तहां जो  
 यह अतिरिक्त तिसै न होमें किंतु उत्तरदिशा में जाकर मूसे-  
 ओं की खोदी हुई मृदा में प्रवेश कराय के टकि देवै ॥ २० एष  
 ते यजुर्जगती। हे रुद्र यह हमलोगों करि उपकीर्यमाण अति-

रिक्त पुरोदाश नेरा भाग (तुम करि भजनीय) है तथा नेरा आ-  
खुः॥ मूषक मूसा चूहा पशुत्व करिके समर्पित है। अर्थात्  
आखुदान करि तुम हुआ रुद्र अम्बिका करि यजमान  
के पशुओं को नहीं मारता ॥५०॥

अव रुद्रमदीमह्यक देव अम्बकम्। यथा नो वस्य  
सस्करद्यथा नः श्रेयसस्करद्यथा नो व्यवसाययात् ॥५१॥  
का० ५-१०-१५ तहा से लोचि करि अव रुद्रमदीमहीति जिये ॥ हे  
रुद्रदेवत्ये प्रथमा पञ्चपदापङ्क्तिर्द्वितीया ककुप हयोर्जदेविति  
रुद्रमव असौ रुद्र इति, यह रुद्र है यह मन करि तिमै जानना तेरे  
अनुग्रह मे हम अन्न को भक्षण करे ॥ यथा अम्बक इस देव के  
तीनि नेत्र है यह मन ॥ यहा अन्यदेवताओं से मूषक करिके रुद्र  
को भोजन करते हैं। अन्य दे०-के अम्बक को भोजन करते हैं।  
जैसे यह हमलोगों को वसनशील करे। और जैसे हम को ज्ञाति  
में प्रशस्यतर करे। और जैसे हम को सबकार्यों में निश्चययुक्त  
करे। तैसे इसे जपते हैं इत्यर्थः ॥ आशीरियम् ॥५०॥

भेषजमसि भेषजं गवेऽश्वाय पुरुषाय भेषजम् ॥

सुखं मेषाय मेष्ये ॥५१॥

हे रुद्र तू भेषज (ओषधवत्सर्वोपद्रवनिवारक) है इस कारण  
हमारे गो अश्व और पुरुषों के अर्थ सर्वव्याधिनिवारक ओष-  
ध दे। मेष और मेषी के अर्थ सुख (सुहित है प्राणों के अर्थ)  
दे। अनेन मन्त्रेण गृहपशूनां क्षेमशान्तिर्भवति ॥५२॥

अम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुक-  
मिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥ अम्बकं यजा-  
महे सुगन्धिं पतिवेदनम् । उर्वारुकमिव बन्धनादि-  
तो मुक्षीय मामृते ॥ ६० ॥ + अ-त् अ० अ-तः । ६० ।

का० ५. १०. १५. १६. जैसे पितृमेध में पुत्रादयः पुरुषाः अपनी वा-  
मोरू को ताड़ना करते तीनिवार अप्रदक्षिणा फिरते हैं । और जैसे देव-  
ता सेवा में दक्षिणोरू को ताड़न करते तीनि प्रदक्षिणा फिरते हैं ।  
एवं यहां पुरुषाः पहिले अम्बकमन्त्र करिके अग्नि को तीनि अप्र-  
दक्षिणा और तीनि प्रदक्षिणा फिरें । तहां एक-एक मन्त्र पूर्वक और  
दो-दो चुपके से परंतु अप्रदक्षिणा फिरते अपसव्य न होंवें ॥  
हे अनुष्टुभो पूर्वस्यां वसिष्ठदृष्ट्या । सुगन्धि (दिव्यगन्धोपेत) मर्त्यध-  
र्महीन पुष्टिवर्धन (धनधान्यादि पुष्टि के बढ़ाने वाले) अम्बक (तीनि  
नेत्रयुक्त) रुद्र को पूजन करते हैं । ततः रुद्र के प्रसाद से मृत्यु (अपमृ-  
त्यु और संसारमृत्यु) से मुक्त होवेंगे और अमृत (स्वर्गरूप और मुक्तिरू-  
प) से मुक्त न होंवेंगे (मेरा अभ्युदयनिः श्रेयसरूप दोनों फलों से भ-  
ग्न न हो इत्यर्थः) । मृत्योर्मीचने दृष्टान्तः । उर्वारुकमिव बन्धनादिति  
जैसे बदरी आदि फल अत्यन्त पक्क होने पर अपने डंठरे से छूटता है  
तद्वत् ॥ का० ५. १०. १३. और यजमानसम्बन्धिन्यः कुमार्यः (विन वि-  
वाही पुत्रीएँ) पूर्वोक्त पुरुषवत् अग्नि को तीनि-तीनि फेरे देंवें एक-ए-  
क चार उत्तर अम्बक मन्त्र पढ़िकर दो-दो बार चुपके से इति ॥ इम  
अम्बक को पूजती हैं । कैसे को कि पतिवेदन (भर्तार के देनेवाले)

+ इत आख्याध्यायसमाप्तिपर्यन्तं सर्वमाशिषदेवत्यः । आशीः प्रायमित्युक्तत्वात्  
कात्या० अनु० १. १५ ।

को। अन्यत्पूर्ववत्। इतो मुक्षीय, मातृपितृभ्रातृवर्ग से छूटें अमु-  
तो मा विवाह से ऊपरपति से न छूटें। पिता के गोत्र और घर को छो-  
डि के पति के गोत्र और घर में अश्वक प्रसाद से सर्वदा वास करें।  
सा यदित इत्याह ज्ञातिभ्यस्तदाह मामुत इति पतिभ्यस्तदाहेति श-  
त० २. ६. २. १४. श्रुतेरितोऽमुतः शब्दाभ्यां पितृपतिवर्गौ ग्राह्यौ॥ ६०॥

एतत्ते रुद्रावसं तेन परो मूजवतोऽतीहि। अवततध-  
न्वा पिनाकावसः कृतिवासा अहिर्ऋसन्नः शिवोऽ-  
तीहि॥ ६१॥

का० ५. १०. २१. ब्रीहियवादिकों को वहने के अर्थ तृणवंशादिनिर्मि-  
त पात्रविशेष भूत कहलाता है। तैसे दो मूतों में अश्वक के हवि-  
शेषों को डालिकर अपने कन्धों से वहने योग्य वंश वा यज्ञिय-  
काष्ठ की लाठी में तिन दोनों मूतों को बाँधि उन्नत स्थाणु (ठूठ)  
वा वृक्ष वा वंश वा बल्मीक पर दोनों मूतयुक्त लाठी को छोड़ि-  
दे। तैसे गोंगें न सूँघ सकें इस से गौओं को रोग नहीं होता। गेद्या-  
स्तारपङ्क्तिः॥ हे रुद्र यह तेरा अवस + (हविः शेषाख्य भोज्य) है ति-  
स सहित तू मूजवान्पर्वत ‡ से परभागवती हो अतिक्रम्य जा। कैसे है  
तू कि अवततधन्वा (अवरोपितधनुष्कः) हमारे विरोधियों के तुम  
करि निवारतत्व से इस पीछे धनुष में ज्या चढ़ाने का प्रयोजन नहि-  
ने से यहां अवरोपण युक्त है। तथा पिनाकावसः (पिनाकनामा अप-  
नी धनुष को सर्वतः ढाँपता। जैसे धनुष को देखि प्राणी न डरें तैसे वस्त्रा-  
दि से ढाँपिके गमन करि इत्यर्थः॥ का० ५. १०. २२. २३. कृतिवासेति

‡ मूजवान्नाम कश्चित्पर्वतः रुद्रस्य वासस्थानम्।

श्री-  
भक्तव्य-  
तथाकारिसमीपे भोक्तव्य-  
मार्गमध्य-  
गच्छते-  
अवसंशब्देन देशान्तरं गच्छते-  
वनविशेष उच्यते।



दोनों मूर्तों को निश्चल करे केचित् नहां से लौटते हुए दोनों मूर्तों को न देखते वेदी के समीप में आकर जल का स्पर्श करे ॥ मन्त्रार्थस्तु हे रुद्र नू कृतिवासाः (चर्माम्बरः) हमलोगों को न भारते शिव (हमारी पूजा करि संतुष्ट हुआ कोपरहित) होके पर्वत को अतिक्रम्य गमन करि ॥ ६१ ॥

आयुषं जमदग्नेः कश्यपस्य आयुषम् । यद्देवेषु आयुषं तन्नोऽप्रस्तु आयुषम् ॥ ६२ ॥

का. ५. २. १६ यजनसमय संहितास्वर से यजमान जपे ॥ नारायण हृष्टाशी देवता शिवाक् । जमदग्नि मुनिका जो आयुष (बाल्ययौवनस्थाविर तीनों अवस्थाओं का समाहार) तथा कश्यप नामा प्राजापतिका जो आयुष तथा देवताओं (इन्द्रादिकों) में जो आयुष है सो सब आयुष हम यजमानों का हो । जमदग्न्यादिकों का बाल्यादि में जैसा चलन तैसा हमारा होवे इत्यर्थः ॥ ६२ ॥

शिवो नामासि स्वधितस्ते पिता नमस्तेऽप्रस्तु मा मा हिर्हंसीः । निवर्तयाम्यायुषेऽन्नाद्यय प्रजननाय रायसोषाय सुप्रजास्वाय सुवीर्याय ॥ ६३ ॥ †

इति श्री संहितायां दशमोऽनुवाकः १०

इति श्री शुक्लयजुषिमाध्यन्दिनीशाखीयायां वाजसनेय संहितायां दीर्घ पाठे तृतीयोऽध्यायः ३

का. ५. २. १७ शिवो नामेति लोहे का क्षुरा लेकर निवर्तयामीति वपे ॥ शिवो नामेति प्राजापत्या ब्रह्मती क्षुरदे. १. निवर्तयामीति यजुर्लिङ्गेक्त (यजमान) दे. २. आशीः प्रायम् । मन्त्रार्थस्तु ।

† शिवो नामेति लोहे का क्षुरा लेकर निवर्तयामीति वपे ॥ शिवो नामेति प्राजापत्या ब्रह्मती क्षुरदे. १. निवर्तयामीति यजुर्लिङ्गेक्त (यजमान) दे. २. आशीः प्रायम् । मन्त्रार्थस्तु ।

† शि-सीः अ. १. नि-य. १. ॥ ६३

हे क्षुर तू नाम करिके शिव (शान्त) हे स्वधितिः (वज्र) तेरा पिता  
तेरे अर्थ मेरी नमस्कार सुरूको मत मारि ॥ १ ॥ हे यजमान ते  
रा मुण्डन कर्ता हूँ किसलिये कि जीवन के अर्थ अन्न भक्षण  
सन्तान धन की पुष्टि शोभन प्रजा शोभन सामर्थ्य के अर्थ ॥  
२ ॥ ६३ ॥

श्री वेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दनिवारयन्  
पुमार्थोऽथ तरो देयाद्यज्ञं पुरुषः सनातनः ३  
इति श्री गिरिधरभाष्ये दशमोऽनुवाकः १०

श्री मच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीयशाखाध्येतृवैयाघ्रपदा  
न्वय विश्वामित्रपुराधिप श्री मज्जय किशोरदेववर्मात्मज  
रोक्तिमणाय नृपतिगिरिप्रसादेन रचिते श्री वेदार्थप्रदीपे गिरिध-  
रभाष्ये गिरिप्रसाद सर्वस्वे अग्न्याधानादिष्विच्छान्तसृतीयोऽ  
ध्यायः ॥ ३ ॥

हरिः ओम्  
ॐ नमो यज्ञपुरुषाय  
पञ्चात्मकं द्विरुत्तमं साधनैर्बहुरूपकम्  
स्वानन्दलायकं चक्षुषां ब्रह्मरूपं परं सुभः ४

अथारिन्नष्टोममन्त्रास्तेषां प्रजापतिर्नृपिः

अ. ११. अ. २०. ॥ एतु मगन्तु देव यजनमृधिव्यायव देवा सो-

अजुषन्तविश्वे॥ ऋक्सामाभ्यांश्च सन्तरन्तो यजुर्भी  
रायस्योषेण समिषामदेम॥ इमाः प्राक् शसुमे सन्तु दे-  
वीरोषधे त्राय स्वस्वधि ते भिनः हिंसीः ॥ १॥

ओं नमो याज्ञवल्क्याय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रोत्रेदार्थप्रदीपके

शालागमाद्वाचनान्तश्चतुर्थोऽध्याय ईर्यते ४०

आधानकण्डिका १-८ अग्निहोत्र ४-१० उपस्थान ११-४३ चातु-  
र्मास्य ४४-६३ के मंत्र तीसरे अध्याय में कहे चौथे अध्याय की आ-  
दि से ले आहवें अध्याय की वत्तीस ३२ कण्डिका पर्यन्त अग्नि-  
ष्टोम के मंत्र कहियें हैं। तिन्हें का प्रजापति ऋषि है ॥ तहां चौथे  
में यजमान के संस्कार पूर्वक सोमत्रय के मंत्र प्रधान करि क-  
हियें हैं तहां पहिले यजमान सेल्ले १६ ऋत्विजों का वरण  
करि के अरणी में अग्नि का आरोपण करि शाला में जावें ॥ का०  
७० १० १६ अग्नि का आरोपण करि के शाला के स्तंभ का पूर्व भाग  
गृहण करि अरणी हाथ में ले एदमगन्म पढ़े ॥ एदमगन्म १०  
आपोऽप्रस्मान् २ दोनों कण्डिकाओं का व्यवसाना अत्यष्टी छन्द  
और तिनों में मंत्र सात ७ हैं। एदमगन्म ऋक्सामाभ्याम् द्वे यजु-  
षी देवयजन देवत्ये ॥ ॥ मंत्रार्थः ॥ इदम् यह हाथ से संकेत  
करि दिखलाता है। हम यजमान इस पृथिवी संबधी देवयज-  
न (देवताओं की पूजा के स्थान) में आये हैं। यह कैसा है कि जि-  
स देवयजन में सब देवता प्रीति पूर्वक बैठे हैं और हम धन की

शत० ३३१०० तेरे यहां पशु होवें ॥३॥ मेराय इति दे- अ०  
का० ७० ६२२ स्थाली में स्थित पद को यजमान गृहण करे ॥ अ०  
र्थः ॥ मुरु यजमान विसें धन वा पशु इस पद करि तिष्ठियों ॥४॥ मा-  
वयमिति या- वि० का० ७० ६२३ अध्वर्यु हृदय का स्पर्श करे ॥  
अर्थः ॥ हम अध्वर्यु से आदिले धन की पुष्टि करि वियुक्त न हो-  
वें ॥५॥ तो तो राय इति दे- इ० का० ७० ६२४ २५ अध्वर्यु यजमा-  
न से ले पत्नी को देवे अनेक पत्नी होने से नेष्टा सब पत्नीयों से  
कहवावे ॥ अर्थः ॥ पत्नी के यहां धन वा पशु पद रूपेण तिष्ठियों  
अथवा तोतः तेरे धन वा पशु तिष्ठियों ॥६॥ २२॥

समेत्ये ॥ देव्याधिया यजमानो यो रुचंश्चक्षसा ॥ मा भू आयुः  
प्रसोयोभ्यो अहन्तव वीरमिन्देयतव देविसन्धिशि ॥२३॥  
आस्तारपडिः पत्न्याशीः सोमक्रयणी से पत्नी आशिष माग-  
ती है का० ७० ६२६ सोम क्रयणी को देवती हुई पत्नी को अ-  
ध्वर्यु पदवावे ॥ अर्थः ॥ हे सोम क्रयणी अपनी प्रकाशमान बुद्धि पू-  
र्वक मुझे देखि कैसी अपनी कि दक्षिणा योग्य तथा बहुत देखने  
वाली ऐसी तू मुरु पत्नी की आयु को खण्डित न करि क्यों कि मैं ते-  
री आयु को खण्डित नहीं करती ॥ किंच दे देवि गौ तेरे दर्शन से  
वीर (पुत्र) मिले ॥२३॥

अ० ८० एषते ॥ गायत्रो भाग इति मे सोमाय व्रता देषते वैष्टभो  
भाग इति मे सोमाय व्रता देषते जागतो भाग इति मे  
सोमाय व्रता छन्दो ना माना थं साम्ना ज्यङ्ग छेति-

तोतः शब्दः कलत्रवाची अव्ययम् । यद्वा व्ययानामनेकावत्वात् तोतः शब्दे  
युष्मत्प्रत्ययार्थः ॥

मे सोमाय ब्रूता आस्माकोऽसि शुक्रस्तेग्रहो विचित्रस्त्वा  
विचिन्वन्तु ॥ २४ ॥ ए-तु ॥ अ० ॥ आ-तु ॥ इ० ॥

एषते द्वे यजुषी लिङ्गे क्त देवता का० ७७०८ चारिमन्त्रों को यज-  
मान पढ़े ॥ अर्थः ॥ हे अध्वर्यो सोमाभिमानि देवता के अर्थ यह मेरा व-  
चन तू कहि। यह क्या कि हे सोम तेरा यह दृश्यमान भाग गायत्री  
संबन्धी है (गायत्री छन्द के अर्थ तेरा कय है कुछ बध के अर्थ नहीं य-  
ह यजमान का अभिप्राय है। तिस मेरे अभिप्राय को सोम के अर्थ कहि  
२ तेरा यह त्रिष्टुप् छन्द सम्बन्धी भाग इस मेरे अभिप्राय को सोम के  
अर्थ कहि ३ ऐसे ही आगे भी जगती छन्द सम्बन्धी इत्यादि अर्थ पाहि-  
ले समान ३ छन्द है नाम जिनों का रोसे उषिष्क से आदिले तिन्हों के  
आधिपत्यत्व को प्राप्त हो। यह मेरा वचन सोम के अर्थ कहि ४। जो  
सोम के अर्थ छन्दों का आधिपत्य देके लाता है सो अपनों का आधिपत्य  
पाता है। तदुक्तं नितिरिण। यो वै सोमर्षं राजानर्षं साम्राज्यलोकं गमयि-  
त्वा क्रीणाति गच्छति स्वानर्षं साम्राज्यमिति। इस हेतु इन मन्त्रों से  
सोम की राज्यप्राप्ति सूचित है। गायत्री से आदिले छन्दो देवता ज-  
हां रहते हैं सो छन्दों का लोक तिस के आधिपत्य को प्राप्ति कर  
सोम को लायके अपनों के आधिपत्य का भागी होता है यह अभि-  
प्राय है ॥ का० ७७०८ बैठि करि आस्माकोसि इस मंत्र से सोम को  
स्पर्श करें ॥ अर्थः ॥ हे सोम तू कय मार्ग होकर आने से आस्माक हे  
शुक्र + ऐन्द्रवायव से आदिले सब तेरे ग्रह हैं। विवेक पूर्वक चयन के क-  
रने वाले तुम्हें सार असार का विवेक करिके सारभूत को इकट्ठा करें ॥ २४ ॥

+ शुक्रपद में ऐन्द्रवायवादियहणाणामुपलक्षणम् ।

रु को मत देखियों। तथा वृका (लिरिये वा दुर्जन) तुरु को मति देखियों कैसे हैं वृकाः कि पशये पाप करने की इच्छा करते। किञ्च श्येन (शीघ्रगामी पक्षी) का रूप धारण करि वा श्येन वत रूप धारि। यजमान के घर को चलितिस यजमान के घर में तेरे ओर मेरे लिये सर्वोपकरण संयुक्त स्थान है ॥ २४ ॥

नमो मित्रस्य ॥ नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षुसे महे।  
देवा यत हृतं संपर्यत ॥ दूरे दृष्टे दं वज्रो ताव के तवे दि-  
वस्यु त्राय सूर्याय शरि सत ॥ ३५ ॥

अभि तपन सूर्य दृष्टा जगती छन्दस्का मूर्त्य देवत्या का ० ७. ४.  
२१. २२. शाला के पूर्व में प्रतिप्रस्थाता यजु को लेके ठीक कृष्ण सारंग स्थ-  
ल वा लेहित सारंग को यजमान में यजुका आत्मन् दराय नमो  
मित्रस्य पठवावे ॥ अर्थः ॥ इस मन्त्र में सूर्य सारंग सोम को न्युति क-  
रते हैं ॥ गेसे सूर्य के अर्थ हमारी नमस्कार ॥ किसे सूर्य के अर्थ कि मित्र  
ओर वरुण देवता रूप करि वर्तमान ॥ मित्र जगत के हित करने वाले  
वरुण अपनी किरणों से जगत को प्रकाश करने वाले ॥ देवर्ग वाले  
के अर्थ ॥ यद्वायमर्थः ॥ मित्रस्य वरुणस्य चक्षुसे (सर्व जगत के देख-  
ने वाले के अर्थ) तथा तेज रूपी के अर्थ ॥ प्रकाशवान के अर्थ ॥ तेसे ही  
दूर में वर्तमान प्राणियों को दूर से निसके ॥ अथवा दूर में देवता है ति-  
स के परमात्मा से उत्पन्न हुआ तिस के अथवा देवताओं के अनु-  
ग्रहार्थ उत्पन्न हुआ वा देवता जिस से उत्पन्न हुआ तिस के ॥ विज्ञान  
धन के अर्थ ॥ द्युलोक के पुत्र वत् प्यारे के ॥ वा द्युलोक के पालक के

+ मित्रा वरुण शब्देन सर्वे अंगल्लक्ष्यते ।

यद्वायमर्थः  
किं  
हिक  
हिक  
हिक

अर्थ। ऐसे सूर्य के अर्थ तिस अवश्य फल के देने वाले ज्योतिषो-  
मरूप कर्म को हे रित्विजः। तुम अनुष्ठान से पूजा करो। वातिसू-  
र्य रूप ब्रह्म को पूजो। किंच सूर्य की प्रीति के अर्थ स्तुति करो। अर्थान्  
शस्त्रों को पढ़ो क्यों कि यागा नुष्ठान में तिसका आवश्यकत्व है ॥ ३५ ॥

वरुणस्योत्तम्भनम् ॥ वरुणस्योत्तम्भनमसि वरुणस्य  
स्कम्भसर्जनीस्थो वरुणस्य ऋतुसदन्यसि वरुण  
स्य ऋतुसदनमसि वरुणस्य ऋतुसदनमासीद ॥ ३६ ॥

वरुणस्येति यच्च वारुणानि अथमा आसुरी जगती का ०७०४२५  
शाला के समीप शकट की। पूर्वमुख वा उत्तरमुख खड़ा कर उत्तम्भन  
काष्ट (तिपाये) से बांधे। अर्थ। हे काष्ट तू वरुण + (वस्त्र में धँसे सोम) का  
उत्तम्भन है। कुछ शकट का नहीं ॥ का वरुणस्येति हे यागुषी धेनु की का ०  
७०४२६ उत्तम्भन काष्ट पर शकट को रखा कर के नीचे शय्या में  
(सौलें) ऊपर को निकाल लें ॥ अर्थ ॥ हे काष्ट तु पर भक्तों को कर के नीचे  
(वैलों को धर उधर से लेकने वाली हो) ॥ का ०७०४२७ उत्तम्भन का  
नाभि समान भस्त्रिका गुँसे में घुसा ॥ अर्थ ॥ काँची कर के शकट के निकट  
रखि वरुणस्य ऋतुसदनमसि करि अध्वर्यु हाथ से स्पर्श करे ॥ अर्थ ॥  
हे आसन्दी तू सोम की यज्ञार्थ बिठलाने वाली है ॥ आयुषी विष्टुष  
का ०७०४२८ तिस आसन्दी पर कृष्णाजिन को पूर्वमुख करि बिछा  
वै ॥ अर्थ ॥ हे कृष्णाजिन बंधे हुए सोम के यज्ञार्थ बैठने का स्थान है ॥  
साम्नी गायत्री ॥ का ०७०४२९ तिस पर सोम को स्थापन करें ॥ अर्थ ॥  
हे सोम तू यज्ञार्थ बैठने के स्थान भूत आसन्दी संस्थित कृष्णा-

+ व-सि। अ० व-स्य ॥ ३७ ॥ व-सि। उ० व-रि। ऋ० व-द। लृ० ॥ ३६  
+ व्रियते वेष्ट्यते वस्त्रादिनेति वरुणशब्देनात्र वस्त्रवद् सोम उच्यते

जिनपर सुखपूर्वकवैठि॥३७॥

याते॥ याते धामानि हविषा यजन्ति ताते विश्वापरिभूर-  
स्तुयन्तम्॥ गयस्फानः प्रतरणः सुवीरो वीरहाप्स्रचरा-  
सोमदुर्यानु॥३७॥

इति संहितायां दशमोऽनुवाकः १०

इति श्री शुक्लयजुषिमाध्यन्दिनशार्वीयायां वाजसने-  
यसंहितायां दीर्घपाठे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

गोतम दृष्ट्वा त्रिष्टुप् छन्दस्का सोम देवत्या का ०७. ४. ३२. सोम  
के प्रवेश्य हुणपीरे अघ्नर्यु यजमान को पढवावे॥ अर्थः॥ हे सोम तेरे  
जिन प्रातः सवन से आदिले स्थानों को प्राप्त हो ऋत्विज तेरे स-  
रूप हवि से याग करते हैं। यज्ञ को देखकर इतिशेष॥ तिन सब स्थानों  
को प्राप्त हो॥ अर्थात् ऋत्विज जिन स्थानों में यजन करें तिनको  
तू प्राप्त हो। अथवा ऋत्विज जिन स्थानों को प्राप्त हो यजन करें  
ते सब तेरे यज्ञ के हों। किंच हे सोम तू घरे को प्राप्त हो। कैसा है  
तू कि घरे को बढाने वाला। आपदा से तिराने वाला। अथवा यज्ञ  
के पारका प्राप्त करने वाला। तेरे प्रसाद से पाये हैं हमने सपूत वे-  
दा नाती। अवीरहा (नहीं है वीरों का मारने वाला) अर्थात् वेदाना-  
तियों का परिपालक॥३७॥

इति श्री गिरिधरभाष्ये दशमोऽनुवाकः ॥१०॥

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्द निवारयन्

पुमार्थोऽश्वतुरो देयाद्यज्ञपुरुषः सनातनः ४



श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीयशाखाध्येतव्याघ्रपादान्वर  
विश्वामित्रपुराधिपतिश्रीमज्जयकिशोरदेववर्मात्मजरोकिमणोय  
नृपतिगिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपेगिरिधरभाष्येगिरिप्रस  
दसर्वस्वे शालागमाद्वाचनान्तश्चतुर्थोऽध्यायः॥४॥

हरिः ओम्

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्वह रूपकम्

स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः ५

अ० प्र० अग्नेस्तनूः॥ अग्नेस्तनूरसि विष्णवे त्वा सोमस्य तनूरसि  
विष्णवे त्वा तिथेरातिथ्यमसि विष्णवे त्वा श्येनाय त्वा सो  
मभृते विष्णवे त्वा गनये त्वा रायस्योषदे विष्णवे त्वा॥१॥

ओं नमो याज्ञवल्क्याय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके॥

आतिथ्यात्स्थाणुहोमान्तः पञ्चमोऽध्याय ईर्यते ५

चौथे अध्याय में ऋत्विजसहित यजमान के शालाप्रवेश से ले करीत  
सोम के शालाप्रवेशतलक मन्त्र कहें॥ अव पाँचवाँ अध्याय तिस  
की आदि में आतिथ्य के आठ हविर्ग्रहण से ले मन्त्र कहियें हैं॥ का०  
८० १४० अग्नेस्तनूः इस पहली कंडिका के पाँच मन्त्रों से हविर्ग्रह  
ण करे। वैष्णवानि पञ्च यजूंषि १५५-पं० २५५ त्रि० ३४० या० ज  
५ आसु० अ०॥ अर्थः॥ हे हविः तू अग्नि का शरीर है। अग्नि संज्ञक  
जो देवता सोम राजा का भृत्य तिसका गायत्री छन्द अधिष्ठाता

१ अ-त्वा। २ अ०। सो-त्वा। ३ अ०। आ-त्वा। ४ उ०। श्ये-त्वा। ५ ऋ०। अ-त्वा। लृ०॥१॥

होंका शरीर (तृप्तिकरनेवाला) है तैसे हे हवि विष्णु (बहुयज्ञव्यापक सोम) की प्रीतिके अर्थ तुरुको ग्रहण करताहूं १ सोम नामा सोम राजा का भृत्य त्रिष्टुप् छन्द अधिष्ठाता तिसका शरीर (तृप्तिकाहेतु है) और अर्थ पदिलेके समान २ अतिथि संज्ञक सोमराजा का अनुचर जगता छन्द अधिष्ठाता। हे हवितृ अतिथि संज्ञक सोमके भृत्य का आतिथ्य नामक संस्कार रूप (अर्थात् विना तिथिके क्षुधाकरि पीडित विप्रके आनेपर तिसके पैर धोने भोजन करानेसे आदिले संस्कारको आतिथ्य कहितेहैं सो है। और अर्थ पूर्ववत् ३ प्रयेन नाम देवता सोम राजा का अनुचर स्वर्गसे सोमको लाने वाला प्रयेन रूप धरने वाली गायत्री अधिष्ठाता तिस प्रयेन और विष्णु, सोमके अर्थ तुरुको ग्रहण करताहूं। केसे प्रयेनके अर्थ कि सोमका लानेवाला तिसके ४ धनकी पुष्टिका देनेवाला तिसके राजाके धनको लैन देनेसे बहुत वढायकर राजा को देवे सो राघस्योषदा, अग्नि संज्ञक और सोमका अनुचर हे अनुक्त छन्द अधिष्ठाता देवता तिस धनकी पुष्टि देनेवाले अग्निके अर्थ है हवि तुरुको ग्रहण करताहूं विष्णवेति पूर्ववत् ५ विष्णु शब्दाभिधेयि सोमराजा के हविसे तिसके अनुचर अग्न्यादिक देवताओं और तिनद्वारा तिनके सम्वन्धी गायत्र्यादि छन्दोंकी तृप्ति हांती है ॥१॥

अयाग्निनयनमंत्राः

अग्नेर्जनित्रम ॥ अग्नेर्जनित्रमसि बुधणेऽस्थ उच्चै  
श्यस्यायुरसि पुरुरवा असि ॥ गायत्रेण त्वा छन्दसा

मन्या मित्रैष्टुभेनत्वा छन्दसामन्या मिजागतेनत्वा-  
छन्दसामन्यामि ॥ २ ॥ +

अग्नेर्जनित्रमितीया-उ० शकलदेवता का० ५० १० २८० इससैशक  
ललेवेदीपर उत्तराग्ररखै ॥ अर्थः ॥ हे शकल तू अग्निके उत्पन्न  
होनेका आधार भूत है ॥ १ ॥ वृषणोस्थ इति कुशतरुणं २ उर्व  
श्यसीति ३ आयुरसीति त्रयाणां देवी वृहती ० ४ पुरुरवा असीति  
या-गा० त्रयाणां लिङ्गोक्ता देवता ५ का० ५० १० २४० पूर्वको अगा  
डी कर कुशतरुण तिसपर रखै ॥ अर्थः ॥ हे दर्भो तुम वृषणो (सी  
चनेवाली) हो। जैसे पुत्रजनने के अर्थ स्त्री पुरुष वीर्य के सीचने  
वाले तैसे तुम दोनों अरणियों को अग्निजनन सामर्थ्य सम्पादक हो  
२ ॥ का० ५० १० ३०० कुशतरुणों के ऊपर उत्तराग्र अधरारणि नी  
चे की अरणि रखै ॥ अर्थः ॥ हे अधरारणे तू उर्वशी है। जैसे उ  
र्वशी पुरुरवारजा के भोग के अर्थ नीचे प्राप्त है तैसे ही तू नीचे स्थि  
त है ॥ ३ ॥ का० ५० १० ३१० उत्तरारणि से आज्य स्थाली गत आज्य  
का स्पर्श करि ॥ अर्थः ॥ हे स्थाली गत आज्य तू आयु (अर्थात् दे  
अरणि से उत्पन्न हुए अग्निको आयु का देनेवाला) हे ४ का० ५० १० ३१०  
उत्तरारणिको अधरारणिके ऊपर रखै ॥ अर्थः ॥ हे उत्तरारणि तू पुरु  
रवा है। जैसे पुरुरवारजा उर्वशी के ऊपर वर्तते है तैसे तू भी है ५ उर्वशी  
सै आदिले तीन मंत्र श्रुति में कहे हैं शत० ३० ४० १० २२० ॥ गायत्री  
ति० त्रयाणां या-त्रि० अग्निर्दे० का० ५० २० २० तीनों मंत्रों से अ  
ध्वर्यु अरणियों का मंथन करै ॥ हे अग्ने गायत्री छन्द के अभिमा

+ अ-सि॥ अ० ॥ वृ-स्थ॥ इ० ॥ उ-सि॥ उ० ॥ आ-सि॥ अ० ॥ पु-सि॥ लृ० ॥ गा-मि॥ आ० ॥ त्रि-  
मि॥ दे० ॥ जा-मि॥ लृ० ॥

नीदेवता सैं मेंतुम्हको मन्यन करता (अरणि के मन्यन से उत्पन्न क  
 रता) हुं ॥ ६ ॥ त्रैष्टुभेन ७ जागतेन ८ दोनो मंत्रों का अर्थ पहिले के समान २  
 भवतन्त्रः ॥ भवतन्त्रः सम नसौ सचेत सावरेपसौ ॥ मायज्ञ  
 ६ हिं ६ सिष्ट म्मा यज्ञ पतिज्ञा तवेदसौ शिवो भवतमन्यनः ३  
 पङ्क्तिः ३ अग्नावग्निः पङ्क्तिर्विराज एतयोर्निमथ्या हवनीयावग्नि  
 देवते का ० ५ २ ५ ० मन्यन करके उठे अग्नि को आहवनीय में प्रक्षे  
 प करें ॥ हे जात वेदसो (दोनो अग्नि) हमारे अर्थ ऐसे हो। कैसे हो दोनो  
 कि मन सा सहित। तथा परस्पर समान चिंत युक्त अन्य विषय सैं  
 मन को निकाल हमारे अनुग्रह को मन सहित परस्पर विप्रतिपत्ति  
 रहित सचेत। तथा पापरहित (अर्थात् भूल से हमारे किये पाप  
 के विषे को पनहीं करते। तिसको स्पष्ट करते हैं। हमारे यज्ञ कर्म  
 को नही विनाश करते और यज्ञपति यजमान को नही विनाश  
 करते। तथा इस अनुष्ठान के दिन में हमारे अर्थ कल्याणकारी हो ३  
 अग्नावग्निः ॥ अग्नावग्निश्चरति प्रविष्टः ऋषिणा  
 स्पृचोः अभिशस्ति पावो ॥ सनः स्योनः सुयजा यजेह  
 देवेभ्यो हव्यर्धं सदमप्स्युच्छन्त्स्वाहा ॥ ४ ॥

का ० ५ २ ६ स्थाली सैं घृत ले खुवा करि होमे। अर्थः ॥ मय्यमान  
 अग्नि आहवनीय में प्रविष्ट हो नैं हविका भक्षण करता है। कैं  
 सा है अग्नि कि ऋत्विजें  
 तथा विकलता के निमि  
 गने तैं सा तू हमारे लिये स

में इन्द्रादिक देवताओं को सोमादिरूप हवि दे (अर्थात् हमारे दिये हविको देवों प्रति पहुँचा। क्या करि के सदा प्रमाद छोड़िके। स्वाहा (यह आज्य तुरको हुन हजिये) अथवा सो अग्नि हमारा हवि देवताओं को देवे ॥४॥

अ० २ आपतयेत्वा ॥ आपतयेत्वा परिपतये गृह्णामि तनूनप्ते  
शाकुराय शक्नः ओजिष्ठाय ॥ अनाधृष्टमस्य नाधृष्ट्य  
न्देवानामो जो न भिशत्य भिशस्ति पाः अ न भिशस्ते -  
न्य मज्जे सा सत्यमुप गेष ॥ स्विते माधाः ॥५॥ †

† शस्येन्यमज्जे  
सा इति वा पाठः

आपतयेत्वेति प्रा-त्रि० वायुर्दे० का० ८० १० १४० २० जिस पात्र कर  
कै देते हैं तिस पात्र में ध्रुवास्थ आज्य को ग्रहण करे। ऐसै ही स्थाली में  
सै सुवा करि व्रत प्रदान पात्र में तनून प्रेशाकुराय शक्नः ओजिष्ठा  
य सै आज्य ग्रहण करे ॥ अर्थः ॥ सतत गति वायु तिसके अर्थ हे  
आज्य तुरको ग्रहण करता हूँ ॥ कैसे के अर्थ कि सर्व व्यापी ॥ तथा वि  
श्व के विस्तार करने वाले (आत्मा) के नाती ॥ आकाश के वेरा तिसके।  
सब करने को समर्थ तिसके। बडे बलवान ॥ अथवा इसका दूसरा अ  
र्थ तितरे में कहा ॥ हे आज्य तुरको प्राण देवता की प्रीतिके अर्थ इ  
स पात्र में लेता हूँ। मन की प्रीतिके अर्थ ग्रहण करता हूँ। जठर अग्नि दे  
वता की प्रीतिके अर्थ तुरको ग्रहण करता हूँ। शक्तिमान पुरुष तिस  
के शक्ति स्वरूपा भिमानी देवता की प्रीतिके अर्थ तुरको ग्रहण करता  
हूँ। शक्तिमान पुरुष में जो मार है तिस साग भिमानी देवता की प्रीति

॥ अनाधृष्टमित्याज्य देवतं य  
ज्य है तिस तानून प्र आज्य

को वेदी के दक्षिण ओणी पर रवि के ऋत्विज यजमान अनाधुष्ठ मंत्र पटि स्पर्श करें। जिनों ने साथ तानून प्र आज्य का स्पर्श किया सो तानून प्र तिने के साथ द्रोहन करे ॥ अर्थः ॥ हे आज्य तू ऐसा है। के सा- कि- किसी ने भी तिरस्कार नहीं किया न तिरस्कार किया जावे किसी से। अग्न्यादिक देवताओं का अंज सारभूत। नहीं है निन्दा जिसकी सो। ऋत्विजों को निन्दन (आपस के विरोध से रक्षा करता है)। अ निन्दित स्वर्गादिकों को पहुंचाता है। जो कि तू ऐसा है इस लिये हे तानून प्र आज्य हम ऋत्विज मनसा की कुटिलता छोड़ कर सत्य आज्य स्पर्श रूपी शपथ करते हैं। किंच हे आज्य शोभन मार्ग यज्ञकर्म में हम को तू स्थापन कर ॥ ५ ॥

अग्ने ब्रतपाः ॥ अग्ने ब्रतपा स्त्वे ब्रतपा यातवत नूरि  
यठं सामयि यो मम तनूरेषा सात्वयि ॥ सह नो ब्रतपते  
ब्रतान्यनु मेही क्षान्ही क्षा पतिर्मन्यतामनु तपस्तप  
स्पतिः ॥ ६ ॥

आग्नेयं यजुः का० ७. २. ४. इससे आहवनीय में समिध डाले ॥ यजमान इस यजुः से अग्नि के शरीर और अपने शरीर को एक करे ॥ अर्थः ॥ हे ब्रतपा (सम्पूर्ण वृत्तों के पालन करने वाले अग्ने) तू हमारे वर्तमान व्रत का पालक हो। तू रूतै से व्रत पालक का जो शरीर है सो यह शरीर मेरा ही। और जो यह मेरा शरीर सो यह तेरा होवे ॥ तै से ही हे ब्रतपते व्रत के पालक अग्ने अनुष्ठान किये हुए कर्म नो (हमारे तेरे) एक हैं। जितना व्रतों में मुरुकों आदर इतना ही तू रू

को भी हो। किंच दीक्षा का पति सोम मुझे दीक्षा को आज्ञा देवै। तथा  
उपसङ्ग पतप का पति सोम तप की मुझ को आज्ञा दे ॥ ६ ॥

अर्धं शुरर्धं शुष्टे ॥ देव सो माप्या यता मिन्द्रा यैक धन विदे ॥  
आतुभ्य मिन्द्रप्या यता मात्व मिन्द्रा यप्यायस्व ॥ आप्या  
यया स्मान्त्सखीन्त्स न्या मेधया स्वस्ति ते देव सोम सुत्याम  
शीय ॥ एष्टा रायः प्रेषे भगायः ऋत मृतवादिभ्यो न मो  
द्यावा पृथिवीभ्याम् ॥ ७ ॥

चतुरवसाना प्रकृति सौम्यम् अंत्योर्ध्वेर्चो लिङ्गोक्त देव० का० ८० २० ६०  
ब्रह्मा० उद्गाता० होता० अध्वर्यु० आग्नीध्र० यजमान० सोमको आलंभ  
नकरें ॥ अर्थः ॥ हे सोम देव तेरे अंशु अंशु (सम्पूर्ण) अवयव इन्द्र की  
प्रीतिके अर्थ वटें। पुराने सोम के जो अवयव म्लान और शुष्क सो-  
दोंनो इससे बटते हैं इति तित्तिरिः ॥ कैसे इन्द्र के अर्थ कि एक मुख्य  
धन सोम रूप को प्राप्त होता है। अथवा दूसरा अर्थ सोम कंडन के अ-  
र्थ जिनसे जल लाते हैं ते घड़े एक धनाः (एक धन सोम रूप जिनमे  
यह जानता है। अर्थात् सोम कंडन के अर्थ जल के घड़े आये। किं  
च हे सोम तेरे पान के अर्थ इन्द्र वटों। हे सोम तू भी इन्द्र के पान के अर्थ  
अच्छे प्रकार वृद्धि को प्राप्त हो किंच हे सोम प्यारे हम ऋत्विजों को स-  
न्या (धन के दान) और मेधया (अर्थ की धारणा शक्ति) से बढा। किंच  
हे सोम देव तेरा कल्याण हुआ जियो। तेरे प्रसाद से हम सोमाभिषव कृ-  
या समाप्त दिन को पढ़ें ॥ का० ८० २० ४० सव ऋत्विज प्रस्तर के  
ऊपर दौनो हाथों को ऊंचा करके अथवा दहिने हाथ की ऊपर रख

कर सोम न गिरै ऐसी परि चर्या करें ॥ अर्थः ॥ सोम तेरे प्रसाद से ह  
मारे धन हूँ जियो अथवा दक्षिणा सब ओड़ी से हूँ जियो किसलिये  
कि प्रेषे भगाय तिस प्रेष्य मान ऐश्वर्य के अर्थ । अथवा अन्न और  
ऐश्वर्य के अर्थ । किंच अग्नि होत्रियों को अवश्य हों नहार फला  
पेत कर्म संपादन कर । अथवा हम ऋतवादियों को कर्म का फ  
ल हो । द्या वा पृथिवी तिनके अभिमानी देवों को नमस्कार है ।  
तिनके अनुग्रह से यजमान के अर्थ निर्विघ्नता की स्थित होती है  
इस हेतु नमस्कार करते हैं ॥ ७ ॥

यातेऽअग्नेयः शयात नूर्ध्वर्षिष्ठा गच्छरेष्ठा ॥ उग्रं च चोऽ  
अपावधी त्वेष च चोऽअपावधी त्वाहा ॥ यातेऽअग्ने  
रजः शयात नूर्ध्वर्षिष्ठा गच्छरेष्ठा ॥ उग्रं च चोऽअपावधी त्वे  
ष च चोऽअपावधी त्वाहा ॥ यातेऽअग्ने हरि शयात नूर्ध्व  
र्षिष्ठा गच्छरेष्ठा ॥ उग्रं च चोऽअपावधी त्वेष चोऽअपाव  
धी त्वाहा ॥ ८ ॥ या-हा ॥ १० ॥ या-हा ॥ १० ॥ या-हा ॥ ३ ॥

अग्नेयानिर्वीणा यजुश्च षि का ० ८ २ ३ ४ सुवाकरि उपसदं संज्ञक हो  
म करै ॥ अर्थः ॥ यहां क्या है । देवताओं से हारिकर असुरों ने तप-  
तप कैं तीनों लोकों में तीनि पुर बनाये लोहे का पृथिवी में चांदी का  
अन्तरिक्ष में सोने का दिवि में । तब देवताओं ने तिनके जलाने को  
उपसद नामा अग्नि की आराधना की फिर उपसदेवता रूपी अ  
ग्नि ने जब तिन पुरों में प्रवेश करि कैं तिनको जलाया तब तीनों पुर  
अग्नि के शरीर हुए । सो अभिप्राय इस मन्त्र में है ॥ मन्त्रार्थस्तु ॥

+ १०३४४३।



हे अग्नेजेतेरीलोह मयी देही देवताओं को अति शाय करिके अभिमत फल की वरसने वाली। तथा असुरों के विषम देश में ठेरी है ति सतेरी देही ने काठ फांस इत्यादिक असुरों का कहा तीव्र वचन विनाश किया। तैसे ही असुरों का कहा त्वेषं वचः (देवाधि क्षेप रूपी प्रदीप्त वचन) विनाश किया। स्वाहा (तैसे ही उपकार के लिये तुरु अग्नि के अर्थ हवि दिया) ॥१॥ उग्र वचन और त्वेष वचन का दूसरा अर्थ करते हैं। जैसे असुरों से हारे देवताओं ने न पाने अन्न और जल के भूष प्यास से हम दुषी यह कहा सो उग्र वचः तैसे ही किंवा वीर हत्यादिक महा पातक हमने किया यह क्लेश पाय जो कहा सो तीव्र वचः ॥ तदा ह तित्तिरिः । अशनाया पिपासे ह वाऽ उग्र वच एनश्च वै वीर हत्यं च त्वेषं वच इति का० ८० २३० यातेऽ अग्ने रजः शया से दूसरे और यातेऽ अग्ने हरिः शया से तीसरे दिन आहुति दे ॥ अर्थः ॥ रजः शया चांदी की देही ॥ २ हरिः शया सोने मयी ३ और अर्थ पहिले के समान ॥ ८॥ इति भाष्ये द्वितीयोऽनुवाकः ॥ २॥

अ० ३ तत्रायनी मे सिञ्चितायनी मे स्य वतान्माना यिता दवन्मा व्यथितात् ॥ विदेदग्निर्नभो नामाग्नेऽ अद्भिः रः आयुना नाम्ने हियो स्याम्यथिव्या मसि यते नाधृष्टन्नाम यशियन्ते नत्वादधे विदेदग्निर्नभो नामाग्नेऽ अद्भिः रः आयुना नाम्ने हियो द्वितीय स्याम्यथिव्या मसि यते नाधृष्टन्नाम यशियन्ते नत्वादधे विदेदग्निर्नभो नामाग्नेऽ अद्भिः रः आयुना नाम्ने हियस्तृतीय स्याम्यथिव्या

मसि यत्तेना धृष्टन्नामयत्तियन्तेनत्वादधे ॥ अनुत्वादे  
ववीतये ॥ ४० ॥ +

इस कंडिका में चोदह १४ यजुषिः हैं तप्तायनी, वितायनी, दोनों हैं- त्रि-  
अवतान्, अवतान्, दोनों हैं- ज० चारों का पृथिवी देवता का ० ५३  
२०-२५ उत्तर वेदी करने को जो पृथिवी का प्रदेश खोदते हैं उसे चात्वा  
ल कहते हैं तिसके निर्माण करने की उत्तराग्र शम्या रखकर तिसकी  
बराबर उसके पूर्व में स्फुल्ले रेखा करे फिर तिसके पूर्व में तैसे ही रखि  
रेखा करे तैसे ही दक्षिण उत्तर में। तप्तायनी, इत्यादि प्रति मंत्र करि प्रति-  
दिशामें रेखा करे ॥ मंत्रार्थस्तु ॥ हे पृथिवी तू मेरे अनुग्रह के अर्थ तप्ता  
यनी है। अर्थात् जो दारिद्री कि क्षेत्र रहित में ऐसे दुरवकर तपे है तिस  
ताप की शांतिके अर्थ प्राप्त होती है। अथवा तप्त होने पर मनुष्य जिस  
को प्राप्त होता है सो तप्तायनी, मेरे लिये है ॥ १ ॥ वित्त के अर्थ मनुष्य जि  
सको प्राप्त होता है। अथवा वित्त के अर्थ निर्धन पुरुष प्रति प्राप्त होती  
है। कारण यह कि पृथिवी में प्राप्त हुए पर खेती द्वारा बहुत धन मिल  
ता है ॥ २ ॥ हे पृथिवी मागने से मुझको तूरक्षा कर ॥ जैसे किसी से न मां  
गें तैसा मुझको कर ॥ ३ ॥ भय और स्थान भ्रंश से मुझे रक्षा कर ॥ ४ ॥  
का० ५३ २६ विदे दग्नि, इस मंत्र से चात्वाल की मट्टी खोदे प्रा-गा  
अग्नि देवता ॥ अर्थ ॥ हे चात्वालगत मृत्तिके नभना मातेर अधिष्ठाता अग्नि  
मेरी खोदी हुई तुरूको जाने। शत० ३५१३१ अग्नि के नामोच्चार  
ण पूर्व कर खोदे ५ का० ५३ २७ अग्ने अङ्गिरः इससे पुरीष (खोदी  
हुई मृदा) को हाथ वा स्फुल्ल करिले वे आसु-पं इस मंत्र से लेके सा

+ त-सि॥ अ० वि-सि॥ इ० अ-तु॥ उ० ऋ० वि-माल० अ-हि॥ आ० पो-धो॥ ई० वि-म  
ऊ० ॥ अ-हि॥ ऋ० यो-धो॥ लृ० वि-म॥ क० अ-हि॥ च० यो-धो॥ ए० अ-या० त०

नौ० कालिङ्गोक्तदेवता ॥ अर्थः ॥ हे अग्ने हे अद्भिरः (गतिवान्)  
 तू आयुनामसैद्दस यज्ञमें प्राप्त हो ॥ कारण यह कि अधिष्ठाता के आ-  
 ने पर अधिष्ठेयता है इसलिये अग्नि को आने की प्रार्थना की ॥ द्  
 का० ५३२८ योस्याम् इससे उत्तर वेदी के पूर्व में मृदा की राशिको  
 सा-वि ॥ अर्थः ॥ हे अग्ने जो तू इस दृश्य मान पृथिवी में है किंच ते  
 राय ज्ञके योग्य जो अग्नि नाम प्रसिद्ध किसी याज्ञक से नहीं तिरस्कार  
 किया गया तिस नाम युक्त तुम्हें स्थापन करता हूँ ॥ का० ५३३०-  
 ३१ जैसे पहिले तीन मन्त्रों से मृदा खोद के ले के पटकी फिरि भी दो  
 नों मन्त्रों से पूर्वोक्त कर्म करे तहां अस्यां पद के स्थान में द्वितीयस्यां  
 तृतीयस्यां यह पाठ है ॥ वि-म। खोदे ॥ ७ ॥ अ-हि। लेवे ॥ ८ ॥ यो द्विती-  
 यस्याम् यजुः। पटके ॥ १० ॥ वि-म। खोदे ॥ ११ ॥ अ-हि। लेवे ॥ १२ ॥ यो तृतीय-  
 स्याम् यजुः। पटके ॥ १३ ॥ अर्थः ॥ यद्यपि पृथिवी शब्द से भूमि ही है-  
 तथापि द्वितीयस्यां तृतीयस्यां इस विशेषण से दूसरी पृथिवी का अ-  
 न्तरिक्ष तीसरी पृथिवी का द्यौः अर्थ करना और अर्थ पहिले के समा-  
 न ॥ ८ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ का० ५३३२ अनुत्वा प्रा-गा से जैसे कि पहि-  
 ले तीन पर्यायों में मृदा ले के पटकी ऐसे चौथें भी प्रक्षेपण पर्यन्त मृदा हर-  
 ण करे ॥ इति सूत्रार्थः ॥ देवताओं की प्रीति को हे मृतिके तुम्हें पूर्वोक्त  
 तीन्यो आहरण करि कै लेता हूँ ॥ १४ ॥ ८ ॥

सि०-५० ॥ सि०-५० ॥ सि०-५० ॥ सि०-५० ॥ सि०-५० ॥  
 सि०-५० ॥ सि०-५० ॥ सि०-५० ॥ सि०-५० ॥ सि०-५० ॥  
 सि०-५० ॥ सि०-५० ॥ सि०-५० ॥ सि०-५० ॥ सि०-५० ॥

त्रयाणां सा-उ-वेदिदेवता का० ५०३३२ इससे शम्या मात्र वेदी को मृ-  
दासे सम करे ॥ प्रात० ३०५१३२ दूकती हुई पृथिवी सिंहिनी हो असुरों  
प्रतिचली-सो अभिप्राय इस मंत्र में कहिते हैं ॥ मन्त्रार्थः ॥ हे उत्तरवेदे  
जो तू सिंह समान हो शत्रुओं प्रतिचलती है ॥ इस हेतु देवताओं के उप-  
कार के अर्थ उत्तरवेदिरूप करि संपन्न हो ॥ १॥ का० ५०३३० प्रोक्षण  
करे २ शर्करा डाले ३ सिंठ ही प्रति मंत्र से ॥ अर्थः ॥ हे उत्तरवेदे तू शुद्ध  
हो ॥ और अर्थ पहिले के समान ॥ २॥ हे उत्तरवेदे तू सिकता के प्रक्षेप  
से शोभित हो ॥ और अर्थ पूर्ववत् ॥ ३॥ इति भाष्ये न्त वाकः ॥ ३॥

अ० ४ इन्द्रघोषस्त्वावसुभिः पुरस्तात्यातु प्रचेतास्त्वारुद्रेः पश्चा-  
त्यातु मनोजवास्त्वापितृभिर्दक्षिणातः पातु विश्वकर्मा  
त्वादित्यैरुत्तरतः पालिदमहन्त नम्र्वावर्हिर्ह्ययज्ञान्निः  
सृजामि ॥ ११॥ †

का० ५०४११ अध्वर्यु वेदी के भीतर जल रखकर इन्द्रघोषस्त्वा प्रति  
मन्त्र करि प्रतिदिशामें उत्तरवेदीका प्रोक्षण करे ॥ इन्द्रघोषस्त्वा आ-  
सु-अ० ११ प्रचेतास्त्वा आसु-वि० २॥ मनोजवास्त्वा सा-उ० ३॥  
विश्वकर्मात्वा आसु-अ० ४॥ चारोंका उत्तरवेदीदेवता ॥ अर्थः ॥  
इन्द्रघोष (विष्वक् कहनेवाला देवता) वसुभिः आठ संख्याक गणदेव-  
ताओं से युक्त हे उत्तरवेदे तुरुको पूर्वदिशामें रक्षा करे ॥ १॥ प्रचे-  
ता (प्रकष्ट प्रज्ञ) वरुण रुद्रैः (एकादश संख्याक गणदेवों सहित  
पश्चिम दिशामें तुरुको रक्षा करे ॥ २॥ मनका सावेग युक्त यमदेवता  
पितरों † सहित दक्षिण दिशामें तुरुको रक्षा करे ॥ ३॥ जगतकी

† सतीकनिवा  
सीदेवताविशेष

उत्पत्त्यादिक करनेवाला विश्वकर्मा आदित्यैः (वारहसंख्याकदेवगणसहित उत्तरदिशामें तुरकोरक्षाकीजियो ॥ ४ ॥ एकसमय असुरदेवताओं के मारने को आये तब देवताओं की सेना के अधिपति इन्द्रधोषादिकों ने चारोंदिशासे तिन असुरोंको दूर किया इसहेतु इनमन्त्रोंसे चारोंदिशाकीरक्षाको प्रार्थना है- असुरवज्रमुद्यम्य इत्यादिति तिरिमें है ॥ का० ५०४०१२० प्रोक्षणीके शेष जलको इदमहम् इसमंत्रसे वेदी के बाहर डाले आ-अ० आपोदे० ॥ अर्थः ॥ असुरोंके दूर करने को जिस जलसे प्रोक्षण किया तिस जलको उग्ररूप होनेसे तप्त कहते हैं । इस तप्त जल (प्रोक्षणके शेष) को यज्ञ प्रदेशसे बाह्य प्रदेशमें पटकता हूँ ॥ ५ ॥ ११ ॥

सि॒धं ह्य॒सि॒ ॥ सि॒धं ह्य॒सि॒ स्वाहा॑ सि॒धं ह्य॒स्यादित्य॑ व॒निः स्वा॒  
हा॑ सि॒धं ह्य॒सि॒ ब्रह्म॑ व॒निः क्षत्र॑ व॒निः स्वाहा॑ सि॒धं ह्य॒सि॒ सुप्र॑  
जा॒वनी॑ र॒यस्यो॑ष॒वनिः॑ स्वाहा॑ सि॒धं ह्य॒स्याव॑ह॒ देवान्य॑ ज॒मा  
ना॒य स्वाहा॑ भू॒तेभ्य॑स्त्वा ॥ १२ ॥ सि॒-हा॑ अ० दू० उ० अ० ल० भू॒-स्वा॑ आ० ॥

१ सि॒धं ह्य॒सि॒दे॒- पं० २ या-वृ० ३ आसु-अ० ४ सा-अ० ५ सा-उ० या  
चों का वाग्देवता का० ५०४०१४० जो यह उत्तरवेदी का नाभिनामा  
तिसके अंस (आग्नेय-ईशानकोण) ओणी (वायव्यनैऋत्यकोण)  
ओर तिन चारों के बीचमें जुड़ा करि पांचवार लिये आज्यसे हो  
मकरै ॥ इति सूत्रार्थः ॥ पहिले कभी उत्तरवेदी देवता किसी निमित्त  
कर देवताओं से भिन्न असुरोंसे अप्राप्त दोनों देवासुरसेनाओं के बीच  
सिंहरूप धारण करि ठहरी ॥ तेभ्योऽपक्रम्येत्यादि तिति रीमें कहा ॥

इस अभिप्रायसे सिंही कहिते हैं ॥ मन्त्रार्थस्तु ॥ हे उत्तरवेदी तू सिंह रूप  
पाहे तैसी तुर्रुको हवि दिया ॥ १ ॥ कैसी सिंही है कि आदित्यों को प्रस-  
न्न करने वाली । और अर्थ पहिले के समान ॥ २ ॥ ब्राह्मणजाति और  
क्षत्रीजाति की प्रसन्न करने वाली ॥ ३ ॥ पुत्रपौत्रादि शोभन प्रजा का स-  
म्पादन करने वाली सुवर्ण रजतादि धन की पुष्टि करने वाली ॥ ४ ॥ हे सिं-  
ही यजमान के उपकारके अर्थ देवताओं को ला ॥ ५ ॥ भूतेभ्यस्त्वेति  
दे- वृ० सुगदे० का० ५० ४० १५० होमके अर्थ सुचिको ऊंची करै ॥ अर्थः  
भूतेभ्यः ॥ अण्डज० उद्भिज० जरायज० स्वेदज० चारों प्रकार के प्राणि-  
यों की प्रीति के अर्थ हे होम विशेष आज्य युक्त जुह तुर्रुको ऊंची क-  
रता हूँ ६ ॥ भूतेभ्यस्त्वेति सुचमुद्गृह्णातीत्यादित्तरिः ॥ १२ ॥

ध्रुवोसि ॥ ध्रुवोसि पृथिवीन्दृष्टं ह ध्रुवक्षिदस्यन्तरिक्षन्दृष्टं

हाच्युतक्षिदसिदिवन्दृष्टं हाग्नेः पुरीषमसि ॥ १३ ॥ †

१ ध्रुवोसि प्रा-गा २० ३ या-पं० त्रयाणां परिधयो दे० का० ५० ४० १६ पी-  
तदारु (देवदारु) के परिधिओं को उत्तरवेदी के मध्यदेश (नाभि) पर म्या-  
पन करे ॥ अर्थः ॥ हे मध्यम परिधे तू स्थिर है इस हेतु पृथिवी को दृढ  
करि ॥ हे दक्षिण परिधे तू स्थिर यज्ञ में रहता है तिस कारण अन्तरि-  
क्ष को दृढ करि विनाश रहित यज्ञ में वास करने वाले हे उत्तर परिधे तू  
तैसा ही है तिस लिये चुलोक को दृढ करि ॥ अग्नेः पुरीषमसि दे-  
ज० गुग्गुलादिक संभारो दे० का० ५० ४० १० से गुग्गुल (धूपकाद्रव्य)  
सुगन्धि तेजन (तृणविशेष) में टा के रोम इन्हों को नाभि में डाले ॥ अ-  
र्थः ॥ हे गुग्गुल प्रभृति सम्भार समूह तुम अग्नि के पूरक हो ॥ १३ ॥

† ध्रु-ह ॥ अ० ॥ ध्रु-ह ॥ इ० ॥ ध्रु-ह ॥ उ० ॥ अ-सि ॥ ऋ०

अ० ५ यु॒ञ्जते॑ मनः॥ यु॒ञ्जते॑ मनः॥ उ॒त यु॒ञ्जते॑ धियो॒ विष्ठा॑ विष्णो  
स्य बृ॒हतो॑ वि॒पश्चितः॥ वि॒होत्रा॑ दधे॒व यु॒ना वि॒देकः॑ इ॒न्म  
ही॒ देव॑स्य स॒वितुः॑ परि॒ष्टुतिः॑ स्वाहा॥१४॥

हे तिनने प्राचीनवंश शाला। और तिसमें आहवनीयादि तीनों अग्नि के इष्ट की वेदी हैं। तिस शाला के सामने छतीस ३६ पद दीर्घा सोमिकी वेदी बनावै। तिस वेदी के अग्रभागमें पूर्वोक्त उत्तर वेदी तिसके पीछे को बीचमें हविर्धान नामा मण्डप बनाके और तिसके पीछे सदोभिधान उदगवंश शाला निर्माण करे। तिसके स्थानमें प्राचीन शाला के सामने दक्षिण उत्तर भाग करि हविर्धान संज्ञिक दो शकट स्थापन करे। तिन दोनों शकटों को आगे चलाय के तिन के आवरण करने को हविर्धान नामा मण्डप बनावै। तिन दोनों शकटों को सावित्र होम के पीछे चलाना। तदाह तित्तिरिः। सावित्र्यर्चा हुत्वा हविर्धाने प्रवर्तयतीति॥

यु॒ञ्जते॑ति श्यावाश्व ऋषिर्जगती छन्दः सविता देवता का० ८०३२६३०  
प्राचीन शाला के द्वार के समीप पूर्वसिद्ध आहवनीय वर्ते है तिसमें चार बार लिये आज्य को होमै और सो पहिले आहवनीय होने से उत्तर वेदी के दूसरे आहवनीय के निष्पन्न होने तक तिसमें गार्हपत्य के कार्य करे॥ अर्थः॥ यजमान के संबंधी ऋत्विज लौकिक चिंताओं में से मन को निकाल यज्ञचिंता में डालते हैं॥ और इन्द्रियों को भी यज्ञकार्य में प्रवेश करते हैं। कैसे यजमान के किमहतः (वेद का पढ़ने वाला) तथा विपश्चितः (सर्वज्ञ अर्थ का जानने वाला)। कैसे हैं ऋत्विज कि होम के करने वाले। सो इन ऋत्विजों ने मन को एक किया। कैसे एक कि सव प्राणियों की मन की वृत्ति का जानने वाला॥ यों कहो कि एक को सर्व सृष्टि के

जानने की कहाँ सामर्थ्य है। तहाँ कहते हैं। जहाँ कि प्रेरण करने वा-  
ले अन्तर्यामी देवता की सब वेदों में कही स्तुति बड़ी है। तथा चाय  
र्वणिकाः। यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तप इति॥ बृहदारण्य  
के पिमा ०४.२.२४. का ०४.४.२९. स एव सर्वस्य वशी सर्वस्येश  
नः सर्वस्याधिपतिः सर्वमिदं ज्ञास्ति यदिदं किंचेति॥ श्वेताश्वतरे  
अ। परस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रियाचेति॥  
अथवा इस मन्त्र का दूसरा अर्थ। ऋत्विज सर्वज्ञ यज्ञमें मनबुद्धि और  
वाणी को लगाते हैं। कैसे है यज्ञ कि विशेष करके फलका पूर्ण कर  
ने वाला। तथा सर्वसाधन संपन्न। सातों बषट्कर्त्ता अपने अपने कर्म  
कर्ते हैं। तिनके बीच तीन वेद का जानने वाला ब्रह्मा संज्ञक एक ही है।  
सविता देवता की बड़ी स्तुति है। ब्रह्मा से आदिले ऋत्विज जो कर्म क  
र्ते सो सविता की प्रेरण से हैं यह सविता की बड़ी स्तुति है ॥ १४ ॥

इदं विष्णुः॥ इदं विष्णुचक्रं मे त्रैधानिर्दधे पदम्॥ समूढ  
मस्य पाथं सुरे स्वाहा॥ १५॥

विष्णु देवत्या गायत्री मेधातिथिदृष्टा का ०८.३.३९. दक्षिण शकटं सं-  
बन्धी दक्षिण चक्रं (पद्म) के मार्ग में हिरण्यरत्नकर होम करे॥ अ-  
र्थः॥ विष्णु त्रिविक्रम (वावन) अवतार करके इस विश्व का विभाग करि  
चला सो कहते हैं तीन प्रकार से चरण रखा पृथिवी में एक पद अन्तरि-  
क्ष में दूसरे दिवि में तीसरे को इस कर्म से अग्नि-वायु-सूर्य-रूप करि  
के। पांसवः-भूम्यादि तीनों लोक विद्यमान हैं जिसमें सो पांसुरंतिस  
पांसु अर्थात् इस विष्णु के पद में सम्पूर्ण विश्व अन्तर्भूत है॥ अथ



इरावतीधेनुमती ॥ इरावतीधेनुमतीहिभूतं सूर्यवसिनी  
मनवेदशस्या ॥ व्यस्वन्नारोदसीविष्णवेतेदाधर्यपृ-  
थिवीमभितोमयूषेः स्वाहा ॥ २६ ॥

देवश्रुतौ देवेषु ॥ देवश्रुतौ देवेष्वधो षतं प्राची प्रेतमध्वरं क  
ल्पयन्तीः कुर्ध्वं यज्ञं न यतस्मा जिह्वरतम् ॥ स्वर्गोष्ठमा  
वदतन्देवी दुष्येऽप्युर्मा निर्वोदिष्टमृजा म्मानिर्वोदि  
ष्टमत्ररमेथाम्बर्षे न्यथिव्याः ॥ १७ ॥ †

+ दे-मू० न० प्रा-मू० इ० स्व-मू० उ० अ-व्याः॥ क्र०॥ १७॥

आंजे (ओंगे) ॥ अर्थः ॥ हे अक्षधुरों (अर्थात् देवताओं की सभामें) तुमने प्रसिद्ध अक्षके दोनों अग्रभाग तुम यजमान यह पूजा करता है देवताओं में ऊंची ध्वनि करिकें कहो ॥१॥ प्राची प्रेत० २ स्व गोष्ट० द्वे यजुषि ३ अत्र रमेथाम्० याजुषीप० ४ तीनों का हविर्धान दे० का० ८० ३ दोनो हविर्धान शकट जवचलें तव यजमान २ पढ़ें ॥ अर्थः ॥ हे दोनों शकट तुम सामने कोशीघ्र चलो। कैसे हो तुम कि इस कर्मके कराने को समर्थ किंच इस यज्ञको देवताओं प्रति प्राप्तिकराने वाले। नहीं कुटिल होने वाले ॥२॥ का० ८० ४० चलते हुए शकटों के अक्षकी धुनिकरते यजमान ३ पढ़ें ॥ अर्थः ॥ हे देवी दुर्योधन सदृश दोनों शकट देवते अपने गोस्थान को कहो। जो यह अक्ष का शब्द है तिससे यजमान के घर में बहुत सींगोंओं को जैसे स्थान हो तैसे कहो क्योंकि तुमारे उच्चारणसे तैसा हो होगा। किंच आयुर्मनिर्वा दिष्टं० यजमान की जितनी आयु है तितनी सवमतदूरि करे। अथवा पशुधन रहित मत उच्चारण करे। यजमान की पुत्र पौत्रादिरूप प्रजा का दूरीकरण मत करे। अर्थात् इस अक्षके शब्दसे आयु और प्रजा का निराकरण मत हो ॥३॥ उभयवद्वजो अक्ष है सो दुष्ट बोलने से वरुण देवरूप है० शत० ३० ५० ३० १८० ॥ तिस हेतु शाप रूप दुर्वाक्य के परिहार केलिये आशीर्वद रूप सुवाक्य की इस मंत्र से प्रार्थना करते हैं ॥ का० ८० ४० ५० उत्तर वेदी की तीनों परिक्रमा हुए पीछे वेदी के निकट दोनों शकटों को स्थापन करि ४ से अभि मंत्रित करे ॥ अर्थः ॥ हे दोनों शकट पृथिवी के शरीर

भूत इस देव यजन में तुम रमण करो ॥४॥ ॥ देव यजन को पृथिवी का शरीरत्व तितिरि में कहा है ॥ वर्षमस्य तत्पृथिव्या यद्देव यजनमिति ॥१७॥

विष्णोर्नु ॥ कम्वीर्याणि प्रवोचयः पार्थिवानि विममे रजा  
धंसि ॥ योऽपस्कभाय दुर्तरथं सधस्य म्विचक्रमाणस्त्रेधो  
रुगायो विष्णावेत्वा ॥१८॥ वि-यः । अ० वि-त्वा । इ० ॥

तिस्रो ३ वैष्णव्य स्त्रिष्टुभः । प्रथमा द्वितीया विष्णावेत्वा यजुः १८-१९  
विष्णोर्नु १८ प्रतत् २० हे उतथ्य पुत्रो दीर्घ तमा दृष्टा का० ८०४०६  
अध्वर्यु दक्षणा शकट के अग्र को काष्ठ के खंभ पर खड़ा करै ॥ अ  
र्थः ॥ नुकं यह अव्यय है अवधारण के अर्थ । विष्णु के ऐसे कर्मों  
को हम कहें कैसे कर्मों को सो कहते हैं । कि जिस विष्णु ने पृथिवी अ  
न्तरिक्ष द्यूलोक स्थानों को गिना । अथवा जिसने पृथिवी के परमा  
णों को गिना । और जिस विष्णु ने देवताओं के रहने के स्थान द्यूलो  
क रूप को जैसे नीचे नगरे तैसे थाभा । कैसा विष्णु है कि तीन प्रका  
र करि तीन्यो लोक में अग्नि वायु सूर्य रूप करि तीन्यो पदधार  
ण किये । तैसे उंचा गमन है जिसका वाम हात्माओं करि गाया गया का  
८०४०७० विष्णावेत्वा इससे शकट के बांधने के अर्थ खंभ को अ  
ग्नि कोण में गाड़ै ॥ अर्थः ॥ हे स्थूण काष्ठ (काठ के थून्) हविर्द्वा न  
शकटाभिमानि विष्णु की प्रीति के अर्थ तुम्हें गाड़ ताड़ूं ॥१८॥

दिवोवा ॥ विष्णा उतवा पृथिव्या महोवा विष्णा उरोरन्त  
रिक्षात् ॥ उभा हि हस्तावसुना पूण स्वाप्प्रयच्छदक्षिणा

द्वौ तसव्याद्विष्णावेत्वा ॥ १९ ॥ दि-त्वा अ० वि-त्वा ॥ ३० ॥

का० ८० ४० ८० ४० जैसे अध्वर्यु ने दक्षिण शकट को मन्त्र से खड़ा-  
करि विष्णावेत्वा इससे खंभगाड़ो से ही प्रतिप्रस्थाता उत्तर शकट प्रति  
करै ॥ अर्थः ॥ हे विष्णो धूलोक और पृथिवी और बड़े विस्तीर्ण अ  
न्तरिक्ष लोक से लाये हव्य से अपने दोनो हाथों को पूर्ण करि फिर ध  
न से पूर्ण दाहिने और बांये हाथ से मणि मुक्ता दि धन हम को दे ॥ वि  
ष्णावेत्वा इसका अर्थ पहिले के समान ॥ १९ ॥

प्रतत् ॥ प्रतद्विष्णुस्तवतेर्षीर्येण मृगो न भीमः कुचरेण गि  
रिष्ठाः ॥ यस्योरुषु त्रिषु चिक्रमणेष्वाधिक्षियन्ति भुवनानि  
विश्वा ॥ २० ॥

का० ८० ४० १३० मध्यम छद्दी का स्पर्श कराय पढ़ै ॥ अर्थः ॥ सो प्रसिद्ध  
विष्णु असाधारण वीर कर्म करि स्तुति करिये है ॥ कैसा विष्णु है मृ  
गः शोधन करने वाला नपाद पूरण के अर्थ भीमः विभेदन करने  
वाला ॥ कुचरः पृथिवी में मत्स्यादि रूप करि चलने वाला गिरिष्ठा-  
वेद वाणी वादेही में बहरने वाला ॥ अथवा न इव के अर्थ में ॥ पर्वत  
पे स्थित कुचलनी प्राणियों के बध से जीवे मयं कर ऐसा सिंह सो जे  
से वीर्य करि स्तुति करिये है तैसा ॥ सो कोन कि विष्णु यह कहते हैं ॥  
कि जिस विष्णु के उत्पन्न हुणे तीन्यो पाद प्रक्षेपण स्थानों (लोकों) में  
सब प्राणी मात्र वास करते हैं ॥ सो स्तुति करिये है ॥ २० ॥

विष्णोरगदं मृ ॥ विष्णोरगदं मसि विष्णोः अग्ने स्यो विष्णोः  
सूरसि विष्णोर्ध्रुवोसि ॥ वैष्णवमसि विष्णावेत्वा ॥ २१ ॥ +

विष्णोर राटम्. या-उ० पांचों मन्त्रों का विष्णु देवता. का ०. ८. ४. १५  
 राट (ललाट) का स्पर्श करि पढ़े। हविर्द्वा न नामा दोनों शकटों को  
 दक्षिण उत्तर में स्थापन करिकें तिनके आवरण करि ऊपर की  
 हविर्द्वा न नामा मंडप बनावै और तिस मंडप को विष्णु देवता कहोने  
 से विष्णु कहते हैं। और मूर्तिधारी विष्णु के सब अवयवों के सद्भाव  
 से ललाट संज्ञक अवयव है तैसे हविर्द्वा न मंडप के भी पूर्व द्वार प्रति  
 दोनों खंभों के बीच कोई दर्भों की माला गुंथती है। तिस माला वाति  
 सके वंथन के आधार तिरछे बांस को संबोधन दे पुरुष के ललाटत्व क  
 रि उपचरण करते हैं ॥ अर्थः ॥ हे दर्भ मय माला के आधार वंशतू मू  
 र्तित्व करि उपचरण किये विष्णु (हविर्द्वा न मंडप) का ललाट स्थानी  
 यहै ॥ १॥ विष्णोः शन प्रेस्थः ० तीनों का देवी पंक्ति का ०. ८. ४. १६ वि  
 षणोः शन प्रेस्थ इससे उच्छाद्यों (राटियों के प्रांत) को स्पर्श करि पढ़े  
 अर्थः ॥ हे राटों के प्रांतों तुम विष्णु नामा हविर्द्वा न मंडप के ओष्ठ  
 (होंठ) संधि रूपी हो ॥ २॥ का ०. ८. ४. १८ विष्णोः सूरसि सैल स्पूजनी  
 (काठ की सुई) में रस्सी डालि द्वार शारवा को सीवै ॥ अर्थः ॥ हे लस्पूज  
 नी तू विष्णु (हविर्द्वा न) की सुई है ॥ ३॥ का ०. ८. ४. १९ विष्णोर्ध्रुवो  
 सि इससे गांठ लगावै ॥ अर्थः ॥ हे रस्सी की गांठ तू विष्णु हविर्द्वा  
 न की ग्रंथि है ॥ ४॥ वैष्णव मसिया जुषी रहती - का ०. ८. ४. २१  
 पूर्व को अगाड़ी करि बांसों का मंडप बनाइ इस मन्त्र से स्पर्श करे  
 ॥ अर्थः ॥ हे हविर्द्वा न तू विष्णु देवता कहोने से तिसका संबंधी है। तिसहे  
 तुसे विष्णु की प्रीति के अर्थ तुम स्पर्श कर्ता हूँ ॥ ५॥ २१॥

अथ उपरवमन्त्राः

अ० ६ देवस्यत्वा ॥ सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्वाहुभ्यां पूषणो हस्ताभ्याम् ॥ आददेनार्यसीदमहर्हरक्षसाङ्गीवाऽपि क्कंता मि ॥  
वृहन्नसि वृहद्रवा वृहती मिन्द्राय वाचं म्वद ॥ २२ ॥ †

यहां से ले देवस्यत्वा क० २६ पहिले उपरव के मन्त्र हैं ॥ का० ८० ४० २५  
५० १० जैसे यूपके लिये अवट करते हैं तैसे यहां भी उपरव संज्ञिक  
चारि गर्तों को अभिलेने से आदिले परिलेखन पूर्वक करें। अव  
ट के अर्थ अभिका स्वीकार कहते हैं का० ६० २० ८० देवस्यत्वा से अ  
श्वि (काष्ठका वना हुआ खोदने का हथियार) लेकर देवस्यत्वा प्रा  
वृ० आददेया-गा० अश्विदेवता ॥ अर्थः ॥ हे अश्वे सविता देवता में  
वर्तमान होकर अश्विनी कुमार के बाहुओं पूषा के हाथों करतुर्ग को  
ग्रहण कर्ता हूं। तू खोदने के साधन करि कर्म के उपयोगी होने से अनु  
ष्ठान करने वालों की संबंधिनी है ॥ २॥ इदमहमित्यासुरी उषिाहम्  
रक्षोघ्नम् का० ६० २० ८० से यूपके अवट करने को लिखे ॥ अर्थः ॥ जो  
कि मैं चारों अवटों को लिखता हूं और इस परिलेखन से रक्षकों य  
ज्ञघ्नो की ग्रीवा काटता हूं ॥ २॥ वृहन्न सीत्या रभ्यवेष्णा वीमित्यंतमा  
र्षी यद्वि उपरवदे० का० ८० ५० ७० अग्नि कोणों से ले चारों विदिशामें  
चारों उपरव खोदने का भूमिलिषीतिस परिलेखन कामसे अवट  
खोदें ॥ अर्थः ॥ हे उपरवनामा गर्त वृवडा है (अर्थात् वर्तुल गर्त  
को प्रादेश मात्र व्यास होने और बाहु परिमाण खात होने से बड़ प  
न है। तैसा तू बड़ी ध्वनि युक्त। कारण यह कि खोदने के समय प्रज्ञा

† दे-म० अ० आ-सि० इ० इ-मि० न० वृ-म० क० न० ना० त्वा० आ० इ० क० उ० मि० क०

र करि पृथिवी में वडी ध्वनि होती है तिस हेतु सैतू इन्द्र की प्रीतिके अर्थ वडी ध्वनि युक्त वाणी कहि ॥२२॥

रक्षो हणम्बल गहनम् ॥ वैष्णवी मिदमहन्तम्बल गमुक्ति  
रामियम्मे निष्ठो यममात्यो निचखानेदमहन्तम्बल गमु  
क्तिरामियम्मे समानो यमसमानो निचखानेदमहन्तम्बल  
गमुक्तिरामियम्मे सर्वधुर्यमसर्वधुर्निचखानेदमहन्तम्बल  
गमुक्तिरामियम्मे सजातो यमसजातो निचखानोक्त  
त्याङ्किरामि ॥२३॥

कैसी वाणी कि रक्षो हणम् (रक्षसों के वध विषयक) तथा वल गहनम्  
(वल गों की मारने वाली) पराजय को प्राप्त हो भागे हुए रक्षसों ने इंद्र  
के वध के अर्थ अभिचार रूप करि पृथ्वी खोदिके अस्थिकेशनख आ  
दि पदार्थ कृत्या विशेष वलग बाहुमात्र में गाडे । इस हेतु उन्हों के निकाल  
ने को बाहुमात्र खोदे । तदाह तितिरिः ॥ असुरा वै निर्यन्तो देवाना  
मित्यादि ॥ तथा वैष्णवी (यज्ञ के रक्षक विष्णु की संवधिनी) ऐसी बो  
ली इन्द्र के अर्थ बोली ॥३॥ इदमहमिति १ आर्षी अनु० २३४ य  
जुषि० उक्त्यामिति याजुषीगा० ५ पञ्चलिङ्गाक्तानि । का० ८० ५० ८०  
जिस क्रम से चारों गत खोदे तिसही क्रम से चारों गतों के खुदे मृदतृ  
ण आदि कों को निकाले ॥ अर्थः ॥ किसी निमित्त करि कोय में आपुत्र  
वा अमात्य नें मेरे वध के लिये जो वलग डाले तिन वलगों को मैं नि  
काल कर अन्यत्र फेंकता हूं । यह जैसे प्रतिक्ष हो तैसे निकालता हूं  
॥१॥ दूसरे के मृदतृण निकाले ॥ समान (यनकुल आदिकों से वरावर

+ शत० ३५  
४४०

असमान (छोटा वा बड़ा) और अर्थ पहिले के समान ॥ २॥ तीसरे के निकाले। संधुः (कुलशील आदि) समान अर्थात् मामा फूफी के बेटे आदि असवन्धुः तिन्हों के विपरीत अन्यतूर्ववत् ॥ ३॥ चौथे के निकाले। सजातः (समानजन्मा) अर्थात् भाई असजातः तिसके विपरीत अन्यतूर्ववत् ॥ ४॥ का० ८० ५०४ चारों असाधारण मन्त्रों करि पूर्वोक्तक्रम से उक्तिरण करे पीछे। उक्त्यांकिरामि ५ साधारण मन्त्र से चारों गर्तों की मृदादि निकाले ॥ अर्थः ॥ जो यह कृत्या बलगरूपा अभिचार करने वाले शत्रुओं ने संपादन की तिस को निकाल कर दूर में फेंकें ताह ॥ ५॥ २३॥

स्वराडसि ॥ सपत्नहासत्रराडस्यभिमातिहाजनराडसिरक्षोहासर्वराडस्यमित्रहा ॥ २४ +

स्वराडसि १०३४ प्राजापत्या गायत्री २ याजुषी बृहती चारों का उपर वदेवता का ०८० ५०१३ खनन क्रम से चारों गर्तों में यजमान के हाथ का चारों मन्त्रों से स्पर्श करावे ॥ अर्थः ॥ पहिले के। हे पहिले गर्त तू आ पही प्रकाशमान है इस हेतु से शत्रुओं का मारने वाला हो ॥ १॥ दूसरे यजमानों में राजमान। शतीसरे यज्ञ के विनाश करने वाले राक्षसों का धोती ॥ ३॥ चौथे। सर्वराट वेरियों का मारने वाला ॥ २४॥

रक्षोहणोवः ॥ रक्षोहणोवोबलगहनः प्रोक्षामिवैष्णावान्  
त्रक्षोहणोवोबलगहनोवनयामिवैष्णावान् रक्षोहणोवो  
बलगहनोवस्तृणामिवैष्णावान् रक्षोहणोवांबलगहनाः  
उपदधामिवैष्णावीरक्षोहणोवांबलगहनोपर्युहामिवैष्णा



वीवैष्णवमसिवैष्णवास्थ ॥ २५ ॥ †

रक्षो हणोवः १ प्रा-अ० २० ३० ५० यजुः ४ आर्षी गा० ६ दै-प० ७ दै-वृ  
सातों का विष्णुदेवता का० ८० ५० २२० २३० अध्वर्यु जलकरि एकहा  
थसै उपखों का मार्जन करै ॥ अर्थः ॥ प्रोक्षण का मंत्र। विष्णुदेवता  
क गर्तो तुमको प्रोक्षण कर्ता हूं के से हो कि रक्षकों के मारने वाले बल  
हूँ अभिचार के साधन के मारने वाले ॥ १ ॥ का० ८० ५० २४० गर्तो में  
प्रोक्षण के शेष जल का सींचना (अवनयन) दूर्भों से आच्छादन क  
रना (संस्तरण) सो दोनों मंत्रों से करै ॥ अर्थः ॥ अवनयामि-सींच  
ता हूं। और अर्थ पहिले के समान ॥ २ ॥ अवस्तृणामि दूर्भों से आच्छा  
दन कर्ता हूं। अन्यत् पूर्ववत् ॥ ३ ॥ का० ८० ५० २५० जिन फलकों के  
ऊपर सोम निचोड़ते हैं सो दोनों अधिषवण फल का तिन दोनों के  
बीच दो अंगुल का बीच दे अरुन्नी प्रमाण संतृण्णा कुछ बंधन सहि  
त चारों गर्तो के ऊपर स्थापन करै तिन्हीं के ऊपर मृदालगावे ॥ अ  
र्थः ॥ उपधान का मंत्र। जो दोनो अधिषवण फल क विशेष रक्षकों  
के नाश करने वाले कृत्या के विनाश करने वाले वैष्णव तिन दोनों  
को चारों गर्तो पर (अर्थात् दो गर्तो पर एक-दो गर्तो पर एक स्थाप  
न करता हूं ॥ ४ ॥ अथ पर्यूहण मन्त्रः ॥ मृदा करि ऊपर से आच्छा  
दन करता हूं। अन्यत् पूर्ववत् ॥ ५ ॥ का० ८० ५० २६० जिस चर्म में सोम  
रुपकाते हैं सो अधिषवण। अग्र भाग छिन्न लोहित वर्ण तिन  
फलकों के ऊपर स्थापन करै ॥ अर्थः ॥ हे चर्म तू वैष्णव (यज्ञ के  
रक्षक विष्णु का संबंधी है ॥ ६ ॥ का० ८० ५० २७० तिस चर्म में सोम

† र-नृ० अ० इ० उ० र-वी० ऋ० लृ० वि०-सि० आ० वि०-स्य० इ०

के अभिषेक के हेतु पांच ५ पाषाणों को स्थापन करें ॥ अर्थः ॥ हे  
ग्रावाणो तुम यज्ञरक्षक विष्णु संबंधी हो ॥ ७ ॥ २५ ॥ इत्योपरवाणिसमाप्त

अथोदुम्बरीमंत्रः

अ० ७ देवस्यत्वा ॥ सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्वाहुभ्याम्पूष्णोहस्ता  
भ्याम् ॥ आददेनार्यमिदम् हर्षं रक्षसाङ्गीवाऽपि कृन्ता  
मि ॥ यवोसि यवयास्मद्वेषो यवया रातीर्दिवेत्वान्तरिक्षा  
यत्वा पृथिव्यै त्वा सुन्धन्ना न्त्रोकाः पितृषदनाः पितृषद  
नमसि ॥ २६ ॥ †

यहां से ओदुम्बरी के मंत्र का ०८५ ३१-३३ उदंबर (गूलर) के वृक्ष  
से उत्पन्न हुई किसी शाखा को यज्ञमान की देही की बराबर सदाना  
मा मंडप के बीच गाड़ें और तिस शाखा गाड़ने से पहिले यूपवत्  
भूमि में पड़ रहने पर यूप के अवट खोदने के अभिस्वीकार से ले द  
भों के उपस्तरण पर्यंत पदार्थों को मंत्रों से करें ॥ यूप के अवट प्रदेश  
में का० ६२० देवस्यत्वाम् अभिलेकर मंत्र की व्याख्या की।  
का० ६२० इदमहं से यूप के अवट करने को लिखे इसकी भी व्या  
ख्या की ॥ १ ॥ २ ॥ यवोसि आसूरी उष्णिह यव दे० का० ६२१५ से  
पात्र में भरे जल में यव (जौ) डाल कर ॥ अर्थः ॥ हे धान्य विशेष तू  
यव है जिस कारण द्वेष करने वाले शत्रुओं वा दुर्भाग्य को हम  
से प्रथक करि और ते से ही निर्धनता को दूर कर ॥ इससे सौभाग्य  
और धन की प्रार्थना करते हैं ॥ २ ॥ दिवै त्वेति या-ज ओदुम्बरी  
दे० का० ६२१५-१६ यवों के जल से अग्र मध्य मूल को दिवै

† दे-मा अग-आ-हि। द्वा-इ-मि। उ-य-ती। ऋ-दि-त्वा। न्त्र-नाः। आ-पि-मि। इ-॥

त्वादि प्रतिमंत्र करि प्रोक्षण करै ॥ दिवेत्वा प्रोक्षामि १० हे औदुंवरी के अग्रभाग द्यूलोक की प्रीति के अर्थ तुम्हें प्रोक्षण करता हूँ ॥ अन्तरिक्षाय त्वा प्रोक्षामि २० हे मध्यभाग अन्तरिक्ष की प्रीति-हूँ पृथिव्यै त्वा प्रोक्षामि २० हे मूलभाग पृथिवी की-हूँ ॥ ३॥ शुन्धन्ताम् या-पं० ॥ ४॥ पितृ षडनम् देवीज० द्वे पित्र्ये । का० ६० २० १० शुद्धताम् से प्रोक्षण के शेष जल को अवट में सींचै ॥ अर्थः ॥ जिन लोकों में पितर निवास करते हैं तेलोक इस जल के सींचने से शुद्ध हों ॥ ५॥ का० ६० २० १० तिस अवट में पितृ षडनम् से प्रागग्र उत्तराग्र दर्भाएँ डालै ॥ अर्थः ॥ हेवर्हि-तू पितरों के बैठने की जगह है ॥ ६॥ २६॥

उहिवम् ॥ उहिवं स्तभानान्तरिक्षमृणद्धं हस्वपृथिव्यान्धुतानस्त्वामारुतोमिनोतुमित्रावरुणो ध्रुवेण धर्मणा ॥ ब्रह्म वनित्वा क्षत्रवनि रायस्योषवनि पर्युहामि ॥ ब्रह्म हृद्धं क्षत्रं हृद्धं हायुर्द्धं हृष्टं प्रजां हृद्धं ॥ २० ॥ †

पांचमंत्रोका औदुंवरीदे० उहिवं यजुः का० ८० ५० ३४० औदुंवरी को खंडा करै ॥ अर्थः ॥ हे औदुंवरी तू द्यूलोक को यांभि अन्तरिक्ष को पूर्ण करि । पृथिवी में दृढ हो अथवा पृथिवी को दृढ करि ॥ १॥ धुतानस्त्विति आशी० - उ० का० ८० ५० ३५० शारवा को गर्त में डालै ॥ अर्थः ॥ हे औदुंवरी दीप्यमान वायु स्थिरधारण करि तुम्हें गर्त में डालियो । तथा मित्र वरुण-देवते स्थिरधारण करि तुम्हें गर्त में डालियो ॥ २॥ ब्रह्म वनित्वा यजुः का० ८० ५० ३६० पर्युहण से ले उपसेचन पर्यन्त जैसे यूप के करते हैं तैसे यहां भी करि कै । तहां यूप स्थान में का० ६० ३० १००

† माध्यं.सं.  
अ.दिकां.३।६०।

412911

परित्वा ॥ गिर्वणोगिरः इमा भवन्तु विश्वतः ॥ वृद्धायुम

नुवृद्धयोजुष्टाभवन्तुजुष्टयः ॥ २४ ॥

ऐन्द्रीः अनुष्टुबनिरुक्ताः मधुच्छन्दोदृष्टाः का० ८६१२ ऊपरसे आछादन करिके ॥ अर्थः ॥ गीर्भीः अर्थात् स्तुतियों करि भजनीय सदोभिमानी देवता इन्द्र ॥ हे गेर्वण इन्द्र स्तोत्र शस्त्ररूपा गिरा तुमसे सब आड़ी से कर रूप करि गृहण कीजिये । कैसे तुमको कि वृद्धायुम् बहुत है यजमानादिक मनुष्य वा मरुत जिसके तिसको । अथवा महा मनुष्य को । कैसे है गिरा कि अनुवृद्धयः सवन के क्रमसे वृद्धि है जिसकी सं अर्थात् धीरेसे प्रातः सवन तिससे ऊंची माध्यन्दिन सवन तिससे ऊंची तृतीय सवन में । किंच हमारी सेवा तेरी प्यारी हूँ जिये ॥ २४ ॥

इन्द्रस्यसूः ॥ इन्द्रस्यसूरसीन्द्रस्यध्रुवोसि ॥ ऐन्द्रमसि वैश्वदेवमसि ॥ ३० ॥

इन्द्रस्येति द्वेया-गा० १२ ऐन्द्रमसीति द्वे-वृ० ३ ऐन्द्राणि त्रीणि का० ८६१२ तीनों इन्द्र देवता क मन्त्रों से परिषीवण १ ग्रन्थि २ अभिमर्शन ३ क्रम पूर्वक करे ॥ अर्थः ॥ हे रज्जो तू इन्द्र सदोभिमानी देवता की संवंधिनी सीवने की वस्तु है ॥ १ ॥ हे ग्रन्थि तू इन्द्र संवंधिनी हो के स्थिर है ॥ २ ॥ हे सद तू इन्द्र संवंधी है ॥ ३ ॥ वैश्वदेवमसि-या-गा० विश्वेदेवादे० का० ८६१३१४ हविर्धान मंडप के वायव्य कोण के उत्तर भागमें किंचित् आग्नीध्र नामा अग्नि स्थापन करिके तिसका स्पर्श करे ॥ अर्थः ॥ हे आग्नीध्र तू सर्व देव संवंधी है ॥ ४ ॥ ३० ॥ इति भाष्ये सप्तमोऽनुवाकः ॥ ७ ॥

अथ षोडशधिष्यमंत्राः

अ. ८ विभूरसि॥ प्रवाहणो वन्हिरसि हव्यवाहनः॥ श्वात्रे सिप्सु  
चे तास्तु योसि विश्ववेदाऽऽशिगंसि॥ ३१॥†

यहां से ऊपर षोडश धिषायों के मंत्र॥ तदाह कात्यायनः ८. ६. १५ धि  
षाया ओं अर्थात् अग्नीध्रादिकों के बैठने की मृदा से बनाई हुई छोटी वे  
दियों को उदङ्मुख बैठ अध्वर्यु विभूरसि प्रतिमंत्र से पुरीष करि संभाले॥  
विभूरसीति अष्टयजुषां धिषाया अग्नयो देवताः॥ विभूरसीति प्रा-गा.  
का. ८. ६. १६ प्रथम आग्नीध्री की वेदी को संभाले॥ अर्थः॥ विभू. शब्द.  
प्रवाहण. शब्द. दोनों आग्नीध्रीय धिषाया के नाम हैं शत. ३. ६. २. ४ हे-  
आग्नीध्रीय धिषाय तू विभू और प्रवाहण है॥ अनेक प्रकार होने और इसी  
धिषाय से और और धिषायाओं में अग्नि विहरण के कारण इसको विभु  
त्व है। तिस के दक्षिण उत्तर में ऋत्विजों के चलने अथवा हविके प्रवाह  
ण से प्रवाहणत्व है॥ धिषाय गत अग्नीन् प्रति और देवताओं ने कहा कि  
प्रत्येक अपने नाम को सम्पादन करे॥ तदाह तिलिरिः॥ तान्देवा अब्रुव  
नू द्वे-द्वे नामनी कुरुतेति॥ १॥ मैत्रावरुण होतृ ब्राह्मणा छंसि. पोतृ ने  
ष्ट. अच्छा वाक. के धिषायाओं को सदस में करे वन्हिरसीतिया-वृ. तदा  
ह का. ८. ६. १८ - ३१ आग्नीध्रीय के निवाप के अनन्तर में छे धिषाया  
ओं को संभाले. पूर्व में सद का द्वार जिसके उत्तर में हाता की धिषाय ति  
सको प्रत्यङ्मुख हो अध्वर्यु संभाले. औदुम्बरी के अग्नि कोण दिशामें  
मैत्रावरुण के धिषाय को उदङ्मुख हो संभाले. होतृ धिषाय के उत्तर में  
ब्राह्मणा छंसि. पोतृ नेष्ट. अच्छा वाक चारों के धिषायाओं को तुल्य अन्तर  
से संभाले॥ अर्थः॥ हे होतृ धिषाय तू वन्हि और हव्य वाहन है॥ यज्ञकर्म

कानिर्वाह करै इस हेतु वह्नि और देवताओं प्रति हविके पहचाने सै हव्य  
वाहन। जैसे आग्नीध्रीय धिषाय के दो नाम कहे तैसे ही होत्रादि धिषयाओं  
कों जानन्य ॥ २॥ अत्रोसीतिया-गा० हे मैत्रावरुण धिषाय तू अत्र और  
प्रचेता है ॥ अत्रक्षिप्र गतिवान् मित्रः प्रचेता प्रकृष्ट ज्ञानवान् वरुण ॥ ३॥  
तुयोसीतिदैजः हेत्रास्याण्डं सिधिषाय तू तुय और विश्ववेदा है ॥ तुय ब्रह्म  
रूप है शत० ४० ३० ४० १५ ब्रह्मवै तुय इति श्रुतेः विश्ववेदाः सर्वज्ञ है।  
यद्वा तुय शब्द करि देवताओं प्रति दक्षिणाकाविभाग करने वाला पुरुष सू-  
चित्त होता है। तदाह तितिरिः ॥ तुयो ह स्म वै विश्ववेदा देवानां दक्षिणा  
विभजतीति ॥ ३१ ॥

उशिगंसि कविरङ्गारिरसि वम्भारिरवस्यूरसि दुवस्वान्धुन्यूर  
सिमाज्जोलीयः सम्म्राड् सिक्कशानुः परिषद्यो सिपर्वमानोन  
भोसिप्रतकोमृष्टोसिहव्यसूदनः ऋतधामासिस्वर्ज्योतिः ॥ ३२ ॥

उशिगसीतिया-गा० हे पोतृ धिषाय तू उशिक और कवि है ॥ उशिक का  
मनीय कविः विद्वान् ॥ ५॥ अंधारिरसीतिया-अ० हे नेष्ट्र धिषाय तू  
अंधारी और वंभारी है ॥ पापका वैरी अंधारी पोषण करने वाला वं-  
भारी ॥ दिवि मे दो सोम के रक्षक अंधारी और वंभारी सो सोम रक्षक मं-  
त्र स्वान भ्राजाङ्गारे वम्भारे मे कहे गये अध्या० ४ काण्डी २७ ॥ ६॥ अव-  
स्यूरसीतिया-अ० हे अच्छा वाक धिषाय तू अवस्यू और दुवस्वान है। अ-  
नका इच्छा करने वाला अवस्यू और हविष्मान है कारण यह कि अ-  
च्छा वाकही पुरोडाश के भाग को पाता है ॥ ७॥ ऐसे होत्रादिकों के धिषया  
ओं को सद में निर्माण करि ॥ का० ८० ६० २२ वेदी के दक्षिणा भाग में मार्जा

+ उ-विः। अ० अ-रिः। इ० अ-न। उ० शु-यः। ऋ० स-नुः। ल० प-नः। आ० न-  
को। ई० मृ-नः। ऊ० ऋ-तिः। ऋ०

लीयकानिर्माणकरै॥ अर्थः॥ शुंध्यूरसि.या.—अ.० शुद्धकरनेवा  
 ला शुंध्यूः माजनेवाला मार्जोली तहां पात्रोंको धोतेहैं॥ ८॥ का.०  
 ६. २३. आठोधिष्ण्याओं के निवापके अनंतर अध्वर्यु सदके द्वार  
 के पूर्वभागमें स्थित हो सम्राडसिसे आदिले आठों संज्ञांकरि क्रमपूर्  
 वक आहवनीयादि कों को देखें॥ सम्राडसीत्यादि आठ मंत्रों के आह  
 वनीय १ वहिष्यवमानदेश २ चात्वाल ३ शामित्र ४ ओदुम्बरी ५ ब्र  
 ह्मासन ६ शालाहार्य ७ प्राजहित ८ देवता॥ १६—गा.० अर्थः॥ हे उत्त  
 रवेदिगत आहवनीय तू बहुविधि आहुतिके आधार होनेसे सम्रा  
 ट् और पयोव्रतादिकरि कृश (क्षीन) हुए यजमान प्रति प्राप्ति होनेमें  
 कृशानुहै॥ १॥ परिषद्योसि. या-ष्ट.० अर्थः॥ हे वहिष्यवमानदेश  
 तू स्तुति समेत ऋत्विजः (परिषत्) तिसके योग्य परिषद्यः और शुद्ध  
 होने से पवमानहै॥ २॥ नभोसि. या-गा.० अर्थः॥ हे चात्वाल तू खन  
 न करि छिद्ररूप होनेवान दीखनेसे नभः तथा ऋत्विजों के प्रदक्षि  
 ण चलनेसे प्रतक्काहै॥ ३॥ मृष्टोसि. प्रा-गा.० अर्थः हे शामित्र पशु  
 विशसन प्रदेशतू मृष्ट अर्थात् पशुविशसन के विहित होनेसे अशु  
 द्ध हेतुत्वके अभाव करि निश्चय विशसन के अर्थ शुद्धहै। यद्वा मृष्टमी  
 ठ पक्व हवि और तैसैही हृदय जिह्वादिरूप करि हविके पाक काहेतुहै॥ ४॥  
 ऋतधामासि. प्रा-गा.० अर्थः॥ हे ओदुम्बरितू सामगान उपवेश  
 नस्थानहै। कारण यह कि ओदुम्बरीका स्पर्श करि गातेहै। उन्नतत्वक  
 रि स्वर्गमें प्रकाशमान वासूर्यन्योतिहै॥ ५॥ ३२॥

समुद्रोसि॥ विश्वव्यचाः अजोस्येकपादहिरसिबुध्नोवाग



स्यैन्द्रमसिसदोस्त्युतस्य द्वांगे मामासन्ताप्तमध्वनामध्वप  
ते प्रमातिरस्वस्ति मे स्मिन्पथि देवयाने भूयान्मित्रस्य

मा॥३३॥ स-चाः। अ० अ-तू। इ० अ-ध्याः। उ० वा-सि। प्रा० अ-मू। लू० अ-तू। आ०

समुद्रोसि प्रा-गा० ॥ अर्थः ॥ हे ब्रह्मासन तू समुद्र सव देवता अच्छे  
प्रकार द्रव्य हैं जहां वोह अथवा समुद्रवत् ज्ञान करि गाढ़ ब्रह्माज  
हां बैठता है सो। और विश्वव्यचा सव यज्ञ के कृताकृत देखने प्रतिजा  
ता है सो है ॥६॥ अजोसि दे-पं० ॥ हे प्राचीन वंश प्राला द्वारवर्तिनू अ  
ग्ने तू अज आहवनीय रूप करि यज्ञप्रदेश में जाता अथवा परब्रह्म  
त्व करि उपचरण करिये है। और एकपात् एकही पालन करने वाला  
वा एक पाद है ॥ अ० ३१ काण्डी-३ पादोस्य विश्वाभूतानीति ॥ अ  
अहिरसि दे-वि० हे प्राजहितपत्नी शालाके पश्चिम भागवर्ती गार्हपत्य अ  
ग्नि तू अर्ह शालादारीय नूतन गार्हपत्य के उत्पन्न होने पर भी अपने स्वरूप  
करि नहीं हीन होता और बुध्य आधान काल में प्रथम आहित हो  
ने से मूल अर्थात् प्रथम मंथन करते हैं सो है ॥ ८ ॥ नामों करिय हं  
भी धिषायों की स्तुति है ॥ इति षोडशधिषाय मंत्राः समप्ताः ॥ वाग  
सीतिया-दृ० सदो दे० का० ४० ८० १४० सदका अभिमर्शन करे ॥ अ  
र्थः ॥ हे सद तू वाक् है। क्योंकि वाक् जिसमें कर्म करती है वाक्शब्द  
करि अभेदोपचारण से सद कहते हैं। और इन्द्र देवता है। सीदंति  
बैठते हैं जिसमें वोह सद ॥ १ ॥ ऋतस्ये-तिया-पं० द्वार्ये दे० का० ४०  
८० २० सदकी द्वार शाखाओं का अभिमर्शन करे ॥ अर्थः ॥ हे ऋ  
त (यज्ञ) के द्वार देश में स्थापन की हुई शाखाओं तू म मुझे मत संतापक

रौ ॥ २॥ अध्वनामिति यजुः सूर्यो दे० का० ४०. ८. २१. यहां से तीन मंत्रों करि अभि मंत्रण करै. अध्वनाम् से सूर्य का अभि मंत्रण करै ॥ अर्थः ॥ हे मार्गों के पालक, रवे (मार्गों के बीच वर्तमान) मुझको तुम वडाओ किंच इस देवयान प्रापक पथि (यज्ञमार्ग) में मेरा कल्याण हो ॥ १॥ ३३  
मित्रस्य मा चक्षुषे क्षध्वमग्नयः सगराः सगरस्य सगरेण  
नाम्ना रौद्रेणानी केन पात माग्नयः पिपुतमाग्नयो गोपा  
यतमानमोघोस्तु मामाहिर्धे सिष्ट ॥ ३४ ॥ मि-म। अ। अ. ४६. १०  
मित्रस्य माया-वृ० ऋत्विजो दे० का० ४०. ८. २३. यजमान सब ऋत्विजों का अभि मंत्रण करै ॥ अर्थः ॥ हे ऋत्विज मित्र (आदित्य) के नेत्रों से मुझे देखो। अथवा जैसे सखा सखा को देखता है तैसे मुझे देखो ॥ २॥  
अग्नयः यजुः धिषायाः दे० का० ४०. ८. २४. आग्नीध्रीयादिक आठों धिषायाओं को यजमान अभि मंत्रण करै ॥ अर्थः ॥ हे अग्नयः सग  
रस्तुति सहित आग्नीध्रीयादिकों तुमस्तुति सहित धिषाणाम  
करि समानस्तुति हो। हे अग्नयः तुम शत्रु विनाशक अपनी उग्र से  
न्य करि मेरी रक्षा करै अथवा रुद्र देवता के मुख करिके मुझे रक्षा क  
रौ ॥ हे अग्नयः मुझे धनादिकों से पूरण करौ। मुझे निरन्तर में रक्षा  
करौ। तुमको नमस्कार है मुझे मत भारी निर्विघ्न पूर्वक यज्ञ कराओ  
॥ ३४ ॥ इति भाष्ये अष्टमोऽनुवाकः ॥ ८ ॥  
अ० ४० ज्योतिरसि ॥ विश्वरूपं विश्वेषां देवानां त्वं समित् ॥ त्वं सो  
मत नूह्यो देवोऽभ्यो न्यकृतेभ्य उरुयन्तासि चरुय  
त्वं स्वाहा जुषाणो अश्वराज्यस्य वेतु स्वाहा ॥ ३५ ॥

अवसानहीना अवसानरहिता

साम्यनुष्टुप् विधे देवादे० का० ५०४०२६ ध्रुवामे सैष पृथदाज्य आज्य  
को पांचवार ज्योतिरसीत्यादिसमिदन्तमन्त्र से ग्रहण करे ॥ अर्थ ॥ हे  
आज्य तू ज्योति है कैसा कि सर्व रूप, बहुत आहुतियों में युक्त होने से  
सर्व रूप कहा । आज्यत्व वादीप्यमानत्व से ज्योतिष्टु है । सब देवताओं  
का दीपक अर्थात् देवता आज्य का भोजन करिदिपते हैं ॥ त्वष्टं सोमे  
त्यनवसाना गायत्री भृगु सुत क्रतु दृष्टा सोम देवत्या का० ८०७०१ प्रदी  
प्रदूध्मके ऊपर प्रचरणी अर्थात् जुहू से होम करे ॥ शरीर के छेदन  
वाले अर्थात् रक्षसों । द्वेष करने वाले दोर्भाग्य । और भी हमारे वै  
रियों के प्रेरण छेदन । हे सोम तू तिनों को जानता है । जैसे वे हमको न  
वाधा करें तैसे हमको सुरक्षित प्रदेश में स्थापन करि पालन करता है ।  
तिस हे तू तू ही हमारा उरु प्रभूत बल है तैसे तुरू को यह हत हो । सोम ने  
ता को उद्देश्य करि यह आज्याहुति हो में इति भावः ॥ जुषाणोऽअप्नुदे  
वत्येकपदा विरुज्य जुरन्ता ॥ का० ८०७०२ फिर प्रचरणी से एक  
वार आज्य ले होम करे ॥ अर्थः ॥ प्रीयमाणऽअप्नुः (सोम) आज्य को  
पान करे । स्वाहा तिसके अर्थ सुद्धत हो ॥ ३५ ॥

अग्ने नय ॥ सुयथा रायेऽअस्मान्नि श्वानि देव वयुनानि  
विद्वान् ॥ पुयोध्यस्मज्जुहु राण मे नो भूयिष्ठान्ते नमः उ  
क्तिं विधेम ॥ ३६ ॥

आग्नेयी निष्टुव गस्त्य दृष्टा का० ८०७०६ आग्नीध्र प्रति गमन  
के अर्थ प्रवृत्त यजमान को अध्वर्यु पढ़े ॥ अर्थः ॥ हे अग्ने हे देव स  
ब मार्गों वा शानों के जानने वाले तू हम अनुष्ठान करने वालों को

धन अर्थात् यज्ञफल के अर्थ शोभन मार्गमें प्राप्त करि ॥ किंच हम अनुष्ठान करने वालों से पापको प्रथक करि । कैसाहे पाप कि हमको टेढे करने की इच्छाकर्ता अर्थात् अविलषित क्रिया का प्रतिबंधक हैं ॥ किंच तेरे लिये बहुत बड़ी हविका या ज्यापुरेनु वाक्या रूपी वचन कहूं अथवा नमस्कार विषया उक्तिका संपादन करूं ॥ ३६ ॥

अयन्नः ॥ अयन्नोऽग्निर्वरिवस्त्रणोत्वयम्पृथः पुर  
ऽतुष्पमिन्दन् ॥ अयम्वाजा जयतु वाजसाता वयरे  
शत्रुः जयतु जहृषाणाः स्वाहा ॥ ३७ ॥

आग्नेयं त्रिष्टुप् यजुरन्ता का० ८० ७० ७-४० शालामुखीय अग्नि-  
और ग्रावादिकों को स दके उत्तर भागमें लेजाके आग्नीध्र मंडप  
में रख तहां धिषायगत अग्निमें घृतसे होम करे ॥ इति ॥ यह अग्नि  
हमारे लिये धन को करे यही अग्नि संग्रामों को विदीर्ण करि आगे  
आओ यही अग्नि अन्नोके संभजन के निमित्त शत्रु संबंधी अन्नो  
को हमारे देने को जीतौ तब यही अग्नि अति शय हंसकर शत्रुओं  
को जीतौ ॥ स्वाहा तुरु को मुहुत हो ॥ ३७ ॥

उरुविष्णो ॥ उरुविष्णो बिक्रमस्वोरुक्षयायनस्तुधि ॥

घृतं तयोनेपि न प्रयज्ञपतिन्तिर स्वाहा ॥ ३८ ॥

वैष्णव्यनु व्यजुरन्ता का० ८० ७० १५ पूर्वमंत्र करि आग्नीध्रीय  
में होम है इस मंत्रसे आहवनीय में होम करे ॥ मंत्रार्थस्तु ॥ हे विष्णो  
(व्यापी आहवनीय) शत्रुओं प्रति बड़ा पराक्रम कर किंच ब्रह्म गृह  
निवास के अर्थ हम को बहुत जैसे जैसे करि हे घृत योने + (अग्ने) ह

अग्निर्वरिवस्त्रणोत्वयम्पृथः पुरऽतुष्पमिन्दन् ॥ अयम्वाजा जयतु वाजसाता वयरे शत्रुः जयतु जहृषाणाः स्वाहा ॥ ३७ ॥

यमान इस आज्य को पान करि। किंच यज्ञपति (यजमान) को अति शय वडा। स्वाहा तैसै तुम्को सुदृत हो ॥ ३८ ॥

देवसवितः ॥ देवसवितरेषते सोमस्तर्ह रक्षस्वमात्वादभनू ॥ एतत्त्वन्देव सोमदेवो देवा रं ॥ ३९ ॥ उषागा इदमहम्मनुष्यान्त्सह रायस्योषेण स्वाहानिर्व्वरुणस्य पाशांन्मुच्ये ॥ ४० ॥ दे-नू। अ०। ए-ण। इ०। स्वा-च्ये। उ०।

देव सवितः आर्षी गा० सावित्रम् का० ८०७० १७० दक्षिण हविर्धान प्राकट में कृष्णाजिन विछाय तिसपर सोम रखै ॥ अर्थः ॥ हे सबके प्रेरक देव यह सोम तेरे अर्पण किया तिस सोमको तू पालन करि सोमके रक्षा करने वाले तुम्को असुर मतहिंसा करौ ॥ एतत्त्वम् प्रावि० सौम्यम्। का० ८०७० १८० कृष्णाजिन पर स्थापन किये वद्ध सोमको छोडि उपस्थान करै ॥ अर्थः ॥ हे सोम देव तू देव हो अपने देवताओं प्रति ऐसै प्राप्त है में यजमान अपने मनुष्यों प्रति ऐसै ही धनकी पुष्टि (पश्यादि धन) सहित लौहूँ ॥ स्वाहानिरितिया-त्रि० लिं गोक्त देवतम् का० ८०७० १९० हविर्धान मण्डप सैनिकल ॥ अर्थः ॥ सोमसै आत्मा को निकाल आत्मीही भेग है। अथवा स्वाहा सोम रूप अन्न देवताओं को दिया इस सोम प्रदान करि में वरुण पाश सै छूटा ॥ ४० ॥

अग्ने व्रतपास्त्वे व्रतपाया तव तू नूर्मय्य भू देवा सात्वयियो मम तू नूर्स्त्वय्य भूदियठं सामयि ॥ यथा यथन्त्रौ व्रतपते व्रतान्यनु मे दीक्षान्दीक्षा पतिरमुं स्तानु तपस्तपस्यति ॥ ४० ॥ का० ८०७० १९० अग्ने व्रतपाः इस सै आहवनीय में समिध

न हन सानहा अहास स्वाहा सानगाः

डालि। आग्नेयं यजुः यजमान अग्निके के शरीरसे अपने शरीरको  
 एक करि अधस्तन कर्म कलाप करिके ॥ अवजेसे अपने शरीरप्रतिकि  
 यासो कहतेहैं। हे अग्ने स्वभाव करि सब व्रतों का पालक है तिस कारण  
 यहां भी तू मेरे व्रत का पालक हो। हे अग्ने व्रतकी प्रार्थना के समय तेरीसं  
 वन्धिनी जो देही मेरी थी सो यह तेरी हो। और जो मेरी देही तेरी हुई तौ यह  
 मेरी हो। हे व्रतके पालक अग्ने हमारे तुम्हारे व्रत (कर्म) जों के त्यों हैं अ  
 र्थात् अनुष्ठान रूप व्रत मेरा और तिसके पालन रूप व्रत तेरा हो किंच  
 दीक्षा का पालक अग्नि मेरी दीक्षा के अर्थ नियम को अंगीकार करे।  
 तप का पति अग्नि मेरे उपसद को स्वीकार करे ॥ ४० ॥ इति नवमोऽनुवाकः ॥  
 अ० १० उरुविष्णो ॥ उरुविष्णो वि क्रमस्वोरुक्षया यन स्कधि ॥ घृत  
 हृतयोनेपिवप्स्यप्स्य यज्ञ पति न्ति रस्वाहा ॥ ४१ ॥  
 इदानीं यूपसम्पादनमन्त्राः ॥ का० ६. १. ३-४ घरमें चारिवारलिये  
 आज्य करि उरुविष्णुः इस मंत्रमें आहवनीय में यूपाहुति अर्थात्  
 यूपछेदने के अर्थ होमें ॥ काण्डी ३८ में व्याख्या की गर्व ॥ ४१ ॥

अत्यन्या न ॥ अत्यन्या रं ॥ ३ अग्नौ नान्या रं ॥ ३ उपांगाम  
 र्वात्का परेभ्यो विदम्युरेर्वरेभ्यः ॥ तत्त्वां जुषामहे देववनस्य  
 ते देव यज्याये देवास्त्वा देव यज्याये जुषन्तां म्विष्णां वेत्वा ॥ ओ  
 षधे त्रायस्व स्वधि ते मे न ठं हि ठं सीः ॥ ४२ ॥ †

अत्यन्या रं ॥ वनस्पति देवतम् यजुः का० ६. १. ५-७ यूपाहुति के शेष  
 आज्य सहित यूपंतक्षण के अर्थ वनमें जाकर यूपका स्पर्श वा अभि  
 मंत्रण करे ॥ इति सूत्रार्थः ॥ वृक्षदो प्रकार के यूप्या-अयूप्या-पलाश-

खदिरः वित्वादिक यूष्याः निम्बः जम्बीरादि अप्यूष्याहं ॥ हे पुरोवर्ति  
 यूप वृक्ष तुम्हें अन्य यूषों को सम प्रदेश जन्मादिलक्षण रहित देख  
 ताहं और भी अन्य अप्यूषों को नहीं जाता किंच दूरवर्ती वृक्षों से निक  
 ल तुम्हें पाया और हे वनस्पते (वन के पालक) हे दीप्यमान वृक्ष देवता  
 ओं के याग के अर्थ तै से तुम्हें में सेवन करूं और देवता देवयज्या  
 में तेरा सेवन करें ॥ का० ६० १०११० धृताक्त सुवा करि छेदने के स्थान  
 विष्णावेत्वा से उपस्पर्शन करे ॥ हे यूप वृक्ष तुम्हें विष्णु (यज्ञ) के अर्थ  
 उपस्पर्शन करताहं + ॥ ओषधः इति या- गा० कुशतरुणो दे० का०  
 ६० १०१२० यूप वृक्ष के कुश को अन्तर्धान करिकें ॥ हे ओषधे तू स्वधि  
 तिभय से मुझे रक्षा कर ॥ स्वधितः इति दे- ज० परशुदे० का० ६० १०१२०  
 परशु से प्रहार करे ॥ हे परशु इस यूप को मत हिंसा करि ॥ ४२ ॥ +

+ यज्ञो वै विष्णुरिति जुते

द्याम्ना ॥ लेखी रन्तरीक्षम्माहिंसीः पृथिव्या सम्भव ॥ अय  
 ठं हित्वा स्वधिति स्तेति जानः प्रणिनाय महते सौ भगाय ॥ अ  
 तस्त्वन्देव वनस्पते शतवल्गु विरोह महस्र वल्गु बिब्र  
 यं रुहेम ॥ ४३ ॥ + इति संहितायां दशमोऽनुवाकः ॥ १० ॥

इति श्री शुक्लयजुषि माध्यन्दिनी शाखी यायां वाजस  
 नेय सर्गहितायां दीर्घपाठे पंचमोऽध्यायः ५

यां मा लेखी वनस्पति देवतं यजुः का० ६० १०१६० गिरते हुए यूप को अभि  
 मंत्रण करे ॥ अर्थः ॥ हे यूप वृक्ष तु लोक तेरी मत हिंसा करे अन्तरिक्ष  
 मत हिंसा करे पृथिवी के साथ संगत हो ॥ यूप को वज्र रूप होने से लोकों  
 की शांति चाहते हैं इति भावः ॥ का० ६० १०१७० अयं ठं हित्वा से द्विज

जो यूप वृक्ष है उसका कुठार करि शोधन (शाखा पत्ती दिकों का पतन) करे १० अथवा यह अभिमंत्रण का शेष है शोधन चुपकै से करे ॥ अर्थ जिस कारण हे छिन्न वृक्ष अति तीक्ष्ण यह कुठार बड़े सौभाग्य दर्शनीय अथवा यज्ञ के अर्थ तुम्हें यूप होने को प्राप्त करेगा। इस हेतु तुम्हें छेदने को नहीं भेदता हूँ इति भावः ॥ अतस्त्वमिति आधी वृ० वनस्पतिर्दे० का० ६. १. २. २१ स्थाली में से जुहू करि लिये आज्य से होम करि छेदन प्रदेश को संस्कृत करे अथवा यूप में इस आहुति को होमें ॥ मंत्रार्थे स्तु हे देव वनस्पते इस स्थाणु से तू बहु अंकुर सहित होके विशेष करि उत्पन्न हो औ और हम भी पुत्र पौत्रादिकों करि बहु शरण को पेत हों वें ॥ ४३ ॥

इति श्री गिरिधरभाष्ये दशमोऽनुवाकः ॥ १॥

श्री वेदार्थ प्रदीपेन तमोऽहर्दं निवारयन् ॥

पुमार्थोऽतुरो देया यज्ञ पुरुषः सनातनः १

श्री मच्छुक्त यजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनी श्राद्धे तृव्या घ्रादा न्वय विश्वामित्र पुराधिपति श्रीमज्जय किशोर देव वर्मा जगैः किमणे य नृपति गिरि प्रसादेन रचिते श्री वेदार्थ प्रदीपे गिरिधरभाष्ये आतिथ्यात् स्थाणु होमान्त वर्णनो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥



हरिः ओम्

जैनमो यज्ञ पुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्वहु रूपकम्

स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्म रूप परं स्तुमः १

अ० १ देवस्यत्वा ॥ देवस्यत्वा सवितुः प्रसवेद्विनीर्वाहुभ्याम्यूष्णो  
हस्ताभ्याम् ॥ आर्देनार्येसीदमहर्षे रक्षसां ग्रीवाः ॥ अ  
पि कृन्तामि ॥ यवीं सि यवयास्मद्वेषो यवया रातीर्हि वेत्वान्त  
रिक्षायत्वा पृथिव्यै त्वा शुन्धन्तान्त्रोकाः पितृषदनाः पितृ  
षदनमसि ॥ १ ॥ †

गिरिप्रसाद संज्ञेन श्रीवेदार्थ प्रदीपके ॥ ॥

अभ्यादानाद्वाचनान्तः षष्ठोऽध्यायः समीर्यते

सौमिक वेदीके प्रधान करि पांचवे अध्याय में आतिथ्य से ले यूप  
निर्माण पर्यन्त मन्त्र कहे ॥ अग्नीषोमीय पशुके प्रधान करि छठे  
अध्याय में यूप संस्कार से ले सोमाभिषवके उद्योग पर्यन्त मन्त्र क  
हेते हैं का० ६० २० देवस्यत्वा से अभिलेकर इदमहं से यूपके अव  
ट करने की लिरखे। देनो मन्त्रोंकी अध्या० ५ काण्डी २२ में व्याख्या  
की ॥ का० ६० १५-१८ यवीं सि से पात्र में भरे जल में जो डालकर। यवीं  
के जल से अग्र मध्य मूल को दिवेत्वादि तीन मन्त्रों करि प्रोक्षण करे  
शुन्धन्ताम् से प्रोक्षण के शेष जल को अवट में सींचे। पितृषदन से  
प्रागग्र उत्तराग्र दर्भा ऐं डाले ॥ इन चारों मन्त्रों की भी ओदुम्बरी  
विषय में ५० २६ व्याख्या की ॥ १ ॥

† दे-मू। अ० १ आ-सि। दू० इ-मि। उ० य-ती। ऋ० दि-त्वा। ल० शु-ना। आ० पि-सि। ई० ॥ १ ॥

अग्रेणीरसि ॥ स्वावेशः उन्नेतृणा मेतस्य विना दधित्वा स्यास्य  
 ति देवस्त्वा सविता मध्वानकु सुपिप्यलाभ्यस्त्वोषधीभ्यः ॥ द्या  
 मग्रेणास्पृक्षः आन्तरिक्षमध्वेनाप्राः पृथिवीमुपरेणादृढं हीः ॥ २ ॥  
 अग्रेणीः शकल देवत्यं यजुः का० ६० २० १४० यूपके अवट में प्रथमश  
 कल कूडालें ॥ अर्थः ॥ हे यूप शकल तू छिद्यमान यूपका प्रथम अवयव  
 है अथवा प्रथम यूपको अवट प्रति पहुंचानेवाली हैं। कैसी हैं तू कि उन्नय  
 न करनेवाले अध्वर्युओं की सुख पूर्वक विठानेवाली, ते इस यूपके अव  
 ट में छोटे होने के कारण सुख पूर्वक विठलाते हैं। सो तू इस कर्म को जा  
 निबोह कौन कर्म कि जो यूप तेरे ऊपर अवस्थान करेगा सो तुम्हें समझ  
 ना उचित है ॥ देवस्त्वा या-पं० यूप देवत्यं का० ६० ३० २० यूपके ऊपर देश  
 को छोड़ि अंजन करे ॥ हे यूपः सविता देवता मधुर आज्य करि तुम्हें अंजो ॥  
 सुपिप्यलाभ्यः चषालदे या-बृ० का० ६० ३० ३० ४० नीचे ऊपर आज्य करि  
 लिप्त चषाल को यूपके आगे स्थापन करे ॥ अर्थः ॥ हे चषाल तुम्हें यूपके आ  
 गे छोड़ता हूँ कि सलिये कि व्रीह्यादि ओषधी की निष्पतिके अर्थ कैसी ओ  
 षधी कि शोभन फलयुक्त ॥ द्यामग्रेणेति यूपदे० यजुः का० ६० ३० ७० सैं ऊँ  
 चा करे ॥ अर्थः ॥ यूपकी महिमा कहिते हैं। हे यूप तूने अग्र भाग करि दि  
 वी को स्पर्श किया है। मध्यभाग करि अन्तरिक्षको पूरित किया है। अधो  
 भाग करि पृथिवी को दृढ किया है ॥ २ ॥

याते ॥ याते धामान्युश्मसि गमध्वे यत्र गावो भूरिशृङ्गाः  
 अयासैः ॥ अत्राह तदुरुगायस्य विष्णोः परमम्यदमव  
 भारिभूरि ॥ ब्रह्मवनि त्वाक्षत्रवनि रायस्योषवनि पर्यहामि ॥

ब्रह्म हर्षं हृक्षं ब्रह्म हर्षं हायुर्हर्षं हृष्यजान् हर्षं ॥ ३ ॥ †

याते दीर्घतमा ऋ० त्रिष्टु० यूपदे० का० ६. ३. ८. अवट में यूपको डालें ॥  
अर्थः ॥ हे यूपजिन तेरे धामों (स्थानों) के जानें को हम कामना करते हैं।  
किंच जिन तेरे स्थानों में किरिणें बर्ते हैं कैसी हैं किरिणें कि बहुत है दी  
क्षिजिनकी । इस विष्णोः- व्यापक ब्रह्म का सो परम उत्कृष्ट पद बड़ा  
आदित्य मंडल रूपी यहां दीखता है । अथवा भूरि बहुत प्रकार इ  
न स्थानों में शोभित है कैसे विष्णु का कि बड़ी है गति जिसकी अ  
थवा महात्माओं करि स्तुति किया गया तिसका । तैसे स्थान की प्राप्ति  
के हेतु भूत कर्म के अर्थ हे यूप तू इस अवट में ठहिर ॥ का० ६. ३.  
१०. ११. ब्रह्म वनित्वा से मृदा करि पूर्ण करे । ब्रह्म हर्ष से मैत्रावरुण द  
ड करि तीनि फेर से कूटे ॥ दोनों यजुषिः औदुंबरी में व्याख्या की अ  
ध्या० ५ कांडी २७ ॥ ३ ॥

विष्णोः कर्माणि ॥ पश्यन् यतो ब्रतानि पश्य शो ॥ इन्द्र  
स्य युज्यः सर्वा ॥ ४ ॥

हे वैष्णव्यो गायत्र्यो मेधा तिथि दृष्टे का० ६. ३. १२. विष्णोः कर्माणि  
यूपको स्पर्श करते हुए यजमान प्रति पढ़े ॥ अर्थः ॥ हे ऋत्विज औ यज्ञ  
के अधिष्ठाता विष्णु के कर्मों (सृष्टि संहार दिचरितों) को तुम देखो  
जिन कर्मों करि तुम्हारे लौकिक वैदिक कर्म निर्माण हुए सो विष्णु  
इन्द्र का वृत्रवधादि कर्मों में अनुरूप सर्वाहु आ ॥ अथवा विष्णोः अ  
र्थात् यज्ञ के कर्माणि- वीर्यों को देखो कि जिन वीर्यों से ब्रतानि आ  
धान पशुरोमादिक कर्म पश्य शो- आत्म में निर्माण किये यद्वा जिन

वीर्यो करि ब्रतानि, कर्म अग्नि वायु सूर्योदिकों में अपने अपने अन्न  
मनहोकरै यह निबद्ध किया। सिद्ध समानं ॥४॥

तद्विष्णोः परमम्यदर्शं सदा पश्यन्ति सूरयः ॥ दिवी चक्षुरा  
ततम् ॥५॥

का० ६.३.१३. चक्षुष को देखते हुए यजमान प्रति पेटे ॥ सूरयः वेदा  
न्तपारगाः विद्वानविष्णु के तिस परमपद (स्वरूप) को सदा देखते हैं कै  
से को कि आकाश में चक्षु ऐसे वात हैं। यद्वा जिसने आकाश में आदि  
मंडल को विस्तार किया ॥ चक्षु शब्द से यहां मंडल लेना चक्षुर्मित्रस्य  
वरुणस्य ७.४२. तच्चक्षुर्देवहितम् ३६. २४. ॥५॥

परिवीरसि ॥ परिवीरसि परित्वा देवीर्विशो व्ययन्ताम्यरीमं य  
जमानं रथो मनुष्याणाम् ॥ दिवः सूनुरस्येषते पृथिव्या  
ल्लोकः आरण्यस्ते पशुः ॥६॥†

परिवीरिति राजा- त्रि० यूपदे० का० ६.३.१५. तीनि अवयवों करि स  
म्यादित कुशाओं की जोरसना (लेज) तिससे यजमान की नाभिवरा  
वरि यूप प्रदेश में तीनि आवृत्ति जैसे हों तैसे यूप का आवेष्टन करे ॥  
अर्थः ॥ हे यूप तू ऊपर से रसना करि वेष्टित है। अथवा हम लोगों करि परिवेष्टि  
त है किंच देव संबंधिनी मरुद्गणादिक प्रजा तुम्हें वेष्टन करे। अथवा पशु  
तुम्हें वेष्टन करे। किंच मनुष्यों के संबंधी धन इस यजमान को सब ओड़ी  
से वेष्टन कीजिये। अथवा मनुष्यों के बीच धन इस यजमान को सब ओ  
ड़ी से वेष्टन कीजिये ॥ दिवः सूनुरति देवी० त्रि० स्वरुदेवत्या का० ६.३.  
१७. अष्टास्त्रि यूप की जो अस्त्रि अग्नि के समी में स्थित सो अग्निष्ठा

तिसके उत्तरभाग रसना में स्वरु नामा शकल को प्रवेश करै ॥ अर्थः  
हे स्वरो तू द्युलोकका पुत्र है • द्युलोकसे वर्षे तव यूप उत्पन्न हो यूपसे स्वरु  
इस प्रणालिका करि दिविका पुत्र स्वरु ॥ एषते सा०-उ० यूपदे० का० ८  
८० २३ यूपे का दशिनी पक्षे यूपके दक्षिण भागमें विनछिला वार मां यूप  
स्थापन करै उसे न गडें ॥ अर्थः ॥ हे यूप पृथिवी में यह तेरा स्थान है । ननु  
पशवो वै यूपमुच्छ्रयंतिति श्रुतेः शत० ३७० ३४० वन में वर्तमान पशु तेरे  
ही हैं ॥ ६ ॥

अ० २ उपावीरसि ॥ उपावीरस्य पदेवान्देवीर्विशः प्रागुरुशिजो बन्धि  
तमान् ॥ देवत्वष्टृर्वसुरमहव्याते स्वदन्ताम् ॥ ७ ॥

उपावीरसि दै० पं० वृ० ए० दे० का० ६३१६० तृणलेके ॥ अर्थः ॥ हे तृण  
विशेषतः समीपमें आता है । अथवा समीपमें अवस्थित रक्षाकर्ता है पशु का  
दूसरा सर्वा तू है ॥ उपदेवानिति यजुः लिंगोक्तम् का० ६३१६० सामने  
तिससे स्थित पशु का स्पर्श करे ॥ अर्थः ॥ पशु अग्नीषोमादिक देवता  
ओं प्रति प्राप्त हजियों कैसे देवताओं प्रति किमेधावि । अथवा हवि के  
चाहने वाले बन्धितमानू बहुत चलाने वाले अर्थात् यजमानू को स्वर्ग प्रा  
प्ति प्राप्त करने वाले देवताओं के बीच बहुत श्रेष्ठ । ऐसे पशुओं को प्रार्थ  
ना करि त्वष्टा प्रति कहता है । हे देव हे त्वष्टः तू पशु लक्षण धन को रमाण क  
रि । ऐसे त्वष्टा से कहिके फिर पशु से कहता है । हे पशु तेरी हवि स्वादित ह  
जियों अथवा हवियों को देवता स्वीकार कीजिये ॥ ७ ॥

रेवती रमध्वम् ॥ रेवती रमध्वमृहस्पते धारया बसूनि ॥ ऋत  
स्यत्वा देव हविः पाशेन प्रतिमुञ्चामि धर्षामानुषः ॥ ८ ॥

हे क्षीराधिधनवंत पशुः औ तुम यजमान के घरमें अच्छी प्रकार क्रीडा करे। ऐसे पशुओं से कहिकरि बृहस्पति से कहिता है। हे बृहस्पति हे ब्रह्मन् पशुओं को निश्चल करे। ऋतस्यत्वा आधी - उ० पशुदे० का० ६३२० बहरी कुशाओं की रस्सी का नागपाश बनाय शृंगों के बीच पशु के बांधे दक्षिणशृंग के सामने पाश को बाँधे ॥ अर्थः ॥ हे देवताओं के हविरूप पशु अवश्य भाभि फलोपेत यज्ञ पाश करि तुम्हें बांधता हूँ। ऐसे पशु को संबोधन करि शमित्र के अर्थ समर्पण करे। मानुषः (शमिता) धर्षा धृषणो तु शमयतुं शक्नोतु समर्थ हूँ जियो इति भावः ॥ ८ ॥

देवस्यत्वा ॥ सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्वाहुभ्याम्यूष्णो हस्ताभ्याम्  
अग्नीषोमाभ्यां जुष्टं निर्युनज्मि ॥ अद्भ्यस्त्वोषधीभ्यो नुत्वा  
माता मन्यतामनु पिता नुम्वाता सगम्भ्यो नु सखासयूथ्यः  
अग्नीषोमाभ्यान्त्वा जुष्टम्योक्षामि ॥ ९ ॥ †

देवस्यत्वा आ० - वृ० का० ६३३० यूपसै पशुको बांधे व्याख्याता ५२६  
अग्नीषोमाभ्यां या० - त्रि० लिंगोक्तं अग्नीषोम देवताओं को अभिरुचि  
न पशुको बांधता हूँ ॥ अद्भ्यस्त्विति यजुः का० ६३३१ पशुको प्रोक्षणी  
से प्रोक्षण करे ॥ अर्थः ॥ हे पशो जल और ओषधी करि के तुम्हें प्रोक्षण (मे  
ध्य) कर्ता हूँ केसे तुमकी कि अग्नीषोमकी प्रीति को। दर्भ और जल के पवित्र हो  
ने से ओषधीओं को भी प्रोक्षण साधनत्व है। अपनी माता के भक्षित तृ  
ण और उदक करके उत्पन्न होने से तिन देनों कर प्रोक्षणा युक्त है। तदा  
हति तिरिः अद्भ्यस्त्वोषधीभ्यः प्रोक्षामीत्याहाद्भ्यो ह्येष ओषधीभ्यः  
संभवति यत्पशुरिति। किंच हे पशो ऐसे प्रोक्षित तुमको माता पृथिवी

आज्ञा दीजियो तथा पिता आकाश आज्ञा दीजियो सोदरभ्राता आज्ञा दीजियो समान यूथीसखा आज्ञा दीजियो ॥ ४ ॥

अपाम्येरुः ॥ अपाम्येरुरस्यापो देवीः स्वदन्तु स्वानंचित्सहै  
बहुविः ॥ सन्ते प्राणो वातेन गच्छतां समङ्गानियजत्रैः  
संयज्ञपतिरुशिषा ॥ १० ॥ † /

अपाम्येरु या - गा. यशु दे० का० ६. ३. ३२. यशु के मुख के नीचे पीने  
के अर्थ प्रोक्षणी को था भे ॥ अर्थः ॥ हे पशो तू पानियों का पीने वाला हेति  
सहेतु इसको पी ॥ आपो देवी रित्या सुरी गा. आपो दे० का० ६. ३. ३३. य  
शु के उदर हृदय का प्रोक्षण करे ॥ हे पशो जल रूप देवी तू मे भक्षण क  
रो ॥ अथवा आपो देवी यशु का भक्षण करो ॥ क्या गुण सो कहते हैं कि जै  
से देवताओं का यशु लक्षण हवि आस्वादित होने से शोभन देवयो  
ग्य होवे इति शेषः ॥ अद्भ्यस्त्वेत्यादि तीन मंत्रों करि ऊपर मुख नीचे में  
यशु के प्रोक्षण करने से सब को मेध्य करे यह तितिरिने प्रति पादन किया  
तदाह उपरिष्ठात्प्रोक्षत्युपरिष्ठादैवेन मेध्यं करोति पाययत्यन्तरत ए  
वैनं मेध्यं करोत्यधस्तादुपोक्षति सर्वमेवेनं मेध्यं करोतीति ॥ संते यजुः  
पशु दे० का० ६. ४. २. उत्तराघार होम के अनन्तर ध्रुवासमञ्जन से पहि  
ले यशु के ललाट स्कन्धों और दक्षिणेत्तर कटियों का जुहस्थ आज्य करि  
तीनों प्रति मंत्र से अंजन करे ॥ ललाटाञ्जनमंत्रः ॥ हे पशो तेरे प्राण वाद्य  
वात में पहुँचौ ॥ अथांसयोर्मंत्रावृत्तिः ॥ अंसादिक अंग याग में पहुँचौ ॥ अ  
थ श्रोणयोः ॥ यज्ञपति (यजमान) आशिषा यज्ञफल में पहुँचौ ॥ १०  
घृतेनाक्तौ पशुं त्रायेथा धरेव तियजमाने प्रियन्धाः आवि

श ॥ उरो रन्तरिक्षात्सजूर्हेवेन वातेना स्पृहविषस्मना यज  
समस्य तन्वा भव ॥ वर्षो वर्षी यसि यज्ञे यज्ञ पतिन्याः स्वाहा दे  
वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥ ११ ॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः २

घृतेनाक्तौ या - अ० स्वरुशाशदेवतम् का० ६.४.१२ विशसिवादि ये हु  
एशास (कटारी) को गृहण करि आपही यूपसे स्वरुले तिन कटारी और स्वरु  
रुको जुहाके अग्रमें घृतसे चुपगिति न कटारी और स्वरु करि पशुके ललाट  
का स्पर्श करे इति ॥ हे स्वरुशास तुम घी करि सींचे हुए इस पशुका पालन  
करे ॥ रेवतीति ब्राह्मी उष्णिग्वाग्देवतम् का० ६.५.११ यजमान प्रतिपदे  
हे रेवति (धनवति) वाग्देवते † यजमान विषे इस अभिषेक को स्थापन करि  
ज्ञान प्रदान करि यजमान में प्रवेश करि किंच हे रेवति वात देवता करि समा  
न प्रीति हो कर विस्तीर्ण अन्तरिक्ष से यजमान को रक्षा करि इति शेषः किंच  
इस पशु लक्षण हविसे अपने को पूजि किंच इस पशुके शरीर करि एक हो  
हे रेवति यजमान रूप और पशु रूप करि एक हो और अपने को पूजि इति  
तात्पर्यार्थः ॥ वर्षो वर्षी यसि आसु - अ० तृणदे का० ६.५.१५ शामित्र के  
पीछे हस्तस्थ दो तृणों के बीच एक को परके विशमनीय (हिंसनीय) पशुके  
भूमि स्पर्श के परिहार के अर्थ इति सूत्रार्थः ॥ हे वर्षा से उत्पन्न हुए हे तृण  
अथवा विस्तीर्ण बहुत विस्तीर्ण यज्ञ में यज्ञ पति (यजमान) को स्थापन  
करि ॥ स्वाहा देवेभ्यः देवेभ्यः स्वाहा हे दे - प० का० ६.५.२२.२४ होम  
करे ॥ अर्थः ॥ दोनो मंत्रों का अर्थ एक है परन्तु पाठ भेद का तात्पर्येति  
तिरीने कहा है ॥ पुरस्तात्स्वाहा कृतयोऽन्ये देवा उपरिष्ठात्स्वाहा कृतयो  
ऽन्ये स्वाहा देवेभ्यो देवेभ्यः स्वाहेति ॥ ११ ॥ इति भा० द्वितीयोऽनुवाकः २

† कावे रेवतीति प्रातः ३.०.१.१२

† घृ-मू। अ० अरे-व। ३०। व-धा। उ०। स्वा-भ्यः। ऋ० दे-हा। लृ० ॥ ११



अ० ३ महिः ॥ माहिर्भूमौ पृथक् कुर्न मेस्तः आतानान् वीप्रेहि ॥ घृत  
स्य कुल्याऽउपऽऋतस्य पथ्याऽऽपनु ॥ १२ ॥ †

माहिर्दे-ज० रज्जुदे० का० ६५ २६ वपाश्र पणीभ्यां वपाश्र पणके  
देनों काष्ठों में करिकें नियोजनी (पशुबंधन रज्जु) को दुहरी चात्वाल में  
रखे ॥ अर्थः ॥ हे रज्जु तू सर्पाकार मत हो और अजगराकार मत हो ॥  
नमस्ते प्रा० पं० यज्ञदे० का० ६६ २ पान्नेजन हस्ता अर्थात् पैर घौने के  
अर्थ पादग्रहण से और भी सुखाद्य वयव जानना तिन्हों के शोधन के  
अर्थ जल कलश हाथ में जिसके वोह पान्नेजन हस्ता तिस पत्नी को  
गाई पत्य के समीप से लाकर इस मंत्र को प्रतिप्रस्थाता तिस पत्नी प्रति  
पठे ॥ अर्थः ॥ सब ओड़ी से विस्तार करते हैं वोह यज्ञ शत० ३८२ २ ॥  
हे आताना यज्ञ तुरूको नमस्कार तू शत्रु रहित होके समाप्त पर्यंत प्रकर्ष  
करि आ किंच यज्ञ के मार्ग में घी की नदी को देखि कर आ सान्नायि (प्रष  
दाज्य कुल्लोपलक्षण) के अर्थ में घृत कुल्या लेना । कारण यह कि इस  
यज्ञ में बहुत घी का होम है ॥ १२ ॥

देवी रापः शुद्धा बौ दूर्ध सुपरि विष्टा देवेषु सुपरि विष्टा वयम्प  
रिवेष्टारो भूयास्म ॥ १३ ॥

ऐसे यज्ञ की स्तुति करि जल की स्तुति करते हैं । यजुः अर्धमच्छे वत्य मर्ध  
माशीर्देवतम् ॥ आपो देवी तुम इस पशु को देवताओं प्रति प्राप्त करे  
के सीहो तुम कि स्वभाव करि शुद्ध तथा पान्नेजनीयात्र में सब ओड़ी से  
निविष्ट । किंच हम भी देवताओं के बीच अवस्थित तिन देवताओं से तर्पित  
हैं तिन ही देवताओं के परिषेवण करिने वाले होंगे ॥ १३ ॥



और जो छेदादिक करने को शमित्रा उपस्थित है सो सब तेरे पूरित हों। किं  
च सो सब संहत अर्थात् संघात में अनुन्न हों सो सब तेरा शुद्ध हो ॥ शम  
होम्यः दे-व० लिंगोक्तं का० ६० ६० ७० पशु के जंघाओं पर पान्नेजन के शो  
षजल को सींचे ॥ अर्थः ॥ दिवसादिकाल विशेषों में सुख हम को वा प  
शु को हो ॥ ओषधेया-गा० तृणदे० का० ६० ६० ८० अध्वर्यु पशु को ऊंचा  
करि नाभिके आगे चारि अंगुल त्यागिके प्रागग्र तृण रखे इति सूत्रा  
र्थः ॥ मंत्रो व्याख्याता अध्या० ४० १० ॥ स्वधिते दे० ज० असिदे० का० ६० ६०  
४० किये हुए चिन्ह घी से चुपरी हुई असिकी धारा, तृण के ऊपर असि  
की धारा को रखकर चुपकै से तृण सहित उदर की त्वचा को छेदे ॥ अ  
र्थः ॥ इस पशु को हे असि मतिहिं से ॥ १५ ॥

रक्षसाम्भागः ॥ रक्षसाम्भागोऽसिनि रस्तं रक्षः इदमह  
र्षं रक्षोभितिष्ठा मीदमहर्षं रक्षोववाधः इदमहर्षं रक्षो धम  
न्तमोनयामि ॥ घृतेन द्यावा पृथिवी प्रोर्णुवायां द्यायो वै स्तो  
कानां मग्निराज्यस्यैवेतु स्वाहा स्वाहा कृतेऽ ऊर्ध्वं नमसाम्मा  
रुतङ्गं छतम् ॥ १६ ॥ †

रक्षसां० या-गा० लिंगोक्तम् का० ६० ६० ४० जो तृण नाभिके अग्र में स्थाप  
न किया तिस छिन्न तृण के अग्र को वामहस्त में रखकर दक्षिणहस्त में मू  
ल को रखति से दुहरा कर अग्र और मूल को पशु छेदन से निक ले रक्त  
से लेपे ॥ अर्थः ॥ हे लोहिताक्त तृण तू राक्षसों का भाग है ॥ निरस्तम् दे० पं०  
द्वे रक्षोघ्नम् का० ६० ६० १० लोहिताक्त तृण को उत्तर में फैके ॥ जो यज्ञवि  
घातक राक्षस है तिसै त्याग किया ॥ इदमहम् यजुः का० ६० ६० ११ उत्क

† र-सि। अ० नि-क्षः। इ० इ-मि। उ० घृ-मू। ऋ० वा-मू। तृ० अ-हा। आ० स्वा-मू। ई० १६

रमें फेंके रुधिराक्त तृण को यजमान पैर से दाव करि खडा हो ॥ जो तृण  
 रूप राक्षस का अध्वर्यु ने त्याग किया तिस इस राक्षस को में यजमान पै  
 र से दाव खडा होता हूं । कुछ खडा ही नहीं होता किंतु में इस राक्षस का अ  
 वाचीन जैसे होते से नाश करता हूं किंच में इस राक्षस को नरक में पहुँ  
 चाता हूं ॥ घृतेन या-ज० द्यावा पृथिवी दे० का० ६६१२ पशु के उदर से  
 वपा को निकाल तिस वपा से वपा अयणीयों को आच्छादन करे ॥ वपा  
 अयणीयों को द्यावा पृथिवी की उपमा दे कहते हैं । हे द्यावा पृथिवी तु  
 म घृत (उदक) करि आत्मा को आच्छादन करे ॥ यह आहुति परिणाम  
 का अभिप्राय है ॥ तथा चोक्तम् ते वाऽ एतेऽ आहुती हुतेऽ उत्क्रामत इ  
 त्युप क्रम्या हुति परिणाममिदं जगदिति ॥ वायो या-गा० वायुर्दे० का०  
 ६६१५ वाम हस्त में रखे तृणग्र को आहवनीय में डाले ॥ हे वायो नृ  
 स्तोको (वपा संबंधियों) को जान कर पीदित्यर्थः ॥ ते यहां हैं रे हैं अग्नि  
 राज्यस्य या-वृ० आग्नेयम् का० ६६१७ सुवा करि वपा का होम करे ॥ आ  
 हवनीयाग्नि आज्य का पान करे स्वाहा सुह तमस्तु ॥ स्वाहा कृते आसु-  
 गा० वपा अयणीयो दे० का० ६६२० वपा को होम कर उत्तर में बैठि वपा  
 अयणीयों को आहवनीय में डाले तिसका प्रकार यह है कि विशारवा  
 (द्विशृंगा) को प्रागग्र डाले औ एक शृंगा को प्रत्यग्र इति ॥ स्वाहा कार  
 से आहुति भाव के उपगत हो कर तुम वायु को प्राप्नो ओ । कैसी हो  
 कि नम (आकाश) के विषे वर्तमान हो ॥ १६ ॥

इदमापः ॥ इदमापः प्रवहता व द्यच्च मलच्च यत् ॥ यच्चा  
 भिदुद्रोहान् नृतं यच्च शोयेऽ अभी रुणम् ॥ आपो मातस्मादे

नसुः पवमानश्च सुचतु ॥ १७ ॥

अब देवता व्यवसाना महा पङ्क्तिः पावमानश्चान्त्यः पादः का० ६.  
६.२५. सब ऋत्विज यजमान चात्वाल के समीप में जल से आत्मा  
(अपने) को मार्जन करे ॥ हे आपः, जल इस पशु संज्ञापन निमित्त  
पाप को बहाओ किंच जो कुछ अन कहने योग्य, अभिशापादि  
और जो मल, शरीर का मैल तिससे दूर करे ॥ किंच जो हमने अनृत  
कहा द्रोह किया और अनपराधी प्रति जो हमने शाप दिया आ  
पः, जल तिस पाप से हम को पृथक् कीजिये और पवमान अ  
र्थात् सोम वा वायु तिस पाप से मुझे छुड़ाओ ॥ १७ ॥

अ० ४ संते ॥ सन्ते मनो मनसा सम्प्राणः प्राणेन गच्छताम् ॥ रेड  
स्यग्निष्ठा श्रीणात्वा पस्त्वा समरिणान्वा तस्य त्वाद्वाज्यं  
पूषणो रथं ह्यः ॥ ऊष्मणो व्यथिषत्पयुतन्देवः ॥ १८ ॥

संते प्राजापत्या नुष्टुप हृदय देवम् का० ६. ८. ६. जुहूस्थ पृष  
दाज्य करि पहिले हृदय को अभिधारन करि चुप के से सब पशु  
को अभिधारन करे ॥ हे हृदय पृषदाज्य करि अभिधारन से तेरे  
पशु का मन देवताओं की मनसा के संगत है । और तेरे प्राण अ  
भिधारण किये से देवताओं के प्राण करि संग तहें । रेड सीति  
आर्षी - पं. वसा दे० का० ६. ८. १२. मांस पाक करने के भांड में  
स्थित स्नेहात्मक द्रव्य विशेष (वस) को ग्रहण करे ॥ हे वसे तू अ  
ल्प है । अग्नि तुझे पाक करि भूयसि करे अथवा आहवनी अग्नि  
तुझे स्वीकार करे किंच जल तुझे पोषे अथवा जल तुरु को अच्छे

प्रकार प्राप्त हो अर्थात् तेरा शोष मत हो। जल ही पच्यमान पशु के अंगों से जो रस उत्पादन करता है उसे वसा कहते हैं तिस तुम्हें गृहण कर्ता हूँ इति शेषः। किस लिये कि वात की अन्तरिक्ष में गति हो यह तथा आदित्य की ध्रुव लोक में गति हो यह अर्थात् वायु आदित्य के अप्रतिहत गमन की सिद्धि के अर्थ तुम्हें गृहण कर्ता हूँ। किंच ऊष्माणो, अन्तरिक्ष को वसा व्यथा करे अथवा ऊष्मा व्यथा को प्राप्त हो अर्थात् वसा को पी के विषण के बढ़ाने से जैसा रहे तैसा वसारूप हवि हो। अन्तरिक्षस्य हवि रसि १४० होम के मंत्र में। अर्थात् यह वसा अन्तरिक्ष की तृप्ति कर के अतिरिक्त हो और अन्तरिक्ष की तृप्ति होने से वायु और सूर्य की अपने कर्म में कुशलता होती है तिस हेतु वातस्य तन्धा न्या इत्यादि कहते हैं॥ प्रयुतं द्वेषः दे०-पं० लिंगोक्त दे० का० ६० ८० १२० असि वा कटारी कर के वसा और घी को दो बार मिलावे। वसा से घी मिलाने के कारण द्वेष दोर्भाग्य प्रयक हुआ॥ १८॥

घृतं घृतपावानः॥ पिवतु वसां वसा पावनः पिवता  
न्तरिक्षस्य हवि रसि स्वाहा॥ दिशः प्रदिशः अपादिशः  
विदिशः उद्दिशो दिग्भ्यः स्वाहा॥ १४० ॥ †

घृतमित्यापी-पं० वैश्वदेवम् का० ६० ८० १०० वसा होम हवनी करि वसा का एक देश होमे॥ अर्थः॥ वसा को दो विरियां अभिघारण करने से घृत कहते हैं॥ हे घृत के पान करने वाले तुम घृत को पीओ। हे वसा के पीने वाले तुम वसा को पीओ। ऐसे देवताओं से क

† घृ-हा० अ० दि-शः॥ इ० प्र-शः॥ उ० आ-शः॥ ऋ० वि-शः॥ ल० उ-शः॥ आर्बि-

२५१

हिके वसा प्रति कहता है हे वसे तू अंतरिक्ष का हवि है स्वाहा सुहुतमस्तु  
 का ०६.०.२१. जैसे शेष वाजिन फटे दूध के पानी से दिशाओं का व्या-  
 धारण कहा तैसे ही यहां करे तद्यथा का ०४.४.१६. १७. दिशाओं  
 को व्याधारण करे दिशा इति प्रतिमंत्र करि चारों को पहिले प्रदक्षि-  
 णा करि उद्दिशः दिग्भ्यः से क्रमपूर्वक अग्नि के बीच और पूर्वभाग  
 में व्याधारण करे षट् दिग् देवतानि १६. दै. ३. ४. ५. दै. - अ. का ०  
 ४.४.१०. स्वाहाकार का सर्वत्र योजन करे ॥ अर्थः ॥ दिग्भ्यः स्वाहा १ प्रदिग्भ्यः  
 स्वाहा २ आदिग्भ्यः स्वाहा ३ विदिग्भ्यः स्वाहा ४ उद्दिग्भ्यः स्वाहा ५ स-  
 र्वोभ्यः दिग्भ्यः सुहुतमस्तु अर्थात् उक्त दिशाओं को सुहुत हो ॥ १६

ऐन्द्रः प्राणः ॥ ऐन्द्रः प्राणोऽपङ्गः अङ्गे निधीयतेन्द्रः  
 उदानोऽपङ्गः अङ्गे निधीतः ॥ देवत्वष्ट्रभूरिति संहं स  
 मेतु सलक्ष्माय दिषु रूपं भवति ॥ देवत्रायन्तमवसे  
 सखा यो नु त्वा माता पितरो मदन्तु ॥ २० ॥ +

ऐन्द्रः प्राणः पञ्चङ्गः प्राणदानमूलिङ्गोक्तम् यजुः का ०६.४.१.  
 पशु रूप हवि का स्पर्श करे ॥ अर्थः ॥ इन्द्र आत्मा के संबंधी प्राण  
 प्राण वायु इस पशु के सब अंगों में निधीयत् धारण करे तथा  
 इन्द्र संबंधी उदान वायु पशु के समस्त अंगों में निधीत उदाला ऐसे  
 इस यजु करि पशु के अंगों में प्राण दे के त्वष्ट्रा से कहता है ॥ देवत्वष्ट्र-  
 रितित्वाष्ट्री - त्रि ॥ हे त्वष्ट्र नामा देव जो पशु के अंगों का समान ल-  
 क्षण छेदने से नामा रूप हुवा वोह सब तेरे अनुग्रह से अत्यन्त करि  
 अच्छे प्रकार एक हो ॥ फिर पशु को कहता है हे पशु ऐसे प्राणों

और अंगो के इस मंत्र करि हठ किये देवताओं प्रति जाते हुए तुरको  
मित्र भूत इतर पशु और माता पिता अनुमदन्तु, अभ्यनु जानन्तु  
जाने। अथवा अवसे, तुरु करिके अपने सब कुल को स्वर्ग पहुंचा  
जाने ॥२०॥

ॐ ५ समुद्रं ज्ञं ॥ समुद्रं ज्ञं स्वाहा नतरिक्षं ज्ञं स्वाहा देवर्षं  
सवितारं ज्ञं स्वाहा मित्रावरुणौ गच्छ स्वाहा होरात्रे गच्छ  
स्वाहा छन्दां सि गच्छ स्वाहा द्यावापृथिवी गच्छ स्वाहा यज्ञं  
ज्ञं स्वाहा सोमं ज्ञं स्वाहा दिव्यन्मभोगच्छ स्वाहाग्निं  
वैश्वानरं ज्ञं स्वाहा मनो मेहार्हि यच्छ दिवन्ते धूमोगच्छ  
तु स्वर्ग्योतिः पृथिवीम्भस्मनापृण स्वाहा ॥ २१ ॥ +

का० ६० २० १० होम किये हुए अनुयाजों से पूर्व स्थापित गुदा के ती  
सरे भाग को प्रति प्रस्थाता इग्यारह खंड काटि प्रति मंत्र करि हो में  
समुद्रं लिंगोक्तानि द्वादश १० ६० १२० या-उ० २० प्रा०-गा० ३० ११० या०  
पं० ४० ७ या०-वृ० ५० १० या०-अनु० ८० २० या०-गा० ॥ अर्थः ॥ हे हवि  
गुदा के अवयव रूप तू समुद्रादि नामा देवताओं प्रति प्राप्त हो तू  
मित्र के अर्थ इति शेषः ॥ स्वाहा सुद्धतमस्तु ॥ का० ६० २० ११० प्रति वषट्  
कार करि एक एक गुदा के कांड को होम के सब के अंत में १२ वें से मुख  
को स्पर्श करै ॥ अर्थः ॥ हे समुद्रादि देवता समूह हृदय संबंध मे  
रे मन को यछ अर्थात् निवद्ध करै निवद्ध मन अपने स्थान से न  
टरे ॥ दिवन्ते आर्षी-उ० स्वरुदैवतं का० ६० २० १२० अनुयाज के  
अन्त में स्वरु को होमें ॥ अर्थः ॥ हे स्वरो तेरा धूँ आँ वृष्टि के अर्थ

+ स-हा॥ अ० अ-हा॥ इ० दि-हा॥ ष० मि-हा॥ ऋ० अ-हा॥ लृ० कृ-हा॥ ए० पा॥ घा-हा॥ ई० य-हा॥ ऊ० सो-हा॥ कृ० दि-हा॥ लृ० अ-हा॥ क० अ-छा॥ व० दि-हा॥ ट० २१॥



द्यु लोक को जावे। तेरी ज्वाला आदित्य वा अन्तरिक्ष को जावे।  
 भस्म करि पृथिवी को सब ओड़ी से पूरि। स्वाहा सुहुत मस्तु ॥ २१ ॥  
 मापः ॥ मापो मौषधीर्हिर्हं सीर्याम्नो धाम्नो राजस्त तो  
 वरुण नो मुञ्च ॥ यदा ह्रुर्ध्या इति वरुणेति शपामहे त  
 तो वरुण नो मुञ्च ॥ सुमित्रियान् आपः ओषधयः सन्तु  
 दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु यो स्मन्देष्टिय च वयन्दिष्मः ॥ २२ ॥  
 मापो दे - ज. हृदय शूल देवत का० ६. १०. ३. जल में प्रवेश करि  
 आलव्य किये हुए पशु का हृदयस्थ मांस जिसमें पाक किया वोह  
 हृदय शूल तिस हृदय शूल को, सुगसि. मापः. दोनों मंत्रों करि  
 शुष्क आर्द्र भू प्रदेश की सन्धि में अधोमुख डाले ॥ अर्थः ॥ हे हृद  
 य शूल तू जल और ओषधी को मत हिंस ॥ धाम्नो धाम्न साम्नी उ  
 ष्णि० वरुण दे०. यदा ह्रुर्ध्या रुणी गायत्र्य नवसाना. सुमित्रियानः  
 यजुः आपो दे०. का० ६. १०. ५. समस्त ऋत्विग्य जमान धाम्न. सु  
 मित्रियान. दोनों मंत्रों से जल का स्पर्श करें ॥ अर्थः ॥ हे राजन् व  
 र्ण जिन-जिन तेरी पाश सहित स्थानो से हम डरे तिन-तिन स्था  
 नों से हम को छुड़ाये। अघ्या गो से कहिते हैं निघं २. ११. परन्तु यहां  
 अनू वन्ध्या लेना बहु वचन बहुतों के अर्थ में और एक अनू वन्ध्या  
 के पक्ष में पूजा के अर्थ है ॥ अघ्या इति यदा ह्रुः. वेद स्मृति लोकों के  
 वाक्य अघ्या (अहंतव्या अर्यान् अवध्या पूजनीया पूजा के योग्य  
 यह कहिते हैं। इस करने से वाक्य का अर्थ अभिनय करि दीखता  
 है ॥ हे वरुण हमने इति शपामहे इस विधि करि अघ्या को हिंसा किया

अर्थ इस हेतु तुम्हें याच्ना करते हैं कि हे वरुण तिस अघ्यावधजात पाप से हमको छुड़ाय ॥ सुमित्रियाः ॥ जल और ओषधी हमारे अर्थ सुमित्रियाः साधु मित्रत्व करि अवस्थित हूजियों। जो शत्रु हमसे द्वेष करें और जिस शत्रु से हम द्वेष करें तिन दोनों प्रकार के शत्रुओं के अर्थ आप और ओषधी दुर्मित्रियाः अमित्रत्व करि अवस्थित हूजियों ॥ का० ६० १०० ६० अथवा धाम्नो धाम्न यह मंत्र शूलोप गूहन मंत्र का शेष और सुमित्रिया यह मंत्र जल के अभिमन्त्रण के अर्थ ॥ पूर्वोक्त सूत्र के साथ इस काविकल्प है और का० ६० १०० ५ का कर्म काण्व शारवा वालों का और यह माध्यन्दिनी शारवा वालों का ॥ २२ ॥ इति भाष्ये तृतीयो नुवाकः ॥ एवमग्नीषोमीयः पशुः समाप्तः ॥

अथ सोमाभिषव युक्तानां वसती वरी संज्ञानाम पां गृहणमभिधीयते अ० ६ हविष्मती रिमाः ॥ हविष्मती रिमा आपो हविष्मा रं ॥ आवि वासति ॥ हविष्मा देवो अर्ध्वरो हविष्मा रं ॥ अस्तु सूर्यः ॥ २३ का० ८० ४० ७-१०० अग्नीषोमीय पशु के वषामार्जन पर्यन्त कर्म किये पीछे विना अस्त हूए सूर्य के वहते हुए जल के एक देश से वसती वरी संज्ञिक सोम के अर्थ हविष्मतीः इस मंत्र करि जल ग्रहण करें। जो रवि अस्त को प्राप्त हुआ और यजमान पुराना सोम याजी तौ घर में ही खो दे हुए मणि का (तडाग) से वसती वरी को ग्रहण करें। और जो यजमान पहिला सोम याजी नहीं तौ समीप में स्थित अन्य सोम याजी के मणि का से ग्रहण करें। अपने और अन्य के यज्ञ कर्त्तृत्व के अभाव में उल्का वा कनक को वहती हुई जल के समीप रख वहती हुई से वसती वरी का ग्र

+ अथामिमंशुः शुभ्रिगान इति ३० ५ १००

† यान० ३.६.२.९. यज्ञवेद्यस्य शिरोऽपि यतोति ॥

हण करै ॥ अनुष्टुप्त्रिङ्गोक्तदेव० ॥ अर्थः ॥ हविकरि संयुक्तयजमान हवि  
संयुक्ता इस जल की वसती वरी की परिचर्या करता है - जब कियत्त का  
शिर छेद हुआ तिसका रस चलकर जल में प्रवेश करता हुआ + इस हेतु  
जल को हविष्मत्व है - तिस कारण द्योतमान अध्वर (याग) भी अपने  
शरीर की निष्पत्तिके अर्थ जल करिके हविष्मान् हो ॥ किंच सूर्य देव  
भी यजमान के फलदान और तृप्तिके अर्थ हविष्मान् होवै । एतस्मै वै गृ-  
ह्णातियः षतपतीति शत० ३.६.२.१२. इस श्रुति से वसती वरी क-  
रि सूर्य का हविष्मत्व है ॥ २३ ॥

अग्नेर्वैः ॥ अग्नेर्वोपन्न गृहस्य सदसि सादयामीन्द्राग्न्यो  
र्भागधेयी स्थमित्रावरुणयोर्भागधेयी स्थ विश्वेषां देवा-  
नाम्भागधेयी स्थ ॥ असूर्याः उपसूर्येयाभिर्वासूर्यः सह ॥  
तानो हि न्वन्त्वध्वरम् ॥ २४ ॥ †

चत्वारि यजूंष्यन्देवत्यानि अग्नेर्वैः आसु-गा० का० ७.६.११. नू-  
तन गार्हपत्य से पश्चिम भाग में तिस वसती वरी का आसादन करै ॥  
अर्थः ॥ हे वसती वरी तुम को शाला द्वारीय अग्नि के निकट स्थान में  
स्थापन करता हूँ ॥ १॥ इन्द्राग्न्योः प्रा-गा० का० ७.६.१०. शाला द्वार्य समी-  
पस्था वसती वरी को ले शाला के दक्षिण द्वार में होकर उत्तर वेदी के दक्षि-  
ण ओणी पर रखे ॥ हे वसती वरी तुम इंद्राग्नी देवताओं का भाग रूपा हो  
॥ २॥ मित्रा० ६.३४. या-त्रि० का० ७.६.२१. २२. पूर्ववत् इन्द्राग्न्यो इस  
मन्त्र अथवा मित्रावरुणयो इस मंत्र से उत्तर वेदी के उत्तर ओणी पर व-  
सती वरी को रखे ॥ हे वसती वरी संज्ञका जल तुम मित्रा वरुण देवताओं

काभागरूपाहौ ॥ ३॥ का० ८. ४. २३. विश्वेषां देवेनां ४ करि उत्तरवेदीकी  
ओणीमेंसे वसती वरी को लेकर आग्नीधीय के पीछे रखे ॥ हे वसती वरी तु  
म सब देवताओं की भागरूपाहो ॥ ४॥ यह अभिनयसे दिखला कर कहता  
है। अमूर्याः ऋक् मेधातिथिदृष्ट्या अदेवत्या पादनुच द्वायत्री। जो प्र  
सिद्ध दृश्यमान वसती वरी नामा जल सूर्य के समीप में स्थित है। विभक्ति  
व्यत्तयः वाशब्दः समुच्चये। और जिस जल सहित सूर्य चलता है सो  
जल हमारे यज्ञ को तृप्त करो ॥ २४॥ इति भाष्ये षष्ठोऽनुवाकः ॥ ६॥  
अ० ७ हृदेत्वा ॥ हृदेत्वा मनसेत्वा दिवेत्वा सूर्यायत्वा ॥ ऊर्ध्वमिममध्व  
रन्दि विदेवेषु होत्राय च ॥ २५॥

सोम देवत्यानुष्ठुप् का० ४. १. ५. आज्य सादन पर्यन्त कर्म करिके सो  
म ले हविर्धान में जाकर सोम को खोलि तिसके आधि को दक्षिण शक  
टके नीचे के चर्म के ऊपर अभिषवण के अर्थ पाषाणों के स्थूल भाग में  
रखे ॥ हे सोम हृदे बुद्धे निश्चयात्मिका अर्थात् यह मेरा ही ऐसी का  
मरूपा के अर्थ तुम्हें उपावहरामि अभिषवण करता हूँ। सद्रूपत्वाविक  
ल्यात्मक मन के अर्थ तुम्हें उपावहरण करता हूँ। द्युलोक की प्राप्ति के  
अर्थ तुम्हें उ-हूँ। सूर्य को आगे दे देवताओं की तृप्ति के अर्थ तुम्हें उ-हूँ ॥  
अथवा यह अर्थ ॥ हे सोम हृदय वद्भ्यः मनुष्यों के अर्थ। मनस्विभ्यः  
पितरों के अर्थ। द्युलोकवासी देवताओं और विशेष करि सूर्य के अर्थ  
त्वा मुपावहरामीति शेषः यह तितिरिमें कहा ॥ सवाः अध्वर्युः सोम  
मुपावहरन्त्सर्वाभ्यो देवताभ्य उपावहरे दिति हृदेत्वेत्याह मनुष्येभ्य  
एवैतेन करोति मनसेत्वेत्याह पितृभ्य एवैतेन करोति दिवेत्वा सूर्याय

त्वेत्याह देवेभ्य एवैतेन करोत्येतावतीर्वै देवता स्ताभ्य एवैन ईसर्वाभ्य  
उपा बहरतीति॥ किंच ऐसै उपा बहरण और अभिषवण किया तू इस  
मेरे यज्ञ को उत्कृष्ट द्युलोक में वर्तमान देवताओं प्रति होत्राः वष  
ङ्कारवादी सातों होताओं प्रति निबद्ध करि ॥ २५ ॥

सोम राजन् ॥ सोम राजन् विष्वास्त्वा म्रजाः उपावरोह वि  
ष्वास्त्वा म्रजाः उपावरोहन्तु ॥ शृणोत्वग्निः समिधा हव  
म्मे शृण्वन्त्वापोधिषणाश्च देवीः ॥ श्रोता ग्रावाणो विदु  
षो न यज्ञं शृणोतु देवः सविता हवम्मे स्वाहा ॥ २६ ॥ †

सोम राजन् सा-उ० सोमदे० किंच । हे सोम राजन् समस्त प्रजा के  
आधिपत्य को करि ॥ विश्वास्त्वायः- त्रि० का० ४० १६० ग्रावाणों के  
ऊपर स्थापित सोम को छोड़ि उपस्थान करै ॥ हे सोम समस्त प्रजा तुम  
प्रत्युत्थान (अभिवादन) आदि करि प्राप्त हो ॥ शृणोत्वग्निः त्रिष्टुभ  
लिंगो दे० का० ४० २४० ३० १० अभूत् इस मंत्र से होत्रा करि शस्यमा  
न अध्वर्यु प्रचरणी संज्ञक सुवासै चारिवार आज्यकोले अति प्र  
णीता में होम करै ॥ अग्निः समित् पूर्वक आहुति कर मेरे आह्वान को  
सुनो जल मेरे आह्वान को सुनियों । और वाक् देवी मेरे आह्वान को  
सुनियों । तृतीय पाद को प्रत्यक्ष करि कहते हैं । हे ग्रावाणो अभिषव  
के अर्थ यहां उपस्थित तुम मेरे आह्वान को सुनो । जैसे विद्वान प्रत्य  
क्ष करि यज्ञ को सुनते हैं तैसें तुम सुनो तथा सविता देव मेरे आह्वा  
न को सुनो स्वाहा सुहुत मस्तु अथवा स्वा वाक् आह् वचन क  
हते हैं ॥ २६ ॥

देवी रापोः॥ देवी रापोऽपान्न पाद्यो वऽऽर्चिर्मर्ह विष्णुऽइन्द्रिया चान्मदिन्तमः॥ तद्देवेभ्यो देवत्रा दत्त शुक्रपेभ्यो येषां  
म्भागस्य स्वाहा॥ २७॥

अब देवत्या पंचपदा पंक्तिः का० ४० ३०० जिस चारि वार लिये आज्यको साथ लिया तिसै जल प्रति जाइ के होमें॥ अर्थ॥ हे आपो देवी तुम्हारा अपानपात् आपत्य रूप जो यह ऊर्मि अर्थात् अप्सद्वात कल्लोल है तिस देवताओं प्रति जाने योग्य ऊर्मि को देवताओं के अर्थ देओ कि जिन देवताओं का भाग रूप हो। कैसे हैं ऊर्मि किं हविष्य तथा इन्द्रियवान् अर्थात् पीते ही इन्द्रियों के वीर्य की वृद्धि करने वाला तथा मदिन्तमः पीने वाले को अत्यन्त हर्ष करने वाला अतिशय तृप्त करने वाला। कैसे देवताओं के अर्थ कि शुक्रपेभ्यः अर्थात् शुक्रादिक सोमग्रहों के पीने वाले अथवा शुक्र (दीप्ति) सोम के पीने वाले। स्वाहा यह आज्य तुम को हुत हो॥ गृहीष्य माण जल के मूल्यत्व करि यह आहुति तितिरिने कही॥ देवी रापोऽपान्न पादित्या हा हुत्या वै निष्क्रीय गृह्णातीति॥ २७॥

कार्षि रसि॥ समुद्रस्य त्वाक्षित्याऽऽर्चयामि॥ समापोऽऽग्नि रग्मत समोषधी भिरोषधीः॥ २८॥

कार्षि रषित्यादि तीनि मंत्रों को मिला करि अनुष्टुभ छन्द पहिले का आज्य दे० का० ४० ३०० जल में होमे आज्य को कार्षि रसि इस मंत्र करि मैत्रावरुण चमस से दूर करे॥ हे आज्य पदार्थ तू कार्षि अण्ड अर्थात् देवता करि भक्षित है अथवा अन्तर्गत शमलापका नेता है। तदाह तितिरिः। कार्षि रसीत्याह शमल में वासामपलावय

तीति ॥ का० ४० ३० ४० समद्रस्यत्वा इस करि मैत्रावरुण चमसंसे  
 तडागादिस्थ जल को ग्रहण करै । द्वे यजुषि आपे । आपो वै समुद्र  
 शत० ३० ४० ३० २० ॥ वसती वरी लक्षण जल को अपक्षीणत्व के अ  
 र्थ हे जल तुम को ग्रहण करता हूं ॥ वसती वरी की वृद्ध के अर्थ इस  
 जल को ग्रहण करते हैं ॥ का० ४० ३० १२० समाप इस करि जलाशय से  
 लोटि चात्वाल के ऊपर मैत्रावरुण चमसस्य जल को वसती वरी में  
 संयोजन करै ॥ मैत्रावरुण चमसस्य जल अद्भिः वसती वरी में मिलो ।  
 तथा मुद्गम सूर्य दिक ओषधी ब्रीहि यवादिक ओषधियों में संग छ  
 ताम् मिलो । जल को कारण होने से ओषधियों को भी योग हो ॥ २८ ॥

यमग्ने ॥ पृत्सु मर्त्यमवा बाजेषु यं जुनाः ॥ सयन्ता शश्वती  
 रिषः स्वाहा ॥ २९ ॥

आग्नेयी गायत्री मधुच्छन्दो हृष्टा का० ४० ३० १६० अग्निष्टोम संस्थक्रतू  
 में प्रचरणी पात्र लिप्त आज्य शेष को होम करै शेष आज्य की हो  
 म पर्याप्त के अभाव में चारिवार लिये आज्य को लेकर होम इति  
 सूत्रार्थ है अग्ने संग्राम में जिस मनुष्य को तू रक्षा करै किंच हवि  
 र्लक्षण अन्न में अन्न के निमित्त जिस पुरुष को तू प्राप्त हो अर्थात्  
 ग्रहण करि के जिसके पास पहुंचे । सो मनुष्य तेरे अनुग्रह से नित्य नि  
 त्य अन्न धन को प्राप्त होगा स्वाहा सुद्धतमस्तु ॥ उक्थमे स्थित यम  
 ग्ने इस मंत्र से पहले परिधिका स्पर्श करै षोडशी में रगरी का अ  
 तिरात्रि में छद्दी का स्पर्श करै अन्य कर्म विषे हविर्द्दीन में प्रवे  
 श करै ॥ २९ ॥ इति गिरिधरभाष्ये सप्तमोऽनुवाकः ॥ १० ॥

अ० ८ देवस्यत्वा ॥ सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्वाहुभ्याम्यूधो हस्ताभ्याम्  
आददे एवा सिगभीरमिममध्वरुधीन्द्राग्रसुषूतमम् ॥  
उत्तमेन पविनोर्जिस्वन्तम्मधुमन्तम्ययस्वन्तन्निग्राभ्या  
स्थदेवश्रुतस्तर्प्ययतमामनोमे ॥ ३० ॥ †

देवस्यत्वा प्रा०-ह० आददे० यंजुः गवादे० का० ४० ४० ५० ६० सोमके  
अभिषव के हेतु पाषाण को ग्रहण करिके हिंकार से पहिले मीन हो  
नेसे तिस पाषाण की उपांशु सवन संज्ञा है उपांशु ग्रह के अर्थ जिन  
हों से सोमका सवन कर्ते हैं ॥ अर्थः ॥ देवस्यत्वा व्याख्याता अ० १ का०  
४ ॥ हे अभिषवसाधन पाषाण तू आहुति और दक्षिणा का दाता है  
तिस हेतु इस मेरे याग को महान्त करिः तुरु उक्त वज्र सदृश से मैं  
सोम से ऐसा करूँ कैसा कि इन्द्र के लिये अति शय करि अच्छा अ  
भिषुत तयार सवन्त मधुमन्त पयः स्वादु करि युक्त अर्थात् ऐसे  
सोम को तुरु से मैं करूँ निग्राभ्यो यजुः आपो दे० का० ४० ४० ९० अभिष  
वन कर्ते सोम के सेवनीय जल को निग्राभ्या कहते हैं तिस के गृह  
ण कर्ते अध्वर्यु पढ़े अथवा यजमान निग्राभ्या को अपने उर से आल  
म्भन करि मंत्र को पढ़े अर्थः ॥ हे जल तुम हम लोगों करि निरन्तर ग  
हण करने योग्य हो जिस हेतु इन्द्र के उरु करि तुम गृहण किये तिस  
हेतु निग्राभ्य हो देवश्रुतः देवताओं में प्रख्यात तिस हेतु बहुत मान  
और नाम युक्त तुम मुरु से प्रीति करो ॥ ३० ॥

मनो मे ॥ तर्प्ययत वाचं मे तर्प्ययत प्राणं मे तर्प्ययत चक्षुर्मे  
तर्प्ययत श्रोत्रं मे तर्प्ययत आत्मानं मे तर्प्ययत प्रजाम् मे तर्प्य



यत पशून्मे तर्प्ययत गुणान्मे तर्प्ययत गुणा मे मा वितृषन् ॥ ३१ ॥  
 यजुः ऐसे समास से कहकर व्यास से कहते हैं मेरे मनः वाचं प्राणं च  
 क्षुः श्रोत्रं तर्प्ययत अर्थात् मेरी मन से आदिले इन्द्रियों से प्रीतिकरो।  
 ऐसे विस्तार पूर्वक कहिकर फिर संक्षेप से कहते हैं आत्मा (शरीर) प्रजा  
 (पुत्रादिसंपत्ति) पशु (गवादिक) और गुण (मनुष्यों) से प्रीति करो मेरे म  
 नुष्य समूह मावितृषन् सुभ्रकरि हव्यदान से पूरित हुए भी विगत तृ  
 षणा मत हूँ जियों अर्थात् मैं अनुरक्त गुण होंऊँ यह यजमान आ  
 शीष चाहता है ॥ ३१ ॥

इन्द्रायत्वा ॥ इन्द्रायत्वा वसुमते रुद्रवत इन्द्रायत्वा दित्यवत  
 इन्द्रायत्वाभिमातिघ्ने ॥ श्येनायत्वा सोमभृते ग्नयेत्वा श  
 यस्योषदे ॥ ३२ ॥ ते। अ० इ-ते। इ० इ-घ्ने। उ० श्ये-ते। ऋ० अ-दे। ल०।

पंचयजूंषि सौम्यानि १ सा-गा-२ ३ ४ प्रा-गा-५ या-चु-का-  
 ६ ७ ८ उपशुसवन पूर्वोक्त पाषाण को अधिषवण चर्म पेरखि  
 कर तिसके ऊपर पांच मंत्रों से पांचवार अभिषोत व्यसोम की पां  
 च मुष्टि डाले ॥ अर्थः ॥ तत्राद्यं हे सोम इन्द्र के अर्थ तुम्हें मानकर्ता हूँ  
 इति शेषः ॥ कैसे इन्द्र के अर्थ कि वसुमते वसुसंज्ञक प्रातःसवन  
 देवता युक्त के अर्थ रुद्रवते रुद्रनामक माध्यंदिन सवन देवता युक्त  
 के अर्थ अथ द्वितीय आदित्य नामक तृतीय सवन देवता युक्त इ  
 न्द्र के अर्थ हे सोम तुम्हें मानकर्ता हूँ अथ तृतीयांश तू ओं के मारन  
 वाले इन्द्र के अर्थ हे सोम तुम्हें मानकर्ता हूँ अथ चतुर्थी सोम के  
 लाने वाली श्येन पक्षी रूपा गायत्री के अर्थ हे सोम तुम्हें मानकर्ता हूँ

अथ पंचमं। धनके देने वाले अग्निके अर्थ हे सोम तुम्हें मान कर्ता हूँ ॥३२॥

यत्ते ॥ सोमदिवि ज्योतिर्यत्पृथिव्या यदु एवन्तरिक्षे ॥ ते

नास्मै यजमाना योरुरा ये कथ्यधिरात्रे वीचः ॥३३॥

सोम देवत्या विपरीता ब्रह्मती का ० ४० ४० ४० पांचवार प्रक्षेपन किये सोम का स्पर्श करे ॥ इस मंत्र का निदान श्रुति में कहा शत ० ३० ४० १२० जब कि सोम देवताओं का हविर्हूआ तब अपने तीनों शरीर इन लोकों में धारण करता हुआ। तिन शरीरों की इस मंत्र से प्राप्त करते हैं ॥ अर्थः ॥ हे सोम तु लोक में तेरा जो तेज और जो पृथिवी में तेज अंतरिक्ष में जो तेज शरीर लक्षणतिस तेज से इस यजमान के यज्ञ में बड़ा अपने शरीर को करि और ऋत्विजों के दक्षिणा की प्राप्ति के अर्थ बड़ा शरीर को करि किंच यजमान के अर्थ बड़े शरीर से मे आया यह कह अथवा इस मंत्र का अर्थ दूसरा है। हे सोम तीनों लोकों में जो तेरी ज्योति है तिस ज्योति से इस यजमान के अर्थ धन की समृद्धि से स्थान को करि किंच फल के देने वाले इन्द्र के अर्थ यह कह कि जो अधिक यह यजमान हो ॥३३॥

आत्रास्य ॥ बृत्र तुरे राधो गूर्तो अमृतस्य पत्नीः ॥ ता देवी

है वने मं यज्ञ न्यतो पृहताः सोमस्य पिवत ॥३४॥

पत्न्या ब्रह्मती हो अक्षरवर्ती का ० ४० ४० १२० सोम के ऊपर होत्रचमस करि के निग्राभ्या का आसिंचन करे ॥ हे जल तुम कैसी हो कैसी कि क्षिप्र कार्य करने वाली धन की देने वाली। अमृत सोम की पत्नी पालने वाली। हे देवी दीप्यमान तैसी तुम इस यज्ञ को देवताओं प्रति प्राप्त क

रौ आज्ञा पाकें तुम सोम को पीओ ॥३४॥

मामेः ॥ माभे म्मा सं विव्याञ्ज न्धत्स्वधिषणे वीड्रीसती  
वीडयेथा मूर्ज्जन्धायाम् ॥ पाप्मा हुतो न सोमः ॥३५॥

यजुः अर्द्धं सौम्य मर्द्धं द्यावा पृथिव्यं का० ४०४०१५० उपांशु सवन के  
पाषाण से सोम को पीसे ॥ हे सोम तुम मति डरे मति कापो जो कि देवता  
ओं की तृप्तिके अर्थ में तुम्हे अभिषवण कर्ता हूं इस हेतु रस को स्थाप  
न करो ॥ ऐसे सोम को संवेधन देकर द्यावा पृथिवी से कहें । हे धिषणे हे द्या  
वा पृथिवी ओ हमारे पाषाण करि उद्यत होने से तुम हट होते अपने को  
हट करे । किंच इस सोम मे रस को स्थापन करे । इस वज्र संस्तुत पाषाण  
से यजमान का पाप मार कुछ सोम न ही मार ॥३५॥

प्रागपाक् ॥ प्रागपा गुदं गधं रक्त्सर्वतस्त्वादिशः आधावन्तु ॥

अम्वनिष्परसमूरीर्विदाम् ॥३६॥

सोम देवयोषिणक् का० ४०४०२० प्रतिप्रहार वर्ग में होत्र चमस के वीच  
सोम के अंशुओं को रविके प्रागपाक् इन निग्राभ संज्ञ क दो ऋचाओं  
को यजमान प्रतिपदे ॥ अर्थः ॥ सोम दिशाओं से मिथुन की दृच्छा क  
र्ता हुआ और तिसको देवताओं ने संपादन किया तब ये ऋचा कहीं ॥ हे  
सोम प्राक् प्रागञ्चना अपाक् अपागञ्चना अर्थात् दक्षिण और पश्चि  
म की उदक् उदगञ्चना उत्तर की अधरक् अधराञ्चना ऐसे प्रागादि  
क सब दिशारें अपने अपने प्रदेश से तुम्हें प्राप्त हों क्या कहिकें तुम्हें प्राप्त  
हों सो कहिते हैं हे अंब हे मात निष्पर अपने भाग से सोम को पूर्ण करि  
किस प्रयोजन को कि हमारे सोम समागम को अनेक दिशाओं के वासी

जनजाने ॥ ३६ ॥

त्वमङ्ग प्रशठं सिषो देवः शविष्टु मर्त्यम् ॥ नत्वदुन्यो मयव  
नस्ति मर्द्धितं नृवर्षी मितेव च ॥ ३७ ॥ इति सं० सप्त० वाकः ॥  
इति श्री शुक्लयजुषि माध्यन्दिनी शास्त्री यायां वाजसनेयसठं  
हितायां दीर्घ पाठे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इन्द्र देवत्या पत्न्या रुहती गोतम दृष्टा ॥ हे अति शय करि बलवान् इन्द्र  
दीप्यमान तू मनुष्य यजमान की प्रशंसा करि अर्थात् यह यजमान  
समीचीन, होता-श्रद्धावान् इत्यादिक स्तुति करि किंच हे धनवान् इन्द्र  
यजमान का सुख करने वाला तू मुझे अन्य नहीं है इस हेतु हे इन्द्र तू ही  
सुख करि ऐसे तेरे वचन को हम कहते हैं ॥ ३७ ॥ गिरिप्रसाद सर्व स्ने  
सप्तमोऽनुवाकः ॥ ७ ॥

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्द निवारयन्

पुमार्थाश्चतुरो देयाद्यज्ञपुरुषः सनातनः १

श्रीमच्छुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनी शाध्येतु व्याघ्रपादान्वयवि  
श्वामित्रपुराधिपति श्रीमज्जय किशोर देव वर्मा ज रौक्मिणो यनृ  
पति गिरि प्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थ प्रदीपे गिरिधरभाष्ये अस्या  
दानाद्वाचनान्तः षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

हरिः ओम्

ओं नमो यज्ञ पुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्वैद्विरूपकम्

स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपपरं स्तुमः १

अ० १ वाचस्पतये ॥ वाचस्पतये पवस्व ब्रूषणोऽर्धं शुभ्याङ्गं  
भस्तिपूतः ॥ देवो देवेभ्यः पवस्व येषां भ्रा गोसि ॥ १ ॥

ओं नमो याज्ञवल्क्याय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके

उपांश्चादिप्रदानान्तः सप्तमोऽध्यायवर्णितः १

छठवें अध्यायमें यूपसंस्कार सै आदिले सोमाभिषवतकमंत्रकहे  
सातवें में ग्रहग्रहणके मंत्रकहते हैं। का० ४० २३ वाचस्पतये देवो देवे  
भ्यः मधुमती तीन्यों मंत्रों सै प्रतीक पूर्वक एक एक मंत्र सै उपांशु गृ  
हको एक एक बार गृहण करै उपयामगृहीतोसि यह तीन्यों मंत्रों की आदि  
में योजे। प्राण देवत्या नष्टरूपानुष्टुविराट् छन्दः पूर्वोत्तरार्धयोर्दशैर्न  
ष्टरूपेति लक्षणानुष्टरूप्या विराट् प्रथम द्वितीय ग्रहणे क्रमेण विनि  
योगः। हे सोम तू प्राणके अर्थ जा प्राणों वै वाचस्पति शत० ४० १० २०  
अथवा पतये पालक देवताके अर्थ वाचा वा वाचस्संवंधी मंत्र सै पव  
स्व शुद्ध हो। कैसा है तू कि वृष्णा वरसनेवाली अपने संवंधी अंशुओं  
के अर्थ कारण यह तिसकू तहां डालते हैं। तथा गभस्ति पूतः पाणी  
वै गभस्ती शत० ४० १० २० और अध्वर्यु के हाथों करि पूत है ॥ द्वि  
तीयं गृह्णाति ॥ हे सोम देव है इस हेतु देवताओं के अर्थ प्रवृत्तिकरि

क्योंकि नहीं बिना देवता के देवताओं की तृप्ति करने को समर्थ होता  
किन देवताओं के अर्थ कि जिन देवताओं का तू भाग है तिन्हों के प्रति  
जा ॥ १॥

मधुमतीर्त्तः ॥ मधुमतीर्त्तः इषस्कृधियन्ते सोमादाभ्यन्ना  
मजा गृवितस्मै ते सोम सोमाय स्वाहा स्वाहोर्ध्वन्तरिक्षमन्वे  
मि स्वाङ्कुतोसि ॥ २॥ म-धि। अ० य-हा। इ० स्वाहा। उ० उ-मि। ऋ० २॥

तृतीयं गृह्णाति मधुमती-या-ह-लिंगोक्तदे० ॥ हे सोम तू हमारे लिये  
अन्न को मधुर रसोपेत करि का० ४०४२० यन्ते-सोम्यं यजुः स्वीका  
र किये अंशुओं को सोम में स्थापन करे ॥ हे सोम तेरा अदाभ्यं हिंसारहि  
त जा गृवि जागरणशील जो नाम है सो हे सोम तिस नाम सहित तुम्हें सोम  
के अर्थ स्वाहा दत्त मस्तु का० ४०४३४ स्वाहा० उरु हे यजुषिलिङ्गोक्ते  
स्वाहा ये हो अक्षर कहि कर निकलें। उरु० विस्तीर्णो अन्तरिक्षको अ  
नुसरण करि जाता हूँ ॥ २॥

स्वाङ्कुतोसि बिभ्वेभ्यः इन्द्रियेभ्यो देवेभ्यः पार्थिवेभ्यो म  
नस्त्वाष्टु स्वाहा त्वासु भव सूर्याय देवेभ्यस्त्वामरीचिपेभ्यो  
देवांश्च शोयस्मे त्वेदेतत्सत्यमुपरि प्रुता भङ्गेन हतो सो फट  
प्राणायत्वा व्यानायत्वा ॥ ३॥ †

का० ४०४३० उपांशु ग्रहका होम किये पीछे पात्रका मार्जन करे उपां  
शु ग्रह देवतं यजुः प्राणो वा अर्येष ग्रहः स स्वयमेव क्रतः स्वयं जातः श  
त० ४०११२२ प्राण को उपांशु ग्रह कहते हैं ॥ हे प्राण रूप उपांशु ग्रह तू  
स्वाङ्कुत अपने आप किया अपने आप उत्तपन्न है कि न्होंसे किस वंश

योंसे और देवताओंसे और पृथिवी के द्विपद चतुष्पदोंसे अपने आप  
 उत्पन्न है जो तू ऐसा स्वतंत्र तिस तुरको मनः प्रजापति अष्टु, व्याप्त  
 हूजियो। प्रजापतिर्वे मनः प्रजापतिष्ठा श्रुतामिति शत० ४०१०२२। शो  
 भन है उत्पन्न जिसकी ऐसे हे सुभव अर्थात् हे उत्तम जन्मन् ग्रह सूर्य के  
 अर्थ तुम्हें स्वाहा कार करि होम कर्ता हूँ॥ अथवा इस होम मंत्र का यह अर्थ  
 है॥ हे प्राण रूप ग्रह तू स्वाङ्कृतोसि अर्थात् मुझकरिके स्वीकार किया गया  
 है कि सलिये कि दिव्येभ्यः देवताओं के जन्म में स्थित हैं तिन्हें के अर्थ पा  
 र्थिवेभ्यः मनुष्य जन्म में स्थित हैं तिन्हें के अर्थ सर्वेभ्यः इन्द्रियेभ्यः अ  
 र्थात् इन्द्रियों के हित के अर्थ। और तिन इन्द्रियों का अधीश मन तुम्हें  
 प्राप्त हो हे सुभव प्राण रूप उपांशु ग्रह तैसे तुरको वहिः प्राण रूप सूर्य  
 के अर्थ स्वाहा कार करि के होम कर्ता हूँ। सूर्य का वहिः प्राणत्व अथर्व  
 ण की श्रुति में लिखा है आदित्यो ह वै वास्यः प्राण उदय त्वेष हो नंचाक्षु  
 षं प्राण मनु गृह्णीत इति॥ स्वाङ्कृत शब्द से प्राण रूप ग्रह का स्वाधीन  
 त्व और दिव्य पार्थिव शब्द से जन्म द्वय विवक्षित तिन्निरिने कहा। स्वा  
 ङ्कृतोऽसी त्याह प्राण मेव समकृत विश्वेभ्य इन्द्रियेभ्यः दिव्येभ्यः पार्थि  
 वेभ्य इत्याहो भयेष्वेव देव मनुष्येषु प्राणान् दधातीति॥ का० ४०४३८०  
 पश्चिम स्थ परिधि मे सोम लिप्त ऊर्ध्वाभि मुख हाथ को करिके प्रागभिमुख  
 जैसे तैसे मार्जन करै देवेभ्य स्त्वाया - वृ० देवं॥ हे लेप मरीचियेभ्यः मरीचि  
 पालक देवताओं के अर्थ तुरपरिधिका मार्जन कर्ता हूँ इति शेषः॥ का०  
 ४०४३९० वस्त्रादिक भे ग्लिष्ट जो सौ मांशु तैसे अभिचार के अर्थ  
 होमे॥ देवाथं शोलिङ्गोक्त (सोमाथंशु) देवतं अभिचारिकं यजुः॥ हे दे

व दीप्यमान हे अंशो सोमांशो जिसके वधके अर्थ तुम्हें प्रार्थना कर्त्ता हूँ सो वधकर्म सत्यहजियो इति शेषः तिस उपरि प्रत् ऊपर आनेवाले भंगेन अमर्दसै असो। उपायुधनामावैरी हतः माराहुआ फट। विशीर्ण हो। फलतीति फट उलयो रेक्यं स्वाहा कार के स्थापन पै अभि चार कर्म में फट का योजन कर्त्ते हैं। का. ०. ४. ४१. जिस प्रदेश में पहिले उपांशु पात्र को स्थापन किया तहां ही स्थापन करे प्राणाय त्वेति दें- वृ० ग्रह दे०॥ हे उपांशु पात्र प्राण देवता के सन्तोषार्थ तुम्हें आसादन कर्त्ता हूँ इति शेषः॥ का. ०. ४. ४२. जिस पाषाण से सोम पीसा सो उपांशु सवन तिस को हाथ से धो करि उपांशु पात्र के संलग्न स्थाप करे व्यानाय त्वेति दें- वृ० उपांशु सवन दे०॥ हे उपांशु सवन व्यान देवता की प्रीतिके अर्थ तुम्हें आसादन कर्त्ता हूँ॥ इति प्रथमोऽनुवाकः॥ १॥

अ. २ उपयाम गृहीतोसि॥ उपयाम गृहीतोऽपर्यन्त छमघवन्याहि सोमम्॥ उरुष्यरायः राषो यजस्व॥ ४॥

उपयाम गृहीतोऽपर्यन्तरेन्द्रम् प्रा- वि. का. ०. ४. १. सूर्योदय के अनन्तर में अन्तर्यामि ग्रह को ग्रहण करे॥ अर्थः॥ उपयाम गृहीतः उपयाम करनेवाला ग्रह तिस करिकें ग्रहण कर्त्ते हैं सो उपयाम गृहीतः॥ हे सोम रस तू तैसा है। हे मघवन धनवान् इन्द्र तू तैसे रस को अन्तर्ग्रह पात्र के बीच में ग्रहण करि। अथवा शत्रु से अन्तर्धान व्यनधान जैसे हो तैसे नियमय परिवेष्टन करि अर्थात् तैसे सोम को पालन करि तथा रायः धनवा पशुओं को रक्षा करि। इषः अन्नवा प्रजा को सब ओड़ी सै दे॥ ४॥

यह केरीय हो पर यजमान अग्नि प्रदीप को तिस में नुसग मभी अग्नितामह का वेरी पाश्चात्त का उपायुधना



अन्तस्ते ॥ अन्तस्ते द्यावा पृथिवी दधा म्यन्तर्हृदाम्युर्वन्तरिक्ष  
म् ॥ सज्जुह्वेवेभिरवरेः परैश्चान्तर्यामि मघवन्मादयस्व ॥ ५ ॥  
मघव देवत्या-त्रिष्टप् अन्तर्यामः ग्रहण एव विनियोगः ॥ हे मघव  
न तेरे अनुग्रह से द्यावा पृथिवी व्यवधायक कर्ता हूं अथवा हे अन्तर्या  
म प्राण रूप अविनश्वर तेरे भीतर शरीर के बीच मे द्यावा पृथिवी को स्था  
पन कर्ता हूं किंच विस्तीर्ण अन्तरिक्ष को द्यावा पृथिवी के बीच में स्थाप  
न कर्ता हूं । हे मघवन् धनवान् इन्द्र पृथिवी स्थान के देवताओं और द्यु  
स्थान के देवताओं से समान प्रीति युक्त होकर अन्तर्याम ग्रह से आत्मा  
(अपने) को मादयस्व-हर्षित वा तृप्तिकरि ॥ ५ ॥

स्वाङ्गुतोसि ॥ विश्वेभ्यः इन्द्रियेभ्यो दिद्येभ्यः पार्थिवेभ्यो  
मनेस्त्वाष्टु स्वाहा त्वा सुभव सूर्याय देवेभ्यस्त्वामरीचिपेभ्यः  
उदानाय त्वा ॥ ६ ॥ सा-या-अ० दे-भ्यः । इ० उ-त्वा । उ० ।

का० ६० ६२ वरवरण और दान हुत शेष का आज्य स्थाली में आसेच  
न इन सब पदार्थों की छोड़ि सब उपांशु ग्रहवत् होता है ॥ स्वाङ्गतः इस  
निः शेष का होम करिके ॥ व्याखातो यजुः काण्डी ३ ॥ का० ६० ६३ ४०  
देवेभ्यस्त्वा-इस मंत्र से प्रथम परिधिको अथो मुख हाथ करि पश्चिमा  
भिमुख मार्जन करे ॥ पाठ-व्याख्या ता काण्डी ३ ॥ का० ६० ६५ उदानाय  
त्वा इससे पात्र का आसादन करे ॥ दे-पं-ग्रह दे० हे ग्रह उदान के सं  
तोषार्थ तुम्हें सादन कर्ता हूं ॥ ६ ॥

अ० ३ आवायो ॥ भूष शुचिपाः उपनः सहस्रं ते नियुतो विश्ववार ॥ उ  
पौतेः अन्यो मद्यमयामि यस्य देवदधिषे पूर्वपेयम्वायवेत्वा ॥ ७ ॥

का० ४० ६५० सूर्योदयमें ऐन्द्रवायव ग्रहको ग्रहण करै ॥ वायुदेवत्या  
त्रिष्टुप् वसिष्ठ दृष्टा वायवेत्वेति यजुर्न्ता ॥ हे वायो हे शुचिया शुचि प  
वित्र प्रथम वषट् किया और देवताओं करि अप्राप्त ऐसे सोम का पीने  
वाला शुचिया अर्थात् पवित्र सोम पानः । तू हमारे समीपमें आजा  
किस प्रकार करिकें हमारे आसों कहते हैं कि सबमें व्याप्त वा सबजिस  
की प्रार्थना करते हैं सो विश्ववार अर्थात् सर्व व्यापक तेरे सहस्र असंख्या  
त बाहनभूत नियुत मृग हैं तिन्होसे आ + किंच मद्यमदनीय नृषिज  
नक अंध सोमलक्षण अन्न तेरे समीपमें लाता हूँ अर्थात् सोम तुम्हें  
समर्पण कर्ता हूँ । हे देव दीप्यमान वायो जिस सोम का पूर्वपेय प्रथम व  
षट्कारलक्षण पूर्वपान को तू धारण कर्ता है ॥ ऐसे वायु को प्रार्थना क  
रि सोम प्रतिकहता है । हे सोम रस वायु देवता के अर्थ तुम्हें ग्रहण कर्ता हूँ  
इति शेषः ॥ ७ ॥

इन्द्रवायू इमे ॥ सुता उपप्रयो भिरागतम् ॥ इन्द्रो वा मुशन्ति  
हि ॥ उपयाम गृहीतो सिवायव इन्द्रवायुभ्यां त्वेष ते योनिः  
सजोषोभ्यां त्वा ॥ ८ ॥ इ-हि अ-उ-त्वा इ-ग-निः उ-म-त्वा ॥ ८ ॥

का० ४० ६६० एकवार आधे को ले पृथक् करि फिरि इन्द्रवायू ग्रहको  
ग्रहण करै ॥ ऐन्द्र वायवी गायत्री मधुच्छन्दो दृष्टा उपयामेति यजुः स  
हितो मंत्रः ॥ हे इन्द्र वायू तुम्हारे अर्थ यह सोम अभिषवण किया इस  
प्रयः सोम रसरूप अन्न के निमित्त समीपमें तुम आओ अथवा प्रय  
ज्ञिः शीघ्र अश्व करि आओ जो कि सोम की तुम चाह कर्ते हो । तिस  
हेतु आओ इत्यर्थः ॥ सोम से कहते हैं । हे सोम रस तू पात्र करिकें ग्रह

निघं १०१५  
अर्थ वायु को बाहन मृग नियुत का अर्थ वायु को अन्ध अन्ध सोमलक्षण अन्न तेरे समीपमें लाता हूँ अर्थात् सोम तुम्हें समर्पण कर्ता हूँ । हे देव दीप्यमान वायो जिस सोम का पूर्वपेय प्रथम वषट्कारलक्षण पूर्वपान को तू धारण कर्ता है ॥ ऐसे वायु को प्रार्थना करि सोम प्रतिकहता है । हे सोम रस वायु देवता के अर्थ तुम्हें ग्रहण कर्ता हूँ इति शेषः ॥ ७ ॥  
+ सहस्र शब्द का अर्थ अमर्याद अमर्याद नियुत का अर्थ वायु को बाहन मृग नियुत का अर्थ वायु को अन्ध अन्ध सोमलक्षण अन्न तेरे समीपमें लाता हूँ अर्थात् सोम तुम्हें समर्पण कर्ता हूँ । हे देव दीप्यमान वायो जिस सोम का पूर्वपेय प्रथम वषट्कारलक्षण पूर्वपान को तू धारण कर्ता है ॥ ऐसे वायु को प्रार्थना करि सोम प्रतिकहता है । हे सोम रस वायु देवता के अर्थ तुम्हें ग्रहण कर्ता हूँ इति शेषः ॥ ७ ॥

राकिया है वायु देवता के अर्थ और इन्द्र वायु देवता के अर्थ तुम्हें ग्रहण  
कर्त्ता हूँ इति शेषः का० ४. ५. २५. दशा पवित्र करि ग्रहण किये ग्रह को  
मार्जन करि पात्र से बाहिर निकले सोम को मार्जन करिके एषते यो  
निः इस मंत्र से ग्रह का सादन करे वीप्सा सर्व ग्रहार्थ इति सूत्रार्थः ॥  
एषते योनिः सयोषोभ्यां त्वा० मिल करिया—पं॥ हे पात्र यह खर का  
एक देश तेरा स्थान है इस हेतु यहां समान प्रीति युक्त इन्द्र वायु के  
अर्थ तुम्हें सादन कर्त्ता हूँ इति शेषः ॥ ७ ॥

अ० ४ अयम्वा० ॥ अयम्वा० मित्रावरुण सुतः सोमः ऋता बृधा ॥  
ममेदिह श्रुतं हवाम् ॥ उपयाम गृहीतो सिमित्रावरुणभ्या  
न्त्वा ॥ ४ ॥ अ-मा० अ० ४-त्वा० ॥ ४ ॥

का० ४. ६. ७. मैत्रावरुण ग्रह को ग्रहण करे मित्रावरुण देवत्या गाय  
त्री गृत्समं दृष्ट्वा उपयामेति आसुरी गायत्री ॥ हे मित्रावरुण हे ऋत  
यज्ञ वासत्य के बटाने वाले तुम्हारे लिये यह सोम अभिषवण किया  
तिस हेतु इस यज्ञ में मेरे इस आन्धान को सुनो । हे सोम रस तू उपया  
म, मैत्रावरुण यह पात्र करि गृहीत है । मित्रावरुण के अर्थ तुम्हें ग्र  
हण कर्त्ता हूँ इति शेषः ॥ ४ ॥

गयावयम् ॥ गयावयं ससवाश्च सोमदे महव्ये न देवाय व  
से न गावः ॥ तान्धनुमि मित्रावरुण युवन्तो विश्वा हा धत्त  
मनपस्फुरन्ती मे षते योनिः ऋता ता युभ्यान्त्वा ॥ १० ॥

का० ४. ६. ८. मैत्रावरुण पात्र में दो कुशार खिके सोम रस को लोकि  
क दुग्ध से श्रुत करे ॥ मित्रावरुण देवत्या त्रिष्टुप् वसदस्यु दृष्ट्वा मंत्र दृ

कामदुष्टां प्रार्थयते । जिस धेनु के घर में होंने से हम धन करिके सम्पन्न होकर हर्षित हों । कैसे कि हव्येन देवा जैसे हविकरि के देवता हर्षित होते हैं और यवसेन गावः घास करिके गो हर्षित होती हैं हे मित्रावरुण तुम तिस धेनु को हमारे लिये सर्वदा देओ कैसी धेनु को कि अनपस्फुरन्ती दूसरे पुरुष प्रतिनजाने वाली अर्थात् अनन्य गामिनी देओ ॥ एषत इति या-पं पात्रका सादन करे । हे ग्रहा यह तेरा स्थान यहां ऋतायुभ्यां अर्थात् मित्रावरुण के अर्थ तुम्हें सादन कर्त्ता हूं । ब्रह्म वा ऋतं ब्रह्म हि मित्रो ब्रह्मो ह्यृतं वरुण एवायुरिति शत० ४१४० १० ऋतशब्दसे मित्र आयुशब्दसे वरुण यह श्रुति के अनुसार कहा ॥ और पद कारने ऋतायुभ्यां पद किया तिस करिके ऋत सत्य वा यज्ञ की इच्छा करने वाले मित्रावरुण के अर्थ । यह अर्थ पद के अनुसार है ॥ १० ॥

अ० ५ यावाम् ॥ यावां कशामधुमत्यश्विनासूनुतावती ॥ तथा यज्ञमिमिक्षतम् ॥ उपयामगृहीतो स्पश्विभ्यान्त्वेषते योनिर्माध्वीभ्यान्त्वा ॥ ११ ॥ या-मा अ० उ-त्वा इ० रा-त्वा उ० ११

अथवा यजमान के अन्वारंभ करि आश्विन ग्रह को गृहण करे ॥ आश्विनी गायत्री मेधातिथि दृष्टा उपयामेति या-त्रि सहितो मंत्रः । हे अश्विना जो तुम्हारी कशा वाणी कैसी कि मधुमती मधु ब्रह्मतिस युक्त अर्थात् मधुब्राह्मणोपनिषत्प्रशंसा युक्ता तथा सूनुतावती सत्य प्रिय वचनोपेता । हे अश्विनो इस वाणी को हमारे यज्ञमें निष्पादन करे ॥ हे ग्रह तू पात्र करिके ग्रहीत है अश्विनी कुमारों

के अर्थ तुम्हें ग्रहण कर्त्ता हूँ ॥ इति शेषः ॥ एष ते या-वृ-पात्रकासादन  
करे ॥ हे ग्रह यह तेरा स्थान माध्वीभ्यां-मधुब्राह्मण के अध्येन करने  
वाले अश्विनीकुमारों के अर्थ तुम्हें सादन कर्त्ता हूँ ॥ इति शेषः ॥ दध्यङ् ह  
वाः आभ्यामाथर्वणौ मधुनाम ब्राह्मणमुवाचेति शत० ४०१५१८ ॥ ११ ॥  
अ० ६ तस्य त्वया ॥ पूर्वथा विश्वथे मया ज्येष्ठतातिस्वर्हिषदं  
स्वर्विदम् ॥ प्रतीचीनं मृज नन्दो हसे धुनिमा शुञ्जयन्त मनु  
या सुबर्द्धसे ॥ उपयाम गृहीतोसि शंडाय त्वेष ते योनिर्वीर  
ताम्या ह्यपमृष्टः शब्दो देवास्त्वां शुक्रपाः प्रणयन्त्वानां धृ  
ष्टासि ॥ १२ ॥ †

का० ४०६ १०० विल्वपात्रवावैकङ्कत पात्र करि शुक्र ग्रह को ग्रहण क  
रे ॥ अवत्सारः काश्यपो वैश्वदेवी जगती । द्वादर्णचतुः पादा जगती  
उपयामेति या-ज० युक्तो मन्त्रः ॥ हे इन्द्र जिन यज्ञ क्रियाओं में अनु  
वर्धसे-वार-वार सोम पान करि वृद्धि को प्राप्त होता है । तिन यज्ञ क्रि  
याओं में बल वयज्ञ फल को यजमान के अर्थ देता है । कैसे देता है तहां  
दृष्टान्त कहते हैं । प्रत्नथा-प्रत्न शब्दः पुराणवाची निधं० ३०२० पुराणे  
मृगवादिकों को जैसे फल देता है । पूर्वथा-पहिले ऋषी अर्थात् साध्यों  
को जैसे । विश्वथा-समस्त ऋषि पुत्रों को जैसे । इमथा-इस समय के य  
जमानों को इस फल को देता है तैसे तुरूको स्तुति करते हैं । कैसे तुरूको  
कि ज्येष्ठताति-बड़े विस्तार वाले वावडों में प्रशस्त तथा वर्हिषदं-य  
ज्ञ में वर्हि ओं पे बैठने वाले तिस को । स्वर्विदं-द्यू लोक के जानने वाले ति  
स को-तहां ही तिस का निवास है प्रतीचीनं-आत्मा से अभिमुख-शत्रु

ओं के कपाने वाले शीघ्रही वस्तुओं के जीतने वाले ॥ यद्वास्या ऋचो र्थीत  
रम् । हे इन्द्र जो तू प्रतीचीनं हमारे प्रतिकूल वर्जनीय आलस्य अ  
अद्वा दिकों को विनाश कर्ता है ॥ किंच जिन क्रियाओं में तेरे अनुग्रह  
से शत्रुओं के कपाने । क्षिप्र करने जयन्तं सम्यक् अनुष्ठान से और और  
र यजमानों से अति शय करिके इस यजमान के सोमपान और स्तुति से जो  
तू वृद्धि को प्राप्त होता है तिन क्रियाओं में तुम्हें स्तुति कर्ते हैं इति शेषः ॥ के  
से कि प्रत्नथा-प्रत्यय उपमा के अर्थ में जैसे पुराने भगवादि क तुम्हें स्तुति क  
र्ते हुए पूर्वथा-पित्रादि क जैसे विश्वथा-गयें हुए सब यजमान जैसे इमथा-  
ये वर्तमान के यजमान जैसे तुम्हें स्तुति कर्ते हैं इत्यर्थः । कैसे तुम्हें कि अय  
ने अर्थ बढ़ाता है ज्येष्ठता को बर्हिषदं याग में संनिहितत्व करि बैठे को स्व  
विदं- यजमान के देने योग्य स्वर्ग के जानने वाले को ॥ ऐसे इन्द्र को कह करि  
सोम प्रतिकहता है हे शुक्र ग्रह तू उपयाम करिके गृहीत है शुक्र के पुत्र शंड  
वा शण्डनामा असुर के अर्थ तुम्हें ग्रहण कर्ता हूं इति शेषः ॥ एष ते या-  
पं से सादन करे । हे ग्रह यह खर प्रदेश तेरा स्थान तू यजमान के वीरत्व  
(शूरत्व) को पालन करि ॥ का० अ० १०.१-५ अध्वर्यु प्रति प्रस्थाता शक्रा  
मन्थिग्रहों का यथा क्रम अनुतिष्ठन करे । तत्प्रकारः । प्रोक्षण की नी दो  
नों यूपशकलों से अप्रोक्षत दो यूप शकल लेकर प्रोक्षतों से तिन ग्रहों  
का क्रम पूर्वक प्राच्छादन करिके अप्रोक्षतों से ग्रहों का अपमार्जन  
(नीचे को मार्जन) करे तहां अध्वर्यु प्रोक्षत शकल से ग्रह को ठकिक  
र शुक्र ग्रह का मार्जन करे ॥ अपमृष्टः-या- गा-आभिचारिकं ।  
शंडनामा असुरों का पुरेहित शक्र का पुत्र अपमार्जनी किया ॥

का० ४. १०. ६. अध्वर्यु प्रति प्रस्थाता क्रमपूर्वक शुक्रमन्थी इन दोनो प  
दवाचिक मंत्रको समरि करि हविर्दानसै निकलैं. तहां शुक्लिङ्ग करि  
अध्वर्यु निकले देवास्वा. या. - पं शुक्र देवतं ॥ शुक्र नामक ग्रहमे स्थित  
सोम को पीनेवाले शुक्रपा देवता हे शुक्र ग्रह तुम् पूजा के स्थान को प्राप्त हों  
का० ४. १०. ७. अध्वर्यु प्रति प्रस्थाता वेदी के पीछे के भागमें अरत्नी  
का संयोजन करि ग्रहों का छोड़े विसर्ग कर्ते उत्तर वेदि श्रोणिमें ग्रहों का  
सादन करिके दक्षिण श्रोणीमें अध्वर्यु शुक्र को उत्तर वेदि श्रोणिमें प्र  
ति प्रस्थाता मंथि को सादन करै ॥ अनाधृष्टा सिद्धे. - पं वेदि श्रोणि दे  
वतं ॥ हे उत्तर वेदि श्रोणे तू अनाधृष्टा (अनुपहिंसता) हे ॥ १२ ॥

सुवीरं बीरान् सुवीरं बीरान् प्रजनयन्परीत्युभिरायस्योपे  
ण यजमानम् ॥ संजग्मानो दिवा पृथिव्या शुक्रः शुक्र शो  
चिषानिरस्तः शण्डः शुक्रस्याधिष्ठानमसि ॥ १३ ॥ †

का० ४. १०. ८. सुवीर इस मन्त्र से दक्षिण यूप देश प्रति अध्वर्यु जावै।  
सा-त्रि० शुक्र देवतम् ॥ हे शुक्र ग्रह तू सुवीरः शोभन वीर्योपेत होने से य  
जमान के श्रीयोपेत भृत्यादिकों को उत्पादन करता धन की पुष्टि से यज  
मान को देवता हुआ ॥ का० ४. १०. १०. अध्वर्यु प्रति प्रस्थाता यूप के प  
श्चिम भागमें तीन ग्रह वाचक पदों के चिन्हों को विचारि अरति संधान  
करै. शुक्रलिंग से अध्वर्युः ॥ संजग्मानः सा-अ० ॥ शुक्र ग्रह शुद्ध  
दीप्ति करि के यूप को भरै इति शेषः कैसा है शुक्र कि ध्रुलोक ओर भूलो  
क करिके संजग्मानः अर्थात् संगच्छ मान ॥ का० ४. १०. १२. अध्व  
र्यु अप्रोक्षत यूप शकल को निकाल के फेंके ॥ निरस्तः शण्डः - दे. - पं.

आभिचारकं ॥ शण्ड नामक शक्रपुत्र असुरों का पुरोहित यज्ञसे बाहिर निकाला का० ४०.१०.१३. अध्वर्यु आहवनीय में प्रोक्षित यूप शकल को डालें शक्रस्येति प्रा-गा. शकल देवतं हे यूप शकल तू शक्रग्रहका अधिकरण है ॥ १३ ॥

अच्छिन्नस्यते ॥ देवसोम सुवीर्यं स्परा यस्योषं स्यददितारः  
स्याम ॥ सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा स प्रथमो वरुणो मित्रो  
ऽऽग्निः ॥ १४ ॥ अ-मा.अ.स-ह.इ.त-हा.उ.अ-त.ऋ.॥ १४ ॥ १५

का० ४०.१०.१४. अच्छिन्नस्य इससे यजमान जपे प्रा-पं.सोम्यं ॥ हे देव दी-  
प्यमान सोम तुरू अनवरंडित (सन्तत) कल्याण प्रभाव के हम दाता हों  
और धन की पुष्टि के दाता हों बार बार यज्ञ करने की अशीष चाहते हैं।  
अथवा तेरे प्रसाद से धन की पुष्टि के दाता हों। अच्छिन्नस्य इसके दो विशेष  
षण ऐसै ही रायस्योष के ॥ का० ४०.११.१. अध्वर्यु और प्रति प्रस्थाता यूप  
के दोनों ओड़ी पश्चिमाभिमुख खड़े हो के होम करें पहिलें अध्वर्यु शक्र  
को फिर प्रति प्रस्थाता मन्यिको होमे ॥ सा प्रथमा. इन्द्र देवत्या त्रिष्टुप्  
सा प्रथमा. वोह मुख्य संस्कृतिः. सोम संस्कार इन्द्र के लिये सोम संस्कार  
करिये हैं. सोम क्रय के अध्या० ४. काण्डी २० में सादं वि देवम छे हीन्द्राय सो  
मको इन्द्र के अर्थ कहा गया कैसी है संस्कृति. कि विश्ववारा. समस्त ऋ  
त्विजों और अर्त्विजों से वरण करिये हैं जहां सोम वोह अथवा सबका  
वरण करने वाला सोम जहां है वोह विश्ववारा. जगत के उत्पन्न होने का  
बीज होने से सोम के वरुण मित्र और अग्नि स प्रसिद्ध मुख्य जिसके भू  
त्य इति शेषः अर्थात् वरुण मित्र अग्नि करि उपलक्षण और औरभी



देव गणों का जो प्रभु है ॥१४॥

स प्रथम ॥ स प्रथमो बृहस्पतिश्चि कित्वां स्तस्मा इन्द्राय सुतमा  
जुहोत स्वाहा ॥ तृम्यन्तु होत्रा मध्वोयाः सिंघायाः सुप्रीताः सुह  
तायत्स्वाहायाङ्गनीत् ॥ १५ ॥

स. प्रसिद्ध चेतनावान उत्कृष्टधी बृहस्पति जिस इन्द्र का मुख्यमंत्री  
हूँति शेषः ॥ अथवा संस्कृति समीचीन कृति समस्त देवताओं की  
वरणीय बोह प्रथमा अर्थात् देवताओं के मध्यमें मुख्य और जिस इ  
न्द्र के वरुणा मित्र अग्नि से ऐसा इन्द्र मुख्य और चेतनावान बृहस्प  
ति सो भी इन्द्र ऐसा हे ऋत्विजो तैसै इन्द्र के अर्थ अभिषुत सोम को  
स्वाहाकार करि के होमो ॥ का. ०. ११. ४. तृम्यन्तु इस्का अध्वर्यु ज  
प करे प्रा. - वृ. होत्रा देवतम् ॥ वोह होत्राः छन्दों के अभिमानी देवता  
तृप्त हों। होत्र शब्द से याज्या छन्दांसि स्मरण होते हैं। वोह कौन कि जो  
मधुस्वादु सोम के सिंघा साधु इष्टा अर्थात् तिसके होम में नियुक्त  
हैं। और जो होत्राः सुष्टु प्रीताः कैसे जाने गये ऐसै कि स्वाहा कार करि  
के सुहताः होम के अर्थ नियुक्त हैं ॥ का. ०. ११. १०. अध्वर्यु होता के  
समीप में प्रत्यङ्मुख खड़ा हो ॥ अयाङ्गनीत् दे. - वृ. होत्र देवतम् ॥ अ  
ग्निरयात् अयाक्षीत् अग्नीधाने याग किया यह होता से कहै ॥ १५ ॥  
अ. ७ अयं चैनः ॥ अयं चैनश्चोदयत्पृथ्विं गर्भज्योतिर्जगत्पूरजं  
सो विमाने ॥ इममपा ३ सङ्गमे सूर्यस्य शिशुन्त्रविप्रो म  
तिभी रिहन्ति ॥ उपयाम गृहीतो सिमर्त्तयत्वा ॥ १६ ॥ +  
का. ०. ६. १२. मंथिग्रहको ग्रहण करे त्रिष्टुप् इस मंत्र से आधिदेव

और अधि यज्ञमें अवस्थित सोम स्तुतिकरिये है ॥ अधिदेवं चन्द्रात्मना स्तूयते ॥ अयं वेनः ॥ यह कान्त ॥ चन्द्र उदक के निर्माण समय अर्थात् ग्रीष्मान्त में प्राप्त प्रथिन गर्भ ॥ जल की प्रेरण कर्ता अर्थात् वर्षता है ॥ पृथ्वि ॥ आदित्य वा द्युलोक गर्भ ॥ जिसका अवस्थान ॥ द्युलोकस्था ॥ यवारविस्था जल वर्षता है कैसा है वेनः ॥ किं ज्योतिर्जरायुः ॥ विद्युत् क्षण ज्योति को जरायु वत बेटन है जिसका बोह ॥ इदानीं मधियज्ञं लतात्मना सोमः स्तूयते ॥ विप्रः मेधावी ब्राह्मण इस सोम को शिशुन जैसे कोई बालक को लालन कर्ता है तैसे ही इस सोम को स्तोत्र शस्त्र रूपा वाणी करि स्तुति कर्ते हैं ॥ कैसा है यह कि सूर्य और जल के संगमे ग्रहण किये जल से अभिषुत अर्थात् सोम के अभिषेचन वसती वरी जल और सूर्य के संगमे ग्रहण कर्ते हैं ॥ ताँवे वहन्ती नारदस्य नन्दमाना नां गृह्णीयाद्दिवा गृह्णीयादिति श्रुतेः ॥ अथवा यह अर्थ जल और सूर्य के समागम निमित्त अर्थात् वृष्टि गर्भ निष्पत्त्यर्थ ब्राह्मण इस सोम को स्तुति कर्ते हैं जैसे बालक किसी वस्तु के लाभ के अर्थ किसी की स्तुति कर्ता है ॥ उपयामेति सा ॥ गा ॥ ऐसा है सोम तू उपयाम ग्रह पात्र करिके गृहीत है तिस मर्क नामा शुक्र पुत्र असुरों के पुरोहित के अर्थ तू मे ग्रहण कर्ता हूँ ॥ १६ ॥

मनोन ॥ येषु हवनेषु तिग्मं द्विपः शच्या वनुथो द्रवन्ता ॥ आयः शर्याभिस्तु विनृमणो ॥ अस्या श्रीणी तादि शुद्ध भस्ता वेषते योनिः प्रजाः पात्यपं मृष्टो मर्की देवास्त्वाम न्धियाः प्रणयन्त्वनाधृष्टासि ॥ १७ ॥ †

का० ४० ६० १३० मन्थिग्रह को यवपिष्ट करि मिश्रित करै ॥ मनोनविष्टु  
 सोमस्तुतिः अधि यज्ञानुवादिनी ॥ मेधावी, अध्वर्यु प्रतिप्रस्थाता  
 जिन सोम होमोंमें प्राच्या (कर्मः) करि कै मनवत् उत्साह युक्त जैसे  
 तैसे शुक्रमन्थीग्रहों को प्राप्त हैं। कैसे हैं मेधावी कि कर्तव्य होमोंमें प्रच  
 रते। जो अध्वर्यु अंगुली करि हाथमें स्थित इस मन्थिग्रहका सब ओड  
 से सक्तु यवपिष्ट करि मिश्रित करता है। कैसा है जो अध्वर्यु कितुवि  
 (बहुत) नृणां धन युक्त ॥ यद्यपि यहां अध्वर्यु प्रतिप्रस्थाता समान क  
 र्मा हैं तथापि जो यवपिष्ट करि अर्पण करता है सो मुख्य है ॥ एषतेया -  
 ह० से सादन करै। हे मन्थिग्रह तेरी यह जगह तू यजमान संबंधिनी प्रजा  
 का पालन करि ॥ का० ४० १०० ६० प्रतिप्रस्थाता प्रोक्षित यूप सकल से  
 मन्थिग्रह का आच्छादन करि अप्रोक्षित से अपमार्जन करै ॥ अपमृ  
 ष्टो मर्कः या-गा० आभिचारिकम्। मर्क नामा असुरों का पुरोहित अप  
 मार्जन किया ॥ का० ४० १०० ६० प्रतिप्रस्थाता हविर्धान से निकलें देवा  
 स्त्वेति या-पं० मन्थिदैवतम्। हे मन्थिग्रह मन्थिग्रह के पीने वाले देव  
 ता तुरू पूजा के स्थान को प्राप्त हों ॥ अनाधृष्टासि यह मन्त्र पहिले का  
 एडी १२ में विनियोग सहित व्याख्या किया ॥ १७ ॥

सुप्रजाः ॥ प्रजाः प्रज नयन्परीह्यभिरायस्याषेण यजमान  
 म् ॥ सज्जग्मानो दिवा पृथिव्या मन्थी मन्थि शौचिषा  
 निरेस्तो मर्कौ मन्थिनेधिष्ठानं मसि ॥ १८ ॥ †

का० ४० १०० ४० प्रतिप्रस्थाता उत्तर यूप देश को जावे सुप्रजाः सा-वि  
 मन्थिदैवतं ॥ हे शोभन प्रजा युक्त मन्थिग्रह तू यजमान संबंधिनी प्र

जा का उत्पादन करि कै धनकी पुष्टि सहित यजमानके संमुख आ॥ का०  
 ४०१०१०० प्रतिप्रस्थाता अरनिका सन्धान करै सजग्मानः सा-अ॥  
 मन्थिनाम ग्रह द्युलोक भूलोक मेजाताहुआ अपनी दीप्ति से यूप को  
 विभरण कर्ता है इतिशेषः॥ का० ४०१०११० प्रतिप्रस्थाता अश्रोक्षत  
 यूप शकल को निकाले निरस्तः दे०-पं० आभिचारिक॥ मर्कनामा  
 असुरों के पुरोहित का निराकरण किया॥ का० ४०१०१३० प्रतिप्रस्था  
 ता अश्रोक्षत यूप शकल को आहवनीय में डाले मन्थिनः प्रा-गा-  
 शकल देवतं॥ हे यूप संकल तू मन्थि ग्रह का अधिष्ठान है॥ १८॥  
 अ० ८ ये देवासः॥ ये देवा सो दिव्ये का दश स्थ पृथिव्या मध्ये का दश  
 स्थ॥ असुक्षितो महिने का दश स्थ ते देवा सो यज्ञमिमं जु  
 षध्वम्॥ १९॥

दोनों धाराओं के मरते आग्रयण ग्रह को ग्रहण करै वैश्वदेवी त्रिष्टुप्  
 परुछेव दृष्टा॥ हे देवताओं तुम द्युलोक में एकादश संख्या कहो कि  
 समहिमा से कि अपने अपने माहात्म से सर्वत्र महाभाग्य के अविशेष  
 होने से महिना यह यद तीनों स्थानों में जुड़ता है तथा पृथिवी के ऊपर  
 एकादश हो तथा तुम अन्तरिक्ष निवासी एकादश हो हे देवताओं  
 विविध तुम इस यज्ञ यजनीय आग्रयण ग्रह को सेवन करे॥ १९॥

उपयाम गृहीतो स्या ग्रयणो सि स्वाग्रयणः॥ पाहियज्ञम्य  
 हियज्ञपतिम्विष्णुस्त्वामिन्द्रियेण यातु विष्णुन्त्वम्याह्य  
 भिसर्वनानियाहि॥ २०॥

आग्रयण देवतं यजु राग्रयण ग्रहण एव विनियुक्तम्॥ हे आग्रयण

ग्रह तू उपयाम पात्र करि के स्वीकार किया है आग्रयण नामा है कैसा है तू कि स्वाग्रयण अच्छे प्रकार प्राप्त होता। तैसा तू यज्ञ को रक्षा करि। विष्णुः यज्ञका अधिष्ठाता देवता इन्द्रियेण अपनी सामर्थ्य से तू रक्षा करै और तू भी तैसे विष्णु की रक्षा करि। सब नानि प्रातः सब नादिकों को सब ओड़ी से रक्षा करि ॥२०॥

सोमः पवते ॥ सोमः पवते सोमः पवते स्मै ब्रह्मणे स्मै क्षत्रिया  
स्मै सुन्वते यजमानाय पवतः इषः ऊर्जे पवते द्यः ओष  
धीभ्यः पवते द्यावा पृथिवीभ्यः पवते सुभूताय पवते विश्वे  
भ्यस्त्वा देवेभ्यः एषते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥२१॥ †

का० ४६ ६ १५ सोमः पवते को तीन बार करि के जपे वैश्वदेव यज्ञ ॥ सोम ग्रह पात्र में जाता अर्थात् अपने कर्म में प्रवृत्त होता है ॥ द्विरुक्ति शब्द अर्थः किसलिये कि इस ब्राह्मण जातिकी प्रीतिके अर्थ इस क्षत्रिय जातिकी प्रीतिके अर्थ इस सोमाभिषव करने वाले यजमान के कामकी प्राप्तिके अर्थ। अन्न के अर्थ वृष्टिके ब्रीहियवादिक ओषधियों की सिद्धिके अर्थ जाता है। द्युलोक पृथिवी लोक की प्रीतिके अर्थ जाता है। किंवा वह नोक्तैन सब अच्छे मनुष्यों के अर्थ जाता है। हे आग्रयण ग्रह तैसे तू रू को समस्त देवताओं की प्रीतिके अर्थ ग्रहण कर्त्ता हूँ इति शेषः ॥ एषते पाजः इससे सादन करै ॥ हे ग्रह यह तेरा स्थान समस्त देवताओं के अर्थ तू मे सादन कर्त्ता हूँ इति शेषः ॥२१॥

अ० ४६ उपयाम गृहीतो सी। न्नायत्वा बृहद्वते बयं स्वतः उव प्रा  
व्यं गृह्णामि ॥ यतः इन्द्र बृहद्वयस्तस्मै त्वा विष्णवे त्वे

ते यो निरुक्थेभ्यस्त्वा देवेभ्यस्त्वा देवाव्यु यज्ञस्या युषे गृ  
ह्णामि मित्रावरुणाम्यान्त्वा ॥२२॥ †

का० ४०६२० उक्थ्यग्रहको ग्रहण करें ॥ उपयाम ग्रह देवतानियजु  
थंषि उपयामेति यजुः ॥ हे सोम तू उपयाम पात्र करि गृहीत है । हे उक्थ्य  
ग्रह तुम्हें इन्द्र के अर्थ स्वीकार करता हूँ । कैसे इन्द्र के अर्थ कि वह त्सा मप्रि  
यके तथा वयस्वते सोम रूप अन्न वा सदा योवन लक्षण वीर्य सहित ।  
कैसे तुम्हें कि उक्थ्याव्यम् उक्थ्यानि मित्रावरुणं ब्राह्मणं छंस्य छावा  
कसंबंधी शास्त्रों की अवतिरक्षा करनेवाले तिसै । तहां ही इसका वि  
नियोग है ॥ किंच ऐसै सोम को कहिकर इन्द्र प्रति कहिता है हे इन्द्र जो  
तेरा बड़ा सोम रूप अन्न है तिसके पानार्थ तुम्हें प्रार्थना करते हैं इति शो  
षः ॥ हे सोम विष्णु देवता के अर्थ तुम्हें ग्रहण करता हूँ ॥ अथवा हे इन्द्र जो  
तेरा बड़ा ऊर्जित योवन लक्षण तिसके अर्थ सोम तुम्हें ग्रहण करता हूँ ॥  
हे सोम जो इस इन्द्र का वह द्वय है तैसे के अर्थ तुम्हें ग्रहण करता हूँ और  
विष्णु (यज्ञ) के अर्थ तुम्हें ग्रहण करता हूँ ॥ एष ते या० - व० सै सादन करें ।  
हे ग्रह यह तेरा स्थान उक्थ्य के अर्थ तुम्हें सादन करता हूँ ॥ का० ४१४  
८० उक्थ्यस्थालीस्थ सोम को तीनवार ग्रहण करें ॥ समस्त प्रशास्तृ  
ब्राह्मणं छंस्य छावाकतिन्हों के किये याग के अर्थ देवेभ्यस्त्वा आ  
सुरी गा० ॥ हे सोम देवताओं के अर्थ तुम्हें ग्रहण करता हूँ कैसे तुम्हें कि  
देवाव्यम् देवताओं की नृप्ति करनेवाले यज्ञस्या युषे अनवच्छि  
न्न कर्मों के दोष रहित परिसमाप्ति यज्ञ की आयु तिसके अर्थात् य  
ज्ञसमाप्ति के अर्थ और फलपर्यन्त अवस्थान के अर्थ ग्रहण कर

ताहं। अथवा यज्ञ यजमान का शरीरहै इसहेतु यजमान की आयु के अर्थ ग्रहण करताहूं ॥ ३२ ॥

मित्रावरुणभ्यान्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्रायत्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राग्निभ्यान्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्रावरुणभ्यान्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्रावृहस्पतिभ्यान्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राविष्णुभ्यान्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामि ॥ ३३ +

का० ४०. १४. ४०. अथवा मित्रावरुणभ्यान्त्वा इस मंत्र से यज्ञास्त्र उक्थ्य को ग्रहण करै। मित्रावरुण के उक्थ्य विग्रह में इस मंत्र का विकल्प है ॥ मित्रावरुणभ्यामित्याधी गा० ॥ मित्रावरुण के अर्थ देव तर्पक तुम्हें यज्ञ की आयु के अर्थ ग्रहण करताहूं ॥ का० ४०. १४. १५. ऐसेही इन्द्रायत्वा आसुरी गा० से ब्राह्मण छंसि, इन्द्राग्निभ्यान्त्वा, प्रा-अ० से अच्छावाक के अर्थ दोनों मंत्रों का विकल्प है ॥ इन्द्र के अर्थ तुम्हें ग्रहण कर्ताहूं, इन्द्र और अग्नि के अर्थ तुम्हें ग्रहण कर्ताहूं शेष पूर्ववत् ॥ का० १००. ७. ११. उक्थ्यादि सोम संस्थ में इन्द्रावरुणभ्यान्त्वा, आधी-गा, इन्द्रावृहस्पतिभ्यान्त्वा, और इन्द्राविष्णुभ्यान्त्वा, द्वे यजुषि, मित्रावरुण, ब्राह्मणा छंसि, अच्छावाक के अर्थ तृतीय सवन में उक्थ्य विग्रह के मंत्र हैं ॥ इन्द्र और अवरुण के अर्थ ॥ इन्द्र और वृहस्पति के अर्थ, इन्द्र और विष्णु के अर्थ तुम्हें ग्रहण कर्ताहूं शेष पूर्ववत् ३३ इति नवमोऽनुवाकः ॥ ४० ॥ अ. १० मूर्द्धानन्दिवः ॥ मूर्द्धानन्दिवोऽरतिमृषिव्यावैश्वान





तू उपयाम पात्र करिके गृहीत है ध्रुवनामक है कैसा है तू कि ध्रुवक्षितिः स्थिर है निवास जिस का बोह-क्षितिर्वास गत्योः आवेश्व देवी संस्थान से स्थिर निवास है । तथा ध्रुवाणां आदित्य स्थाल्यादिकों के मध्य ध्रुवतमः अतिशय करिके स्थिर तथा च्युतरहितों क्षरणशून्यो में अच्युतक्षिप्तमः अर्थात् च्युतरहित पात्र में अतिशय करिके निवास करता ॥ एषते या-त्रि० इति सादनम् । हे ग्रह यह तेरी जगह वैश्वानर (अग्नि) के अर्थ तुम्हें सादन करता हूँ ॥ का० १००७७ ध्रुवं ध्रुवेणेति ध्रुवपात्रस्य समस्त सोम को होतृ चमस में सींचे ॥ बृहती पूर्वार्धर्चो ध्रुव देवतः उत्तर ऐन्द्रः ॥ ध्रुवेण एकाग्र मनसा वाचा करि ध्रुवग्रह में अवस्थित सोम को होतृ चमस में सींचता हूँ अथवा ध्रुवग्रह होतृ चमस्य सोम को प्रत्यवनयामि फिरि सींचता हूँ ॥ निरन्तर में यह इन्द्र हमारी प्रजा को ऐसी करे । कैसी कि शत्रु रहित स्थिर मनस्का अर्थात् धृति युक्ता ॥ २५ ॥

अ० ११ यस्ते ॥ द्रुप्सस्कन्दतियस्तेऽ अर्धं शुर्गवच्युतोधिषणां यो रूपस्यात् ॥ अध्वर्योर्वापरिवाजः पुत्रित्रातन्ते जुहोमि मनसा वषट्कृतं स्वाहा देवानां मुत्क्रमणमसि ॥ २६ ॥ +

का० १४०६२८ अभिषव और ग्रहण में पतित सोम विन्दुओं के ग्रहण करने में अपशक्त होने से तिस प्रत्यवाय के परिहारार्थ घृत होम की विप्रट् होम यह संज्ञा है तिसै अध्वर्यादिक होमें ॥ सैमी त्रिष्टुप् स्वाहेति यजु रन्ता देवश्वा देव वात दृष्टा ॥ हे सोम तेरा द्रुप्सः जो रसका एक देश भूमि में अन्यत्र गिरा और जो तेरा

खण्ड ग्राह्यों के शकाश से गिरा और जो अधिषवण फलकाओं के उ  
त्संग से गिरा अथवा जो अंशु अध्वर्यु के शकाश से गिरा अथवा जो  
अंशु पवित्रा से जहां कहीं गिरा हे सोम तेरे तिस द्रुप्त और अंशु को  
स्वाहाकार करिके होम करता हूं। कैसा है कि मनसा करि बषट्कार किया (संकल्पित)  
अर्थात् बषट्कार और स्वाहाकार करिके होम करता हूं। का० ४.६.३२  
अध्वर्यु ने वेदी में जो तृणग्रहण किये तिन्हो में से एक को चात्वाल  
में डाले। देवानामिति या-हृ० चात्वाल दे०॥ हे चात्वाल तू देवता  
ओं का उत्क्रमण है उत्क्रामन्ति जाते हैं स्वर्ग को जिस से वोह उ  
त्क्रमण अर्थात् तुरुकरिके देवता स्वर्ग को जाते हैं ॥ अतोहि  
देवाः स्वर्गमुपोदक्रामन्ति शत० ४.२.५.५ ॥ २६॥

अ० १२ प्राणायमे ॥ वच्चो दावच्च से पव स्वय्या नायमे वच्चो दाव  
च्च से पव स्वो दानाय मे वच्चो दावच्च से पव स्ववाचे मे वच्चो  
दावच्च से पव स्वक्रतू दक्षाम्याम्मे वच्चो दावच्च से पव  
स्वश्रोत्राय मे वच्चो दावच्च से पव स्वचक्षुर्म्याम्मे वच्चो  
दसो वच्च से पवेथा मात्मने मे ॥ २७॥ +

का० ४.७.४ प्राणायेत्यादिक मंत्रों की अवकाश संज्ञा तिन्हों  
को पढ़ें- ग्रहण क्रम से ग्रहों को अध्वर्यु यजमान को दिखला  
वे। लिंगोक्त देवतान्येकादश यज्ञकेये प्राण तिन्हो को प्राण क  
रि दिखलावे हैं ॥ १.२.६. आसुरी अ० ३.७ आसुरी उ० ४.५  
आसुरी गायत्री ॥ उपांशुम् हे उपांशो जो तू स्वभाव से ही तेज-  
कादाता सो तू मेरे हृदय स्थित वायु के तेज के अर्थ प्रवर्त हो ॥ उपां

+ प्रा-स्व। अ० व्या-स्व। ६. उ-स्व। उ० वा-स्व। क्र० क-स्व। ल० आ-स्व। आ० च-

॥ २७ ॥  
॥ २८ ॥

शु सवनम्। हे उपांशु सवन मेरे सर्व शरीर गत वायु के अर्थ प्रवर्त हो  
अन्यत्पूर्ववत्॥ अंतर्यामम्। कंठदेशस्थ उदानवायुः॥ ऐन्द्रवायव  
म्। वाक् इन्द्रिके अर्थ॥ मैत्रावरुणम्। क्रतु-काम् दक्ष, तिसकी समृ  
द्धि तिन दोनो के अर्थ॥ आश्विनम्। ओत्र इन्द्रिके अर्थ॥ शुक्रामन्यि  
नौ युगपत्। हे शुक्रामन्यिनो मेरी चक्षुओं की पटुता तिसरूप ते  
जके अर्थ तुम प्रवर्त हो ओ॥ २७॥

आत्मने मेवर्चो दावर्च से पव स्वौज से मेवर्चो दावर्च से प  
व स्वायुषे मेवर्चो दावर्च से पव स्व विश्वाभ्यो मेष्पुजाभ्यो  
वर्चो दसो वर्च से पवेथाम् ॥ २८ ॥ †

८. ४. १०. आसुरी अ० ११. यजुः॥ आग्रयणम्। मेरे जीवकी स्व  
स्थता के तेज के अर्थ॥ उक्थ्यम्। समस्त इन्द्रियों का पाटव शरीर  
वावल तिस रूप तेज के अर्थ॥ ध्रुवम्। आयु का निर्दुष्ट जीवन ति  
स रूप तेज के अर्थ॥ पूतभृदाधनी यौ युगपद वेक्षते। हे पूतभृत आ  
धवनीय समस्त मेरी प्रजा के अर्थ जो तेज है तिसके अर्थ तुम प्रव  
र्त हो ओ॥ कैसे हो तुम कि तेज के देने वाले। अथवा प्राण व्यानादि  
कोंका जो तेज तिसके अर्थ प्रवर्त हो ओ॥ अथवा जो तू प्राणके  
अर्थ तेज का देने वाला सो मेरे ब्रह्म तेज के अर्थ प्रवर्त हो  
एवं सर्वत्र ॥ २८ ॥

कोसि॥ कतमोसि कस्यासि कोनामासि॥ यस्य तेना  
मामन्महि यन्त्वा सो मेनाती तृपाम्॥ भूर्भुवः स्वः  
सु प्रजाः प्रजाभिः स्याथ सु वीरौ वीरैः सुपोषः

पौषैः ॥२६॥†

का० ४०७०१४० द्रोण कलश को देखै। कोसीति प्राजापत्या वर्धमानो  
षिणक् ॥ अध्यस्त प्रजापतिं द्रोण कलशमाह हे द्रोण कलश तू प्र  
जापति है अतिशय करके प्रजापति है तथा प्रजापति का है प्रजा  
पति नामा है अर्थात् प्रजापति का अनन्य भूत है। किंच हम  
जिस्का तेरा नाम जानते हैं मन और ज्ञान से फिर जिस द्रोण क  
लश रूप तुम्ह को हम सोम करिकें तृप्त करते हैं सो तू हमको नाम  
करिके विदित करि और कामों करिके तृप्त करि इति शेषः ॥ का०  
४०७०१५० भूर्भुवस्वः यजुः जपकरै ॥ हे भूर्भुवस्व अग्निवायुसू  
र्योः प्रजा करिके मैं शोभन प्रजा युक्त हों ऊं वीरों करिके सुवीर हो  
ऊं धन की पुष्टि करिके शोभन पुष्टि युक्त हों ऊं ॥ २६ ॥

अ० १३ उपयाम गृहीतोसि ॥ मध्वेत्योपयाम गृहीतोसि माध  
वायत्वोपयाम गृहीतोसि शुक्रायत्वोपयाम गृहीतो  
सि शुचयेत्वोपयाम गृहीतोसि नभसेत्वोपयाम गृही  
तोसि नभस्यायत्वोपयाम गृहीतोसीषेत्वोपयाम गृ  
हीतोस्यूर्जैर्वोपयाम गृहीतोसि सहसेत्वोपयाम गृहीतो  
सि सहस्रायत्वोपयाम गृहीतोसि तपसेत्वोपयाम गृही  
तोसि तपस्यायत्वोपयाम गृहीतोस्यैहसेस्पतयेत्वा ॥ ३० †

का० ४०१३०१-४० अध्वर्यु प्रति प्रस्थाता द्वादश ऋतुग्रह करिके अ  
नुतिष्ठें उपयामेत्यादिक द्वादश मंत्र हैं तहां षट् युग्म मंत्रों में पूर्व-  
पूर्व मंत्र करिके अध्वर्यु उत्तर- उत्तर करिके प्रति प्रस्थाता इति मंत्र

† को-मः। अ० भू-षैः इ० ॥ २६

† उ-त्वा। अ० ॥ २३०। ऋ० ल०। आ० रि०। ऊ०। ऋ०। लृ०। क०। च०। ट० ॥ ३०

विवेकः॥लिंगोक्तानि त्रयोदश १०३४५६११० आसुरी च ०२६१०  
 १२० आसुरी अ०७०८० आसुरी त्रि०॥हे ऋतु ग्रह तू उपयाम करिकें  
 गृहीत है मधवे मधुना मा चैत्र मास के अर्थ तुम्हें ग्रहण कर्ता हूँ  
 ति शेषः ॥१॥ माधवाय वैशाख के अर्थ तुम्हें ग्रहण कर्ता हूँ ॥२॥ म  
 धु माधवौ वासन्तो मधु प्रमुख अन्न वसंत में होता है ॥ शुक्राय  
 ज्येष्ठ के अर्थ तुम्हें ॥३॥ शुचये आषाढ मासा भिमानी देवता  
 के अर्थ तुम्हें ॥४॥ शुक्र शुची ग्रीष्म मासौ शुच शोषणो ॥ नभ  
 से आषाढ मास के अर्थ सोम तुम्हें ॥५॥ नभस्याय भाद्रपद मासा  
 भिमानी के अर्थ तुम्हें ॥६॥ नभो नभस्यौ वार्षिको मासौ मेहकी  
 बाहुल्यता से सूर्य के नदी खने के कारण नभ और नभस्य कहा  
 ॥ इषे आश्विन मास के अर्थ तुम्हें ॥७॥ ऊर्जे कार्तिक मास के अ  
 र्थ तुम्हें ॥८॥ इष अन्न ऊर्ज तिसका उप सेचन दध्यादितिसकी  
 बहुती होती है मनुष्यो लोपाद भेदोपचार द्वाद्दशब्देन ऊ  
 र्क शब्देन च शारदो मासा बुध्यते ॥ सह से मार्गशीर्ष मास के  
 अर्थ ॥९॥ सहस्याय पुष्य मास के अर्थ ॥१०॥ सहः सहस्यौ  
 है मन्ति को मासौ ॥ तपसे माघ मास के अर्थ ॥११॥ तपस्याय  
 फाल्गुण मास के अर्थ ॥१२॥ तपस्तपस्यौ शैशिरो मासौ तपति  
 सूर्यो यत्रात्यन्तं सतपास्तपस्यश्च ॥ का० ४० १३ १८ जो अश्वय  
 की इच्छा हो तो त्रयोदश में ऋतु ग्रह को ग्रहण करें ॥ ऐच्छ को वि  
 कल्पः आसुरी- उ० १३ ॥ हे ग्रह तू उपयाम पात्र करि गृहीत है ते से तु  
 र्क को अंहसः पतये अधिक मासा धिष्ठातृ के अर्थ ग्रहण कर्ता हूँ

इति शेषः अंहः पाप तिसकापति । मल मास होनेसे यह वारहों महीना से गिरता है अथवा अहंतेर्गतिकर्मानः निघं ० २१४ गतिकापति त्रयोदशवां महीना आदित्य की गति के वश से होता है ॥ ३०

अ० १४ इन्द्राग्नीः आगतं सुतङ्गीभिर्नभो वरेण्यम् ॥ अस्य पातन्धियेषिता ॥ उपयाम गृहीतोसीन्द्राग्निम्व्यान्त्वे षते यो निरिन्द्राग्निम्व्यान्त्वा ॥ ३१ ॥ +

का० १४० २३ २० प्रति प्रस्थाता इन्द्राग्नी देवता के ग्रह को ग्रहण करने ऐन्द्राग्नी देवतं गायत्री विश्वामित्र दृष्टा ॥ हे इन्द्राग्नी तुम अभिखुत सोम प्रति आओ । कैसा है सोम कि गीर्भिर्नभो वरेण्यं अर्थात् त्रयी लक्षण वाचा करिके जैसे आदित्य प्रार्थनीय है सो नव आदित्य को कहते हैं निरु० २२२ अथवा स्तुति रूपा वाणी करिके युक्त इति शेषः ॥ नभो वरेण्यं स्वर्गस्थ देवताओं करिके प्रार्थनीय किंच हे इन्द्राग्नी तुम इस सोम संवन्धी अंश को पान करो । कैसे हो तुम कि यजमान की बुद्धि करिके प्रार्थना किये गये ॥ ऐसे देवताओं प्रति कहि कर सोम को कहता है उपयामेतिया - ज । सोम तू उपयाम ग्रह करिके ग्रहीत है हे ग्रह इन्द्राग्नी के अर्थ तुम्हें ग्रहण कर्त्ता हूँ ॥ एषत इतिया - यं सादनं । यह तेरा स्थान इन्द्राग्नी के अर्थ तुम्हें सादन कर्त्ता हूँ ॥ ३१ ॥

अ० १५ आघायेऽग्निमिन्धते स्तृणन्ति वर्हिरानुष क ॥ येषामिन्द्रो युवासखा ॥ उपयाम गृहीतोस्यग्नीन्द्रा म्व्यान्त्वे षते यो निरग्नीन्द्रा म्व्यान्त्वा ॥ ३२ ॥ +

अग्नीन्द्र देवत्या गायत्री त्रिशोक दृष्ट्वा अस्या विनियोगः कात्याय  
नेन नोक्तः ऐन्द्राग्न ग्रहे एव विकल्पः शाखान्तरे ॥ जे यजमान अग्नि  
को सब ओड़ी से दीपन कर्ते अर्थात् इष्टिपशुसोमचातुर्मास्य करि  
के पूजा करते हैं धेत्यनर्थकः । और जे आनु पूर्व से वहि ओं को आच्छा  
दन कर्ते हैं किंच जिन यजमानों का युवा, जरा मृत्यु रहित इन्द्र सखा,  
मित्रवत् उपकारक ॥ उपयामेति या - ज ॥ हे सोम तिनहों के यज्ञ  
मे उपयाम ग्रह करिके तू स्वीकार किया है अग्नीन्द्र के अर्थ तुम्हें  
ग्रहण कर्ती हूं ॥ एषते या - पं सादयति ॥ हे सोम यह तेरा स्थान अ  
ग्नि और इन्द्र के अर्थ तुम्हें सादन कर्ती हूं ॥ ३२ ॥

अ. १६ ओमासश्चर्षणीधृतः ॥ ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास  
ऽआगत ॥ दाश्वाश्च सोदाशुषः सुतम् ॥ उपयाम गृहीतो  
सि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः एषते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा दे  
वेभ्यः ॥ ३३ ॥

का० ४०. १४. १० अध्वर्यु यजमान करिके स्पर्श कर्ते वान कर्ते द्रोण  
कलश से शुक्र पात्र करिके वैश्वदेव ग्रह को ग्रहण करे वैश्वदेवी  
गायत्री मधु छन्दो दृष्ट्वा ॥ हे विश्वे देवा ओ तुम आओ कैसे हो तुम  
कि ओ मासः, रक्षा करने वाले वा अवनीय निरु० १२. ४०० तर्पयि  
तार वा तर्पणीय । तथा चर्षणीधृतः, मनुष्यों के धरण पोषण कर  
ने वाले । अनिष्ट का निरसन, रक्षण, दृष्टका प्रापण, पोषण, इत्य  
वन धरणयोर्भेदः । तथा सोम देने वाले यजमान को फल के देने वा  
ले अर्थात् पूरने वाले । यद्वा सोम को पीने वाले ॥ उपयामेत्या सु

रीगा० हे सोम तू उपयाम पात्र करिके स्वीकार किया है विश्वे देवाओं के  
अर्थ तुम्हें ग्रहण कर्ता हूँ ॥ एष ते याऽज० सादयति । यह तेरा स्थान विश्वे  
देवाओं के अर्थ तुम्हें सादन कर्ता हूँ ॥ ३४ ॥

अ० १७ विश्वे देवास ॥ विश्वे देवासऽआगतं शृणुतामऽदुर्मर्तं हवम  
एदम्वर्हिर्निषीदत ॥ उपयाम गृहीतो सि विश्वेभ्यस्त्वा दे  
वेभ्यऽ एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ ३४ ॥ †

वैश्व देवी गायत्री गृत्समदृष्टा वैश्व देव ग्रह ग्रहणऽएव विकल्पेनास्मा  
ता ॥ हे विश्वे देवाओं तुम मेरे यज्ञ प्रति आओ और आके मेरे इस आ  
ह्वान को श्रवण करो सुन कर इन मेरी बर्हिओं के ऊपर बैठो ॥ उपया  
मेति पूर्ववत् ॥ ३४ ॥ इति प्रातः सवनं गृहा समाप्ताः

अथ माध्याह्निकं सवनं गृहा उच्यन्ते

अ० १८ इन्द्रं मरुत्वः ॥ इन्द्रं मरुत्वऽइह पाहि सोमं यथा शर्याते  
अपिवऽसुतस्य ॥ तव प्रणीती तव शूर शर्मन्ना विवास  
न्तिकवयऽसुयज्ञाः ॥ उपयाम गृहीतो सिन्द्रायत्वा म  
रुत्वतऽ एष ते योनिरिन्द्रायत्वा मरुत्वते ॥ ३५ ॥ †

माध्यन्दिने सवने मरुत्वतीया ग्रह्यन्ते इति तितिरिवचनात् । तत्र त्र  
यो मरुत्वतीयास्तत्र प्रथममाह का० १००११४० ऋतु पात्र करिके म  
रुत्वतीय ग्रह को ग्रहण करे ऐन्द्रमारुतीश्च तस्त्रिष्टुभो विश्वामित्र  
दृष्टाः ॥ मरुतों करिके सहित हे इन्द्र इस हमारे यज्ञ में सोम को पी।  
कैसे पी सो कहते हैं जैसे शर्याति नाम राजा के यज्ञ में अभिषुत सोम  
के अंश को पी आते हैं यहां पान करि । शर्यातो हवा-शत० ४०१५२



किंच हे शूरावीर) तेरी अनुज्ञा करि सुयज्ञाः (कल्याणयज्ञ) कवयः  
(क्रान्तदर्शी) तेरे सुख के निमित्त यज्ञ गृह में तुम्हें परिचार कहते हैं ॥  
हे सोम तू उपयाम करिके गृहीत है मरुतों सहित इन्द्र के अर्थ तुम्हें  
गृहण करता हूँ ॥ सादयति यह तेरी योनि मरुतों सहित इन्द्र के अर्थ  
तुम्हें सादन करता हूँ ॥ ३५ ॥

अ० १५ मरुत्वन्तम्बुषभम् ॥ मरुत्वन्तम्बुषभम्बावृधानमकवा  
रिन्द्रिव्यर्षं शासमिन्द्रम् ॥ विश्वासाहमवसेनूतनायोग्र  
र्षं सहोदामिह तर्ह्वेम ॥ उपयाम गृहीतो सीन्द्राय त्वा  
मरुत्वन्त एषते योनिरिन्द्राय त्वामरुत्वन्ते ॥

अ० २० उपयाम गृहीतो सिमरुतान्त्वौजसे ॥ ३६ ॥ †

द्वितीय मरुत्वतीयमाह । का० १०० ३६ रिक्तपात्र करिके शस्त्र सहित  
मरुत्वतीयको लेवे ॥ इस अपने यज्ञमें तिस इन्द्रको हम आह्वान करते  
हैं । कैसे इन्द्र को कि मरुत्वन्त मरुद्गणोपेत । जल के बरसने वाले । का  
मों के बढाने वाले । अकवारिम् अकुत्सित शत्रुओं वृत्रादिकों वाले  
अथवा उत्कृष्ट ऐश्वर्य वाले । द्युलोमें रहने वाले दुष्टों की शासना-  
करने वाले अथवा प्रशासनवन्त । विश्वासाहम् विश्वपालय-  
तुं सहते सविश्वसाद् अर्थात् आलसरहित अथवा अभिभव  
के अर्थमें सहति अपने धर्मसे छुदे हुए सर्वों के अभि भवितार । नूतना  
य नवीन, पालन, इस यजमान की रक्षा के अर्थ उग्र उद्गूण वज्र  
को । सहोदाम् बल देने वाले तिसको ॥ उपयामः एषते द्वेयार्या  
ते ॥ ३६ ॥

तृतीयं मरुत्वतीयमाह । का० १००३३ प्रतिपस्थाता दूसरे ऋतु पात्र  
करिकें मरुत्वतीय ग्रहको ग्रहण करे उपयाम गृहीतोसि मरुतां त्वो  
जसे मरुद्देवत्यं यजुः । हे मरुत्वतीयग्रह मरुद्देवता ओंके बलके अ  
र्थतुम्हे ग्रहण कर्त्ताहं इति शेषः ॥ सोतू उपयाम करिकें गृहीत है । अ  
पने बलको धारण करि कारण यह कि इन्द्र प्रति आये मरुत इसग्रह  
के ग्रहण करनेसे सबल होते हैं ॥ ३६ ॥

अ० २१ सजोषाऽइन्द्र ॥ सजोषाऽइन्द्रसंगणो मरुद्धिः सोमं म्पिव  
वृत्रहाशूरविद्वान् ॥ जहि शत्रु रं ॥ रपमृधो नुदस्वाथा  
भयङ्कृणु हि विश्वतो नः ॥ उपयाम गृहीतो सीन्द्रो य  
त्वामरुत्व तः षते यो निरिन्द्रो यत्वामरुत्व ते ॥ ३७ ॥ +

सजोषाऽइन्द्रेति ३७ मरुत्वा इन्द्रेति ३८ ऋग्वेदस्य सोपयामस्य  
मरुत्वतीयग्रहणे एव विनियोगः । वाचः स्तोमे वाचस्तोमाश्चत्वारः  
इति कात्यायनोक्तेः २२६२४ मरुत्वा इन्द्रेति मरुत्वतीमित्याश्रत्वा  
यनोक्तेश्च ७२१ ॥ हे इन्द्र हे शूर वीर तू सोमको पीकें साहें तू कि  
प्रीति करिकें वर्तमान (संतुष्ट) मरुद्गण सहित । इस सोम पान करि  
के वृत्र दैत्य को मारैगा । विद्वान् इस अर्थको जानता है तिस  
हेतु सोमको पीकें वृत्रादिक शत्रुओंको मारि किंच मृधः युद्ध  
को निवर्तहो ॥ अथवा मृधः संग्रामसे अपनुदस्व जे मारनेसे व  
चे शत्रु तिन्होंको संग्रामसे पालनके अर्थ प्रेरण करि अर्थात् प्रा  
णदान करि । ऐसे वैरियों का नाश करिके निरंतर में हमको अभय  
करि ॥ उपयामेति व्याख्याते ॥ ३७ ॥

अ० २२ मरुत्वा रं॥ इन्द्र॥ वृषभो रणाय पिबा सोममनुष्वधम्मदाय॥  
 आसि च स्वज हरे मध्वः कुर्मिन्त्वर्धं राजा सि प्रति पत्सुताना  
 म्॥ उपयाम गृहीतो सीन्द्राय त्वामरुत्वतः एष ते यो निरि  
 न्द्राय त्वामरुत्वते॥ ३८॥†

हे इन्द्र तू सोम को पी किसलिये कि तू त्रि और संग्राम के अर्थ कारण  
 यह कि तू तिहुआ इन्द्र योद्धा होता है। कैसा है तू कि मरुद्गण संयुक्त। ज  
 लों का वर्षनेवाला। कैसा है सोम कि अनुष्वधम् पुरेडाशधानामन्यद  
 धिपय लक्षण कैसे पी सो कहते हैं कि मध्वः मधुस्वादोपेत की कल्लो  
 ल को जठर में सब ओड़ी में सींच। सोम पान में हेतु कहते हैं कि हे इन्द्र  
 तू प्रति पत्सुतानाम् प्रतिपत् प्रभृति तिथियों में अभिषुत सोम का र  
 जा ईश्वर है कहां से कि चतुर्दशी के अन्त में अभिषुतो में कारण य  
 ह कि तेरे अर्थ सब तिथियों में सोम चुवाते हैं। छन्दोगानां सबने प्रति  
 पदिद्येत इति प्रतिपद्ग्रहणम्॥ उपयामेत्यादि व्याख्याते॥ ३८॥

अ० २३ महा रं॥ इन्द्रः॥ महा रं॥ इन्द्रो नृवदा चर्षणि प्राः उत  
 द्विबर्हीः अमिनः सहोभिः॥ अस्मद्य ग्वावृधे वीर्यायो  
 रुः पुशुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत्॥ उपयाम गृहीतो सि महे  
 न्द्राय त्वेष ते यो निर्महेन्द्राय त्वामरुत्वते॥ ३९॥†

का० १००३१०० जैसे वैश्व देव ग्रह शुक्र पात्र करिके ग्रहण किया ते से  
 ही महेन्द्र ग्रह को तिस से ग्रहण करें॥ माहेन्द्री त्रिष्टुप् भरद्वाज दृष्टा  
 इन्द्र वीर कर्म के अर्थ बढ़ता है। कैसा है इन्द्र कि महा प्रभव तथापि  
 मनुष्यवत् आहूय मान आता है अथवा मनुष्यवत् सब ओड़ी से

मनुष्यों को अभीष्ट कामों से पूरण करता है जैसे राजा अमात्यादि मनुष्यों (सेवकों) को अभीष्ट कामों करि पूरण करता है तद्वत् । और द्विवर्ह वृद्धि वृद्धौ वर्हणं वर्हः- दैत्यों प्रकृति विकृति रूपी सोम याग की वृद्धि है जिसे से वोह अथवा दैत्यों उत्तम और मध्यम स्थानों का वर्हः । वृद्धः प्रभु । तथा बल करिके अमित उपमा रहित अर्थात् अपतोलित बल अथवा शतबल करिके अमित अप्रक्षिप्त अर्थात् अनुपहिसित । तथा अस्मद्वक्- हमारे अभिमुख । सो वर्धमान इन्द्र ऐसा होवे किंसा कि यज्ञ करिके विपुल बल करिके विस्तृत यजमानों करिके सत्कार (यज्ञ) किया ॥ उप- त्यासुरी अनु० हे ग्रह-महेन्द्र के अर्थ तुम्हें ॥ एष- इत्यासुरी त्रि० सादयति ॥ ३८ ॥

अ० २४ महा ३० ॥ इन्द्रः ॥ ३० ॥ महा ३० ॥ इन्द्रो यः ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमा ३० ॥ इव ॥ स्तोमैर्ब्रह्मस्यैवावृधे ॥ उपयाम गृह्णातोसि महेन्द्राय नैषते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥ ४० ॥ †

महेन्द्रो गायत्री बल दृष्टा महेन्द्र ग्रहण एव विकल्पेन विनियुक्ता ॥ जो इन्द्र वत्स- वसन शील- वा वत्सस्थानीय यजमान के स्तोम करिके वृद्धि को पाता है । कैसे है इन्द्र कि तेज करिके महान् कैसे कि वृष्टि युक्त पर्जन्य जैसे वर्षते मेघों की धारा बल करिके बहूतवृत्ता है ॥ उपयामेति द्वे व्याख्याते ॥ ४० ॥

अ० २५ उदुत्यम् ॥ उदुत्यं ज्ञात वेद सन्देवस्वहन्ति केतवः ॥ हरे विश्वाय सूर्यं स्वाहा ॥ ४१ ॥

का० १० २ ४ ५ वस्त्रवद् सोम को जुह्वा में रखकर शाला द्वारा य

+ दानायो नमो वैति ० १० २० ३० ४० ५० ६० ७० ८० ९० १००

अग्नि में चतुर्गृहीत आज्य करि कै दक्षिण संज्ञ कहो मकरै ॥ सोरीगा  
यत्री प्रस्क एव दृष्टा ॥ रश्मि तिस प्रसिद्ध सूर्य देव + को उद्धहन क  
रती हैं। कैसे सूर्य को कि जात वेद समू जात ज्ञान बाधन को किस  
लिये उद्धहन करती हैं कि विश्वाय ह्योऽसव (जगत) के देखने के अर्थ  
तस्मे स्वाहा सुहुतमस्तु ॥ ४१ ॥

चित्र देवानाम् ॥ चित्र देवाना मुद गादनी क चक्षुर्मि  
त्रस्य वरुणस्याग्नेः ॥ आप्राद्या वा पृथिवीऽऽन्तरिक्ष  
र्हं सूर्यऽऽत्मा जगतस्तस्युषश्च स्वाहा ॥ ४२ ॥

का० १००२६ चतुर्गृहीत आज्य से शाला - अग्नि में दूसरी आहु  
ति को हो में ॥ सोरी त्रिष्टुप्कुत्स दृष्टा ॥ परा पर रूपेण स्थित सूर्योऽ  
त्र स्तूयते, सूर्य चित्र (आश्चर्य) जैसे तैसे उदय हुआ वा होता है  
उदय होते ही अपने तेज करि के रात्रि जनित अन्धकार को नाश  
करता है और और ज्योतियों को देते यह आश्चर्य है। कैसा है सूर्य  
कि किरणों का आश्रय वा किरण पुंज। तथा मित्र वरुण अ  
ग्निका नेत्र वत्स काश मित्रादि उपलक्षक समस्त देव मनुष्यों  
के रूप सूर्योदय में प्रकाश करते हैं इस हेतु मित्रादिकों का चक्षु बोह  
सूर्य उदय होते दिवि भूमि और अन्तरिक्ष को पूरण करता हुआ  
आ वा अपने तेज करि पूरण करता है इति शेषः। एवमपर रूपे  
ण स्तुत्वा पर रूपेण स्तोति। कैसा है सूर्य जगतः (जङ्गम) तस्युषः  
(स्थावर) का अन्तर्यामी। यमेत मादित्ये पुरुषं वेदयन्ते सऽइन्द्रः  
स प्रजापति स्तद्व्येति श्रुतेः सूर्योऽद्वैत मने नोच्यते इति भावः

तस्मै स्वाहा सुहृतमस्तु ॥४२॥

अग्नेनय॥ सुपथा रायेऽऽस्मान्निश्चानि देवव्युनानि चि  
ह्वान्॥ युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूपिष्ठान्तेनमऽउक्ति  
न्विधेम स्वाहा॥ ४३॥

अप्यन्नः ॥ अप्यन्नोऽग्निर्वरिवस्त्रणोत्वयम्मृधः पुर  
ऽएतुप्रभिन्दन् ॥ अप्यम्बाजा जयतु बाजसातावयर्ष  
वृजयन्तु जर्ह्याणाः स्वाहा ॥४४॥

का० १००२७० आग्नाधीय अग्नि में एक बार लिये आज्य को अग्नि  
नय से होमें ॥ का० १००२८० अयंनः से दूसरी आहुति को आग्नी धी  
य में होमें ॥ द्वे ऋचौ व्याख्याते अ० ५० कं० ३६३७ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

रूपेणवः॥रूपेणवोरूपमभ्यागन्तुयोवोविश्ववेदाधि  
भजतु॥ऋतस्यपथाप्रेतचन्द्रदक्षिणाद्विस्वःपश्यव्यन्त  
रिक्षयतस्वसदस्यैः॥४५॥+

का० १००२१०० हिरण्य सहित यजमान शाला के पूर्व में खड़ा हो वंदी के  
बाहिर दक्षिण में अवस्थित दक्षिण गोकुल अभिमन्त्रण करे ॥ रूप  
लेत्यादि दक्षिण रित्यन्तं महीधर मते नष्ट रूपानुष्टुप् । कात्यायने-  
पिचतुर्णी दक्षिण प्रथमा प्रा-हृ० द्वितीयाया-ज० इत्यादिचतुर्णी  
मन्त्राणां छन्दो हलायुधेन व्याख्यातः ॥ पूर्वं पशवः स्वदानमसहमा  
नारूपान्तराणि जगृहुः देवाः स्वैरूपैस्तानुपागतास्ततस्ते स्वैरूपैराज  
गुरिति शत० ४३४०१४० मन्त्रस्य निदानम् ॥ हे दक्षिणारूपा गौ  
रूप (मूर्ति) करिके तुम्हारे रूपका में आया हूँ इस हेतु तुम भी आओ ।

+ रू-तु।२५०।ऋ-णाः।६०।वि-मू।७०।य-स्यैः।त्रि०॥४५॥

+ ब्रह्मवैवर्तपुराण अ० ४० ३४ १३

सबही अपने स्वरूप को प्राप्त होओ इति भावः॥ किंचतुथः ब्रह्मरूपः  
प्रजापति तु मे यथा योग्य ऋत्विजों के अर्थ देवै + कैसा है तुथः कि  
विश्ववेदा (सर्वज्ञ) किंचतुम यह जानकर यज्ञ के मार्ग करि कैचलो  
कैसी हो तुम कि चन्द्र दक्षिणः चन्द्र सुवर्ण यजमान के हाथ में स्थि  
त दूसरी दक्षिण जिन्हों की वोह चन्द्र द्वितीय दक्षिण ॥ का० १०२  
१७० सदमें जावें विस्वरितिया - अ० ॥ हे दक्षिण में स्वर्ग (देवयान  
मार्ग) को देखता हूं तुम सोमयान भूता करि कै इति भावः ॥ का०  
१०२ १८० यजमान ऋत्विजों को देखे यतस्व सदस्यैरितिया -  
गा० ॥ हे दक्षिणे तू यत्न करि जैसे ऋत्विजों के पूरण करने से न घ  
टे इति शेषः तैसे तू यत्न करना योग्य है जैसे ऋत्विज धन से पू  
रण करि कै तू अधिक हो इति भावः ॥ ४५ ॥

ब्राह्मणमद्य ॥ विदेयमपि तृमन्तम्ये तृमत्यमृषिमा र्षे -  
यठ सुधातु दक्षिणम् ॥ अस्मद्राता देवत्रा गच्छत प्रदा  
तारुमा विशत ॥ ४६ ॥ +

का० १०२ १८५ ब्राह्मणमद्य इससे स्वस्थान स्थित आग्नीध्र (ऋ  
त्विज) प्रतियजमान जावें ॥ लिंगोक्त देवतान्यष्टौ ब्राह्मणमद्येत्या  
षी वृ० ब्राह्मण देवत्यम् में ने आज के दिन में ऐसे ब्राह्मण को पाया  
कैसे को कि पितृमन्तम् प्रशस्त है पिता जिसका तिसको नहीं कोई  
विना पिता के उत्पन्न होता परन्तु यहां प्रशस्त के अर्थ में मतुप् अ  
र्थात् विशिष्ट जन को उत्पन्न को। तथापै तृमत्यम् पिता महादिक ज  
गन्मान्य है जिस के तिसे। अथवा सर्वथा जिसके पिता महादिक

श्रोत्री हैं सो पैतृमत्य। तथा ऋषिम् मंत्रों की व्याख्या करने वाले को। तथा आर्षेयम् ऋषियों में विख्यात। जाति करके बड़ा अर्थात् ज्ञान करि सुज्ञान को। तथा सुधातु दक्षिणम् सुवर्ण है दक्षिण है जिसकी तिसको॥ का० १००२२० वैठिके आग्नीध्र के अर्घ्यदक्षिणा देवै॥ अस्मद्राता आर्षी गा० दक्षिणा दे०। हे दक्षिणा तुम हमारी दी हुई देवताओं प्रति जाओ। तिन्होंकी तृप्ति करिके फिरिय ज फल का साधन करती यजमान प्रति प्रवेश करौ॥ ४६॥

अग्नयेत्वा॥ अग्नयेत्वा मह्यम्बरुणो ददातु सोमृतत्वमंशीयायुर्हीत्रं अधिमयो मह्यम्प्रतिग्रहीत्रे रुद्रायत्वा मह्यम्बरुणो ददातु सोमृतत्वमंशीय प्राणो दात्रं अधिचयो मह्यम्प्रतिग्रहीत्रे बृहस्पतयेत्वा मह्यम्बरुणो ददातु सोमृतत्वमंशीयत्वग्दात्रं अधिमयो मह्यम्प्रतिग्रहीत्रे रुद्रायत्वा मह्यम्बरुणो ददातु सोमृतत्वमंशीय हयो दात्रं अधिचयो मह्यम्प्रतिग्रहीत्रे॥ ४७॥

का० १००२२० अग्नयेत्वा सै अश्वर्यु प्रति प्रस्थातार हिरण्य प्रति ग्रहण करें॥ आर्षी त्रि० हिरण्य दे०। हे हिरण्य वरुण मे अग्नि रूपा यज्ञ मेरे अर्घ्य तुम्हें दिया। पहिले वरुण ने अग्न्या दिकों के अर्घ्य सुवर्ण दि दिया इस हेतु तिन देवताओं के आदेश करि प्रतिग्रहण करने वाला विप्र नाश को नहीं प्राप्त होता। इस विधि से ग्रहण करने वाला सो में अमृतत्व (आरोग्यता) को प्राप्त हो उं हे हिरण्य तू दाता की आयु का जीवन हो मुरु प्रतिग्रह करने वाले का सुख हो। दाता आ



युष्मानहोवै में सुखीहोंउं इतिभावः॥का०१००२०२६० रुद्रायत्वेतिगो  
 का प्रति ग्रह करै॥यजुः गोदे० हेगौ रुद्र रूप मेरेलिये वरुणनेतुमै  
 दिया सोमें अमृतत्व को प्राप्त होंउं हे गौतू देनेवाले यजमानके अ  
 र्थ प्राण हो मुरु प्रति ग्रहीता के अर्थवय (अन्नवापशु)हो॥अर्थात्  
 दुग्ध दध्यादिरूपकरि अन्न और सन्तति द्वारा पशुहो॥का०१००२०  
 ३०० बृहस्पतयेत्वासे वस्त्र ग्रहण करै॥यजुः वासो देव० हेवस्त्र बृ  
 हस्पति रूप मेरेअर्थ वरुण नेतुमै दिया सोमें अमृतत्व को प्राप्  
 त होंउ और तूदाता के अर्थत्वक् इन्दी का सुखकारी हो और मुरु  
 प्रति ग्रहीता के अर्थ सुखहो॥का०१००२०३१० यमायत्वासे अश्व ग्रह  
 ण करै॥यजुः अश्वदेव० हे अश्व यमरूप मेरेलिये तुमै वरुणनेदि  
 या सो यम रूप में प्रतिग्रहीता अमृतत्व को प्राप्तहोंउं हेअश्व तूदाता  
 के अर्थ अश्व हो मुरु प्रतिग्रहीता के अन्न वा सन्तति द्वारा पशुका  
 दाताहो॥४७॥

कोदात्॥कोदात्कस्मा० अदात्कामोदात्कामायादात्॥

कामोदाता कामः प्रतिग्रहीता कामैतै॥४८॥

इतिसर्गहितायां यश्च विठं शोनुवाकः २५

इतिश्री शुक्लयजुषे माध्यदिनीशाखीयायां वाजस

नेयसर्गहितायां दीर्घपाठे सप्तमोऽध्यायः ७

का०१००२०३२० हिरण्यादिद्रव्यसै अन्यमन्योदनतिलादिप्रतिग्रह  
 करै॥प्राजापत्या त्रिष्टुप् कामदेवत्यम्। दातुर्दानाभिमानाभावाय  
 स्वस्यच प्रतिग्रहजदोषाभावायचदेहेन्द्रियात्म संघाते संधाने

कामं विनि नक्ति। किस मनुष्य ने दिया किस मनुष्य के अर्थ दिया।  
प्रश्नद्वयोत्तरमाह। कामने दिया काम के ही अर्थ दिया न तू दातान  
में प्रति गृहीता तेरे कामाभि मानी देवताने मेरे कामाभि मानी देव  
ता के अर्थ दिया एवं च काम एव दाता काम एव प्रति गृहीतानान्यः  
हे काम तेरे दातृ प्रति गृहीतृ होने से यह द्रव्य तेरा है ॥४८॥

इति श्रीगिरिधरभाष्ये पञ्चविंशोऽनुवाकः २५  
श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दनिवारयन्  
पुमार्याश्चतुरो देयाद्यज्ञपुरुषः सनातनः १

श्री मच्छुक्त यजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनी शाय्येत व्याघ्रपादा-  
न्वय विश्वामित्रपुराधिपति श्री मञ्जयकिशोरदेववर्माजगै  
किमण्य नृपति गिरि प्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधर  
भाष्ये उपांश्वादि दानान्त वर्णनेनाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

हरिः ओम्

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्बहुरूपकम्

स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्म रूप परं स्तुमः १

अ०१ उपयाम गृहीतोसि ॥ उपयाम गृहीतो स्यादित्येभ्यस्त्वा ॥

विष्णोऽ उरुगायैष ते सोमस्तर्हिरक्षस्व मात्वा दभन् ॥१॥

ओं नमो यज्ञवल्काय

गिरि प्रसाद संज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके ॥

गृहगृहान्निमित्तान्तोष्टमोऽध्यायः प्रकथ्यते ८

सात वै अध्याय में उपांशु ग्रहसँ आदित्ये सवन द्वयगतदक्षिणादय  
नान्तमन्त्र कहे आठवेमें तृतीयसवनगत आदित्य ग्रहादिमन्त्र क  
हतेहैं॥ तत्र का० ४०४१५० प्रतिप्रस्थाता दो देवताओं सहित होम के  
अर्थ आदित्य पात्र करिके द्रोण कलश सँ सोम को ग्रहण करै॥  
उपयाम गृहीतोसीतिया-अ० सोम देवत्यम् । हे सोम तू मुझ करिके  
उपयाम पात्र सँ गृहीत है॥ का० ४०४२०० दो देवताओं के होम कि  
ये पीछे हुत शेष को आदित्य स्थाली में डालै॥ आदित्येभ्यस्त्वा-  
दै०-पं० सोम देव० । हे सोम आदित्यों के अर्थ तुम सँ चिताहँ इति  
शेषः॥ का० ४०४२१० संस्त्रव का आसिंचन करिके तिस आदि  
त्य पात्र सँ स्थाली को ढकै॥ विष्णावेत्वा सा-वृ० विष्णु दै० । हे विष्णो  
(यज्ञ पुरुष) हे उरुगाय (बहुतों करि गाये गये) यह सोम तेरा तेरे  
अर्पण है तिस सोम को रक्षा कर सोम के रक्षा करने में तुम रक्षस  
लोग मत हिंसा करै इति शेषः॥ १॥

कदाचन ॥ स्तरीरसिनेन्द्रसश्चसिदाशुषे॥ उपोपेन्नु  
मघवुन्भूयः इन्नु ते दानन्देवस्य पृच्यतः आदित्ये  
भ्यस्त्वा॥ २॥ + क-ते। अ०। आ-स्त्वा। इ०॥ २॥

का० १०४४० होम शेष संस्त्रव सँ आदित्य ग्रह को ग्रहण करै।  
आदित्य देवत्ये बृहत्यो यजुरन्ते आदित्येभ्येति यजुः । सा बृहती  
बृहदुपस्थान मध्ये ३३४० इन्द्र देवत्या प्रथमोक्ता व्याख्याता च  
इह त्वादित्य देवत्या यजुरन्ता चेति विशेषः॥ हे इन्द्र कभी हिंस  
क नहीं है किन्तु हवि देने वाले यजमान का हवि स्वीकार करता है

कों कियजमानके अत्यन्त समीप है हे धनवान् इन्द्र फिर भी तेरे हे  
ने योग्य हवि तुम्हें करिके संवन्ध करिये है अर्थात् यजमान करिके  
दिया हवि तुम्हें करिके स्वीकार करिये है ॥ आदित्येभ्यस्त्वा २३४  
यजुः हे ग्रह आदित्यों के अर्थ तुम्हें ग्रहण करता हूँ इति शेषः  
यहां इन्द्र नाम करिके आदित्य ही स्तुति करिये है ॥ २॥

कदाचन ॥ प्रयुच्छस्युभे निपासि जन्मनी ॥ तुरीयादि  
त्यसर्वनन्त इन्द्रियमातं स्यावमृतं दिव्यादित्येभ्य  
स्त्वा ॥ ३॥ †

का० १००४५ धारा से तोड़ कर पूत भूत में से अपने समीप में ले  
ते हैं ही फिर आदित्य ग्रह को ग्रहण करे ॥ हे आदित्य तू किसी का  
ल में भी प्रमादित नहीं है । उदय तप पाक प्रकाश से प्राणि यों  
का अनुग्रह करता है कभी आलस्य नहीं करता इति भावः ॥ अ  
थवा कदाचनेति पदत्रय चकारोप्यर्थे कदापि अपने कर्म में नहीं  
प्रमाद करता है । किंच दोनों । मनुष्य । जन्मनी । देवा संवधिनी का  
पालन करता है । किंच तेरा तुरीय चौथा माया तीत शुद्ध सवन अ  
पने कार्य से जगत की प्रेरणा करता जगत्प्रवर्तक अमृत अविना  
श्वर विज्ञान आनन्द स्वभाव जो इन्द्रिय वीर्य सोद्युलोकम  
ण्डलान्तर में अभिमुख्य करि स्थित तदुक्तम् पादोऽस्य विश्वाभू  
ताति ३१३ । एवमादित्यः परापररूपेण स्यामृचिस्तुतः ॥ यद्वा स्या  
अचोर्थान्तरम् प्रशब्दो निषेधे च न शब्दोऽप्यर्थे हे आदित्य तू क  
भी नहीं प्रमाद करता है किंतु दोनों वर्तमान भाविनी जन्मों में

क्षाकरताहै। तृतीयमित्यर्थे व्यत्ययेन तुरीयशब्दः प्रयुक्तः हे आदित्य तेरा जो तृतीय सवन में इन्द्रियों की वृद्धि करने वाला अमृत समान हवि सब ओड़ीसै स्थित ॥ हे आदित्य ग्रह आदित्यों के अर्थ तुम्हें ग्रहण करता हूँ इति शेषः ॥३॥

यज्ञो देवानाम् ॥ यज्ञो देवानाम्प्रत्येतिसुम्नमादित्या सो भवता मृडयन्तः ॥ आवोर्वोची सुमतिर्विवृत्यादृष्टं होश्चिद्यावरिवोविन्नरासदादित्येभ्यस्त्वा ॥४॥†

का० १००४६० आदित्य ग्रह को दधिसे मिश्रित करे ॥ आदित्य देवत्या यजुरन्ता त्रिष्टुप् कुत्सदृष्टा आदित्यभ्येस्त्वेतियजुः। यज्ञ देवताओं (आदित्यों) के सुख करने प्रति आता है। हे आदित्य ओ तुम हमारे सुख करने वाले हो ओ। किंच जो तुम्हारी भक्तानुग्रहपराशोभन वृद्धि सो हमारे अभिमुखी वर्ते। किंच अंहो श्वित् (हनन शील पाप कारी की भी जो सुमति वरिवोविन्नरा (अत्यन्त धन की लाभ करने वाली) हो सो सुमति हमारे अभिमुखी वर्ते इति संबंधः। हे सोम आदित्य देवताओं के अर्थ तुम्हें दधिसे मिश्रित करता हूँ इति शेषः ॥४॥

विवस्वन्नादित्य ॥ विवस्वन्नादित्येषते सोमपीयस्तस्मिन्मत्स्व ॥ अदस्मै नरोवचसेदधातनुयदाशीर्हादम्यती वाममंश्रुतः ॥ पुमान्पुत्रो जायते विन्दते वस्वधा विन्वाहा रूपं रंधते गृहे ॥५॥

का० १००४७० पाषाण करि दधि और सोम को मिलावे ॥ आदि

त्य देवत्यं यजुः॥ तमों का नाश करने वाला वा विशिष्ट वसुधनवाला वि  
वस्वान् तिसका संबोधनवि वस्वन् हे विवस्वन् हे आदित्य यह पात्र  
में स्थित तेरे पीने योग्य सोम तिसपीने योग्य सोमसे तू तृप्ति करि का०  
१०५४ अदस्मै से पत्नी पूतभृत को देरैवे। आशीर्देवत्या जगती नर दे  
वत्या वा †॥ पत्नी वदति। हे नरः॥ नेतार ऋत्विग्य जमानो आशि  
षा के देने वाले तुम मेरे आशीष वचन में श्रद्धा (आस्तिक्यबुद्धि)  
करो मेरा कहा हुआ आशीर्वचन तुम लोगों की श्रद्धा करि धारण  
करने से तेसाही होगा इतिभावः। कोन बोह आशीर्वचन उसे क  
हती हूं जो दम्पती (जायापत्नी पत्नी यजमान) संभजनीय यज्ञ फ  
ल को प्राप्त हो। किंच पुमान् पुंस्त्वधर्म संपन्न पुत्र होवै किंच वोह  
पुत्र वसुधन को पावै निरन्तर में धन पाने पर सर्वदा पापरहित  
अपने घर में बँटे। आशिषा के देने वाले दम्पती यज्ञ फल को प्रा  
प्त हों तिन्हों के पुत्र हो और सोधन का लाभ करि के पापरहित अ  
पने घर में बँटे इस आशीर्वचन में श्रद्धा करो इति सर्वार्थः॥ ५॥

† इति महीधरः

अ० २ वाममद्य॥ सवितर्वा ममुष्वोदिवेदिवेवा ममस्मभ्यं ठं सा  
वीः॥ वामस्य हि क्षयस्य देवभूरै र्याधिया वामभाजः स्याम॥ ६॥

का० १०५१३ सवनीय पुरोडश इडाभक्षण सवनीय संबधिकर्म  
समाप्त करि उपांश्वन्त यमि से अन्यतर सावित्र को ग्रहण करै।  
कण्डिका द्वायात्मको मन्त्रः प्रथमा त्रिष्टुप् बृहस्पति पुत्रो भरद्वा  
ज दृष्टा द्वितीया यजुषी द्वे सवितृ देवते॥ हे सवितः सब के प्रेरक  
देवता आज के दिन हमारे लिये वामं सावीः वननीय यज्ञ फल-

को प्रेरि अर्थात् दे। और श्वः भी अच्छे प्रकार निरंतर दिन में वामंसा  
वीः। तिस के ऊपर दिन दिन में हमारे अर्थ वामंसावीः। जिस हेतु इ  
स श्रद्धा युक्त बुद्धि से हम यज्ञ के अनुष्ठान करेंगे। किसलिये कि  
वननीय विस्तीर्ण बहु कालीन स्वर्गनिवास की सिद्धि के अर्थ। य  
द्वातरार्थस्यायमर्थः हे देव वननीय धनपूर्ण निवास का दाता हो इ  
ति शेषः इस धियाऽधीरिति कर्मनामनिघं ०२१० सोमाख्य कर्म  
से हम वामभाजः स्नामः अमिलषित भागी होंगे ॥ ६ ॥

उपयाम गृहीतोसि ॥ सावित्रोसि चनोधाश्चनोधाऽअसि  
चनो मयि धेहि ॥ जिन्वयज्ञं जिन्वयज्ञं पतिम्भगाय  
देवायत्वासवित्रे ॥ ७ ॥

हे सोम तू उपयाम करि गृहीत है हे ग्रह तू सवित देवता के हे चनोधाः  
अन्न का धारण करने वाला जो कि तू अत्यन्त करि चनोधा है इस हे  
तु अन्न मेरे स्थापन करि किंच यज्ञ को प्रीति करि और यज्ञ पति-  
यजमान को तृप्त करि ऐश्वर्यादि गुण युक्त सवित्रे समस्त प्राणियों  
के प्रसवादि करने वाले देवता के अर्थ तुम्हें ग्रहण करता हूँ इति  
शेषः ॥ भगका अर्थ ऐश्वर्य, वीर्य, यज्ञ, श्री, ज्ञान, वैराग्य, इ  
न्हों का समुदाय ॥ ७ ॥

अ. ३ उपयाम गृहीतोसि सुशर्मासि ॥ सुप्रतिष्ठानो बृहदुक्षा  
यनमः ॥ विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः एषते योनिर्विश्वेभ्य  
स्त्वा देवेभ्यः ॥ ८ ॥ † उभ्यः ॥ अ. १ ए-भ्यः ॥ ६० ॥

का. १०. ६. २ विन भक्षण किये सावित्र ग्रह यात्र करि कैपूत भृत में से

अध्वर्यु महावैश्वदेवग्रह का ग्रहण करे ॥ वैश्वदेवं यजुः ॥ हे वैश्वदेव ग्रह  
तू उपयाम करिके ग्रहण किया है जिस कारण सुशर्मा शोभन शर्म वा  
सुरव का आश्रय है। तथा सुप्रतिष्ठानः पात्र में स्थिति है जिसकी तैसा  
है। अर्थात् दोनो विशेषण करिके प्राणरूप है +। ग्रह को अन्नरूप औ  
र अन्न को प्राण का हेतु होने से ग्रह को प्राणत्व है। जो कि ऐसा है तिस  
कारण वह दुक्ष वडे उक्षा सेक्ता अर्थात् जगत के उत्पन्न करने वाले प्र  
जापति + के अर्थनमः ५ अन्न होने योग्य है इति शेषः ॥ विश्वेभ्यो देवेभ्यो  
ऽर्थायत्वा गृह्णामि ॥ सादयति। एष ते या-ज० व्याख्यातन् ॥ ८ ॥

अ० ४

उपयाम गृहीतां सि ॥ वहस्पति सुतस्य देवसोमतः इन्दोरि  
न्द्रियावतः पत्नीवतो ग्रहा रं ॥ ऋध्यासम् ॥ अहम्परस्ता  
दहमवस्ताद्यदन्तरिक्षन्तदुमेपिताभूत् ॥ अहर्ठसूयं  
मुभयतो ददर्श हन्देवानां म्परमद्गुहायत् ॥ ४ ॥ +

का० १००६१६ उपांशु अन्तर्याम दोनों में से किसी एक करि प्रतिप्रस्थ  
ता पत्नीवत ग्रह को ग्रहण करे। ब्राह्मीगा० सोमदेवतम् ॥ हे दीप्यमा  
न हे सोम तू उपयाम पात्र करिके गृहीत है इस हेतु तेरे संबंधी उपांशु  
प्रभृति अन्य ग्रहों को में ऋध्यासम् भरता हूँ। कैसे हैं तेरे कि वहस्प  
ति सुतस्य बृहतः- वडे यज्ञकर्म के पति- यजमान के अभिषुत अ  
थवा वहस्पतियों ब्राह्मणों ऋत्विजों के अभिषुत। तथा इन्दोः उन्दी  
लेदे- लेदन रूप अर्थात् रस रूप। तथा वीर्यवान्। तथा पत्नी संयुक्त ॥  
का० १००६१७ प्रचरणी केशिष्ठ आज्य करि पत्नीवत ग्रह को मिश्रि  
त करे। प्रजापति रूपात्मदेवत्या त्रिष्टुप् अन्न मंत्र द्रष्टा स्वस्य सर्वगत

१ प्रजापति सुशर्मा सुप्रतिष्ठानः इति शत० ४.४.१२३  
+ प्रजापति वैश्वदेव दुक्ष सेक्ता इति शत० ४.४.१२३  
५ नमः निधे ० २१३



परमात्मरूपमभिप्रेत्य वदति। में परमात्मरूपहो सुलोकादिक औरत  
या में भूलोकादिक में ठैराहूं इति शेषः जो मध्यवर्ती अर्न्तरिक्षलोक  
रूपहै सो मेरी देहको धारण करनेवाला पितृवत्पालकहै। में परमात्म  
रूपहो ऊपर और नीचे में स्थित होकर सूर्य को देखताहूं। इन्द्रादिक  
देवताओं के जो अत्यन्त गोप्य हृदय में हैं सो में हूं ॥८॥

अग्ना ३॥ १ इ पत्नीवन् ।

अग्ना ३॥ १ इ पत्नीवन् ॥ सजूर्देवेन त्वष्टा सोमं पिब स्वाहा  
प्रजापतिर्वृषांसिरेतो धारेतो मयि धेहि प्रजापते स्तेवृ  
षणोरेतो धसोरेतो धामंशीय ॥१०॥ +

का० १०० ६ १४ पत्नीवत ग्रह को अग्नि के उत्तर भाग में हो में  
अग्नि देवत्यं यजुः ॥ हे अग्ने हं पत्नीयुक्त त्वष्टा देवता से समा  
न प्रीति होके तू सोम को पी स्वाहा सुहृतमस्तु ॥ का० १०० ७ ३  
नेष्टा पश्चिम द्वार से पत्नी को सद में प्रवेश कराय उद्गाता के उत्तर  
स्थित पत्नी प्रति (उद्गातारं पश्य) उद्गाता को देखिय यह कहै तब वो  
ह पत्नी प्रजापतिर्वृषासीति मंत्र पढ़ि कर उद्गाता को देखे और  
धीनि० प्रजापतिदे० ॥ हे उद्गातः प्रजा का पालक तू सेक्ता है और  
र वीर्य का धारण करानेवाला है। ऐसा तू वीर्य को मेरे स्थापन  
करि ततः वीर्य के सींचने वाले वीर्य के धारण कराने वाले  
प्रजापति तेरे अनुग्रह से प्रजोत्पादन समर्थ पुत्र की प्राप्ति हो ॥ १०  
अ० ५ उपयाम गृहीतोसि ॥ हरिरसि हारि योजनो हरि  
भ्यान्त्वा ॥ हय्यैर्ध्यानास्थ सुहसो मा इन्द्रा  
य ॥ ११ ॥ +

का० १००८१० आग्रयण स्थालीस्थ सोम से हारियोजन ग्रह का  
 अध्वर्यु ग्रहण करे ॥ उप० हरिरसी त्यायी उ० ऋक्सा मदेव० ॥ हे  
 ग्रहतू हरितवर्ण है ॥ और उपयाम करि गृहीत है कैसा है तू कि हारियो  
 जन हरी इन्द्र के घोड़े तिन्हो कायोजन करनेवाला इन्द्र तिसका संबंधी हा  
 रियो जन तिस तुम्हे हरिभ्यां ऋक्सा मंत्रो के अर्थ ग्रहण करता हूँ  
 ॥ का० १००८२० हारियोज में भृष्टयवों को बपे ॥ हर्योर्धना या-जन्धा  
 नादेव० ॥ सोम सहित भृष्ट यवों तुम इन्द्र के हरित वर्ण अश्वों के हो  
 अर्थात् इन्द्राश्व संबंधी तुम हो ॥ ११ ॥

यस्ते अश्वसनिर्भक्षो यो गोसनिस्तस्य त इष्टयजुषस्तु त  
 स्तोमस्य स स्तोक्थस्योपहृतस्योपहृतो भक्षयामि ॥ १२

का० १००८५० सब ऋत्विज भृष्टयवों को ले यस्ते मंत्र से प्राण भक्षण  
 करि उत्तर वेदी में डालें भक्षद्रव्य दैवत्यं यजुः ॥ हे धाना सहित सो  
 म भक्षद्रव्य जो तेरा भक्षण अश्वों का दाता और जो तेरा भक्षण गौओं  
 का दाता तिस तेसे तेरे भक्षण को जानिकर भक्षण करता हूँ। कै से  
 तेरे कि इष्टयजुषः इष्टयजुका। तथा स्तुत सोमस्य उद्गाताओं क  
 रिस्तुतिकिया तिसका। तथा शस्तोक्थस्य होताओं करि शस्त उ  
 कथ शस्त्र जिसके तिसका। तथा उपहृतस्य जानेहुए का अर्थात्  
 तिसमें ये हैं ॥ १२ ॥

देवकृतस्यैनसः ॥ देवकृतस्यैनसो वयजनमसि मनुष्यकृ  
 तस्यैनसो वयजनमसि पितृकृतस्यैनसो वयजनमस्यात्  
 कृतस्यैनसो वयजनमस्यैनसः एनसो वयजनमसि ॥ यच्च।

हरिः सोमो हरिः  
 हरिः सोमो हरिः  
 हरिः सोमो हरिः

१००८१०  
 १००८२०  
 १००८५०

हमेनो विद्वांश्च कारयच्चा विद्वांसस्य सर्वं स्येन सो वयं ज  
नमसि ॥१३॥†

का० १००६८० छेमन्त्रों से छेयूप शकलों का आहवनीय में आधान  
करै। आग्नियानिषट् १३४ आसुरी अ० २ आसुरी उ० ५ आसुरी वृ०  
६ आर्षी वृ० ॥ हे शकल तू देवविषय में किये यजन के अभावादिल  
क्षण पाप का नाश कहै ॥ मनुष्यों में किये द्रोह निन्दादि पाप का नाश  
कहै ॥ पितरों में श्राद्धाकरण पाप का नाश कहै ॥ आत्मविषय किये  
आत्मनिन्दादि पाप का नाश कहै ॥ जितने क पाप हैं तितनों का नाश  
कहै ॥ किंच ज्ञान पूर्वक अर्थात् जान बूझ कर जो कुछ पाप हमने कि  
या और विनजाने जो हमने किया तिन सब जाने अनजाने का नाश  
कहै ॥१३॥

संवर्चसा ॥ पर्यसा सन्तनूभि रगन्महिमनं सा सर्वं शिवेन ॥

त्वष्टा सुदक्षो विदधातु रायो नु मा र्ष्टु तन्वो यद्विलिखम् ॥१४॥

का० १००८०० चात्वाल से निकट में होत्रादि क्रम पूर्वक आगग्रदश-  
चमस स्थापन किये थे तिनहों को जल से पूर्ण करि तिनहों पर आर्द्र द  
भों को रखयथा क्रम स्पर्श करै ॥ त्वाष्ट्री त्रिष्टुप् व्याख्यातापि २०२४  
व्याख्यायते ॥ ब्रह्म तेज करि हम संगत होते हैं । क्षीरादिरस क  
रि० अनुष्ठान सामर्थ्य शरीर वयवों करि० समीचीन कर्म श्रद्धा  
युक्त मन सा करि० किंच शोभन दानी त्वष्टा देव धन स्थापन करै  
हमारे शरीर के जो न्यून अङ्ग तिनहों के न्यूनत्व का परिहार करि अ  
नुकूलत्व करि कै शोधै ॥१४॥

† हे सि। अ० म-सि। इ। पि-सि। उ० आ-सि। ऋ० ए-सि। लृ० य-सि। आ० ॥१३॥

अथसमिष्टयजुर्मन्त्राजच्यन्ते  
अ० ६ समिन्द्र ॥ एणो मनसानेषि गोभिः सर्गं सूरिभिर्मघव  
न्स थं स्वस्त्या ॥ संब्रह्मण देवकृतं यदस्ति सन्देवानां थं सु  
मन्तौ यज्ञिया नां थं स्वाहा ॥ १५ ॥

का० १०००११ समिन्द्रणः इन्ननवध मन्त्रों की समिष्टयजुः संज्ञा है  
तिन्हों से नव आहुति होमें : तत्राद्यः ॥ विश्व देवत्या त्रिष्टुप् अत्रि दृष्टा ॥  
हेमघवनू धनवनू हे इन्द्र अनुग्रह युक्त मनसा करि हमें तू संने  
षि भले प्रकार योजन करि । वाणी वा पशु ओं करि संनेषि । सूरि  
भिः होत्रादि पण्डितों करि संनेषि और क्षेम करि संनेषि । ब्राह्म  
णार्थ ज्ञान सहित वेद करि । देवकृतं देवताओं के अर्थ किये वादे  
स्वे यज्ञारख्य कर्म तिस करि । तथा यज्ञ संबंधी देवताओं की अनुग्र  
ह बुद्धि में संयोजयसि । जो तू हमको एवं मन आदि करि संयोजय  
सि तस्मै स्वाहा एतद्विः सुहृतमस्तु ॥ १५ ॥

सम्बर्चसा ॥ पयसा सन्तनूभिरगन्महि मनसा सर्गं शिवेन  
त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रयो नुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥ १६ ॥  
अथ द्वितीयः त्वाष्ट्री त्रिष्टुप् प्रजापति दृष्टा व्याख्याता १४ ॥ १६ ॥  
धाता एतिः ॥ संबिते दक्षुषन्ताम्यजापतिर्निधिपादेवो  
अग्निः ॥ त्वष्टा विष्णुः प्रजया सर्गं रराणा यजमानाय द्रवि  
णन्दधातु स्वाहा ॥ १७ ॥

तृतीयः धातु सवितु प्रजापति देवाग्नि त्वष्टा विष्णु देवत्य त्रिष्टुप् ।  
धाता सविता प्रजापति अग्नि त्वष्टा विष्णु एते षट् देवता इह सह

मारे समिष्ट यजु रूप हवि को सेवन करें। कैसे हैं किधातादानशील  
प्रजापति महा शङ्ख पयादिनिधियों का पालक। अग्निदीप्यमान।  
किंच वे इतने देवता यजमान की संततिके साथ अच्छे प्रकार रम  
ए करते यजमान के अर्थ धन देवें। स्वाहा एतेभ्यः सुहुतमस्तु ॥१७॥

सुगावः ॥ सुगावो देवाः सर्वना ॥ अकर्म्यः ॥ अजग्मे दर्श  
वर्न जुषाणाः ॥ भर्माणा बहमाना हवींश्च व्यस्मिधतवसवो  
वस्तुनि स्वाहा ॥१८॥

चतुर्थः ॥ देवदेवत्या त्रिष्टुप्। हे देवताओं तुम इस यज्ञ को सेवन कते  
आए तिन तुम्हारे स्थानों को हम सुगम कर्ते हुए। किंच हे निवास के  
हे तु देवताओं हममें तुम धनों को स्थापन करें। कैसे हो तुम कि य  
ज्ञ की समाप्ति में हवियों को भरते जे रथी हैं ते रथों पर रखते रथ ही  
न कंधों पर रखते अथवा पुष्ट हो रथादिकों करि चलते हो तिन तु  
म्हारे अर्थ स्वाहा सुहुतमस्तु ॥१९॥

पाशं ॥ आवहः ॥ पाशं ॥ आवहः ॥ उशतो देवदेवांस्तमन्वे र  
यस्वे ॥ अग्ने सधस्ये ॥ जक्षिवांश्च संः पपिवांश्च संश्च विश्वे  
सुधर्मश्च स्वरातिष्ठ तानु स्वाहा ॥२०॥

पञ्चमः ॥ आग्नेयी त्रिष्टुप् इदानीं देवान् विसृजामि। हे अग्ने हे दी  
प्यमान हवियों की कामना करने वाले जिन देवताओं को तुमने बुला  
या है तिन देवताओं को अपने निवास स्थान प्रति चलाओं। क्या  
कहि कर चलाओं सो कहिते हैं कि देवताओं तुम सब सवनीय पुरो  
डाशों को भोजन करि चुके। तथा सोम पी चुके हो इस हेतु यज्ञ की

समाप्ति में असुं- हिरण्य गर्भ प्राण लक्षण वायुमण्डल वास्वः-  
द्युलोक को आश्रय करौ अर्थात् जिन जिनके जहां घर हैं तिन ति-  
न को आश्रय करौ स्वाहा सुहृत मस्तु हविः ॥ १८ ॥

ब्रूयर्ह हित्वा प्रयति यज्ञेऽस्मिन्नग्ने होतारुमवृणीम  
हीह ॥ ऋध गयाऽऋध गुताशमिष्ठाः प्रजानन्यज्ञ  
मुपयाहि विद्वान्त्वाहा ॥ २० ॥

षष्ठः ॥ आग्नेयी त्रिष्टुप् इदानीमग्निं विसृजति ॥ हे अग्ने जि  
स कारण पाय इस दिन वास्थान में तू यज्ञ में वर्तमान हुआ देवता  
ओं के होता वा होम निष्पादक को हम वरण करते हुए तिस कार  
ण वरण किया तू समृद्धि जैसे हो तैसे करता हुआ अथवा यज्ञ  
करता हुआ । और यज्ञ प्रायश्चित्त वा विघ्न शान्ति करता हुआ सो  
तू इस यज्ञ की समाप्ति को जानकर अपने घर को जा कैसा है तू कि  
विद्वान् (पण्डित) अपने अधिकार को जानता है स्वाहा तुभ्यं सु  
हृतमस्तु ॥ २० ॥

देवा गातुविदः ॥ देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित ॥  
मनसस्यतऽदुमन्दैव यज्ञं स्वाहा ब्रानेधाः ॥ २१ ॥

सप्तमः ॥ वातदेवत्या विराट् मनसस्यतिदृष्टा ॥ व्याख्यातापि २२  
उच्यते । नानाविधि वेदशब्दों की प्रतिपाद्य यज्ञतिस के जानने वाले हे  
देवता ओहमारे यज्ञ प्रवृत्त हुआ यह जान यज्ञ को प्राप्त हुए अथ  
वा यज्ञ समाप्ति को मानि यज्ञ से तुष्ट हुए अपने मार्ग को जाओ ।  
एवं देवा तुक्त्वा प्रजापतिमाह । हे मनसस्यते- हमारे मन को यज्ञक

रने के अर्थ प्रेरणे वाले पालक परमेश्वर हे देव इस अनुष्ठान किये  
यज्ञ को स्वाहा जेरे हाथ में रखता हूं और तू वायु रूप देव में स्थाप  
न करि ॥ २१ ॥

यज्ञं यज्ञम् ॥ यज्ञं यज्ञं दृष्ट्वा यज्ञं पतिं दृष्ट्वा योनिं दृष्ट्वा  
स्वाहा ॥ एष ते यज्ञो यज्ञं पते सह सूक्तवाकः सर्वं वीर  
स्तं जुषस्व स्वाहा ॥ २२ ॥ † य-हा। अ० १-हा। इ० ॥ २२ ॥

अष्टमः ॥ यज्ञं दैवतं यजुः ॥ यज्ञं विसृजति । हे यज्ञ तू स्वप्रतिष्ठार्थ  
यज्ञ नामक विष्णु को जा फलदान करिय जमान को प्राप्त हो अ  
पनी निष्पत्त्य के अर्थ अपने कारण भूत वायु की क्रिया शक्तिको  
जा । द्रव्य और देवता यज्ञ की योनि तू सर्वात्मा है इति भावः । स्वाहा  
सुहुतमस्तु ॥ अथ नवमः ॥ यज्ञं पतिं दैवतं यजुः ॥ हे यज्ञ पते यज  
मान यह अनुष्ठान किया यज्ञ तेरा है । कैसा है कि सूक्तवाकः स्तोत्र  
सहित । तथा समस्त वीरों तथा सोम पशु सब नीय चरु पुसे डाश  
इन्हों को भी वीर कहिते हैं निन्हों सहित है तिसरे से यज्ञ को फल भो  
ग करिके सेवन करि स्वाहा सुहुतमस्तु ॥ २२ ॥ इति समिष्ट य  
जुर्मन्त्राः समाप्ताः ॥ इति गिरिधर भाष्ये षष्ठोऽनुवाकः ॥ ६ ॥

अ० ७ माहिः ॥ माहिर्भूर्मापृदाकुः उरुर्दहि राजा वरुणश्च  
कारसूर्या यपन्या मन्वेत वा ॥ ३ ॥ अपदे पादा प्रतिधा  
तवे करुतापवक्ता हृदया विधश्चित् ॥ नमो वरुणाय भि  
ष्टि तो वरुणस्य पाशः ॥ २३ ॥ †

का० १००८० १३ यजमान हस्तस्य मृगशृङ्ग और मध्य में बंधी

मेखला इन दोनों का विसर्जन करि चात्वाल में डालै ॥ माहिर्दे-ज०  
 रज्जुदेवतं व्याख्यातम् ६१२॥ का० १००८१५० अवभृथ के अ  
 र्थजाताहुआ अवभृथ चात्वाल के समीप में स्थित प्राङ्मुख यज  
 मान प्रतिवांचै । वरुण देवत्या त्रिष्टुप् सुनः शेषदृष्टा ॥ जैसे वरुण  
 एव राजा सूर्य के अनुक्रमण पूर्वक जाने योग्य जिसमें दिये पद का  
 चिन्ह न हो ऐसा अन्तरिक्ष में विस्तीर्ण मार्ग करताहुआ तैसे  
 ही हमारे अर्थ अपद अर्थात् अन्तरिक्षमें पैर रखने (स्वर्गजाने)  
 के योग्य मार्ग करे । किंच जो वरुण पापियों को मर्मोच्चारण पी  
 डा देने वाला अर्थात् निंदकों का तिरस्कार करने वाला है । ऐसा  
 वरुण अवभृथ के अर्थ मार्ग दो । का० १००८२१० अवभृथ के  
 स्नानार्थ जल में प्रवेश कर्ते यजमान प्रतिवांचै । वरुण आसुरी  
 गा० ॥ वरुण का पाश छुटा तिस हेतु न बधुंगा तैसे वरुण के अर्थ  
 नमस्कार हो ॥ २३ ॥

अग्ने रनीकम् ॥ अग्ने रनीक मयः आविवेशा पान्नपा  
 त्प्रतिरक्षन् सूर्यम् ॥ दमे दमे समिधं यक्षग्ने प्रति  
 जिह्वा घृतमुच्चरयत्स्वाहा ॥ २४ ॥

का० १००८२२० जल में समिध को डाल चतुर्गृहीत आज्य क  
 रि तिसपर होमें । अग्नि देवत्या त्रिष्टुप् ॥ हे अग्ने तू जिस अंगन  
 शील के अपान्नपात संज्ञक मुख को जल में अभिमुख करि के  
 प्रवेश करता हुआ । सो हे अग्ने तू तिस-तिस यज्ञ गृह विषे यज्ञ  
 विघ्न प्रति रक्षकों को निवर्त करते समिध न साधन घृत को अ



पने संयुक्त कर। तिसके अनन्तर में तेरी जि ह्वा (ज्वाला) धृत प्र  
ति उद्युक्त हो स्वाहा सुहुत मस्तु† ॥२४॥

समुद्रे ते ॥ समुद्रे ते हृदय मप्सुन्तः सन्त्वा विशन्त्वोषधी  
रुतापः ॥ यज्ञस्य त्वा यज्ञपते सूक्तोक्तौ नमो वाके विधेम  
यत्स्वाहा ॥ २५ ॥

का० १००४०१० ऋजीष (साररहित सोम) के कुम्भ को जल में डालें।  
सोम देवत्या चतुष्पदा विराट्। विराडूपा त्रिष्टुविति हलायुधः ॥  
हे सोम जो तेरा हृदय समुद्र समान जल विषे धँते हैं तिस तुरूको  
गमन कराता हूँ तत्रस्थ तुरै ओषधीँ भले प्रकार प्रवेश करें और  
रजलभी तुरूमें प्रवेश करें। किंच हे यज्ञपते यज्ञ के पालक सो-  
म यज्ञ के शोभन वचनोच्चारण और नमस्कार वचन विषे तुरै  
स्थापन कराते हैं स्वाहा सुहुत मस्तु ॥ २५ ॥

देवी रापः ॥ देवी रापः एष वो गर्भस्तर्हं सुप्रीतर्हं सुभृतं  
विभृतं ॥ देव सोमैष ते लोकस्तस्मिन् च वक्ष्य परिच  
वक्ष्य ॥ २६ ॥

का० १००४०२० ऋजीष कुंभ को छोड़कर उपस्थान करें। पंक्ति  
वृहती वा पूर्वार्द्ध मन्देवत मुत्तरार्द्ध सोम देवतं ॥ हे देवी हे जल तु  
म्हारा यह सोम गर्भ स्थानीय है तिसै तुम धारण करो। कैसा है वो  
ह कि शोभन प्रीति युक्त वा साधु तर्पित तथा भले प्रकार पुष्ट। इदा  
नीं सोमं वदति हे सोम हे देव तेरा यह जल स्थान है तिसमे अवस्थित  
होकर तू सुख को प्राप्त हो और हमसँ सब आर्तियों को दूर कर ॥ २६ ॥

† रमे-रमे इति वीष्णाश्च मेधविषया तत्र हि नाना वभुषा न्यहानिभवन्ति

अवभृथनिचुस्युण॥ निचेरुरसिनिचुस्युणः॥ अवदेवे  
देवकृतमेनोयासिषमवमर्त्येर्मर्त्येकृतस्युरावणोदेव  
रिषस्याहि देवानां सुमिदसि॥ २७॥ अ-हि। अ० दे-सि। द०

का० १०.४.३ ऋजीष कुंभको जल में प्रवेश करे ब्रा-अ० यज्ञदेवतं  
व्याख्यातं ३.४८ देवानामिति या-उ० अग्नदेवतं ॥ देवताओं की सं  
वन्धिनी दूधन है अथवा हमारा प्रकाश करनेवाला है ॥ २७॥

॥ इतः परमनूवंध्यायां गर्भे एयां प्रायश्चित्तं कथ्यते ॥

अ० ८ एजतु दशमास्यः ॥ एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह ॥  
यथा यम्बायुरेजति यथा समुद्र एजति ॥ एवायन्दशमा-  
स्यो अस्मिन्नजरायुणा सह ॥ २८॥

का० २५.१०.५ जो अनूवंध्या वशां गर्भिणी हो तौ विशसनविषे प्रथक्  
क्रिये हुए गर्भको अभिमंत्रित करे। अवसान त्रय युक्ता गर्भदेवत्या  
महापंक्तिः ॥ गर्भजरायु सहित चलें। कैसा है गर्भ कि जैसे दशमास  
काला बछिन्न चलता है। कैसे चलें सो कहते हैं कि जैसे यह वायु चल  
ता है-और जैसे समुद्र कंपता है ये दोनों सदा कंपनशील हैं। ऐसे ही य  
ह दशमास्य अर्थात् संपूर्ण वयव गर्भजरायु सहित चलें। यद्यपि य  
ह गर्भ दशमास्य नहीं हैं तथापि संपूर्ण होकर चलने की आशा करि  
ये हैं- तमेतदप्य दशमास्यमित्यादि शत० ४.५.२.४० ॥ २८॥

यस्यैते ॥ यस्यैते यज्ञियोगर्भो यस्यै योनिर्हिरण्ययी ॥ अ  
ङ्गान्यर्हता यस्य तन्मात्रा समं जीगमच्छ स्वाहा ॥ २९॥

का० २५.१०.४ वशा के अवदानों को होम के गर्भरक्त को होमे आ

धी- त्रि० वशादेवतं ॥ हे वशे जो ते ग गर्भ यज्ञ योग्य है और जो तेरी यो  
नि सुवर्ण मयि ते सी तुम्हें गर्भ करिके संयुक्त करता हूं इति शेषः ॥ जिस गर्भ  
के अंग अखंडित है तिस गर्भ को अनूबध्याज गनी से संयुक्त कर्ता हूं  
स्वाहेति होमार्थः ॥ २४ ॥

पुरुदस्यो बिषु रूपः ॥ पुरुदस्यो बिषु रूपः इन्दुरन्तर्म हि  
मानमानं जुधी ॥ एकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पदी मष्टाप  
दी म्भुवनानु प्रयन्ता ॥ स्वाहा ॥ ३० ॥

का० २५. १०. १३. प्रचरणी में प्रति प्रस्थाता सब गर्भ रस की ले अध्वर्यु क  
रि स्विष्टकृत् होम करते हो में । ब्रा-अ० गर्भ देवत्यम् ॥ इन्दु रूपेण गर्भः  
स्तूयते इन्दुः क्लेदन रूप सोम सह श गर्भ महत्व को एक करे । विशेष  
ण करि महिमान को कहते हैं कैसा है इन्दुः कि बहुदान युक्त वहु रूप  
उदर विषे स्थित मेधावी ऐसे महिमान को करते हैं । एवं महिमा वत ग  
र्भ की माता अनूबध्या को समस्त प्राणी प्रख्याता करियों । विशेष  
ण करि प्रख्याता को कहते हैं । कैसी कि एक पदीम्, वपा करि एक पद  
युक्त द्विपदीम्, वपा और अंग करि द्विपद युक्त त्रिपदीम्, उपपद्मोम  
करि चतुष्पदीम्, पत्नी संयाज वा चारों पाद युक्त अष्टा पदी, अपने  
और गर्भ के पाद करि एवं भूता वशा को गिण कर समस्त भूत जात  
प्रख्यात करें । स्वाहा सुहृन्मस्तु ॥ ३० ॥

मरुतो यस्य ॥ मरुतो यस्य हिक्षर्ये पायादि वीवि महसः ॥

ससु गोपा तमोजनः ॥ ३१ ॥

का० २५. १०. १६. समिष्ट यजु के होमान्त विषे शामिच अग्नि में मंत्र

के अन्तमें स्वाहाकारका उच्चारकरि उष्णीषवेष्टित गर्भको होमें।  
मरुद्देवत्या गायत्री गोतम दृष्टा ॥ हे तेज युक्त औवाद्युलोकके पूज  
क औ हे मरुत औ जिस यजमान के यज्ञ गृह विषे तुम सोमपान  
करते हो। निश्चय से यजमान अपति शय करि शोभन रक्षा किया है  
अर्थात् तुम्हारे रक्षा किये हु ओ को भय नहीं है ॥३१॥

महीद्योः ॥ महीद्योः पृथिवीचनः शुभं यज्ञमिमिक्षताम् ॥  
पिपृता नो भरी ममीः ॥ ३२ ॥

का० २५-१०-१६-शामित्र में डालें गर्भको अंगारों सैठकें। द्यावापृ  
थिदेवत्या गायत्री मेधातिथि हृष्टा ॥ द्युलोक और भूलोक हमारे  
यज्ञको अपने-अपने भागसे पूरण करें। हिरण्यपशुधानादिकरि अपने-  
अपने भागोंसे हमारे घर को पूरण करें ॥ ३॥ इत्यग्निष्टोममंत्रा समाप्ताः ॥

अथ षोडशी मन्त्रा उच्यन्ते

अ० ६० ॥ आतिष्ठ ॥ वृत्रहन्द्रयं युक्ता नैव ह्यणहरी ॥ अर्वाचीन  
 ॥ सुते मनो ग्रावी कृणोतु वग्नुना ॥ उपयाम गृहीतो सी  
 न्द्रायत्वा षोडशिनः एष ते योनिरिन्द्रायत्वा षोडशिनः ॥ ३३ ॥

अग्निपयस्व से पहिले कण्डि० ३० पर्यन्त षोडशी के मंत्र का० १२०  
 पु० २० प्रातः सवन विषे आग्रयण ग्रहण के अनन्तर में आग्नेय अ  
 तिग्राह्य को ले खदिर के चतुः कोण उलूखल करि आतिष्ठवायु  
 स्वाहि० इन दोनों मन्त्रों और भी उपयाम सहित षोडशि ग्रह को ग्रह  
 ण करे ॥ इन्द्र देवत्यानुष्टु शोतम (गौतम) दृष्टा ॥ हे ह्रस्व ह्रस्व इन्द्र ते  
 रे हरित वर्ण घोडे त्रयी लक्षण इन्द्रा गच्छे त्यादि मन्त्र करि रथमें यु

कहें इस हेतु तूरयमें बैठे । इन्द्र का आह्वान सुन योजन का समय  
आया यह जान धोडे आपही रथमें जुड़े । किंच सोमाभिषवपाषा-  
ण तुम्हारा रूढ़ के मन को हमारे यज्ञ के अभिमुख सोमाभिषव-  
शब्द करि भले प्रकार करौ ॥ उपयामेत्या सुरी गा० । हे सोम तू उ-  
पयाम करि गृहीत है षोडशिने षोडश स्तोत्र वाले इन्द्र के अर्थ  
तुम्हें ग्रहण कर्ता हूँ ॥ एषतः इत्या सुरी अ० सादयति । हे ग्रह यह ते-  
रा स्थान षोडशिने इन्द्र के अर्थ तुम्हें सादन कर्ता हूँ ॥ ३३ ॥

अ० १० युक्ष्वहि ॥ युक्ष्वहि के शिना हरी वृषणा कक्ष्य प्रा ॥ अ-  
थानः इन्द्र सोम पागिरा मुप श्रुति चर ॥ उपयाम गृही-  
तो सीन्द्रायत्वा षोडशिनेऽ एषते यो निरिन्द्रायत्वा षो-  
डशिने ॥ ३४ ॥ + यु-र। अ० उ-ने। इ० ए-ने। उ० ॥ ३४ ॥

द्वितीयो ग्रहणमन्त्रः । इन्द्र देवत्या नुष्टुब्धधु छन्दो दृष्टा ॥ हे इन्द्र  
निश्चय अपने हरित वर्ण अश्व रथमें जोड़ि । कैसे हैं हरी कि वडे  
केशों वाले तथा सींचने वाले वा तरुण तथा स्थूला वयव । रथारो-  
हण के अनन्तर हे इन्द्र सोम पान करने को हमारी ऋग्यजुः साम  
लक्षणा वाचा को उपश्रवण करके प्राप्त हो । हमारी वाणी को सुन  
अर्थात् वाणी सुनकर हमारे घरको आ ॥ उपयाम एषते एते व्या-  
ख्येते ॥ ३४ ॥

अ० ११ इन्द्रमित्र ॥ इन्द्र मित्ररी वह तो प्रतिधृष्टशवसम् ॥ ऋषी-  
णाञ्च सुतीरुपयज्ञश्च मानुषाणाम् ॥ उपयाम गृहीतो  
सीन्द्रायत्वा षोडशिनेऽ एषते यो निरिन्द्रायत्वा षोडशिने ॥ ३५ ॥

षोडशग्रहे तृतीयोमन्त्रविकल्पः आग्रयणा इन्द्रमिद्धरी इति गृही  
त्वेति कठसूत्रोक्तेः । इन्द्रदेवत्या नुष्टुबो तमदृष्टा ॥ हरितवर्णघोडे  
वसिष्ठारि मुनियों की स्तुतिसमीप इन्द्रको जैसे प्राप्त करते हैं । और  
यजमानों के यज्ञके समीप प्राप्त करते हैं । कैसे इन्द्रको किनहीं है प  
राभव किया बलजिस्का ॥ उपयाम एषते इति व्याख्याते ॥ ३५ ॥

अ० १२ यस्मान्न ॥ यस्मान्न जातः परोऽन्योऽस्ति यः आविवे  
शभुवनानि विश्वा ॥ प्रजापतिः प्रजया सर्गं रणस्त्रीणि  
ज्योतींश्च पिसचते सर्वोऽङ्गी ॥ ३६ ॥

का० १२. ५. २० षोडशग्रह को उपस्थान करे । इन्द्रदेवत्या त्रिष्टुप्  
विवस्वदृष्टा । परब्रह्म रूपेण षोडशी स्तूयते ॥ जिस पुरुष से व्यतिरि  
क्त उत्कृष्ट देवादिकों में नहीं हैं और जो समस्त भूतजातों में अन्तर्यामी  
रूप करिके प्रवेश करता हुआ सो प्रजापति अपने से उत्पन्न प्रजापाल  
क तीनि ज्योति अग्नि वायु सूर्य रूप तेजविषय की ज्ञापन करनेवालि  
ये स्वीकार करता है अर्थात् अपने तेज करि तिन ज्योतियों का उज्जी  
वन करता है + कैसा है प्रजापति कि प्रजारूप करि भले प्रकार  
रममाण । तथा षोडशकलात्मक लिङ्ग शरीरोपहित अर्थात्  
सर्वव्यवहाराश्रय है ॥ ३६ ॥

इन्द्रश्च सम्म्राट् पुरुषश्च राजा तौ ते भक्षं च क्रतुरग्र एत  
म् ॥ तयो र ह मनु भक्षम्भक्षयामि वाग्देवी जुषाणा सोम  
स्य नृप्यतु सह प्राणेन स्वाहा ॥ ३७ ॥ इ-तु। अ० स-ह ॥ इ० ॥ ३७ ॥

का० १२. ६. २ षोडशग्रह को भक्षण करे । इन्द्रवरुणदेवत्या षोड

† यः सर्वेषु भूतेषु तिष्ठान्नित्यादिभ्युतेः

यदादियुगं तेजो जगद्वा सयते खिलं । पञ्च  
इत्यादि भूतेः । यदादियुगं तेजो जगद्वा सयते खिलं । पञ्च  
मसि यज्ञानां तन्मैजो विद्धि मः ॥ मिति स्मृतेः भगवद्गीता १५. १२

शिदेवत्या वा विष्टुव्यजुरन्ता अन्त्यपादौ द्वादशाणां सह प्राणेनेति यजुः  
विवस्वदृष्टा ॥ हे षोडशिग्रह वे इन्द्रवरुण तेरे इंसोमको प्रथम भक्षण  
करते हुए। वे कोन कि इन्द्र और वरुण कैसा है इन्द्र कि परमैश्वर्य युक्त  
अर्थात् वाजपेय याजी कैसा है वरुण कि राजसूय याजी +। तिन इन्द्रावरु  
ण संबंधी भक्षकों पीछे में भक्षण कर्त्ता हूँ अर्थात् सोमको पीता हूँ। मेरे  
भक्षके सेवन से सरस्वती प्राण देवता सहित सोम करितृप्त हो। स्वाहा सु  
हुतमस्तु ॥ ३७ ॥ इति षोडशियागः संपूर्णः ॥

अथ द्वादशाह मन्त्राः

अ० १३ अग्ने पवस्व ॥ अग्ने पवस्व स्वपाः अस्मे वर्चः सुवीर्यम् ॥  
दधद्रयिम्मयिपोषम् ॥ उपयामगृहीतो स्पग्नयेत्वा व  
र्चस एषते यो निरग्नयेत्वा वर्चसे ॥ अग्ने वर्चस्विन्व  
र्चस्वां त्वन्देवेष्वसि वर्चस्वानहम् अनुष्येषुभूयासम् ॥ ३८ +

का० १२. ३. १. २. हे कोई गृह्य षडह नामा क्रतु और वोह छे दिनों  
करि निष्पाद्य तहां पहिले तीनि दिनों में अग्ने पपस्वेत्यादि तीनि मंत्रों  
से अति ग्राह्य ग्रहको ग्रहण करे। अग्ने वर्चस्विन् इत्यादि मंत्रों से तिन  
तिन ग्रहों के शेषको भक्षण करे ॥ तत्र प्रथमो यथा अग्ने पपस्व अ  
ग्निं देवत्या गायत्री वैखानसदृष्टा ॥ हे अग्ने तू हमारे विषे शोभन की  
र्य जिसमें तैसा शोभन सामर्थ्योपेत ब्रह्मतेज प्राप्त करि। कैसा है तू कि  
स्वपाः शोभनकर्मा +। एवं ऋत्विजों सहित प्रार्थना करि आपयाचना  
करता है मुख्यजमान विषे धनको स्थापन करते पुत्रपश्वादि वृद्धिके  
प्रवर्त करि इतिसंबंधः ॥ उप० आसुरी उ० हे सोम तू उपयामग्रह करि

+ राजा वै राजसूयने राजनवति सम्राट् राजपेयनेति श्रुतं ० १. १. १. ३.

+ अ० १३ इति कर्मणाम्

+ अ० मू. अ० ७. ३. से। दृष्टा-से। उ० अ० मू. ऋ० ॥ ३८ ॥

गृहीत है हे ग्रह तेजस्वी अग्नि के अर्थ तुम्हें ग्रहण करता हूँ ॥ एष० या-  
ज० सादयति । यह स्वर प्रदेश तेरा स्थान वर्चस्वी अग्नि के अर्थ तुम्हें  
सादन करता हूँ ॥ भक्षण मन्त्रो यजुः ॥ हे विशिष्ट तेज युक्त हे अग्नेतू  
इन्द्रादिक देवताओं के मध्य अति दीप्तमान है अतः तेरे प्रसाद से मैं  
मनुष्यों के मध्य ब्रह्म तेज करि संपन्न होऊँ ॥ ३० ॥

अ० १४ उतिष्ठन्नोजसा ॥ उतिष्ठन्नोजसा सह पीत्वीशिप्रेऽपवे  
पयः ॥ सोममिन्द्रचमू सुतम् ॥ उपयामगृहीतोसीन्द्राय  
त्वोजसः एषते योनिरिन्द्राय त्वोजसे ॥ इन्द्रो जिष्णो जि  
षुस्त्वन्देवेष्वस्योजिष्णोह ममनुष्येषु भूयासम् ॥ ३५ ॥ +  
द्वितीयोऽति ग्राह्य ग्रहण मन्त्रः ॥ इन्द्रदेवत्या गायत्री कुरुस्तुति (कु  
रुस्तुति० कुरुमुनि० कुरुस्तुति) दृष्टा ॥ हे इन्द्रतू बल सहित उठते शिप्रे  
(हनू वा नासिका) करि कम्पितवान् है । क्या करिकै कि सोम पीकै । कैसा  
है सोम कि अधिषवण चर्म में अभिषुत सोमपान करिकै अति हर्ष  
के वश हो नासिका करि कम्पितवान् है ॥ उप० आसुरी अ० ॥ हे ग्रहतू  
उपयाम करि गृहीत है बलवान् इन्द्र के अर्थ तुम्हें ग्रहण करता हूँ  
एष० या-त्रि० सादयति । यह तेरा स्थान बलवान् इन्द्र के अर्थ तुम्हें सा  
दन करता हूँ ॥ भक्षण मन्त्रो यजुः ॥ हे इन्द्र हे अत्यन्त बल युक्त तू जै  
सै देवताओं के विषे ओजिष्ठ है ऐसै मैं मनुष्यों में अति बल होऊँ ॥ ३५ ॥ +

अ० १५ अहमस्य ॥ केतवो विरश्म योजना रँ ॥ अनु ॥ आजन्तो  
ऽअग्नयो यथा ॥ उपयामगृहीतोसि सूर्या यत्वा भ्राजार्थे ष  
ते योनिः सूर्या यत्वा भ्राजार्थ ॥ सूर्यम्राजिष्ठम्राजिष्ठस्त्व



देवेषु सिञ्चाजिष्ठो हर्मन्नुष्येषु भूयासम् ॥४०॥†

तृतीयोऽतिग्राह्यमन्त्राः। सूर्यदेवत्या गायत्रीप्रकण्वदृष्टा॥ इस सूर्य की प्रज्ञा का हेतु किरणों विशेष कर दीखती हैं अर्थात् सूर्यकरः सब जनों के अनुगता व्यापका दीखती हैं तहां दृष्टान्त है जैसे ज्वलति अग्नि की जनों के अनुगता तैसें॥ उप० आसुरी गा० हे ग्रह तू उपयाम करि गृहीत है दीप्तिमानं सूर्य के अर्थ तू मे ग्रहण करता हूं॥ एष० या- ज० सादयति। यह तेरा स्थान दीप्तिमान सूर्य के अर्थ तू मे सादन करता हूं॥ भक्षण मन्त्रो यजुः। हे अति दीप्ति हे सूर्य तू जैसे देवताओं में अति दीप्ति है तैसे में नुष्यों में अति दीप्ति मान हों ॐ॥४०॥ इति द्वादशाहः संपूर्णः॥

अ० १६ उदुत्यम्॥ उदुत्यं ज्ञातवैदसन्देवम्वहन्तिकेतवः॥ दृशे विश्वायसूर्यम्॥ उपयामगृहीतोसि सूर्या यत्वा भ्राजा येषते योनिः सूर्या यत्वा भ्राजाय ॥४१॥†

का० १३.२.११ गवामयन नामक संवत्सर सन्त्र के विषुवन संज्ञक मध्यमदिवस में सौर्य पशु के उपालम्भ से योछे अतिग्राह्यका ग्रहण करें। सौरी गायत्री देवदृष्टा। पुनर्व्याख्यायते ७.४१. प्रस्कण्वदृष्टा व्याख्याता अत्र तु देवदृष्टा इति विशेषः॥ निसुप्रसिद्ध उत्पन्न हुई प्रजाओं के ज्ञातार वा जातप्रज्ञ देवनशील सूर्य की प्रज्ञा का हेतु किरणों समस्त जगत के दर्शन के अर्थ उद्गमन कराती हैं। उप० एष० व्याख्याते ॥४१॥†

अ० १७ आजिघ्न॥ आजिघ्नं कलशं मम ह्यात्वा विशन्ति नन्दवः॥

पुनरुज्जीनिवर्त्तस्वसानः सहस्रन्धुश्चोरुधारापयस्व  
तीपुनर्म्मविशताद्वयिः ॥४२॥

का० १३.४.१४. गर्गत्रिरात्रके आदि अहीन त्रिसुत्य में गोसह  
स्र दक्षिणार्हे तहां संख्या पूरणी रेहिणी धेनु है तिसहविर्धान आ  
ग्नीध्र के मध्यमें स्थित को द्रोण कलश को सुंघावै। गोदेवत्या महा  
पङ्क्तिः कुसुरुविन्दुदृष्टा ॥ हेमहि हेधेनो तू द्रोण कलश को अभि  
मुख करि सुंघ। किंच हेधेनो द्रोण कलशस्थ सोम तुरूमें प्रवेश क  
रै। किंच पयोभूत विशिष्ट रस सहित हमारे प्रति निवर्त्त हो। जोतू  
एवं मुख करि स्तुति की गर्द सो तू हमारे सहस्र संख्य धन को दे अथ  
वा गो सहस्र जो हम करि दी गर्द सो हमारे अर्थ फिरि दे। किंच तेरे  
प्रसाद से बहु पयस्वती धेनु मेरे फिरि आवें तथा धन मेरे प्रवेश करै ॥ ४२॥

दुडेरन्ते ॥ दुडेरन्ते हव्ये का म्ये चन्द्रे ज्योतिर्दिति सरस्व  
ति महि विश्रुति ॥ एतातेऽप्येनामानि देवेभ्यो मासु  
कृतम्ब्रूतात् ॥४३॥

का० १३.४.२०. पूर्वोक्ता धेनु के दक्षिण कर्ण में यजमान जपे। गोदे  
वत्या प्रस्तार पङ्क्तिः कुसुरुविन्दुदृष्टा ॥ दुडा मनु की दुहिता तिसकेतु  
त्य। रन्ता रमाण करने वाली। हव्या होमते हैं यज्ञ में जिसका दूध  
वा सवकी आह्वान करने वाली। काम्या कामना करते हैं जिसकी  
मनुष्याणां ह्येता सुकामाः प्रविष्टा इति श्रुतेः। आल्हाद करने  
वाली। अदीना अनवर खण्डिता। सरस्वती सरः क्षीरं तद्वती सरस्व  
त्युदकनामसर्तेरिति नि० ४. २६. उदक शब्द से यहां क्षीर लेना

४२॥

दिते इति  
वा पाठः

अर्थात् दुग्धवती। वडी। नाना प्रकार स्तुति करिये है। नहीं हनन योग्या। तिन्नों का संबोधन हे धेनो एवं भूते तुम्हारे ये अति श्रेय गुण युक्त नाम हैं इन नामों करि अभिहित होती देवताओं से शोभन कर्म करनेवाला मुझे कहौ अर्थात् यह यजमान पुण्य कर्त्ता यह देवताओं से कहौ ॥४३॥

अ० १८ विनः॥ विनः इन्द्रमृधोजहिनीचाय छपृतन्यतः॥ यो  
ऽ अस्मा र्शः॥ अभिरासत्यथरङ्गमया तमः॥ उपयामगृही  
तो सीन्द्राय त्वा विमृधः एष ते यो निरिन्द्राय त्वा विमृधे ॥४४॥

का० १३. २. १० गवा मयन के उपान्त्य महाव्रत के दिवस में प्राजा पत्य पशु के उपालम्भ के ऊपर ऐन्द्र ग्रह के ग्रहण में ४४-४६ तीन मन्त्र। तत्राद्यः॥ इन्द्र देवत्यानुष्टुप् त्रयाणां शासो, श्यास-सास-श्यावास० भारद्वाज ऋषिः॥ हे इन्द्र हमारे शत्रुओं वा संग्रामों को विशेषतः नाश करि। किंच सेना की दुच्छा करनेवाले शत्रुओं का निग्रह (युद्ध से उपरत) करि। किंच जो कोई और हमको उपक्षय करे तिस शत्रु को नरक में प्राप्त करि॥ उप० आसुरी उ० हे ग्रहतू०-विशिष्ट संग्रामवान् इन्द्र के अर्थ०॥ एष० या-ज० सादयति। विशिष्ट संग्रामवान् इन्द्र के ० सिष्टं समानम् ॥४४॥

अ० १९ वाचस्पतिम्॥ वाचस्पतिं विश्व कर्मण मृतये मनो यु  
वम्वाजेऽ अद्याहुवेम॥ सनो विश्वानि ह व नानि जोषद्भि  
श्च शम्भूरवे सेसाधु कर्म॥ उपयामगृही तो सीन्द्राय  
त्वा विश्व कर्मण एष ते यो निरिन्द्राय त्वा विश्व कर्मणे ॥४५॥

अथ द्वितीयः । विश्वकर्मदेवता त्रिष्टुप् ॥ ऐसे इन्द्र को महा व्रती  
य लक्षणान्नविषय में आजके दिन हम आह्वान करते हैं । किस  
लिये कि अपनी रक्षा के अर्थ । कैसे को कि समस्त जगदुत्पत्त्यादिक  
र्म करने वाले को तथा वाचा के पालन करने वाले तथा मन के से  
वेग वाले को । सो ऐसा इन्द्र हमारे समस्त आह्वानों को अन्न समृद्धि  
वारक्षा के अर्थ साधु-साधु इति सेवन करें । कैसे है वोह कि सम  
स्त सुख करने वाला शोभन कर्मकर्ता ॥ उप० सा-उ० । सर्व कर्म इन्द्र  
के अर्थ ॥ एष० सा-गा० सादयति । समानम् ॥ ४४ ॥

अ० २० विश्वकर्मन् हविषा ॥ विश्वकर्मन् हविषा वर्धनेन त्राता र  
मिन्द्र महारो रवध्यम् ॥ तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीरयसु  
ग्रो विहव्यो यथासत् ॥ उपयाम गृहीतो सीन्द्राय त्वा विश्वक  
र्मणः एषते योनिरिन्द्राय त्वा विश्वकर्मणे ॥ ४६ ॥ +

तृतीयो मन्त्रविकल्पः ॥ इन्द्र विश्वकर्मदेवता त्रिष्टुप् ॥ हे विश्वकर्मन्  
वर्धय व वा वर्धमान हवि करि कै तू इन्द्र को जगतकारक्षक अ प्रतिभरकर  
ता हुआ । तैसे इन्द्र के अर्थ पहिले वशिष्ठादिक मनुष्य जिस कारण  
यह इन्द्र उद्गृहीत वज्र और विविध कार्यों विषे आह्वान करिये है  
सा होता हुआ तैसी प्रजा अर्थात् निसी कारण से । हे विश्व कर्मन् तू  
विकी सामर्थ्य से इन्द्र का यह प्रभाव है इति भावः ॥ उप० एष० व्याख्याते ॥ ४६ ॥

अ० २१ उपयाम गृहीतोसि ॥ उपयाम गृहीतोस्य गनयेत्वा गायत्रे चन्द्र  
सङ्गृह्णामीन्द्राय त्वा त्रिष्टुप् चन्द्रसङ्गृह्णामि विश्वेभ्यस्त्वा  
देवेभ्यो जगच्छन्दसङ्गृह्णाम्यनुष्टुप्तेभिर्गारः ॥ ४७ ॥ +

का० १२. ५. १३-१५. जिस औदुम्बर पात्र में अंशु ग्रहण किया ति  
सीमें होतृचमसस्या निग्राभ्या संज्ञाजल लेकर तिसमें तीनि सो  
मलता डाल अग्न येत्वे त्यादि तीनि मंत्रों से क्रम पूर्वक अदा  
भ्यग्रह को ग्रहण करे अथवा उपयाम गृहीतोसीति तीनों मन्त्रों  
की आदिमें योजे ॥ अदाभ्य देवत्यानि देवदृष्टानि १. प्रा-दृ० २.  
३. यजुषी। तत्र प्रथमो मंत्रः ॥ हे सोम तू उपयाम पात्र करि गृहीत हे  
हे ग्रह गायत्री छन्द जिसका ग्रह बोह गायत्री छन्द सं अग्निकी  
प्रीति के अर्थ तुम्हें ग्रहण करता हूं ॥ द्वितीयो मन्त्रः ॥ पूर्ववत् त्रिष्टुप्  
छन्द सं इन्द्रदेवता की प्रीति ॥ तृतीयो मन्त्रः ॥ समानम् जगती छन्द  
सं समस्त देवताओं की ॥ का० १२. ५. १७. अनुष्टुप्तेति देवदृष्टम  
दाभ्य देवत्यं दे- ज०। इस मन्त्र को पढ़ें एवं स्वच्छन्द सं सोम गृहीत्वा  
यतमाह ॥ हे सोम अनुष्टुप् छन्द तेरा अभिगरः अर्थात् अभिष्टवः  
गृस्तुतौ यद्वा ऊर्ध्वं ठं सवनेभ्यस्तदानुष्टुभमिति शत० ११. ५. ८५. ७. ॥ ४७॥

मेधुन् इति वा पाठः

व्रेशीनान्त्वा ॥ व्रेशीनान्त्वा पत्मन्नाधूनोमिकूकूनाना  
न्त्वा पत्मन्नाधूनोमिभन्दनानान्त्वा पत्मन्नाधूनोमिम  
दिन्तमानान्त्वा पत्मन्नाधूनोमिमेधुन्तमानान्त्वा पत्मन्ना  
धूनोमिशुक्रन्त्वा शुक्रः आधूनोम्यन्हो रूपे सूर्यस्य  
शिमषु ॥ ४८ ॥

का० १२. ५. १७. आहवनीय के समीप जाते अदाभ्यग्रहस्थ जलों को  
चलावें। एतदादीनि विश्वेषां देवानामित्यन्तानि ५० सोमदेवत्या  
नि देवदृष्टानि। यजुः ॥ हे सोम मेघोदरस्या जल तिन्हों के पतननि

मिन्न दृष्टिनिष्पत्यर्थं तुमैकं पाताहं । कुक्कूननानाम् । कुङ्कुशब्दे  
अत्यर्थं कुवन्त्यः शब्द करने वाले नमन्ति प्रह्वी होने वाले मेघस्या  
जल तिन्हों के पतन के अर्थ तुमैकं पाताहं ॥ कल्याण कारिणी वा  
सुखपित्री मेध्याः । अन्यत्पूर्ववत् ॥ मदिन्यः अत्यर्थं मदिन्तमाः  
अत्यन्त तर्पयन्त्यः । समानं ॥ अत्यन्त मधु स्वादोपेतः पूर्ववत्  
किंच शुक्रं शुद्ध अक्षिष्ट करने वाले तुमै अक्षिष्ट कर्म विषे निग्रा  
भ्या लक्षणा जल में कं पाताहं ॥ किंच दिवस के रूप विषे सूर्य की रश्मि  
विषे हे सोम त्वामाधू नोमि ॥ ४८ ॥

कुक्कुभर्त्तृ रूपम् ॥ वृषभस्य रोचते वृद्ध छुक्कः शुक्रस्य पुरोगाः  
सोमः सोमस्य पुरोगाः ॥ यते सोमादो म्व्यन्वामजा गृवित  
स्मै त्वा गृह्णामि तस्मै ते सोम सोमाय स्वाहा ॥ ४९ ॥ +

यजुः ॥ हे सोम तुरु वृषभ (अष्ट) का आदित्य लक्षण रूप प्रकाश क  
रता है शुद्ध आदित्य तुरु शुद्ध सोम का पुरोगामी । सोम एव सोम का  
पुरोगामी होना चाहिये । हे सोम तेरा अदाम्य (अनुपहिंसित) जागर  
ण शील जो नाम है तिस नाम से तुम्हें ग्रहण करता हूँ ॥ का० १२. ५.  
१७. तस्मै तद् इति या-यं० अदाम्य को होमै ॥ हे सोम तैसे तेरे अर्थ स्वा  
हा सुहुत मस्तु । तसो म मे वै तसो माय जुहोतीति शत० ११. ५. ४९. ११ ॥ ४९ ॥

उशित्कम् ॥ उशित्कन्देव सोमानेः प्रियम्या योपी हि द्व  
शीत्वन्देव सोमेन्द्रस्य प्रियम्या योपी ह्यस्मत्सखात्वन्देव सो  
म विश्वेषां देवानां प्रियम्या योपी हि ॥ ५० ॥

का० १२. ५. १८. तीनि मन्त्रां सै उलूखलस्य अंशु श्रौं को सोम में डा

लै॥ तत्राद्यः आसुरीउ०। हे दीप्यमान हे सोम कामयमान तू अग्नि के प्रिय अन्न को प्राप्त हो ॥ द्वितीयः आसुरी गा०। हे देव सोम कान्त तू इन्द्र के प्रिय अन्न को प्रा० ॥ तृतीयः आर्षीउ०। हे देव सोम हमारा मित्र भूत तू समस्त देवताओं के अभिरुचित अन्न को प्राप्त हो ॥ अग्निर्वै प्रातः सवनमिन्द्रो माध्यन्दिनं सवनं विश्वे देवास्तृतीयं सवनमिति श्रुतेः सवनदेवेभ्योर्पणम् ॥ ५० ॥

अथ सत्रोत्थानं देवानामार्षम्

अ० २२ इहरतिः ॥ इहरतिरिह रमध्वमिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा ॥ उपसृजन्धरुणं मात्रे धरुणो मातरन्धयन् ॥ रायसोषं मस्मासु दीधरत्स्वाहा ॥ ५१ ॥ +

का० १२.४.१०. समस्त दीक्षितों को अध्वर्यु करि स्पर्श करते इस मन्त्र से गार्हपत्य में धृत हो में। पशु देवत्या प्रा-वृ० ॥ हे गौः औ तुम्हारा रमण इन यजमानों के हो यहां तुम रमों तुमसे इन यजमानों के संतोष हो और स्वकीयों का भी यहां संतोष हो स्वाहा सुद्धतमस्तु का० १२.४.११. शालाद्वारीय में ऐसे ही दूसरी आहुति हो में। उषिणाग्नेयी ॥ धारण करने वाला अग्नि हमारे रायसोषं धनपशु पुत्र सुवर्णों दिकों की पुष्टि को धारण करे। कैसा है कि पृथिवी का धारयितार अग्नि समीप को प्राप्त तथा पृथिवी धयन् तिस में उत्पन्न हो हविका भक्षण करता। स्वाहेति होमार्थः ॥ ५१ ॥

सत्रस्य ऽ ऋद्धिः ॥ सत्रस्य ऽ ऋद्धिरस्य गन्मज्ज्योतिरमृतं ऽ अभूम ॥ दिवस्यृथिव्या ऽ अध्यारुहामाबिदामदे

वाँन्स्वज्ज्योतिः॥५२॥

का० १२४०१२० सवदीक्षित उत्तरहविर्धान के अपरकुवरी को आलंबन करि सत्रार्थि संज्ञक साम गान करें। वृहती यजमाना नामात्सत्य स्तुतिः॥ हे सोम सत्र की समृद्धि तू है इस हेतु हम यजमान ज्योतिः आदित्य लक्षण की प्राप्त हुए फिर अमरणधर्म हुए पृथिवी के सकाश से द्युलोक को आरूढ़ हुए फिर देवता इन्द्रादिकों को देखते हुए ज्योतिरूप और स्वर्ग को देखते हुए॥५२॥

युवन्तम्॥ युवन्तमिन्द्रा पर्वता पुरो युधा योनः पृतन्या दपतन्तमिद्ध तम्ब जै एतन्त मिद्ध तम्॥ दूरे च तार्यच्छन्तसद्गहनं यदि न क्षत॥ अस्मा कर्हं शत्रून्परि शूरविश्वतो दुर्म्मा दधी षु विश्वतः॥ भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्पाम सुवीरा विरैः सुपोषाः पोषैः॥५३॥†

का० १२४०१४० सव यजमान दक्षिणहविर्धान का अक्षमीचे मार्ग करिके प्राङ्मुख निकालें। इन्द्र देवत्यात्यष्टिस्वसानत्रयोपिताषट्षष्ट्यक्षरत्वात् द्यूना आयोर्ध्व इन्द्र पर्वत देवत्यः॥ हे शत्रुओं के सामने युद्ध के करने वाले हे इन्द्रा पर्वता तुम तिस शत्रु को मारो ऐसे ही तिन-तिन अर्थात् सव शत्रुओं को मारो तत्रापि विशेष्यते वज्रनामा आयुधसे तिन-तिन को विनाश करो। जो-जो शत्रु हम से युद्ध करे॥ इदानीमिन्द्रः प्रत्यक्षो वज्रस्य कर्तृत्वं चोच्यते हे शूर इन्द्र तेरा वज्र जब अत्यन्त गम्भीर बन बाजल में अति दूरि गये शत्रु को प्राप्त होने की चाह करता है तव तिस दूरि गये





या एता आहुती जुहोति स यद्यज्ञस्यार्द्धेद्यां तत्प्रति देवतां मन्येत  
तामनु समीक्ष्य जुहुयाद्यदि दीक्षोपसत्त्वाहवनीये यदि प्रसुतः आ  
ग्नीध्रे विवाः एतद्यज्ञस्य पर्वसर्गसंतेय इत्यलति सायैव तर्हि तत्र देव  
ता भवति तथैवैतद्देवतया यज्ञं भिषज्यति तथा देवतया यज्ञं प्रतिसं  
दधातीति ॥ अथ मंत्रार्थः ॥ आध्या द्वसिष्ट ऋषिः लिङ्गोक्तदेवता  
परमेष्ठीति १५६ दे- ज० २० या- पं० ३० ४० दे- पं० १० जब कि सोम य  
जमान करि अभिधीत (संकल्पित) हो तब मनसा करि अभिधीत प  
रमेष्ठी होता है। अथ मर्थः मनसा करि ध्यान किया सोमन उपनमेतोप  
रमेष्टिने स्वाहा इस मन्त्र से होम करे ॥ वचन से उच्चार करते सोम  
प्रजापति नामा होता है तिसके प्रायश्चित्त विषे प्रजापत ये स्वाहा इ  
स से होमें ॥ २॥ जो सोम अभिमुख्य करि प्राप्त हुआ तो अन्धनामा हो  
ता है। अन्ध से स्वाहा इति जुहुयात् ॥ ३॥ सोम के संभक्त होते सवितृ ना  
मा होता है तिसके प्रायश्चित्त में सवित्रे स्वाहेति जु० ॥ ४॥ दीक्षा विषे सो  
म विश्वकर्मा होता है तहां विश्वकर्माणे स्वाहेति जु० ॥ ५॥ सोम क्रयक  
रते हैं जिस गौ से उस सोम क्रयणी करिलाया सोम पूषा होता है तदा  
निमित्ते पूषो स्वाहेति जु० ॥ ६॥ ५४॥

इन्द्रश्च मरुतश्च क्रयायो पोत्थितो सुरः पुण्यमानो मित्रः की  
तो विष्णुः शिपिविष्टः कुरावा सन्नो विष्णुर्नरन्धिषः ॥ ५५॥  
७० आसुरी- अ० ८ दे- ज० २० दे- वृ० १० या- त्रि० ११ या- पं० ॥ इव्य  
दान करि उपस्थापित सोम इन्द्र और मरुत नामा होता है तब इंद्रा  
य मरुद्व्यश्च स्वाहेति जु० ॥ ७॥ क्रीयमाराः सोम असुर होता है

असुराय स्वाहा ॥८॥ यजमान करि क्रीत सोम मित्र होता है. मि  
त्राय स्वाहा ॥९॥ यजमान की गोदी पर स्थित सोम शिपिविष्टो वि  
ष्णुः अर्थात् प्राणियों वा यज्ञों में अविष्ट विष्णु होता है. विष्णावे  
शिपिविष्टाय स्वा. ॥१०॥ शकट करि ऊह्यमान सोम विष्णु नर  
न्धिषः अर्थात् नरोधीयन्ते आरोप्यन्ते यस्मिन्स नरन्धि संसारः  
तस्यति नाशयति नरन्धिषः. जगत्संहर्तृ विशिष्टो विष्णुः. अ  
थवा रथ हिंसायाम् रन्धिषो हन्ता नरन्धिषः जगत्पालको विष्णुः.  
जगत का संहार वा पालन करने वाला विष्णु होता है. विष्णावे  
नरन्धिषाय स्वा. ॥११॥ ५५॥

प्रोह्यमाणः सोमः ॥ प्रोह्यमाणः सोमः आगतो वरुणः  
आसन्त्या मासन्नो गिराग्नीध्रः इन्द्रो हविर्धाने यर्चो  
पावह्रियमाणो विश्वे देवाः ॥१६॥ +

१२. १४. दे० पं० १३. १६. या-वृ० १५. दे०-त्रि० ॥ शकट से आया अवस्तु सो  
म नाम होता है. सोमाय स्वा. ॥१२॥ मञ्चिका पर उपविष्ट वरुण  
हो. वरुणाय स्वा. ॥१३॥ आग्नीध्र में वर्तमान अग्नि हो. अग्न  
ये स्वा. ॥१४॥ हविर्धान में वर्तमान इन्द्र, इन्द्राय स्वा. ॥१५॥ हृदे  
त्वा मनस्वेति मन्त्रेण ३०. १६. कण्डन के अर्थ आनीयमान  
अथ. अथर्वणे स्वा. ॥१६॥ ५६॥

विश्वे देवाः अर्धं शुषून्तु प्रो विष्णुं रात्री तपाः आप्याय्य  
मानो यमः सूपमानो विष्णुः संभ्रियमाणो वासुः पूय  
मानः शुक्रः पूतः शुक्रः क्षीर श्रीर्मन्थी संतु श्री विश्वे दे

वाः ॥ ५७ ॥ †

२०. या-वृ० १८. आसुरीपं० १६-२१. दै-वि० २०. दै-ज० २२. दै-  
वृ० २३. २४. दै-पं० ॥ सोम खण्डों में कण्डन करि आरोपण किया  
वि० विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वा० ॥ १७ ॥ अर्धं शुरर्धं शुष्ट इत्यादि मंत्रेण  
५. ७. वर्धमान सोम आग्नीतपाविष्णु, सब ओड़ी से प्यारों का  
बड़ा प्यारा भक्तों का रक्षा करने वाला विष्णु हो० विष्णव आ  
ग्नीतपाय स्वा० ॥ १८ ॥ अभिषूयमानय० यमाय स्वा० ॥ १९ ॥ पुष्य  
मानवि० विष्णवे स्वा० ॥ २० ॥ दशायवित्रा करि पवित्र करते वा०  
वायवं स्वा० ॥ २१ ॥ पवित्र कियाहु आशु० शुक्राय स्वा० ॥ २२ ॥ दुग्ध  
से मिश्रित करते भी शु० शुक्राय स्वा० ॥ २३ ॥ सक्तुओं करि मिश्रि  
त मं० मन्यिने स्वा० ॥ २४ ॥ ५७ ॥

विश्वे देवाश्च मसेषून्नीतो सुर्हो मा योद्यतो रुद्रो हूय मा नो  
वातो म्यावृत्तो नृचक्षाः प्रतिष्यातो भक्षो भक्ष्यमाणः पि  
तरो नाराशर्द्धमाः ॥ ५८ ॥ †

२५. या-पं० २६. या-उ० २७. या-गा० २८. दै-पं० २९. दै-ज० ३०. दै-  
त्रि० ३१. या-वृ० ॥ चमसों (ग्रहपात्रों) में ग्रहण किया वि० विश्वेभ्यो दे  
वेभ्यः स्वा० ॥ २५ ॥ होम के लिये उद्यत अ० असवे स्वा० ॥ २६ ॥ होम  
किया हु आरु० रुद्राय स्वा० ॥ २७ ॥ होम का शेष भूत सद प्रतिभक्ष  
ण के अर्थ लाया हु आवा० वाताय स्वा० ॥ २८ ॥ ब्रह्मन्नुपह्वयस्व  
इत्यादि करि भक्षण के अर्थ पूछा नृचक्षा (मनुष्यों के शुभाशुभ  
करने को देखने वाला) हो० नृचक्षसे स्वा० ॥ २९ ॥ पीयाहु आभ

+ वि-प्रः ॥ अ-वि-नः ॥ दू-य-नः ॥ उ-वि-णः ॥ ऋ-वा-नः ॥ ल-शु-तः ॥ आ-शु-श्रीः ॥ दै-म-  
+ वि-तः ॥ अ-प्र-तः ॥ दू-रु-नः ॥ उ-व-तः ॥ ऋ-नृ-तः ॥ ल-भ-णः ॥ आ-पि-नः ॥ दै-॥ ५८ ॥

५७ ॥ ५८ ॥

क्ष०० भक्षाय स्वा० ॥ ३० ॥ भक्षण किये पीछे अपने स्वर पर सादन कि  
या नारांशं साः पितरः अर्थात् नरुहों वेठे स्तुति करते हैं ऐसा यज्ञ  
तिसके हित वायोभ्य नारांशं सति सगुण विशिष्ट पितर तिसनिमि  
न विषेः पितृभ्यो नारांशं सेभ्यः स्वा० ॥ ३१ ॥ ५८ ॥

सन्तः सिन्धुः ॥ सन्तः सिन्धु रवभृथा योद्यतः समुद्रोभ्य  
वह्नि यमाणः सलिलः प्रप्लुतो ज्यो रोजसा स्कभितार  
जा २ दिवो र्ये मिहो गतं मा ए विष्ठा ॥ या पत्ये ते ॥ अ पती  
ता सही भि विष्ठा ॥ ये गन्तुं दे ए पुर्व ह नो ॥ ५९ ॥ +

३२. ५३ या-वृ० ३४ या-या ॥ जल संध के अर्थ उद्यत सोम मि०  
सिन्धवे स्वा० ॥ ३२ ॥ जल का अभिमुख नीय मान सोम स० समु  
द्राय स्वा० ॥ ३३ ॥ जल में निमग्न सोम सलिल होता है तिसके प्राय  
श्चित्त विषे सलिलाय स्वाहेति जुहुयात् ॥ ३४ ॥ इन यज्ञा हुनियों से  
यज्ञ चिकित्सित और प्रति संहित होता है तथा च श्रुतिः २२. ६. १. २०  
तावाः एताश्च तुस्त्रिंशत माज्या हुती जुहोति त्रयस्त्रिंशद्वे देवाः  
प्रजापतिश्च तुस्त्रिंश एतदु सर्वे देवैर्यज्ञं भिषज्यानि सर्वे देवैर्यज्ञं  
प्रति संदधातीति ॥ ॥ का० २५. २. ४० कालाहुति होम और वाचन  
को करिके रसरूप सोम को जल से सींचे ॥ अभिमर्शनेन विकल्प  
ययो रोजसेति विष्णु वरुण देवत्या त्रिष्टुप् ॥ दोनो कर्मभूत विष्णु व  
रुण सोम रूप यज्ञ साधन को आए । कव कि पहिले आह्वान वि  
षे यावत् प्रधान को बुलाते हैं तावत् ही विष्णु और वरुण ह  
वि प्रति आए । अथवा पहिले बुलाये हुए विष्णु वरुण प्रति हविश

हुआ। वे कौन कि जिन विष्णु वरुण के बल करि लोक यं भेहे। किंचते विष्णु वरुण पत्येते। जगत के ईश्वर हैं अथवा परसैन्यपैश्येन की प्र कारदूजे हैं केसे हैं कि अत्यन्त वीर हैं। तथा अत्यन्त बलवान। तथा बल करि अप्रतीता। नही कोई भी उन्हीं के समुख जाने को समर्थ होता अर्थात् अनन्य योध्यो। ऐसे विष्णु वरुण रसरूप हवि प्रति प्रा प्त ह्य ॥ ५५ ॥

देवान्दिवम्॥ देवान्दिवमगन्यत्तस्ततो माद्रविणमष्टम्  
नुष्यान्तरिक्षमगन्यत्तस्ततो माद्रविणमष्टुपितृ  
नृथिवीमगन्यत्तस्ततो माद्रविणमष्टुयङ्गंचलोकमग  
न्यत्तस्ततो मे भद्रमभूत्॥ ६० ॥

का० २५.२. ८. रसरूप सोम का देवान्दिवं इससे स्पर्श करे यजुर्लि  
ङ्गोक्त देवत माशीः महीधर मते यज्ञ देवत्या यजमाना शीः अत्य  
ष्टिः॥ यह यज्ञ वाय्वादि देवताओं को प्राप्त हो द्युलोक को पहुंचे फि  
रि द्युलोकस्य यज्ञसे विशिष्ट भोग साधन रूप यज्ञफलभूत ध  
न को मुझे प्राप्त करे। अनेन सुकृति नामा रोह क्रम मभिधाये द  
नीमवरोह क्रममाह फिरि द्युलोकसे अवरोहण समय विषे य  
ज्ञ मनुष्य लोक को आकर अन्तरिक्ष लोक को जाकर तिसलोक  
में स्थित यज्ञसे यज्ञफल रूप धन को मुझे प्रा०। दक्षिणा यनं गम  
ना गमनमाह। यह यज्ञ धूमादि मार्ग से पितरों को प्राप्त हो भूलोक में  
जा तहां के स्थित यज्ञसे यज्ञफल०। किं बहुना जिन किन्हां लोकों को  
यज्ञ जावै तहां के यज्ञसे भोगे कल्याण हो इति यजमानाणास्यते॥ ६० ॥



गे को फेला । ब्रह्मादिस्तम्भ पर्यन्त भूतग्रामोकायज्ञपरिणामहे इतिभावः ६२

आपवस्व ॥ आपवस्व हिरण्यवदश्ववत्सोमवीरवत् ॥ वा  
जङ्गोमन्तमाभरस्वाहा ॥ ६३ ॥

इतिसंहितायां त्रयोविंशोऽनुवाकः ॥ २३ ॥

इति श्री शुक्लयजुषि माध्यन्दिनीशार्वीयायां वाज

सनेयसंहितायां दीर्घपाठे अष्टमोऽध्यायः ८

का. २३. ६. अ. पञ्च और सोमविषे यूप के काकारोहण में उद्गात्रा  
होते हैं । सोम देवता गायत्री तैत्तिरीय कश्यप दृष्टा ॥ हे सोम तू आकै  
रिक्त कर्तव्य है । २३. ६. और पुनः जैसे जैसे पालन करि अर्था  
यूप के आकार में । २३. ६. सोम देव सोम धेनु और अन्न दे स्वाहा सुह  
तम सुह ॥ २३ ॥

इति नैमिषिकादिग्रन्थाप्लानि

इति माध्यन्दिनीशार्वीयाविंशोऽनुवाकः

श्रीवेदार्थप्रदीपेन जम्माहार्देनिवारयन्

पुमार्थाश्चतुरेदपाद्यत्तपुरुषः सनातनः १

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीशार्वीयाधैतृव्याध्रपादान्व  
यविश्वामित्रपुराधियतिश्रीमज्जयकिशोरदेववर्माजरीकिरणे  
यनृपतिगिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपेगिरिधरभाष्येग्रहग्र  
हान्निमित्तान्तोनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

पञ्चात्मकद्वैतरूपपुनि साधन करि बहुरूप

आनन्ददायक कृष्णकौवरन्यांबलस्वरूप १



हरिः ओम्

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्वहु रूपकम्

स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपपरं स्तुमः १

अथ वाजपेयो बृहस्पते रार्षमिन्द्रस्य च

अ०१ देवसवितः ॥ देवसवितः प्रसुवयज्ञम्प्रसुवयज्ञपति  
म्भगाय ॥ दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाच  
सतिर्वाजन्नः स्वदतु स्वाहा ॥ १ ॥

ओं नमो यज्ञवत्काय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके

वाजपेयो राजसूयारम्भान्तो नवमोच्यते

चतुर्थीध्याय से आरंभ करि अष्टमान्त पांच अध्यायों में अग्निष्टो  
के मंत्र और तिसके प्रासंगिक मंत्र कहे नवमें अध्याय में चतुस्त्रिं  
शत् कण्डिका पर्यन्त वाजपेयके मन्त्र हैं तिन्हीं के बृहस्पति और  
इन्द्र ऋषि। तत्र का ०१४. १. ११. वाजपेयाङ्गभूत दीक्षाणीय प्राय  
णीयादिकों में एक वारलिये आज्य को होमें। सवितृ देवत्या त्रिष्टु  
पू ॥ हे सवितः सबके प्रेरक अन्तर्यामिन् हे दीप्यमान् वाजपेय  
लक्षण याग को प्रवर्तकरि। यज्ञपति यजमान को भजनीय अनुष्ठा  
नरूप परमैश्वर्य के अर्थ प्रेरित एवं मण्डलाधिष्ठातार पुरुषको क  
हिकर मण्डल प्रति कहिता है। तेरे प्रसाद से दिवि में हुआ दिव्य  
गन्धर्व अर्थात् गवि रश्मियों का घारण करने वाला अन्नका

पवित्र करने वाला सूर्य मण्डलरूप देवता हमारे अर्थ अन्न को पवित्र करे। किंच तेरे प्रसाद से प्रजापति हमारे अन्न को आस्वादन करे स्वाहा सुहुत मस्तु ॥ १॥

ध्रुव सदन्त्वा ॥ नृषदम्पनः सदमुपयामगृहीतोसीन्द्रायत्वा जुष्टं द्रुह्नाम्येषते योनिरिन्द्रायत्वा जुष्टं तमम् ॥  
अप्सुषदन्त्वा घृतसदं व्योमसदमुपयामगृहीतोसीन्द्रायत्वा जुष्टं द्रुह्नाम्येषते योनिरिन्द्रायत्वा जुष्टं तमम् ॥  
पृथिविसदन्त्वान्तरिक्षसदं दिविसदं देवसदन्त्वा कसदमुपयामगृहीतोसीन्द्रायत्वा जुष्टं द्रुह्नाम्येषते योनिरिन्द्रायत्वा जुष्टं तमम् ॥ २॥ +

का० १४०२२६ २२ प्रातःसवनं विषे आग्रयण के अनन्तर तीनि अति ग्राह्यो को और षोडशिन को ले इन्द्र देवता क पांच ग्रहों का ग्रहण करे। ऐन्द्राणि त्रीणि। अथ प्रथमम्। ध्रु-म्या-जम्भ-मि १२३ सा-अ० हे सोम तू उपयाम ग्रह करि गृहीत है। इन्द्र के अर्थ प्रिय तुम्हें ग्रहण करता हूं कैसे तुम्हें कि बहुत करिके स्थिर इस लोक में रहत ता है-मनुष्यों में रहता है मन में रहता है ॥ ए-मू १२३ आसुरी अ० सादयति। हे ग्र यह खर प्रदेश तेरा स्थान इन्द्र के अर्थ प्रिय तुम्हें सादन करता हूं इति शेषः ॥ अथ द्वितीयम् ॥ अ-मू आसुरी अ०। उदक में रहने वाला घृत विषे अन्तरिक्ष में। शेषो व्याख्यातः ॥ तृतीयम्। पृ-मू यजुः। पृथिवी में अन्तरिक्ष में स्वर्ग में देवताओं में नाके नहीं हैं दुःख जिसमें ऐसे सुखान्वित स्वर्ग विशेष में रहता है शेषं समानम् ॥ २॥

सोमाध्यसज्जते ॥ सोमाध्यसज्जते ॥ सोमाध्यसज्जते ॥

मि। उ०। ए-मू। अ०। उ०।

अपाथं रसम् ॥ अपाथं रसमुद्वयसर्गसूर्ये सन्तर्गसमा  
हितम् ॥ अपाथं रसस्य योरसस्तम्बो गृह्णाम्युत्तममुपया  
मगृहीतो सीन्द्रायत्वा जुष्टं द्रुह्णाम्येषते योनिरिन्द्रायत्वा  
जुष्टतमम् ॥ ३ ॥ +

चतुर्थम् । रसदेवत्यानुष्टुप् ॥ सूर्यविषं भले प्रकारस्थापन किये हुए  
जलों के रस सार वायु को मैं ग्रहण करता हूँ + । कैसे रस को कि उत्प  
न्न होते हैं प्रश्न जिस सैं । किंच वायु का जो सार प्रजापति हिरण्यगर्भ  
सहियज्ञ लोक कालाग्नि वायु सूर्य यजुः सामादि वयुः हे देवता ओ  
वः ( तुम्हारे अर्थ तिस प्रजापति को मैं ग्रहण करता हूँ कैसे वोह  
कि बड़ा उत्कृष्ट । वः शब्दोऽनर्थकः । अथवा सोम रूप करि वायु  
और तिस के अभिमानी सोम को ग्रहण करता हूँ । उपयामेति व्य  
ख्यातम् । एषतः इति सादनम् ॥ ३ ॥

ग्रहाः उज्ज्वलतयाः ॥ ग्रहाः उज्ज्वलतया व्यन्तो विप्रायमति  
म् ॥ तेषाम्विशिष्टा प्रियाणाम्बोहमिषमुज्ज्वलं समग्रभमुप  
यामगृहीतो सीन्द्रायत्वा जुष्टं द्रुह्णाम्येषते योनिरिन्द्राय  
त्वा जुष्टतमम् ॥ सम्पृचोऽस्यः समाभद्रेण पुङ्कम्विष्ट  
चोऽस्यो विमापाप्मनापुङ्कम् ॥ ४ ॥ +

पंचमम् ॥ ग्रहदेवत्यानुष्टुप् । हे ग्रह ओ तिन तुम्हारे संबंधि अन्न  
और रस को मैं भले प्रकार ग्रहण करता हूँ कैसे कौं कि विशिष्ट प्रिया  
हनु वा नासिका नहीं चलाने पड़ते हैं जिन ग्रहों में तिनों को सम्प  
गमिषुत्त और संपूत हैं मित्रों में सुपेय होने से हनु का व्यापार नहीं ।

+ अ-म। अ०। उ-मि। अ०। ए-म। उ०। ३॥

+ ग्र-म। अ०। उ-मि। इ०। ए-मि। उ०। स-म। अ०। वि-म। ल०। ४ ॥

तिन किन्हीं को किजे तुमको अन्न रस लाते हैं। तथा मेधावी इन्द्र के अर्थ विशिष्ट बुद्धि को जानते वा लाते हैं। उप० एष० व्याख्याते॥ का० १४०२०० अध्वर्यु सोम ग्रह को अक्ष के ऊपर धारण करे नेष्टा सुरा ग्रह को अक्ष के नीचे रखे साथ ही रखना और मंत्र पठना है॥ ग्रह देवते यजुषी। हे सोम सुरा ग्रह औ जो तुम संयोजन किये हो सो तुम मुझे कल्याण से संयोजन करे। का० १४०२०० अध्वर्यु नेष्टा अपने अपने ग्रह को अपने समीप में लावे॥ हे ग्रह औ जैसे तुम वियुक्त हो तैसे मुझे पाप से न्यारा करे॥ ४॥

अ० २ इन्द्रस्य वज्रः॥ इन्द्रस्य वज्रो सिवाज सास्त्वया यम्वाजर्हसेतु॥ वाजस्य नु प्रसवे मातारम् मही मदिति नाम ब्रह्म साकरा महे॥ यस्यामिदं म्बुम्भुवनं माविवेशतस्पा नो देवः सविता धर्मसाविषतु॥ ५॥

का० १४०३०१ महा मरुत्वती यके अन्त में माहेन्द्र से पूर्य अध्वर्यु रथवाहन शकट से रथ अवतारण करे। इ-त आसु-गा० रथ दे०॥ हे रथ तु इन्द्र का वज्र है। कैसा है तू कि अन्न का दाता किंचय हयजमान तुरुब ज्र भूत की सहाय से अन्न को भजे वा बहुत अन्नवान् होवै॥ का० १४०३०२ अवतारित रथ की धुरि पकड़ि कर चात्वा ल से दक्षिण हो लाय करि वेदी विषे स्थापन करे। वा-त पृथिवी देवत्यातिजगती अन्त्यः पादः सवितु देवत्यः॥ अन्न की अनुज्ञा विषे जैसे हम वर्तमान जिस भूमि को प्रसिद्ध जैसे तैसे वेद वाक्य करि अनुकूल करते (हुए) हैं। कैसी भूमि को कि जगत की निर्माण करने वाली बड़ी

गहनीय अखंडित। किंच यह विश्व सर्वभूतजात जिस भूमि में आ  
सविता ऐसेही तिस भूमिविषे हमें धर्म धारण अवस्थान  
प्रेरणा करे ॥५॥

अप्स्वन्तः॥ अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमुपासुतप्रश  
स्ति अश्वामवतवाजिनः॥ देवी रापो यो वः उर्मिः प्रतू  
र्तिः ककुन्मान्वाजसास्तेना यम्वार्जठं सेतू ॥६॥

३.३.५. स्नान के अर्थ जल के निकट लाये वा स्नान कि  
अश्वों को अप्स्वन्तः। इस मन्त्र-वा देवी रापः। इस-वा दो  
से प्रोक्षण करे। अश्व देवत्या वसान रहिता पुर उष्णिक् ॥  
जल के भीतर में अमृत अवस्थित और जल में भेषज आरोग्य  
प्रति करने वाली ओषधी अवस्थित हैं हे घोड़ेओ तुम तहां अ  
मृत भेषज युक्त जल विषे अन्नवान् होओ और प्रशस्त भागों वि  
होओ ॥ द्वितीयः प्रोक्षणमन्त्रः अद्देवत्यं यजुः। हे देवी जल तु  
म्हारा जो कल्लोल तिस करिके सींचा यह अश्व अन्न को दे। के  
है कल्लोल कि प्रकृष्ट वेगशील। तथा ककुन्मान् ककुत्तश  
करि वृषभ के स्कन्ध विषे उन्नत प्रदेश है तिस समान उदकनि  
य संयुक्त अर्थात् बड़लोदक संघातवान्। तथा अन्न का दाता ॥६॥

वातोवा ॥ वातोवा मनो वागन्धुर्वाः सप्तविंशतिः ॥

तेः अग्रेष्व मयुर्ज्ञं स्तेः अस्मिन्न वमादधुः ॥७॥

का. १४.३.६. दक्षिण अश्व को रथ में जोड़े। वातोवा + वातरुहा  
जवोयः तिस्रोश्च स्तुतयः क्रमेण उष्णिक्निष्ठुज्जगत्यः ॥ वाशब्दो

समुच्चयार्थो। वायु मन इन्द्रिय सप्तविंशति नक्षत्र भूमिके धारण करने वाले ते वातादिक पहिले अश्व को रथमें जोड़ते हुए और ते वातादिक अश्व में वेग को स्थापन करते हुए ॥ ७ ॥

वातरुहाभव ॥ वाजिन्युज्यमान इन्द्रस्येव दक्षिणः  
श्रियैधि ॥ युज्जन्तुत्वा मरुतो विश्ववेदस आते त्वष्टा प  
त्सु जवन्दधातु ॥ ८ ॥

का० १४. ३. ७. वाएँ अश्व को जोड़ें ॥ हे वेगवान् अश्व जोड़ते ही वा तवत् वेगयुक्त हो। किंच दक्षिण भाग में स्थित तू इन्द्र का अश्व जै से शोभायुक्त हो किंच सर्वज्ञ वा सर्वधन मरुत हे अश्व तू रथ में जोड़ें। किंच त्वष्टा देवता हे अश्व पैंरों में वेग को स्थापन करै ॥ ८ ॥

जवोयः ॥ जवोयस्ते वाजिनिहितो गुहायः श्येने पुरी  
तोः अचरच्च वाते ॥ तेन नो वाजिन्बलवान्बलेन वा  
जिच्च भव समनेच पारयिषातुः ॥ वाजिनो वाज  
जितो वाजिर्ह सरिष्यन्तो बृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत ॥ ९ ॥ †

का० १४. ३. ८. दक्षिण धुरि में तीसरे अश्व को जोड़ें ॥ हे अश्व जो तेरा वेग हृदय प्रदेश में स्थापित है। श्येन नामा पक्षी तेरे वेग देने से वर्तता है और तेरे ही वेग देने से वायु चलता है। हे वाजिन् तू सत्रिविधि (विविधि) वेग लक्षण बल करिके बलवान् वेगवान् होकर हमारे अन्न का जेता हो। और संग्राम विषे पारयिता और पार का प्राप्त करने वाला हो ॥ का० १४. ३. १०. बार्हस्पत्य च रुको घोड़ों को सुंघावै। वाजिनः साम्नीजः अश्वदेः ॥ अन्न के

जेतार अन्न के प्रति चलते हुए हे घोड़े ओतुम बृहस्पति चरुको  
सूँधो ॥ ४५ ॥

अ० ३ देवस्याहम् ॥ देवस्याहर्हं सवितुः सवेसत्य सवसो बृह  
स्पते रुत्तमान्ना कर्हं रुहेयम् ॥ देवस्याहर्हं सवितुः सवेस  
त्य सवसः इन्द्रस्योत्तमन्ना कर्हं रुहेयम् ॥ देवस्याहर्हं स  
वितुः सवेसत्य प्रससो बृहस्पते रुत्तमन्ना क मरुहम् ॥ दे  
वस्याहर्हं सवितुः सवेसत्य प्रसवसः इन्द्रस्योत्तमन्ना क  
मरुहम् ॥ १० ॥ +

का० १४.३.१२ उत्कर प्रदेश विषे गाडे हुए नाभि मात्र काष्ठ के अग्र  
में स्थित रथचक्र को ब्रह्मा आरोहण करे ॥ १०.११.१२ वाजं जेषम् १३  
लिङ्गोक्तानि यजुः ब्राह्मण कर्तुं के वाजपेये ॥ सत्याभ्यनुज्ञ सविता  
देवता की अनुज्ञा विषे वर्तमान में बृहस्पति संबंधि उत्कृष्ट नाक  
(स्वर्ग) को आरोहण करता हूँ । क्षत्रिय वाजपेये चक्रा रोहण मन्त्रः  
सा-ज० । तत्र इन्द्र के नाक को इति विशेषः ॥ का० १४.४.८ यज  
मानादिकों के सप्तदश रथ सप्तदश शर प्रक्षेप विषे गडी हुई ओ  
दुम्बरी शारवा को प्रदक्षिणी करि देव यजन देश की आने पर ब्रह्मा  
रथचक्र से उतरे विप्र यज्ञ में पूर्व मन्त्र करि क्षत्रिय यज्ञ में उत्तर से  
आर्षी वृ० यजुः सत्य और प्रकृष्ट है सब जिसका वोह सत्य प्रस  
वाः यहाँ प्रशब्द प्रकर्ष द्योतक है । अरुहमिति भूतकालः मेना  
क को आरूढ वानहं शेष पूर्ववत् ॥ १० ॥

बृहस्पते वाजम् ॥ बृहस्पते वाजं जय बृहस्पतये वाच

म्वरत बृहस्पतिम्वाजं आपयत ॥ इन्द्रवाजं जयेन्द्रायवा  
चम्व दतेन्द्रम्वाजं आपयत ॥ ११ ॥ †

का० १४.३.१५. अनुवेद्युच्छ्रितस्या एवा रोपित सप्तदश दुन्दुभियों  
के मध्यमें एकको मन्त्र करि वजावै षोडशों को चुपके सैं। प्रा-त्रि० विप्रय  
ज्ञे मन्त्रः ॥ हे दुन्दुभी औ तुम बृहस्पति के अर्थ यह वाचा कहौ वोह  
कोन कि हे बृहस्पते तू अन्न को जीति। किंच हे दुन्दुभी औ तुम ही  
बृहस्पति करि अन्न की जय करा औ ॥ प्रा-व० क्षत्रयज्ञे दुन्दुभिवादन  
मन्त्रः ॥ हे दुन्दुभी औ तुम इन्द्र के अर्थ अन्यत्समानम् ॥ ११ ॥

एषावः ॥ एषावः सा सत्या सम्वा ग भूद्यया बृहस्पतिम्वाजं  
मजी जपता जी जपत बृहस्पतिम्वाजं न स्पतयो विमु  
च्यध्वम् ॥ एषावः सा सत्या सम्वा ग भूद्ययेन्द्रम्वाजं म-  
जी जपता जी जपतेन्द्रम्वाजं न स्पतयो विमुच्यध्वम् ॥ १२ ॥ †

का० १४.४.८. १०. सप्तदश दुन्दुभी औ के मध्य मन्त्र सैं वजा एको म  
न्त्र करि स्थाणु सैं अवतारण करै षोडशों को चुपके सैं। पूर्वोक्त मन्त्रो वि  
प्रयज्ञे उत्तरः क्षात्रे। ब्रा- उ० ब्रा-गा० ॥ हे दुन्दुभी औ तुम्हारी यह वा  
क् सत्य हुई कि जिस वाचा करि बृहस्पति को अत्यन्त अन्न की ज  
य कराई तुमने जिस वाचा सैं सो सत्य हुई। हे वनस्पतयो अर्थात् व  
नस्पति के विकार दुन्दुभी औ तुम कृतकृत्य हुए छूटौ ॥ उत्तर मन्त्र  
में इन्द्र का उच्चारण करना समानम् ॥ १२ ॥

देवस्याहम् ॥ देवस्याहं सवितुः सवे सत्य प्रसवसो बृह  
स्पतेर्वाजं जितो वाजं जेषम् ॥ वाजिनो वाजं जितो ध्वनं



† आज्यनोऽपि काष्ठोच्यते कान्ता स्थितो भवतीति निरु. २. १८. पाक्षिकैः काष्ठोत्कर्षे स्थिते दिशीत्यभिधानात् अमर. ३. ३. ४६.

स्वप्नुवन्तो योजनानामिमानाः काष्ठाङ्गुष्ठतः ॥ १३ ॥ †

का० १४.३.१८. मन्त्रयुक्तरथको यजमान आरोहण करे। आर्षीवृ० ॥ सत्याभ्यनुज्ञ सविता देवता की अनुज्ञाविषे कर्तमानमें अन्न के जीतने वाले बृहस्पति के संबंधि अन्न को जीतू ॥ का० १४.३.२२. ब्रह्मचारी वा अन्नेवासी यजमानको पढ़े। सा-ज० अश्वदे० ॥ हे घोड़े ओ तुम आज्यन्त (उत्कर्ष) को प्राप्त होओ। कैसे हो तुम कि अन्न के जीतने वाले। तथा मार्गों को क्षोभ करने वाले †। तथा योजनों की अतिशीघ्रता करि परि छेदन करने वाले ॥ १३ ॥

एषस्य ॥ एषस्य बाजीक्षिपणिन्तुरण्यति ग्रीवायां बद्धो  
ऽपिकक्षऽआसनि ॥ क्रतुर्दधिकाऽअनुसृष्टसनिष्य  
दत्यथामङ्गाश्चस्यन्वापनी फणात्वाहा ॥ १४ ॥

का० १४.४.३.४. दोऊ च ओं से आज्य को होमें वा अश्वों को अभिमंत्रित करे। हे अश्वदेवत्ये जगत्यो दधिका वा वाम देव्य दृष्टे ॥ वोहय ह घोड़ा कशा घात के अध्वान को व्याप्त होता है अथवा कशा की बूर्णता से शीघ्र चलता है। कैसा है अश्व कि ग्रीवा विषे उरोवध्न करि बंधा है। कक्षी ओं के समीप विषे अपिकक्ष (पर्याण देश) तहां संना हरज्जु करि बंधा है। मुख पर कविक करि बंधा है। तथा दधिकाः अश्व वार को धारण कराय चलता अथवा मार्ग के अवरोध करने वाले अद्विपाषाण गर्त कण्टकादिकों का अतिक्रम करने वाला दधिकाः तथा क्रतुं सादिन (अभि प्राय) को भले प्रकार धारण करने वाला सादि संकल्पानुसार करि चलता। तथा मार्गों के ऊंचे नीचों में अतिशीघ्र

प्राप्त होता (अर्थात् समत्वको अर्थात् पादान करता है। एवं विधोऽश्वस्तुर  
एयतीति सम्बन्धः। स्वाहा सुहुत मस्तु ॥ १४ ॥

उतस्म ॥ उतस्मास्य द्रवतस्तुरएयतः पूर्णान्वे रन्तु वाति  
अगर्धिनः ॥ श्येनस्ये बुध्रजतोऽअङ्कः सम्परिदधिका  
वाः सहोर्जातरित्रतः स्वाहा ॥ १५ ॥

और इस घोड़े का शृङ्गारचिह्न वस्त्र चामरादिक समस्त देह पर व  
र्त्तमान होने से चलते अश्वको उत्क्षिप्तत्वकरि दिखलाई पड़ते हैं।  
कैसे कि जैसे शीघ्रतासे चलते पक्षी के पक्ष उत्क्षिप्त चलते ही रहते  
हैं। कैसे अश्वके किंचलते तथा शीघ्र के अवधि प्राप्ति कांक्षाकर  
ने वाले के। पक्षि मात्रस्य पूर्णमङ्कः सदृष्टान्तत्वे नाभिहितम् शीघ्र  
धावने श्येन दृष्टान्त उच्यते जैसे श्येन वेगसे चलता है दधिकावा  
धारकपर्वतादिकों का अतिक्रमकरतो बल सहित भृश मार्ग को तरता  
है स्वाहा सुहुत मस्तु ॥ १५ ॥

शानः ॥ शन्नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवता नामितद्रवः  
स्वर्काः ॥ जम्भयन्तो हिम्बु कर्ठ रक्षां सिसने म्यस्मद्युय  
वन्नमीवाः ॥ १६ ॥

का० १४०४५ शानः दूनतीन ऋचाओं करि आज्य होम वा अश्व  
भि मन्त्रण करै। अश्वदेवत्या चतुष्यदाविराड्वसिष्टदृष्टा ॥ देवताओं  
के कर्म यज्ञविषे आह्वानों में घोड़े हमारे सुख करने वाले हजियों।  
कैसे हैं कि परिमित चलते। तथा सर्प ल्यारी रक्षसों का नाश कर  
ते हैं। किंच वे घोड़े हमारे सकाश से क्षिप्रही व्याधियों को पृथक्

कीजियों ॥१६॥

तेनोऽअर्बे नो हवनश्रुतो हवम्बिश्चैश्वर्यवन्तु वाजिनोमि  
तद्रवः ॥ सहस्रसामेधसाता सनिष्यवो महो येधनं स  
मियेषु जिम्बिरे ॥ १७ ॥

अश्वदे० जगतीनाभाने दिष्टदृष्टा ॥ वे सब घोड़े हमारे आह्वान को  
सुनियों। कैसे हैं कि कुटिल चलते हैं। आह्वान को सुनते हैं। यजमा  
न के चित्त के अनुकूल करि परिमित गामी। अनेकजनों की तृप्ति के  
योग्य अन्नराशि के दाता। यज्ञशाला के पूरक। वे कौन कि जे घो  
ड़े सङ्ग्रामों विषे पूजा बाधन को प्राप्त करते हैं ॥ १७ ॥

वार्जे बानेवत ॥ वाजिनो नो धनेषु विप्राऽअमृताऽऋतज्ञाः ॥

अस्य मध्वः पिबत मादयध्वन्तृभ्राजा तपथिभिर्हैव यानैः ॥ १८ ॥

अश्वदे० त्रिष्टुब्जशिष्टा ॥ हे घोड़े औ समस्त अन्नों में उपस्थित होते  
और धनों में उपस्थित होते हमें पालन करौ। कैसे हो तुम कि मेधावी  
(परिदृष्टकारी) अमरणधर्मा सत्यज्ञ वा यज्ञज्ञ। किंच दूस मधु को  
धावन से पहिले और पीछे अब घ्रायमाण नेवार चरुलक्षण मधुर  
हवि को पी औ और पीकें तृप्त हो औ फिरि तृप्त होके देवाधिष्ठित मा  
र्ग करि चलो ॥ १८ ॥

आमा ॥ आमा वार्जस्य प्रसवो जगम्या देमेद्यावापृथि  
वीविश्वरूपे ॥ आमा गन्ताम्यितरा मातरा चामा सोमेऽअ  
मृतत्वेन गम्यात् ॥ वाजिनो वाजजितो वाजं ठंसस्रवा ७  
सो हृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत निमृजानाः ॥ १९ ॥ +

का० १४०४१ यजमानरथसेउतस्वात्वालउत्करकेअन्तरमें स्थित नेवा  
रचरुका स्पर्श करे प्रजापति दे० त्रिष्टुब्धसिष्ट दृष्टा ॥ अन्न की उ  
त्पत्ति मेरे आओ। सर्वरूपात्मिकायेद्यावा पृथिवी मुरुप्रति आओ  
मेरे पिता और माता हमारे प्रति आओ। और सोम अमृतत्व करि-  
मेरे आओ ॥ का० १४०४१२ वाजिनः इस मन्त्र करि युक्त घोडाओं  
को नेवारचरु सुंघावै। प्रा-त्रि० अश्वदे० ॥ हे घोडे औतुम बृहस्प  
ति के संबंधि चरुको आघ्राण करे। कैसे ओं कि अन्न के जीतने  
वाले। अन्न के जीतने को प्राप्त हुए हो। शोधन करते हो चरुवा  
इस यजमान को पवित्र करते हो ॥ १४० ॥

अ० ४ आपये स्वाहा ॥ आपये स्वाहा स्वापये स्वाहा पिजापस्वाहा  
कतवे स्वाहा वसवे स्वाहा हर्यतेये स्वाहा नैसुग्धाय स्वा  
हा मुग्धाय वै नरं शिनाय स्वाहा चिनर्दं शिनः आन्या  
यनाय स्वाहा न्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहा  
धि पतये स्वाहा ॥ २० ॥

का० १४०५१ आपये स्वाहा इति प्रतिमन्त्र से द्वादश आहुतिहोमें  
वापठे। प्राजापत्यानि द्वादश १२४५ दे० यं० ३ या-गा० ६०  
या-उ० ८ या-पं० ४ आसु-पं० १०११ या-बृ० १२ दे० ज० ॥ संवत्स  
रभि मानी प्रजापतिः स्तूयते तस्यैवैतानि नामानि। आप्ति करता  
है तिसके अर्थ स्वाहा। शोभन आप्ति करता है तिस०। फिरि-फिरि  
उत्पन्न होता है तिस०। संकल्प भोगादि विषय वा यज्ञ तिस०। निवा  
स का हेतु०। दिवसों का पति। अतश्चत्वारि नामान्युभयविशेषण

† आ-हा। अ० सा-हा। इ० अ-हा। उ० क-हा। ऋ० व-हा। लृ० अ-हा। आ० द० मु-  
हा। ऊ० वि-हा। ऋ० अ-हा। लृ० भु-हा। क० अ-हा। च० २० ॥

विशिष्टानि मोहकरताहै तिसदिवसके अर्थ०। विनाश शील भव तिस  
समोह करने वाले के०। भव का अन्य स्थान तिस विनाश शील के०।  
भव अन्य तिस उभय विशिष्ट के०। जगत के पालन करने वाले के०।  
सब लोकों के स्वामी के अर्थ स्वाहा सुहृत मस्तु॥२०॥

आयु र्यज्ञेन कल्पताम् प्राणो यज्ञेन कल्पता चक्षु र्यज्ञे  
न कल्पतां श्रोत्रं यज्ञेन कल्पताम् पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां  
यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्॥ प्रजापतेः प्रजाऽऽयं भूम स्वर्देवा  
ऽऽगन्मामृताऽऽयं भूम॥२१॥†

का० १४.५.२ और आयु र्यज्ञेनेत्यादि षट् मंत्रों से होम करे वाइ  
है पढ़े। प्रजापत्यानि षट् १-६ प्रा-गा०॥ मेरी आयु वाजपेया  
ख्य यज्ञ करि कृत्त हजियो। मुखनासिका से हुआ प्राण वायु भी वा  
ज० चक्षु इन्द्री० श्रोत्र इन्द्री० पृष्ठ रथन्तरादि कवा शरीर की पीछे।  
यज्ञ, यज्ञ का अधिष्ठाता विष्णु मेरे वाजपेया ख्य यज्ञ से कृत्त हजियो॥॥  
का० १४.५.६-८ प्रजापतेः इस मन्त्र से पत्नी यजमान निश्रिणी से पू  
पको आगे हण करें। यजमान देवत्यानि त्रीणि १० या-बृ०॥ हम  
प्रजापति संबंधि प्रजा हुए॥ का० १४.५.९ गोधूम पिष्ट निर्मित  
चषाल को यजमान स्पर्श करे। २.३.दे-त्रि०॥ हे देवता ओ हम  
स्वर्ग को गए॥ का० १४.५.१० यूप से ऊंचे को शिर करे॥ हम मर  
ण धर्म रहित हुए॥२१॥

अस्मेवः॥ अस्मेवोऽस्त्विन्द्रियं अस्मे नृणां मुतक  
तुरस्मेवर्चां सिसन्तवः॥ नमो मात्रे पृथिव्यै नमो

मात्रे पृथिव्याऽद्वयन्ते राड्यन्तासि यमनो ध्रुवो सिधरुणः ॥  
कृष्येत्वा क्षेमा यत्वा रथ्येत्वा पोषा यत्वा ॥ २२ ॥ †

का० १४. ५. ११. यूपारूढ एव यजमान दिशा देखे। दिग्देव गायत्री हलायुधमते ॥ हे दिशा औ तुम्हारा संबंधि वीर्य हम विषे है। तुम संबंधि धन हम विषे है। और तुम संबंधि कर्म हमारे में है। तुम्हारे तेज हमारे में है। हमारी संबंधि तुम्हारी सामर्थ्य है। इति भावः ॥ का० १४. ५. १४. भूमि को देखे। सा. उ० पृथिवी दे० ॥ मातृरूपा पृथिवी के अर्थन मस्कार है †। का० १४. ५. १७. उत्तर वेदी के ऊपर औ दुम्बरी आसन्दी पर वस्तु चर्म को बिछावे। दे० व० आसन्दी दे० ॥ हे आसन्दी तेरा यह राज्य तू अभिषिक्त है इति भावः ॥ का० १४. ५. १७. आसन्दी पर यजमान को उपवेश करावे। यजमान देवत्यं यजुः ॥ हे यजमान तू सब का नियन्ता है। आप संयमन कर्त्ता है। तेरा यमन अनवच्छिन्न है। इति भावः। तथा स्थिर है धारक है। कृषि की सिद्धि के अर्थ तुम्हें उपवेश कराता हूँ। लब्ध के परिपालनार्थ तुम्हें उष० धन के अर्थ तु० पशु पुत्रादिकों की पुष्टि के अर्थ तु० ॥ २२ ॥

अ० ५. वाजस्येमम् ॥ वाजस्येमम्यसवः सुषुवे ग्रे सोमर्द्धं राजानमो षधीष्वप्सु ॥ ताः अस्मभ्यमधुमतीर्भवन्तु च पठं गृष्टे जाग्रयामपुणेहिता स्वाहा ॥ २३ ॥

का० १४. ५. २३. औ दुम्बर पात्र विषे एकी किये दुग्ध व्रीह्यादि धान्य से स्तुवा करि आहवनीय में सप्त मन्त्रों से होमें। प्रजापति देवतं तृचं त्रिष्टुभं ॥ अन्न का उत्पादक प्रजापति सृष्टिकी आदि में औष

धी और जल में वर्तमान इस बल्ली रूप सोम दीप्तिमान पदार्थ को  
उत्पादन करता हुआ वे सोम की जननी ओषधी हैं और जल ह  
मारे अर्थ मधुमती (रसवती, माधुर्योपेता) अर्थात् भोग योग्या हैं औ  
र हम तिन्हों करि अभिषिक्त स्वकीय देश विषे अन्न मत्त हों। पुरोहि  
ताः यागानुष्ठान की आदि में प्रथम हों स्वाहा सुहुत मस्तु ॥ २३ ॥

वाजस्ये माम् ॥ वाजस्ये माम्सवः सिंश्रिये दिवमिमाच-  
विश्वाभुवनानि सम्म्राट् ॥ अदित्सन्तन्दापयति प्रजान  
न्स नो रयिर्दं सर्वं वीरुन्नियच्छतु स्वाहा ॥ २४ ॥

अन्न का उत्पादक ईश्वर इस पृथिवी और द्युलोक और इन सम  
स्त भूतजातों को आश्रितवान् और सो सम्म्राट् समस्त भूतजातों का  
राजा होकर हवि देने को अनिच्छन् मेरी बुद्धि प्रेरणे से हवि दे ततः  
हमारे अर्थ सब पुत्र भृत्यादि युक्त धन को नियम करिके देवें स्वा  
हा सुहुत मस्तु ॥ २४ ॥

वाजस्यन्तु ॥ असवः आब भूवे माच विश्वाभुवनानि स  
र्वतः ॥ सनेमिरजा परियाति बिद्वान्प्रजाम्पुष्टिम्बर्द्धय  
मानोऽस्मे स्वाहा ॥ २५ ॥

बुद्धि विस्मये अन्न का उत्पादक इन समस्त भूतों सर्वतोऽवस्थित  
हिरण्य गर्भादि स्तम्भ पर्यन्त उत्पादितवान् चिरन्तन राजा हो स  
र्वतः स्वेच्छा करि चलता है। कैसा है कि अपने अधिकार को जान  
ता तथा हम विषे पुत्रादि सन्तति और धन की पुष्टि को बढाता  
स्वाहा सुहुत मस्तु ॥ २५ ॥

सोमर्हं राजानम् ॥ सोमर्हं राजानमवसेग्निमन्वारभाभ  
हे ॥ आप्तित्यान्विष्णुर्हं सूर्यं मृत्प्राणं च बृहस्पतिं  
स्वाहा ॥ २६ ॥

तिस्रोऽनुष्टुभस्तापसदृष्टाः अनिरुक्ता अनुष्टुप् प्रथमा सोमाग्न्या  
दित्यविष्णु सूर्य बृहस्पति देवत्या । रक्षा वा वृत्ति के अर्थ सोम-  
राजा अग्नि वैश्वानर द्वादशादित्य विष्णु सूर्य ब्रह्मा और  
बृहस्पति को आह्वान करते हैं स्वाहा सुहुत मस्तु ॥ २६ ॥

अर्थ मणमृहस्पतिम् ॥ अर्थ मणमृहस्पतिमिन्द्र  
ना यचोदय ॥ वाचम्विष्णुर्हं सरस्वतीं सवितारं च  
वाजिनं स्वाहा ॥ २७ ॥

अर्थ मृहस्पतीन्द्र वाग्विष्णु सरस्वती सवितृ देवत्या । हे ईश्वर तू  
अर्थमादिक देवताओं को धन प्रदानार्थको प्रेरि बृहस्पति देवता  
ओं के ईश इन्द्र वाचा वागधिष्ठात्री सरस्वती विष्णु सब के उ-  
त्पादक सूर्य । वाजिनं अन्न वन्त यह सबों का विशेषण वादेवाश्च  
का स्वाहा सुहुत मस्तु ॥ २७ ॥

अग्नेऽपछ ॥ अग्नेऽपछा वदेहन प्रतिनः सुमना  
भव ॥ प्रनोय छ सहस्रजित्वर्हं हि धनं दाऽअसि स्वाहा ॥ २८ ॥

अग्नि देवत्या । हे अग्ने इस कर्म विषे अभिमुख्य करि कै हित  
को कहि इति शेषः । किंच हमारे प्रति आर्द्र चित्त हो बहुत वसु  
वा सहस्रों योधाओं के जीतने वाले जैसे तू स्वभाव से ही धन का  
दाता है अतः तू हमारे अर्थ धन के दे स्वाहा ॥ २८ ॥



प्रनः॥ प्रनो यच्छ त्वर्यमा प्रपूषा प्रहृहस्पतिः॥ प्रवाग्देवी  
ददातु नः स्वाहा ॥ २६ ॥

गायत्री अर्यम पूष हृहस्पति वाग्देवत्या । अर्यमा सूर्य विशेष हमा  
रे अर्य अभीष्ट को देवै पूषा हमा-देवै हृहस्पति हमा दीप्यमाना  
वाक् हमा स्वाहा ॥ २६ ॥

देवस्यत्वा ॥ देवस्यत्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्याम्यू  
ष्णो हस्ताभ्याम् ॥ सरस्वत्यै द्वाचो यन्तुर्यन्त्रियै दधामि ह  
हस्पतेष्वासा मा ज्येनाभिषिञ्चम्यसौ ॥ ३० ॥ †

का० १४. ५. २४. होमके शेष द्रव्य करि यजमान के शिरकोसींचे ।  
देवस्यत्वा प्रा- हृ० सरस्वत्यै प्रा- त्रि० यजमान देवत्यम् ॥ सविता दे  
वताके प्रसव विषे वर्तमान में अश्विनी कुमारों के बाहुओं पूषा  
के हाथों से तुम्हे बाणी नियमन करी सरस्वती के ऐश्वर्य विषे स्था  
पन कर्ता हूं । किंच हृहस्पति के सम्राट् भाव करिके तुम्हे अभिशेष  
कर्ता हूं, असौ यजमान कानामस्तेना ॥ ३० ॥

अ० ६ अग्निरेकाक्षरेण ॥ प्राणमुदजयत्त मुज्जैष मश्विनो द्युक्ष  
रेण द्विपदो मनुष्यानुदजयत्तान्तानुज्जैष म्बिष्णुस्त्र्यक्षरे  
ण त्रीन्ध्रो कानुदजयत्तानुज्जैष ठ सोमश्चतुरक्षरेण चतु  
ष्पदः पृथ्वीनुदजयत्तानुज्जैष म्पूषापञ्चाक्षरेण ॥ ३१ ॥ †

का० १४. ५. २८. अग्निरेकाक्षरेण इसचतुः कण्डिकात्मक अनु  
वाक को जैसे का० १४. ५. १० आपये स्वाहा इन द्वादशमन्त्रों को ज  
पे वा इन्हों से होम करे तेसेही इन सप्तदशमन्त्रों को जपे वा इन्हों

सै होमकरै। एते मन्त्रा उज्जितसंज्ञाः॥ सप्तदश लिङ्गोक्त देवतानि  
१०३५६१०१४१० यजूर्ध्वे २४७१६ सा-त्रि०८११ सा-य०  
२० प्रा-वृ०१२ आषीउ०१३१५ आषीअ०॥ ओआवय इतिचतुरक्षरं  
अस्तुषोषट् इतिचतुरक्षरं यज इति द्व्यक्षरं ये यजामहे इति  
पञ्चाक्षरं वषट् चक्षरः एष सप्तदशाक्षरात्मकः प्रजायति  
रधियज्ञं समास व्यासाम्या मुञ्जीयते शत०१५१६२०॥ अ  
थमंत्रार्यः॥ अग्नि एकाक्षर छन्द करिके पंचवृत्तिक प्राणको उ  
त्कृष्टजीतताहुआ तैसैमेंभी तिस प्राण को उत्कृष्टजीतू अर्थात् वशी  
करूँ ॥१॥ अश्विनी कुमार अक्षर द्वयात्मक छन्द करिके पादद्वयो  
पेत मनुष्योंको जीततेहुए तैसैमेंभी तिनही दो अक्षरों के छन्दसैतै  
सै मनुष्योंको जी ॥२॥ विष्णु अक्षर त्रयात्मक छन्द करिके भूआदि  
तीनिलोकोंको जीतताहुआमेंभी ॥३॥ सोम चारि अक्षरों के छन्द क  
रिके चतुः पदपशुओंको जी ॥४॥ ३१॥

पूषा पञ्चाक्षरेण पञ्चदिशः उदजयताः उज्जैषर्धिसवि  
ताषडक्षरेण षड्भूतनुदजयतानुज्जैम्मरुतः सप्ताक्ष  
रेण सप्तग्राम्यान्पशूनुदजयैस्तानुज्जैषमृहस्पतिरष्टा  
क्षरेण गायत्री मुदजयतामुज्जैषमित्रो नवाक्षरेण ॥ ३२॥

पूषा देव पञ्चाक्षर छन्द करि पूर्वादि चारि और अवांतर दिशा इ  
नपांचों को जी ॥५॥ सर्वोंका प्रेरक देव षडक्षरात्मक छन्द करि  
के षट् ऋतुओंको जी ॥६॥ मरुत देवते सप्ताक्षरात्मक छन्द करिके  
गवादि सप्त ग्राम्य पशुओंको जी ॥७॥ बृहस्पति अष्टाक्षरात्मक छ

न्दकरिके गायत्री छन्दोभिमानि देवताकोजी ०॥८॥३२॥

मित्रो नवाक्षरेण ॥ त्रिवृत्तं स्तोममुदजयन्तमुज्जैषम्बरु  
णो दशाक्षरेण विराजमुदजयन्तामुज्जैषमिन्द्रः एकाद  
शाक्षरेण त्रिष्टुभमुदजयन्तामुज्जैषम्बिम्बे देवाद्वादशा  
क्षरेण जगती मुदजयन्तामुज्जैषम्बसंवस्त्रयो दशाक्ष  
रेण ॥ ३३॥†

मित्रदेवता नवाक्षरात्मक छन्द करिके त्रिवृत्त स्तोमकोजी ०४॥  
वरुणदेवता दशाक्षरात्मक छन्द करिके विराजाभिमानि देवताको  
जी ०॥१०॥ इन्द्रदेवता एकादशाक्षरात्मक छन्द करिके त्रिष्टुभ छन्दाभि  
मानिनी देवताकोजी ०॥११॥ बिम्बे देवाद्वादशाक्षरात्मक छन्द करि  
के जगती छन्दाभिमानिनी देवताकोजी ०॥१२॥३३॥

वसंवस्त्रयो दशाक्षरेण त्रयोदशं स्तोममुदजयन्तमुज्जै  
षम्बरुद्राश्चतुर्दशाक्षरेण चतुर्दशं स्तोममुदजयन्तमु  
ज्जैषमादित्याः पञ्चदशाक्षरेण पञ्चदशं स्तोममुदज  
यन्तमुज्जैषमदितिः षोडशाक्षरेण षोडशं स्तोममुद  
जयन्तमुज्जैषम्यजापतिः सप्तदशाक्षरेण सप्तदशं स्तोम  
मुदजयन्तमुज्जैषम् ॥ ३४॥†

वसुदेवते त्रयोदशाक्षरात्मक छन्द करिके त्रयोदश स्तोमकोजी ०  
१३॥ रुद्रदेवते चतुर्दशाक्षरात्मक छन्द करिके चतुर्दश स्तोमको  
जी ०॥१४॥ आदित्य देवते पञ्चदशाक्षरात्मक छन्द करिके पञ्च  
दश स्तोमकोजी ०॥१५॥ अदिति देवमाता षोडशाक्षरात्मक छन्द

करिके षोडश स्तोमकोजी०॥१६॥ प्रजापति सप्तदशाक्षरात्मक छन्द  
करिके सप्तदशाक्षर स्तोम कोजी०॥१७॥ ३४॥ इतिगिरिधरभाष्ये ष  
ष्टीनुवाकः॥ ॥ इतिवाजपेयमंत्रः समाप्तः ॥

अथराजसूयोवरुणस्यावै

अ० ७ एषते॥ एषते निर्ऋते भागस्त जुषस्व स्वाहा गिनैत्रेभ्यो  
देवेभ्यः पुरः सद्यः स्वाहा यमनैत्रेभ्यो देवेभ्यो दक्षिण  
सद्यः स्वाहा विश्वदेवनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पश्चात् सद्यः स्वा  
हा मित्रावरुणनेत्रेभ्यो वामरुन्नेत्रेभ्यो वा देवेभ्यः उ  
त्तरा सद्यः स्वाहा सोमनेत्रेभ्यो देवेभ्यः उपरि सद्यो दुर्व  
स्वद्यः स्वाहा॥ ३५॥ +

का० १५०१०४०१०० फाल्गुणाद्य दशमीविषे अनुमती के अर्थ अ  
ष्टाकपाल पुरोडाश होता है तिसके अर्थ ग्रहण किये हविके पेष  
ण समय दृष्ट के नीचे निहित शम्याके पीछिले भागविषे गिरा  
जो तण्डुल पिष्ट रूप हवितिसे सुवा में रवि दक्षिणाग्नि से उत्सुक  
ले दक्षिण दिशा में आय जा स्फुटित भूभाग वा ऊपर में उत्सुक  
ग्नि का स्थापन करि तिस हवि को होमें। एषते-सा-उ० पृथिवीदे०॥  
हे निर्ऋते पृथिवी यह पिष्ट रूप तेरा भाग है तिस भागको तू सेवन  
करि स्वाहा सुद्धत मस्तु॥ का० १५०१०२०० एवं वर्ष की दृष्टी करिके प  
ञ्चवातीयाख्य कर्मको कहिते हैं तत्र आहवनीय को प्रागादिदिशों  
और मध्यमें स्थापन करि सुवासै पांचों अग्निविषे यथा लिङ्ग हो  
में। अध्याय समाप्ति पर्यन्त देवा ऋषयः। दश यजूर्हवि देव देवत्या

+ ए-हा॥ अ० अ-हा॥ इ० य-हा॥ उ० वि-हा॥ ऋ० मि-हा॥ ल० सो-हा॥ क०॥ ३५॥

नि १. सा-उ० २. ६. आसु-गा० ३. ७. सा-अ० ४. ५. ८. यजुः ९.  
 सा-ज० १०. सा-पं० ॥ पुरस्तात् जुहोति ॥ अग्नि है नेता जिन्हों का ति  
 न्हों के अर्थ। पूर्व में रहते हैं तिन देवताओं के अर्थ स्वाहा सुहुतम  
 स्तु ॥ १॥ दक्षिणोजु० ॥ यम है ने०। दक्षिण में रह० ॥ २॥ पश्चात् ॥ विष्णु  
 देवा है ने०। पीछे में रह० ॥ ३॥ उत्तरार्धे० ॥ मित्रावरुण अथवा मरु  
 त है ने०। उत्तर में रहते हैं उत्तर भाग के अर्थ० तिन दे० ॥ ४॥ मध्येजु० ॥  
 सोम है नेता०। ऊपर रहते हैं। परिचर्यावान् अथवा दुवः शब्देन ह  
 व्यं हव्यवान् तिन देवताओं के अर्थ स्वाहा सुहुतमस्तु ॥ ३५॥

ये देवाः ॥ ये देवाः अग्नि नेत्राः पुरः सदस्तेभ्यः स्वाहा ये  
 देवा यमनेत्रा दक्षिणा सदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा विष्णु देव  
 नेत्राः पश्चात् सदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा मित्रावरुण नेत्रा  
 वामरुनेत्रा वोत्तरा सदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवाः सोमनेत्राः  
 उपरिसदो दुवस्वन्तस्तेभ्यः स्वाहा ॥ ३६॥

का० १५. १. २१. पञ्चधा विभक्त आहवनीय को एक करिये देवाइन  
 पांच मन्त्रों से प्रत्येक को हो में ॥ जिन देवताओं का अग्नि है नेता पूर्व में  
 स्थान तिन देवताओं के अर्थ स्वाहा ॥ ६॥ ७. ८. मित्रावरुण नेत्राः  
 मरुनेत्राः इति मंत्रयोर्विकल्पः ९. १०. चतुर्णां पूर्ववद्वाख्या ॥ ३७॥  
 अग्ने सहस्व ॥ अग्ने सहस्व पूतनाः अभिमातीरयास्य ॥  
 दुष्टरुस्तरन्तरातीर्ष्वर्चो धायुस्तवाहसि ॥ ३८॥

का० १५. २. ५. अपा मार्ग के तण्डुलों के होमार्थ दक्षिणाग्नि में उल्टा  
 क का आदान करे ॥ अग्नि देवत्यानुष्टुप् भारवौ देवश्वा देववात

दृष्टा ॥ हे अग्ने तू शत्रु सेनाका सहस्र अभिभव। तथा शत्रुओं को निवर्त कर। किंच यज्ञनिर्वाहक यजमानके अन्न स्थापन कर। कैसा है तू कि कोई भी तरने की समर्थ नहीं होता अर्थात् अशक्य प्रतिक्रियाः दुर्निवारः। शत्रुओं को तरता अर्थात् विनाश करता ॥ ३७ ॥

देवस्यत्वा ॥ देवस्यत्वा सवितुः प्रसवेष्टिनोर्बाहुभ्याम्पू  
ष्णो हस्ताभ्याम् ॥ उपार्धं शोर्बाह्वोर्येण जुहोमि हतर्क्षः  
स्वाहा रक्षसान्त्वावधायावधिष्मरक्षोवधिष्मा मुमसौ  
हतः ॥ ३८ ॥

का० १५. २. ६. प्राक् वा उदक्चलिग्रहण किये उत्प्लुक को स्थापन कर सुवा से अपा मार्ग तण्डुलों को होमें। देवस्यत्वा प्रा-ह व्याख्या ता १. १०. ॥ उपार्धं शोः १. आसु-गा० २. या-उ० ३. सा-उ० वीणारक्षोघ्न देवत्यानि ॥ उपार्धं शुनाम प्रथम ग्रह तिसकी सामर्थ्य से हो म करता हूं अत एव राक्षस जाति हतम् स्वाहा सुहृतं हविरस्तु ॥ १॥ का० १५. २. ७. जिस दिशा में होम करे तिसदिशा प्रति सुवा की डा लें ॥ राक्षसों के वध के अर्थ तुम्हें डालता हूं इति शेषः ॥ २॥ का० १५. २. ८. अध्वर्यादिक पीछे को न देखते देव यजन प्रति आवें ॥ राक्षस जाति को हमने मारा अमुमिति शत्रु नाम ग्रहणम् आसाविति च दुर्योधन हमने मारा दुर्योधन हम करिके मारा गया ॥ ३३ ॥

अ० ८ सवितात्वा सुवानां सुवता मग्निर्गृहपती नार्थं सोमो व  
नस्पतिनाम् ॥ बृहस्पतिर्वीचः इन्द्रो ज्येष्ठा यरुदः पृष्ठ  
भ्यो मित्रः सत्यो वरुणो धर्मपती नाम् ॥ ३४ ॥

का० १५०४०१३-१५० आठ देवताओं के हवि तहां अन्न के वरुणाय धर्मपतये इस वारुण चरुसै चरिकैं यजमान के पास जा मुचिको सब्य हाथ में करितिसकी दक्षिण बाहु को ग्रहण करि सविता त्वेति कंडि का द्वय रूप मंत्र को कहै - मंत्र विषे यथा स्थान यजमान औरतिसके माता पिता जिस जान पद की जातिका तिन सबों के नाम ग्रहण करै ॥ अति जगती यजमान देवत्या ॥ सविता आज्ञाओं के आधिपत्य विषे हेयजमान तुम्हें प्रेरणा करै अर्थात् सबों के आज्ञादान विषे अधिकारी हो। अग्नि गृहस्थानों के आधि०। सोम वृक्षों के आधि०। अर्थात् सब वृक्ष तेरे उपकारक हों। बृहस्पति वाचा पाण्डित्य के आधिपत्य०। इन्द्र देवता ज्येष्ठ भाव के अर्थ तुम्हें०। रुद्र पशुओं के अर्थ वापशुओं के आधिपत्य०। मित्र देवता सत्य वाक्य के अर्थ सत्य बोलने को तुम्हें०। वरुण धर्मेश्वरों (धर्मशीलों) के आधि०। सवित्रादि अष्ट देव हवियों के दाता तुम्हें अनेक आधिपत्य दें इति वाक्यार्थः ॥ ३६ ॥

इमं देवाः ॥ इमं देवाः असपत्नर्हं सुवध्वम् महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्या येन्द्रस्येन्द्रियाय ॥ इमं मुष्य पुत्रं मुष्यै पुत्रं मुष्यै विशः एष वोमी राजा सोमोस्माकं ब्राह्मणानां राजा ॥ ४० ॥ इति सर्गहितायामष्टमोऽनुवाकः

इति श्री शुक्लयजुषि माध्यन्दिनीशाखीयायां वाजसनेय्य सर्गहितायां दीर्घ पाठे नक्ष मोघ्यायः ॥ ६ ॥

अत्यष्टि र्यजमान देवत्या। हे सवित्रादि देवताओं इस अमुक युधिष्ठिर संज्ञक यजमान को शत्रु रहित करिकैं प्रेरणा करै कि मर्ये कि

बड़ी क्षत्रपदवीके अर्थ वडे ज्येष्ठ भावके अर्थ। इन्द्री (वीर्य, आत्म  
ज्ञान सामर्थ्य)के अर्थ इस यजमान को प्रेरी। कैसा है यह पण्डु का पु  
त्र कुन्ती देवी का पुत्र। इस कौरवी प्रजा का अधिपति इति शेषः। स  
त्रिय कुरुजातिका हे कुरुजाङ्गलि औ तुम्हारा यह युधिष्ठिर देव व  
र्मा राजा है। हम ब्राह्मणों का सोम (चन्द्र वा बल्ली रूप सोम) राजा प्रभु  
है ॥४०॥ इति गिरिधर भाष्येष्टमोऽनुवाकः ॥

श्री वेदार्थ प्रदीपेन तमो हार्दनिवारयन्  
पुमार्थोऽथ तुरो देयाद्यज्ञपुरुषः सनातनः  
श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनी शाखाध्येतव्या घृषादान्वय  
विश्वामित्रपुराधिप श्रीमज्जयकिशोरदेववर्म्मोजरौ किमण्य  
नृपति गिरि प्रसादेन रचिते श्री वेदार्थ प्रदीपे गिरिधर भाष्ये वा  
जपेयो राजसूयान्तवर्णनो नाम नवमोऽध्यायः ॥४॥

हरिः श्रीम्

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्वहुरूपकम्

स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपपरं स्तुमः १

अ० १ अ० देवाः ॥ अ० देवा मधुमती रगृम्भान्नूर्ज स्वती राज  
स्वस्थिताः ॥ याभिर्मित्रावरुणावुम्व्यभिश्चुन्याभिरिन्द्र  
मनयन्त्यरांतीः ॥ १ ॥ ओं नमो याज्ञवल्क्याय ॥

गिरि प्रसादसंज्ञेन श्री वेदार्थ प्रदीपके

चरकसौमण्यन्तो दशमोऽध्याय इत्यने



नवमे अध्यायमें वाजपेय और राजसूय संबंधी कुछ एक कर्मक  
हा दशमेंमें अभिषेकार्थजलादानादि राजसूयका शेष और चरकसौ  
त्रामणी कहिते हैं ॥ तत्र का ० १५. ४. २१-२४ इडाग्रहणकार्यशेषोपलक्ष  
ण है देवताओं के हविका भाग परिहरणान्त किये पीछे वक्ष्यमाण प्र  
कारसे वक्ष्यमाण जल औ दुम्बर वृक्षपात्रविषे ग्रहण करै तत्रविशे  
षः यथानैमित्तक (अन्तरिक्षसे आतप वर्षा) शुष्का गोरुत्व्या इ  
त्यादि ते राजसूयसे पहिले सम्पादन करि तिन्हों को यूपके उत्तर  
करि ग्रहण करै तिन आतपवर्षणादिकोंके निमित्तके अभाव  
में इतर अनैमित्तिकी जल प्रति जाकर तिसै ग्रहण करै तत्रमंत्रा  
नाह का ० १५. ४. ४३ अपो देवाः इससे सरस्वती नदी संबंधिनी ज  
ल को ग्रहण करै ॥ अब्देवत्या त्रिष्टुप् ॥ इन्द्रादिक देवता जिस जल  
को ग्रहण करते हुए ॥ कैसी है जल कि मधुस्वादोपेत ॥ तथा विशि  
ष्टान्नरसवती ॥ नृपों की उत्पादन करने वाली ॥ चेतयमाना ॥ सदै  
वत होने से परिदृष्टकारिणी ॥ पुनः ता एव विशिनष्टि ॥ जिस जलसे  
देवता मित्रावरुण का अभिषेक करते हुए ॥ जिस जल करि देवता  
इन्द्रके शत्रुओंको अत्याक्रमण करते हुए ॥ तिस जल को ग्रहण क  
रताहं इति शेषः ॥ १ ॥

वृषाः ॥ ऊर्मिः ॥ वृषाः ॥ ऊर्मिरसिराष्ट्रदाराष्ट्रम्मे देहि स्वा  
हा वृषाः ॥ ऊर्मिरसिराष्ट्रदाराष्ट्रममुष्मे देहि ॥ वृषसे  
नोसिराष्ट्रदाराष्ट्रम्मे देहि स्वाहा वृषसे नोसिराष्ट्रदारा  
ष्ट्रममुष्मे देत्यर्थे तस्य ॥ २ ॥ †

का० १५. ४. ४४. ० १५. ४. २६. सारस्वती जलके लिये पीछे उत्तर षोडश जलों विषे वृषाः ऊर्मिः इत्यादि स्वाहान्त पूर्व-पूर्वमन्त्रों करि ग्रहण किये चतुर्गृहीत आज्य से होमें उत्तर स्वाहा हीन मन्त्रों से क्रम पूर्वक ग्रहण करै उत्तर मन्त्रों में अमुष्मे इति पद के स्थान चतुर्थ्यन्त यजमान का नाम लेना वृषाः ऊर्मि से ले विश्वभृतस्थ पर्यन्त मन्त्र संहिता में दो बार पढ़े गये तिन्हों में पूर्व-पूर्व स्वाहान्त तिन्हों से आज्य होम है उत्तर-उत्तर स्वाहा हीन तिन्हों से जलों का आदान तहां जाकर पशु वानर से जो पूर्व अपर कल्लोल तिसे होमिके ग्रहण करै इति सूत्रार्थः ॥ वृषा ऊर्मिरसीत्यादीनि आपः स्वरा जस्य इत्यादीनि लिङ्गाक्त देवतानि । अ० इ० प्रा-अ० हे कल्लोल तू सी चने वाले पशु वानर का संबंधी कल्लोल है । स्वभाव से ही देश प्रद है अतः राष्ट्र मेरे अर्थ दे स्वाहा हविर्दत्तमस्तु । एवं इत्यादि गृह्णाति । वृषा ऊर्मिरसि राष्ट्रदा अतः यजमान (युधिष्ठिर) के अर्थ जनपद दे । अमुष्मे इति चतुर्थ्यन्तं यजमान नाम ग्राह्यम् ॥ १॥ एवमुपरितना आपमन्त्राव्याख्याः ॥ अपरोर्मि गृह्णाति । उ० ऋ० आसु-गा० वृषसे नोसि वृषा-से च न समर्था सेना जल राशि रूपा जिसकी वोह वृष से न सिद्ध व्याख्यातम् ॥ २॥ २॥

अर्थे तस्य राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहार्थे तस्य राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मे दत्तौ ज स्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहौ ज स्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मे दत्तार्थः परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहार्थः परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मे दत्ता पाम्यति

सूर्य्यत्वचसस्य राष्ट्रदा राष्ट्रमेदत्त स्वाहा सूर्य्यत्वचस-  
स्य राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्यैदत्त सूर्य्यवर्चसस्य राष्ट्रदा राष्ट्रमे-  
दत्त स्वाहा सूर्य्यवर्चसस्य राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्यैदत्त मान्दास्य  
राष्ट्रदा राष्ट्रमेदत्त स्वाहा मान्दास्य राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्यैद-  
त्त व्रजक्षितेस्य राष्ट्रदा राष्ट्रमेदत्त स्वाहा व्रजक्षितेस्य रा-  
ष्ट्रदा राष्ट्रममुष्यैदत्त वाशास्य राष्ट्रदा राष्ट्रमेदत्त स्वाहा व-  
शास्य राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्यैदत्त शविष्ठास्य राष्ट्रदा राष्ट्रमे-

दत्तस्वाहा शर्विष्ठास्य राष्ट्रदाराष्ट्र ममुष्मै दत्तशक्करीस्य रा  
ष्ट्रदाराष्ट्रमै दत्तस्वाहा शक्करीस्य राष्ट्रदाराष्ट्र ममुष्मै दत्त  
जनभृतस्य राष्ट्रदाराष्ट्रमै दत्तस्वाहा जनभृतस्य राष्ट्रदा  
राष्ट्र ममुष्मै दत्तविश्वभृतस्य राष्ट्रदाराष्ट्रमै दत्तस्वाहावि  
श्वभृतस्य राष्ट्रदाराष्ट्र ममुष्मै दत्तापः स्वराजस्य राष्ट्रदा  
राष्ट्र ममुष्मै दत्त ॥ मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्ताम्महि  
क्षत्रं क्षत्रिया यवन्वानाः अनाधृष्टाः सीदतसूहो जसो  
महि क्षत्रं क्षत्रिया यदधतीः ॥४॥†

का० १५०४३४० वहती जलमें जो स्थिरा सदा धर्ममें वर्तमान तिन्हों के  
हो०॥ अ० ६० उ० ऋ० सा-अ०॥ हे जल तुम सूर्य की त्वचाहो कारण  
यह कि सदा ताप में वर्तमान हैं ॥ ७॥ का० १५०४३५० आतप घाम  
में वरसती पहिले सम्पादन की हुई जल को यूपके उत्तर से तिन्हों  
केहो॥ सूर्यके तेजयुक्तहो॥ ४॥ का० १५०४३६० तडाग के जलकेहो॥ लृ० आ०  
आसु-अ०॥ हे जल तुम मोद कराने वाली हो (प्राणी मोदित होते हैं-  
वहुत जल होने से ॥ १०॥ का० १५०४३७० कूपके जल०॥ इ० ऊ० आसु-  
गा०॥ हे जल तुम ब्रजक्षित हो ब्रज इति मेघनामसु निघं० १०१००  
पठितम् अत्र तु बहुत जलधारण की सामर्थ्य से कूप कहते हैं कूपमें  
निवास करती हो ॥ ११॥ का० १५०४३८० तृणके अग्रमें स्थित जल  
वस्त्र करि गृहण किये (दार) को यूपके उत्तर करि हो० ऋ० लृ० आसु-  
अ०॥ अन्न का हेतु होने से नर कामना करते हैं (वश कान्तो) तुम वाश  
हो ॥ १२॥ १५०४३९० मधुकेहो०॥ क० च०॥ हे मधु रूपा जल तू बल दे

† सू० अ० ६० सू० ऊ० ऋ० मा० लृ० आ० व० इ० ऊ० वा० ऋ० लृ० आ० क० च० श० ट०  
त० ज० प० ख० वि० छ० ठ० आ० ता० य० म० ना० फ० अ० ती० ग० ४॥

नेवाली हौ त्रिदोष बल शमनत्वाद्वलकरं मधु ॥१३॥ का० १५.४.४०.  
 प्रसूयमान धेनु के गर्भ बेष्टन सैं उठे जल को कि जो पूर्व गृहीत है पूष  
 के उत्तर करि होम ॥८॥ त० वाह दोहादि करि जगत के उद्धार  
 करने को समर्थ भो तिन्ह संबंधिनी हौ ॥१४॥ का० १५.४.४१. दु  
 ग्ध के हो ॥ प० ख० छ० ठ० आसु. गा० हे जल तुम वाल भाव में ज  
 न जन्तुओं को पोयते हौ ॥१५॥ का० १५.४.४२. घृत के होम आदान  
 बिषें ॥ हे घृत रूपा जल तुम समस्त जगत देवादिकों को धारण क  
 रते हौ शिष्टं समानम् ॥१६॥ का० १५.४.४५. आपः स्वराज. इस सैं  
 मरीचि, रविकरतप्ता जल को अञ्जलि सैं ले पूर्व ग्रहण किये  
 हुए जलों में डालै प्रति ग्रहण में मन्त्रः संसर्ग चुपके सैं ॥ नय हां  
 पर होम षोडश आहुति होमें सारस्वती और मरीचि दोनों को न  
 होमें. शत० ५.३.४.२३. योडा हुती रित्यादि ॥ मन्त्रार्थः ॥ प्रा-अ०  
 हे जल मरीचि रूपा तुम आप ही सैं राज मान अनन्याश्रित हौ  
 राष्ट्ररा अतः युधिष्ठिर राजा के अर्थ राष्ट्र देओ ॥ का० १५.४.४६.  
 मधुमती. इस सैं सरस्वत्या या जलों को उद्गुम्बर काष्ठ के पात्र में र  
 क करै ॥ अन्वेवत्यं यजुः. मधुमती. सरस्वती यह जल मधुर स्वादी  
 येत जलों के साथ एक हौ. कैसी है यह महत्क्षत्र बल को राजा यज  
 मान के अर्थ देती है ॥ का० १५.४.४७. अनाधृष्टाः सैं ओद्गुम्बर पा  
 त्र में एकी किये ते जल मैत्रावरुण धिषाय के अग्र सदर्भें स्थापन क  
 रै. सा-वि० अन्वेवत्यम् ॥ हे जल तुम तिष्ठो. कैसे हौ तुम कि रक्ष  
 सों सैं अपरा भूत हौ. बल युक्त हौ. तथा महत् क्षत्र बल को क्षत्री

राजा के अर्थ स्थापन कर्ता हों ॥४॥

अ० २ सोमस्य त्वषि ॥ सोमस्य त्वषि रसितवे वमे त्विषि भूयात् ॥  
अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा सवित्रे स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा  
पूषणे स्वाहा बृहस्पतये स्वाहेन्द्राय स्वाहा श्लोकाय स्वाहा  
शोय स्वाहा भगाय स्वाहा र्यम्ये स्वाहा ॥५॥

का० १५.५.१० मैत्रावरुण धिष्ण्यके आगे आसादित पालाशादिचा  
रों पात्रों के पूर्व सोमस्य त्विषि से व्याघ्रचर्म विछावें ॥ आसु-गा० चर्म  
देवत्यम् ॥ हे चर्मन् सोम की दीप्ति है इस हेतु तुरज्जैसी मेरी काम्नि  
होय त्रवे सोमः इत्यादि शत ० ५.३.५.३ ॥ का० १५.५.३.३४ पार्ष  
संज्ञिक द्वादश मन्त्रों के बीच अग्नयः इत्यादि षट् मन्त्रों से अभिषे  
क की आदि में होम करे ॥ इन्द्रायेत्यादि षट् से अभिषेक के अन्त में  
सकृद्गृहीत आज्य से होमें ॥ लिङ्गोक्तानि द्वादश १.२.३.७.८.९.१०  
११.१२. दै० पं० ४. दै० वि० ५. दै० बृ० ६. दै० ज० ॥ गतिवान् अग्निः ॥  
१॥ सुनोति सोमः ॥ २॥ सुवे वा प्रेरै सविता ॥ ३॥ प्रवाहवती सरस्व  
ती ॥ ४॥ पुष्टि करने वाला ॥ ५॥ बृहत् सोमो कापति ॥ ६॥ इन्दति ईष्टे  
॥ ७॥ शब्द करोति ॥ ८॥ जनों से कीर्तन किया गया ॥ ९॥ पुण्यपापके  
विषे फलदान से विभाग करने वाला ॥ १०॥ सेव्येते सभगः ॥ ११॥ व्याप्रे  
ति विश्वम् ॥ १२॥ ऐतेभ्यः सुद्धतमस्तु ॥ ५॥

पवित्रे स्थः ॥ पवित्रे स्थो वैष्णव्यो सवितुर्वः प्रसवः उत्पुना  
म्य छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ अनिभृष्टम  
सिवाचो बन्धुस्तपोजाः सोमस्य दात्रमसि स्वाहारज्जुः ॥ ६॥

+ सो-तू.अ०.अ-हा। दू०.सो-हा। उ०.स-हा। ऋ०.ल०.पू-हा। आ०.बृ-हा। ऊ०.घो-हा।  
ऋ०.श्लो-हा। लृ०.अ-हा। क०.भ-हा। च०.अ-हा। ट०॥५॥  
+ प-व्यो। अ०.स-भिः। दू०.अ-स्वः। उ०॥६॥

का० १५. ५. ४. प्रकृतिवत् पवित्रेस्य इत्सु सै पवित्रीकरितिन्हों में स्वर्ण  
बांधै ॥ व्याख्यातादै- ज० १. १२. ॥ का० १५. ५. ५. हिरण्य सहित इ  
र्म पवित्रियों सै मैत्रावरुण धिष्यके आगे आसादिता ओदुम्ब  
र पात्रस्था जलका सवितुरित्यादि राजस्वः इत्यन्त मन्त्र से उत्प  
वन करै ॥ प्रा-यं० अनिभृष्टम् यजुः अन्वेदत्यम् ॥ सर्वों के प्रेरक  
परमेश्वर की अनुज्ञा विषे स्थित जोमें सो छिद्र रहित पवित्री और सूर्य  
की किरणों सै हे जल तुम्हें उत्पवन करता हूं ॥ अनिभृष्टमसि। आ  
पोऽत्राभिधेयाः अतोऽत्रैकवचनान्ता मन्त्रावयवाः श्रुत्या बहु व  
चनान्ताः अतः श्रुत्या नुसारेण व्याख्याते। हे जल तुम राक्षसों को  
अपराभूत हो। बाणी के बन्धु भूत हो। तथा अग्नि सै उत्पन्न हुए हो  
तप शब्द सै यहां अग्नि लेना अग्नेर्वैधूमो जायत इति शत०  
५. ३. ५. १०. वायो रगिरग्ने राप इति तैत्तिरीयारण्यक ८. १. सोम  
की दान करने वाली हो। यदा वाऽएनमिति श० ५. ३. ५. १८. स्वाहा  
कार सै पवित्र हुई राज जनिका हो ॥ ६ ॥

सुधमादौद्युम्निनी ॥ सुधमादौद्युम्निनी रापः एताः अना  
धृष्टाः अप्सोवसानाः ॥ पस्त्या सुचक्रेवरुणः सुधस्थ  
मुपाथं शिशुर्मातृत मासुन्तः ॥ ७ ॥

का० १५. ५. ६. उत्पूता अभिषेक के अर्थ जल अभिषेकार्थ पाला  
श ओदुम्बर वाट आश्वत्थ पूर्वासादित चारों पात्रों विषे चारविभा  
ग करि ओजै। वरुण देवत्या त्रिष्टुप्। जे एताः जल वर्तै हें कैसी कि  
सुधमादः एक पात्र विषे दृष्यमान वा प्रीयमान। वीर्ययुक्ता ॥ रा

+ यावद्देवाणेष्विति शत० ५. ३. ५. १६. आपो मयी वानिति सामश्रुते अ०

क्षसोंसे अनभिभूता। कर्मविषे साध्वीरै। जे एवंविधाजल  
के भीतर में वरुण देव स्थान करताहुआ। कैसा है वरुण कि जल  
वालक-अपांवाशिषुरिति शत० ५. ३. ५. १४. वरुणो राजसूय  
जित्वा दपांशिषुः॥ कैसा जल में कि पस्त्यासु + गृहरूपा में सर्वोंके प्रा  
धार होने से गृहरूपा तथा अति शयेन जगतके निर्माण करने बली में०

क्षत्रस्योल्बम्॥ क्षत्रस्योल्बमसि क्षत्रस्य जराय्वसि क्षत्र  
स्योनि रसि क्षत्रस्य नाभि रसीन्द्रस्य वात्रघ्नमसि मित्र  
स्योसि वरुणस्योसि त्वया यमृत्रम्वधेत्॥ हवासिरुजा  
सि क्षुमासि॥ पातै नम्या च म्यातै न प्रत्य च म्यातै न नि  
य च न्दिभ्यः पात॥ ८॥ +

का० १५. ५. १५. क्षत्रस्येति प्रति मन्त्रसे तार्यपाण्डु अधीवास  
उष्णीषः कोक्रम पूर्वक धारण करै॥ १५. ५. ७. तार्यक्षौमकै  
वल्कल वायुताक्तवस्त्र को धारण करै॥ १. या-गा भतार्य देवतम  
हे तार्य तू यजमान का गर्भधारभूत उदक है। यजमान गर्भ-  
स्थानीय है॥ १॥ का० १५. ५. १२. रक्तकम्बल को धा०॥ २. ३. ४. या-  
उ० २ पाण्डु है भगर्भस्थानीय यजमान का गर्भवेष्टनचर्म हे पाण्डु  
तू है॥ २॥ का० १५. ५. १३. अधीवास कञ्चुक को गल में बांधे॥ अ  
धीवास देव भहे अधीवास तू यजमान का गर्भ संभव स्थान यो  
नि है॥ ३॥ का० १५. ५. १३. १४. उष्णीषः शिरके वेष्टन को शिरपे बां  
धि तिसके छोड़ों को नीवी में खुरसे वा नाभि पर बांधे॥ उष्णीष  
दे भहे उष्णीष तू यजमान का नाभि (गर्भबंधन स्थान) है +॥ ४॥

+ क्ष-सि। अ०। इ०। उ०। ऋ०। इ०। सि। ल०। मि-सि। आ०। त्व-तू। ई०। ह-सि। ऊ०। र-सि।  
ऋ०। क्षु-सि। लृ०। या-मू०। क०। च०। पा-तू। ट०। ८॥

+ पस्त्यासु

+ तार्यपाण्डुः निरु० ४. ३२. + नाभ्यां संनद्धा गर्भे



का० १५. ५. १०. इन्द्रस्य इतसे अध्वर्यु धनुषको चिल्ला चटावै ॥  
 प्रा-गा० धनुर्देवतम् । हे धनु तू इन्द्र का संबंधि वृत्र नाशक धनु  
 षहे- निसे चटाता हूं इति शेषः ॥ का० १५. ५. १०. मित्रस्य वरु  
 णस्य इन दोनों मंत्रों से धनुष के बाहू प्रान्तों को हाथ से मांजैया-  
 वृ० बाहु देवते । हे दक्षिण कोटे तू मित्र संबंधी है- हे वाम कोटे  
 तू वरुण संबंधी है ॥ का० १५. ५. १०. यजमान के अर्थ धनुष  
 देवै ॥ दे-ज० धनुर्देवतम् ॥ हे धनुः यह यजमान तुरू करिकेश  
 त्रुको मारे ॥ का० १५. ५. २०. हवासीत्यादि तीन मंत्रों से तीन बा  
 ण ले कर पातैनमित्यादि तीन मंत्रों से यजमान के अर्थ देवै ॥  
 षड्यजूर्हंषि इषु देवत्यानि १. २. ३. दे-अ० ४. दे-पं० ५. या-गा०  
 ६. या-पं० । हे इषो तू शत्रुओं को विदीर्ण करता है । हे इषो तू श०  
 मङ्ग कर ० । हे । इ० कपाता है । हे इषुओं पूर्व दिशा में अवस्थित  
 इस यजमान को पालन करे । पश्चिम दिशा में अव० । इधर  
 उधर में अव० । और-और दिशाओं के विषे इससे रक्षा करे ॥ ८ ॥  
 आविर्मर्ष्याः ॥ आविर्मर्ष्याः आवित्तोः अग्निर्गृह  
 पति एवित्तः इन्द्रो वृद्धश्च वाः आवित्तो मित्रावरुणो धृ  
 तव्रतावावित्तः पूषा विश्ववेदाः आवित्ते द्यावा पृथिवी  
 विश्वशम्भुवावावित्तादितिरुरुशम्भो ॥ ९ ॥ +  
 का० १५. ५. २१. इषु समर्पण के अनन्तर में आविर्मर्ष्या इत्यादि  
 आवित् संज्ञक सात मंत्रों को यजमान प्रति पढ़े ॥ दे-वृ० प्रजा  
 पति देव० । मर्षा इति मनुष्य नाम सु निघं० २. ३. पठितम् है म

+ आ-यो० ॥ अ० आ-ति० ॥ इ० आ-षा० ॥ उ० आ-तौ० ॥ ऋ० आ-दा० ॥ लृ० आ-वौ० ॥ आ०  
 आ-मौ० ॥ इ० ॥ ९ ॥

नुष्यः (ऋत्विजः) तुम प्रकट होओ अथीन् भले प्रकार कर्म में उद्दिष्ट होओ अथवा हे ऋत्विजः यह यजमान प्रकट तुम्हारे समक्ष कहिता है इति शेषः ॥१॥ २.३.५.७. या-हृ०४. या-ज०६. आसु-अ० लिङ्गोक्त देवतानि। आवित्तोऽग्निर्गृहपतिः। श्रुत्युक्तैर्विभक्तिव्यत्यये व्याख्यायते शत० ५.३.५.३१-३७ गृहपालक अग्निके अर्थ यह यजमान आवित्तः आवेदितः स्थापितः ॥२॥ हृद्द्वै धनवाकीर्ति जिसकी तिस इन्द्रके अर्थ यह यजमान आवि० ॥३॥ धारण करते हैं व्रत (कर्म) तिनधारित कर्म मित्रावरुणों के अर्थ ॥४॥ सर्वज्ञ पूषा के अ० ॥५॥ सवों का सुख होता है तिन्हों से तिन द्यावा पृथिवी के अ० ॥६॥ बडा है शर्म शरण वा सुख जिसका तिस अदितिके अर्थ यह यज० ॥७॥ यद्वा यथा श्रुतमेव व्याख्या गृह प्रति रग्नि रावित्त आवेदितोयं यजमानमिति शेषः एवमग्रेपि ॥८॥

अ० ३ अवेष्टादन्द्शूकाः प्राचीमारोह गायत्रीत्वावतुरथन्तरं सामन्निबृत्तोमोवसन्तः ऋतुर्वत्सुद्रविण्दक्षिणामारोह ॥१०॥ †

का० १५.५.२२. सदके समीप उपविष्ट दीर्घकेश नरके सुखविषे अवेष्टा से ताम्र डाले ॥ मृत्युनाशनं यजुः। अत्यन्त दशानशीला० मृत्यु के हेतु सर्प सदृश यज्ञके विघ्नकारी राक्षसादिकनाशित हूजियों इति शेषः शत० ५.४.१.१. तद्यो मृत्युर्यो वधस्तमे चैतदतिनयतीति ॥ का० १५.५.२३. यजमान के प्रति प्राचीमा

रो हेत्यादि यथालिङ्ग प्रतिमंत्र को प्रति दिशि दिशा का आक्रमण करते पढ़ें ॥ पञ्च यजमान देवत्यानि १०३४५ यजूर्द्विंशः आर्षी पं० ॥ हे यजमान तू प्राची दिशा का आक्रमण करितु रूतै से को छन्दों को मध्य गायत्री छन्द अवतु रक्षा करै। सामों के मध्य अभित्वा शूरनो नुमः इति इस ऋचा से उत्पन्न रथन्तर साम छं० संहि० १०३१५ १-२११११० तुम्हें रक्षा करै। स्तोमों के मध्य त्रिरुत्से मरक्षा करै। ऋतुओं के मध्य वसन्त ऋतुरक्षा ० ब्राह्मण जाति तेरे धन को रक्षा ० अथवा धनरूपा ब्राह्मण जाति त्वामवतु ॥ त्रिवृत्स्तोमस्य स्वरूपं साम ब्राह्मणे पञ्चविंश ब्रा० २११ आम्नातम् तिसृभ्यो हिं करोति स प्रथमया तिसृभ्यो हिं करोति समध्यमया तिसृभ्यो हिं करोति स उत्तमयो द्यती त्रिवृतो विष्टुतिरिति। अस्यायमर्थः। उपासै गायते त्यादीनि तृचात्मकानि त्रीणिसूक्तानि सन्ति ऋ० संहि० अष्ट० ६०३६ मं० २०५१ तिन्हों में तीनि ऋचाओं से गान करै। किन तीनों से कि प्रथमया तीनों सूक्तों में जो पहिली तिसे सो उद्गाता गावै तैसे ही तीनों से गीत होता है इति प्रथमपर्यायः दूसरे पर्यायमें सूक्त त्रयगत मध्यमाओं से गावै। तीसरे में उत्तमाओं से गावै। इस प्रकार से त्रिवृत्स्तोम संबन्धिनी विशिष्टा स्तुति उत्पन्न होती है अर्थात् सो यह स्तुति उद्यति इस नाम से कहिये है ॥१०॥

† ब्राह्मण ही जो धन साधन त्वद्द्वनत्तुमुच्यते

दक्षिण मारोह त्रिष्टुत्वावतु बृहत्साम पञ्चदशस्तोमो  
प्रीषः ऋतुः क्षत्रविण्मृतीची मारोह ॥११॥

अथद्वितीयो मंत्रः। हे यजमान तू दक्षिणदिशि माक्रमः। त्रिष्टुपूछं  
न्दः। त्वामिद्धि हवामह इत्यस्या मृशुत्यन्न वृहत्साम छं० संहि०  
१०३१०५२-२०२१०१२१० पञ्चदशस्तोमः। ग्रीष्म ऋतुः। द्विविण  
रूपं क्षत्रियजातिः। एते तु मे रक्षा करें यद्वा क्षत्री तेरे धन को रक्षा क  
रें। पञ्चदशस्तोमस्त्वेव माम्नातः पञ्चविं० २०४ पञ्चभ्यो हिंङ्गुरे  
ति सति सृभिः स एकया स एकया पञ्चभ्यो हिं करोति स एकया सति  
सृभिः स एकया पञ्चभ्यो हिं करोति स एकया स एकया सति सृभिः  
पञ्च पञ्चिनी पञ्चदशस्य विष्टुतिरिति। पूर्वोक्त त्रिष्टुत्तोम एकही  
तीनि सूक्तों से निष्पाद्य है परन्तु और स्तोम एकही तृचात्मक सूक्तों से  
निष्पाद्य हैं। तत्रायं क्रमः। प्रथम पर्याय में पांच आवृत्ति से तहां प्रथ  
मा को तीन बार गान करें दूसरी तीसरी को एक-एक बार। द्वितीय प  
र्याय में पहिली एक बार दूसरी तीन बार तीसरी एक बार। तृतीय प  
र्याय में पहिली दूसरी एक-एक बार तीसरी तीन बार यह पञ्चदश स्तोम संव  
धिनी विष्टुति अर्थात् पञ्च पञ्चनि है ॥११॥

प्रतीची मारोह जगती त्वावतु वै रूपं साम सप्तदशस्तोमो व  
र्षाः ऋतुर्विड्ब्रविण मुदीची मारोह ॥१२॥

तृतीयो मंत्रः। हे यजमान त्वं प्रतीची दिश मारोह। जगती छन्दतु  
मे रक्षा करें। यद्वा व इन्द्रते शतम् इन ऋचा ओं से उत्पन्न वै रूप  
साम छं० संहि० १०३२०४६-२०२२११०१ सप्तदशस्तोमः। वर्षा ऋ  
तुः। वैश्यजाति लक्षण धन एते तु मे रक्षा० अथवा वैश्यजाति  
तेरे धन को रक्षा० सप्तदशस्तोमस्त्वेव माम्नातः पञ्चविं० २०७०

पञ्चम्यो हिं करोति स तिसृभिः स एकया स एकया पञ्चम्यो हिं करो  
ति स एकया स तिसृभिः स एकया सप्तम्यो हिं करोति स एकया सति  
सृभिः स तिसृभिर्दशसप्ता सप्तदशस्य विष्टुतिरिति। प्रथमपर्याये  
प्रथमा ३ मध्यमा १ उत्तमा १ द्वितीयपं० प्रथमा १ मध्यमा ३ उत्तमा १  
तृतीयपं० प्रथमा १ मध्यमा ३ उत्तमा ३ वारगा वै यह सप्त दशस्तोम  
की विविधा स्तुति अर्थात् दशसप्ता है ॥१२॥

उदीची मारोहा नुष्टुत्वा वतु वैराजर्हं सामैकविंशस्तोमः

शरद्वतुः फलन्द्रविणमूर्द्धामारोह ॥१३॥

चतुर्थो मंत्र ॥ हे यजमान त्वमुदीची दिश मारोह । अनुष्टुप् छन्दः ।  
पिवा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा इन ऋचाः शोभे उत्पन्न वैराज सामं छे०  
संहि० १०५० १०१०८० । एकविंशस्तोमः । शरद्वतुः । यज्ञफललक्षण  
धन एते तुभ्यै रक्षाकरैः । एकविंशस्तोमस्त्वेव माम्नातः पञ्चवि०  
२२४० सप्तम्यो हिं करोति स तिसृभिः स तिसृभिः स एकया सप्तम्यो  
हिं करोति स एकया स तिसृभिः स तिसृभिः सप्तम्यो हिं करोति स  
तिसृभिः स एकया स तिसृभिः सप्त सप्तिन्येक विंशस्य विष्टुतिरिति ।  
प्रथमपर्याये प्रथमा ३ मध्यमा ३ उत्तमा १ द्वितीयपं० प्रथमा १ म  
ध्यमा ३ उत्तमा ३ तृतीयपं० प्रथमा ३ मध्यमा १ उत्तमा ३ यह एकविंशस्तो  
मकी विष्टुति सप्त सप्तिनी कहिये है ॥१३॥

उर्द्धामारोह पंक्तिस्त्वा वतु शाकरैर्वते सामैनी त्रिणवत्र  
यस्त्रिंशो स्तोमो हे मन्तशिशिरा वतु तूच्चर्चो द्रविणम्य  
त्यस्तन्नमुचेः शिरः ॥१४॥ †

पञ्चमोमंवः। हेयजमा ऊर्ध्वदिशमारोह। पंक्तिः छन्दः। श्रोष्वस्मै पुरो  
रथ इन ऋचा ओं से उत्पन्न शाक्कर साम छं० संहि० २१००११४०१ रे  
वतीर्नः सधमाद इन ऋचा ओं से उत्पन्न रेवत साम छं० संहि० १२२  
१०८-२४०११४०१। त्रिणव त्रयस्त्रिंश स्तोमो। हेमन्त शिशिरे ऋ  
तू। वर्चः तेजबाव्रस तेज धनरूप एते तुमै रक्षाकरे अथवा वर्चः ते  
जोभिमानी देवता तेरे धन को रक्षाकरे ॥ त्रिणव स्तोम एवमान्नातः पञ्च  
विं० ३१ नवभ्यो हिं करोति सतिसृभिः सपञ्चभिः स एकया नवभ्यो  
हिं करोति स एकया सतिसृभिः सपञ्चभिर्नवभ्यो हिं करोति सपञ्च  
भिः स एकया सतिसृभिर्वज्रो वै त्रिणव इति। प्रथमप० प्रथ० ३ मध्य०  
५ उत्त० १ द्वितीयप० प्रथमा० १ मध्य० ३ उत्तम० ५ तृतीयप० प्र० ५ म० १  
उ० ३ सोयह त्रिराहृत नव संख्योपेत त्रिणव नामक वज्र समान स्तोम  
है ॥ त्रयस्त्रिंश स्तोम एवमान्नातः पञ्चविं० ब्रा० ३३ एकादशभ्यो हिं करोति  
सतिसृभिः ससप्तभिः स एकयैकादशभ्यो हिं करोति स एकया सतिसृ  
भिः ससप्तभिरेकादशभ्यो हिं करोति ससप्तभिः स एकया सतिसृभिर्  
न्तो वै त्रयस्त्रिंश इति। प्रथमप० प्र० ३ म० ७ उ० १ द्वितीयप० प्र० १ म० ३  
उ० ७ तृतीयप० प्र० ७ म० १ उ० ३ गान करै सोयह त्रयस्त्रिंश स्तोम स  
व स्तोमों का अन्त है ॥ ॥ का० ११० ५ २४ जो व्याघ्र चर्म के पश्चाद्भाग  
में सीसा रखाया तिसका आक्रमण करि पैर से पटके। प्रत्यस्तमिति  
ग्रा-गा० असुर देवतम् ॥ नमुचि असुर का सीसारूप मस्तक पक  
ड कर फेंका ॥ १४ ॥

सोमं स्पृत्विषिः ॥ सोमं स्पृत्विषि रसि तवे वमेत्विषिर्भूयात् ॥

मृत्योः पात्यो जी सिसहो स्पृष्टं मसि ॥१५॥†

का० १५० ५० २५० अभिषेक के अर्थ राजा को व्याघ्रचर्म पर स्थापन करें ॥ चर्म देवत्यम् आसु-गा० व्याख्यातम् कण्डि० ५॥ का० १५० ५० २६० पादतल में हिरण्य को करें। दे० वृ० रुक्मदेव० हे सुवर्ण मृत्यु के सकाश से मुझे पालन करि ॥ का० १५० ५० २७० नवछिद्र वा शत छिद्र सौवर्ण मण्डल को यजमान के शिरपर करें। या-पं० रुक्मदे० ॥ हे हिरण्य तू ओज अर्थात् अमुक को जीतू यह मन की वृत्ति है। सह (शारीरबल) है अमृत (विनाशरहित) है ॥१५॥

हिरण्यरूपाः उषसः ॥ हिरण्यरूपाः उषसो विरोकः उभा विन्ताः उदित्यः सूर्यश्च ॥ आरोहत म्वरुण मित्र गर्तन्त नश्च क्षाया मदिति न्दिति च मित्रो सि वरुणो सि ॥१६॥†

का० १५० ५० २८० यजमान बाहुओं को जंची करें। मित्रा वरुणदेवत्या त्रिष्टुप् यजु रन्ता मित्रो सीति यजुः ॥ हे वरुण शत्रु निवारक दक्षिण बाहो हे मित्र सखिवत्यालक वाम बाहो तुम गर्त (पुरुष) को आरोहण करें। बाहु वै मित्रा वरुणो पुरुषो गर्त इति ५० ४० १० १५० अति रध्यात्म विषयं व्याचष्टे। पुरुषा रोहण के अनन्तर अखण्डिता अपनी सेना खण्डिता परसेना को क्रम पूर्वक अनुग्रह निग्रह दृष्टि से भले प्रकार देखें वे कौन कि देहों नो एत्रि की समाप्ति में उदय करते सूर्योदय के अनन्तर अपने-अपने व्यापार में प्रवर्तित होते हैं अर्थात् सूर्य और उदयह दोनों का कार्य समादन के अर्थ है। कैसे हो दोनों कि हिरण्यरूपी सुवर्ण खचित कटकादि अ

लंकार करि भासमान। तथा इन्द्रो सामर्थ्यो पेत् ॥ एवमध्यात्ममर्थः  
अधिदेवं त्वय मर्थः ॥ हेवरुण हेमित्र देवविशेष तुम गर्त (रथके उप-  
रिभाग गर्तसदृश) को आरोहण करौ पराये वाणों से रक्षा करने को  
चर्म कीलकादिकों से आच्छादित रथ का उपरिभाग गर्त सदृश हो  
ता है रथको भी गर्त कहिते हैं गृणान्ते स्तुतिकर्मण इति निरु० ३५ या  
को कर्गर्तोरथः। जो कि दोनों उषः कालान्तर उदय होते हो सूर्य होनि  
कलते हो। कैसे हो कि हिरण्यरूप अति तेजस्वि। इन्द्र परमेश्वर। त-  
नः रथा रोहण के अनन्तर अदिति अदीनं विहित अनुष्ठानात् ओ-  
र दिति दीन नास्ति कवच को देखो अर्थात् यह पापी यह पुण्यवान्  
है ॥ अमु मर्थ श्रुतिराह ५४ ११५ ततः यस्य तर्ह स्वचारणं चेत्येवैत-  
दाहेति ॥ का० १५ ५ ३४० अथवा मित्रो सीति मंत्र में बाहू ऊँची करौ ॥  
हे वामबाहो तू मित्र है हे दक्षिणतू वरुण है ॥ १६ ॥

अ० ४ सोमस्यत्वा ॥ द्युम्ने नाभिषि चाम्य गेभ्वीजसा सूर्यस्यवच्च  
सेन्द्रस्येन्द्रियेण ॥ क्षत्राणां दुःप्रपतिरेव तिदिद्युन्याहि ॥ १७ ॥  
इमन्देवाः ॥ इमन्देवाः असपत्नर्ह सुवद्वम्महते क्षत्राय-  
महते ज्यैष्ठ्याय महते जाने राज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय ॥ इमम-  
मुष्यपुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विशा एष वो मी राजा सोमो  
स्माकं म्नाह्मणानां राजा ॥ १८ ॥

का० १५ ५ ३०-३३ रुक्म सहित व्याघ्र चर्म पर पाङ्गुख अवस्थित-  
राजा को पुरोहितादिक साम्ने से खड़े हो अभिषेक करें। पालाश ओ-  
दुम्बर न्यग्रोध आश्वत्थ चतुर्विध अभिषेक जल पात्रों स्थापन कि



येह ओंसे। नत्रपालाशपात्रसे पुरोहित अध्वर्यु अन्यतरः प्रथम अभिषेक करें इतर स्वादिक पीछे स्वा राजाका आता दूसरे ओंबुम्वर पात्र से मित्रभूत कोई क्षत्रिय तीसरे से वैश्य चौथे से। चारों अभिषेक करने वालों के क्रमसे सोमस्य १ अग्निः २ सूर्यस्य ३ इन्द्रस्य ४ चारों मंत्र हैं। अभिषिञ्चामि यह पद तीनों अगिले मंत्रों में जोड़े। इमममुष्य यह मंत्र प्रथम पुरोहित वा अध्वर्यु जैसे देवताओं के हवि में नाम ग्रहण युक्त पढ़े। प्रथम के ग्रहण से औरों को इमममुष्य मंत्र शेष नहीं होता क्यों कि ब्राह्मणनार्थ राजा इस चिह्न के कारण ॥ यजुः चतुर्णामंत्राणां यजमानों देवता + ॥ हे यजमान चन्द्रमा के यशसे तुम्हें अभिषेक करता हूँ तिससे अभिषिक्त हो सब क्षत्रियों के मध्य क्षत्रियेश्वर हो- शत्रु प्रयुक्ता बाणदिकों का अपसरण करिके इस यजमान को हे सोम तू पालन करि ॥ १॥ इमं देवाः व्याख्यातापि ४०० व्याख्यायते। हे सोमादिक देवता ओं पण्डु के पुत्र कुन्ती के पुत्र कौरवी प्रजा के अर्थ तिष्ठ होते इस युधिष्ठिर को शत्रु रहित करिके बड़े क्षत्र के अर्थ बड़े ज्येष्ठ भाव के अर्थ बड़े जानपद के राज्य के अर्थ इन्द्र के ऐश्वर्य के अर्थ तुम प्रेरण करो हे कुरु जांगली ओं यह युधिष्ठिर तुम्हारा राजा हम ब्राह्मणों का सोम राजा एतावन्त मंत्र पठित्वा पुरोहितोऽध्वर्युर्वाभियञ्चेत् ॥ १॥ राजभ्रातुर्मत्रमाह। हे यजमान अग्नि (वैश्वानर) के तेजसे तुम्हें अभिषेक करता हूँ अन्यत्पूर्ववत् ॥ २॥ राजमित्रमंत्रमाह। सूर्य के तेजसे सर्व पूर्ववत् ॥ ३॥ वैश्यमंत्रमाह। हे यजमान इन्द्र के वीर्यसे शिष्टं पूर्ववत् ॥ ४॥ श्रुत्यानुद्युम्नादि शब्दैर्वीर्याण्येव व्याख्यातानि ॥ १७॥ १८॥

१३ अक्षर ए सोमस्य ताम्रं यजमानमभिषिञ्चामि। सोमा एतं क्षत्रपतिरेष्यति। दिव्यं माहि  
॥ १॥ अग्ने यजमानमभिषिञ्चामि। अग्ना एतं क्षत्रपतिरेष्यति। दिव्यं माहि  
वा-पाहि ॥ ३॥ इन्द्रस्य वीर्येणमि० क्ष-हि ॥ ४॥

प्रपर्वतस्य ॥ वृषभस्य पृष्ठान्नाव शरतिस्वसिचः ३ इया  
नाः ॥ ताः आव वृत्रन्धरागुदक्ताः ३ अप हि बुध्मनु  
रीयमाणः ॥ विष्णोर्वि क्र मणमसि विष्णोर्वि क्रान्त  
मसि विष्णोः क्रान्तमसि ॥ १२५ ॥

का० १५. ६. ७. यजमान कृष्णविषाणसै किये अभिषेक के शरीर  
संलग्नो दक करि अपने अंगको लीपै ॥ अब्दे वत्या त्रिष्टुप् नृपन्ते  
स्तुति करते हैं स्तोत्र शस्त्र मंत्रों से यद्वा नुदन्ति प्रेरणा करती है  
फल प्राप्ति के अर्थ वोह नाव अर्थात् आहुति परिणाम भूता जल आ  
दित्य मण्डल प्रति जाती है। क्या करिके कि वृषभस्य वर्षने वाले अ  
ग्नि के पृष्ठ प्रदेश से उठिके इति शेषः। कैसे वृषभके कि पर्वतस्य प  
र्वणि पौर्णमास्य मावास्या चातुर्मास्या दीनि विद्यमान हैं जिसेंति  
सके। कैसी है नाव कि अपने से सींचती है सबको। तथा इयाना गम  
नशीला वोह ही आदित्य मण्डल को प्राप्त हो मध्यस्थान को आ  
ती है मध्यस्थान से पृथिवी को + वोह आदित्य मण्डल को प्राप्त हो  
धराक् आव वृत्रन् नीचेको लौटती है। कैसी है वोह कि ऊंची गई हुई  
मेघको अनुसरण कराती है। कैसे मेघको कि अन्तरिक्ष में वर्तमान  
है ॥ ॥ यद्वा यमर्थः ॥ पर्वत आदित्य को कहिते हैं वर्षने वाले आ  
दित्य के पृष्ठ से निकलती स्तुति रूपा जल सर्वतः जाती है कैसी है कि  
स्वसिच आप सेक्ता + वोह उदक्ता (व्यक्ता) अन्तरिक्षस्थ मेघको प्र  
वेश करि प्रावृट् काल बिषे भूमि के प्रति आती है ॥ ॥ यद्वा यमर्थ  
ऋचोऽस्याः। वर्षने वाले पर्वत (हिमवान् विंध्यादिकों) के पृष्ठ से व

+ प्र-ए-॥ आव-वि-सि-इ-उ-॥ १२५ ॥

३ आदित्यः परिष्ठादपोनाव्या उच्यन्ते तथा च शत० १०५. ६. १४. नाव्या आप इत्यादि ॥

ममगादित्यमुपतिष्ठते अदित्यः ज्ञातः प्रपर्वतः  
+ यदुक्तं मनुस्मृत्या ३. ६. २५ स्त्री प्राप्ता इति ममगादित्यमुपतिष्ठते अदित्यः ज्ञातः प्रपर्वतः  
वृष्टिरन्ततः प्रजा ३६

हती नाव (नौतर्या गंगादि महा नदीएं) प्रचरती हैं स्वसिचः अपने  
यजमान क्षेत्र को सींचती हैं वोह ही नाव अधस्तात् आवृत्त नू  
राजसूय याजिके अर्थ आती हैं। कैसी हैं कि अभिषेक पात्र के विषे  
प्रक्षिप्ताः। तथा बुध्य (मूल प्रधान) अहि हन्ता (शत्रुओं के हन्ता य  
जमान प्रति सिच्य मान हैं ॥ का० १५. ६. ४० अध्वर्यु यजमान से व्या  
घ्रचर्म परतीनि मन्त्रों करितीनि वार पाद प्रक्षेप करावै। त्रीणि यज  
मान देवत्यानि १. प्रा-गा० २. या-उ० ३. या-गा० ॥ हे मदीय प्रथ  
म प्रक्रम तू विष्णु (व्यापनशील यज्ञ पुरुष जगदीश्वर त्रिविक्र  
मावतार) का विक्रमण (प्रथम पाद प्रक्षेप से जीता भूलोक) है ॥ १॥ हे द्विती  
य प्रक्रम तू विष्णु का विक्रान्त (द्वितीय पाद प्रक्षेप से जीता अन्तरिक्ष)  
है ॥ २॥ हे तृतीय प्रक्रम तू विष्णु का क्रान्त (तृतीय पाद प्रक्षेप से जी  
ता त्रिविष्टप) है ॥ ३॥ इदं मन्त्रं त्रयं लोक त्रयं जये हेतु भूतं तित्तिरि एह  
विष्णु क्रमान् क्रमते विष्णुरेव भूत्वे मां लोकान् भिजयतीति ॥ तथा च  
शात० ४. ४. २. ६. इमे वै लोका विष्णोरित्यादि ॥ १६ ॥

प्रजापतेन ॥ त्वदेता न्यून्यो विश्वा रूपाणि परिता व भूव ॥  
यत्का मास्ते जुहु मस्तन्नोऽ अस्त्वय ममुष्य पिता सा वस्य  
पिता वयधं स्याम पतयोरयीणाधं स्वाहा ॥ रुद्र यत्ते क्रिवि  
परन्ना मतस्मिन्नु तमस्य मेष्ट मसि स्वाहा ॥ २० ॥ +

का० १५. ६. ११. ततः सद से शाला में आकर पुत्र का स्पर्श करि शाला  
हारीय अग्नि विषे होमें। प्रजापति देवत्या त्रिष्टु व्यजुर्मध्या तृती  
य चतुर्थ पाद मध्येऽ यममुष्य यजुर्मुक्ता ॥ हे प्रजापते तुरुसे अ

न्य देवता विशेष इन सब नाना जनीय रूप वर्तमान भूत भविष्यत  
काल विषयों का परिभव करने को समर्थ नहीं हुआ अर्थात् तुम्हें  
अन्य देवता इन भूतों के सृजनें और संहारने को अशक्त है अतः ह  
म जिस काम से तुम्हें होमते हैं सो काम रूप फल हमारे हैं ॥ यजुर्व्याख्या  
यते अयममुष्य पितेति पुत्र को पित्री करिके तिन्हों का नाम ग्रहण क  
रे- यह अभिमन्यु अर्जुन का पिता। असावस्य पितेति यथा यथ मेव  
नाम ग्रहः यथा- यह अर्जुन अभिमन्यु का पिता ॥ सर्वथा पुत्रों सहि  
त हम धनों के स्वामी होवें ॥ का० १५. ६. १२. पालाश के अभिषेक पात्र क  
रि अभिषेकोदक शेषों का आग्नीध्रीय अग्निके उत्तरभाग विषे होम  
करे। सा- विरुद्र देवत्वं हेरुद्र जो तेरा क्विवि (कर्तृ वा हिंसित) उक्तृष्ट ना  
म है। एवं रुद्रं संवोध्य होमद्रव्य मोह हेहवि तिस रुद्र नाम में तू हुत है औ  
र मेरे घर विषे दृष्ट दत्त है स्वाहा सुहृत मस्तु ॥ २० ॥

अ० ५ इन्द्रस्य वज्रः ॥ इन्द्रस्य वज्रोसि मित्रा वरुण योस्ता अशा  
स्त्रोः प्रशिषा युनज्मि ॥ अव्यथा येत्वा स्वधा ये त्वारिष्टोः  
अर्जुनो मरुता म्यसवे न जया पा मम न सा समिन्द्रियेण ॥ २१ ॥

का० १५. ६. १५. वाजपेय में जैसे रथ वाहण से रथ को इन्द्रस्य वज्रो  
सि इस मंत्र करि भूमि विषे अवतारि मित्रा वरुण योरिति मन्त्रेण चा  
रं अश्वों से वाजपेयवत् जोड़े प्रत्यश्व मन्त्रः इन्द्रस्य वज्रोसि यह मंत्र न  
हीं है वाजपेय संबंधी पूरा तावन्मात्र ही पाठ से- धूके ग्रहण किये को वे  
दी के दक्षिणोदिदेश विषे लाकर जोड़े पहिले दक्षिण को फिर उत्तर  
को ततः दक्षिण प्रष्टिततः सव्या प्रष्टिको अनिदेश से तीनों के जांडनें

+ अर्जुनो ह वै नामेन्द्र इति श्रुतः ५. ३. ३९

की शक्तिमें चारों से जोड़ना यह उक्त है इति सूत्रार्थः ॥ दे-त्रि. रथ देवत्यं ॥  
 हे रथ तू इन्द्र का वज्र है ॥ जोड़े। प्रजापत्यानुष्टुभ रथ देवत्यं मित्रावरुण देवताओं के प्रशासन से हे रथ तुम्हें जोड़ता हूँ ॥ का० १५. ६. १७  
 अव्यथायैत्वा इस से यजमान चात्वाल देशस्थ रथ को आरोहण करे।  
 सा-उ. रथ देवत्यं ॥ अनुपहिंसित अर्जुन तुल्य इन्द्र+ ऐसा में हे रथ  
 तुम्हें अभय वा अन चलने और अन्न रस के अर्थ तुम्हें अधितिष्ठूँ ॥  
 का० १५. ६. १८. यजमान के साथ आरूढ यन्तादक्षिणाश्व को कशाकरि  
 चलावै। या-वृश्चुर्यदेवतम् ॥ हे धुर्यु मरुत देवताओं की आज्ञा से तू  
 त्रुओं की जीति इति शेषः ॥ का० १५. ६. १९. पूर्वमेव आहवनीय के  
 अन्तर से स्थापित गौओं के मध्य तिस रथ को स्थापन करे। दे-त्रि.  
 यजमान देवत्यम् ॥ हम मनसा सह प्राप्त हुए (जो उपक्रान्त सोकिया ॥  
 का० १५. ६. २०. धनुष की कोटी से गो को यजमान स्पर्श करे। दे-प.  
 यजमान देव ॥ हम इन्द्रियों (वीर्य) से संगत हैं ॥ २१ ॥

माते ॥ माते इन्द्र ते ब्रूयन्तु एषाडयुक्ता सोऽश्वस्य तान् वि  
 दक्षाम ॥ तिष्ठारथमधियम्वज्रहस्तारश्मीन्देवयमसेस्व  
 श्वान् ॥ २२ ॥

का० १५. ६. २२. स्थापित गौओं के पति (अपने भ्रातृ) के अर्थ तावत्  
 शत वा अधिक और देवों के यूप से पूर्व दिशा में फेरिकर अन्नः पात्य  
 देश विषे रथ को स्थापन करे। इन्द्र देवत्यानिष्टुपू संवरणः प्राजाप  
 त्यदृष्टा ॥ हे वज्र हस्त हे दीप्यमान तू जिस रथ में बैठता है और जि  
 स की रश्मियों का ग्रहण करि चलता है कैसी हैं रश्मी कि शोभन

हैं अश्वजिन्हों में। हेतुराषाट् (शत्रुओं के अभिभव करनेवाले)।  
हे इन्द्र (ऐश्वर्य युक्त) तेरे हम तेरे तिस रथमें अयुक्ताः (तिससैभिन्न,  
विविध उपक्षीण) नहोंवें तत्र दृष्टान्तः अब्रह्मता लुप्तोपमानम् अ-  
ब्रह्मतेव ब्रह्म विज्ञानानन्दस्वभाव अनश्वर का भाव ब्रह्मता न-  
हीं है ब्रह्मता वोह अब्रह्मता यथा ब्रह्मभाव सै अन्य वस्तु विविध उप-  
क्षीण एवं हम नहोंवें ॥ २२ ॥

अग्नये गृहपतये ॥ अग्नये गृहपतये स्वाहा सोमाय व-  
नस्पतये स्वाहा मरुता मोजसे स्वाहेन्द्र स्येन्द्रियाय स्वाहा ॥  
पृथिवि मातर्म्मा माहिर्दसीर्मो अहन्त्वाम् ॥ २३ ॥ †

का० १५. ६. २३. अग्नये गृहपतये. इन चारि रथ विमोचनीयनामा  
आहुतियों की होमें। १२. या-पं० ३. ४. या-अ० लिङ्गोक्त देवत्यानि ॥  
गृहा अमपालक अग्नि के अर्थ स्वाहा सुहृत मस्तु ॥ वनस्पतिरूपी सो-  
म के अर्थ हविर्दत्त मस्तु ॥ इन्द्र संबधि वीर्य के अर्थ स्वाहा ॥ मरुतो सं-  
बंधि बल के अर्थ हविर्द० ॥ का० १५. ६. २४. रथस्य एव यजमान भू-  
मि को देखे। आसु-अ० भूमि देवत्यम् ॥ हे जगत की निर्माण करनेवा-  
ली हे पृथिवी (भूमे) तू मुझे हिंसा मत कर मैं भी तुरू पृथिवी की नहीं हिं-  
सा करता ॥ २३ ॥

हृष्टसः शुचिषदसु रन्तरिक्ष सद्गोता वेदिषद तिथिर्दुरोण  
सत् ॥ नृषदर सद्गोता सद्गोता मसदत्रा गोजाः ऋतजाः अ-  
द्रिजाः ऋतमृहत् ॥ २४ ॥

का० १५. ६. २५. यजमान रथ सै अवरोहण करै। सप्रपञ्च परब्रह्मा

भिधायिनी सूर्य देवत्यातिजगती वामदेवदृष्टा ॥ हंसः अहंकारको ना  
 शकरता भगवान् आदित्य तिस प्रति अवतारताहं इति वाक्य शेषः  
 कैसा है हंस कि शुचिषत् आदित्य रूप करि दीप्ति में स्थित तथा वसुः  
 वासयिता नरों का प्रवर्तक अन्तरिक्ष सत् वायु रूप करि अन्तरिक्ष  
 में रहता होता देवताओं का आह्वान करने वाला। वेदिषत् अग्नि  
 रूप करि वेदी में रहता। अतिथिः सवों का पूज्य दुरोण सत् आहव  
 नीयादि रूप करि यज्ञगृह में स्थित नृषत् मनुष्यों में प्राणभाव करि र  
 हता। वरसत् उत्कृष्ट स्थानों में रहता। ऋतसत् यज्ञ में र० व्योमसत्  
 आकाश में मंडल रूप करि र० एवं सर्वत्र स्थितत्वेन स्तुत्वा सर्वत्रोत्पत्ति  
 द्वारेण स्तोति। यः जो अज्जा जल में मत्स्यादि रूप करि उत्पन्न होता  
 है। गोजा पृथिवी में चतुर्बिध भूत ग्राम रूप करि उत्पन्न होता। ऋ  
 तजा सत्य में उत्पन्न होता। अद्रिजा पाषाण में अग्नि रूप करि  
 वा मेघ में जल रूप करि उत्पन्न होता है। ऋतम् सर्वत्र गत बृह  
 त् महत्यरि बृहत् अपर्यन्त परब्रह्म रूप जो हंस तिस प्रति रथ से उत  
 रताहं ॥ यद्वा हंस शब्देन रथ उच्यते हंस पृथिवी को हन्ता रथ  
 बृहत् महत्सौढ ऋतं यज्ञ को सम्पादन करे इति शेषः। कैसा है हं  
 स कि शुचिषत् देवयजन वा रथवाहिन में स्थित। वसुः अपने ऊ  
 पर यजमान को वास कराता। अन्तरिक्ष सत् वृक्षगुल्मादि क  
 रि अनवरुद्ध अन्तरिक्ष में स्थित। होता होतु समान कैसे कि वेदि  
 षत् वेदी विषे स्थित। अतिथिः अतिथिवत् पूज्य दुरोण सत् य  
 ज्ञगृह में स्थित। नृषत् नरों में बाहकत्व करि स्थित। वरसत् वर श्रेष्ठ

राजगृह में स्थित। ऋतसत्, वाजपेयादि यज्ञों में स्थित। व्योमसत्, सूर्य चलाने को आकाश में स्थित। अग्नाः- अप्सु योनिर्वा, अश्व इस श्रुति से जल करि उत्पन्न अश्वों करि उपेत। गोजाः- वज्र से उत्पन्न। इन्द्रो वज्राय वज्रं ग्राहत्स त्रेधा व्यभक्तस्य स्फ्यस्तृतीयं रथस्तृतीयं यूपस्तृतीयमिति तैत्तिरीयश्रुतेः। ऋतजाः- यज्ञ को उद्देश करि उत्पन्न हुआ। अद्रिजाः- पाषाण सदृश काष्ठों से उत्पन्न॥ २४॥

इयदसि॥ इयदस्यायु रस्यायुर्मयि धेहि युङ्गसि बर्चोसि वर्चोमयि धेत्यूर्गं सृजं मयि धेहि॥ इन्द्रस्य वाम्नीर्यं कृतो बाहुः अम्युपावहरामि॥ २५॥†

का० १५. ६. ३२. शालाके दक्षिण भाग विषे स्थापित रथ वाहन के दक्षिण चक्र में बंधे शतमान शतरक्तिका निर्मित सुवर्णमणि का यजमान स्पर्श करे। द्वे द्वादशाक्षरे यं जुषी शतमान देवते मिलित्वा त्नाम्नीज०॥ हे रुक्म तू इयदसि एतावत्यरिमाणः शतरक्तिका परिमित है जीवन है तिस हेतु शत वर्ष परिमित आयु मेरे स्थापन करि-योहियदात्मकः सतद्वातु मुत्सहते यतस्त्वं शतमान मसि ततः शताब्द परिमित मायुर्मयि रोपय। युङ्गसि- यज्ञ को संभार निचय वा दक्षिणादान करि युङ्ग वर्च।- तेजस्वी है अतः मेरे तेज स्थापन करि॥ का० १५. ६. ३३. तिस शतमान को ब्रह्मा के अर्थ दे के पूर्वोक्त रथ वाहन में उपगृहिता ओं दुम्बरी शारवा को स्पर्श करे। प्रा-गा० शारवा देवत्यम्॥ हे ओं दुम्बरि शारवे तू अन्नरूपा है ततः अन्न मेरे स्थापन करि॥ का० १५. ६. ३४. अश्वर्यु यजमान की बाहुओं को व्याघ्रचर्म

† इ-हि। अ० ऊ-हि। दू० इ-मि। उ०॥ २५॥



स्थापितं मैत्रावरुणी पयस्या मे नीची करै। यजुः बाहु देवत्यम्॥ वीर्य  
कारी इन्द्र (परमैश्वर्ययुक्त यजमान) के संबंधि हे बाहुओं में तुम्हें मै  
त्रावरुणी पयस्या प्रति नीची करता हूँ ॥ २५ ॥

३७. ६ स्योनासि॥ सुषदासि क्षत्रस्य योनिरसि॥ स्योना मासीदसु  
षदा मासीदक्षत्रस्य योनि मासीद॥ २६ ॥†

का० १५. ६. ३६. ७. १. पयस्या के स्विष्ट कृत् होम से पहिले रज्जुओं  
करि बुनी खादिरी आसन्दी (मञ्चिका) को व्याघ्रचर्म देश विषे मैत्रा  
वरुण धिषाय के साम्ने रखे ॥ आसन्दी देवत्यम् । हे आसन्दि तू सु  
ख रूपा है। सुख से बैठने योग्य है ॥ का० १५. ७. २. आसन्दी पर वस्त्र  
विछावै। अधीवास देवतम् । हे अधीवास तू क्षत्रिय का मातृवद्भा  
रक होने से योनि स्थान है ॥ का० १५. ७. ३. आसन्दी पर यजमान  
को बिठावै ॥ यजमान देवत्यं यजुः । हे यजमान सुखकारी आस  
न्दी को आरोहण करि सुख पूर्वक बैठने योग्य को आरोहण करि  
क्षत्रिय के स्थान आसन्दी को आरोहण करि ॥ २६ ॥

निषसाद॥ धृत वृतो वरुणः पस्त्या स्वा॥ साम्ना ज्याय सुक  
तुः ॥ २७ ॥

का० १५. ७. ४. अर्ध्वयु यजमान के हृदय को स्पर्श करै ॥ वरुण देव  
त्या गायत्री श्रुतः शेष दृष्टा । यह यजमान प्रजापर आधिपत्य क  
रि निषसाद उपवेश करता हुआ अर्थात् जो आसन्दी पर स्थापित  
हुआ वोह प्रजापर ही स्थापित हुआ । कैसा है यजमान कि धृत व्रतः  
धारण किया है व्रत यज्ञ लक्षण कर्म जिसने । अनिष्ट का हरिक

रनेवाला। तथा शोभन संकल्प वा शोभन प्रज्ञ। किसलिये निषसाद  
कि सम्पाड भाव के अर्थ ॥२७॥

अभिभूरसि॥ अभिभूरस्येतास्तेष्वक्षदिशः कल्पन्ताम्ब्र  
ह्मस्त्वम्ब्रह्मासि सवितासि सत्यप्रसवो वरुणोसि सत्यो जा  
इन्द्रोसि विश्वो जारुद्रोसि सुशेवः॥ बहुकारत्रेयस्करभूय  
स्करेन्द्रस्य वज्रोसि तेन मेरध्य ॥२८॥†

का० १५.७.५ यजमान के हाथ में धृतसाधनभूत सौवर्ण कपड़ेक  
पांच अक्ष देवै॥ सा-उ० अक्षायजमानो वा देवता। चारि अक्षों की क  
त संज्ञा पांच में की कलि है जबकि पांचोंही अक्ष ऊँचे वा नीचे एकरू  
प हो गिरते हैं तब डालनेवाले की जीत होती है तहां कलि सब अक्षों  
को अभिभव कर्ता है तिस प्रति वा तिस संबंध करि यजमान प्रति कहि  
ते हैं। हे अक्ष अथवा हे यजमान तू अभिभविता है। येक पर्हि को प  
लक्षित पूर्वादि चार और ऊर्ध्व पांचो दिशा नेरे प्रयोजन समर्थ हैं। क  
लिके सर्वाक्ष अभिभावक होनें और यजमान के जया पेक्षी होनें से पंचा  
क्ष व्यापकत्व है इति भावः॥ का० १५.७.७-८ यजमान राज्यं मेऽस्त्व  
त्यादि द्रव्यों को प्रर्थना करि पांचवार ब्रह्मन् इस मंत्र से ब्रह्मा को आ  
मंत्रण करे एवं आमंत्रित ब्रह्मात्वं ब्रह्मासीत्यादि सवितासि १ वरु  
णोसि २ इन्द्रोसि ३ रुद्रोसि ४ इन्द्रमंत्रो से व्यत्यासं यजमान प्रति कहै  
तिस करि चारों मंत्रों की आदि में त्वंब्रह्मासि यह प्रयोग है। व्यत्यासं  
यह आदि विषे यजमान ब्रह्मन् इससे आमंत्रण करै त्वंब्रह्मासि  
सवितासि सत्य प्रसव इति प्रत्याह ब्रह्मा। पुनर्यजमानो ब्रह्मन् इ

† अ-भि। अ० ब्र-वः। इ० व-जाः। उ० इ-जाः। ऋ० रु-वः। लृ० व-रा। आ० इ-ध्य। ई०॥

ति ब्रह्माण मा मंत्रयते ब्रह्मात्वं ब्रह्मासि वरुणोसि सत्यौजा इति प्रत्या  
ह। पुनः० इन्द्रोसि विशोजा। पुनः० रुद्रोसि सुशेवः॥ और अंतमें पांच  
में प्रतिवचन को पहिले त्वं ब्रह्मासीति इतनेही मन्त्र सैंकरे इति सूत्रा  
र्थः॥ त्वं ब्रह्मासि १० आसु-गा० २० या-उ० ३० ४० या-गा० १-५ पञ्चय  
जमान देवत्यानि। आमन्त्रित ब्रह्मा यजमान प्रति कहैं। हे यजमान  
तू ब्रह्मा (महान्) है और प्रेरक है सत्य है अनुज्ञा जिसकी वोह ॥१॥  
द्वितीयं प्रत्याह। तू ब्रह्मा है वरुण (अनिष्टनिवारक) है अमोघवी  
र्य है ॥२॥ तृतीयं। तू ब्रह्मा है ऐश्वर्यवान् है प्रजाविषं तेज है जिसका  
वोह है ॥३॥ चतुर्थं। तू ब्रह्मा है रुद्र है हे राजन् तू शत्रुओं के रुलाने औ  
र डवाने सैं रुद्र रूप है। शोभन सुख कारी है ॥४॥ त्वं ब्रह्मासि इस इत  
नेही मन्त्र सैं पांचमाँ प्रति वचन करै ॥५॥ का० १५० ७० १०० यजमान को  
बहुकारे त्यादि सुमंगल नामा उपाधि देबोलैं ॥ या-ज० लिङ्गोक्तं देव  
तम्। हे बहुकार बहुत कार्य करने वाले श्रेय करने वाले भूयस्करः बहुत क  
रने वाले तिन्हों के संवीधन हैं हे बहुकारे त्यादि कल्याण नाम नूत्वा  
माह्वये तुम्हें आह्वान करते हैं इति शेषः ॥ का० १५० ७० ११० पुरोहि  
त वा अध्वर्यु यजमान के अर्थ द्यूत भूमि करने को स्फ देवै ॥ या-त्रि०  
स्फ देवतम्। हे स्फ तू इन्द्र का वज्र है इन्द्र ने जहाँ वृत्र के लिये वज्र  
को मारा (इन्द्राह यत्रेत्यादि शत० १० २० ४० १००) तिस का एक अंश स्फ  
है। तिस हेतु मेरे यजमान को वश बर्तित करि कारण यह कि जो रा  
जा ब्राह्मण सैं अबल वोह बैरियों सैं बली होता है + यद्वा जैसे नूतन  
ज्वरूप है तिस कारण मेरी द्यूत भूमि विषं परिलेखन रूप कार्य साधि ॥२८॥

अग्निः पृथुः॥ अग्निः पृथुर्धर्मणस्पतिर्जुषाणोऽग्निः  
पृथुर्धर्मणस्पतिराज्यस्य वेतुस्वाहा स्वाहा कृताः सूर्यस्य  
रुश्मिर्मिर्यतद्धर्तं सजातानां मध्यमेष्वाय ॥२६॥†

का० १५.७.१५. एवं की हुई द्यूत भूमिविषे सुवर्णरखितिसपरचतु  
र्गृहीत आज्य को होमें॥ सा-त्रि० अग्निदेवत्यम्। अग्नि आज्य को  
पि ओ स्वाहा सुहुत मस्तु। कैसा है अग्नि कि देवताओं में विशाल। त  
या जगत के धारण वाधर्म का स्वामी। प्रीतिमान बाह्य मान हविको  
सेव मान। अग्निः पृथुः धर्मणस्पतिरिति पुनः पाठः आदरार्थः॥ का०  
१५.७.१६. पूर्वोक्त पांचों अक्षों को भूमि में डालें॥ सा-त्रि० अक्षदे  
वत्यम्। हे अक्ष ओ तुम स्वाहा पूर्वक आहुति करि तर्पण किये हुए स  
र्य की किरणों से स्पर्धो करो और सजातानां समान जन्मा भाई  
क्षत्रियों के मध्यम प्रदेश विषे यजमान के स्थान के अर्थ यत्न  
करो अर्थात् यजमान को सर्व क्षत्रिय श्रेष्ठ करो॥२६॥

अ० ७ सवित्रा प्रसवित्रा॥ सरस्वत्या वाचा त्वष्टा रूपाः पूषणा पशु  
भिरिन्द्रेणास्मे बृहस्पतिना ब्रह्मणा वरुणे नो जसाग्निना  
नेजसा सोमैर्न रक्षा विष्णुना दशम्या देवतया प्रसू  
तः प्रसर्प्यामि॥३०॥

का० १५.८.१६. १७. ऋत्विज और अन्य विप्र मिलकर शत संख्या  
कहो दशपेय याग के सौत्य दिवस विषे प्रतिसवन सर्पण से पहि  
ले अपने-अपने सोम याजि दश पित्रादिकों के गण गिनिकर अ  
मुक प्रथमः सोमयः असौ दूसरा असौ तीसरा इत्यादि दशपर्य

१४ राजा सोमपा जितमसमन्वाद्यमवपश्यः

न सोमयाजि यों को गिन के विभूरसीत्यादि सर्पण ५३१ धिषयोपस्था  
न करते हैं भक्षण काल विषे सर्पण वासदः प्रवेश। पक्षान्तरमाह स  
वित्रेति यद्वा सवित्राप्रसवित्रेत्येक कण्डिकात्मक अनुवाक को पटिक  
र शत १०० विप्रसर्पण करते हैं॥ सवित्रादि देवत्या अत्यष्टिः। दशदेव  
ताओं करि आज्ञा पाया में सर्पण करता हूँ। प्रत्येक पाठा देक वचनं  
सर्पोमीति। किन दर्शों करि आज्ञा पाया यह कहिते हैं अम्यनुज्ञान  
कारी सूर्य करि श्वाग्रूपा सरस्वती करि रूपलक्षित त्वष्ट्र देवता त्व  
ष्ट्रा रूपाणामधिपतिरित्युक्तेः ३ पशुओं से उपलक्षित पूषा देव ४ इ  
न्द्र ५ देवयागविषे ब्रह्मत्व कर्त्री बृहस्पति ६ ओजस्विवरुण ७  
तेजस्वि अग्नि ८ ओषधिविषाधिप वादीप्यमान सोम ९ दशसंख्या  
पूर्ण करने वाले यज्ञाधिष्ठातृ बिष्णु रूप देवता करि १० अर्थात् इतनों  
से आज्ञा पाया प्रसर्पण करता हूँ ॥ ३० ॥ इति राजसूयः समाप्तः ॥

अथ चरकसौत्रामण्यश्विनो राक्षः

अ० ८ अश्विम्भ्याम्यच्यस्व ॥ सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राम्णो प  
च्यस्व ॥ वायुः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ्क सोमोऽतिस्तुतः ॥  
इन्द्रस्य युज्यः सर्वा ॥ ३१ ॥

राजसूयान्तर्गत सौत्रामणी की चरक सौत्रामणी संज्ञा है तिसके मंत्र  
कहिते हैं तिन मंत्रों के अश्विनी कुमार ऋषि हैं ॥ का० १५२५२५  
जाताङ्कुर अजाताङ्कुर बीही क्षौम में बंधे हुए तिन्हें के मध्य अजा  
ताङ्कुर बीहियों का ओदन पका कर जाताङ्कुरों को पीस करि ओ  
दन से मिश्रित करे ॥ बीणि सुरा देवत्यानि १ या-गा० २ या-उ० ३

या-वृ०। हे सुरे तू अश्विनी कुमार के अर्थ पच्यस्व पाक कर पाकना  
म विपरिणाम श्रेष्ठता। सरस्वती देवी के अर्थ पाक कर। शोभन त्रा  
ण कर्ता वा सुत्रातव्य इंद्र के अर्थ पाक कर यतः सोत्राम एयं द्रुका भै  
षज्य कर्तव्य है ॥ का० १५.१०.११. वपा मार्जन के अन्त में कुशाओं  
करि परिस्रुत कों पवित्र करै वायुः पूतः० इस मंत्र से। पशुओं के वपा  
मार्जनान्न कर्म किये पीछे सुरा को किसी पात्र में दर्भाओं से पवित्र क  
रै ॥ सोम देवत्या गायत्री। सोम वायु करि शोधित कुशमय पवित्र करि  
शोधित हो अधोमुख होकर अति क्रमण करिके गंधा ॥ कैसा है सोम  
कि इंद्रका योगार्ह सरवा। सोमः पूर्वे पूति गंधोऽभूत्ततो देवैर्वायुरुक्त  
त्वं सोमर्हं सुगन्धं कुर्वति ततो वायुना सोमो दुर्गन्धमपहत्य सुगन्धः  
कृत इति शत० १२.७.३. श्रुत्योक्तम् तदयं मन्त्रो वदतीत्यर्थः  
सोम प्रथम पूतिगन्धिया पीछे देवताओं ने वायु से कहा कि तू सो  
म को सुगन्ध करि ततः वायु ने सोम को दुर्गन्ध छुड़ाय सुगन्ध किया  
सो यह मन्त्र कहिता है ॥ ३१ ॥

कुविदुङ्ग ॥ यवमन्तो यवश्चिद्यथा दान्यं नु पूर्वस्मि यूग ॥  
इहे है वाङ्मणु हि भोजनानि ये बहिषो नमः० उक्तिं यजन्ति ॥  
उपया मगृही तो स्पश्चिभ्यान्त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सु  
त्रामो ॥ ३२ ॥ कु-न्ति। अ०। उ-म्यो। इ० ॥ ३२ ॥

का० १५.१०.१३. पवित्र हुई सुरा में बदरी फल चूर्ण डालि कर कुवि  
दुङ्गेति एक ग्रह को वैकङ्कत पात्र से ग्रहण करै अथवा कुविदुङ्गेति  
तीनि ऋचाओं से तीनि ग्रहों को प्रतिदेवत ग्रहण करै। यथा कुवि

दङ्ग० उपयाम गृहीतोस्यश्विभ्यान्त्वेति प्रथमम् कुविदङ्ग० उपया  
म गृहीतोसि सरस्वत्यैत्वेति द्वितीयम् कुविदङ्ग० उपयाम गृहीतोसी  
न्नायत्वा सुत्राणां इति तृतीयम् ॥ ३२० ३३० ३४० तृचं काक्षीवतसुकी  
र्ति दृष्टम् । आद्या सोम देवत्या विष्टुप् ॥ हे सोम जैसे यवमन्तः ब  
हुयव सम्पन्नाः कृषीवलाः सब यव मय सस्य को अनुपूर्व से विचा  
रि पृथक् करके लुनते हैं । तैसे इन यजमानों की संबंधी भोज्यवस्तु  
एँ इन यजमानों के विषे करि । इन किन्हीं के कि जे यजमान वहि  
ओं के ऊपर स्थित हविर्लक्षण अन्नकोलेयाज्यासम्पादन करि याग  
करते हैं ॥ उपयामेति सा-वि० हे सोम तू उपयाम करि गृहीत है अ  
श्विनी कुमारों के अर्थ तुम्हें गृहण करता हूँ सरस्वती के अर्थ तु-हूँ  
शोभनत्राण करने वाले इन्द्र के अ-हूँ ॥ ३२ ॥

पुर्वं सुरामम् ॥ पुर्वं सुराममश्विना नमुचावा सुरेसवा ॥

विपिपानाशु भस्यती इन्द्रोऽर्म्मस्वावतम् ॥ ३३ ॥

का० १५० ६० २० पुर्वं सुरामम् पुत्रमिव ये दोः कृत्वाँ सुराग्रहों की या  
ज्या अनुवाक्या प्रथमानुवाक्या पुत्रमिवेतियाज्या ॥ अनुष्टुप् अश्विसरस्व  
तीन्द्र देवत्या । हे अश्विनौ तुम कर्म निमित्त विषे इन्द्र को पालन  
अर्थात् स्वकर्मक्षम करते हुए । कैसे हो तुम कि नमुचि संज्ञिक अ  
सुर (दैत्य) विषे स्थित सुराम (शोभन रमणीय) सोम को एकी हो वि  
विध पीते हुए । तदर्थे श्रुताविति हासः शत० १२० ३० ४० १० नमुचि-  
र्नामासुर इन्द्रस्य सरस्वतीत सविश्वस्तस्येन्द्रस्य वीर्यं सुरया सो  
मेन सह पीते ततः इन्द्रोऽश्विनौ सरस्वतीं चोवाचाह नमुचिना

पीतवीर्योऽस्मि ततोऽश्विनौ सरस्वती चापांफेनेन रूपं वज्रमिन्द्राय  
ददुः तेनेन्द्रो नमुचेः शिरश्चिच्छेद ततो लोहितमिश्रः ससुरः सो  
मस्तदुदरा दक्षिभ्यां पीत्वा शुद्ध इन्द्रायार्पित इति नमुचिनामा  
असुर इन्द्रका सखाया उसने विश्वस्त इन्द्रके वीर्य को सुर सोम  
सहित पीया ततः इन्द्रने अश्विनी कुमारों और सरस्वती से कहा  
कि मैं नमुचि करि पीतवीर्य हूं ततः अश्विनी कुमारों और सर  
स्वती ने अपांफेनेन १४०७१ रूप वज्र इन्द्रके अर्पण दिया तिससे  
इन्द्रने नमुचि का शिर छेदा ततः लोहितमिश्र सुरसहित सोमति  
सके उदर से अश्विनी कुमारों ने पीकर शुद्ध इन्द्रके अर्पण  
किया इति अर्थात् तिस अर्पण से इन्द्र को रक्षा करते हुए । पुनः  
कैसेही कि शोभन कर्म के पालक ॥ ३३ ॥

पुत्रमिव पितरौ ॥ पुत्रमिव पितरावश्विनो भेन्द्रावयुः का  
व्ये हृष्टं सनाभिः ॥ यत्सुरामं व्यपिवः शचीभिः सर  
स्वती त्वामघवन्नभिषाक ॥ ३४ ॥

इति सर्गहितायां मष्टमोनुवाकः ८

इति श्री शुक्लयजुषिमाध्यन्दिन शारवीयायां  
वाजसनेय सर्गहितायां दीर्घपाठे दशमोऽध्यायः

त्रिष्टुप् अश्वि सरस्वतीन्द्र देवत्या । हे इन्द्र दोनों अश्विनी कुमारों  
ने तू पालन किया किन्हीं से कि काव्यैः मन्त्रहृष्टाओं के संबंधि  
मन्त्रों से । तथा दंसनाभिः † कर्म करिके । दृष्टान्तमाह जैसे मा  
ता पिता पुत्र को पालते हैं तैसे अश्विनी कुमारों ने तुम्हें रक्षा किया



अश्विनी कुमारेणै इन्द्रको रक्षाकिया यह कैसे समझा गया तहां  
कहते हैं कि जिस कारण से हे इन्द्र तूने नमुचिवद्यादि कर्म किये  
शोभन रमणीय सोम को विशेष करि पीआ और हेमधवन्-इन्द्र  
जिस हेतु सरस्वती देवी ने तेरे किये सोमपान से और सरस्वती कृत तेरे  
सेवन से अश्विनी कुमारेणै ने तुम्हें रक्षा किया यह जान पड़ता है ॥३४॥

इति गिरिधरभाष्ये षष्ठोऽनुवाकः

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दनिवारयन्

पुमार्याश्चतुरेदेयाद्यज्ञपुरुषः सनातनः

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीशास्त्राध्येतृव्याघ्रपादान्वयविश्व  
मित्रपुराधिपश्रीमज्जयकिशोरदेववर्मात्मजरोक्मिणोयनृपतिगिरि  
प्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये राजसूयचरकसौत्र  
मणीवर्णेनो नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

इति सर्वानुक्रमणिभाष्ये गिरिप्रसादरचिते

वेदार्थप्रदीपे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

संहिता सारबहुला पदसंज्ञाभिराकुला

क्रमसंधिसमाकीर्णदुस्तरामन्त्रसागरः

संहितानयने सूर्यपदानिशशिनं पदम्।

क्रमोपिनयने सूक्ष्मं यत्तत्पदमनामयम्२

आदितः अनुवाकसंख्या ११४

पञ्चात्मकः स भगवान् द्विषडात्मको भूत्

पञ्चदशो शतसहस्रपरामितश्च ।

एकः समोप्य रिवल दोष समुज्जितोपि  
सर्वत्र पूर्ण गुण कोपि बहूप मोभूत् ॥१॥  
सर्वत्र पूर्ण गुणविग्रह आत्मतन्त्रो  
निश्चेतनात्मक शरीर गुणैश्च हीनः ।  
आनन्दमात्रकरपाद मुखो दुरादि  
सर्वत्र च त्रिविधभेदविवर्जितात्मा ॥२॥

इति श्री वेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये दशाध्यायी  
समाप्ति मगमत् ॥

आवणस्यासिते पक्षे सप्तम्यारविबासरे  
बसुनेत्राङ्गभूवर्षे दशाध्यायास्तदागमन्

अतः परमष्टभिरध्यायैरग्निमंत्रा उच्यन्ते

वेशमेति प्रसिद्धं गतेति प्राचीने विश्वामित्रपुरीय  
नवल दुर्गस्थ व्याघ्रपाद  
प्रकाशकाशमयत्रालये  
मुद्रितम्

ॐ शान्तिः

ॐ शान्तिः

ॐ शान्तिः

विक्रमब्दाः १५२८ शकाब्दाः १७४३ भाद्रकृष्ण ८ भौमवार शुभभवतु

## अथ संक्षेपतः सूचीपत्रम्

हरिः जेम् सूचीपत्रम्					
पृष्ठांक	पंक्त्यांक	विषय	पृष्ठांक	पंक्त्यांक	विषय
५१	३	अथ दर्शपूर्णमासमन्त्राः	२२६	२१	अथ षोडशधिषायमन्त्राः
१०४	७	ब्रह्मत्वम्	२५५	११	अथ सोमाभिषवयुक्तानां व
११६	१३	अथ याजमानम्			सतीवरीसंज्ञानामपांग्रहणं विधी
१२२	५	इति दर्शपूर्णमासेष्टिम	२६६	५	अथ प्रातःग्रहग्रहणमन्त्राः
		न्त्राः समाप्ताः	२८३	११	अथ माध्यन्दिनसवनग्रहाउच्य
	६	अतः परंपिण्डपितृयज्ञमन्त्राः	३०३	१७	अथ तृतीयसवनग्रहाउच्यते
१२६	६	अथाधानमन्त्राः	३१३	१	अथ समिष्टयजुर्मन्त्राः
१३१	१२	अथाग्निहोत्रमन्त्राः	३१८	७	इतः परमनूबन्ध्यायांगभि
१३३	१६	यजमानाग्निउपस्थानंवृ			ण्यां प्रापश्चितं कथ्यते
		हदुपस्थानम्	३२१	१२	अथ षोडशीमन्त्राः उच्यते
१४८	८	अथ क्षुजकोपस्थानम्	३२४	८	अथ द्वादशाहमन्त्राः
१४८	१२	प्रवस्यत् (आगत) उपस्थानं	३३२	७	अथ सत्रोत्थानं
१५२	८	अथ चानुर्मास्यमन्त्राः	३३४	८	अथ नैमित्तिकानि
१६५	२०	अथाग्निष्टोममन्त्राः	३४२	५	अथ वाजपेयः
१७५	१८	अतः परं षडौहमणमन्त्राः	३६१	४	अथ राजसूयः
१८८	१८	अथाग्निनयनमन्त्राः	३६४	१३	अथ चरकसौत्रमणीमन्त्राः
२१८	१	अथ उपरवमन्त्राः	३८८	१२	इति राजसूयः समाप्तः
२२३	३	अथोदुन्तरीमन्त्राः			इति सूचीपत्रम्

हरिःॐ

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

अथाग्निचयनमन्त्रास्तेषां प्रजापतिर्ऋषिः साध्याऋषयोवा

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्वहु रूपकम्  
स्वानन्दं दायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुम १

प्रथमचितिमन्त्राणां प्रजापतिर्ऋषिः

अ० १ युञ्जानः प्रथमम् ॥ युञ्जानः प्रथमम्मनस्तत्वाय सविताधि  
यैः ॥ अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या ॥ अध्याभरन् ॥ १ ॥  
श्रीवल्लभं विह्वलं च नत्वा तत्कृपयाधुना ॥  
प्रदीपेष्ट भिरध्यायै रग्निः प्रायेण वर्ण्यते १

एकादशमे अध्यायसे आरम्भ करि अष्टादशमे पर्यन्त अग्निचयन  
के मन्त्र तिन्हों का प्रजापति वा साध्य ऋषि ॥ सो अग्नि पञ्चचिति युक्त  
हि । प्रथमचिति मंत्रों का प्रजापति ऋषि है १ दूसरी के देवता २ तीस  
री के इन्द्र अग्नि विश्वकर्मा ३ चौथी के ऋषि ही ऋषि हैं ४ पांच  
मी का परमेशी ऋषि है ५ तथाच श्रुतिः प्रजापतिः प्रथमा  
चिति मपश्य दित्यादि शत० ६० २० ३० १००

ओंनमोयाज्ञवल्क्याय

सामादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके

समिदाध्यन्तोभूमीन्द्रध्यायइत्येते

एकादशतमोऽध्यायः त्रयोदशमें अध्याय पर्यन्त प्रथमचितिके मन्त्र  
तिन्हों का अर्थ है ऋषिः ॥ चयन करने की है इच्छा वोह यजमा  
न फाल्गुण कृष्ण प्रतिपदा विषे पैण मासेष्टी को करिकें पुरुष  
अश्व. गो. अवि. अज. का आलम्भन करि अजसै याग करिकें  
पांचो के घृत. कशिर प्रथमचिति विषे उपधानार्थ कहीं स्थापन क  
रि तिन्हों के कवन्धों और अज के शेष को मृद्युक्त तडागादि जल  
में डालै उखा और इष्टका के अर्थ मृदा और जल तहां से लावे  
ततः फाल्गुण कृष्णष्टमी में उखा संभरण करते हैं तिसके अर्थ  
आहवनीय दक्षिणाग्नी का उद्धार करि आहवनीय से पूर्वमें कि  
ये चतुष्कोण गर्त विषे ततः तडाम से मृत्पिण्ड लाकर भूमिके स  
म स्थापन करै. पिण्ड आहवनीय के बीच सच्छिद्रा वल्मीक मृ  
दा को रखै. आहवनीय से दक्षिणदेशमें अश्व. गर्दम. अज.  
आङ्मुखः पूर्वापर रीति करि मुञ्जरशना से बंधे स्थापन करिकें.  
आहवनीय के उत्तर में वैशाखी दुधारा वा कल्माषी हिरण्मयी अ  
भिस्थापन करै. ततः कर्माह का १६. २. ७. गार्हपत्य में घृतको  
संस्कार करि जुहू और सुवा को धोकर सुचि करि आठ बार लिये  
आज्य को आहवनीय में परिस्तरण समिदाधान पूर्वक संतत अ  
वच्छिन्न धारा से सुचि को ऊंची करि युज्जान इत्याद्य अष्टकण्ड

काओं से सांतत्य और आठ ऋचाओं के अन्तर्में स्वाहा का प्रयत्न अध्वर्यु होमें ॥ अथ प्रति कर्म दर्शिन इति युञ्जानः अष्टानां सवितापि ऋषिः देवोपि सविता आद्यानुष्टुप् । अथ मंत्रार्थः सविता सवके प्रेरक प्रजापति† ने चीयमान वह्निका संबंधि तेज पशुओं में प्रविष्ट निश्चय करि यद्वा सफल कर्मों का साधनभूत निश्चय करिके पशुशरीर एन्विता पृथिवी के सकाशसे अध्याहरण किया अर्थात् इष्टका करि अग्निको इकट्ठा किया । किम्भूतः कि प्रथम अग्न्या रम्भ में मनस्थापन किया किं कृत्वा कि बुद्धि इष्टकाविषय ज्ञानों का विस्तार करिके अर्थात् मनसा से पर्यालोचन करि बुद्धि विषे अवधारण करिके ॥ १॥

† सवितृ शब्देन श्रुतो प्रजापति रुक्तः प्रजापति वै युञ्जान इति शत० ६३१ १०

युक्तेन मनसा ॥ वयन्देवस्य सवितुः सवे ॥ स्वर्ग्याय शक्त्या ॥ २॥ गायत्री गायत्री शङ्कुमती † । प्रजापति की आज्ञा में वर्तमान हम यजमान इन्द्रियों से नियमित एकाग्र मनसा से स्वर्ग सायक कर्म के अर्थ अपनी सामर्थ्य पूर्वक प्रयत्न करते हैं इति शेषः ॥ २॥

† महीधरमते

युक्ताय सविता ॥ देवान्स्वर्ग्यं तोधिया दिवम् ॥ बृहज्योतिः करिष्यतः सविता प्रसुवातितान् ॥ ३॥

अनुष्टुप् । सविता तिन प्रसिद्ध देवताओं को अग्नि कर्म विषे संयोजन करि प्रेरता है । कैसे देवताओं को कि धिया बुद्धिवा अन्य कर्म करि प्रकाश करते हैं । पुनः कैसे सांको कि बृहज्ज्योतिः करिष्यतः षडे आदित्य लक्षणा को आत्मत्व से संस्कार करते हैं । कैसे सविता कि प्रेरिता अन्य कर्म से स्वर्ग को गये देवताओं को अग्नि कर्म विषे सविता प्रेरण करनेवाला प्रजापति तिन इन्द्रिय विशेष देवता-

ओं को विषयों से रोकि कर प्रकर्षण अग्नि कर्म विषे प्रेरण करता है  
कैसें को कि स्वर्ग प्राप्ति के अर्थ उद्यत हैं तथा बृहत् चीयमान अग्नि  
के तेज के तत्तत् इष्ट कादि विषय प्रज्ञा करि द्योतमान करने को उद्यत ३

युजते मनः॥ युजते मनः॥ उत युजते धियो विप्रा विप्रस्य  
बृहतो विपश्चितः॥ विहोवा दधे वयुना विदेकः॥ इन्मही दे  
वस्य सवितुः परिष्टुनिः॥४॥

जगती व्याख्यातापि १.१४ विशेषतो व्याख्यायते। विप्रः (विशेषेण द  
क्षिणा अन्न दान करि पुण्य करने वाले) ब्राह्मण-यजमान के संबंधि  
विप्राः (ऋत्विजाः) प्रथम स्वकीय मन को विषयों से निवर्त करि समा  
हित करते हैं। और धियः (इष्ट कादि विषय ज्ञानों) का सम्यादन कर  
ते हैं। कैसे विप्र के कि अग्नि चयन के उद्योग करि अभिबृद्ध तथा  
अभिज्ञ। कैसे हैं विप्र कि होम शील अर्थात् कर्म विषे आलस्य रहि  
त हैं। ननु ये ऋत्विग्यजमान कहां से आए तत्राह कि एक एव सवि  
ता इन सबों को निर्माण करता हुआ कैसे कि विपश्चित् ऋत्विग्य  
जमानों के अभिप्राय का जानने वाला। कैसे एक ही इन सबों को  
करता हुआ सो कहते हैं कियतः सविता देवता की सब वेदों में श्रूय-  
माणा महती स्तुति अर्थात् सविता की अचिन्त्य महिमा है ॥४॥

युजे वाम्॥ युजे वाम्ब्रह्म पूर्यन्नमोभिर्विश्लोकः॥ एतु पथ्ये  
वसूरे॥ श्रुएवन्तु विधेः॥ अमृतस्य पुत्राः॥ आपे धामानि दि  
व्यानि तस्थुः॥५॥

त्रिष्टुप्। पत्नी यजमानों वामिति पदेनोच्येते। हे पत्नी यजमानौ तुम्हा

रे अर्थ अन्न करि इसहुत घृत सहित पुरातन महर्षियों करि अन्न  
 स्थित ब्रह्म (परिवृद्ध, अग्निचयनारव्यकर्म) को मैं सम्पादन करता हूँ  
 यद्वा तुम्हारे अर्थ पुरातन ब्राह्मण जाति को अन्न करि तर्पण कर  
 ता हूँ। किमर्थमिति चेत् कि पण्डित यजमान की कीर्ति दोनों लोकों  
 में व्याप्त हो तत्र दृष्टान्तः पथ्याः इव यज्ञ मार्ग प्रवृत्ता आहुति जे से  
 दोनों लोकों को व्याप्त होती है ऐसे यजमान की कीर्ति उभय लोक सं  
 चारी हो इति भावः। किंच मरण धर्म रहित प्रजापति के पुत्र सब देव  
 ता यजमान की कीर्ति को सुनों। कौन कि जे दिविके स्थानों में बैठे  
 हैं अर्थात् ते सब इस की कीर्ति को सुनों ॥५॥

यस्य प्रयाणम् ॥ यस्य प्रयाणमन्वन्व्यः इद्युर्देवा देवस्य  
 महिमानमोजसा ॥ यः पार्थिवानि विमुमेसः एते शूरजो  
 सि देवः सविता महित्वना ॥६॥

जगती। अन्य देवता जिस सविता की प्रवृत्ति को अनुवर्तते हुए और  
 अन्य देवता जिस देव के महत्त्व को बल करिके अनुवर्तते हुए और जि  
 स सविता ने रजसि + पृथिवी प्रभृति लोकों को जाना सो देव अपने म  
 हा भाग्य से एतशः एतत् जगत् त्रय स्थावर जंगम को प्राण भाव करि  
 व्याप्त होता है। यद्वा एतश इत्यश्वनाम निघं० १०१४० अश्व रूप से सब  
 जगत को बना करि स्थित है उषा वा अश्वस्य मेध्यस्य शिर इति श  
 त्० १०६०४०१ सूर्य दश्व वसवो निरतष्टेति वक्ष्यमाणत्वाच्च २५०१३०॥

देव सवितः ॥ देव सवितुः प्रसुव यज्ञम् प्रसुव यज्ञपतिम्  
 य ॥ दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वीच

इति निरु० ४०१५  
 + लोका रजस्युच्यन्तः इति निरु० ४०१५



नः स्वदतु ॥७॥

त्रिष्टुप् व्याख्यातापि ४.१ कथ्यन्ते । हे देव सवितः यज्ञ को प्रकर्ष करि  
प्रेरि और यज्ञ पति यज्ञमान को सौभाग्य के अर्थ प्रेरि । किंच स्वर्गस्थ  
केतपूः (केत परिचिति विषे वर्तमान ज्ञान को शोधन करने वाला)  
ऐसा गंधर्वः (लाचा को धारण करने वाला) सविता हमारे केत (चिति-  
वर्त्तिज्ञान) को ब्रह्म विवर्त्तन से शोधे । वाणी का पति सविता हमारी वा  
णी को स्वदतु स्वादन करे अर्थात् हमारी कही वाणी तिसे रुचे ॥७॥

इमन्नः ॥ इमन्नो देव सवितर्यज्ञम्यग्य देवा व्युर्धं सखिविदं  
र्धं सत्राजितं न्यनजितं ॥ स्वर्जितं मू ॥ ऋचास्तोमं ॥ समं  
र्धं यगायत्रेण रथन्तरम्बुहं ज्ञायत्रवर्त्तनस्वाहा ॥ ८ ॥ +

अवसानपर्यन्तं यजुः महीधर मते तस्य प्राजापत्या जगती छन्दः । हे  
सवितर्देव हमारे इस यज्ञ को प्राप्त हो । कैसा है यज्ञ कि देवताओं का  
तर्पण करते हैं जिसमें । तथा सखिविदं सखायं- अपने निष्पादक  
यज्ञमान को जानता वा ऋत्विजों को प्राप्त होता । सत्राजित द्वादशा  
हादि सत्रों को बशी करता है + यद्वा सत्राशब्दः सत्यवाची सत्य  
(ब्रह्म) को संपादन करता है । गवादि फल रूपधन को सम्पादन कर  
ता है । स्वर्ग को फलत्व करि सम्पादन करता है ॥ किञ्च ऋचास्तोम  
म् गायत्री अवसान रहिता यजुरन्ता स्वाहेति यजुः । हे सवितः ऋ  
चा-स्तोत्र हेतु सामाधारभूतया ऋचा सहित स्त्रिद्विदिक स्तोम को  
सम्बुद्ध करि गायत्र साम सहित रथन्तर साम और बृहत्साम को बदा  
कैसा है बृहत् कि गायत्र साम ही है मार्ग जिस का अर्थात् बृहत् साम

+ गानि हि नीयमानमग्निमप्यश्नते

का गायत्र साम मार्गभूत है ॥८॥

देवस्यत्वा ॥ सवितुः प्रसवेऽश्विनो बौह्रम्या मूषणो हस्ता-  
म्याम् ॥ आदे गायत्रेण छन्द साङ्गिरस्वत्युथिव्याः स  
धस्था दग्नि स्युरीष्य मङ्गिरस्व दामर त्रैष्टुभेन छन्द सा  
ङ्गिरस्वत् ॥९॥†

का० १६०२० देवस्यत्वेति कण्डिका इयात्मक मन्त्रकरि वैणवी  
अभि को ले हस्त आधायेति ऋचा क० ११० से अभि को अभिम  
न्त्रण करे ॥ दे-मूषा-वृ-सविता दे-आ-तयजुः † अभिर्देव हे-अ  
भे सविता देवता का त्रेण अश्विनी कुमारों के संबंधी मणिबन्धपर्य  
न्ता बाहुओं पूषण संबंधी अंगुलियों सहित साधनभूत हाथों सहा  
यभूत गायत्री छन्द से युक्त हो तुम्हें ग्रहण करता हूँ तत्र दृष्टान्तः जैसे  
अङ्गिरा के वंश के ऋषि तुम्हें पहिले ग्रहण करते हुए हे अभितूग्र  
हण की हुई पृथिवी के उत्सङ्ग से अग्निको ला । त्रिष्टुप् छन्द से अंगि  
रस जैसे अग्निको आहरण करता हूँ आ पुनः अङ्गिरस्वत् इति दृ  
ष्टान्तोऽर्थाति शायार्थः । कैसे अग्निको पुरीष्यम् † यशुओं के अ  
र्थहित यशव्य यद्वा पुरीष शब्देन पांशुरूपा शुक्ला मृदुच्यते त  
दर्हतीति पुरीष्य अग्नि है क्योंकि मृदा को ले उखा बनाय तिस  
में अग्निको स्थापन करते हैं इस हेतु मृदा और अग्निके अभे  
दोपचारण से मृदा हरण एव अन्या हरण है इस अभिप्राय से  
पुरीष्य अग्निको आहरण करे यह कहा गया और यही उपचार  
अग्निचयन प्रकरण में सर्वत्र बर्तते है ॥९॥

† महीधर मनेआ  
वदेअ अभिरसि  
१० मिलित्वा त्वा  
निधु तिच्छन्दः

† पुरीषो वै पुरी  
षमिति शत० ६  
३१३०

† दे-मू-अ-आ-त-इ-॥९॥

अम्बिरसि ॥ अम्बिरसि नार्ये सित्वया वयमग्निर्दश के  
 मुखनि तुर्धं सधस्थः आ ॥ जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥ १० ॥  
 यजुः । तू अम्बि उखा को निर्माण करने वाली मृत्वनन हेतु भूतका  
 ष्टविशेष है और नारी । स्त्रीरूपा है यद्वा नहीं अरि बैरी जिसका  
 वोह है अर्थात् खनन काल में अस्मादि कों करि तेरा कुण्ठीभाव  
 नहीं होता किंच तुरुसे युक्त हम पृथिवी के उत्सङ्ग में वर्तमान अ  
 ग्नि को जगत छंदसे खनने को समर्थ होंवे अङ्गिरस्वत् इति ह  
 यन्तः पूर्ववत् ॥ १० ॥

हस्तः आधाय ॥ सविता विम्बु दम्बिर्दं हिरण्ययीम् ॥ अ  
 ग्नेज्ज्योतिर्निचाप्य पृथिव्याः अध्या भरदानु मेन छन्द  
 साङ्गिरस्वत् ॥ ११ ॥ +

अनुष्टुब्यजुरन्ता आनुष्टुभेन त्यादियजुः तस्य महीधरमते यजुष  
 स्त्रिष्टुप् छन्दः । अम्बिदेवत्या । सविता प्रेरक प्रजापति हस्त विषेस्व  
 णेमयी अम्बि कों लेकर तिसके धारण करते ही अग्नि संबंधी ज्यो  
 तिका निश्चय करि देखि भूमिके सकाश से अनुष्टुप् छन्द करि आ  
 हरण करता हू आ अङ्गिरस्वदिति पूर्ववत् ॥ ११ ॥

अ० २ प्रतूर्तम्वजिन् ॥ प्रतूर्तम्वजिन्ना द्रव वरिष्ठा मनु सन्वतम् ॥  
 दिवितेजन्म परममन्तरिक्षे तव नाभिः पृथिव्या मधि  
 योनिरित् ॥ १२ ॥

का० १६.२.४ प्रतूर्त युज्जायां योगे-योग इति तीन ऋचाओं से  
 अश्व गर्दभ अजः को अम्बि हाथ में लिये प्रति मन्त्र करि अम्बि

मन्त्राणकरै॥ अश्वदेवत्या आस्तारपंक्तिः नाभानेदिष्टदृष्टा। हेवाजिन् हे  
 प्रगामिन् अश्ववरिष्ठा। उत्कृष्टा सम्बतू भूमिको लक्षकरिणीश्रुता।  
 अनेसै तुरु अश्वका द्युलोकविषे परम उत्कृष्ट जन्म आदित्य रूप  
 करि होगा यद्वा तेरा जन्मदिविमें रोहितादि देवाश्व रूप करि प्रसिद्ध।  
 अन्तरिक्षमें तेरा नाभि (उदर) यद्वा नियुन्नामक वायुके अश्व अन्त  
 रिक्षमें चलते हैं तिसरूपसे इसका अन्तरिक्षवर्तित्व नाभि शब्द  
 करि प्रकृष्ट शरीर उपलक्षित है। पृथिवीके ऊपर तेरा स्थान  
 न इत एव (पादों एव) भूमि विषे तेरा निवास स्थान प्रत्यक्ष  
 दीखता है। विराडू पेणाश्वः स्तूयते एवं महिमा तूणी प्र  
 इत्यर्थः ॥१२॥

मृतवनन  
 योग्याभूमिः  
 सम्बतू सो व  
 पाषाणोद-  
 भावेनातिप्र  
 रास लाति  
 इत्युच्यते

युञ्जाथाथं रासंभमयुवमस्मिन्यामेवृषएवसू  
 म्भरन्तमस्ययुम् ॥१३॥

गर्दभ देवत्या गायत्री कुश्रि (कुस्रि) दृष्टा। गर्दभं मन्त्रयते। अश्वदेव  
 जमाना बुच्येते। सीचने वाला गर्दभ वृषण्वसू (वसुधनावर्षनेवाला)  
 यद्वा यागनिष्पादन द्वारा वृष फलोंसे वर्षने वसुधन के दिनोंका  
 संबोधन। हे वृषण्वसू (अध्वर्यु यजमान औवा यजमान दम्पती) त  
 म गर्दभ को बांधो। कहां कि अस्मिन्या मे इस अग्नि कर्ममें  
 वा यामो मृद्वहन रूप नियम विशेष तिस निमित्त भूत में केता  
 गर्दभ कि अग्नि भरने (लेचलने) को समर्थ हमारा हित चाहता है ॥१३॥  
 योगे योगे तव स्तरम् ॥ वाजे वाजे हवा महे ॥ मवा  
 मृतये ॥१४॥

† युज्यतेऽनुशीयतऽइति योगकर्म  
† तव इति वत्सनाम निघ० २० ६०

अज देवत्या गायत्री सुनः शेषदृष्टा। अजं मन्त्रयते। परस्परं सख्यको प्रा  
प्तं हम् ऋत्विग्यजमान इन्द्रियवन्तः (वीर्यवन्तः) वा इन्द्रियं प्रदं अज  
को रक्षा के अर्थ बुलाते हैं। कसति कि वाजे-वाजे तिन-तिन अन्नो अ  
र्यात् मनुष्य और देवताओं के देने में वा तिन-तिन अन्न प्राप्ति निमि  
त्त को। कैसा है अज कि योगे-योगे † तव स्तरं † तिन-तिन कर्मों में  
उत्साहवन्तः ॥ १४ ॥

प्रतूर्वन्नेहि ॥ प्रतूर्वन्नेह्यवक्त्रा मुन्नशस्ती रुद्रस्य गणं य-  
त्यम्मयो भूरेहि ॥ उर्वन्तरिक्षं वीहि स्वस्तिगव्यतिरभया  
निकृण्वन्पूषासयुजासुह ॥ १५ ॥ †

का० १६० २० १०० प्रतूर्वन् उरु स्वस्ति प्रतिमंत्र से स्पर्श करता अश्वदि  
कों की भय को देख प्राच चलै ॥ विण्ड रूपा त्रिष्टुप् यजुर्मध्या उर्वन्त  
रिक्षं वीहीत्येतावद्युजुः। अस्याः पूर्वार्धस्याश्वो देवता। हे अश्वतू  
षा त्रुओं को मारता ॥ शत्रुओं से की हर्ष अपकीर्ति का निवारण  
करता। अपने में कौन गुण यह कि हमारे सुख विचारने से रुद्र (कूडर  
देवता) के गणपतित्व को सब ओड़ी से प्राप्त हो अत्रा गमने गणप  
तित्व को लाभ करेगा इति भावः ॥ उर्वन्तरिक्षम् यजुः सहितोत्तरा  
र्धस्य रासभोत्क्रमणे विनियोगः। हे गर्दभ ऋत्विग्यजमानों की  
व्याघ्रादिकों से भय को परिहार करता समान योगिनी पूषा † (पु  
थिवी) के साथ विस्तीर्ण अन्तरिक्ष को विशेष करि प्राप्त हो। कैसा  
है तू कि विनाश रहित मार्ग है जिसका अर्थात् भयवर्जित प्रभूतयव  
भोदक मार्ग होकर आया। नहीं एक मार्ग को प्राप्त होता इस न्याय से पू

षा के साथ यह युक्त है ॥१५॥

पृथिव्याऽस्य स्यात् ॥ पृथिव्याः सधस्यादग्निं स्युरीष्यमङ्गि  
रुस्वदाभं रग्निं पुरीष्यमङ्गि रुस्वदच्छे सोग्निं स्युरीष्यमङ्गि  
रुस्वद्विरिष्यामः ॥१६॥ + वे-रा.अ.०.अ-मः ॥ इ.उ.० ॥१६॥

अजोत्क्रमणे विनियोगः । आर्षी गा० आग्नेयी । हे अभ्रे पृथिवी के  
सहस्थान से पुरीष्य (पशव्य) अग्नि को अङ्गिरस इव आहरण क  
रता हुआ ॥ का० १६.३.१२. तीनों अग्नि-ओं के दीप्यमान होते ब्रह्मा  
यजमान. अध्वर्यु चतुष्कोण गर्त विषे स्थित । मृत्तिका पिण्ड अति ग  
मन करें अश्व. गर्दभ. अज. भी गमन करें ॥ या-ज.० । पशव्य अग्नि  
को अङ्गिरस जैसे हम अभिमुख चलते हैं ॥ का० १६.२.३. देवपितृ  
मनुष्यों का निष्प्रयोजन अनद्धा पुरुषति से देखें ॥ आग्नेयी आसु  
अ० । पशव्य अग्नि को जैसे अङ्गिरस हम सम्पादन करते हैं ॥१६॥

अन्वग्निः ॥ अन्वग्नि रुष सामग्रं मख्यदन्वहानि प्रथमो  
जातवेदाः ॥ अनु सूर्यस्य पुरुत्रा च रश्मीननु द्यावा पृथि  
वीऽऽततन्त्य ॥ १७ ॥

का० १६.२.१४. बल्मीक वपा, बल्मीक के ऊँचावदा हुआ अवयव जैकि  
पिण्ड आहवनीय के बीच में स्थापन किया है तिसे ले तिसी स्थान स्थि  
त हो तिस छिद्र से पिण्ड को देखें ॥ अग्नि देवत्या त्रिष्टुप् पुरोध सदृश  
अग्निः उषः कालों के अग्र को अन्वख्यत् अनुक्रमेण प्रकाश क  
रता हुआ । जात जात को जानता वाजनाता यह अग्नि मुख्य हो अ  
न्वरयत् किंच सूर्य की रश्मि-ओं को बहुधा अन्वरयत् । किंच द्यावा पृथि

वी दोंनो को भी अनुक्रमेण सर्वतो व्याप्तहुआ। सर्वप्रकाशकलोक-  
स्रष्टा जो अग्नि तिसें देखें इति शेषः॥ १७॥

आगत्य वाजी॥ आगत्य वाज्यध्वान् ठं सर्वा मृधो विधू-  
नुते॥ अग्नि ठं सधस्ये महति चक्षुषानि चि कीषते॥ १८॥  
का० १६. २. १६. मृत्पिण्ड के पास में खड़े अश्व को अभिमन्त्रण करै।  
अश्वदेवत्यानुष्टुभ्यो भूदृष्टा। वेगवान यह अश्व मार्ग को प्राप्त हो  
सब संग्रामों (पापीश्रमों) को विविध कपाता (अपनय करता) है ततः  
विगत श्रम हो उत्कृष्ट सहस्रान पृथिवी में वर्तमान अग्नि का हेतु  
भूत मृदा को नेत्रों करि देखता है॥ १८॥

आक्रम्य वाजिन्॥ आक्रम्य वाजिन्यृथिवी मुग्निमिच्छरु-  
चात्वम्॥ भूम्या वृत्वाय नो ब्रूहियत्। खने मतम्वय-  
म्॥ १९॥

का० १६. १. १७. मृत्पिण्ड के ऊपर अश्व के सब्य पद को स्थापन करै॥  
अश्वदेवत्यानुष्टुप्। हे वाजिन् अश्व भूमि को पाद स्पर्श से परीक्षा  
करि दीप्ति करि कै तू अग्नि हेतु मृदा को निश्चय करि। किंच भूमि  
प्रदेश को स्पर्श करि कै हमें तू कहि कि यह प्रदेश अग्नि हेतु मृद्यो-  
ग्य है कि जिस प्रदेश से हम तिस अग्नि को खनन द्वारा सम्पादन करें  
यद्यपि जिस प्रदेश से तैसी मृदा प्राप्त हो तिस प्रदेश को खो दें॥ १९॥

द्यौस्तै॥ पृष्ठमृथिवी सधस्ये मात्मान्तरिक्षं समुद्रो योनिः॥  
विरभ्या यचक्षुषा त्वमभितिष्ठ पृतन्यतः॥ २०॥

का० १६. २. १८. पिण्डोपरि पदधारण करते अश्व को स्पर्श करता

अध्वर्यु दक्षिण कर को अश्व की पीठ पर रख मन्त्र पढ़े ॥ वहती अश्व दे० ॥ हे अश्व द्यौ लोक तेरा पीठ भूलोक तेरे पद अन्तरिक्ष लोक तेरा आत्मा (शरीरान्तर्बर्ती जीवात्मा) समुद्र (उदक तेरा उत्पत्ति स्थान) अप्सु योनिर्वा ॥ अश्व इति श्रुतेः ॥ एवं स्तूयमान तूनेत्रों से उखा योग्य मृदा को देखि सज्जाम करने को इच्छा करते मृदा में गूढ स्थित राक्षसादिकों का पाद से विनाश करि ॥ २० ॥

उत्क्राम ॥ महते सौभगा यास्मा दास्थानाद्भूवि गोदावाजि न् ॥ वयथं स्याम सुमती पृथिव्याः अग्निं ह्वनेन्त उपस्थे ॥ अस्याः ॥ २१ ॥

का० १६० २१८० मृत्पिण्ड से अश्व को उतारें ॥ विराडश्व देवत्या पंक्तिर्विराड्बुध्पदा ॥ हे वाजिन् महाभाग्याभि वृद्धि के अर्थ इस खनन प्रदेश से जहां तू खड़ा है तहां से उतारते हैं ॥ कैसे है तू किधन का देने वाला तेरे उत्क्रान्त से हम पृथिवी विषे सानुग्रह चित्त हों वें ॥ कैसे हैं हम कि इस पृथिवी के उपरि भाग में अग्नि के अर्थ मृत्पिण्ड खनने का उद्योग करते हैं ॥ २१ ॥

उदक्रमीत् ॥ उदक्रमीद्भूविणो दावाज्यर्वाकः सुलोकं सुकृतमृथिव्याम् ॥ ततः खनेम सुप्रतीकमग्निं स्वोरु हाणाः अधिनाकं मुत्तमम् ॥ २२ ॥

का० १६० २१८० पिण्ड से उतारें अश्व को अभिमंत्रण करें ॥ आपाश्वी विष्टुप् ॥ अर्वाः (अरणशील चञ्चल) धन का दाता अश्व जिस प्रदेश से उतरा पृथिवी में तिसे शोभन लोक (प्रदेश) पुण्यवान करता हुआ ॥



ततः प्रदेशं सै हम् अग्निहेतु मृदा को स्वनन करते हैं कैसे अग्नि को कि शोभन है मुख जिस का कैसे हैं हम कि स्वर्ग की अधिरोहण का मनारखनेवाले एतत्कर्म कुर्म इति भावः + कैसे हैं स्वर्ग कि नहीं है दुःख जहां तथा उक्तं ॥ २२ ॥

आत्वा ॥ आत्वा जिघर्षि मनसा घृतेन प्रतिक्षियन्तं सुव नानि विष्वा ॥ पृथुन्तिरश्वा वयसा वृहन्तं व्यचिष्टुमन्त्रै र भसन्दृशानम् ॥ २३ ॥

+ अक्षीसुपरिभावे तेभ्योर्वा

का० १६.२.२१. आज्य को संस्कार करि पिण्ड के समीपमें वैष्टिमुत्पि ण्डो परिस्थित अश्वपद मुद्रा में आत्वा २३ आविश्चतः २४ इन व्य तिषक्त ऋत्वा ओं से सुवा करि द्वे आहुति होमें व्यतिषङ्गश्चैवम् आत्वा जिघर्षि इस पहिली के पूर्वार्ध मर्य श्री इस उत्तरा के उत्तरार्ध को पठि पहिली आहुति और आविश्चतः इस उत्तरा के पूर्वार्ध पृथुंतिरश्वा पहिली के उत्तरार्ध को पठि कर दूसरी आहुति ॥ एतस्म दृष्टे आग्नेय्यो द्वे त्रिष्टुभौ हे अग्ने अद्वायुक्त चित्त से घृत करि तुम्हें सब ओड़ी से सींचता वादीपन करता हूं। कैसे तुम्हें कि सब भूतों प्रति एक निवास करने वाले। तिरश्वा पृथुतिरश्वा रेंचने ज्योति करि विस्तीर्ण वयसा वृहन्तं धूम करि महान्त + यद्वातिर्यक् प्रमाण करि कै विस्तृत इति बहु देश व्याप्तिः वय उपलक्षित काल करि वृ हन्त इति बहु काल व्याप्तिः अर्थात् देश कालानवच्छिन्न के। तथा व्य चिष्टं अति शयेन अवकाशवान को। अन्त्रै रभसं घृतादि अन्नो से उत्साह सहित को अनेक अन्नो के हुतने से इसकी शक्तिय

+ इतो वाऽअपमूर्ध्वरेतः सिञ्चति धूर्षणं समुत्रावृष्टिर्भवतीति श्रुतेः

नहीं होती इति भावः । तथा दर्शनीय वा दृश्यमान, अन्य देवता नहीं दीखते यह दीखता है इति भावः ॥ २३ ॥

आविश्वतः ॥ प्रत्यञ्च जिघर्म्य रक्षसा मनसा तज्जुवेत ॥

मर्यश्री स्पृहयद्दणोऽग्निर्नाभिमृशेत्तन्वाजर्भुराणः ॥ २४ ॥

हम अग्नि को सब ओड़ी से सींचते और दीपन करते हैं कैसे को कि सर्वतः आत्मतया प्रतीयमान । वोह अग्नि कौर्यरहित अक्रुध्यमान चित्त से तिस घृत को सेवन करे । कैसा है अग्नि मनुष्यों से सेवित मनुष्यों करि आश्रयणीय । यजमानों करि स्पृहणीय रूप जिस्का । दाहक होने से अभिमर्शन न करने योग्य । ईदृशी तन्वा ज्वालालक्षण शरीर करि जृम्भत । ईदृश अग्नि को सब ओड़ी से सींचते हैं इतियोज्यम् ॥ २४ ॥

परिवाजपतिः ॥ कविरग्निर्हव्यान्यकमीत् ॥ दधद्रत्नानि दाशुषे ॥ २५ ॥

का० १६० २० २२० अभिसे तीनि वार मृत्पिण्ड को परिलेखन करै पर्या वहिः-वहिः यथा तथा । परिवाजपति इससे प्रथम लिखे परि त्वेति तिससे बाहर दूसरे त्वमग्नः इति तिससे बाहर तीसरे ॥ आग्नेयी गायत्री सोमक दृष्टा । यह अग्नि अनेक देवताओं के हवियों का भक्षण करता हुआ । कीदृशोऽग्निः कि अन्न का पति पालन करने वाला कान्त दर्शी हवि देने वाले यजमान के अर्थ रमणीय धनों का दान करके हवियों का भक्षण करता हुआ ॥ २५ ॥

परित्वाभनिपुरम्बुयम्विप्रैः सहस्यधीमहि ॥ धृषद्वर्णं हि

वे-दिवेहन्तारम्भङ्गुरवताम् ॥ २६ ॥

आग्नेय्यनुष्टुप् पायुदृष्टा। हे सहस्र (वलेन मध्यमान) हे अग्ने हम तु  
मैं सर्वतः ध्यान करते प्रसारते। हैं। कैसे तुम्हें कि पुरी रूप से स्थित  
यद्वा पालन करने वाला। तथा मेधावी वा ब्राह्मण जाति। प्रगल्भ वर्ण  
असह्य रूप। दिवे-दिवे- प्रतिदिन भङ्गुरावताम् हन्तार भङ्गुरं भ  
जनीय पापवन्त विघातक राक्षसादि कों यद्वा अनवस्थित चित्त व  
त्ति जिन्हों की तिन्हों के विनाश करने वाले को ॥ २६ ॥

त्वमग्ने। त्वमग्ने द्युभिस्त्वमाशुशुक्षणिस्त्वमद्भ्यस्त्वम  
श्मनस्पति ॥ त्वमग्ने भ्यस्त्वमोषधीभ्यस्त्वनृणां नृप  
ते जायसे शुचिः ॥ २७ ॥

आग्नेयी जगती- गृत्समदृष्टा। हे नृपते (नरों- मनुष्यों के पालक) हे  
अग्ने तू द्युभिर्जायसे निमित्तभूत दिनो से मध्यमान उत्पन्न होता अ  
र्थात् प्रतिदिन मंथा जाता है यद्वा स्वर्ग की निमित्तभूत तिन-तिन  
याग शालाओं में जायसे। तू आर्द्रभूमि को शीघ्र ही सुखाने वाला  
यद्वा क्षिप्र दीप्ति करि कै तम का नाश करता वासनोति सम्भजते आ  
शुशुक्षणिः। तू वर्षधारों से विद्युदात्मनी जायते तू पाषाण के ऊ  
पर दूसरे पाषाण के संघट्टन से जायसे तू अरणि काष्ठों से जायसे  
तू देवों के घर्षण से नृणां (मनुष्यों- अग्नि होत्रियों के घरों में उ  
त्पन्न होता- पुत्रोद्घोष सन्तस पुनः पिता भवतीति श्रुतेः। कैसा है तू  
कि शुचिः शुद्धि का हेतु- पुनः वाकेन मृन्मयमिति मनु० अध्या०  
५० श्लो० ११२० ॥ २७ ॥

१० आग्नेय्यः समुत्पन्नः एषां नृणां सन्निभः  
११ आग्नेय्यः दिव्यः पुराणः राक्षकत्वान्

अ.३ देवस्यत्वा॥ सवितुः प्रसवेऽग्निर्बाहुभ्याम्पूष्णो हस्ताभ्याम्॥ पृथिव्याः सुधस्यादग्निर्मुनीष्यमङ्गिरस्वत्स्वनामि॥ ज्योतिष्मन्तन्वाग्ने सुप्रतीकमजस्त्रेणभानुनादीद्यतम्॥ शिवम्पुजाभ्यो हिं सन्तमृथिव्याः सुधस्यादग्निः सुरीष्यमङ्गिरस्वत्स्वनामः॥२८॥†

का.०१६.२.२२. अभि करिके कण्डिका से पिण्ड को खनें॥ देवस्यत्वा प्रा-ह व्याख्याता १.१० पृथिव्याः आग्नेयं यजुः महीधरमतेत्यष्टि। में पृथिवी के उपरि प्रदेश से पुरीष्य पशव्य-अग्नि को अङ्गिरस-इ व खनन करता हूं कैसे अग्नि कि ज्वाला युक्त को। हे अग्ने ऐसे तुम्हें पृथिवी के सह स्थान से अङ्गिरस-इ व हम खनन करते हैं। कैसे को कि सुमुख को। अजस्त्रेण-अनुपक्षीणनिरन्तरवर्तमानरश्मि करि दीप्यमान को। प्रजोपकारार्थं शान्त अत एव हिंसां न करने वाले को पुनरुक्तिरादरार्थी॥२८॥

अपामृष्टम्॥ अपामृष्टमसियोनिरुग्नेः समुद्रमभितः पिन्वमानम्॥ वर्द्धमानो महा रं॥ आचपुष्करेदिवो मा त्रयावरिणा प्रयस्व॥२९॥

का.०१६.२.२४. मृत्पिण्डके उत्तरभागविषे कृष्णा जिनको प्रागग्नीव उत्तर लोम विच्छाकर तहां अपां पृष्टमिति पादत्रयात्मक मंत्र से कमलिनी पात्र को विछावें॥ पुष्करपर्णदेवत्या स्वरादपङ्क्तिः। हे पुष्करपर्णतृजलों के ऊपर अवस्थानसे पृष्ट है अग्न्यर्थे पिण्डका योनिः कारण है समुद्रमभितः उदक का परितः प्रीति करने वाला यद्वा सींचनेवा

+ लिङ्गव्ययः

ले समुद्र की बद्ध मान होते महत्प्रभूत हो इति शेषः। और जल में स  
व ओड़ी से बहरि यद्वा पुष्करविषे समन्ताम् महत्प्रभूत होते तू वृ  
द्धियुक्त है ॥ का० १६०२०२४० दिवोमात्रया इस पाद से पुष्करपर्ण की वि  
पुल करै ॥ हे पुष्करपर्ण दु लोक के परिमाण उरुत्व से तू विस्तृत हो ॥ ३० ॥

शर्मच ॥ शर्मचस्थो वर्मचस्थो छिद्रे बहुलेऽउभे ॥ व्यचस्व  
ती सम्बसाथाम्भृतमग्निम्युरीष्यम् ॥ ३० ॥

का० १६०२०२५० दो ऋचाओं से कृष्णाजिन पुष्करपर्ण का साथ ही स्पर्श  
करै ॥ कृष्णाजिन पुष्करपर्ण देवत्ये द्वे अनुष्टुभौ। हे कृष्णाजिन पुष्क  
रपर्णे उभे दोनों तुम अग्निके सुख कारिणी अपि हौ कवचवद्रशि  
के अपि हौ चो समुच्चये। कैसे हौ तुम कि छिद्र रहिते सकले विस्ती  
र्ण अवकाशवती। तथाविधे तुम पुरीष्य (पशव्य अग्नि) को आछा  
दन करै और आछादन करिके अग्नि को धारण करै ॥ ३० ॥

सम्बसाथाम् ॥ सम्बसाथाथं स्वर्विदा समीचीऽउरसात्म  
ना ॥ अग्निमन्तर्भेरिष्यन्ती ज्योतिष्मन्तमजस्रमित् ॥ ३१ ॥

हे कृष्णाजिन पुष्करपर्णे निरन्तरमेव अग्निको भीतर में धारण  
करने वाले तुम उरुरूप अपने शरीर से अग्निको भले प्रकार आ  
छादन करै कैसे हौ तुम कि स्वर्वित् ज्ञाते स्वर्विदो यज्ञ सूर्य देवाह वा  
ची स्वः शब्दः स्वर्गलाभ साधने इत्यर्थः समीची एकचित् ॥ ३१ ॥

पुरीष्योसि ॥ विश्वभेराऽअथर्वीत्वा प्रथमो निरमन्यदग्ने ॥  
त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वी निरमन्यत ॥ मूर्ध्नी विश्वस्य वा  
घतः ॥ ३२ ॥ पु-ग्ने। अ० त्वा-तः। इ० ॥ ३२ ॥

का० १६.२.२६.पिण्ड को स्पर्शकरै ॥ आर्षीउ० + अग्निदेवत्या । हे + महीध. मंत  
अग्ने तू पशव्य है सब जगत को धारण करता वा पुष्ट करता है अ + अतिहायसी  
ग्ने हम लोगों से पूर्वभावी अथर्वोख्य ऋषिः वा प्राण तुमै निःशेष  
ए मथताहुआ ॥ का० १६.२.२७.३.१. दक्षिण से अभि को रखिके  
दोनों हाथों से सब पिण्ड को त्वामग्न इतिषट् ऋचा ओं करि एक  
वार लेके पुष्करपर्णविषे स्थापन करै ॥ अग्निदेवत्यास्तिस्त्रो गाय  
त्र्यो भरद्वाजदृष्टा । हे अग्ने अथर्वो (प्राण) पुष्करात् उदक के सका  
श से तुमै निःशेष ए मथताहुआ + वाधतः इति ऋत्विज्ज्ञामसुनि  
घ० ३.१०. पठितम् सब जगत का संबंधि ऋत्विज तुमै अरणी के  
शिर से निःशेष करि मथते हुणयिद्वा विश्वस्येति षष्ठ्येकवचनं प्रथम + व्यत्ययः  
वहुवचनार्थे सब ऋत्विज ॥ यद्वा ऋचोऽयमर्थः ॥ हे अग्ने अथर्वो-  
ख्य ऋषिपञ्चपत्र के ऊपर तुमै निःशेष ए मथताहुआ कैसे पुष्कर  
सें कि मूर्धः उत्तमाङ्गवत् प्रशस्त से सब जग के वाहक से पुष्करपर्ण  
अग्नि निर्मेत्यन यज्ञनिष्पादनद्वारेण सब जगत को निर्वाह करता है ॥ ३२ ॥

तमुत्वा ॥ दध्यङ्गुषिः पुत्रः ईधेः अथर्वणः ॥ वृत्रहणं पुरन्द-  
रम् ॥ ३३ ॥

हे अग्ने अथर्वण ऋषिका पुत्र दध्यङ्ग नामक तै से तुमै प्रज्वलित क-  
रताहुआ कैसे तुमै कि वृत्र (पापी) को मारने वाले पुरन्दर, रुद्र रूपेण  
असुरसंबंधि तीनों पुरों के विदारण करने वाले को ॥ ३३ ॥

तमुत्वा ॥ पाथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्तमम् ॥ धनं जयठरं  
गौरणे ॥ ३४ ॥

+ तिङ्प्रत्ययः

ले समुद्र को बर्द्धमान होते महत्प्रभूत हो इति शेषः। और जल में सब ओड़ी से ठहरि यद्वा पुष्करविषे समन्ताम् महत्प्रभूत होते तू वृद्धियुक्त है ॥ का० १६०२०२४ दिवोमात्रया इस पाद से पुष्करपर्ण को विपुल करै ॥ हे पुष्करपर्ण दुलोक के परिमाण उरुत्व से तू विस्तृत हो ॥ ३० ॥

शर्मच ॥ शर्मचस्थो वर्मचस्थो छिद्रे बहुलेऽउभे ॥ व्यचस्वती सम्बसाथाम्भृतमग्निम्युरीष्यम् ॥ ३० ॥

का० १६०२०२५ दो ऋचाओं से कृष्णाजिन पुष्करपर्ण का साथ ही स्पर्श करै ॥ कृष्णाजिन पुष्करपर्ण देवत्ये द्वे अनुष्टुभौ ॥ हे कृष्णाजिन पुष्करपर्ण उभे दोनों तुम अग्निके सुख कारिणी अपि हौ कवचवद्रक्षिके अपि हौ चो समुच्चये ॥ कैसे हौ तुम कि छिद्र रहिते सकले विस्तीर्ण अवकाशवती ॥ तथाविधे तुम पुरीष्य (पशव्य-अग्नि) को आच्छादन करै और आच्छादन करिके अग्नि की धारण करै ॥ ३० ॥

सम्बसाथाम् ॥ सम्बसाथां स्वर्विदा समीचीऽउरसात्मना ॥ अग्निमन्तर्भेरिष्यन्ती ज्योतिष्मन्तमजस्तमित् ॥ ३१ ॥

हे कृष्णाजिन पुष्करपर्णे निरन्तरमेव अग्नि को भीतर में धारण करने वाले तुम उरुरूप अपने शरीर से अग्नि को भले प्रकार आच्छादन करै कैसे हौ तुम कि स्वर्वित् ज्ञाते स्वर्विदो यज्ञ सूर्य देवाह वाची स्वः शब्दः स्वर्गलाभ साधने इत्यर्थः समीची एकचित्त ॥ ३१ ॥

पुरीष्योसि ॥ विश्वमेराऽपथर्वीत्वा प्रथमो निरमन्यदग्ने ॥ त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वी निरमन्यत ॥ मूर्ध्नि विश्वस्य वा घतः ॥ ३२ ॥ पु-ग्ने। अ०त्वा-तः। इ० ॥ ३२ ॥

का० १६.२.२६.पिण्ड को स्पर्शकरै ॥ अर्षीउ० + अग्निदेवत्या। हे अग्ने तू पशव्य है सब जगत को धारण करता वा पुष्ट करता है अग्ने हम लोगों से पूर्वभावी अथर्वारव्य ऋषिः वा प्राण तुमैनिः शेषेण मथताहुआ ॥ का० १६.२.२७.३.१. दक्षिण से अभि को रवि के दोनों हाथों से सब पिण्ड को त्वामग्न इतिषट् ऋचाओं करि एक बार लेके पुष्करपर्णविषे स्थापन करै ॥ अग्निदेवत्यास्ति सोगाय त्र्यो भरद्वाजदृष्टा। हे अग्ने अथर्वी (प्राण) पुष्करात् उदक के सकाश से तुमैनिः शेषेण मथताहुआ + वायतः इति ऋत्विङ्गामसुनिघ० ३.१०. पठितम् सब जगत का संबंधि ऋत्विज तुमै अरणी के शिरसे निः शेष करि मथते हुणायद्वा विश्वस्येति षष्ठ्येकवचनं प्रथम + व्यत्ययः बहुवचनार्थे सब ऋत्विज ॥ यद्वा ऋचोऽयमर्थः ॥ हे अग्ने अथर्वारव्य ऋषिपद्मपत्र के ऊपर तुमैनिः शेषेण मथताहुआ कैसे पुष्कर से कि मूर्ध्निः उत्तमाङ्गवत् प्रशस्त से सब जग के वाहक से पुष्करपर्ण अग्नि निर्मन्थन यज्ञ निष्पादन द्वारेण सब जगत को निर्वह करता है ॥ ३२ ॥

तमुत्वा ॥ दध्यङ्गुषिः पुत्र ईधे अथर्वणः ॥ वृत्रहणं स्पुर्न्दरम् ॥ ३३ ॥

हे अग्ने अथर्वण ऋषिका पुत्र दध्यङ्गु नामक ते से तुमै प्रज्वलित कर ताहुआ कैसे तुमै कि वृत्र (पापी) को मारने वाले पुरन्दर, रुद्र रूपेण असुर संबंधि तीनों पुरों के विदारण करने वाले को ॥ ३३ ॥

तमुत्वा ॥ पाथ्यो वृषा समीधे दस्पुहन्तमम् ॥ धनं जयठरं पौरुणे ॥ ३४ ॥

+ महीधर मन्त्र प्रतिष्ठागत्ययी

ए + अर्षी उ० + अग्निदेवत्यास्ति सोगाय त्र्यो भरद्वाजदृष्टा। हे अग्ने अथर्वी (प्राण) पुष्करात् उदक के सकाश से तुमैनिः शेषेण मथताहुआ + वायतः इति ऋत्विङ्गामसुनिघ० ३.१०. पठितम् सब जगत का संबंधि ऋत्विज तुमै अरणी के शिरसे निः शेष करि मथते हुणायद्वा विश्वस्येति षष्ठ्येकवचनं प्रथम + व्यत्ययः बहुवचनार्थे सब ऋत्विज ॥ यद्वा ऋचोऽयमर्थः ॥ हे अग्ने अथर्वारव्य ऋषिपद्मपत्र के ऊपर तुमैनिः शेषेण मथताहुआ कैसे पुष्कर से कि मूर्ध्निः उत्तमाङ्गवत् प्रशस्त से सब जग के वाहक से पुष्करपर्ण अग्नि निर्मन्थन यज्ञ निष्पादन द्वारेण सब जगत को निर्वह करता है ॥ ३२ ॥





शुद्ध होम योग्या जिह्वा (ज्वाला) जिस्की वोह नाना देवताओं की हवि-  
यों का अभ्यवहार करते भी उच्छिष्ट नहीं करता इति भावः ॥ ३६ ॥

सठिं सी दस्व महा रे ॥ ३७ ॥ सिसि शोच स्वदेव वीतमः ॥ विधु म  
मग्नेः अरुषमिमेध्य सृज प्रशस्त दर्शितम् ॥ ३७ ॥

आग्नेयी ब्रह्मती प्रस्फणवहृष्टा । हेमियेध्य (मेध्य-यज्ञार्ह) हे प्रशस्त-  
उत्कृष्ट) हे अग्ने तू पुष्करणी विषे भले प्रकार बैठि । जो कि तू अने  
क क्रतुओं का हेतु होने से महान् है सो तू दीप्त हो । कैसा है तू कि अति  
शयेन देवताओं का तर्पण करने वाला । किंच दर्शनीय अरोचन धूमको  
छोडि । इतीवा अय मूर्ध्वर्ध + रेतः सिञ्चति धूमर्धं सामुत्र दृष्टिर्भ-  
वतीति श्रुतिः ॥ ३७ ॥

अपोदेवीः ॥ अपोदेवी रूपं सृज मधुमती रयस्माय प्रजा  
भ्यः ॥ तासां मास्थाना दुज्जिहता मोषधयः सुपिप्यलाः ॥ ३८ ॥

का० १६.३.२ मुत्पिण्ड गर्त विषे जल को सींचे ॥ अन्देवत्यान्यदुसारि  
णी उरे ब्रह्मती स्कन्धोग्रीवीवा ब्रह्मती सिंधुद्वीपदृष्टा ॥ पूर्वोर्चोऽग्ने इति  
संबोधन मध्याह्नियते धौर्ध्वर्युर्वा संस्वोध्यते हे अग्ने यद्वा हे द्यौः  
वा हे अध्वर्यो देवनशीला जल इस खनन प्रदेश में सव ओड़ी से सींचे  
। कैसी है जल कि मधुमती (रसवती-आरोग्यदात्री) किस लिये कि प्र-  
जा की आरोग्यता के अर्थ । तिससींची हुई जल के स्थान सुक्षेत्र रूप  
हमारे खनन प्रदेश से ओषधीएँ समन्तात् ऊर्गे कैसी हैं ओषधीएँ  
कि सुपिप्यलाः शोभन हैं पिप्यल-फल जिन्हों के ॥ ३८ ॥

सन्ने ॥ वायु र्मातरि दधात्तानायाह दययद्विकल

यो देवानां चरसि प्राणयेन कस्मै देववषट्सुतुभ्यम् ॥३६॥

का० १६०३३ पिण्डगर्ते में वायु को भेरे ॥ त्रिष्टुप् अर्धं पृथिवी देवत्य  
मर्धं वायु देवत्यम् । हे पृथिवी ऊर्ध्वाभि सुख करि अवस्थित तेरा हृ  
दय सहश रवनन स्थान पिण्डाव रूप से विकसित है । तिस स्थानकों  
पूर्वोक्त जल प्रक्षेप और तृणादि पूरण से जैसे पहिले वायु तेसे स  
म्यक् करे । कैसा है वायु कि मातरिश्वा सब प्राणियों की अवछेदक  
रने वाली अन्तरिक्ष विषे चलनेवाला । एवं पृथिवी को कहि वायुसे  
कहता है हे देव द्योतनादि गुणयुक्त वायो जोतू अग्न्यादिक  
देवताओं के विषे प्राणभाव करि चलता है कस्मै प्रजापतिरूप तेरे  
अर्थ यह पृथिवी बषट् कृता हो ॥३६॥

सुजातो ज्योतिषा ॥ सह शर्म वरूथ मासदत्स्व ॥ वासोऽग्ने  
विश्व रूपं संव्ययस्व विभावसो ॥४०॥

का० १६०३५ विछाए हुए कृष्णाजिन पुष्करपर्ण के प्रान्तों को जं चे  
करे ॥ अग्नि देवत्या तुष्टुप् । भले प्रकार उत्पन्न यह अग्नि अपने  
तेज के साथ सुख जैसे हो तेसे स्वर्ग सहश वरणीय कृष्णाजिन नि  
र्मित घर को प्राप्त हो ॥ का० १६०३६ वासोऽग्ने इत्स उत्तरार्धसे जं  
चे किये कृष्णाजिन पुष्करपर्ण के सिरे ओं को मुञ्ज योत्र करि बांधे ॥  
हे विभावसो दीप्ति धनवाले हे अग्ने बहु प्रकार रूप विचित्र वस्त्र  
कृष्णाजिन रूप को भले प्रकार धारण करि ॥४०॥

उदुतिष्ठ ॥ स्वध्वरावानो देव्याधिया ॥ दृशे च भासा बृहता  
सुशुक्निरग्ने याहि सुशस्तिभिः ॥४१॥

का० १६.३.७. तिसपिण्ड को लेकर उठे ॥ अग्नि देवत्या पथ्या बृहती विश्वमनो दृष्टा । हे शोभन यागनिर्वाहक हे अग्ने उठि और उठिकर देवनस्वभावक्रीडा परायण बुद्धिसे हमें पालन करि । किंच हे अग्ने शोभन कीर्ति सहित यद्वा साधु अश्व करि आ । क्या करने को कि ओठ तेज से सब प्राणियों के देखने को कैसा है तू कि रश्मिओं का प्रसारक । आ अग्ने याहीति पद छेदः ॥४१॥

ऊर्ध्वः ऊषुणः ॥ ऊर्ध्वः ऊषुणः ऊतयेतिष्ठा देवो न स विता ॥ ऊर्ध्वो वाजस्यसनि ता यदज्जिभिर्वाघद्विर्विन्ध्यामहे ॥४२॥

का० १६.३.८. ऊंचीवाहुओं प्राञ्चपिण्ड को लेवै ॥ अग्नि देवत्योपरिष्ठा बृहती कण्वदृष्टा । हे अग्ने हमारी रक्षा के अर्थ ऊर्ध्व एव सुतरावस्थित हो । कैसे कि जैसे सविता देवता ऊर्ध्व हो हमें रक्षा करता है तद्वत् तू ऊंचा होकर अन्न का दाता हो इति शेषः दानविषेजिस कारण सैज्जिभिर्वाघद्विः, हव्यवाहक ऋत्विजों सहित तुम्हें विविधि आह्वान करते हैं तिस कारण ऊर्ध्व एव तिष्ठ, यद्वा अज्जिभिः द्रव्यों की व्यञ्जक रश्मियों सहित तुम्हें बुलाते हैं कैसी अज्जियों करि कि हवि वोढार ॥४२॥

सजातः ॥ सजातो गर्भोऽसिरो दस्यो रग्ने चारुर्विभृतः शोषधीषु ॥ चित्रः शिशुः परितमोऽस्य कून्मातृम्योऽपधिकनिःकदङ्गाः ॥४३॥

का० १६.३.९. पिण्ड को नीचे उतारि नाभिके ऊपर हाथों से ररि

अश्व. गर्दभ. अज. को सजातः ४२. ४३. ४४. इन तीनों मंत्रों से क्रम पूर्वक एक-एक को देखि एक-एक मंत्र को जपे ॥ अश्व देवत्या त्रिष्टु पन्नित दृष्टा । अश्व मग्नीकृत्य सौति, हे अग्ने सोतू द्यावा पृथिवी के गर्भ में हो यहां उत्पन्न हुआ है । कैसा है तू शोभन पूज्य देने योग्या पुरोडाशादि लक्षणा ओषधी ओं में विहृत । नाना वर्णा ज्वाला ओं में विचित्र रूप । ऐसे उत्पन्न होने के कारण शिशुवा शंसनीय । रात्र्यु पलक्षित तमों को नाश करता माता ओं (ओषधि बनस्पति ओं) के सकाश से अत्यन्त शब्द करता प्रकर्षे से ॥ ४३ ॥

स्थिरो भव ॥ वीडुः ॥ अश्विर्मववा ज्युर्वन् ॥ पृथुर्मवसुखदस्त्वमग्नेः पुरीषवाहणः ॥ ४४ ॥

रासभ देवत्या त्रिष्टु बुष्णिग्वा । हे अर्वन् गमन कुशल चलन रहित होते तू घट काय हो । वेगवान् होकर अन्न का हेतु हो । विस्तीर्ण हो ते अग्निका सुखासन (स्वास्थेय) हो । कैसा है तू कि पुरीष वाहण मृदा का वहाने वाला वा पशव्य यवस का वहाने वाला ॥ ४४ ॥

शिवो भव ॥ प्रजाम्यो मानुषीभ्यस्त्वमङ्गिरः ॥ माद्यावा पृथिवीः अभिशोची म्मीन्तरिक्षम्मावनस्पतिम् ॥ ४५ ॥ +

अज देवत्या पथ्या बृहती । अङ्गिरा ऋषियों से पूर्व सम्पादित होने वा अङ्गसौष्टवात् अङ्गिरा अग्नि तिस का संबोधन हे अङ्गिराः अग्नि रूप अज + मनु की संबंधी प्रजा के अर्थ तू शान्त हो । किंच द्यावा पृथिवी को मत संताप करितथा अन्तरिक्ष को मत संताप तथा वनस्पतियों को मत संताप ॥ ४५ ॥

प्रेतु ॥ वाजीकनि कदन्नान दद्रासभः पत्वा ॥ भरन्ननिमु  
रीष्य म्मा पाद्यायुषः पुरा ॥ वृषाग्निमृषणम्भरन्नपाद्  
र्भेऽसमुद्रियम् ॥ अग्नः आयाहि वीतये ॥ ४६ ॥ +

का० १६.३.१०. अश्वदिकों के ऊपर मृत्पिण्ड को रखैतिन्हों  
को अस्पर्श करते प्रेतु वाजी इस से अश्व के ऊपर वृषाग्नि इस  
से खर के ऊपर इति सूत्रार्थः ॥ महा पङ्क्तिः स्रवसाना आद्या-  
वर्ध चोवश्व देवत्यो तृतीयो ऽर्धर्चो रासभ देवत्यः ॥ अश्वः प्र-  
कर्षेण चलैक्य करिकै कि अत्यन्त ही सन करि और रासभ भी यवसवा  
हन के अर्थ प्रकर्ष करि चलैक्य करिकै कि नान दत् सोपहास मुच्यते  
गर्दभ रदितेन सब दिशों को नादित करि कैसा है रासभ कि पतनशील +  
किंच यह अश्व पशव्य अग्नि को धारण करता कर्म के पूर्व मतनाश को  
प्राप्त हो अर्थात् कर्म समाप्ति पर्यन्त जी औ + ॥ अथ रासभ मन्त्रः ॥ सी  
चने वाला रासभ अग्नि को धारण करते प्रकर्षेण गच्छतु इति शेषः  
कैसे अग्नि को कि सींचने वाले फलाभि वर्षण समर्थ को आहुति प-  
रिणामेनेति भावः ॥ अणो गर्भम् जल मध्येव स्थित वा मेघस्य ज-  
लों के मध्य में विद्युद्रूप को ॥ समुद्रियम् समुद्र विषे वडवाग्निरूप से  
उत्पन्न यद्वा समुद्रे अग्नि चयन में उत्पन्न तिसको ॥ त्रयोहवै समुद्रा  
अग्निर्यजुषां महाव्रतर्हं साम्नां मह दुक्थ मृचामिति ॥ का० १६.३.११  
अग्ने इस मन्त्र करि रासभ से पिण्ड को लेकर ऋतर्हं सत्यं इस मन्त्र  
करि अज के ऊपर पिण्ड को रखै परि वृते निधान पर्यन्त मिति सूत्रा-  
र्थः ॥ एक पदा गायत्री अग्नि देवत्या ॥ हे अग्ने हविभक्षण के अर्थ-

प्रेतु वाजी कदन्नान दद्रासभः पत्वा ॥ भरन्ननिमु  
रीष्य म्मा पाद्यायुषः पुरा ॥ वृषाग्निमृषणम्भरन्नपाद्  
र्भेऽसमुद्रियम् ॥ अग्नः आयाहि वीतये ॥ ४६ ॥ +

+ आयुः शब्देन  
मृत्यु कर्मोक्तम्  
यत्तमम्वन्ध-  
नेवाश्वादीनां  
मृतिः क्रियते

आगमन करि ॥४६॥

ऋत॑र्हं स॒त्यम् ॥ ऋत॑र्हं स॒त्यम् ऋत॑र्हं स॒त्यम् म॒ग्नि॒स्यु॒री॒ष्य॒म॒ङ्गि॒  
र॒स्व॒ङ्ग॒रामः ॥ ऊ॒ष॒ध॒यः प्र॒ति॒मो॒द॒ध्व॒म॒ग्नि॒मे॒त॑र्हं शि॒व॒मा॒  
य॒न्त॑ म॒भ्य॒त्र॒यु॒ष्माः ॥ व्य॒स्य॒न्वि॒श्व॒ऽअ॒नि॒रा॒ऽअ॒मी॒वा॒नि॒  
वी॒दे॒न्त्रो॒ऽअ॒प॒दु॒र्म॒तिं ज॒हि ॥४७॥ †

अग्नि देवत्या प्रा-गा ऋत सत्य शब्दों से आदित्य अग्नि विवक्षित है  
ऋत-आदित्य-सत्य-अग्नि-तादृश उभयरूप अग्निको आहरण  
करता हूँ इति शेषः । ऋत॑र्हं स॒त्य॒मिति द्विवचनमादरार्थम् ॥ का० १६.  
३. १३. देव पितृ कार्यविमुख अनद्धा पुरुषतिसे अर्ध्वर्धुदेवे पूर्ववत् ज  
लती हूँ आहवनीय अग्नि के पास में स्थित ॥ आग्नेयी सा-गा प  
शव्य अग्नि को अङ्गिरस-इव हरण करते हैं । का० १६. ३. १४. उ  
रवा सम्भरणार्थ उद्धृत आहवनीय के उत्तर में पूर्वमेव किये परिवृत्त  
आच्छादित प्रदेश विषे ओषधयः इन मन्त्रों से पिण्ड को स्थापन क  
रें, कैसे परिवृत्त में कि उद्धृत कृतो ल्लेखन अवीक्षित पूर्व द्वार सि  
कता करि व्याप्त में इति ॥ त्रिष्टुब नुष्टुभावोषधि देवत्ये व्यस्यन्ति त्यर्ध्वे  
अग्नि देवतः । हे ओषधयः तुम इस अग्नि को अभ्युत्थानादि  
से प्रति हर्षित करौ । कैसे अग्नि को कि शान्त । इस प्रदेश में स्थिता  
तुम को अभिसुखी करि आते हुए को । एव मर्धर्ध्वे नोषधीरुक्ता  
थाग्नि माह । हे अग्ने तू यहां निविशिमान हूँ आसवह मारी दुर्म  
ति दुर्वृद्धि नास्ति दत्तं नास्ति हृतं को दूर करि अति वृष्ट्यादिकों ओ  
र व्याधियों को निकाल करि ॥४७॥

ओषधयः प्रति ॥ गृन्णीतपुष्पवतीः सुपिप्पलाः ॥ अय

म्वो गर्भः ऋत्विजः प्रत्नर्हं सधस्यमासदत् ॥ ४८ ॥

हे ओषधी ओ इस अग्नि को स्वीकार करे । तुमकैसीहोकि पुष्प  
वती प्रशस्त पुष्पेताः शोभन फल वाली । किंच प्राप्त काल तुम्हारा  
गर्भ होके यह अग्नि पुरातन गर्भ योग्य स्थान को प्राप्त हुआ है ॥ ४८ ॥

विपाजसापृथुनाशोशुष्कानो बाधस्वद्विषोरक्षसोऽपमीवा ॥

सुशर्मणो बृहतः शर्मणि स्यामग्नेरुहं सुहवस्य प्रणीतो ॥ ४९ ॥

का० १६. ३. १५. विपाजसा इस मन्त्रसे कृष्णाजिन वद्ध पिण्ड को रों  
लि कर छाग के रोमले अश्वदिक पशुओं को ईशान दिशा प्रति छोड़े ॥  
अग्नि देवत्या त्रिष्टुबुत्कीलः कात्य दृष्टा । हे अग्ने शत्रुओं. रक्षसों.  
ओर व्याधिओं को नू विशेष करि निवर्तकरि कैसा है तू कि विस्तीर्ण  
बल करि अत्यन्त दीप्यमान । एव प्रत्यक्षमुक्ता परोक्षमाह अग्नि  
की अभ्यनुज्ञा (परिचर्या) में वर्तमान हम शरण वा सुख को प्राप्त हों ।  
कैसी अग्नि के कि शाधु शरण वा शोभन सुख वाले । ओह । सुखेन  
आह्वान करने समर्थ के ॥ ४९ ॥

अ० ५ आपोहि ॥ श्यामयो भुवस्तानः ऊर्ज्ज्वेदधातन ॥ महेरणा  
यचक्षसे ॥ ५० ॥

का० १६. ३. ३६. पलाशत्वक् कथित जल को पिण्ड में तीन ऋचा-  
ओं से डाले ॥ अन्देव तास्ति स्रो गायत्र्यः सिन्धु द्वीप दृष्टा ॥ हि शब्द  
एवार्थः प्रसिद्धर्थो यस्मादर्थो वा । हे जल तुमही सुख की भावयित्री  
प्राप्त करने वाली हो । जिस कारण से सुख की भावयित्री हो वास्त्रा



नयानादि का हेतु होनेसे जलका सुखोत्पादकत्व प्रसिद्ध है। तैसी तुम हमें भव दीय रसानु भावार्थ स्थापन करो जैसे हम सब भोग्यर सों के भोक्ता होंगे तैसे हमें करो इति भावः। किंच बडे रमणीय दर्शन के अर्थ स्थापन करो महद् रमणीय दर्शन ब्रह्म साक्षात्कार लक्षण वोह हमारा करो- हमें ब्रह्म साक्षात्कार योग्य करो इति भावः। यस्मिन् ज्ञाते सर्वं विज्ञातं स्यादिति छान्दोग्यश्रुते ॥ ५० ॥

योवः ॥ शिव तमो रसस्तस्य भाजयते हनः ॥ उ० शतीरिव मातरः ॥ ५१ ॥

हे जल तुम्हारा जो शान्त तम सुख का हेतु रस है इस कर्म वा इस लोक में स्थित हमें तिस रस के भागी करो तिस रस को प्राप्त करो इति भावः। तत्र दृष्टान्तः प्रीतिपुक्ता माता जैसे अपने स्तन का रस बालक को पिलाती है तद्वत् ॥ ५१ ॥

तस्मात्परम् ॥ गमा मवो यस्य क्षया यजिन्वथ ॥ आपो जनयथाचनः ॥ ५२ ॥

हे जल तुम संबंधि पर्याप्ति रस विशयक वैतृप्ति वा सदातृप्ति तैसे हम चलते हैं। निवास, जगत के आधार भूत जिस आहुति परिणाम भूत रस के एक देश करि तुम ब्रह्मादि स्तम्भ पर्यन्त जगत्को जिन्वथ तर्पण करते हो जिन्वतिः प्रीति कर्मा पञ्चाहुति क्रमेणेति भावः। किंच हे जल हमें तत्र भोक्तृत्व करि सम्पादन करो (तिस रस के भोक्ता हमें करो इत्याजान देवमाशास्यते इति भावः। यद्वा स्यात्तु चोऽयमर्थः। जिस के निवास करि तुम प्रसन्न होते हो तिस रस की

प्राप्तिके अर्थ तुम्हें अतिशय हम प्राप्त होते हैं किंच हे जल तुम हमें प्रजोत्पादन समर्थ करो ॥५२॥

मित्रः स्रष्टुं सृज्य ॥ पृथिवीम्भूमिञ्च ज्योतिषा सह ॥ सुजात  
ज्ञातवेदसमयश्मायत्वा स्रष्टुं सृजामि प्रजाम्यः ॥५३॥

का० १६०३१०० अजसे आदिले पहिलें ग्रहण किये लोम तिन्हों करि  
पिण्ड को मिश्रित करै ॥ मित्र देवत्यो परिष्ठाद्वहती । मित्रः आदित्य  
देवता द्युलोक और इस मृत्पिण्ड रूपा भूमि को अज के लोमों से  
एकी करि मूर्ध्वर्धु के अर्थ देवे इति शेषः ॥ अंगरमें शोभनेत्य  
न्न तुरुजात वेद जातप्रज्ञान अजलोमाख्य अग्नि को मृत्पि  
ण्ड से एक कर्तोहूँ किमर्थ कि प्रजा के रोग के अभाव के अर्थ ॥५३॥

रुद्राः स्रष्टुं सृज्य ॥ पृथिवीम्भूमिञ्च ज्योतिः समीधिरे ॥ तेषां  
मानुरजस्र इक्षु को देवेषु रोचते ॥५४॥

का० १६०३१०४ सूक्ष्मसिकता लोह किट्ट पाषाण चूर्ण से पिण्ड-  
को मिश्रित करै ॥ रुद्र देवत्यानुष्टुप् । जेरुद्र पार्थिव पिण्ड को सूक्ष्म  
सिकता लोह किट्ट पाषाण चूर्ण से एकी करि कै प्रोद अग्नि (उषा-  
स्थ अग्नि) को भले प्रकार दीपन (पालन) करते हूँ । तेषां फल मा  
ह तिन रुद्रों की शुद्ध दे दीप्यमान अनुपक्षीण एव देवताओं के  
मध्य में दीप्ति प्रकाश करती है ॥५४॥

स्रष्टुं सृष्ट्वा मनुष्यं भीरुर्देही रैः कर्मण्यमृदम् ॥ हस्तो म्यामृ  
द्वीद्वत्वा सिनीवाली कृणोतुताम् ॥५५॥

का० १६०३२० तीनि ऋचाओं से मृत् पिण्ड को भले प्रकार दुला

॥५५॥

वै॥ द्वे सिनी वाली देवत्ये तृतीया दिति देवत्या तिस्रो नुष्टुभः॥ सिनी वाली चन्द्र कला युक्ता मावास्याभि मानिनी देवता मृदाको हाथों से कोमल करि कै फिरि तिस मृदा को उखा कर्म योग्या करै कैसी मृदा को कि बुद्धि मानव सु और रुद्रों से सेवित वा सूक्ष्म सिकतादि करि संयोजित ॥ ५५ ॥

सिनी वाली सुकपर्दी ॥ सुकुरीरा स्त्रोपशा ॥ सानुभ्यमदिते मद्योषान्दधातुहस्तयोः ॥ ५६ ॥

हे अपदिते (अदीना देवमातः) हे महति पूर्व मन्त्रोक्ता सिनी वाली तू हाथों में उखा को स्थापन कीजियो। कैसी है सिनी वाली कि सुकपर्दी शोभन स्त्रियों के उचित केशबन्ध वाली। सुकुरीरा स्त्रियों से शृङ्गारार्थ शिर में धार्य मान शोभन कनकाभरण युक्ता सु मुकुटा। स्त्रोपशा शोभन शयन विदग्ध विलास चतुर औपश अवयव समूह जिस के बोह ॥ ५६ ॥

उषाङ्कुणोतु ॥ उषाङ्कुणोतु शक्त्या वाहुभ्यामदिति ध्रियः ॥ माता पुत्रं मयोपस्थे साग्निम्विभर्तुर्गर्भः ॥ मखस्य शिरोसि ॥ ५७ ॥ उ-३. ५. ५. म-सि. ६० ॥ ५७ ॥

अदिति सामर्थ्य और बुद्धि हाथों से उखा को करो सो कीहुई उखा मध्य भाग में समन्तात् अग्नि को धारण करै तत्र दृष्टान्तः जैसे जननी उत्सङ्ग विषे पुत्र को धारण करती है तद्वत् ॥ का० १६. ३. ३३. यजमान पत्नी के तिस पिण्ड से मृदा को ले द्वादश गुलि त्रिस्थान लिखित आषाढ संज्ञक दृष्टका करते यजमान पिण्ड से

मृदाले आपही उरवाकरै एक पशु पक्षे प्रादेशायामविस्तारोर्ध्वत्वा  
तुरस्त्रा पञ्च पशु पक्षे भिभागोन त्रयोविंशति अङ्गुल आयाम  
विस्तार ऊर्ध्वो प्रादेशेनैव इति ॥ मृत्पिण्ड देवत्यं या- गा ० हेम  
त्पिण्ड तूयज्ञ काशिरहे ॥ ५७ ॥

॥ आहवनीयसंश्लिख्य  
इहिरादिहापिलक्षण  
पाशिरः प्राञ्चः ॥

वसवस्त्वा ॥ कृण्वन्तु गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्वद्भुवासि  
पृथिव्यु सिधारयामयि प्रजाथं रायस्योषधौ पत्यर्हं सुवी  
र्यर्हं सजातान्यजमानाय रुद्रास्त्वा कृण्वन्तु त्रैष्टुभेन छन्द  
साङ्गिरस्वद्भु वास्यन्तरिक्षमसिधारयामयि प्रजाथं रा  
यस्योषधौ पत्यर्हं सुवीर्यर्हं सजातान्यजमानायादित्या  
स्त्वा कृण्वन्तु जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वद्भुवासिद्यौरसिधा  
रयामयि प्रजाथं रायस्योषधौ पत्यर्हं सुवीर्यर्हं सजाता  
न्यजमानाय विश्वेत्वा देवा वैश्वानराः कृण्वन्त्वानुष्टुभे  
न छन्दसाङ्गिरस्वद्भुवासिदिशो सिधारयामयि प्रजाथं  
रायस्योषधौ पत्यर्हं सुवीर्यर्हं सजातान्यजमानाय ॥ ५८ ॥

का० १६३ २६ यजमान मृदा को उरवा तल के लिये प्रादेश मात्रवौ  
डावे ॥ उखा देवत्यानि अ० ३० ऋ० यजूर्हं षि उ० ब्रा-अ० हे उरवे व  
सवः देव विशेषाः गायत्री छन्द करिके तुमै जैसै अङ्गिरस मुनियों ने  
किया तैसै करें यतः तू की हुई स्थिर है और पृथिवी है अतः तुमै वा  
चि बनाता हूँ हे उरवे मुरु यजमान विषे पुत्रादि प्रजा को स्थापन  
करि और धन की पुष्टि को स्थापन करि गोपतित्व धन स्वामित्व  
को मुरु- करि शोभन वीर्य (वीर कर्म) को मुरु- करि समानोदरोत्यन्न

न भाइयों को मुरु-करि॥ का० १६.३.२७. चौड़े करने के अनन्तर चौड़े तल के सब प्रान्तों को ऊंचे ले करि प्रथम पिण्ड का के अन्त से जोड़ें॥ हे उरवा रुद्राः त्रिष्टुप् छन्द करि कै तुमै करें तू अन्तरिक्ष रूपा है इति विशेषः पूर्ववत्॥ का० १६.३.२८. तिस उरवा को पतली मृदा से लीपि कर जल से चिकनाय द्वितीय पिण्ड का को पूर्व पिण्ड का के ऊपर जोड़ें॥ आदित्याः देवा जगती छन्द करि तुमै करें तू द्यौ रूपा है विशेषः शेष व्याख्या प्राची॥ का० १६.३.२९. पूर्वोक्त माना पहिले न पाने की उरवा करै॥ वैश्वानराः सवनर लाते हैं वा सवनरों को लाने वाले वा सवनरों के संबंधी वा सवनरों से हित ऐसे सब देवता हे उरवे तुमै अनुष्टुप् छन्द से करें और की हुई तू दिगूपा है शेष तुल्यम्॥ ५८. अदित्यै रास्ता॥ स्पदिति ष्टे विलङ्ग भ्रूण तु॥ कृत्वा य सामही मुरवाम्मृन्मयी योनिं मन्मये॥ पुत्रेभ्यः प्रायं छददितिः श्र पयानिति॥ ५९॥ अ. सि. अ. १. अ. तु. इ. कृ. ति. उ. ॥ ५९॥

का० १६.३.३०. उरवा के ऊर्ध्व मान को तीन विभाग करि ऊपर के तीसरे भाग में सर्वत्र मृन्मयी मेखला करै और तल से मेखलान्त प्रतिदिश चतुर्वृत्ती आगे मेस्तन युक्ता करै॥ रास्ता देवत्यम् या-गा० हेरे खेतू अदितिरूपा उरवा की काञ्ची गुण स्थानीया (करधनी) है। का० १६.४.३. उरवा के मुख को स्पर्श करै॥ उरवा देवत्यम् या-वृ० हे उरवे अदिति देवमाता तेरे विल (मध्य) को ग्रहण करै॥ का० १६.४.४. एवं उरवा को निष्पादन करि भूमि विषे स्थापन करै॥ अदिति देवत्या उषिण कू० सा पूर्वोक्ता अदिति उरवा को निष्पादन करि पुत्रों (देवताओं) से यह क

हि कर देती हुई यह क्या कि हे पुत्र औ इस उरवा को तुम तथा औ कैसी उरवा को कि बड़ी मृत्कार्य भूत। अग्नि की के अर्थ स्थान भूता ॥ ५६ ॥

वसवस्त्वा ॥ धूपयन्तु गायत्री छन्द साङ्गिरस्वद्रुद्रास्त्वा धूपयन्तु त्रैष्टुभेन छन्द साङ्गिरस्वदादित्यास्त्वा धूपयन्तु जागते न छन्द साङ्गिरस्वद्विश्वेत्वा देवा वैश्वा नरा धूपयन्तु नुष्टुभे न छन्द साङ्गिरस्वदिन्द्रस्त्वा धूपयन्तु वरुणस्त्वा धूपयन्तु विष्णुस्त्वा धूपयन्तु ॥ ६० ॥ +

का० १६४०० दक्षिणाग्नि विषे प्रदीप्त सप्त अश्व लेण्डों से उरवा को प्रति मंत्र करि अश्वर्यु धूपन करै धूमाय मान एक-एक अश्व लेण्डों को लेकर एक-एक मंत्र से उरवा के भीतर और बाहिर में भ्रमावे ॥ सप्त यजूर्ध्व्युरवा देवत्यानि १३० पार्षी गा० २४० यजुषी ५०० या-उ० ६ प्रा-गा० ॥ हे उरवे आठों वसु गायत्री छन्द करि अङ्गिरस-इव तुमै धूपयन्तु अश्वशक्रज्जन्य धूप से संस्कार करै ॥ एकादश रुद्र त्रिष्टुप् छन्द करि तुमै०-करै ॥ आदित्या जगती छन्द करि० ॥ सवनरों के हित सब देवता अनुष्टुप् छ० ॥ इन्द्र तुमै संस्कार करै वरुण और विष्णु शेष पूर्ववत् सुगमम् ॥ ६० ॥

अ० ६ अदितिष्ठा ॥ देवी विश्वदेव्या वती पृथिव्याः सधस्थेऽङ्गिरस्वत्वेन त्व वट देवानां त्वा पत्नीर्देवी विश्वदेव्या वतीः पृथिव्याः सधस्थेऽङ्गिरस्व दधतू खेधिषणा त्वा देवी विश्वदेव्या वतीः पृथिव्याः सधस्थेऽङ्गिरस्व दभीन्धता मुखे वस्त्रा देवी विश्वदेव्या वतीः पृथिव्याः सधस्थेऽङ्गिर

स्व छूपयन्तूरे ग्नास्त्वा देवी विश्व देव्यावतीः पृथिव्याः सध  
स्थेऽअङ्गिरस्वत्यचन्तूरे जनयस्त्वा छिन्न पत्रा देवी विश्व  
देव्यावतीः पृथिव्याः सधस्थेऽअङ्गिरस्वत्यचन्तूरे ॥६१॥

का० १६.४.४०. अषाढ. उखा. विश्व ज्योतिःओं के पाकार्य अभिसे  
चतुरस्व गर्त रवोदै ॥ आर्षी वृ० अवट देव० हे गर्त अदिति देवी पृथि  
वी के ऊपर भाग में तुम्हें रखने जैसे अङ्गिरों ने तू रवोदा तद्वत् कैसी  
है अदिति कि सब देवताओं का समूह विद्यमान है जिस में वा श्रेष्ठ  
समस्त देवता इसमें हैं ॥ का० १६.४.११. अधो मुख उखा को आषा  
ढ के उत्तरतः गर्त में स्थापन करें ॥ पञ्चयजूर्दंष्ट्रुखा देवत्यानि १२.  
प्रा-त्रि० ३. आर्षी वृ० ४. आर्षी अ० ५. आर्षी प० ॥ समस्त देवताओं सहि  
त देवताओं की पत्नी दीप्यमाना ओषधी ऐं + पृथिवी के ऊपर आ  
ङ्गिरसः इव हे उखे तुम्हें स्थापन करें १॥ का० १६.४.१२. उखा स्थाप  
न के अनन्तर विश्व ज्योति को चुप के गर्त में रख अथवा सैं सबों  
को टक दक्षिणाग्नि से लाई बन्धि करि उखा को दीपन करें ॥ विश्व  
देव युक्ता वागभिमानिनी देवी ऐं पृथिवी के ऊपर हे उखे अङ्गिरस  
इव तुम्हें समतात् दीपन करें ॥ २॥ का० १६.४.१४. सामर्थ्य सैं उखा  
के ऊपर स्थित अथवा में छिद्र करि कै तिस सैं उखा को देखता तीनि  
यजुषीओं को जपें ॥ विश्व देव युक्ता वस्तुत्री + अहोरात्राभिमानि  
नी देव ऐं पृथिव्या ऊपरि अङ्गिरस-इव हे उखे तुम्हें अपें, पच्यमा  
नता को सम्पादन करें ॥ ३॥ विश्व देव युक्ता ग्ना ५ देवी ऐं छन्दोभिमा  
नी देवता पृथिवी के ऊपर-पचें ॥ ४॥ जनय ॥ नक्षत्राभिमानिनी देवी

देवपत्नी शब्दे  
नोषधयः तथा  
च्युतिः ओषध  
यो देवानां प  
र्यादिति शत०  
६.५.४.४०

\* श्रुतेर्वस्त्रि  
शब्देनाहोरा  
त्राणि शत० ६  
५.४.६. अहो  
रात्राणि वैवस्त्र  
वयोऽहोरात्रैर्ही  
रुदसर्वे वज्रमि  
ति -

+ अ-टा. अ० दे-खे। इ० धि-खे। उ० व-खे। वृ० ग्ना-खे। ल० ज-खे। आ० ॥ ६१॥

५ छन्दार्हं सिंह वै ग्ना छन्दोभिर्हि स्वर्गलोकं गच्छन्तीति शत० ६.५.४.१०. श्रुतेर्नाशब्देन छन्दांसि

६ नक्षत्राणि वै जनय इति शत० ६.५.४.१०

हैं हे उखे तुम्हें पचें कैसी हैं जनयः कि अछिन्न है पतन जिन्हों का ऽसि  
ष्टं स्पष्टम् ॥ ५॥ ६१॥

मित्रस्य चर्षणी धृतः ॥ मित्रस्य चर्षणी धृतो वै देवस्य सानसि ॥

द्युम्नश्चित्रश्रवस्तमम् ॥ ६२॥

का० १६०४०१५० अण को पाकान्त डालें ॥ मित्र देवत्या गायत्री विश्वा  
मित्रदृष्टा ॥ मित्रस्य ० आदित्य के अवः रक्षण द्युम्नं यशवा अन्न को  
हम स्तुति वायाचना करते हैं इतिशेषः ॥ कैसे मित्र के कि मनुष्यों के  
धारण करनेवाले दीप्यमान ॥ कैसे अवः को कि सनातन वा फलदा-  
नशील ॥ कैसे द्युम्न को कि चित्रश्रवस्तमं अति शयेन अने कों से सु-  
नते हैं अत्यन्त श्रवणीय प्रार्थनी करते हैं इतिभावः ॥ ६२॥

देवत्वा सवितो द्वपतु सुपाणिः स्वङ्गुरिः सुबाहु रूतशक्त्या ॥

अव्ययमाना पृथिव्या माशादिशः आपृणं ॥ ६३॥

का० १६०४०१८०१६० भस्मीभूत अण को उखा से परें सरकावें ॥ सवि-  
त देवत्या वृहती ॥ हे उखे सविता देवता अपनी सामर्थ्य और बुद्धि से  
तुम्हें अण से प्रकाशी करें ॥ केसा है सविता कि शोभन हैं हाथ जिसके  
शोभन हैं करस्था अंगुली जिसकी ॥ शोभन हैं भुजजिसके ॥ का० १६०  
४०१६०२०० अव्ययमना इति अण को सरकाय अषाढा को बाहिर  
निकाल उखा को ऊर्ध्वमुखी करें ॥ हे उखे सविता से निकाली हुई द्यु-  
या को अपना प्रवन्ती पृथिवी में स्थित हुई तू प्राच्यादि दिशा और आ-  
ग्नेयादि विदिशाओं को समन्तात् पूर्ण करि आहुति रस करिके इ-  
ति शेषः ॥ ६३॥



उत्थाय बृहती ॥ भवो दुतिष्ठ ध्रुवात्त्वम् ॥ मित्रैतां तः उषा  
म्परिददाम्य भित्याः एषा मा भेदि ॥ ६४ ॥

का० १६. ४. २१. २२. हाथों से उरवा को ले पाक से ऊपर निकालें ॥ बृ  
हती पूर्वोर्ध्वर्च उरवा देवत्यः उत्तरार्धो मित्र देवत्यः ॥ हे उरवे तू उठि इ  
स अवस्था से बाहिर आ कर बड़ी हो ततः उतिष्ठ अपने कर्म में प्रवर्त हो  
यतः तू स्वभावतः स्थिरा है ॥ उकारः पाद पूरणः ॥ का० १६. ४. २२. हाथ में  
ग्रहण की उरवा को उत्तरतः पूर्व स्थापित किसी पात्र में स्थापन करें ॥ त  
तः विश्वज्योतिका चुपके से उद्धपन है ॥ हे मित्र सर्व प्राणियों के हित कारि  
देव इस उरवा को तुम्हें परित्राण के अर्थ देता हूँ कि मर्त्य कितिस के अभेद  
नार्थ ॥ और यह उरवा तुरु करि ग्रहण की हुई विदीर्ण मत हूजिये ॥ ६४ ॥

वस वस्त्रा ॥ वस वस्त्वा छन्दन्तु गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्व दुद्रा  
स्त्वा छन्दन्तु वैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्व दादित्या स्त्वा छन्दन्तु जा  
गतेन छन्दसाङ्गिरस्व द्विषेत्वा देवा वैश्वानराः आ छन्दन्त्वा  
नुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वतु ॥ ६५ ॥ †

का० १६. ४. २३. चारि मन्त्रों से चारि वार अजा दुग्ध को उरवा में अंजें ॥  
उरवा देवत्वानि चत्वारि १. सा-अ० १. २. ३. ४. यजूंषि हे उरवे इत्यादि चार  
रों मन्त्रों का अर्थ काण्डी ६० वत् परन्तु वो हां धूपयन्तु यहां आ छन्दन्तु  
सब ओड़ी से सींचें ॥ ६५ ॥

आ कूति मग्निम् ॥ प्रयुजं स्वाहा मनो मेधा मग्निं प्रयुजं  
स्वाहा चित्तं चिज्ञात मग्निं प्रयुजं स्वाहा वाचो विधृति  
मग्निं प्रयुजं स्वाहा प्रजापतये मनवे स्वाहा गनये वैश्वानरा

युस्वाहा ॥६६॥ आ-हा। अ० म-हा। इ० वि-हा। उ० वा-हा। ऋ० ऋ-हा। लृ० लृ-हा।  
 का० १६.४.३० एवं उखा सम्भरण को समाप्त करि और अन्य दृष्टका  
 करिके फाल्गुण अमावास्या में दीक्षा करि उद्गमण होमकाल में प्राकृत  
 सोमयाग में किये आकृत्यै प्रयुजे ग्नये स्वाहेत्यादि ४.७. पांच उद्ग  
 मणों को होमिके अग्निचयन सम्बन्धी सात उद्गमण मंत्रों को प्रति  
 मन्त्र होमें ॥ सप्तोद्गमण संज्ञानि लिङ्गोक्त देवत्यानि १.५.६. या-पं० २  
 या-त्रि० ३.४. या-ज०। अस्मदीयः संकल्प अग्निचयना नुष्ठान विष-  
 य तिस संकल्प प्रेरक अग्नि को उद्देश करि स्वाहा सुहुतमस्तु ॥१॥ मनः  
 २ वाचः ३ चित्तं ४ स्पष्टानि ॥ मन्वन्तरकारी प्रजापति के अर्थ स्वाहा ॥५॥  
 समस्त नरों के अनुग्राहक विश्वानर पुत्र वा अग्नि के अर्थ स्वाहा सु  
 हुतमस्तु ॥६॥ ६६॥

विश्वो देवस्य ॥ नेतुर्मर्तो वुरीत सव्यम् ॥ विश्वो रायः इषु ध्यति  
 द्युम्नम्बुणीत पुष्यसे स्वाहा ॥ ६७॥  
 चतुर्थे ध्या० व्याख्याता ॥७॥ इति सप्तोद्गमणानि समाप्तानि ॥ ६७॥  
 मासु भित्था मासुरिषो म्वधृष्णवीरयस्वसु ॥ अग्निश्चेदङ्क-  
 रिष्यथः ॥ ६८ ॥

का० १६.४.३१ ओद्गमण होम के अनन्तर दीक्षणीयके शेषको समाप्त  
 करि कृष्णाजिन दीक्षादि दण्डोच्छ्रयणान्त प्राकृत कर्म को करिके अ-  
 ध्वर्यु वा यजमान ईशानाभि मुख वा पूर्व मुख रखे हो दो ऋचाओं से  
 समिद्ध मान आहवनीय में मुञ्जतृणनिर्मित पक्षनीड शणनिर्मित  
 पक्षनीड तिन्हों से मध्यमें छादित उखा को आरोपण करै ॥ उखा देव-

त्ये द्वे गायत्री विष्टुभौ प्रथमायास्तृतीयपादोऽग्निदेवतः। हेमातः हेउ  
 रेव तू सुतरा विदीर्णमतहो इससे अभिन्नत्वभले प्रकार कहा तथासु  
 तरा हिंसिता मतहो इससे न फूटना भले प्रकार कहा अर्थात् सर्वात्म-  
 ना करि द्वैधी भाव (भेद) लेशका प्रथग्भाव फूटना सो दोनों तेरे नहीं।  
 किंच हे उखे प्रगल्भ जैसे भले प्रकार अग्निधारण लक्षण वीर कर्म  
 करि। किंच अग्नि और तू इस हमारे कर्म को समाप्ति पर्यन्त करे ॥६४॥  
 हृदं ह्रस्व देवि ॥ पृथिविस्वस्तयः आसुरी माया स्वधया कृतासि ॥  
 जुष्टं देवभ्यः इदमस्तु हव्य मरिष्टा त्वमुदि हियुजेः अ-  
 स्मिन् ॥६५॥

+ प्रकाशवत्पृथिवी  
 # मन्त्रोक्तिः पृथिवी देवता

हे पृथिवी + देवि + हे उखे यजमान की क्षेम के अर्थ हटा हो। कैसे तू य  
 ह कहिते है अन्न के निमित्त करि तू आसुरी माया प्राणसंबन्धिनी प्र-  
 ज्ञा की दुई वा असुर संबन्धिनी अचिन्त्यरचना रूप चित्रवस्तु हो के  
 जैसे प्रकाशो सो है अर्थात् स्तन रचना युक्ता निष्पन्ना है। किंच हे उखे  
 यह हवि उख्याग्नि में होष्यमाण देवताओं के अर्थ प्रिय हो अर्थात् ते  
 रे प्रसाद से देवताओं के अर्थ रुचौ। तू भी अनवर खण्डिता दुई इस व-  
 र्तमान यज्ञ में प्रकट हो ॥६५॥

इन्नः सूर्योऽसुतिः ॥ प्रत्नो होता वरेण्यः ॥ सहस्रपुत्रोऽञ्जु-  
 तः ॥७०॥

का० १६०४३३३५ उखा विषे अभितापित होते अग्नि में प्रादेश मि-  
 ता त्रयोदश संख्या क समिधों का होम करे तिन्हें क्रमसे कहिते हैं आ-  
 दिमें घृताक्त क्कमुक (धमन) समिधा होमें ॥ अग्नि देवत्या गायत्री सोमा

हृति दृष्टा। ऐसा अग्नि कार्मुकी समिधको भक्षण करे इति शेषः।  
कैसा कि वृक्षहें मदनीय अन्नजिस के वोह। घृतहें आसवस्थानीय  
मादक जिसका वाघृत आहारत्व करि डालते हैं जिसमें। पुरातन  
देवताओं का आह्वान करने वाला। वरणीय। बलका पुत्र। आश्च  
र्यरूप अर्थात् अनन्य सदृश ॥७०॥

परस्याऽअधि ॥ सस्वतो वरा रं ॥ ॥ अमृतं ॥ यत्राह  
मस्मिता रं ॥ ॥ अथ ॥ ७१ ॥

का० १६०४०३६ विकटतारुकी समिधको होमें ॥ आग्नेयी गाय  
त्री आङ्गिरसो विरूप दृष्टा। इत अध्यायान्तमाग्नेय्यः। संवतः  
भले प्रकार जाते हैं योधा जहां वोह संग्राम शत्रु संबंधिनी सेना के  
संग्राम से हमारे मनुष्यों को अभिमुख हो अर्थात् दुःख से तारें किं  
च जिस जनपद में हम हैं तिसमें पाले वातृत्त करे ॥७१॥

परमस्याः परावतः ॥ परमस्याः परावतो रोहिदंश्च दुहा  
गहि ॥ पुरीष्युः पुरुषियो ग्नेत्वनं रामुधः ॥ ७२ ॥

का० १६०४०३७ तीसरी उदुम्बर तरुकी समिधको होमें ॥ अनुष्टुप्  
आरुणि दृष्टा। हे अग्ने अत्यन्त दूर देश से इस कर्म में तू आ। ओ  
र आके संग्रामों की तरि अर्थात् शत्रुओं को विनाशि। केसा है तू  
कि रोहित अश्वों वाला। पशव्य बहुतों का प्यारा ॥७२॥

यदग्ने ॥ यदग्ने कानि कानि चिदाते दारूणि दुध्मसि ॥ स  
र्वन्त दस्तु ते घृतन्तज्जुष स्वयविष्णु ॥ ७३ ॥

का० १६०४०३८ विना कुठार के छिदी वातादिक से दूरी यज्ञिय तरुकी

संयमाने

सङ्गमना  
मसुनिधं  
२०१०

१ रोहितो निरिति निधं ० ११९

चौथी समिध धारण करै ॥ द्वे अनुष्टुभौ जमदग्निदृष्टे । हे यविष्ठपद्मे  
अग्ने जे कोई काष्ठ तुम्हमें जो हम आरोपण करते हैं सो सब काष्ठ जा  
त तेरे अर्थ घृतवत् प्रिय हो तिस दारुजात को तू सेवन करि ॥ ७३ ॥

यदति ॥ यदन्त्युपुजिह्वि कायद्वम्भोऽति सर्पति ॥ स  
र्वन्तदस्तु ते घृतन्तज्जुषस्वयविष्ठ ॥ ७४ ॥

का० १६.४.३६. पृथिवी से लगी हुई पांचमी समिध डालै ॥ नीचे पड़े  
रहने के कारण जो दारु पिपीलिका सहश क्षुद्रजीव का भक्षण करती  
है और जो बल्मीक दारु अति सर्पण करती है । हे यविष्ठयादि पू  
र्ववत् ॥ ७४ ॥

अहरहर प्रयावम् ॥ अहरहर प्रयावम्भरन्तोऽध्यायेवति  
ष्ठते घासमस्मै ॥ रायस्पोषेण समिधामदन्तोऽग्ने माते प्रति  
वेशारिषाम ॥ ७५ ॥

का० १६.४.४०. आठ ऋचा ओं से प्रति ऋचा करि आठ पलाशी समि  
ध धारण करै ॥ द्वे त्रिष्टुभौ नाभा नेदिष्टुदृष्टे । हे अग्ने तेरे आश्रय  
हो कै हम विनाश को न प्राप्त हों वै । क्यों कि प्रतिदिन अप्रमत्त जै से  
तैसे अग्नि के अर्थ समिद्रूप भक्ष्य सम्पादन करते हैं । तत्र दृष्टान्तः  
वाजिशाला में अवस्थित अश्व के अर्थ जै से प्रतिदिन प्रमाद छोड़ि  
घास देते हैं तद्वत् । तथा दक्षिण लक्षण धनकी पुष्टि और अन्न  
से तुम्हें प्रसन्न करते ॥ ७५ ॥

नाभापृथिव्याः ॥ समिधानेऽग्नौ रायस्पोषाय बृहते  
हवामहे ॥ दुरम्भदम्बुहदुव्यं यजत्रं जेता रमग्निमृतना

सुसासहिम् ॥ ७६ ॥

नाभा :- पृथिवी रूपा उरवा के मध्य दीप्य मानः आहवनीयनामामेऽ  
 ग्निः तिस्रः अभिमानीदेवः को बड़े धन के पोषण के अर्थ हम आह्व  
 न करते हैं। कैसे अग्नि को कि अन्न करितृप्त होता। बड़े हैं उक्थ  
 (शस्त्र) जिस के। यजनीय। संग्राम में जय शील। हमारे शत्रुओं का  
 अभिभवितार अग्ना वित्या हवनीय विषयो ग्नि शब्दः जेतारम  
 ग्निमित्यधिष्ठात्रग्निविषयः ॥ ७६ ॥

पाः सेनाः ॥ याः सेनाः ॥ प्रभीत्व रीराख्याधिनीरुगणाः ॥  
न ॥ येस्तेनायेच्च तस्करास्तां स्तेः ॥ अग्ने विदधाम्यास्ये ॥ ७ ॥

षडनुष्टुभः। जो कोई पराई सेना हमारे आभिमुख्य करि आग  
मन शीला आवै तिस आनिवाली और जो सेना सर्वतः हमको ता  
डै तिस उगणः- उद्यत्ता युध गणो पेतावहूस्तो मा। और जे सेनाः-  
गुप्तचरनेवाले और जे तस्कराः- प्रकटचोर हैं अग्नेतिन पूर्वोक्त सेनादि  
कोंको तेरे मुख में भक्षणार्थ डालता हूं अर्थात् सब दुष्टोंको भक्षण करि ॥

दंष्ट्राभ्याम्लिलिम्बून् ॥ दंष्ट्राभ्याम्लिलिम्बून् जम्भये-  
स्तस्करा २॥ ५७ ॥ हनुम्भ्यां स्तेनान्भगवस्तौ स्त्वरवा द-  
सुखादितान् ॥ ५८ ॥

गुप्त और प्रकट दो प्रकार के चोर तिन्हों में प्रकट दो प्रकार के प्रकट आरण्य और मार्ग में छीन-छीन के भागने वाले तिन्हों से भी अति प्रकट निर्भया ग्राम में आके बन्दीकार-डाका देने वाले तिन्हें यहाँ मलिम्लुच कहि तेहें मल-पापाधिक्य इन्हों का मलिन तै से हो-

म्लोचन्ति-अदृश्य होते हैं जन वावन में ॥ दन्त पङ्क्ति में जिन्ह तीक्ष्ण दां-  
तों से क्रमुकादिक भक्षण करते हैं तिन दंष्ट्राओं की राक्षसी संज्ञा ॥ त-  
तः पुरोवर्ती बाहिर दृश्यमान दांत जम्भ्या-जम्भा वर्ति को अश्रित  
और दांतों से लीन हनू। अर्थः ॥ दंष्ट्राओं से मलिम्लुचों और जम्भों  
से तस्करों हनूओं से स्तेनों को पीडि कै हे महदैश्वर्य युक्त पूजनी-  
य तिन सब पूर्वोक्त भले प्रकार भक्षण योग्यों को पुनर्जीवन रहि-  
ताजैसे हो भक्षण करि। वा सुखादित को समीप करि कै भक्षण क-  
रि ॥ ७८ ॥

ये जनेषु ॥ मलि म्ल वस्ते नासस्तस्करावने ॥ ये कक्षेष्व-  
घायवुस्तौ स्ते दधामि जम्भयोः ॥ ७९ ॥

ग्राम वर्तिओं में जे मलिम्लुचः पूर्वोक्त बन्दी कार और जे वन में  
स्तेनाः गुप्त चोर तस्कर प्रकट चोर और जे नदी पर्वत गहन में  
पराये पापाभिलाषी हे अग्ने तिन चतुर्विधों को तेरी जम्भाओं  
दंष्ट्राओं के भक्षण के अर्थ स्थापन करता हूँ ॥ ७९ ॥

योः अस्मभ्यम् ॥ योः अस्मभ्यमराती यादयश्च नो द्वेष-  
ते जनः ॥ निन्दा योः अस्मान्धिप्सा च सर्वे न्तम्मस्मसा-  
कुरु ॥ ८० ॥ † भस्मसा इति वा पाठः

पहिले चोरों का भेद दिखलाया अवशत्रुओं का भेद कहिते हैं-  
शत्रुचारि प्रकार के अराती द्वेषी निन्दक जिघांसु तत्र दात व्य-  
त्व करि प्राप्त धन को जो नहीं देता वोह अराती १ जो कार्य का विघा-  
त करे वोह द्वेषी २ वाग्देर्जन्य मात्र जो करे वोह निन्दक ३ हन्तुका

मा-जिघांसु ४ तिन्हों को अग्निके अर्थ समर्पण करें ॥ अर्थः ॥ जो मनुष्य हमारे अर्थ अरातित्व की इच्छा करें। और जो जन हमारे कार्य नाश से प्रीति उत्पादन करें। जो हम को निन्दे वाचादुःख देवे ॥ और जो हम को दम्भन की इच्छा करें जिघांसै। हे अग्नेति न सवों (चतुर्विधों) को चूणी करि अर्थात् चवाके भक्षण करि ॥ ८ ॥

सर्दं शितम्मे ॥ सर्दं शितम्मे ब्रह्म सर्दं शितम्बीर्यम्बलम् ॥ सर्दं शितं क्षत्रज्जिष्णुयस्याहमस्मि पुरोहितः ॥ ८ ॥

का० १६.४.४१.४२ द्वादशी सर्दं शितम् को क्षत्रिय यजमान की इच्छा से धारण करें। अन्तर्मी उद्देशाम् को पुरोहित यजमान की इच्छा से धारण करें। एकादश नित्या और सव ऋचा ओं के अन्तर्में स्वाहा कार है ॥ मेंने अपने ब्राह्मण्य को सम्यक् तीक्ष्णी (शास्त्रमार्गवर्ति) किया। इन्द्रिय शक्ति तिन दोनों को स्वकार्य क्षम किया। तथा जिस क्षत्रिकामें पुरोहित हूँ तिस अपने क्षत्री को जयनशील जै से होते से तीव्र किया ॥ ८ ॥

उद्देशां ॥ उद्देशाम्बाहूः अतिरमुद्वर्चोऽथोबलम् ॥ शि

णोमि ब्रह्मणमित्रानुन्नयामिस्वामि ॥ ९ ॥ अहम् ॥ ८ ॥

इन्ह स्वकीय राज ब्राह्मणादिकों के मध्यमें एक-एक की भुजाएँ उदतिरम्, उत्कर्ष करि मेंने बढाईं। कान्ति उदतिरम् और शरीर शक्ति उदतिरम्। मन्त्र की सामर्थ्य से शत्रुओं को क्षीण करता हूँ। स्वकार्य पुरुष पुत्रादिकों को में उत्कर्ष को प्राप्त करता हूँ। एवं त्रयोदश समिन्मन्त्रा उक्ताः ॥ ८ ॥

०॥  
सर्दं शितम्मे ब्रह्म सर्दं शितम्बीर्यम्बलम्  
सर्दं शितं क्षत्रज्जिष्णुयस्याहमस्मि पुरोहितः  
का० १६.४.४१.४२ द्वादशी सर्दं शितम् को क्षत्रिय यजमान की इच्छा से धारण करें। अन्तर्मी उद्देशाम् को पुरोहित यजमान की इच्छा से धारण करें। एकादश नित्या और सव ऋचा ओं के अन्तर्में स्वाहा कार है ॥ मेंने अपने ब्राह्मण्य को सम्यक् तीक्ष्णी (शास्त्रमार्गवर्ति) किया। इन्द्रिय शक्ति तिन दोनों को स्वकार्य क्षम किया। तथा जिस क्षत्रिकामें पुरोहित हूँ तिस अपने क्षत्री को जयनशील जै से होते से तीव्र किया ॥ ८ ॥  
उद्देशां ॥ उद्देशाम्बाहूः अतिरमुद्वर्चोऽथोबलम् ॥ शि  
णोमि ब्रह्मणमित्रानुन्नयामिस्वामि ॥ ९ ॥ अहम् ॥ ८ ॥  
इन्ह स्वकीय राज ब्राह्मणादिकों के मध्यमें एक-एक की भुजाएँ उदतिरम्, उत्कर्ष करि मेंने बढाईं। कान्ति उदतिरम् और शरीर शक्ति उदतिरम्। मन्त्र की सामर्थ्य से शत्रुओं को क्षीण करता हूँ। स्वकार्य पुरुष पुत्रादिकों को में उत्कर्ष को प्राप्त करता हूँ। एवं त्रयोदश समिन्मन्त्रा उक्ताः ॥ ८ ॥



अन्नं पतेन्नस्य ॥ नोदेह्यनमीवस्य शुष्मिणः ॥ प्रप्रदातारं  
नारिषु ऊर्जन्तो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥ ८३ ॥

इति सर्गहितायांसप्तमोनुवाकः ७

इति श्री सुक्त यजुषि माध्यन्दिनी शाखीयायां वाजसनेय  
सर्गहितायां दीर्घपाठे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

का० १६.६.८. अध्वर्यु करि व्रत पय में देते तत्र दीक्षित समिधाडादि  
अग्निमें आधानकरे प्रतिव्रतसमिदाधान है ॥ आग्नेयी उपरिष्ठा-  
बृहती। हे अन्न के पालक अग्ने हमारे अर्थ अन्न को दे यद्वा अन्न  
के अंश को दे। कैसे अन्न के कि नहीं है व्याधि जिससे बल बढे जि  
ससे अर्थात् रोगनाशक बल का हेतु अन्न दे। किंच अन्न के दाता  
र को प्रकर्षण वढाय। किंच हमारे पुत्रादिकों और गवादिकोंमें अ  
न्न को स्थापन करि अथवा मनुष्यों पशुओं के अर्थ अन्न को दे अ  
र्थात् सवनर पशुओं के अर्थ अन्न को दे ॥ ८३ ॥

इति गिरिधरभाष्ये सप्तमोनुवाकः ७

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दनिवारयन्

पुमार्थाश्चतुरो देयादग्निदेवः सनातनः

इति श्री मच्छुक्त यजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनी शाखाध्येतृ व्याघ्रपादा  
न्वय विश्वामित्रपुराधिप श्रीमज्जयकिशोरदेव बर्माज रौकिम  
रोय नृपति गिरि प्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये  
उरवादि समिदाध्यन्त वर्णनो नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

श्रीवेदार्थप्रदीपकरिवोद्बुद्धदयः प्रज्ञान ॥ चास्यैव अर्थनुदेतु है यज्ञपुरुष भगवान्

हरिः श्रीम्

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्बहुरूपकम्

स्वानन्ददायकं कृष्णब्रह्मरूपपरं स्तुमः १

अ० १ हृशानोरुक्मः ॥ हृशाने रुक्मः उर्व्या व्यद्यौ हुर्मर्षमायुः-  
श्रियेरुचानः ॥ अग्निरमृतोऽभवद्वयोभिर्ज्जैर्नन्यो  
रजनसुरेताः ॥ १ ॥

ओं नमो याज्ञवल्काय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके ॥

रुक्मादिवाचनान्तोयं द्वादशोऽध्याय ईर्यते

एकादशमे अध्यायविषे उरवा सम्भरणादि मन्त्र कहे द्वादशमे में-  
उरवाधारणादि मन्त्र कहिते हैं तत्र का० १६० ५० १० समिदाधानके अंत  
में ईशानदिशामें खड़ा होकर यजमान ग्रीवाविषे स्वर्णनिर्मित फ  
लकाकार आभरण विशेष बांधै की दृशं वर्तुल एकविंशति पिण्ड हैं  
जिसमें। शरणपत्र तुल्य स्वरूपसै बाहिर ऊंचे विन्दु पिण्ड कहलाते  
हैं। कृष्णाजिनखण्डविषे श्वेतकृष्ण रोमस्थानमें त्रिगुण शरणसूत्र  
में पिरोहि नाभिके ऊपर वर्तमान पिण्ड हैं ते बाहर होवें तैसधारण  
करै ॥ रुक्मदेवत्या त्रिष्टुप् वत्स ग्रीहृष्टा आदित्याध्यासेन रुक्मः स्तूय  
ते। रुक्म आभरणविशेषः उर्व्या बड़ी रीप्पिकरि के व्यद्यौत् प्रका  
शित होता है। कैसां हे रुक्म कि दृशानः प्रत्यक्ष प्राप्त है। जनों को श्री  
देने योग्य। अनव खण्डित किसी सै नतिरस्कार किया जावै वा जीव

न की रुचता है। सो यह अग्नि। पशुपुरोडाशादि करि अमरणधर्मा होता हुआ जिस कारण छु लोकवासी देवगण इस अग्नि को जन्मा ते हुए केसी हैं द्यौं कि शोभन है वीर्य अग्निरूप जिसका तिससे न मृतत्व योग्य है ॥१॥

नक्तोषा सासमनसा विरूपैषा पये ते शिशु मे कर्ठ समीची ॥  
द्यावा क्षामा रुक्मोऽ अन्तर्विभाति देवाऽ अग्निन्धारय-  
न्द्रविणोदाः ॥२॥

का० १६० ५० ३० बर्तुलाकार उखाधारण साधन रूप दोड़ण्डू करि उखा को ग्रहण करें ॥ अग्निदेवत्या विष्टुप् कुत्सदृष्टा अर्धसुराग्रह रोविनियुक्तम्। नक्त रात्रि उखा अह नक्तोषसो रात्रिदिविसो एक अग्नि को धापयेते सायं प्रातः अग्निहोत्रादि कर्मो करि नर्पण करते हैं। तत्र लुप्तोपमानं शिशु-बालक को जैसे मातापिता केसी हैं नक्तोष सों कि समान है मनजिनों के परमैक्यं मत्युक्तविलक्षण हैं रूपजि नों के कृष्ण रात्रिः शुक्लमहः। भली भांति समन्वित जे ऐसे रात्रिदिन तिन ईं डूरूपी-ओं सें उखा को ग्रहण करता हूं इति शेषः ॥ का० १६० ५० ४०। आहवनीय के ऊपर स्थित उखा को ईं डू-ओं सें लेके द्यावा क्षामा इसपाद करि आसन्दी प्रतिलावे ॥ द्यावा क्षामा (पृथिवी) के मध्य और अंतरिक्ष के विषें जो रुक्म (रोचमान) अग्नि प्रकाश है तिसें लाता हूं इति शेषः ॥ का० १६० ५० ५० आहवनीय सें पूर्वदिशामें भूमि पर स्थापन की हुई आसन्दी विषें उखा को देवा इसपाद करि स्थापन करें। उक्तात्रासन्दीवत् प्रादेश मात्र पादयुक्त उदुंबरकाष्ठरचित अरत्ति

मात्र मूज की रेञ्जु करिबुनी तथा चतुः कोण हैं संगपादजिस के ओर  
शिक्य सहित बर्तमानतिस में ॥ दीव्यन्ती व्यवहरंतीति देवता प्राण य-  
जमान की अग्नि कोधारण करते हुए। कैसे हैं देवता कि द्रविणोदाः  
याग द्वार करि धन रूप फल को देते हैं। तिसै में धारण करता हूं इति श्रे-  
षः ॥ अग्निं धारयन् द्रविणोदा इत्याह प्राणवै देवा द्रविणोदा इति ते-  
त्तिरीय श्रुतेर्देव शब्देन प्राणा उच्यन्ते ॥ २॥

विश्वारूपाणि प्रति मुञ्चते कविः प्रासां बीजं ब्रह्मि पदे चतु-  
ष्यदे ॥ बिना के मख्यत्सविता वरेण्यो नु प्रयाण मुखसो विरा-  
जति ॥ ३॥

का० १६.५.६ ऊंचे को नियमन करते हैं जिन्हों से ते उद्यामरञ्जु हैं छै  
उद्यामरञ्जु हैं ऊर्ध्वकर्षण हेतु जिसके ऐसे आसन्दी पर स्थित शि-  
क्यपाश को यजमान कण्ठ में बाँधे ॥ सवितृदेवत्या जगती श्यावाश्च  
दृष्टा। कवि-विद्वान् क्रान्तदर्शन श्रेष्ठ सविता। एतितमका निधारण  
करि सब रूपों का प्रकाश करता है। और जो मनुष्य पश्यादिकों के अर्थ  
कल्याण अपने अपने व्यवहार प्रकाशान रूप श्रेय की प्रेरणा करता है।  
जो नाक (स्वर्ग) को व्यख्यत प्रकाश करता है। और जो उषः काल  
के व्यतीत होने पर विशेष करि प्रकाशता है। उषा सविता की पुरोगामि-  
नी यह सविता की स्तुति है। ईदृशः सविता शिक्य को प्रति मुञ्चनक  
रे इति शेषः ॥ ३॥

सुप० लो० सि० गुरुत्मां स्त्रिवृत्ते शिरो गायत्र च सुहृद्वृत्त  
रेपक्षी ॥ स्तोमः आत्मा छन्दाश्च स्पृङ्गो नियजूंश्च सिन्धुम ॥

सामतेतनूवीमदेव्ययज्ञायज्ञियम्पुच्छंधिष्याः शफाः ॥

सुपर्णोसिगरुत्मान्दिवङ्गच्छस्वः पत ॥४॥

का० १६.५.७. शिष्य सहित उरव्याग्निको पूर्व में पिएडवत् ऊंची बाहुओं से ऊँची धारण करे. कुछ एक आचार्यों ने इस मंत्र करि उरव्याग्निको अभि मंत्रण भी कहा है ॥ गरुत्म हेवत्या विषहन्त्री चतुरवसाना कृतिः ॥ हेऽग्ने तू सुपर्ण शोभनपर्ण पतनजि सका वोह पक्षिरूप हे पक्ष्याकार करि चित्तव से ॥ तत्र दृष्टांतः गरुत्माना रुड जैसे पक्षिराज हेत द्वत् ॥ तिसके अवयव कहिते हे ॥ त्रिष्टोम तेरा शिरः स्थानीय है ॥ गायत्रारव्य साम तेरा नेत्र स्थानीय है ॥ बृहद्रथन्तरारव्य सामनी तेरे पक्ष स्थानीय हैं ॥ पंचदश स्तोम तेरा आत्मा अन्नः करण स्थानीय है ॥ गायत्र्यादिक एकविंशति छंद तेरे हृदयाद्यंग स्थानीय हैं ॥ इषेत्वा इत्यादि यजूंषि नाम स्थानीय हैं ॥ वामदेव्य साम तेरा तनूः शरीर स्थानीय है ॥ यज्ञायज्ञि यारव्य साम तेरा पुच्छ स्थानीय है ॥ होत्रादि धिषाय स्थिता अग्नितेरे खुर स्थानीय हैं ॥ हेऽग्ने ॥ एवं भूतनू यतः गरुड इव पक्षिरूप है अतः आकाश प्रति गमन करि और तहां से स्वर्ग लोक को प्राप्त हो ॥४॥

विष्णोः क्रमोसि सपत्नहा गायत्र्यच्छन्दः आरोह पृथिवीमनु विक्रमस्व विष्णोः क्रमोस्यभिमातिहात्रैष्टुभच्छन्दः आरोहान्तरिक्षमनु विक्रमस्व विष्णोः क्रमोस्यरातीयतोहन्ता जागतच्छन्दः आरोह दिवमनु विक्रमस्व विष्णोः क्रमोसिशत्रूयतोहन्तानुष्टुभच्छन्दः आरोह दिशो नु विक्रमस्व ॥५॥ + वि-सा ॥ २० ॥ ३० ॥ ४० ॥ ५॥

का० १६.५.११ विष्णुक्रमसंज्ञकपादन्यासों को करै-तिस-तिसक्रमण  
में उखा की अग्नि के ऊर्ध्व को ग्रहण करना ॥ चत्वारि यजूर्ध्विलिङ्गो-  
क्त उखाग्निदेवत्यानि। विष्णुशब्देनाग्निरुच्यते सयः सविष्णुर्यज्ञः  
सयसयज्ञोऽयमेव स योऽयमग्निरुखायामिति श्रुतेः शत ६.७.२.११॥  
हे प्रथम पाद विन्यास तू विष्णु (यज्ञ-अग्नि) का क्रम है और सपत्नी  
का घातक अतः अनुग्राहकत्वेन गायत्री छन्द स्वीकार करितः  
भूदेवता रूप इस प्रदेश को विशेषण प्राप्त हो एव मुत्तरेष्वपि मन्त्रेषु  
योज्यम्। हे द्वितीय पाद न्यास तू हे घातकों वा पापियों का घातक त्रि  
ष्टुप् छन्द को स्वीकार करि अन्तरिक्ष प्रदेश को व्याप्त हो। हे तृतीय पा  
द दानाभाव की इच्छा करने वालों का घातक जगती छन्द को ध्रुलो  
क को व्याप्त हो चतुर्थ पाद हन्तृत्व की इच्छा करने वालों का नाशक अ  
नुष्टुप् छन्द को यहां चारों पाद न्यासों में यजमान आत्मा को विष्णु  
त्व करि भावना करै-चारों प्रक्रमाओं के प्रदेशों को पृथिव्यादिलोक  
रूपत्वेन भावना करै ॥ का० १६.५.३ दिशोऽनुविक्रमस्वेति सवदिशों  
को देखे हे अग्ने तू प्राच्यादि दिश व्याप्त हो ॥ ५ ॥

अकन्दग्निस्तनयन्निवद्योः क्षामारे रिह द्वी रुधः समञ्ज  
न ॥ सद्यो यज्ञानो विही मिद्धोः अख्य दा रोदसी भानुना  
भात्यन्तः ॥ ६ ॥

का० १६.५.१४ ऊँची बाहुओं से प्राक् ऊँचे अग्नि को ग्रहण करै ॥  
अग्निदेवत्या त्रिष्टुप् वत्स ग्रीहृष्टा जैसैद्यौ (मेघ) गर्जता है तैसै अ  
ग्नि घोरता है। मेघसाधर्म्य माह जैसै मेघजलभाव को प्राप्त होता अ

त्यन्त भूमि को आस्वादित करता है। स्व कीयज्वाला समूह से ओषधी  
ओं को व्याप्त होता। अन्यदप्युच्यते उत्पन्न होते ही सद्यदीप्त हो इस  
सब को विविध प्रकाश करता है। अन्यच्च जो अग्निद्यावा पृथिवी के  
बीच में रश्मियों करि अपने को समन्तात् प्रकाशता है जैसे पर्जन्य  
विद्युद्रूप करि द्यावा पृथिवी के बीच प्रकाशता है एवं अग्निः पर्जन्य  
वत्स्तूयते ॥ ६ ॥

अग्नेभ्यो वर्तिन्नभिमानि वर्त्तस्वायुषा वर्च्चसा प्रजया  
धनेन ॥ सुन्या मे धयोरय्या पोषेण ॥ ७ ॥

का. १६. ५. १५. ऋक् चतुष्टय करि चारि वार उरव्याग्नि को अपने समीप  
में लावे ॥ अग्नि देवत्यो ध्वं बृहती है अस्मदभि मुख गमन शील है  
अग्ने आयु प्रभृति से मेरे प्रति शीघ्र आगमन करि आयु जीवन  
करि ब्रह्म तेज पुत्रादिक प्रजाधन दृष्ट लाभ धारणा वती बुद्धि  
सुवर्ण लङ्कार आयु प्रभृतियों के पोष करि ॥ ७ ॥

अग्नेः अङ्गिरः शतन्ते सन्त्वारुतः सहस्रन्तः उपावृतः ॥  
अधा पोषस्य पोषेण पुनर्नो नष्ट मा क्क धि पुनर्नो रयि मा  
क्क धि ॥ ८ ॥

हे अङ्गिरः अङ्गियों के रसभूत अङ्ग सौष्टव युक्त हे अग्ने तेरी शत  
संख्या का आवृत्ति शक्ति हैं। तथा तेरी सहस्र संख्या का उपावृत्ति  
शक्ति हैं अपने ही आवर्त्तन को आवृत् अर्थात् तुरू समीप व  
र्त्ती पुरुषों और द्रव्य विशेषों का वर्त्तन उपावृत्ति हम लोकों विषे अ  
ति शय स्नेह करि के तू भी फिर-फिर आवर्त्त करि त्वदीयाः पुरुषाः

और तेरे द्रव्य पुनः-पुनः आवर्तन करें। और शत सहस्र संख्याक आवृत्ति शक्तिओं का जो पोष समृद्धि तिस पोष का अन्य पोष अ युत लक्षादि संख्या का भिवृद्धि तिस पोष करि हमारे नष्ट धन को फिर करिके प्राप्त करि फिरि भी हमारे पूर्व असम्पादित धन को सर्वतोऽसम्पादित करि ॥ ८ ॥

पुनरुज्जानिवर्तस्व पुनरग्नः दूषायुषा ॥ पुनर्नः पात्य  
हिंसः ॥ ९ ॥

आग्नेयो द्वे गायत्र्यो हे अग्ने तू क्षीरादिरस सहित पुनः यहां आ। अ न्न और जीवन सहित पुनः आ आकर तू ह में पाप से रक्षा कर ॥ ९ ॥

सहरय्यानि वर्तस्वाग्नेपि न्वम्बधारया ॥ विश्वप्स्यामि  
श्वतस्परि ॥ १० ॥

हे अग्ने धन सहित पुनः प्राप्त हो किंच वृष्टिरूप जलधार करि सब तरुणधान्य लतापादपाओं के ऊपर सींचि। कैसी धारा कि सबों करि पान करिये हे वासव जनोपभोग्या धनधार करि सर्वतोऽधिगत अर्थों से पूर्णमाण करिके सींचि अर्थात् अनव छिन्न धन देने न पुनः-पुनः पूरि ॥ १० ॥

आत्वा हार्षमन्तरभूर्ध्रुवस्तिष्ठविचाचलिः ॥ विशस्त्वा-  
सर्वावाञ्छन्तु मात्वद्राष्ट्रमधिभ्रशत ॥ ११ ॥

का० १६० ५० १६० नाभि के ऊपर उरव्याग्नि को धारण करते तिसे अभिमन्त्रित करें ॥ आग्नेय्यनुष्टुब्धुवदृष्टा हे अग्ने में तुम्हें आह्वरण करता हूं और तू उरवा के मध्य में अवस्थित है। अत्यन्त च



त्यन्त भूमि को आस्वादित करता है। स्व कीयज्वाला समूह से ओषधी  
ओं को व्याप्त होता। अन्यद्रव्युच्यते उत्पन्न होते ही सद्यदीप्त हो इस  
सब को विविध प्रकाश करता है। अन्यच्च जो अग्निद्यावा पृथिवी के  
बीच में रश्मियों करि अपने को समन्तात् प्रकाशता है जैसे पर्जन्य  
विद्युद्रूप करि द्यावा पृथिवी के बीच प्रकाशता है एवं अग्निः पर्जन्य  
वत्स्तूयते ॥६॥

अग्नेभ्यावर्तिन्नभिमानिर्वर्तस्वायुषावर्चसाप्रजया  
धनेन ॥ सुन्यामेधया रय्या पोषेण ॥७॥

का० १६.५.१५. ऋक् चतुष्टय करि चारि वार उरव्याग्नि को अपने समीप  
में लावे ॥ अग्नि देवत्यो ध्वं ब्रह्मती है अस्मदभि मुख गमन शील है  
अग्ने आयु प्रभृति से मेरे प्रति शीघ्र आगमन करि, आयु जीवन  
करि ब्रह्म तेज, पुत्रादिक प्रजा, धन, इष्ट लाभ, धारणा वती बुद्धि,  
सुवर्ण लङ्कार, आयु प्रभृतियों के पोष करि ॥७॥

अग्नेः अङ्गिरः शतान्ते सन्त्वारुतः सहस्रान्तः उपावृत्तः ॥  
अधापोषस्य पोषेण पुनर्नो नष्ट माह्वि पुनर्नोरियिमा  
ह्वि ॥८॥

हे अङ्गिरः, अङ्गियों के रसभूत अङ्ग सौष्टव युक्त हे अग्ने तेरी शत  
संख्या का आवृत्ति शक्ति हैं। तथा तेरी सहस्र संख्या का उपावृत्ति  
शक्ति हैं अपने ही आवर्तन को आवृत् अर्थात् तुरू समीपव  
र्त्ती पुरुषों और द्रव्य विशेषों का वर्तन उपावृत्ति हमलोकों विषे अ  
ति शय स्नेह करि कै तूमी फिर-फिर आवर्त करि त्वदीयाः पुरुषाः

और तेरे द्रव्य पुनः-पुनः आवर्तन करें। और शत सहस्र संख्याक आवृत्ति शक्तिओं का जो पोष समृद्धि तिस पोष का अन्य पोष अ युत लक्षादि संख्या का भिवृद्धि तिस पोष करि हमारे नष्ट धन को फिर करिके प्राप्त करि फिरि भी हमारे पूर्व असम्पादित धन को सर्वतोऽसम्पादित करि ॥ ८॥

पुनरुज्जानिवर्तस्व पुनरग्नः दूषार्युषा ॥ पुनर्नः पात्य  
हिंसः ॥ ९ ॥

आग्नेयो द्वे गायत्र्यौ हे अग्ने तू क्षीरदि रस सहित पुनः यहां आ। अ न्न और जीवन सहित पुनः आ आकर तू ह में पाप से रक्षा कर ॥ ९ ॥

सहरय्यानि वर्तस्वाग्नेपि न्वस्वधारया ॥ विश्वप्रसादि  
श्वतस्परि ॥ १० ॥

हे अग्ने धन सहित पुनः प्राप्त हो किंच वृष्टिरूप जलधार करि सब तरा धान्य लता पाद पाओं के ऊपर सींचि। कैसी धारा कि सबों करि पान करिये है वा सब जनो पभोग्या धनधार करि सर्वतोऽधिगत अर्थों से पूर्णमाण करिके सींचि अर्थात् अनव छिन्न धन दाने न पुनः-पुनः पूरि ॥ १० ॥

आत्वा हार्षमन्तरभूर्ध्रुवस्तिष्ठविचाचलिः ॥ विशस्ता-  
सर्वावाञ्छन्तु मात्वद्राष्ट्रमधिभ्रशतू ॥ ११ ॥

का० १६० ५० १६० नाभि के ऊपर उरव्याग्नि को धारण करते तिसे अभि मन्त्रित करें ॥ आग्नेय्यनुष्टुब्धुवदृष्टा हे अग्ने में तुम्हें आह रण करता हूं और तू उरवा के मध्य में अवस्थित है। अत्यन्त च

+ अने वै विप्रः इति श्रुते

लने सैं रहित स्थिर हो कै तिष्ठ ॥ किंच संपूर्ण प्रजा तुमैं वाञ्छा करै वा  
सर्व अन्न तेरें स्थित रहें + तेरे सकाश सैं यह राष्ट्र (जनपद) शून्य मत  
हो अर्थात् इस राज्य में स्थित हो कै संपूर्ण प्रजाओं का पालन करि  
वा श्री शून्य तुम सैं नहो ॥ ११ ॥ श्री वैश्वं मातृवत्प्रीरधिभूत इति श्रुते :

उदुत्तमं वरुणपाशम् सदबाधमं विमध्यमं अथाय ॥

अथावयमादित्यव्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥ १२ ॥

का० १६. ५. १७. रुक्मपाश शिख्यपाश दोनों को गले सैं ऊर्ध्व मार्ग-  
करि कै निकालै ॥ वरुण देवत्या त्रिष्टुप् श्रुतः शेषदृष्टा ॥ हे वरुण उ-  
त्तमाङ्ग शिरमें स्थित अपनी पाश को मेरे सकाश सैं विनाशि अध-  
माङ्ग पाद प्रदेश में स्थापित अपनी अधम पाश को निकाल करि  
हम सैं विनाश करि मध्यम प्रदेश में स्थित पाश को विच्छेद करि  
र पाश त्रय विनाश के अनन्तर हे आदित्य अदिति के पुत्र वरुण  
तेरे व्रत कर्म में निष्ठाप वर्तमान हुए हम अखण्डितत्व के अर्थ  
योग्य होंवें ॥ १२ ॥

अग्ने वृहन्नुषसा मूर्ध्वोऽस्थानिर्ज्जगन्वान्तमसोज्यो

तिषागात् ॥ अग्निर्मानुनारुशतास्वङ्ग आजातां वि

श्वासान्य प्राः ॥ १३ ॥

का० १६. ५. १७. पूर्व मन्त्र सैं पाशों को मोचन करि ऊर्ध्व बाहु आ-  
ग्नेयी दिशा प्रति उरव्याग्नि को धारण करै ॥ अग्नि देवत्या वित-  
दृष्टा ॥ आदित्यात्म नाग्नेः स्तुतिः क्रियते ॥ बडे प्रभाव सैं यह ह-  
हृदग्निः प्रातः कालों के मुख में ऊपर स्थित हुआ वा अग्नि होत्र

की आदि में बोध्य मान उठता है। और जो एत्रि लक्षण तम से निर्गत हो दिवस लक्षण ज्योति सहित यहां प्राप्त हुआ वोह अग्नि उत्पन्न मात्र ही सब स्थानों (लोकों) को अपने तेज करि सर्वत्र पूर्ण करता हुआ। कैसा है रुश ता कि तम का नाश करता रश्मिओं से शोभन शरीर ॥१३॥

हृं सः शुचिषद्वसु रन्तरिक्ष सद्योता वेदिषदतिथिर्दुरेणसत् ॥

नृषद्वरसद्वत सद्यो मसदज्ञा गोजाः ऋतजाः अद्रिजाः

ऋतं बृहत् ॥१४॥ † ह-मू. अ. बृ-त्। इ० ॥१४॥

का० १६.५.१०. उरव्याग्नि को अवतारों अग्नि प्रोक्षण में यह जगती यजुरन्ता कही गई। राजसूय प्रकरण में यह अतिजगती कही गई परन्तु यहां जगती अन्त में बृहत् यह यजुः तिसका विनियोग कहते हैं- का० १६.५.१४. बृहदिति यजु करि उरव्याग्नि को आसन्दी में स्थापन करें ॥ हंस इति मन्त्रस्तु व्याख्यतः ॥१०.२४.॥१४॥

सीदत्व म्मातुरस्याः उपस्थे विश्वान्यग्ने वयुनानि विद्वान् ॥

मैनान्तपसा मार्चिषाभि शौचीरन्तरस्या थं शुक्रज्योतिर्वि भाहि ॥१५॥

का० १६.५.२०. आसन्दी निधानानन्तर उरव्याग्नि को तीनि ऋचाओं से उपस्थित करें। अग्नि देवत्या विष्टुप्। हे अग्ने तू माता की समान उरवा के उत्सङ्ग में बैठि कैसा है तू कि सर्व पदार्थ तत्व वेदी। किंच इस उरवा को सन्ताप से मत सन्ताप करि और ज्वाला से मत दीपन करि अर्चि कारण है कार्य से बहुत ताप होता है कारण करि कैथोडा ताप होता है- तिन दोनों को मत करि इस उरवा के मध्य में निर्मल प्रकाश होके

विशेषेण प्रकाशकरि ॥१५॥

अन्त रग्ने रुचात्वमुषायाः सदेनेस्वे ॥ तस्यास्त्वर्द्धहरसात्  
पुजात वेदः शिवो भव ॥१६॥

अग्नि देवत्ये द्वे अनुष्टुभौ । हे अग्नि तू उखाके मध्यस्वीयस्थान-  
में प्रकाश युक्त होके बैठ इति शेषः । किंच हे जात वेद (सर्वज्ञ वा जात वि-  
ज्ञान) ज्योतिषतपन होके तिस उखा का कल्याण कारी हो ॥१६॥

शिवो भूत्वा मध्यमग्नेऽथो सीद शिवस्त्वम् ॥ शिवाः कृ-  
त्वादिशः सर्वाः स्वं योनिमिहासदः ॥१७॥

हे अग्ने मेरे अर्थ शान्त होके निरन्तर सर्वात्मासै शान्त होके रिसर्व दि-  
शा ओं को शान्त करिके अपने स्थान उखा में आकरिके बैठे ॥१७॥

अ० २ दिवस्पृष्टिप्रथमं यज्ञेऽग्नि रस्म द्वितीयमग्निं जात वेदाः ॥

तृतीयं मप्सु नृमणाऽअजं स्त्रिमिन्धानऽएनं जरते स्वाधीः १८

का० १६. ५. २६. १२ दिवस्परीति एका दश ऋचा वात्स प्रसे उखाग्नि  
को उपस्थित करे कोईक आचार्य द्वादश ऋचाओं से कहते हैं ॥

अग्नि देवत्या द्वादश त्रिष्टुभो भलन्दन पुत्रवत्स ग्रीहृष्टा । अग्नि प्र-

थम दिव (प्राण) के सकास से उत्पन्न हुआ । और जात वेदाः अग्नि

द्वितीय वार मेरे सकाश से ब्रह्माने उत्पन्न किया नृमणा नरे में म-

न जिस्का प्रजापति अनुपक्षीण अग्नि को जलों में व्यवस्थित तृती-

यवार उत्पन्न करता हुआ । एवं स्वाधीः (यजमान) दूस वहु जन्माग्निको

दीपन कर उत्पन्न करता है ॥ यदायमर्थः । अग्नि प्रथम सूर्यरूप

करिके ध्रुव लोक के ऊपर उत्पन्न हुआ । मेरे मनुष्य लोक के ऊपर

+ माणवे दिवः प्राणदवाप्यप्रथममग्निं  
यज्ञेति श्रुतिः शत० ६. १. ३.

+ यदेनमहे द्वितीयं पुरुषं विप्रो जनयदिति श्रुतेः ६. १. ४. ३. स मुखाच्च योने हस्ताभ्यां चाग्निमसृजते तिस्र-  
श्रुतेः स पुरुषविभु इत्यग्नेः

+ यदेनमहे तृतीयं यमं द्याः जनयत । अथ योगर्भोऽअन्त र सीत्सोऽग्नि रसृज्यत प्रजापतिर्वेनृम-  
णाऽअजं स्त्रिमिन्धानादि श्रुतयः

जातवेदः प्रसिद्ध वह्निरूप करिके द्वितीय जन्म को प्राप्त हुआ। अ  
प्सु, समुद्र में बड़वानल रूप से तृतीय वार उत्पन्न हुआ। और ती  
नों जन्मों में यजमानों विषे अनुग्रह बुद्धि युक्त है इस अग्नि को  
पुरोडाशादि करि प्रकाश करता। स्वायत्तचित्त यजमान जरा पर्य  
न्त सेवा करता है ॥१८॥

विद्यातेऽअग्ने त्रेधा त्रयाणि विद्याते धाम विभृता पुरुत्रा ॥  
विद्याते नाम परमं दुःहाय द्विमात मुत्संयतऽआजगन्थः ॥१९॥  
हे अग्ने जे पूर्व मन्त्र में दिवस्परीत्यादि करिके आदित्य, अग्नि,  
बड़वानल तीन प्रकार से स्वरूप कहे गए तिन तीन संख्याक तेरे सं  
बंधी रूपों को हम जानते हैं। बातीन प्रकार करि विभक्त अग्नि वा  
यु सूर्याख्य तेरे रूपों को हम जानते हैं। किंच तेरे संबंधी पुरुत्रा, बहुत  
प्रदेशों में गार्हपत्य आवहनीय अन्वाहार्य यचनाग्नीध्रीय रूपों  
विषे विहृत स्थान भी हम जानते हैं। किंच तेरा परम उत्कृष्ट गुहामें  
जो अवस्थित गोप्य यविष्ठ इत्यादि मन्त्र प्रसिद्ध नाम है तिसै भी  
जानते हैं। किंच जल रूप स्थान से वैद्युत रूप करि आया है तिस उ  
त्पन्न जल रूप स्थान को हम जानते हैं ॥१९॥

समुद्रे त्वानृमणाऽअप्सु नन्वृचक्षाऽईधे दिवोऽअग्नः ऊ  
र्ध्वम् ॥ तृतीयै त्वा रजसि तस्थिवां संमया मुपस्थेमहिषा  
ऽअवर्धन् ॥२०॥

हे अग्ने नृमणा प्रजापति समुद्र में बड़वानल रूप करिके वर्तमा  
न तुम्हें प्रकाश करता हुआ। नृचक्षाऽमनुष्यों में मन्त्रों को विस्पष्ट

कहिने वाला प्रजापति जलों वृष्टिरूपों के मध्यमें विजली रूप करिके स्थित तुम्हें प्रकाश करता हुआ। तथा द्युलोक के ऊर्ध्व स्थानीय समुद्र रूप वृष्टि की अपेक्षा करिके तृतीय स्थान तेजमण्डलमें आदित्यात्मा से वर्तमान तुम्हें नृचक्षाही प्रकाश करता हुआ। किंच महिषा महान्त प्राण जल के उत्सङ्ग वा जलों के मध्यमें स्थित तुम्हें बडा करता हुआ ॥ २० ॥

अक्रन्दग्निस्तनयन्निवृद्धोः क्षामारेरिह द्वीरुधः समञ्जनः ॥  
सद्योयज्ञानो विहीमिदोऽखरव्यदारोदसीभानुनाभात्यन्तः ॥ २१ ॥

व्याख्याता ॥ २१ ॥

श्रीणमुदारोधूरुणोरयीणां मनीषाणां प्रार्थणः सोमगोपाः ॥ व  
सुः सूनुः सहसोऽप्सुराजा विभात्यग्रऽउषसामिधानः ॥ २२ ॥

एवं प्रकार अग्निः विशेषेण प्रकाश है कैसा है अग्नि कि गवाश्वादि संपदा को अत्यन्त देने वाला धनों का धारण करने वाला। अभिलाषियों का प्रकर्षेण अर्पण करने वाला। यजमान कर्तृक सोम याग का रक्षक सबका निवास हेतु वाधन रूप जैसे अन्य शयनासन रथा दिधनों को समीपमें करते हैं तैसे यह भी ताप याक प्रकाश से जनों का उपकृती है अतः वसुः। सहस्य सूनुः वलस्य मन्थन वेगरूप का पुत्र है यतः मथ्यमान उत्पन्न होता है अतः एवं उच्यते। जल विषे अवस्थित वरुणात्मा से राजमान यद्वा वृष्टिरूपा जलों में विद्युद्रूप करि दीप्यमान। प्रातः काल में आदित्यात्मा से प्रकाशमान-उषः काल में अग्नि होत्र के होमार्थ अग्नियों को प्रकट करते हैं तिस

अभि प्रायसैं दीप्यमानः॥२२॥

विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भः आरोदसीः अपृणज्जायमानः॥

वीरुच्चिदद्रिमभिनत्यरायज्जनायदग्निमयजन्तपञ्च॥२३॥

बोह अग्नि उत्पद्यमान सूर्यात्मा सै प्रकटी हो के द्यावा पृथिवीओं को सर्वतः तेज करिके पूर्ण करता है। केसाकि विश्वस्य केतुः अग्न्यात्मा सै विशेष करिके ज्ञान भूत है। भुवनस्य गर्भ भूत जात के गर्भवत् मध्य में अवस्थित वाय्वात्मा करि बोह ही प्राण भाव सै भूतों के मध्य में गमन करता है। किंच जो द्रुन्दु रूप सै परापरतः गमन करि के हृद भी अद्रि न विदीर्ण होने योग्य मेघ को विदारण करता है। जिस अग्नि को पाँच मनुष्य यजन करते हैं विप्र सै आदिले चारि और पाँच वाँ निषाद वा चारि वडे ऋत्विज और यजमान॥२३॥

उशिक्यावकोऽपृतिः सुमेधामर्तेष्वग्निरमृतो निधायि ॥

इयर्त्तिधूममरुषम्भरिभ्रदुच्छ्रेणशोचिषाद्यामिनेक्षन्॥२४॥

जो अग्नि मनुष्यों में देवताओं करिके प्राप्त हुआ इति शेषः। बोह अग्निः अरुषं चक्षुरादि उपद्रव रहित तम। वाधूमको निकालता है केसा है अग्निकि उशिक प्यारा। पवित्र करने वाला पूर्ण मति वा दुष्टों में प्रीति करिके रहित सुन्दर बुद्धि वा सुयज्ञ अमृत अमरण मर्मा जंगत को धारण करता निर्मल प्रभाव सै आकाश को व्याप्त करता वानक्षत्र ग्रह ताराओं के संबंधी तेज करिके व्याप्त करता इतः प्रदानादि देवा उपजीवन्तीति श्रुतेः॥२४॥

दृशानोरुक्मः उर्याव्यद्योदुर्मर्षमायुः श्रियेरुचानः॥अ

इतो वाऽअयमू  
र्षः तैः सिञ्च  
ति धूमं तामु  
वा बुद्धिर्भवती  
ति श्रुतेः



ग्निरमृतोऽभवद्वयोभिर्यदेनं द्यौ रजनयत्सुरेताः॥२५॥

व्याख्याता १०॥२५॥

यस्तेऽद्य ह्यणवदद्र शोचेयूपन्देव घृतवन्तमग्ने॥प्रतन्ने-

यप्रतरं वस्योऽच्छाभिसुम्नं देवमक्तं यविष्ट॥२६॥

हे भद्र शोचे कल्याणकारिणी दीप्ति युक्त हे देव अग्ने प्रति पदामें जो पुरुष तेरे घृत युक्त उपस्तरणभियारणो पे त पुरोडाश को करता है स आज्यस्योपस्तीर्य द्विर्हविषोऽवदायाय प्राप्त ०१०७०२१ ऊपर से आज्यका अभिघोरण करता इति श्रुत्यभिप्रायम्। हे यविष्ट युवतमवामिं अपित तमतिस यजमान को प्रकृष्टतरस्थान उत्तमलोक को प्राप्त करि। अभिमुख्य से सर्वतः देवयोग्य सुख को प्राप्त करि सलोकमागच्छत्यशोकमहिमं तस्मिन्वसति शाश्वतीः समा इति बृहदारण्य ० मा ०४.१५०॥२६॥

आतं भजसौ अवसेष्वम उक्थः उक्थः आभज शस्यमाने॥

प्रियः सूर्ये प्रियोऽग्ना भवात्युज्जातेन भिनद्दुज्जनि त्वैः॥२७॥

सौ अवसेषु कीर्तिहेतुभूत यज्ञ कर्मों में हे अग्ने तू तिस यजमान को निरन्तर कर्मानुष्ठायिकरि। उक्थे-उक्थे निष्केवल्य प्रगाथादि रूपतिस तिस शस्त्र कर्म विषे प्रेरि एवं तुरू करिके सेवित यह यजमान सूर्य का प्यारो हो तथा अग्नि का प्यारो हो तथा उत्पन्न पुत्र करिके उदय (वृद्धि) को प्राप्त हो तथा पौत्रादि कों से वृद्धि को प्राप्त हो॥२७॥

त्वामग्ने यजमानाऽऽनुद्युन्विष्यावसुं दधिरे वार्यणि॥

त्वयो सहद्रविणमिच्छिमाना व्रजङ्गो मन्तमुशिजो विववुः॥२८॥

हे अग्ने तुमै यजमान सेवन करते सर्व कालों में प्रार्थ्य संपूर्ण यथेष्ट धन को प्राप्त होते हैं। किंचित्तेरे साथ स्थित हुए तुमै सेवन करने वाले यजमान यज्ञफल को इच्छा करने वाले ज्ञान कर्म के इकट्ठे करने वाले हो रविमण्डल विषे मार्ग को करते हैं। तदुक्तं ते यशवमे तद्विदुरित्युप क्रम्य देवलोकादादि यमिति ॥२८॥

अस्ताव्यग्निर्नराध सुशेवो वैश्वानर ऋषिभिः सोमगोपा ॥

अद्वेषेद्यावापृथिवीहु वेम देवायत्तरयिमस्मे सुवीरम् ॥२९॥

यजमान ऋत्विजों से अग्नि स्तुति किया। कैसा है अग्नि कि नरों के शोभन सुख को करने वाला जठराग्नि रूप से सब नरों के हित सोम का रक्षा करने वाला। अद्वेषे पादौ लिङ्गोक्तदेवौ। यतः अग्नि स्तुतः अतः द्वेषरहित द्यावापृथिवी को हम आह्वान करते हैं तिन्हें के आश्रित कर्म की वृद्धि के अर्थ। हे देवा अग्न्यादयः हमारे सुन्दर पुत्र युक्त धन को तुम स्थापन करो ॥२९॥

अ०३ समिधाग्निं दुवस्य तघृतैर्वै धयतातिथिम् ॥ आस्मिन्हव्या जुहोतन ॥३०॥

अथ वनी वाहनम् ॥ का० १६. ६. १५. उरव्याग्नि के उत्तर दिशामें प्राणी पशु कर्ष को स्थापन करि यजमान उरव्याग्नि वनी वाहन में समिदाधान करे ॥ आङ्गिरस विरूपाक्ष दृष्टाग्नेयी गायत्री व्याख्याता पृथक्ते ३. १. हे ऋत्विज यजमानो समिधा करिके अग्नि को परिचरण करि इस अतिथि अग्नि की चेता ओ। इस अग्नि में साकल्य से हवन करो ॥३०॥

उदुत्वा विश्वे देवाः अग्ने भरन्तु चित्तिभिः ॥ स नो भव शिव  
स्त्वर्धं सुप्रीती को विभावसुः ॥ ३१ ॥

का० १६. ६. १६. समिदाधान के अन्तर उदुत्वेति मन्त्र करिके आसनी  
सहित उरव्याग्नि को ऊंचे करि दक्षिण में स्थित यजमान शकट में  
तिस अग्नि को स्थापन करै ॥ तपस दृष्ट्याग्ने प्यनुष्टुप् ॥ हे अग्ने प्राण  
रूप सब देवता चित्तिभिः बुद्धि वृत्तियों करि तुम्हें ऊंचे को धारण करें हे  
अग्ने सो उद्धार्य माण तू मेरे कल्याण कारी हो ॥ कैसा है कि शोभन मुख  
दीप्ति ही है वसुधन जिसका वोह ॥ ३१ ॥

प्रेदग्ने ज्योतिष्मान्याहि शिवे भिरुर्चिभिष्टुम् ॥ बृहद्विर्भा  
नुभिर्भासन्माहिर्हं सीस्तन्वा प्रजाः ॥ ३२ ॥

का० १६. ६. १७. शकट में चुपके से वृषों को जोड़िके प्रेदिति मन्त्र से  
पूर्व को यथार्थ प्रयोजन वन्त देश को गमन करै ॥ अग्नि देवत्यानुष्टु  
प् ॥ हे अग्ने शान्त ज्वालाओं करिके प्रकाश युक्त तू गमन करि ॥ किंच  
घोट रश्मियों से जगत् को प्रकाश करता अपने दाहक शरीर से पुत्रा  
दिक प्रजा का तमनाश कारि ॥ ३२ ॥

अकन्ददग्निस्तनयन्निवद्योः क्षामारे रिहृदी रुधः समञ्ज  
न ॥ सद्यो यज्ञानो विहीमिद्धोऽपरव्य दारो र्दसी भानुना  
भात्यन्तः ॥ ३३ ॥

का० १६. ६. २०. अक्षमें खिरि-खिरि शब्द होते जपे व्याख्याता ६ ॥ ३३ ॥

प्र-प्राय मग्निर्मरुतस्य शृण्वे वियत्सूर्यो न रोचते बृहद्वा ॥  
अभियः पुरुषृतना सुतस्यो दीदायदैव्योऽपतिथिः शिवो नः ॥ ३४ ॥

का० १६० ६० २१० क्रियमाण उत्तरदिशा उद्धत वा उक्षित प्रदेशमें अग्नि को उतारै ततः अग्निमें प्र-प्रायमिति मन्त्रसे समिदाधान॥ वसिष्ठदृष्टाग्नेयी त्रिष्टुप्। यह अग्नि हवियों को धारण करता है भरतयजमान के आह्वान को श्रवण करता है इति शेषः वायजमान करिकिये आह्वान को श्रवण करता है। जो अग्नि सूर्य्य इव प्रकाशमान होता अत्यन्त प्रकाशता है। जो अग्नि संग्रामों में राक्षसके समुख ठहरता है। देव संबन्धी अतिथि हमारा मङ्गल रूप वोही अग्नि प्रकाशता है ॥ ३५॥

आपो देवीः प्रतिगृह्णीत भस्मे तस्यो नेक एध्वं सुरभा-  
उल्लोके ॥ तस्मै नमन्तां जनयः सुपत्नी म्मीते व पुत्रम्भि-  
भृताप्स्वेनत् ॥ ३५॥

का० १६० ६० २६० वनी वाहन के अनन्तर तडागादिजलस्थान को गमन करिके वटादि पत्र पुट करिके सायं प्रात उरवा के सकाशसे उठाया जो भस्म है तिसे एक ऋचा करि जलमें डाले अन्वेवत्या त्रिष्टुप्। हे जल दीप्यमान ओ भस्म को तुम स्वागतादि करि ग्रहण करे किंच पुष्यधूपादिकोंसे शोभन गन्ध युत लोक (स्थान) में इस भस्म को करे किंच सुपत्यः शोभन है वरुण पति जिन्हों का तेजल वृक्षोत्पत्यादि द्वारेण अग्नि को उत्पादन करती है तुम तिस भस्म रूप अग्नि के लिये ग्रहा होओ किंच हे आप इस भस्म को आत्मा में तुम धारण करे यथा माता पुत्र को स्वात्मा में धारण करती है तद्वत्प्रात्यत ॥ ३५॥

अप्स्वग्ने सधिष्टव सोषधीरनु रुध्यसे ॥ गर्भे स जायसे पुनः ॥ ३६॥

अपि वरुणस्य पत्रयः आपसन्निधितु नरात्

का० १६० ६० २७० तिसके अनन्तर पठित दोनों अश्वग्ने० गर्भोऽअ-  
सि० ऋचाओं से पत्रपुट करि द्वितीयवार उख्याग्नि भस्म को जल  
में प्राप्त करे ॥ विरूप दृष्टाग्नेयी गायत्री पूर्वमन्त्र करि मस्मातिथित्वसे  
स्तुति करि के दोओं से अग्नि के सर्व व्यापकत्व को कहते भस्माभ्य  
वहरण को अपहृत करते हैं हे अग्ने जलों में तेरे स्थान सौतू यवादिक  
ओषधि परिणाम को विपरिणाम करता वा जठराग्निरूप करि ओ  
षधियों को स्वीकार करता है किंच अरणियों के मध्य में स्थित हो-  
वास्वार उत्पन्न होता है ॥ ३६ ॥

गर्भोऽअस्योषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम् ॥ गर्भो विश्व  
स्य भूतस्याग्ने गर्भोऽअपामसि ॥ ३७ ॥

तिस्रोऽनुष्टुभोऽग्निदेवत्याः हे अग्ने तू ओषधिओं का गर्भ है भे  
षजरूप ओषधि विशेष करि के उत्पाद्य मानत्व से हे अग्ने तू वन  
स्पति (तरु) ओं का गर्भ है अरणिओं करि जाय मानत्व से सर्व प्राणि जा  
त का गर्भ है जठराग्निरूप करि विद्य मानत्व से और जलों का गर्भ  
है वाडव वैद्युतादिरूपत्व से ॥ ३७ ॥

प्रसद्य मस्य नायोनि मपश्च पृथिवी मग्ने ॥ सृष्टं सज्य मा  
तृभिर्बुज्योतिष्मान्पुनरासदः ॥ ३८ ॥

का० १६० ६० २८० जल में फेंके हुए भस्म के सकाश से अनामिका क  
रि प्रसद्येति चारि ऋचाओं से भस्म को ग्रहण करे ॥ हे अग्ने तू भस्म  
करि के योनि कारण मूला पृथिवी को और योनि भूत जलों को प्रा  
प्त होकर मातृ जलों से एक होकर तेजस्वी संपन्न हो फिर स्वस्थान उ

रवा में बैठि ॥३८॥

पुनरासद्यसदनमपश्चपृथिवीमग्ने ॥ शेषेमातुर्यथोपस्थे  
न्तरस्याथंशिदतमः ॥३९॥

हे अग्ने जलभूमिरूपस्थान को प्राप्त होकैफिरभी इस उखा के मध्य  
में तू शयन करि नाता के उत्सङ्ग में जैसे बालक सोता है कैसा है तू कि  
कल्याणतम ॥३९॥

पुनरुज्जीनिवर्त्तस्व पुनरग्न इषायुषा ॥ पुनर्नः पाह्य  
र्हिहसः ॥४०॥

सहरज्जानिवर्त्तस्वाग्नेयिन्वस्वधारया ॥ विश्वपत्यावि  
श्वतस्यरि ॥४१॥

हेव्याख्याते ४०॥४०॥ १००॥४१॥

बोधामेऽअस्यवचसोयविष्टमर्हिष्टस्यप्रभृतस्यस्वधा  
वः ॥ पीयतित्वोऽअतुत्वोगृणातिवन्दारुष्टेतन्वुवन्दे  
ऽअग्ने ॥४२॥

का० १६.६.३ तडाग से आकर अनामिका करि ग्रहण किये हुए  
भस्म को चुपकैसे उखा में प्राप्त करि बोधामे इन दो ऋचाओं करि  
कै उखाग्नि को उपस्थित करै ॥ दीर्घतमो दृष्टाग्नेयी विष्टुप् । हे अन्न  
वन् हे युवत्तम अग्ने मेरे वचन के अभिप्राय को जान इति शेषः वा  
मेरे वचन को जान । कैसे वचन के किमहिष्ट अतिशय करि कै बहु  
त तथा प्रभृत ओत्रयथ को प्रापित अर्थात् आदरोक्त के । किंच हे अग्ने  
एक पुरुष निंदा करता है एक तुम्हें स्तुति करता है कश्चिन् स्तोति कश्चि-

चिंदति इतिलोकस्वभावः एवं सति हे अग्ने में तेरे शरीर को स्तुति नम  
स्कार करता हूँ कैसा हूँ मैं कि वन्दनशील ॥४२॥

सर्वो धिसूरिर्मघवावसुपतेवसुदावन् ॥ युयोध्यु स्मद्वेषांश्च  
सि विश्व कर्मणे स्वाहा ॥४३॥ + स-सि अ-वि-हा इ- ॥४३॥

सोमाहुति दृष्टाग्नेयी यजुरन्ता गायत्री। विश्व कर्मणे स्वाहेति यजुः  
हेवसु धनपत हे धन के दाता सो तू मेरे अभिप्राय को जान। कैसा  
है तू कि यण्डित धनवान्। संतुष्ट हो दो भोग्यों को हमसे पृथक् करि  
। का० १६.७.१० स्तुवस्थानीय समिधा से घृत को ग्रहण करि कै उरव्या  
ग्नि में हवन करें। तिस कर्म की प्रायश्चिति संज्ञा ॥ यजुः। जगत्सृष्टि  
स्थित्यादि कर्म कर्त्रे तेरे अर्थ सुहुत हो ॥४३॥

पुनस्त्वादित्या रुद्रावसवः समिन्धता पुनर्ब्रह्माणोवसु  
नीथयज्ञैः ॥ घृतेन त्वन्तन्व व र्धयस्व सत्याः संनुय  
जमानस्य कामाः ॥४४॥

का० १६.७.२ घृत होम के अनन्तर उठा करि तिसही समिध को उ  
रव्याग्नि में आधान करें ॥ आग्नेयी त्रिष्टुप्। हे अग्ने आदित्याः  
रुद्राः और वसवः तुम्हें फिर उपशान्त प्रकाश करें। हेवसु नीथ ध  
न के निमित्त स्तुति जिस की बाधनों का लाने वाला तिसका संबोध  
न हे धननेतः ब्राह्मण ऋत्विग्यजमान यज्ञों करि तुम्हें पुनः प्रका  
श करें और तू अपने शरीर को हमारे दिये हुए घृत से बढा तेरी वृ  
द्धि में यजमान के काम सत्य हो ॥४४॥

अपेत वीत विचसर्ष्यतातो ये त्रस्य पुराणा ये च नूतनाः ॥

अदा द्युमो वसानमृथिव्याऽअक्रन्ति मम्यित रौलोक  
मस्मै ॥४५॥

अथ गार्हपत्यचयनमुच्यते ॥ का० १७.१३ पलाश शारवासै गार्हप  
त्यचितिके स्थान को व्यूहै अर्थात् तहां पड़े हुए तृण दिकों को स्थान  
सै बाहर निकाले अपेत वीति ऋचा के पछ पादों करिके प्रति दिशा को  
आदिमें प्राच्या मपेत वीतयेऽवस्थेति दक्षिणमें अदादिति पश्चात्  
क्रन्ति उत्तरमें ॥ लिङ्गोक्त बहु देवत्या त्रिष्टुप् अधर्चन तत्स्थान सर्पि  
ण उच्यंते पादेन यमः पादेन पितरः । यमस्य सर्वभूम्यधिपतित्वात्तद्भु-  
त्याः सर्वत्र चरन्ति तान्प्रत्युच्यते । हे यमभृत्य औजेचिरं तन औरजे नूत  
न तुम इस स्थान में हो ते सब तुम इस स्थान सै अति दूर गमन करौ  
और इस स्थान सै संघात को त्याग करि विविध गमन करौ । कस्माद्वय  
मपसर्पयामेत्यत आह पृथिवी के इस स्थान को यमदेव इस यजमान  
के अर्थ देता हुआ । और पितर इस लोक को इस यजमान के लिये क  
रते हुए । यम और पितरों करि इस चयन स्थान के यजमानार्थ देने सै  
तुम अपसर्पण हो औ ॥४५॥

अत्र भाविन्या  
वृत्त्या शालाहा  
यो गार्हपत्यश  
ब्दोच्यते तद्-  
थाचिति स्थिते  
स्थानमपि गार्ह  
पत्य एव ।

संज्ञानमसिकामधरणम्यिते कामधरणम्भूयात् ॥ अ

ग्नेर्भस्मास्यग्नेः पुरीमसिचितस्य परिचितऽऊर्ध्वचितः

अग्रहम् ॥४६॥ संसिः अ० का-मू० इ० म-तू० उ० अ-सि० अ० चि-मू० ल० ॥४६॥

का० १७.१४ जिस सै द्यु दहन किया तिस शारवा को उत्तर को फेंक करि  
गार्हपत्यचिति स्थान में क्षार मृदा को निर्वपन करे ॥ ऊष देवत्या नित्री  
णि १२ दै-पं० ३ या-पं० । हे ऊष स्वरूप तृप शुश्रूषों के सम्यक् ज्ञान का-



साधनहै पशुहैं ते ऊष देश की प्राण करि स्वादन करतेहैं। तथा मनो  
रथों को सम्पादन करताहै यज्ञद्वारा काम सम्पादकत्वसे। अतः तेरी-  
काम सम्पादन सामर्थ्य मेरें हो वा श्रुतिके अनुसार कर व्याख्यान तेरेका  
मधरण पशु मेरें होवें यतः तू कामधरण पशुरूप सम्यक् ज्ञापकहै उल्ब  
सम्भवात्॥ का० १७०१६० ऊषवत् सिकता निर्वपन करै॥ सिकता देवत्या  
आसु-पं०। हे सिकता स्वरूप तू अग्निका भस्म (भासक) है सिकता स्थ अ  
ग्नि अत्युग्र होता है। और अग्निका पूरण है॥ का० १७०१७० एकविंश  
ति परिश्रितों करि गार्हपत्यस्थान को वेष्टन करै पूर्ववत् प्रदक्षिण ऊंचे  
तेरव नित्येहें॥ परिश्रित देवत्यं आसु उ०। हे परिश्रित शर्करा औ तुम स  
र्वत स्थापिता हो ऊर्ध्व स्थापित हुई तुम इस गार्हपत्यायतन को सेवन  
करै॥ ४६॥

अयर्हसोऽअग्निर्यस्मिन्सोममिन्द्रः सुतन्देधेजुर्देवाव  
शानः॥ सहस्रियन्वाजमत्यन्नसप्तिर्हंसस्वान्सन्तसूयसे  
जातवेदः॥ ४७॥

का० १७०१८० ततः अध्वर्यु मण्डल से दक्षिण में पूर्व मुख बैठ कर मध्य  
में चारि अर्ध बहती संज्ञक दृष्टका प्राग्लक्षणा दक्षिणोत्तर पङ्क्ति-  
करि उत्तर को आरम्भ करिके समीप में धारण करै। अभ्यात्म्य च  
यन मित्युक्तेः॥ ऋक तुष्क से एक-एक को। हस्त दीर्घतिससे अर्ध आ  
याम पद्या लोक द्वय व्यापिनी दृष्टका अर्ध बहती कहियें हैं। पंच-  
ऋचो विश्वामित्र दृष्टा आग्नेय्यस्त्रिष्टुभश्चतुर्थ्यनुष्टुप्। दृष्टकाओं  
के उपधान को कर्त्ता अभिनयेन दिखलाता है यह गार्हपत्य सो अ

+ पशु वेदः ऊषपशवः कामधरणं पशु नैपशवो भूया सुरिति श्रुतेः शत० ७०१२०८०

+ न वाऽअग्निस्वभस्मातिदहति। अग्निरेतद्वै श्वानरस्यरेती पत्सिकता इव शत० ७०१२०८०१००

ग्नि इष्टकाओं करि चयन करिये है इति शेषः। जिस अग्नि में चित होने से इन्द्र सोम को अपने उदर में धारण करता है। कैसा इन्द्र कि का मयमान। कैसा है सोम कि सहस्रार्ह। वाज (अन्न) बहुतों का तृप्तिकरने वाला। भक्षण करते ही मद करने वाला। तृप्तिकरने वाला। अग्नि में चित्त हुए पर केवल इन्द्र हीनें सोम को जठर में रखा किंतु हे जात वेद हे अग्ने तू भी हवियों के सम्भजन कर ऋत्विग्य जमानों से स्तुत किया गया। उत्तरार्ध स्यायं वार्थः। हे जात वेद गमन कुशल अश्व-इव सहस्र संख्या कथन करि सम्मित अन्न देने से यजमानों करितु स्तुत है ॥४७॥

अग्ने यत्ते दिवि वर्चः पृथिव्यां यदोषधीष्वप्सा यजत्र ॥ ये नान्तरिक्षमुर्वीतुतन्यत्वेष्टः सभानुरेणो नृचक्षाः ॥४८॥  
हे आय जत्र मर्याद या यजनीय है अग्ने तेरी जो द्युलोक में दीप्ति अर्करूप वर्त्ते है और जो पृथिवी में अग्निरूप और जो ओषधी ओं में स्थित और जो जलों में स्थित और जिस दीप्ति करि अन्तरिक्ष को विस्तार करता है वोह भानु (दीप्ति) सकल विश्व को प्रकाश करती है अर्णवः अर्थात् उदक हैं जिसमें वा अरणवान् गमनवान् प्रसरणशील। नरों के शुभा शुभ कर्म का दृष्टा। ईदृश जो तेरी भानुति सी दृष्टा का रूप को उपधान करता हूं। अनेन त्रिस्थानोऽग्निः स्तुतः ॥४८॥

अग्ने दिवोऽर्णो मच्छा जिगास्यच्छा देवा रं ॥ ऊँ चिषेधि ष्याये ॥ यारो चने परस्तात्सूर्यस्य याश्चावस्तादुपतिष्ठन्तः आपः ॥४९॥

हे अग्ने शु लोक के संबंधि उदक को तू आभिमुख्येन प्राप्त हो । किंच जे देवता धिषण्या कहियें हैं तिन्ह प्राण रूप देवताओं को तू सन्मुख प्राप्त होता है किंच दीप्त रूप मण्डल में वर्तमान सूर्य के ऊपर नीचे जो जल उपतिष्ठें हैं तिस जल के तू आभिमुख्येन जाता है त्वमेवै तै रूपैः परिणमसीति भावः ॥४४॥

पुरीष्या सोऽग्नयः प्रावुरोभिः सजोषसः ॥ जुषन्तो यज्ञमद्रुहो नमीवाऽइषो मही ॥ ५० ॥

अनुष्टुप् । अग्नियें एते इष्टका रूपा हमारे इस याग को सेवन करें और नही हैं व्याधि (क्षुधा तृष्णानिबर्तिका बहुला और अन्न भक्त) अग्नियें सेवन करें । कैसे हैं अग्नि कि पुरीष्यः पशुओं से हित । तथा प्रकर्षेण मनसा प्रीति युक्ता । अहिंसता परस्पर प्रीतियुता ॥५०॥

इडामग्ने पुरुर्दसं सनिङ्गोः शश्वत्तमर्हं हवमानाय साध ॥

स्यान्नः सूनुस्तनयो विजा वाग्ने साते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ५१ ॥

का. १७. १. ११. इडामग्नः इति दोः ऋचाओं करि प्रतिमन्त्र पश्चिम में दोषाद् मात्री पाद्या निरश्ची उदग्लक्षणा उपधान करै उत्तर से अवस्थित दक्षिण मुख इडामिति दक्षिणां अयंत इति उत्तरां ॥ द्वे आग्नेय्यी त्रिष्टुबनुष्टुभौ । हे अग्ने हवमान (यजमान) के अर्थ अन्न को संपादन करि । कैसे अन्न को कि बहुत हैं कर्म जिस से अर्थात् बहु कर्म साधन भूत अन्न को दे । तथा अत्यन्त अविच्छेदन वर्तमान अनपायिन धेनु संबंधि दान पयोदधि घृतादिक को सर्वदा दे । किंच हमारे यजमानों के सूनुः (पुत्र) हो । कैसा सूनुः कितनयः और सः सूनु शब्देन

† आहूयति देवान्नु हीति वा यजमानः पशवा वा इडेति शत. ७. १. १. २०. तद्वली बर्द्धे रन्न स्रोत यमानत्वात्

उक्तत्वाद् न पुत्रादिव्यावृत्त्यैः अथवा तनयः अग्नि होत्रादि कर्मोका  
विस्तार करनेवाला तथा प्रजावान् हे अग्ने तेरी वह अन्न गौ पुत्रदान  
विषया शोभना बुद्धि अनुग्रहेण हम विषे हो यजमाने म्यस्त्वयान्नादि  
देयमिति भावः ॥५१॥

अयन्ते यो निःकृत्वियो यतो जातोऽऽरोच्यथाः ॥ तं जान  
न्नग्नः आरोहाथा नो वर्द्धयारुयिम् ॥५२॥

व्याख्याता ३.१४ ॥५२॥

चिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वध्रुवासीदपरिचिदसि तया  
देवतयाङ्गिरस्वध्रुवासीद ॥५३॥ चि-दा.अ.१.प-दा.६.॥५३॥

का. १७.१.१२. तिसके उत्तर अपर मार्गेण दक्षिण को चलकर चिदसी  
ति प्रति मन्त्र पूर्व में तिरश्ची उद ग्लक्षणा दक्षिण में स्थित उदङ्मुख उ  
पधान करे चिदसीति उत्तरां परिचिदसीति दक्षिणां ॥ इष्टका देवत्येदे  
सामानुष्टुबृहती हे इष्टकेतू स्थापित है वा भोग संपादिका है । तिस  
सिद्धि देवता वाग् रूपा करि सावधान किई हुई जैसे प्राण सब अङ्ग में स्थि  
त तैसे स्थिर हुई निवेश करि । द्वितीयासु उदधाति परितः सर्वतः चीयते  
वापरितो भोगांश्चिनोति तू परिचित है ॥ अन्यद्व्याख्यातम् ॥५३॥

लोकमृणस्त्रिद्विमृणयोसीदध्रुवात्वम् ॥ इन्द्राग्नीत्वा  
बृहस्पतिरस्मिन्योनावसीषदन् ॥५४॥

का. १७.१.१७. प्रथम चुपके से उपहिता तीन लोकमृण इष्टका  
ओं में लोकमृण इति अभिमन्त्रण फिरि दशों विषे मन्त्र है वा प्रथम  
दो लोकमृण ओं में मन्त्र फिरि दशों में पुनः एक में ऐसे एक विंश

ति इष्ट का गार्हपत्यमें हैं ॥ लोकम्पृण देवत्यानुष्टुप् । हे लोकम्पृ  
णोष्ट के तू लोक (गार्हपत्यचयन देशमें पूर्वोष्ट का ओं) से अनाक्रान्त  
स्थान को पूरि । तथा छिद्र को भरि कोई भी छिद्र जे से नदी रेवै ते से संश्लि  
ष्टा हो ॥ और स्थिरा हो के तू बैठि । किंच इन्द्राग्नी और वृहस्पति एते दे  
वता इस स्थान में तुम्हें सादन करते हुए ॥ नही मनुष्य अध्वर्युति न्हें सा  
दन करने को समर्थ है इति भावः ॥ ५४ ॥

ताऽअस्य सूर्दोहसः सोमं च श्रीणन्ति पृथ्वयः ॥ जन्मन् दे  
वानां विशस्त्रिष्वारोचने दिवः ॥ ५५ ॥

का० १६० ७० १४० तथा देवतयेति सादनं, ताऽअस्येति सूर्दोहसाधिव  
दनं एते नित्ये सर्वत्रेति सूत्रार्थः ॥ इन्द्रपुत्रप्रिय मेघदृष्टा देवत्यानु  
ष्टुप् । देवः (द्युलोक संवंधी वा दिवश्च्युता सूर्दोहसः) ॥ जलकरि स  
हित और अन्नयुक्त वोह जल प्रसिद्ध इस यज्ञ संवंधी सोम को भले  
प्रकार मिश्रित (पक्क) करते हैं कै से हैं सूर्दोहसः कि पृथ्वयः नाना विधा  
वा अन्नरूपाः ॥ अर्थात् यहां आके व्रीह्यादि धान्य निष्पादकाः ॥  
कव मिश्रित करते हैं कि देवानां जन्मन् संवत्सर ॥ विषे सम्वत्सरे  
सम्वत्सरे सोम पागस्त दधि प्रायमेतत् । तीनों सबनो में ॥ यज्ञप  
रिणामभूता अन्नोत्पादि का जल दिविके सकाश से इस लोक में गि  
रिके ओषधी वनस्पति अन्न हो सोम का उपकर्त्ते हैं इति भावः ॥ ५५ ॥

इन्द्रं विश्वाऽअवी वृधन्तस्सुद्रव्यं च सङ्गिरः ॥ रथीतं म  
हं रथीनां वा जानां च सत्यंति यतिम् ॥ ५६ ॥

का० १७० १० १८० चात्वाल स्थान से मृदाले करि गार्हपत्य चितिके

१ अतः ८० ७० ३० २१ अन्नं वै पृथ्वीति श्रुतेः ।  
२ अतः ८० ७० ३० २१ संवत्सरो वै देवानां जन्मति श्रुतेः ।  
३ अतः ८० ७० ३० २१ सबनानि व्रीणि वेरोचनानीति श्रुतेः ।

१ अतः ८० ७० ३० २१ अन्नं वै पृथ्वीति श्रुतेः ।

२ अतः ८० ७० ३० २१ संवत्सरो वै देवानां जन्मति श्रुतेः ।

३ अतः ८० ७० ३० २१ सबनानि व्रीणि वेरोचनानीति श्रुतेः ।

ऊपर डालें॥ इन्द्र देवत्या मधु छन्द सुतजेतृ दृष्टानुष्टुप्॥ ऋग्यजुःसा  
मरूपा स्तुतिये इन्द्र को वटाती हैं। कैसे इन्द्र को कि समुद्र व द्यापक अ  
र्थात् विविधा च्चन नाना गति वा अक्षोभ्य गति। सवरथी ओं के बी  
च अत्यन्तरथ युक्त महारथी अर्थात् रथ युद्ध में अतिशय लब्ध  
तथा अन्त्रों के पति और सद्धर्म वर्ति ओं के प्रतियालक॥५६॥

समितं सङ्कल्पेथां सम्प्रियो रेचिष्णु सुमनस्यमानो॥

इष मूर्जं मभिसम्बसानो॥५७॥

का० १७०११४० गार्हपत्य चितिको मृत्यूरण से परिश्रित (सम) करि  
के तिस के बीच में नीचे उष्याग्नि को चारि मंत्रों से स्थापन करे॥ द्य  
ग्नि देवत्या १० उष्याकू २० उपरि दृष्टाहृती ३० उष्याकू ४० पङ्क्तियोः॥  
हे चित्योष्याग्नी तुम संगत होओ और संकल्प होओ वा संकल्पन (य  
ज्ञनिष्पादन करो) कैसे हो तुम कि परस्पर प्रीति युक्त दीप्यमान। पर  
स्पर शोभन चित्तवन्त अन्न और घृतादि उप सेचन को अभ्यवहार क  
र्ने वा भले प्रकार सम्पादन कर्ते॥५७॥

सं वा मनांश्चिसं व्रता समुचितान्याकरम्॥ अग्नेषु

रीष्याधिपामेव त्वन्न इष मूर्जं यजमानाय धेहि॥५८॥

हे पूर्वोक्त अग्नियों तुम्हारे मनो (मन बुद्धि अहंकार को) समाकर  
म्। सर्वतः संगत कर्ता हूँ। तथा व्रतों (कर्मों) को समाकरम्। तथा चि  
त्तों (मनो गति संस्कारों) को समाकरम् उकारः समुच्चयार्थः। एवं म  
नः कर्म संस्कार से एकी किये एकी भूत अग्नि को प्रार्थना करिये हे  
हे पुरीष्य (पशव्य) हे अग्ने तू हमारा पालक हो अन्न और तिसका

उप सेवन दध्यादि यजमान के अर्थ दे ॥ ५८ ॥

अग्नेत्वं पुरीष्यो रयिमान्युष्टिमा २ ॥ असि ॥ शिवाः कृ  
त्वादिशः सर्वाः स्वयोनिमिहासदः ॥ ५९ ॥

हे अग्ने तू पशव्य है और धनवान पोष युक्त है अतः सब दिशाएँ शां  
त करिके इस चयन विषे स्वकीय स्थान को प्राप्त हो ॥ ५९ ॥

मवेतन्नः समनसौ सचेत सावरेयसौ ॥ मायज्ञर्हर्हिर्हंसि  
ष्टं मायज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमुद्यनः ॥ ६० ॥

व्याख्याता ५३ ॥ ६० ॥

मातेव पुत्रं पृथिवी पुरीष्युमग्निं स्वयोनावभारुखा ॥ तां  
विश्वे देवैः ऋतुभिः समिदानः प्रजापतिर्विश्वकर्मा-  
विमुञ्चतु ॥ ६१ ॥

का० १७० १० २१ शून्या उखा को सिकता से पूरण करि मातेवेति मंत्रे  
ण शिक्या से प्रथक करिके अश्विवत् स्थापित अग्निके उत्तरमें अरति  
मात्र गार्हपत्य चितिके ऊपर ही उखा को रखिके तिसके बीच दुग्धको  
चुप के से सींचे ॥ उखास्तुतिस्त्रिष्टुप् । मृन्मयी जो उखा पशव्य अग्नि  
को स्वकीय गर्भस्थान में रखती हुई । जैसे माता पुत्र को उत्संगमें र  
खती है । प्रजापति तिसकृतकृत्या उखा को शिक्य पाश से मुक्त करे के  
सा है प्रजापति कि विश्वे देवा और ऋतुओं से संवित् अत्यन्त एक  
होके अहो बड़ा कर्म उखा का किया यह संवाद कर्ता । विश्वकर्मा  
सृष्टि रूप कर्म जिसका ॥ ६१ ॥

अ० ५ असुन्वन्तमयजमानमिच्छन्ते न स्येत्यामन्विहितं स्कर







मोक के अनन्तर निर्वृत्तिसे आज्ञा पाकर अग्निरूप को आश्रय हो  
हेयजमान इस अन्न को भक्षण करि ॥ का० १७०२४ शिखादिनिरस  
न के अनन्तर अपने और नैर्वृत्ती इष्टकाओं के बीचमें जलपूर्ण  
चमस को चुपकेसे ओंधाय ब्रह्मा यजमान अध्वर्यु नमः इस मंत्रक  
रि निर्वृत्ति समीपसे उठें ॥ भूतदेवतै कपदाविराट् ॥ जिस देवीने  
यह अग्नि लक्षण कर्म किया तिस भूतै श्रीरूपिणी देवी के अर्थ  
नमस्कारोऽस्तु ॥ ६५ ॥

निवेशनः सङ्गमनोवसूनां विश्वारूपाभिचष्टेशचीभिः ॥

देवः देवसविता सत्यधर्मेन्द्रो न तस्थो समरेपथीनाम् ॥ ६६ ॥

का० १७०२६ ब्रह्मा यजमान अध्वर्यु नैर्वृत्युपधान देशसे पीछेन  
देखते शाला को जावें अध्वर्यु चलिकर शालाद्वारी गार्हपत्यचि  
तिरूप अग्नि को उपस्थान करें ॥ विश्वावसुर्देव गन्धर्व दृष्टेन्द्र अ  
ग्निदेवत्या त्रिष्टुप् । यह अग्नि सब आहवनीया दतिप्रणीताग्नी  
ध्रधिष्ण्यादिक सबरूपसर्वतः देखताहैं केसे रूप कि अपने-अपनेकर्मों  
से युक्त इति शेषः ॥ कैसे हैं अग्नि कि यजमान को अपने घरमें स्थापि  
तक स्ता ॥ तथा प्रजा पशु रूपधन का प्रापक । सत्यधर्म (सत्य अवश्य  
भावी फलोपतधर्म) अग्नि होत्रादिलक्षण जिसके वोह । कैसे कि-  
जैसे सूर्यदेव सबरूप देखता । और जो अग्नि परिपंथियोंसे संग्रा  
ममें इन्द्र जैसे स्थित होता तद्वत्स्थितहुआ तिसे हम स्तुति कर्ते हैं  
इति शेषः ॥ ६६ ॥

सीरायुञ्जन्ति कवयो युगावितन्वने पृथक् ॥ धीरादेवे

षु सुम्नया ॥ ६७ ॥

का० १७०२११ चितिके दक्षिण ओणिसै खडा अध्वर्यु प्रतिप्रस्थाता के उत्तरांशपूर्वमें षट् वा द्वादश वा चौबीस वैलोंसै जुड़े हुए ओं दुं बर हलको दो मंत्रोंसै अभिमंत्रित करे ॥ सीर देवत्ये सोम पुत्र बुध दृष्टे दे गायत्री दृष्ट भो। बुद्धिमान अग्नि होत्र के जानने वाले खेत कर्म के जानने वाले हल (बैल) जोड़ते नाना प्रकार विस्तार करने हैं। क्या करने को कि देवताओं के सुख करने को इति शेषः ॥ ६७ ॥

युनक्त सीरा वियुगातनुध्वं कृते योनौ वपते हवीजम् ॥  
गिरा च शुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत्सु एयुः पक्वमे  
यात् ॥ ६८ ॥

हे हल हारे ओं हल जोड़ो सौल पचारी जोताओंसै विस्तार करे। फिर जोतनेसै संस्कार किये इस स्थान में बीज ब्रीह्यादि क तुमवो ओं किससै कि गिरा या ओषधी रित्यादिक या क० ७५ वेद मंत्र वाचा और चमससै किंच वाग्वेगीरं नठं सुष्टिरिति शत० ७२२ ५ श्रुतेः अन्न जाति ब्रीह्यादि का फल पुष्पा सह वर्तमाना पुष्टा हो जैसै थोड़े ही काल करि पका अनाज हमारे घरमें आवे ॥ ६८ ॥

शुनर्त्सु फाला विष्टं नु भूमिर्न शुनं कीनाशाः अभि  
येन्नुवाहेः ॥ शुना सी राह विषा तोशमाना सुपिप्पला  
ओषधीः कर्तनास्मे ॥ ६९ ॥

का० १७०२१२ परिश्रित समीप चिति स्थानमें चारि ऋचाओंसै दक्षिण पश्चिम उत्तर पूर्व चारि सीता जोतै ॥ कुमारहारित दृष्टाः

सीतादेवत्याश्चतस्रः द्वेविष्टुभौ तृतीया पङ्क्तिश्चतुर्थ्यनुष्टुप्। शोभ  
ना फाला (सीरा के अर्गस्थ लोहविशेष कुसि) सुख जेसे तेसे भू  
मिको कृषे (कूड करे) हलहारे सुख पूर्वक वैलों के साथ चलें। हे शु  
नासीरी + वाय्वादित्यो तुम हमारी ओषधीयें (व्रीह्यादिकों को) शोभ  
न फला करो कैसे हो शुनासीरा कि हवि (जल) से भूमिको सींचते  
ओषधियें सफल करो इति भावः ॥ ६४ ॥

घृतेन सीता मधुना समज्यतां वि श्वेर्देवैरनुमता मरुद्भिः ॥  
ऊर्जस्वती पर्यसापित्व मानास्मान् सीते पर्यसाम्या व वृ  
त्स्व ॥ ७० ॥

सीतालाङ्गल पङ्क्ति, हलैया) जल करि कै सिञ्चित हों। कैसी सीता  
कि विश्व देवा और मरुतों से अनुज्ञाता वा अङ्गीकृता एवं परोक्ष  
मुक्ताप्रत्यक्ष माह हे सीते अन्नवती सोतू पय दधि घृतादिक से दि  
शा पूर्ण कर्ती दुग्धादिके साथ हमारे अनुकूल हो ॥ ७० ॥

लाङ्गल पवीरवत्सु शेवर्धं सोमपित्सरु ॥ तदुदपतिगा  
मविं प्रफर्ष्य च पीवरीं प्रस्थावद्वयवाहनम् ॥ ७१ ॥

तिस पूर्वोक्त हल को गो (वैल) अवि (मेंढा) और रथ वाहक अश्वदि  
क प्राप्त कर्ता है। कृषि समृद्धि में ही गवादि यजमान के सुलभ इति  
भावः अतएव लाङ्गल गवादि प्रापक है। कैसे हल को कि फाल (कु  
सि संयुक्त) तथा शोभन सुख करने वाला। तथा सोमपित्सरु - सोम पी  
ने वाले यजमान के निमित्त भूमिको खनता वा यजमान विषे पा  
पको नाश कर्ता है वा सोम पीते हैं जिससे अर्थात् चमस तिसकानि

ष्यादक नहीं लाङ्गल कर्म विना सोम चमस होता । अर्थात् ऐसे हल को गवादि चलाती हैं कैसी हैं गो और भेड़ कि प्रकर्षे न चलती अतिवेगवति । तथा पुष्टाङ्गी । कैसे रथवाहन को कि उत्कृष्ट गोपेत ॥१॥

कामं कामदुग्धे धुस्व मित्राय वरुणाय च ॥ इन्द्रायाश्च

भ्या पूषो प्रजाभ्यः ओषधीभ्यः ॥७२॥

हे कामदुग्धे (मनोरथों को पूर्ण करने वाली लाङ्गल पद्धते, हलैया) मित्र वरुण इन्द्र अश्विनी कुमार पूषा के अर्थ और प्रजा के अर्थ ओषधि निष्पत्यर्थ अपेक्षित भोग को निष्पादन करि ॥७२॥

विमुच्यध्वमघ्या देवयानाः अगन्म तम ससारमस्य ॥

ज्योतिरापाम ॥७३॥

का० १७०२०२१ वृषों को हलसे निकाल कर पशुवत् ईशानदिशा प्रति अध्वर्यु छोड़ें और यजमान सुत्या विषे सीर सहित तिन्हों को अध्वर्यु के अर्थ देवें ॥ विमोचनेमन्त्रः वृषदेवत्या विराट् शङ्कुमती गायत्री । हे देवयानाः देवतार्थ कर्म करने वाले ओ देवताओं के अर्थ यान कृषादि उद्यम तिन्हों का वादेवयान मार्ग भूत ओ कर्म द्वारा तिसके प्राप्त करने वाले ओ । हे अध्या बलीवर्द ओ तुम छूटो अर्थात् जगत्पितृ न हेतु कृषिको निष्पादन करि कृत कृत्य हुए जुड़ने से प्रथक् हो ओ इस तम क्षुत्पिपासाद्युद्धूत दुःख के पार समाप्ति को हम पहुंचें । दुःख के पार को स्पष्ट करता है हम ज्योति परमात्मलक्षण वायज्ञ रूप तेज को प्राप्त हुए ॥७३॥

सजूरब्धोऽयं वोभिः सजूरुषाः अरुणीभिः ॥ सजोषः

सावश्चिनादहं सोमिः सज्जुः सूर्य एत शोन सज्जुर्वै श्वानर इ  
डया घृतेन स्वाहा ॥७४॥

का० १७.३.२. तहां संस्कृत जुह्वाकरि पञ्च गृहीत आज्यसे कृष्टात्ममध्य  
स्थापित कुशस्तम्ब विषे सुच को ऊंची करते होमें ॥ लिङ्गोक्त देवतं यजु  
ब्राह्म्यनुष्टुप्छन्दस्कम् । अब्दः (जलों का देने वाला संवत्सर) उषा (प्रातः  
की अधिष्ठात्री देवता) अश्विनौ (देवताओं के वैद्य) सूरः (सूर्य) और वै  
श्वानर (अग्नि) इन अब्दादिकों के अर्थ यह घृत सुहृत हो । तेषां प्रत्येक  
विशेषणानि । कैसा है अब्द कि अयवोभिः सज्जुः, यवों अर्धमासों और  
अयवों मासों से प्रीति युक्त । कैसी उषा कि अरुणवर्ण किरणों से सज्जुः  
कैसे अश्विनौ किचिकित्सादि कर्मों से सज्जुः । कैसा सूर्य कि अश्व से स  
ज्जुः । कैसा अग्नि कि पृथिवी से सज्जुः । ॥७४॥

अ. ६ याऽश्रोषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा ॥ मनेनुबभू  
णा महर्षिशतं धामानि सुप्तं च ॥७५॥

का० १७.३.७. याऽश्रोषधी इन पांच तृचों से चमसकरि सर्वोषधिवपै उ  
दपात्रवत् चारों-चारों सीताओं में यथाकृष्ट ॥ अथर्वपुत्रभिषगृष्टाऽश्रो  
षधि देवत्यायोऽस्मान्मिदासतीत्यन्ता १०१ सप्तविंशति रनुष्टुभः  
मुञ्चन्तु मेत्याद्या ४० द्वादशबन्धुदृष्टाः कुत्रापि कर्मण्यनियुक्तः । युगश  
ब्दः कालवाची तीनों युगों का समाहार त्रियुग त्रिकाल वसंत प्रातृदशै  
र शरद में । पुरा सृष्टिकी आदि में जो अश्रोषधी हैं भाविनी अश्रोषधीओं से  
पहिले उत्पन्न हुई किमर्थम् कि देवता (ऋतु हैं) अश्रोषधि युक्त की जा  
वें एतदर्थम् । बभूणा जगत्जन (जनन) भरण समर्थ बापाक करि

१ पञ्चदशभिषगृष्टाद्वादशबन्धुदृष्टा चैव सप्तविंशति ।

देवताओं के वैद्य सूर्य और वैश्वानर (अग्नि) इन अब्दादिकों के अर्थ यह घृत सुहृत हो । तेषां प्रत्येक विशेषणानि । कैसा है अब्द कि अयवोभिः सज्जुः, यवों अर्धमासों और अयवों मासों से प्रीति युक्त । कैसी उषा कि अरुणवर्ण किरणों से सज्जुः । कैसे अश्विनौ किचिकित्सादि कर्मों से सज्जुः । कैसा सूर्य कि अश्व से सज्जुः । कैसा अग्नि कि पृथिवी से सज्जुः । ॥७४॥

पिङ्गलवर्णं तिन ओषधीः ओंकेसो १०० और सात ७ धामों को मेंने जा  
जाना। संवत्सरोपलक्षित एक-एक स्थान शतायुर्वै पुरुष इति श्रुतेः  
शतं वर्षात्मकधामों और शिरःस्थ मुख १ नेत्र २ नासा छिद्र २ कर्ण २  
सप्त ७ स्थानों यथावेमे सप्तशीर्षेण प्राणास्तानि तदा हेति शत ०७२  
४०२६ शतवर्ष पर्यन्त इन्द्रियों की ओषधी करि नर्प्य मानत्वसे त  
त्स्थानत्व अथवा असंख्यात् स्थान भेदों जाति भेदों से और सप्त  
भेदग्राम्य आरण्यादि और ब्रीह्यादि और नीवारादि को मेंने जाना ७५  
शतं वोऽम्बुधामानि सहस्रमुत वोरुहः ॥ अधो शतक  
त्वो यूयमिमं मेऽगदं कृत ॥ ७६ ॥

हे अम्बु मातृ स्थाना ओषधी ओ तुम्हारे धाम जाति भेद वा क्षेत्र  
वा जन्म से कड़ो हैं और तुम्हारे सहस्रों अङ्कुर हैं ॥ एवं सति हे शत  
कत्वो मे कड़ों कर्म जिन्हों से तुम मेरे इस यजमान को अगद क्षुत्पि  
पासादिषडूर्मिरागेरहित करौ ॥ ७६ ॥

ओषधीः प्रति मोदध्वं पुष्यवतीः प्रसूवरीः ॥ अश्वः द्रवस  
जित्व गीर्वीरुधः पारयिषावः ॥ ७७ ॥

हे ओषधी ओ तुम प्रसन्न होओ। कैसी हो तुम कि पुष्योपेताः फलों की  
उत्पन्न करने वाली। जैसे अश्व सग्राम में जय शील हैं तद्वत् फलपर्यन्त  
त्वसे जय शीलाः वीरुधः ७ व्याधिकी विविध निवारण करने वाली  
बहुत अङ्कुराः पारयिषावः ७ फलपाकान्तत्व को परित्याग करि ब  
हुकाल कर्म परायण शीलाः ॥ ७७ ॥

ओषधीरिति मातरस्तद्वो देवी रूपं ब्रुवे ॥ सनेयमश्वङ्गा

१ शतसहस्रपदानामपरिमितत्वमुच्यते

स्वासः आत्मानं तव पूरुष ॥ ७८ ॥

हे ऋषी ओ हे जगन्निर्मात्री ओ (भोजन दान व्याध्यपगमादिकों से उपकर्त्री ओ) हे देवी ओ तुम प्रति इस वक्ष्यमाण विधिकरि प्रसिद्ध अभीष्ट को प्रार्थना करता हूँ। यह क्या कि हे यज्ञपुरुष तेरे प्रसाद से अश्व गौ वस्त्र प्रारीर को मैं सम्भजन करूँ यज्ञपुरुष प्रति जो मुझकरि अश्व आदिक प्रार्थना किये ते ऋषधी ओ से अनुमन्तव्य यह ऋषधि प्रार्थना है इति भावः ॥ ७८ ॥

अश्वत्थे वो निषदनं पणो वो वसति कृता ॥ गोभाज इत्कि-  
लोसय यत्स न वयं पूरुषम् ॥ ७९ ॥

हे ऋषधी ओ तुम्हारा अश्वत्थ आश्वत्थी उपभूत सुक विषे स्थान है ह विषां तत्र स्थापनात् किंच तुम्हारी पलाश मयी जुह्वा विषे स्थित की गयी अध्वर्युना होमार्थ जुह्वा स्थापनात् हे हविर्भूता ऋषधियो तुम अग्नि में होमी हुई आदित्य को भजती हो ॥ यद्वा अश्वत्थे वो निषदनं अश्वत्थ के फल ते सब ऋषधि ओ के फल वत्त्व से पणो वो वसतिः कृता और पलाश के फल त व्रीह्यादिकों के फल तत्त्व से अतएव तुम उपहृष्ट गोभाज भूमिभाज हो किमर्थमिदमित्यत आह कि जिस्कारण यजमान को तुम अन्नदान से पोषण करती हो तिस हेतु अश्वत्थादि स्थान हैं और देवता ओ के अधिष्ठान से लोक विषे अश्वत्थ नति प्रदक्षिणा करि पूज्य है और पलाश इध्मादि रूप करि एवं अश्वत्थादि रूपेण तुम भूभाज हो शेष पूर्ववत् ॥ ७९ ॥

यत्रोषधीः समग्मतराजानः समिताविव ॥ विप्रः सग्मज्य-  
तेभिषग्य क्षोहामीव चातनः ॥ ८० ॥



हे ओषधि ओ जिस विप्र (भैषज्य करने वाले ब्राह्मण) विषें तुम रंगर्जा  
तने को प्राप्त होती ओ कैसे कि जैसे राजा युद्ध विषें शत्रु जीतने को आ  
ते हैं। सो तुम्हारा आश्रित विप्र भिषक् (वैद्य) कहलाता है। कैसा है  
विप्र कि पुरोडाश करिके राक्षसों के किये उपद्रव का नाशक तथा  
ओषधि दान करिके रोग का नाश करने वाला ॥८०॥

अश्ववतीं सोमावतीं मूर्जयन्तीं मदोजसम् ॥ आवि  
त्सि सर्वाः ओषधीरस्मा अपरिष्टतां तये ॥८१॥

इस यजमान के अपरिष्टतां तये मंगल करने वा शुभ करने के अर्थ स  
व ओषधियें में भले प्रकार जानता हूँ वा यजमान के अर्थ को जानता  
हूँ। तद्विषेणं शुभ करता वा विस्तारता है तिसके। सब को न सो कहता  
है कि अश्ववती (कोइक अश्व संपादिनी) ओषधि समृद्धि विषें धन  
द्वारेण अश्व लाभ सै) और सोमवती, सोम संपादिनी ऊर्जयन्ती, बल  
संपादिनी वा जीवयन्ती उदोजसं, तेजः संपादिनी। एवं नाना कार्य  
कारिणी सब ओषधियें जानता हूँ इत्यर्थः यद्वा अश्ववती मित्यादी  
ने बहु वचनान्तानि कार्याणि ओषधीरित्यस्य विशेषणत्वात् ॥८१॥

उच्छुष्माः ओषधीनां गवो गोष्ठादिवेरते ॥ धनं हंसनिष्य  
न्तीनामात्मानं तव पुरुष ॥८२॥

हे यज्ञ पुरुष त्वदीय शरीर प्रति हवि रूप धन देने को इच्छा करने वा  
ली ओषधि ओंकी सामर्थ्य प्रकाशी होती हैं जैसे गौत से गौएं अ  
रण्य देश प्रति उछल के जाती हैं ॥८२॥

इष्टं तिर्त्नामवो माता यो यूयं स्थ निष्कृतीः ॥ सीराः पे

॥ त्रिणीस्यनयदांमयतिनिष्कृय ॥ ८३ ॥

हे ओषधी ओ तुम्हारी निष्कृति (व्याधिनाशिनी) नामा माता (जननी) और तुम्हीं निष्कृति हो अर्थात् जैसी मातैसी बेटी। किंच सीरा; अनन्तर करिव ते मान बाधादिकों की अपसरयित्री बाहल करि निष्पादन की हुई। और पतत्रिणी, प्रसरणशीला हो। यत् जिस कारण आमयति नरविषे स्थित रोग को नाश करे यद्वा क्षुधादिकरण गवत् बाधा देते हैं तिन्हें तुम नाश करे ॥ ८३ ॥

अतिविश्वाः परिष्ठास्तेन इव ब्रजं मक्रमुः ॥ ओषधीः प्राचुच्युर्यत्किंच तन्चौरपः ॥ ८४ ॥

रोगनाश करने वाली सब ओषधीएँ जब भक्षण किई हुई देह को च्छेदती हैं। तत्र दृष्टान्तः - जैसे रात्रि विषे चार गोशाला में गो चुराने को सर्वत्र फिरता है तद्वत् जब ओषधीएँ रोगापहरण करने देह को आक्रमण करती हैं तब शरीर का जो कोई पाप शिरव्यथा गुल्म अपतिसागरदिरूप पाप का फल जो कुछ है तिस सब को नाश करती हैं ॥ ८४ ॥

यदि मा वाजयेन्न ह मोषधी हे स्त आदधे ॥ आत्मा यक्ष्म

स्य नश्यति पुरा जीव गृभो यथा ॥ ८५ ॥ गयो इति वापदः

जब यह ओषधी पूजा किई हुई में अपने हरत विषे स्थापन करता हूँ तब ही व्याधि का स्वरूप भक्षण से प्रथम ही नाश को प्राप्त होता है कि पुनर्भक्षण इति भावः। तत्र दृष्टान्तः जैसे जीते जीव जो हिंसा र्थे पकड़ि कर आघात स्थान को लाते हैं सो जीव गृप् तिसका जीव गृभः - बधसे पूर्व अति विषाद करि में मरा यह मन्य मान मनु

ष्य का आत्मा जैसे नष्ट प्राय होता है तैसे ओषधी हस्त विषे ररवने में  
व्याधि का आत्मा नाश को प्राप्त होता है इत्यर्थः ॥ ८५ ॥

यस्योषधीः प्रसर्प्यथाङ्गमङ्गं परुष्यरुः ॥ ततो यक्ष्मं विबा  
धध्वः उग्रो मध्यम शीरिव ॥ ८६ ॥

हे ओषधी ओ जिस रोगी के प्रत्यङ्ग सर्व अंग प्रतिपरु सब ग्रन्थि  
यों को तुम व्याप्त होती हो ततः अङ्ग पर्य समुदाय से रोग को तु  
म निवर्त करती हो। तत्र दृष्टान्तः- उग्रो मध्यम शीरिव मर्म घा  
तक उत्कृष्ट वद्ध गोधाङ्गुलित्राण उद्गूणं शस्त्र क्षत्री जैसे शत्रु  
को बाधा देता है वारुद्र विशल मध्यभाग से जैसे युगान्त में जग  
त को बाधा देता है तद्वत् तुम भी रोगी की देह विषे प्रविष्टा व्याधि  
को विशेषेण बाधा देती हो ॥ ८६ ॥

साकं यक्ष्म प्रपत चाषेण किकिदीविना ॥ साकं वा तस्य  
ध्राज्या साकं नश्य निहाकया ॥ ८७ ॥

हे यक्ष्म रोग हू चाष (पपीहा) पक्षीवत् प्रकर्ष पूर्वक जा के से चाष  
करि किकि दीविना + की की बोलता हुआ पवन की सी गति से भा  
गजा। किंच निहाकया निहन्ति कायमिति निर्वृतिः- कृच्छ्राप  
तिः तिसके साथ नष्ट हो यद्वा शब्दानु करणं- इदं हाकष्टं कया  
ओषध्या निहितोऽहम् हाय-हाय बड़ा कष्ट किस ओषधी से मैं  
मारा यह शब्द करता है यक्ष्म तू नष्ट हो ॥ अर्थान्तरं वा किकिश  
ब्द कफावरुद्ध कण्ठोत्पन्न के अनुकरण में कण्ठध्वनि करिकी  
है किकिदीवी स्तेष्मरोग। वषधधे-चषति व्याकुल करिके मारे

किकि शब्द का अर्थ किकि दीविना की की बोलता हुआ पवन की सी गति से भागजा। किंच निहाकया निहन्ति कायमिति निर्वृतिः- कृच्छ्रापतिः तिसके साथ नष्ट हो यद्वा शब्दानुकरणं- इदं हाकष्टं कया ओषध्या निहितोऽहम् हाय-हाय बड़ा कष्ट किस ओषधी से मैं मारा यह शब्द करता है यक्ष्म तू नष्ट हो ॥ अर्थान्तरं वा किकिशब्द कफावरुद्ध कण्ठोत्पन्न के अनुकरण में कण्ठध्वनि करिकी है किकिदीवी स्तेष्मरोग। वषधधे-चषति व्याकुल करिके मारे

चाप-पि। रोग। वातस्य ध्राजिः वातरोग। हेयश्म (रोगराज) तू कफपित्त  
वात रोगों से साथ भागजा। जिस पीड़ों से कि किरुज करि निहत हूं हाक  
ष्ट यह शब्द करता वोह निहा का (सर्वाङ्ग वेदना) तिसै साथ ले हेयश्म तू  
नाश हो ॥ ८७ ॥

अन्या बोः अन्या म वत्व न्या न्य स्या उपोवत ॥ ताः सर्वाः

सम्बिदाना इदं मे प्रावता वचः ॥ ८८ ॥

हे ओषधी ओ तुम्हारे मध्य कोईक ओषधि व्यक्ति कोईक ओषधिव्य  
क्ति को रक्षा करौ तैसै रक्षा किई हुई और भी और के समीप आके पालन  
करौ वा पुरुष वचन व्यत्ययः अन्य-अन्य के प्रभाव को अवतु। तथा वि  
धा ओषधी ओ तुम परस्पर एकी हुई मेरे इस प्रार्थना रूप वचन को प्र  
कर्षेण रक्षा करौ ॥ ८८ ॥

याः फलिनीर्योः अफलाः अपुष्पायाश्च पुष्पिणीः ॥ बृह

स्पति प्रसूतास्तानो मुञ्चन्वर्हेसः ॥ ८९ ॥

जे ओषधी ऐं फल युक्ता और जे फल रहिता और जे पुष्प रहिता और  
जे पुष्प युक्ता ते सब ओषधी ऐं बृहस्पति की बेरी हुई हमें पाप (गण) से  
पृथक् करें ॥ ८९ ॥

मुञ्चन्तु मा शपथ्या दथो वरुण्या दुत ॥ अथो यम पुपङ्गी

शान्त सर्वस्माद्देव किल्बिषात् ॥ ९० ॥

एव मोषधि वा पार्थानि पञ्च त्वचानि समाप्तानि। अथान्ना रम्यार्थ  
ताः ॥ शपथ निमित्त किल्बिषा पाप) से ओषधी ऐं मुझे पृथक् करें  
और वरुणा पर धनिमित्त पाप से मुझे पृथक् करें और यम बन्धन नि

मित्र पाप से मुझे पृथक् करें और सब देवा पराध निमित्त पाप से मुझे पृथक् करें ॥ ४० ॥

अवपतन्ती रवदन् दिवः ओषधयस्परि ॥ यं जीवमुन्नवाम  
हैन सरिष्याति पूरुषः ॥ ४१ ॥

द्युलोक के सकाश से भूमिविषे प्राप्त होती ओषधीएँ आपुसमें कहती हुईं। क्या कि जिस जीव (अनुक्रान्त प्राण पुरुष) को हम व्याप्त होंगे सो पुरुष नहीं नाश होता है ॥ ४१ ॥

या ओषधीः सोमराज्ञीर्वह्नीः शतविचक्षणाः ॥ तासां मसि  
त्त्वमुत्तमारुक्ता मायुशरैर्हृदे ॥ ४२ ॥

सोमराज्ञः सोम है राजा तिनहों का देवह्नीः (अनन्ता) शतविचक्षणाः असंख्य चतुराः बावहु वीर्यावा शतस्तुति करनेवाले जिन्हों के एवम्भूता जे ओषधियें हैं तिन ओषधियों के मध्य हे ओषधे नूयतः उच्छ्रष्टा है अतः इप्सित के अर्थ पर्याप्ता हो हृदय के अर्थ सुखकारिणी हो ४२

या ओषधीः सोमराज्ञीर्विष्टिताः पृथिवीमनु ॥ ब्रह्मस्यति  
प्रसूताः अस्यां संदत्तवीर्यम् ॥ ४३ ॥

सोमराज्ञ्यः जे ओषधियें पृथिवीति में विविधस्थिति ब्रह्मस्यतिकरिप्रेरी हैं ते ओषधियें इसमें गहीत ओषधी के अर्थ वीर्य सामर्थ्य देवें यह बहुवीर्या होवें इति भावः ॥ ४३ ॥

याश्च दमुपशृण्वन्ति याश्च दूरं प रंगताः ॥ सर्वाः संगत्य  
वीरुधोऽस्ये संदत्तवीर्यम् ॥ ४४ ॥

जे ओषधियें इसमें प्रार्थनारूपवचनको समीपस्था सुनती ओर जे

न्यदूर में : यवस्थित हुई थोड़ा सुनती हैं हे वीरुधः (विविधरोहणा) शो  
षधियो ते सव समीप दूरस्था संगत होके इस ओषधी के अर्थ वीर्य देओ ॥४॥

मावोरिषत्वनितायस्मैचाहंखनामिवः॥द्विपाच्चतुष्पादु

॥ माकर्दं सर्वमस्त्वनातुरम् ॥ ५३ ॥

हे शोषधियो चिकित्सा के अर्थ तुम्हारे मूल को ग्रहण करि खननक  
नो मत नाश को प्राप्त हो और जिस रोगी की चिकित्सा के अर्थ तुम्हें मेख  
नताहूं सो भी नाश को न प्राप्त होवै । किं बहुता हमारे संबंधि स्त्री पुरुष-  
गो आदि प्राणिजात सब रोग रहित हो ॥ ५५ ॥

श्रीषधयः समवदन्तसोमेन सह राज्ञा ॥ यस्मै कृणोति ब्राह्म  
णस्तर्हि राजन्यारयामसि ॥ २६ ॥

राज्ञा, अपने स्वामी सोम के साथ औषधियों देवता संवाद करती हुई।  
 क्या संवाद कि ब्राह्मण जिस रोगी के अर्थ हमारी मूलादि से चिकित्सा क  
 रता है, हे राजन् (स्वामिन् सोम) तिस रोगी नरकों हम प्रार करती हैं, सोम  
 संवादो व्याधिनाशदात्तार्थः ॥ ५६ ॥

ना शयित्री बलासस्याशे सञ्चपचित्तमसि ॥ अथो शतस्य  
यक्ष्माणं याकारे रसि नाशनी ॥ ४७ ॥

हे ओषधे तू बलास (श) शय रोग की नाश करने वाली है। और अश  
गुद व्याधि को नाश पित्री है। और उपविताम् शरीर को बढ़ाने वाले  
श्वययु गडु स्त्री पदों की नाशिका है। और बहुत व्याधियों के नाश  
रोः मुखपाक क्षतादिकों की नाश करत्री है वापाकारुः अन्नपाक ति  
सकी व्यथा मन्दाग्नि तिसकी तू नाशिनी है ॥ २७ ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

त्वागन्धर्वाः परवन्स्त्वामिन्द्रस्त्वा बृहस्पतिः ॥ त्वामौषधे सो  
मो राजा विद्वान्यक्ष्मादमुच्यत ॥ ६८ ॥

हे ओषधियो गन्धर्व (देवविशेष) तुमहें स्वेष्ट कार्ये सिध्यर्थे खनन कर  
रते हुए और इन्द्र तुमहें खनता हुआ और बृहस्पति तुमहें खनता हुआ  
॥ और हे ओषधे सोम राजा तेरी सामर्थ्य को जानिके तुमहें उपयोग न कर  
रि पक्ष्म (महा व्याधि) से मुक्त हुआ ॥ ६८ ॥

सहस्वमेऽगतीः सहस्वपृतनायतः ॥ सहस्व सर्वपाप्मान  
र्हं सहमानास्योषधे ॥ ६९ ॥

हे ओषधे यतः तू शत्रुओं को अभिभवन्ती है अतः मेरे अदानशी  
ला शत्रु सेना का अभिभव करि और संग्राम चाहने वालों को अभि  
भव किंचित् सव अशुभ को अभिभव ॥ ६९ ॥

दीर्घायुस्तः ओषधे खनितायस्मै च त्वा खनाम्यहम् ॥ अ

थोत्वं दीर्घायुर्भूत्वा शतवल्गुणा विरोहताम् ॥ १०० ॥

हे ओषधे तेरा खनन करने वाला दीर्घायु होवै इति शेषः और जि  
स आतुर मनुष्य के अर्थ तुमहें में खनूं सो भी दीर्घायु हो और तू भी दी  
र्घायु होके बहुत अङ्कुरों से बहुङ्कुर हो ॥ १०० ॥

त्वभुत्तमास्योषधेतव वृक्षाः उपस्तयः ॥ उपस्तिरस्तु सोऽस्मा  
कं योऽपुस्मै ॥ १०१ ॥ अभिदासति ॥ १०१ ॥

हे ओषधे तू उत्तमा है वृक्षा शाल ताल तमालादिक तेरे उपकार  
और उपद्रव निग करण के अर्थ समीप में संवृत तिष्ठें हैं अर्थात् वृ  
क्ष तुमहें सेवन करें किंचित् जो मनुष्य हमें हिंसा करता है सो मनुष्य

हमारा समीपस्थ उपासक हो ॥१०१॥ अनाभ्याधीताः समाप्ताः ॥

अ.७ मामाहिर्ःसीज्जनितायः पृथिव्यायोवादिर्वर्धं सत्यधर्मो-  
व्यानद ॥ यश्चा पश्चन्द्राः प्रथमोज्जान कस्मै देवाय ह  
विषाविधेम ॥१०२॥

का० १७.३.११ ततो अध्वर्युस्फ्य करि वेदिके वहिः प्रदेशसैलोगेष्ट  
का चारि मृत्वण्ड पद्याप्रमाण लेके अपने दक्षिणोत्तरपूर्वोपर म  
ध्यम सूत्र प्रान्तों में पूर्वादितिष्ठन् मन्त्र चतुष्टय करि उपधान करे ॥ हि  
रण्यगर्भहृष्टाकदेवत्या त्रिष्टुप् जो प्रजापति भूमिका उत्पादक और  
जो दिविको सृजता हुआ ॥ और जो चन्द्राः (आन्हादिका) जगत्कारण  
भूता जल प्रथम (आदिभूतः सन्) उत्पन्न करता हुआ अर्थात् तिसदा  
र मनुष्यों को उत्पन्न करता हुआ ॥ कैसा है प्रथमः शरीरी कि सत्यधर्म  
सत्यका धारण करनेवाला सो प्रजापति मुँगे गतमारे यतः कस्मै प्रजा  
पतिके अर्थ हमने हवि दिया । हविर्दानान्माहन्तु ॥१०२॥

अभ्यावर्तस्व पृथिवि यज्ञेन पयसा सह ॥ वपांतेऽग्निरि-  
यितोऽग्नेरोहन् ॥१०३॥

अग्निदेवत्या उषाकृ हे पृथिवी मुम्क रिचि कीर्षित यज्ञ और नत्प  
लभूत दुग्धादिक रि सहित आभिमुख्येन प्राप्त हो ॥ कैसा प्राप्त हो कि प्र  
जापति प्रेषित अग्नि तेरी वपा (त्वचा पृष्ठ) वपा सहश इस प्रदेश को आ  
रोहण करे ॥ अनयर्चा दक्षिणे लोकेष्ट कोपधानम् ॥१०३॥

अग्ने यत्ते शुक्रं यच्चन्द्रं यत्पूतं यच्च पशियम् ॥ तद्देवेभ्यो  
भरामसि ॥१०४॥

अ.चि.२.१.२२.प.१४ वेदार्थप्रदीपेगिरिधरभाष्ये  
४८८  
यतः अग्नेः प  
अन्ध्राग्निमन्त्रा  
व्याख्याताः यत्  
व्यापदक्षिणोत्त  
पुनर्निचन्द्रलोके  
मित्यमार्गो नृणां  
गः मनुष्याणां  
पश्चन्द्रादिति या  
२३-२२-२३  
कारणे जायते वा  
न



अग्नि देवत्या गायत्री पश्चात्लोगेष्टकोपधानेविनियुक्ता । हे अग्ने जो ते  
रा अङ्ग शुक्र (शुक्ल-शुद्ध-दीप्तिमान्) और जो अन्य अंग चन्द्र (आल्लाह  
करनेवाला) और जो अन्य पवित्र और जो अन्यदंग यज्ञार्ह तिस सब श्लाघ्य  
रूप को देवताओं के अर्थ सम्पादन करता हूँ ॥ १०४ ॥

इष मूर्ज्ज महमितः आद मृतस्य योनिमहिषस्य धाराम् ॥ आ

मागोषु विशत्वा तनूषु जहामि सेदिमनि राममी वाम् ॥ १०५ ॥

आशीर्देवी त्रिष्टुपाद त्रयस्योत्तरतो लोगेष्टकोपधानेविनियोगः । अ  
न्न तिसका उप सेवन दधिपयघृतादि अमृतस्य सत्यस्य योनिम्  
तीनों विद्या का स्थान महिषस्य इच्छावान् अग्निकी धारा धारणावा  
आहुति को इस प्रदेश (उदीचीदिशा) के सकाश से मैं भक्षण (स्वीका  
र) करता हूँ । किंच वोह सब इडादिक मुझे आके प्रवेश करे और मेरे  
पुत्रादि शरीरों धेन्वादि पशुओं में प्रवेश करे ॥ का० १००३१३ जहा  
मिसेदिमनि राममी वामिति चतुर्थपाद करि उत्तर लोकेष्टकातः सिक्  
ता पातन करे ॥ अन्न रहित व्याधियुक्त अवसाद कामे त्याग करता हूँ  
अर्थात् अन्नाभाव रोग दुःख मेरे न हों ॥ १०५ ॥

अग्ने तव श्रोत्रो वयो महिभ्राजन्ते अर्चयौ विभावसो ॥ बृह

द्धानो शवसा वाजमुक्थ्यन्दधासि दाशुषे कवे ॥ १०६ ॥

का० १००३१५ अग्ने तवेति षट् ऋचाओं करि उत्तर वेदी में सिक्ता  
डालि कर तिस से पुच्छ पक्ष विना आत्मा को छान करे ॥ पाव काग्नि  
दृष्टं षडृचमग्निदेवत्यम् । आद्ये द्वे १२ विष्टारपङ्क्तिस्त्रिः ३४५  
सतो ब्रह्मती षष्ठी ह उपरिष्टा ज्योतिस्त्रिष्टुप् । हे अग्ने हे विभावसो

कान्तिधन) तेरा वयः (धूम) और दीप्तियें प्रकाश करते हैं। कैसा है वयः कि अबः मुनाता है धुलोक विषे किये कर्म का कारण यह कि धूम दर्शन से देवताओं को कर्मज्ञान होता है। तयामहन् नभोगामित्वसे किंच हे हहद्गानो (वडी रश्मियें जिसकी) हे कवे (क्रान्त दर्शिनू विद्वन् यजमानाभिप्रयत्न) हविदेनेवाले यजमान के अर्थ बलेन सह अन्न को तू देता है। कैसे अन्न को कि उक्थ्यं शस्त्राद्युपेत यज्ञ तिस-योग अर्थात् यज्ञपर्याप्त अन्न को देता है ॥१०६॥

पावकवर्चाः शुक्रवर्चाः अनूनवर्चाः उदियर्षिभानुना ॥

पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षिरोदसीः उमे ॥१०७॥

हे अग्ने तू दीप्ति से उत्कर्ष को प्राप्त होता है कैसा है तू कि पावकवर्चाः शोधक है दीप्ति जिसकी वोह। शुक्रवर्चाः निर्मल है दीप्ति जिसकी। अनूनवर्चाः नहीं है दीप्ति जिसकी। पूर्णशक्तिः। किंच हे अग्ने तू सर्वतः प्रचरने से प्राप्त हो पालन करता है देवमनुष्य सहित जगत का रक्षा करता है। तत्र दृष्टान्तः जैसे पुत्र बुढ़ापे में माता पिता का पालन करता है तद्वत् किंच दोंना धावा पृथिवी पूरण करता है अर्थात् दिविकोह विसे पृथिवी को दृष्टि से पूरता है। तिस तुम्हें सुनि करता हूं इति वाक्य शेषः ॥१०७॥

ऊर्जो न पाज्जात वेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्वधीतिभिर्हितः ॥

त्वेऽदृषः सन्दधुर्भूरिवर्षसश्चित्रोतयो वामजाता ॥१०८॥

हे ऊर्जो नपात् जल के पौत्र जल से ओषधि बनस्पतियें होती हैं तिन्हों से अग्नि इस हेतु जल कानांती। वा ऊर्ज, अन्न कानपात् नवि

धूमोवा अस्य  
अवोक्त्यस्यो न  
ममुष्मिल्लोके  
आवयतीति श  
त००३१२४  
श्रुतेः

इमे वेद्यावाः पृथिवी रेदगीतिः एष उभे पृणक्षिः पुमेनात्  
दृष्टे मा मि ति श्रुत ०३१२३० श्रुतेः

नाश करने वाला है अन्न के अविनाशक। हे जातवेद (जातप्रज्ञान) धीतिभिः निमित्तभूत कर्मों से स्थापित हुआ शोभन स्तुतिओं से तू मन्दस्व, हृष्ट हो। क्यों यह हर्ष किया तहां कहता है कि यजमानों ने तुम्हें हविर्लक्षण अन्न हो मे अर्थात् हवि प्राप्ति से हर्ष किया। कैसे हैं यजमान कि भूरिवर्षसः† नानारूप। चित्रोत्तयः नाना विधार क्षा. अवन. अन्न. वातर्पण तूने किये जिन्हों के अर्थात् तुम्हें करित पित। वामजाताः सम्मजनीय जन्म जिन्हों का। अर्थात् विशिष्ट देशजाति कुलोत्पन्नाः॥१०८॥

† वर्षेति रूपनामनिषेधः ०३. ७.

इत्यज्यन्तग्ने प्रथयस्व जन्तुभिस्ते रयौऽमर्त्यः॥ सदंशत  
स्य वपुषो विराजसि पृणक्षि सान्सिं क्रतुम्॥८॥

हे अमरणधर्मन् हे अग्ने हम विषे धन विस्तारि। कैसे तू कि प्राणियों (हविः प्रदत्त अध्वर्युओं) से दीप्यमान किंच जो तू ऐसे साधन का विस्तारने वाला। सो तू दर्शनीय वपु (चित्प्राग्नि रूप शरीर) के मध्य में विशेषण दीप्त है वा विभक्ति व्यत्ययः दर्शनेन वपुषा (ज्वाला लक्षण शरीर का रि) विराजता है। सानसि (चिरन्तन) क्रतु (सङ्कल्प) को पूरण करता अर्थात् सब दृष्टों को देता है॥१०८॥

इच्छतीरमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तर्धसो महः॥ एति वा  
मस्य सुभगा महीमिषं दधासि सान्सिं रुयिम्॥११०॥

हे अग्ने यज्ञ के निष्कर्तार (निश्चयेन कर्तार, यज्ञ निष्पादक) प्रचेतस (प्रकृष्टचित्तयुक्त) विशिष्ट स्थान विषे निवसन् ऐसे यजमान प्रति वननीय महद्घन के दान को तू देता है। किंच सुभगा मही (पृथिवी)

और अन्न को देता है। और सानसि (पुराण) रयि (घन अस्मर्ये विषय निधान लक्षण को देता अर्थात् निधि को दिखलाता है ॥११०॥

ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निर्दं सुम्नायदधिरेपुरो  
जनाः ॥ शुक्लर्णं सप्रथस्तमं त्वागिरादैव्यं मानुषायुगा ॥१११॥

मानुषा जनाः - मनुष्य जातियुक्त जन्तुएँ (ऋत्विग्यजमान) युगाः  
पौर्णमासी अमावास्यादिकाल करिगिरा (वेदवाचा) करिके यज्ञ के  
अर्थ तुरू अग्नि को पूर्व भागमें आहवनीय रूपसे स्थापन करते हुए।  
कैसे तुम्हें कि ऋतवान् सत्यवन्त। महान्त विश्वदर्शत (सब का दर्शनी  
य) शुक्लर्ण (श्रुतिमें कर्ण जिस के उसै अर्थात् जो विज्ञापन करें तिसै  
सत्य मेव कर्णों से सुनिके सम्यादन करता है। सप्रथस्तमं - अतिकी  
र्तिमन्त को। दैव्य प्रकाशमान वा देवताओं के अर्थहितको ॥१११॥

आप्यायस्व समेतुते विश्वतः सोमवृषायम् ॥ भावावाज  
स्य सङ्गुथे ॥११२॥

का० १७.३.१६. आत्मा में विस्तार की हुई सिकता का विस्तार करें दो  
ऋचाओं से ॥ गोतमदृष्टाः सोमदेवत्यास्तिस्त्रे गायत्री त्रिष्टुबृषिण्छ  
न्दस्काः। आप्यायस्व भदिन्त मेति ११४. तृतीयस्याविनिर्वाणः सू  
त्रेनास्ति। हे सोम सब ओड़ी से वृषाय (सर्वभूतोत्यतिहृदी ज तुरू  
विषे भले प्रकार प्राप्त हो और तिस वीर्य करितु सर्वतः वृद्ध हो। किंच  
अन्न का संगमन निमित्त हो अर्थात् अन्न को हमारे विषे प्राप्त क  
रि ॥११२॥

सं ते पयो यंसि समुयन्तु बाजाः सं वृषयान्यभिमाति

षाहः॥ आप्यायमानोऽमृतायसो मदिविश्रवाधं  
स्युजमानिधिष्व॥११३॥

हे सोम पयंसि पातव्याऽरसाः तेरे संयन्तु भले प्रकार प्राप्त हों और  
अन्न संयन्तु तेरे वृष्यानिरेतांसि संयन्तु। कैसे तेरे कि अभिमानिषा  
हं:- पाप्मा को अभिभव करने वाले। हे सोम पय अन्न वृषि से व  
र्धमानहुआ अमरणधर्मिणी प्रजाति (पुत्रादि वृद्धि के अर्थ) यजमा  
न का हो इतिशेषः +। किंच द्युलोकमें उत्कृष्ट अन्न आहुति परिणाम-

भूत सम्पादन करि अर्थात् लोकद्वय संभोग सम्पादन करि॥११३॥

आप्यायस्व मदितमसो मविश्वेभिर्दंशुभिः॥ भवानः  
सुप्रथस्तमः सरवावृधे॥११४॥

हे मदित्तममद (तर्पण) करने वाले मदी वा मदस्तत्तिरस्यास्तीति म  
दी अति शयेन मदी। ऐसे है सोम सब अशुं ओं सूक्ष्मांशुओं से प्रवृद्ध  
हो वृद्ध हुआ हमारे बढ़ाने के अर्थ सरवा (सहाय) हो कैसा है तू कि  
अत्यन्त सकीर्तिः॥११४॥

आते वत्सो मनो यमत्यरमाच्चित्सुधस्थात्॥ अग्नेत्वाकं  
मयागिरा॥११५॥

का० १७०३२००२१ अथवा अन्यवर्णित इसके अभाव में वैल  
परबैराहुआ अग्निभ्यः प्रहियमाणेभ्योऽनुजीहि इससे प्रेषित होता आ  
ते वत्स इस लचको कहें॥ अग्निदेवत्यास्तिस्त्रो गायत्र्यः आद्यावत्सा  
रदृष्टा द्वितीया विरूपदृष्टा तृतीया प्रजापतिदृष्टैव। हे अग्ने तेरा व  
त्स (पयो व्रतत्व से वत्स सम तेरा प्यारा यजमान) उत्कृष्टा दपि सह

+ अमृतशब्देन अन्ता प्रजातिव्याप्यताया च शत० ३१०४६ प्रजात्यानिदमृतं दशति  
न स्यात्प्रजातिरभूतति॥

स्थान द्युलोकाः। सैमन आहृत्येति शेषः। मनकानि ग्रह करता है कि सगिरासे कि बेदवाचा सैमन आहृत्येत्यर्थ केसी गिरासे कि तुम्हें का मयते स्तुति करने को इच्छा करती है ॥१५॥

नैऋतसहोदय  
तियास्मन्नाग्निः  
तत्सधस्यं गु  
लोकः

तुभ्यं ताः अङ्गिरस्तम विश्वाः सुक्षितयः पृथक् ॥ अनेका  
माययेमिरे ॥१६॥

हे अङ्गिरस्तम (अन्नको अतिशयेन गिरै) हे अग्ने नाना भूत ज्ञेय सब प्र  
सिद्ध स्तुतियों अभिलाष पूरण के अर्थ तुम्हें विषे नियम की जाती हैं  
यजमानों से इति शेषः। केसी हैं कि सुक्षितयः (स्वर्गादि शोभन स्था  
न की देने वाली) यजमान यहां के काम पूर्ति और द्युलोक प्राप्ति के अ  
र्थ तुम्हें स्तुति करते हैं इति भावः ॥१६॥

अग्निः प्रियेषु धाम सुकामो भूतस्य भव्यस्य ॥ स म्नाडे  
को विराजति ॥१७॥

इति संहितायां सप्तमोऽनुवाकः ॥७॥

इति श्री शुक्लयजुषि माध्यन्दिनीयायां वाजसनेयस संहि  
तायां दीर्घपाठे द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

अग्निप्रिय (अभिरुचित) स्थानों (धिष्यो) में असहाय भूत हो वि  
शेषेण दीप्ये है। केसा है अग्नि कि भूत (उत्पन्न) का और भव्य (भवि  
ष्यत्) मनुष्य का काम पूरण करने वाला। सम्राट् सम्यक् राजमा  
न शोभमान वा भूत भव्य का सम्राट् ईश्वर। काम्यते सर्वे र्यष्टु  
मिष्यतः इति काम इति वा ॥१७॥

इति श्रीगिरिधरभाष्ये सप्तमोऽनुवाकः

श्री वेदार्थ प्रदीपेन तमोहार्दनिवारयन्  
 पुमार्थाश्चतुरो देयादग्निदेवः सनातनः  
 श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीयशाखाध्येतव्या घ्नपादान्वय  
 विश्वामित्रपुराधिप श्रीमज्जयकिशोर देववर्मात्मज रौक्मिण्य-  
 नृपति गिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये रुक्मादि  
 वाचनपर्यन्तवर्णनो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

हरिः श्रीम्

ॐ नमो याज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्वहु रूपकम्

स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्म रूपं परं स्तुमः १

अ०१ मयि गृह्णाम्यग्नेऽग्निर्हं रायस्योषोय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्यो  
 य ॥ मामुदेवताः सचन्ताम् ॥१॥

ॐ नमो याज्ञवल्काय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके

पुष्कराद्यादिचित्यन्तो रामे द्वध्याय ईर्यते

वारहके अध्यायमें उखाधारण गार्हपत्यचयन क्षेत्रकर्षण औष-  
 धिवपनादि मन्त्र कहते रहे में पुष्कपर्णाद्युपधानके मन्त्र कहिते हैं ॥  
 का० १७.३.२७ उत्तरवेदी से पीछे खड़ा हो यजमान हो में ॥ अग्निदेवत्या  
 ककुप् । में यजमान धन की पुष्ट्यार्थ शोभन पुत्रादि निष्पत्यर्थ शोभ-  
 न सामर्थ्य के अर्थ प्रथम आत्मा में अग्नि को धारण कारता हूँ ततः  
 अग्नि की चिन्ता हूँ इति शेषः । किंच देवता भी मुझे सचन्ताम् ॥

संगत हों वा देवतामामेव सचन्ताम् ॥१॥

अपामृष्टमसियोनिरग्नेः समुद्रमभितः पितृमानम् ॥ व  
र्धमानो महा रं ॥५ आचपुष्करेदिवो मात्रया वरिम्णा प्रथ  
स्व ॥२॥

का. १७.४.१. ततः अध्वर्यु कुशस्तम्ब के ऊपर उखा सम्भरणवत्  
कमलिनी पत्र को रखें तेन अपां पृष्ठमिति मंत्र करि पुष्कर इत्यन्ते  
न उपधानदिवो मात्रयेति तिसका मार्जन इति सूत्रार्थः व्याख्यातः  
११.२५. ॥२॥

ब्रह्मयज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्विशीमतः सुरुचौवेनः  
आवः ॥ स बुध्या उपमाः अस्य विष्ठाः सतश्च योनिम  
सतश्च विवः ॥३॥

का. १७.३.२५. तिसपुष्करपर्णविषे कण्ठमें पहिने रुक्म अधः पिण्ड  
को स्थापन करें ॥ आदित्य देवत्या विष्टुप् । ब्रह्म ब्रह्मत् रुक्म रूपयह  
आदित्य सीमतः भूगोल मध्यभाग को आरंभ करि सुरोच्चनदनलो  
कों को प्रकाशसे निवृत करता हुआ । कैसा है ब्रह्म कि आदिमें पूर्व  
दिशाविषे मनुष्योंसे दृश्यमान किंच वेनः कामनीय वा मेधावी वोह  
आदित्य बुध्याओं दिशा कावर्ण करता है । विद्यमान घटपटादिस्था  
न और अविद्यमान वाय्वादि स्थान प्रकाशित करता है । कैसी हैं बुध्याः  
कि सावकाशा । अतएव इस जगत के विविध स्थान भूतों अर्थात् लोकों  
दिशाओं और भूतों को आदित्य एव प्रकाशित करता है ॥३॥

हिरण्यगर्भः समं वर्त्तताग्रैर्भूतस्य जातः पतिरेकः आसीत्



सद्विधारपृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।  
 का० १७.४.३० तिस रुक्म में उत्तान पुरुषा कारहिण्य को दो ऋचाओं  
 से स्थापन करें ॥ हिरण्य गर्भ दृष्टा प्रजापति देवत्या त्रिष्टुप्। हिरण्यपु  
 रुष रूप ब्रह्माण्ड विषे गर्भ रूप करि अवस्थित प्रजापति हिरण्यगर्भ  
 प्राणि जात की उत्पत्ति से पहिले आपही शरीर धारी होता हुआ।  
 और वो हवत्यन्न मात्र एकही उत्पन्न हुए सब जगत का ईश्वर था  
 वो ही अन्नरिक्ख द्युलोक और इस पृथिवी लोक तीनों को धारण  
 करता है। प्रजापति देवता के अर्थ हम हवि देते हैं ॥ ४ ॥

इप्सश्च स्कन्द पृथिवी मनु द्या मिमं च यो निमनु यश्च पूर्व  
 समानं यो निमनु संचरन्तं द्रप्सं जुहोम्य नु सप्त होत्राः ॥ ५ ॥  
 देव अबो दृष्टादित्य देवत्या त्रिष्टुप्। जो मुख्य आदित्य मनुष्यादि  
 धारण के अर्थ पृथिवी अंतरिक्ष को सींचता है। और आहुति परि  
 णम भूतरस करि देवादि धारण के अर्थ द्युलोक को सींचता है। जो  
 इस स्थान भूलोक को आहुति ग्रहण के अर्थ आता है। एवं सबों  
 के तुल्य स्थान तीनों लोक को संचरते आदित्य को सातों दिशा-  
 ओं में स्थापन करता हूँ अर्थात् हिरण्य पुरुष रूप करि सब दिशा  
 ओं में सूर्य को ही स्थापन करता हूँ। असौ वा आदित्यो द्रप्सो दि  
 शः सप्त होत्रा अमुमादित्यं दिक्षु प्रतिष्ठापयतीति शत० ७.४.१०  
 २० श्रुतेः पूर्वादि चतस्रो दिशः अध एका उपर्येकामध्ये चै  
 केति सप्त दिशो ज्ञेयाः ॥ ५ ॥

नमोस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु॥ येऽन्नन्तरिक्षे ये-

दिवितेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ६ ॥

का.०.१०.४.६. यजमान हिरण्यपुरुषको देवता तीनि ऋचाओंको प  
हे ॥ सर्व देवत्या स्निस्त्रोनुष्टुभः ॥ जे कोई सर्पण शीला (लोकः) पृथिवीमें  
हंति न सर्पों के अर्थ नमस्कार हो ॥ और जे अन्तरिक्ष लोकमें वर्तमान  
सर्प हैं तिन्हें के अर्थ नमोस्तु ॥ और जे द्युलोकमें वर्तमानाः सर्पों से भ्यो नमोस्तु  
इमे वै लोकाः सर्पा इति शत ०.१०.४.१.२५. श्रुतेः सर्पशब्देन लोकाः उच्य  
न्ते ॥ ६ ॥

या इषवो या तु धानानां ये वा वनस्पती रं ॥ रनु ॥ ये वा वटेषु शे  
रते तेभ्यः सूर्येभ्यो नमः ॥ ७ ॥

या तु धाना + राक्षस प्रभृतयः तिन्हों के जो सर्प जाति बाण रूप बाजे  
अन्य वनस्पतिओं को वेष्टन करि स्थित हैं और जे अन्य विले (भिटे  
ओं में सोते हैं तेभ्यो सूर्येभ्यो नमोस्तु ॥ ७ ॥

ये वा मीरो च ने दिवो ये वा सूर्ये स्वरश्मिषु ॥ येषामप्सु सदे  
रुतं तेभ्यः सूर्येभ्यो नमः ॥ ८ ॥

द्युलोक के दीप्त स्थान विषें जे वामी (सर्पः) हम से अदृश्यमान हैं ।  
तथा सूर्य की किरणों में जे सर्प वास करते हैं । जिन सर्पों का जल में  
स्थान किया तेभ्यो सूर्ये-स्तु ॥ ८ ॥

पञ्च प्रतिसगरा क्षोघ्राः

कृणुष्व पाजुः प्रसितिं न पृथ्वी या हि राजे वाम वा २ ॥ इमे  
न ॥ तृष्णी मनु प्रसितिं द्रूणा नो स्ता सि विध्य रक्ष सुस्त  
पि ष्ते ॥ ९ ॥

या नु अत न दुःखं दधति या तु धाना

+ बलनामसुति ३. ५.

का ०१७. ४. ७. आज्य को संस्कार करि पञ्चगृहीत को ले आत्मा को-  
आरोहण करि पुरुष के पास बैठि प्रति दिशा को परि सर्पण करि पु-  
रुष के ऊपर पांच ऋचाओं से होमें ॥ देव दृष्टा वा वाम देव दृष्टा राक्षो-  
घ्राः प्रतिसराः अग्नि देवत्याः पञ्चविष्टुभः ॥ हे अग्ने पाजः + बल  
को करि। तत्र दृष्टान्तः पक्षि ग्रहण के अर्थ पृथ्वी (बडी) प्रसिति-  
(जाल) को ऐसे शत्रु ग्रहण के अर्थ बल को फैलाय। ततः राजा जै-  
से सेवकों वाला हाथी करि चलता है शत्रुओं प्रति चलि। हे अग्ने  
शत्रुओं का क्षेप है अतः राक्षसों को तापक तम आयुधों से ताडि  
कैसा है तू कि क्षिप्र प्रसित (जाल) से शत्रुओं को मारता ॥ १० ॥

तव भ्रमासः आशुयापतन्त्यनु स्पृशधृषताशो भुचानः ॥

तपूथं ष्यग्ने जुह्वापतद्गानसंदि तो विसृजविष्वगुल्काः ॥ ११ ॥

हे अग्ने तेरी जे भ्रमासः (वातोद्भूत ज्वाला समूह) इधर ऊधर च-  
लती हैं कैसी कि शीघ्र गमना। तिन तपाने वाली ज्वालाओं से रा-  
क्षस (पतंगो पिशाचों) को स्पर्श करि अर्थात् ज्वालाओं से तिन्हें ज-  
लाय। कैसा है तू कि प्रगल्भ (धृष्ट) ज्वालौघ करि दे दीप्यमान तथा  
जुह्वा (सुचा) करि हूयमान इति शेषः। अखण्डित। ऐसा हो सर्व-  
त्र तिरछी ऊपर और नीचे ज्वाला छोडि अर्थात् राक्षसों के घा-  
त के अर्थ छोडि ॥ १० ॥

प्रतिस्य शो विसृज तूर्णितमो भवा पायुर्विशोः अस्या  
ः अदब्धः ॥ योनौ दूरेः अघशीर्षं सोयोः अन्त्यग्ने मा  
किंष्ट्रव्यथिरादधर्षीत् ॥ ११ ॥

हमारे दूरमें जो अघशंस पाप को इच्छा करनेवाला हमारा द्रोही बस  
ता है और जो समीपमें अघशंस है हे अग्नेति से बांधिके प्रणिधी को  
प्रेरि। इस हमारी प्रजा का पालक होकैसा है तू कि बड़ा वेगवान् अनु  
पहिंसित। हे अग्ने एवं अनुग्रह प्रवृत्त तुम्हें कोई मत व्यथा करौ शत्रु  
मत धार्यता को करौ। अर्थात् दूर समीपस्थ हमारे शत्रुओं प्रति शीघ्र-  
बन्धकों को प्रेरि किसी से भी अहिंसित हमारी प्रजा का पालक हो और रा-  
क्षस तुम्हें प्रति दृष्टान्त हों ॥ ११ ॥

उदग्नेतिष्ठ प्रत्यातनुष्वन्यमित्रा रौ ॥ ११ ॥ ओषताति गगहेते ॥  
यो नो ॥ अरतिर्दं समिधानचक्रे नीचातं धक्ष्यत सं न-  
शुष्कम् ॥ १२ ॥

हे अग्ने तू उठ ततः ज्वाला विस्तारि हेतिग्म हेते उत्साह वदा युधः श-  
त्रुओं को दाह करि। हे समिधान (दीप्यमान) हमारे दान को जो प्रतिषे-  
ध करै तिसै नीचा करिके भस्म करि। तत्र दृष्टान्तः शुष्क वृक्ष रोसे  
अदातार को भस्म करि ॥ १२ ॥

ऊर्ध्वो भव प्रति विध्याध्यस्मदा विष्कण्ड्वदैव्या न्यग्ने ॥  
अवस्थिरा तनु हि पातु जूनां जामिमजामिं प्रमृणीहि  
शत्रून् ॥ अग्ने द्वा तेजसा सादयामि ॥ १३ ॥ +

हे अग्ने ऊंचा (उद्युक्त) हो हमारे ऊपर वर्तमान शत्रुओं को प्रति  
ताडि। देव संबंधी कर्म प्रकट करि किंच पातु धानों के स्थिर ध-  
नुषों को अवतारि। किंच जाम्यजामिं पुनरुक्तं अपुनरुक्त करि  
कैः पुनः पुनः ताडित वा अताडित शत्रुओं को मरि ॥ का १० ॥

४.१२. कर्षयमयी पादमात्र दीर्घा वडङ्गुलविपुला दृत पूर्णा  
प्रागग्रा सुच को अग्निष्टेति यजु और अग्नि मूर्धेति ऋचा से स्थाप  
न करे ॥ आग्नेय यजु ॥ हे सुक् अग्नि के संबंधी तेज से तुम्हें स्थापन  
करता हूँ ॥ १३ ॥

अग्निर्मुर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्याः अयम् ॥ अथाथरेता  
अंसि जिन्वति ॥ इन्द्रस्य त्वेजसा सादयामि ॥ १४ ॥

अग्नि मूर्धेति व्याख्याता ३.१२. ॥ का. ०. १७. ४. ३. ऐसे ही ओ दुम्बरी दधि  
पूर्ण सुक् को उत्तर में रखें. इन्द्रस्य त्वेति यजुः और भुवो यज्ञस्येति ऋ  
चा से ॥ या-यं. इन्द्र देवत्यम्. हे सुक् इन्द्र के तेज से तुम्हें स्थापन करता  
हूँ ॥ १४ ॥

भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रानियुद्धिः स च सेशिवामिः  
दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षा जिह्वा मग्ने च कृषे हव्यवाहम् ॥ १५ ॥  
त्रिशिरो दृष्टाग्नि देवत्या त्रिष्टुप् । हे अग्ने जवकि तू हवि की वहाने वा  
ली ज्वाला करता है तव यज्ञ (हव्य देवता त्यागात्मका कानेता होता है  
और जगद्रक्षार्थ रजयज्ञपरिणामभूतो दक) कानेता होता है कहां  
नेता होता है सो कहते हैं कि जहां जिस स्थान में मङ्गल रूप नियुत अ  
ग्नि से तू संबंध को प्राप्त होता है । नियुत नामा वायु के अश्वतिहं से  
वायु लक्षित है और वायु से अन्तरिक्ष लक्षित है । और जहां दिवि में आ  
दित्य को धारण करता है । कैसे आदित्य को कि स्वर्ग का देनेवाला प  
द्म स्वर्ग में रहने वाला । अर्थात् यज्ञ और रज कानेता है । जो कि तेरा ए  
तत्कर्म तिस तुम्हें सुगुण करि सादन करता हूँ इति शेषः ॥ १५ ॥

अ. २ ध्रुवासिधरुणास्त ताविश्व कर्मणा ॥ मात्वा समुद्र उद्ध  
धीन्मा सुपर्णे व्यथमाना पृथिवीं हृष्टं ह ॥ १६ ॥

का. १०.४.१५ पुरुष के ऊपर ध्रुवे त्यादि कण्ड का चतुष्टय करि स्वयमा  
तृणा वं उपधान करै कैसी कि पाषाण मयी स्वाभाविक छिद्र युता सखि  
द्रा समगयीष्ट काही स्वयमा तृणा है ॥ चतुर्ण स्वयमा तृणा देवता १ ऊर्ध्व  
वृहती २ अनुष्टुप् ३ प्रस्तारपङ्क्तिः ४ यजुः ॥ हे स्वयमा तृणा स्थिरा है कै  
सी है तू कि भूमि रूप करि सब की धारण करने वाले प्रजापति से उपहिता ।  
समुद्र (रुक्म) तुम्हें मत हनियो ॥ और सुपर्ण (पुरुष) मत बध करो ॥ और  
भय रहिता पृथिवी को हट करि ॥ १६ ॥

प्रजापतिष्ठा सादयत्तु पां पृष्ठे समुद्रस्ये मेनू ॥ व्यचस्वर्ती प्रथ  
स्वती प्रथस्व पृथिव्युसि ॥ १७ ॥

हे स्वयमा तृणा जलों के पृष्ठ के ऊपर प्रजापति तुम्हें स्थापन करे । जल सं  
घात के अवस्थान में स्थापन करे । कैसी तुम्हें कि अभिव्यक्तियुता विस्त  
र युक्ता । और तू भी प्रजापति की स्थापन की हुई इस चितिका प्रथन करि  
यतः तू पृथिवी सी उत्पन्न हुई पृथिवी है ॥ १७ ॥

भूरसि भूमिरस्य दितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनधुत्री ॥  
पृथिवीं यच्छ पृथिवीं हृष्टं ह पृथिवी माहिं सी ॥ १८ ॥

हे स्वयमा तृणा तू सुरवों की भावयित्री है । पृथिवी (पृथिव्यभिमानि दे  
वता) है । अदिति (देवमाता) है । विश्व को पोषने वाली वा विश्व निहि  
त है जिसे वोह है । सर्वभूतग्राम की धारयित्री तादृशी तू पृथिवी  
को नियता करि पृथिवी को हटी करि पृथिवी की हिंसा मत करि ॥ १८ ॥

१६. १७. १८. १९. २०. २१. २२. २३. २४. २५. २६. २७. २८. २९. ३०. ३१. ३२. ३३. ३४. ३५. ३६. ३७. ३८. ३९. ४०. ४१. ४२. ४३. ४४. ४५. ४६. ४७. ४८. ४९. ५०. ५१. ५२. ५३. ५४. ५५. ५६. ५७. ५८. ५९. ६०. ६१. ६२. ६३. ६४. ६५. ६६. ६७. ६८. ६९. ७०. ७१. ७२. ७३. ७४. ७५. ७६. ७७. ७८. ७९. ८०. ८१. ८२. ८३. ८४. ८५. ८६. ८७. ८८. ८९. ९०. ९१. ९२. ९३. ९४. ९५. ९६. ९७. ९८. ९९. १००.

विश्वस्मै प्राणायोपानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठाये चरि  
त्राय ॥ अग्निष्ठाभिपातु मत्स्यास्वस्त्या छर्हिषाशान्तमे  
नतया देवतयाङ्गिरस्वध्रुवासीद् ॥ १५ ॥

हे स्वयमातृस्ते सब के अर्थ प्राण अपान व्यान उदान नामाख्य वायु  
वृत्ति के लाभार्थ कीर्तिके अर्थ और शास्त्रीय चरण के अर्थ प्राण  
यों के इन सबोंकी सिद्धिके अर्थ तुम्हें सादन करता हूँ इति शेष ॥ किं  
च योगक्षेमसम्पत्त्य और अत्यन्त सुखकारी गृह करिके अग्नि  
तुम्हें सर्वतः रक्षा करे ॥ तिस देवता से अनुगृहीता तू स्थिरा होके वै  
ठि अङ्गिराओं के चयनानुष्ठान में जैसे तू स्थिर बैठी तद्वत् यहाँ  
वैठि ॥ १५ ॥

काण्डात्काण्डात्परोहन्ती परुषः परुषस्यरि ॥ एवानोदू  
र्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च ॥ १६ ॥

का० १७४-१८: स्वयमातृस्तेमेंकाण्डादिति दो ऋचाओं करि भूमिमें  
गये अग्र मूलाग्रयुता दूर्गाको उपधान करें ॥ अग्निदृष्टे दूर्वेष्टका  
देवत्ये द्वे अनुष्टभौ। मूलसे भूमि सम्बद्ध पर्व काण्ड भूमिसे असंब  
द्ध परुः। हे दूर्वे दूर्वेष्ट के प्रति काण्ड प्रति परु भूमि सम्बद्ध असम्बद्ध  
सब पर्वों के सकाश से जैसे तू समन्तात्परोहन्ती (अदुःखती) है। हे दू  
र्वे ऐसे स्वादुःख विस्तरवत् सहस्र और शत असंख्य पुत्रपौत्रनप्रा  
दिकों से हमें विस्तारि ॥ १६ ॥

याशतेन प्रतनोषि सहस्रेण विरोहसि ॥ तस्यास्ते देवीष्टके  
विधे महविषाचयम् ॥ १७ ॥

हे देवि दीप्यमाने हे इष्टं जो तू शत काण्डों का विस्तार करती है और सहस्र अक्षुओं की प्रसूता होती है हम हवि के साथ तेरे स्थान को-परिचरे ॥ २१ ॥

यास्तेऽग्ने सूर्यरुचो दिवमातन्वन्ति रश्मिभिः ॥ ताभिर्नो

ऽअद्य सर्वा भी रुचे जनोयं न स्तुधि ॥ २२ ॥

का० १७०४२० दूर्वेष्ट कां के आगे यास्ते इन ऋचाओं में द्वियजुः संज्ञा पद्येष्ट का को स्थापन करे ॥ इन्द्राग्निहृष्टे अग्नि देवत्ये हे अनुष्टुभौ हे अग्ने जो तेरी दीप्ति है सूर्यमण्डल में वर्तमान हुई स्वरूप भूतकिरिणों से ध्रुलोक का प्रकाशती है। तिन सब रश्मिओं में हमें प्रकाशा (शोभा) र्थ यहां करि। और जनाय पुत्र पौत्रादिकों के अर्थ करि। धौलो क प्रकाशिका सब कांतियें और पुत्र पौत्र हमारे अर्थ दे इत्यर्थः यद्वा हमारे पुत्र पौत्रादिकों को शोभा के अर्थ करि अर्थात् जगत्प्रसिद्ध पुत्र दे ॥ २२ ॥

यावो देवाः सूर्यरुचो गोष्वश्वे पुजारुचः ॥ इन्द्राग्नीताभिः

सर्वाः भी रुचं नो धत्त वृहस्पते ॥ २३ ॥

हे देवाः हे इन्द्राग्नी हे वृहस्पते तुम्हारी सम्बन्धिनी जो दीप्ति है सूर्यमण्डल में है और जो तुम्हारी दीप्ति है गोओं अश्वों में है तिन सबों से ऐव मान करि के हमारे अर्थ रुच देओ अर्थात् तिस समान प्रभ हमें करे ॥ २३ ॥

विण्डुज्योतिरधारयत्सुराड्ज्योतिरधारयत् ॥ प्रजापतिष्ठा

सादयतु पृष्टे पृथिव्याज्योतिष्मतीम् ॥ विश्वं मे प्राणायोपा



नायं व्यानायविश्वं ज्योतिर्यच्छ ॥ अग्निष्टेधिपतिस्तया देव  
तेयाङ्गिरस्वद्वुवासीद ॥ २४ ॥

का० १७०४२२ द्वियजु के पूर्वमें अव्यवहितरेतःसिचो देपद्येष्टका  
प्राग्लक्षणा अनूकमें सर्वतःविराट् स्वराट् प्रतिमन्त्र करि उपधान  
करै विराट् इससे उत्तरा स्वराट् से दक्षिण को ॥ द्वे प्रा-गा० क्रमात् लो  
का लोक देवत्ये विशेष करि राजमान-विराट् इस लोक ज्योतिः अ  
ग्नि को धारण करता है ॥ १ ॥ आपही से राजमान-स्वराट् उस लोक  
ज्योतिः आदित्य को धारण करता है ॥ २ ॥ का० १७०४२३ रेतःसिचो  
के सामने यजमान कृता प्रथमा विश्वज्योतिः संज्ञा इष्टका प्राग्लक्षणा  
को उदङ्मुख अनूकमें उपधान करै ॥ विश्वज्योतिर्देवतं यजुः पृथि  
वी के पृष्ठोपरि ज्योतिषोपेत तुरु इष्टका को सब प्राण अपान व्याना  
दिकी सम्पत्त्यके अर्थ प्रजापति सादन करै किंचहे इष्टके तू सर्व नियहण  
कारि वादे और अग्नि तेरा स्वामी तिस अग्नि लक्षण देवता करि स्थिरा  
होके वैठि जैसे अङ्गिराओं के चयन में वैठी तैसे यहाँ भी ॥ २४ ॥

मधुश्च माधवश्च वासन्तिका वृतूः अग्नेरन्तः श्लेषोसिकल्पे  
तां द्यावा पृथिवी कल्पन्ता मापः ओषधयः कल्पन्ता मग्नयः  
पृथङ्मम ज्यैष्ठ्याय सर्वताः ॥ येऽअग्नयः समनसोन्तरा  
द्यावा पृथिवी इमे ॥ वासन्तिका वृतूः अभिकल्पमाना  
इन्द्रमिव देवाः अभि संवि शन्तु तया देवतयाङ्गिरस्व  
द्वुवेसीदतम् ॥ २५ ॥

का० १७०४२४ विश्वज्योति के सामने प्राग्लक्षणा द्वेपद्ये ऋतव्येष्ट

के अनूकमें अभितः उदङ्मुख स्थापन करै ॥ ऋतुदेवतं यजुः। मधु  
चैत्रमास माधव, वैशाखमास तेदोनों वसंत संबंधी ऋतु के अवय  
व यद्वा मधुमाधवौ वसंत एव वासंतिकऋतुः † हेता दश वसन्ताख्य  
ऋतो तूचीयमान अग्नि के मध्य में अवस्थित होनेसे श्लेष कहै जै  
से कुडी के भीतर हृत्ता के अर्थ काष्ठ पाषादिक श्लिष्ट हैं तद्वत्। मुम्  
अग्नि को चयन करते यजमान के उत्कर्षार्थ ये द्यावा पृथिवी कल्पता  
म् स्वेचित उपकार को सम्पादन करै यद्वा ममेति तव स्थाने व्यत्य  
यः- द्यावा पृथिवी तेरे उत्कर्ष के अर्थ कल्पताम् और जल औषधि  
यें तेरे उत्क-कल्पताम् समान व्रत कर्म जिन्हों का ते चयनारव्य कर्म  
में अवस्थित नानाभूताः अग्नियें स्वयमातृणाद्या इच्छा तेरे उ-  
ताम् † किंच इन् द्यावा पृथिवीओं के मध्यमें एक मनस्का जे और भी चि-  
तिहें ते भी वसंत ऋतु को सम्पादन करते इस कर्म के आश्रय हों।  
तत्र दृष्टान्तः जैसै देवता इन्द्र को परिचरणार्थ आश्रय हैं एवं अन्ये  
ष्टका वसन्त को परिचरणार्थ आश्रय हों ॥ सादयति। तिस देवता  
करि सादित हे ऋतव्येष्ट के औ तुम अंगिराओं के कर्म में जैसै सौख्य  
रथी वै हो ॥ २५ ॥

अषाढासि सहमाना सहस्वरातीः सहस्वपृतनायतः ॥ स  
हस्रवीर्यासि सामाजिन्व ॥ २६ ॥

का. १०. ४. २५. अषाढा संज्ञक दृष्टका को पत्नी कृता पद्या प्राग्ल  
क्षणा ऋतव्या सै पूर्व संलग्ना अनूक में उपधान करै ॥ सवित्वा  
देवदृष्टेष्टकादेवत्या † हे दृष्ट के तू अषाढा शत्रुओं को न सहती है † कैसी

† तथा च त्रुतिः ते देवा एतामिष्टकाम पश्यन् अषाढा मिमांसेवता मुपादधतता मुपाधाया मुगन्त पलाभः  
हृ व्यान स्मात्सर्वस्मादसहन्तस्मादषादेति शत ७. ४. २. २३.

है तू कि स्वभाव से अभिभव शीला अतः अदान शीला प्रजा का अभिभव करि। संग्राम की इच्छा करते शत्रुओं को अभिभव करि। किंच जंतू सहस्र वीर्या (बहु सामर्थ्य) है सो मुझे प्रीति हो ॥ २६ ॥

अ०३ मधुवाताऽऽकृतायुते मधुक्षरन्ति सिन्धवः ॥ माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥ २७ ॥

का० १७० ४० २७ दधि मधु घृत मिश्रित से कछप को भि गोवै ॥ गोतम दृष्टा विश्वदेव देवत्या स्तिस्त्रो गायत्र्यः । ऋतः यज्ञ की इच्छा करने वाले यजमान के अर्थ मधु (रस) वन्त वायु बहें इति शेषः सिन्धवः स्पन्द माना गङ्गादि सप्त नदीएँ + वा चारों दिशा के लोहितादि चारि समुद्र + रसवत् उदक स्रवें । ओषधीएँ हमारे को मधुर रसोपेता हैं ॥ २७ ॥

मधुनक्तं मुतोष सोमधुमृत्यार्थिर्वर्धरजः ॥ मधुघोरस्तुनः पिता ॥ २८ ॥

रात्रि हमारे को मधुर रसोपेता (आनन्द करने वाली) हो । और दिवस मधु मन्त हैं । मातृभूता पृथिवी लोक मधुर रसोपेता वैरी कांटों में रहित हो । दृष्टि प्रदान करि पालन करने वाला पितृभूत द्यौलोक माधुर्यफल अन्न और तिसके भक्षण से पुत्र का देने वाला हो ॥ २८ ॥

मधुमात्रो वनस्पतिर्मधुमा रं ॥ अस्तु सूर्यः ॥ माध्वीर्गोवो भवन्तु नः ॥ २९ ॥

वनस्पतिः अश्वत्थादि वा यूपाभिमानि देवता हमारे अर्थ रसवान् सन्ताप रहित्य माधुर्य रसोपेत हो । गावः अग्नि होत्र की गो

हैं दुग्धवती वा यज्ञ साधनभूता रश्मिरहैं हमको मधुमती + रसवतीहों।  
वातादिक रसवन्ति हमको भोग्यहों इति सर्वार्थः ॥२६॥

अपांग मन्त्सीदमात्वा सूर्यो भिताप्सीन्माग्निर्वैश्वानरः ॥  
अच्छिन्नपत्राः प्रजाः अनु वीक्षस्वानुत्वा दिव्या वृष्टिः स-  
चताम् ॥३०॥

का० १७.४.२८.५.१. अषाढा के दक्षिणविषे हस्तमात्र पद्याद्वय-  
अनाराल कहीं गई तीसरे पद्यालोक पूर्व में व स्यापिता शेवाल पु-  
रुष संमुख तीनि ऋचाओं से कूर्मको उपधान करे ॥ पङ्क्तिः + कूर्मदे-  
वत्या + हे कूर्म जलों के गम्भीर स्थान (रविमण्डल ५) विषे तू बैठा। तहां  
तुरूं बैठे हुए को सूर्य सन्तापन देवै। और वैश्वानर सवनरों से हित-  
अग्नि नत पावै। और तू बर्हा स्थित हुआ प्रजा (इष्ट कारूपा निरन्तर दे-  
रि। कैसी प्रजा कि अच्छिन्नपत्रा, अनवरखण्डित हैं अवयव जिस के  
अर्थात् अखण्डिता इष्टका करि। किंच दिव्या (दिवि में हुई) वृष्टि तु  
मे सेवन करे अर्थात् जल से नित्य सिक्त हो ॥३०॥

त्रीन्समुद्रान्समं सृपस्वर्गान् याम्यतिर्वृषभः दृष्टकानाम् ॥  
पुरीषं वसानः सुकृतस्य लोके तत्र गच्छ यत्र पूर्वपरताः ॥३१॥

का० १७.५.२. तीनों ऋचाओं के बीच की त्रीन्समुद्रान् इस ऋचासे ह-  
स्तस्थ कूर्म को कंपावै ॥ कूर्मदेवत्या त्रिष्टुप्। हे कूर्म जो तू तीनि समुद्रों-  
(लोकों) को भले प्रकार प्राप्त हुआ। कैसे लोकों कि स्वर्गान् भोगसाध-  
नभूतों। कैसा है तू कि जलों का स्वामी इष्टकाओं का वर्षने वाला। किं-  
चजिस स्थान विषे पूर्व (पुरातन कूर्म) अन्य अग्निविषे उपहित प-

र सो वै मधि  
ति शत ००.५.  
१.४.

महीधरेपि  
कूर्मः प्रजाप-  
तिरादित्योना।  
नृतीयाद्यावा  
पृथिवीयाः।

महीधरेपि  
कूर्मः प्रजाप-  
तिरादित्योना।  
नृतीयाद्यावा  
पृथिवीयाः।

ए गतहं शोभन कृत अग्नि के तिस लोक (स्थान) विषे तू पहुंचका  
करने कि पुरीष वसानः कृतपशुओं के आछादन को ॥३१॥

महीद्यौः पृथिवीचनः इमं यज्ञं मिमिक्षताम् ॥ पिशुतान्ने  
भरीमभिः ॥३२॥

व्याख्याता ८.३२.॥३२॥

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो वृत्तानि पश्यते ॥ इन्द्रस्य  
युज्यः सर्वा ॥३३॥

का० १७.५.३. चतुष्कोणं मध्य संकुचितरवात हीन उदम्बर तरु  
जात ऊंचे उलूखल (ओखली) गोल भूसल तिन दोनों को स्वयं  
मातृणा के उत्तर देश में तिन्हों के मध्य से हस्त मात्र तीसरी पद्यालो  
क विष्णोः इस मन्त्र करि सहित उपधान करै ॥ व्याख्याता ६.४.॥३३॥

ध्रुवासि धरुणे तो जज्ञे प्रथम मेभ्यो योनिभ्योऽपधिजा  
त वेदाः ॥ सगायत्र्या त्रिष्टुभां नुष्टुभांच देवेभ्यो हव्यं  
बहत्तु प्रजानन् ॥३४॥

का० १७.५.४. प्रथम उलूखल के ऊपर उरवा को चुपके से करि फिर  
उपशया मृदा को पीसि के उरवा के सामने भूमि में डालि के तहां उरवा  
को दो मन्त्र करि के उपधान करै ॥ उरवा देवत्या द्वे त्रिष्टुबृहत्यो । हे  
उरवे जगत की धारण करने वाली तू स्थिरा है । अथाग्नि जन कत्वे  
नोरवा स्तूपते । जो अग्नि इस उरवा के सकाश से आदि में जात वे  
दाः जात प्रज्ञान उत्पन्न हुआ ततः इन योनियों अपने कारणों  
अरणी आदिकों से उत्पन्न होता है । सो अग्नि अपने अधिकार

को जान कर गायत्री त्रिष्टुप् अनुष्टुप् इनतीनों छन्दों करि देवताओं के अर्थ हमारा हविवहो ॥ ३४ ॥

इषे राये रमस्व सहसे धुम्नः ऊर्जेऽपयत्याय ॥ सम्राडसि स्वरार्डसि सारस्वतो त्वोत्सोऽशवताम् ॥ ३५ ॥

हे उरवे तू यहां कीड़ा करि किमर्थ कि इषे, अन्नार्थ सहसे, वलार्थ धुम्ने, यश वा अन्न के अर्थ ऊर्जे, पयो दधि घृतादिक उपसे चन के अर्थ अपत्याय, पुत्रपौत्रादिकों के अर्थ कीड़ा करि यह सर्वत्र सम्बन्ध है। किंच सम्राट है स्वरार्ड है। एवम्भूता तू मैं सारस्वतो, सरस्वती के सम्बन्धी उत्सो (उत्स्पन्दन - कूप वा प्रवाह) तू मैं प्रकर्षण पासन करें। और वे उत्सो, मनवाचा। शास्त्रज्ञान के अर्थ कूप - इव उत्स्पन्दन इत्या मन कूप है वाति से प्रतिपादन करती वाचा भी कूप है। यद्वा सारस्वतो उत्सो - ऋग्वेद सामवेद तू मैं रक्षा करें, तथाच तित्तिरि श्रुतिः - ऋक्सामवे सारस्वता वृत्साविति ॥ ३५ ॥

अग्ने युश्वाहियेतवाश्वा सो देवसाधवः ॥ अरुं वहन्ति मन्यवे ॥ ३६ ॥

का० १०५५ दो ऋचाओं से उरवा के मध्यमें दो आहुति होमें ॥ अग्नि देवत्ये द्वे गायत्री प्रथमा भरद्वाज दृष्टा द्वितीया विरूप दृष्टा हे देव दीप्यमान अग्ने ये साधु (दान्त) तेरे घोड़े अत्यन्त मन्यवे यज्ञ के अर्थ प्राप्त करते हैं देवताओं को इति शेषः तिन अश्वों को जोड़ि हि पाद पूरणः ॥ ३६ ॥

तित्तिरि श्रुतिः ऋक्सामवे सारस्वता वृत्साविति

युश्वाहि देव हूत मा रे॥५॥ अश्वौ ॥५॥ अग्ने रथी रिव॥ नि  
होता पूर्व्यः सदः॥३७॥

हे अग्ने तू अश्वों को जोड़िहि- असिद्धों। कैसों को कि देवताओं  
को आह्वान करनेवाले। दृष्टान्तमाह रथी जैसे जोड़ता है तैसे। किं  
च तू पूर्व्यः होता (पुराना होता) मनुष्य होता से आगे इस याग होत  
षटन विषे वैष्ठाहुआ॥३७॥

अ० ४ सम्यक्त्ववन्ति सरितो न धेना अन्तर्हृदा मनसा पूय मा  
नाः॥ घृतस्य धारा अभिचाकशीमि हिरण्ययो वेतसो  
मध्ये अग्नेः॥३८॥

का० १७०५०० सम्यगिति मन्त्रेण पञ्चपशुओं के मुख में एक-एक  
हिरण्य शकल की डालें॥ लिङ्गोक्त देवता त्रिष्टुप्। हिरण्यपुरुषो  
द्देशेनायं मन्त्रः। अग्नि (चिति) के मध्य में हिरण्ययो वेतसः पुरुष जो  
निहित है तिस प्रति धेना (अन्न) भले प्रकार क्षरते हैं अर्थात् हू  
यमान हवितिस प्रति जाते हैं। कैसे हैं अन्न कि मनसा अन्तर्हृदा  
हृदयान्तर वर्तमान हृत्प्रतिष्ठित विषय व्यावृत्तेन अव्या  
कुल अर्थात् अज्ञा युक्त मन करि दिये। तत्र दृष्टान्तः स  
रितो न न इवार्थः जैसे नदियें समुद्र प्रति जाती हैं तद्वत्। न  
केवल धेना ही चलते हैं किन्तु घृत की धारा भी स्वर्ग हैं। ते धे  
नाः और घृत की धारा हिरण्यपुरुष प्रति स्वर्ग हैं यत्तमें दे  
खता हूँ॥३८॥

मृचेत्वा रुचेत्वा भासेत्वा ज्योतिषेत्वा॥ अभूद्वि

\* अन्नं वै हृदयेन मनसा सतान्नपूतं यन्नजुरिति शत० ५२०११ श्रुतेः।

अस्य भुवनस्य वाजिनमग्नेर्वैश्वानरस्य च ॥ ३८ ॥

हिरण्य शकल देवत्या बृहती ॥ का० १७.५.४. ऋचेत्वा से पशुओं की नासिका के बाए छिद्र और रुचेत्वा से दाहिने में शकल प्रासन करें ॥ हे हिरण्य शकल ऋचे. ऋग्वेद तदुक्त होत्रादिसिद्धि के अर्थ तुम्हें वाम नासा में प्रासन करता हूँ. रुचे. दीप्ति शोभाप्राप्ति के अर्थ तुम्हें दक्षिण नासा में प्रासन करता हूँ ॥ का० १७.५.१० भासेत्वा. ज्योतिषेत्वा. इन दो मंत्रों से दोनों नेत्रों में हिरण्य शकल प्रासन है ॥ भासे कान्ति के अर्थ तुम्हें वाम नेत्र में प्रा० तेज से. तेज की प्राप्ति के अर्थ तुम्हें दक्षिण नेत्र ॥ का० १७.५.११ कर्णों में अभूदिदम्. अग्निर्ज्योतिषा काण्डी ४० इन दोनों मंत्रों से ॥ यह श्रोत्र सब भूत जात वैश्वानर सवनरों के अर्थ हित और अग्नि का वाजिन (वाचा का जानने वाला) होता हुआ. सब प्राणियों के शब्द और अग्नि का शब्द श्रोत्र ही से जाना जाता है इस कारण श्रोत्र विषे हिरण्य को प्रासन करता हूँ इति शेषः यद्वायमर्थः इस श्रोत्र विषे अस्य मान हिरण्य सब भूत जात वैश्वानर और अग्नि का वीर्य (तेज जनक) होता है इस हेतु प्रासन करता हूँ ॥ ३८ ॥

अग्निर्ज्योतिषा ज्योतिष्मान् रुक्मो वर्चसा वर्चस्वान् ॥

सहस्रदाः असि सहस्रायत्वा ॥ ४० ॥

हिरण्य शकल देवत्या षाक् ॥ यह अग्नि ज्योतिषा. पशु श्रोत्रस्थित हिरण्य तेज करि तेजस्वी हो रुक्मः. रोचमान् अग्नि हिरण्य कान्तिकरि कान्तिमान् हो ॥ यद्वा श्रोत्र ही हिरण्य ज्योति करि अ

† वाच्य प्रभा ज्योतिः शरीरगत कान्ति वर्च इति ज्योर्वर्चसोर्भेदः ॥

यथा भवति यमेतत्कर्णो वपि धाय  
श्रोत्रोऽपि वैश्वानर इत्युक्तस्य तस्यैव  
श्रुणुतीति श्रुत्यनुवादः कोऽयमन्त्रः ॥



अग्निजैसै ज्योतिष्मान् हो और हिरण्यवर्च करिवचैस्वान् हो रुक्म-इव-  
सुवर्णपुरुष-इव उभयत्रेवाध्या हारेण लिङ्ग न्यत्ययेन च योजनेत्य-  
र्थः ॥ का० १७.५.१४ सहस्रदासै पुरुषकाशिरलेकर उरुत्वाके मध्यमे  
उपधानकरै ॥ हे पुरुष तू सहस्रदा सहस्रसंख्यका दाता है अतः स  
हस्रधन लाभके अर्थ तुम्हें उद्ग्रहण करता हूँ इति शेषः ॥ आदौ पुरुष  
शिरसि सकल प्राप्तिं ततोऽश्वगोऽव्यजानां क्रमेण एकपशुपक्षे  
मुखादिषु प्रत्येकं सप्त-सप्तपञ्चकत्वं एकैकमित्यन्ये का० १७.५.  
११ शत० ७.५.२.१०० ॥ ४० ॥

आदित्यं गर्भं पयसा समृद्धिं सहस्रं स्पृशति मां विश्वरू-  
पम् ॥ परिबृद्धिं हरं सामाभि मंस्थाः शतायुषं कृणुहि  
वीर्यमानः ॥ ४१ ॥

का० १७.५.१० आदित्यं गर्भमिति ४१-४५ पांच ऋचाओं से पुरु-  
षादिकों के शिरक्रम पूर्वक एक-एक उपधान करै ॥ पञ्च ऋचोऽ-  
ग्निदेवत्यास्त्रिष्टुभः ॥ आदौ पुरुषशिर उपदधाति मध्ये हे पुरुष  
शिर तू आदित्य (चित्पाग्नि) को पय विषे स्थापन करि। कैसा है  
आदित्य कि गर्भ (गृहण करने वाला पशुओं को। बहुत धन का प्र-  
तिमा भूत अर्थात् बहुत धन का देने वाला। सर्वरूप आदित्यत्व  
से सर्वरूप प्रकाशक अर्थात् सर्वरूप हैं जिससे। किंच हरसा सर्व  
वीर्यापहारक अग्निकी ज्योति हर तिस अग्नि तेजसे यजमा-  
न को परि वर्जन करि। मा अभिमंस्थाः यजमान को मत हिंसि।  
किंच वीर्यमानः उपधीयमानः सन् यजमान को शताब्द

आदित्यं पशुनादिभ्यो दीपं वा मधुपशुभिः  
तदादित्यं विज्ञेयमानः ॥

जीवी करि ॥ ४१ ॥

वातस्य जूतिं बरुणस्य नाभिं मय्यं वृक्षान् हंसरिरस्य म-  
ध्ये ॥ शिशुं नदीनां हं हरिं मद्रिबुध्नं मय्यं माहिं हंसीः  
परमे व्योमन् ॥ ४२ ॥

अश्वशिर इशाने उपदधाति । हे अग्ने (चित्पाग्ने) तू इस अश्व  
को ज्वाला से न जलाउ । कैसे को कि वातस्य जूतिं वायुवत् शीघ्र  
गामी वा वायु के प्रेमपात्र । बरुणस्य नाभिं जलेश के नाभिजैसे  
अनन्तर यथानरसे अपनी नाभि बस्त्रावरणदि करि पालन क-  
रि है तद्वत् बरुण करि अतिप्रिय होने से पाल्य । यतः सरिरस्य  
मध्ये जल (समुद्र) के मध्य में जायमान † अत एव नदी-पों के  
शिशु, बालक † । हरिं हरितवर्ण वा आरूढं नरं हरतीति हरि-  
तिसे । अद्रिबुध्नं पर्वतमूल (कारण) जिन्हों काते अद्रिबुध्नाः  
जल तिन्हों से उत्पन्न वा पर्वतों से जात पश्चितिस के स्वर्गों से क्षुणा  
न पाषाणों को देखि करनरों से जात जो कियहां अश्व गया इति  
अर्थात् उत्कृष्ट । परमे व्योमन् इन लोकों विषे निसीदन्नमिति  
शेषः ५ । यद्वा विविधं ओम् अवरक्षण परम (उत्कृष्ट) यद्यो  
म नाना उपद्रवों से पालन तहां स्थापित को इति शेषः ॥ ४२ ॥  
अजस्रमिन्दुं मरुधं सुरण्युमग्निं मीडे पूर्वचित्तिन्  
मोभिः ॥ मपर्वभिः कर्तुं शः कल्पमानो गां माहिं हंसी  
रादिति विराजम् ॥ ४३ ॥

गोशिर आग्नेय्यामुपदधाति । मैं अग्नि को स्तुति करता हूं कैसे

नदीपतिः समुद्रः पिनातए-  
व नदीनां मातृत्वा-  
त्तन्निभुम् ।

† नदीपतिः स  
मुद्रः पिनातए-  
व नदीनां मातृत्वा-  
त्तन्निभुम् ।

५ इमे वै लोकाः  
परमे व्योमेति  
शत ७७.५.२०  
१८. श्रुतेः ।

को कि अनुपक्षीण इन्दु (ऐश्वर्योपेत वाक्लेदन करने वाला जनो के मनोकातिसे) शेषरहित वा मर्म स्थानीय रहस्य (आराध्य) पूर्वमहर्षि यों से चेतव्य। अन्नों से सदा के पोष्टार। हे अग्ने एवं सूर्यमाना गौकोम तमारि। कैसी को कि अखण्डता वा अदीना विविध राजमाना +।

कैसा है तू कि पर्वभिः पशु इष्टकाओं वा अमा मावास्यादि पर्वों से ऋतुशः ऋतु- ऋतु में कल्पमानः कर्म सम्पादन करता ॥४३॥

वरूची त्वष्टुर्वरुणस्य नाभि मविं जज्ञानां रजसः परस्मात् ॥ महीं साहस्री मसुरस्य माया मग्ने माहिं सीः परमे व्योमनू ॥४४॥

वायव्ये विशिर उपदधाति। हे अग्ने परमे व्योमनू उत्कृष्ट रक्ष ण स्थान विषे स्थापित अविको मतमारि। कैसी को कि त्वष्टुः रूपों के निर्माण करने वाले देवता के अनुग्रह से वरूची कम्बलादि करि छादन करने वाली लोकों को तिसै। वरुणस्य नाभि नाभिवद्र क्षणीय वारुणी और त्वष्ट्री अवि। परस्माद्रजसः दिगूय लोक से जायमाना वा प्रजापति के रजोगुण से जायमाना। वडी। साह स्त्री सहस्र मूल्यार्हा वा सहस्रोप का रक्षमा असुरस्य माया प्राणि यों की प्रज्ञा देने वाली को ॥४४॥

योः अग्निरग्ने रध्यता यत शोकात्प्रयिव्याऽउत वादिव स्परि ॥ येन प्रजा विश्वकर्मा जजान त मग्ने हेड परिते वृणक्तु ॥४५॥

मे ऋते जमुपदधाति। जो अग्नि (अग्निरूप अज) अग्नि (प्रजा

अथ शोभा को विराट् अथ तत्त्व पर दत्तादि

अथ शोभा को विराट् अथ तत्त्व पर दत्तादि

प्रति के शोक। सन्नाप) सै उत्पन्न हुआ । और दिवि के शोक तथा पृथिवी के शोक सै जो अज उत्पन्न । विश्वकर्मा एव प्रजापति जि- स अज (वायूप) करि प्रजा उत्पन्न करता हुआ । हे अग्ने (चित्य) तेरा क्रोध तिस अज को परित्याग करै अर्थात् अज विषे तुम्हें करि कोप न करैयें हैं ॥ माधवस्तु पृथिवी ऊपर स्थित अथवा द्युलोक के ऊपर स्थित दक्षिण युक्त अग्नि (प्रजापति) के सकाश सै जो अग्नि रूप अज उत्पन्न हुआ विश्वकर्माने जिस अज करि प्रजा पशुओं को उत्पन्न किया । अजस्य पशु साधनत्व तैतिरीय श्रुत्योक्तम् ततोऽजस्त परः समभवत् तं स्वायै देवतायाः आलभत ततो वै प्रजाः पशून् सृजतेति । शेषं पूर्ववत् ॥ ४५ ॥

चित्रं देवानां मुदेगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ॥  
आ प्राद्यावा पृथिवीः अन्तरिक्षं सूर्यः आत्मा जगतस्त-  
स्थुषश्च ॥ ४६ ॥

का० १०. ५. १० चित्रं देवानाम् इन दोनों अर्घारियों करि पुरुषशिर की दो आहुति होमें ॥ व्याख्याता ७. ४२. ॥ ४६ ॥

अ० ५ इमं माहिर्हं सीद्विषादं पशुर्हं सहस्राक्षमेधायचीयमा-  
नः ॥ मयुं पशुं मेधमग्ने जुषस्व ते न चिन्वानस्तन्वीनिषी-  
द ॥ मयुं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं तेषु गृच्छतु ॥ ४७ ॥

का० १०. ५. १४ अग्नि सै उत्तरि के वेदी के बाहिर दक्षिण में उड़खु-  
र खड़ा हो इमं मे इन उत्सर्ग संज्ञक पांच मंत्रों करि पुरुषादिशि-  
रों का अध्वर्यु उपस्थान करै एक पशु पक्षेतिन्ही पांचों से इत्यर्थः

\* अवाग्निः  
प्रजापतिः  
† अग्नि पृ-  
थिवीदिवा  
कादजोत्पत्तिः  
श्रुत्योक्ता य-  
वै प्रजापतेः  
शोकादजाप-  
ततद्विवश्रुप-  
यिष्येच शोका-  
दजापतेति-  
शत० ७. ५. २.  
२१०

४ अजस्य पशु साधनत्व तैतिरीय श्रुत्योक्तम् ततोऽजस्त परः समभवत् तं स्वायै देवतायाः आलभत ततो वै प्रजाः पशून् सृजतेति शत० ७. ५. २. २१० ॥ ४७ ॥

अग्निदेवत्याः पञ्चविष्टुभः आद्ययोरन्ते एकैकं यजुः तिस्रेणामन्ते  
 द्वे-द्वे यजुषी। हे अग्ने हिरण्यशकलरूपसहस्रनेत्रमेध यज्ञा के  
 अर्थचयनकरिसंस्क्रियमाणः सन्तु तूदस द्विपाद पशु पुरुषरूपको मतद  
 है + और जो भक्षण की ही इच्छा तौ शुद्ध मयु + तुरङ्ग वदन कि-  
 म्पुरुष पशु वा कृष्ण मृग ॥ को भक्षण करि। तिस मयु भक्षणसे ज्वा  
 लारूप शरीर को पोषन करिके वैहि ॥ इतो यजुः तेरा संताप मयुको  
 प्राप्त हो। किंच जिस पुरुष प्रति हम द्वेष करते हैं तिसै तेरा संता  
 प प्राप्त हो ॥ ४७ ॥

इमं माहिर्धं सीरे कशफं पशुं कनिक्रदं वाजिनं वा  
 जिनेषु ॥ गौरमारण्यमनु ते दिशामिते न चिन्वान  
 स्तन्वो निषीद ॥ गौरं तेषु गृच्छतु यद्विष्मस्तं तेषु गृ  
 छतु ॥ ४८ ॥ + इ-दा अ० गौ-तु। इ० ॥ ४८ ॥

अथाश्वस्य। हे अग्ने इस एक शफ (खुर) पशु (अश्व) को माहि  
 सीः। कैसे को कि कनिक्रदं (अत्यन्त ही सते हुए) वेग वन्त को ते  
 तेरे अर्थ वनस्थ गौरवर्ण मृग को देता हूं। तेन चिन्वान इत्यादि  
 पूर्ववत्। स्पष्टं यजुः ॥ ४८ ॥

इमं सहस्रं शतधा रुमुत्सं व्यच्यमानं सरिरस्य म  
 ध्ये ॥ घृतं दुहाना मदिति जनायाग्ने माहिर्धं सीः परमेव्यो  
 मन् ॥ गवयमारण्यमनु ते दिशामिते न चिन्वान स्त  
 न्वो निषीद ॥ गवयं तेषु गृच्छतु यद्विष्मस्तं तेषु  
 गृच्छतु ॥ ४९ ॥ + इ-ना अ० ग-दा इ० ग-तु। उ० ॥ ४९ ॥

+ किं पुरुषो वै मयुरिति शत० ५२३२ अन्ते ॥ ॥ मयुर्गोश्ववदन इति कोषोक्तेः ॥

हिरण्यशकलरूपसहस्रनेत्रमेध यज्ञा के अर्थचयनकरिसंस्क्रियमाणः सन्तु तूदस द्विपाद पशु पुरुषरूपको मतद है + और जो भक्षण की ही इच्छा तौ शुद्ध मयु + तुरङ्ग वदन किम्पुरुष पशु वा कृष्ण मृग ॥ को भक्षण करि। तिस मयु भक्षणसे ज्वा लारूप शरीर को पोषन करिके वैहि ॥ इतो यजुः तेरा संताप मयुको प्राप्त हो। किंच जिस पुरुष प्रति हम द्वेष करते हैं तिसै तेरा संताप प्राप्त हो ॥ ४७ ॥

अथ गोः॥ अत्र विशेषण द्वयं स्त्रीलिङ्गं शेषाणि पुल्लिङ्गानि व्य-  
त्ययेन उभाभ्यां गौरेव स्तूयते। हे अग्ने उत्कृष्ट स्थानविषे स्थि-  
त इमं गोरूपं पशुको माहिंसीः। कैसेको साहसं सहस्रमूल्या  
हे वा सहस्रोपकारक्षम। शतसंख्याक क्षीरधारायुत अत ए-  
व उत्कृष्टं कूपसदृशं अर्थात् बहुस्रोतसं सरिरस्य + मध्ये-  
इन लोकों के विषे व्यच्यमान, मनुष्यों से उपजीव्यमान। ज-  
नाय, सबलोकके अर्थ घृतके कारण क्षीरको क्षरती। अखंडि-  
ता को। तेरे अर्थ आरण्य गवय (गोसदृशं पशुविशेष) को दे-  
ता हूँ। शिष्टमुक्तम् ॥४६॥

इममूर्णयुं वरुणस्य नाभिं त्वचं पशूनां द्विपदां च  
तुष्यदाम् ॥ त्वष्टुः प्रजानां प्रथमं जनित्रमग्ने माहिं  
सीः परमे व्योमन् ॥ उष्ट्रं मारुण्यमनुते दिशामितेन  
चिन्वानस्तन्वो निषीद ॥ उष्ट्रं तेषु गृच्छतु यं द्विप्पस्तं  
तेषु गृच्छतु ॥५०॥

अथावेः॥ हे अग्ने उत्कृष्ट-स्थित इस अविको माहिंसीः। कैसेको  
कि ऊर्णयुक्त। वरुण के नाभि स्थानीय, प्यारे। मनुष्यों और गवा-  
दि पशुओं के त्वच त्वच जैसे, कम्बल करि छादकत्व से त्वग्रक्षक  
तथा त्वष्टुः प्रजापति की प्रजाविषे प्रथमोत्पन्न \* को। तेरे अर्थ उ-  
ष्ट्र (ऊँट) देता हूँ। स्पष्टमन्यतु ॥५०॥

अजीह्यग्ने रजनिष्ट शोकात्सोऽप्ययज्जनितारम-  
ये ॥ तेन देवा देवतामग्रमायं स्तेन रोहमा पशुपमे

मनुष्यलोकः सरिगमिति  
प्रत ००. ५. २. ३१ श्रुतेः।  
+ इमं वैलोकः सरिगमिति  
प्रत ००. ५. २. ३१ श्रुतेः।  
मनुष्यलोकः सरिगमिति  
प्रत ००. ५. २. ३१ श्रुतेः।  
मनुष्यलोकः सरिगमिति  
प्रत ००. ५. २. ३१ श्रुतेः।

ध्यासः॥ शरभमो राण्यमनुतेदिशामितेनीचन्वानस्तत्त्वोनि  
षीद॥ शरभं ते शुगृच्छतुयं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु॥५१॥  
अथाजस्य। हिपाद पूरणः। जो अज अग्नि (प्रजापति) के संतापसे  
उत्पन्न। सो उत्पन्न हुआ अज प्रथम नर जैसे अपने उत्पादक प्र  
जापतिको देखता हुआ। किंच एवं प्रशस्तो अजः ततः ये देवता पूर्व  
जन्म विषे तिस अजसे कर्म करिके इति शेषः देवभाव को प्राप्त हु  
ए तस्य भावस्त्वतलौ। किंच यज्ञ के योग्य यजमान लोक रोहणीय  
स्वर्ग को तिस अज करि जाते हैं। शरभः- अष्टा पद मृग विशेष  
सिंहका मारनेवाला शेषमुक्तम्॥५१॥

त्वं यविष्ठ दाशुषो नृः पाहि श्वणुधी गिरः रक्षा तो क मु  
तत्पना ॥५॥

का०१००६१ वेदी से बाहिर आके अग्नि के समीप में अर्धचिति  
को उपस्थान करें ॥ उशनो काव्य दृष्टानिरुक्ताग्नेयी गायत्री ।  
हे यविष्ठ, युवतम वा मिश्रयितुतम हमा गी स्तुतिवाचा सुनि ।  
वाचा सुनि कर हवि देने वाले यजमान, मनुष्यों वा यजमान के  
मनुष्यों को रक्षा कर । किंच यजमान की सन्तान को रक्षा कर  
वा सन्तान और यजमान को रक्षा कर ॥ ५२ ॥

७५०६ ॥ अ० पां त्वे मन्त्सा दया म्य पां त्वे मन्त्सा दया म्य पां त्वा  
मन्त्सा दया म्य पां त्वा ज्योतिषि सा दया म्य पां त्वा-  
यने सा दया म्य णे वेत्वा स दने सा दया मि समु द्रे त्वा स द-  
ने सा दया मि सरि रे त्वा स दने सा दया म्य पां त्वा क्ष यै सा द-

१ यद्वै राजा पतेः शोकादजायत तदग्निः शोकादजायतेति श्रुतं १०.५.२.३६. श्रुतेः पारम्येनोवाधामु  
दाख्येतामग्निं यत्कृत्वा ततोऽजस्रपदः समभवत् इति तेनैव नोपेयि।

याम्यपां त्वा मधिषि सादयाम्यपां त्वा स दने सादयाम्य-  
पां त्वा सधस्थे सादयाम्यपां त्वा योनौ सादयाम्यपां त्वा  
पुरीषे सादयाम्यपां त्वा पाथसि सादयामि गायत्रेण-  
त्वा छन्दसा सादयामि त्रेष्टुभेन त्वा छन्दसा सादयामि-  
जागतेन त्वा छन्दसा सादयाम्यानुष्टुभेन त्वा छन्दसा  
सादयामि षड्भुजं न त्वा छन्दसा सादयामि ॥ ५३ ॥ †

का० १७०६२ तीर्थकरि अग्नि को आरोहण करिके स्वयमातृणाके  
अपर पूर्व अनूकान्त चलि कर चार्यो अनूकान्तो विषे अपां त्वे  
मन्त्रिति प्रति मन्त्र पञ्च-पञ्च स्या संज्ञा इष्टका उपधान करै ॥ विं  
शति रिष्टका देवत्यानि यजूर्ध्वि पञ्च दशा पस्था देवत्यानि पञ्च  
न्दस्या देवत्यानि १२० या-अ० ३५४ १३० या-बृ० ४१०११०१२०  
१४०१५० या-पं० ६७०० या-त्रि० १६१७०१८० या-ज० १६० आसु-  
अ० २० आसु-पं० १ हे इष्ट के अपस्ये अपामे मन्त्र (वायु विषे) त्वां  
(तुम्हें) सादयामि (स्थापन करता हूँ) ॥ १॥ अपां त्वो द्यन् ओषधि  
यो विषे त्वा सादयामि ॥ २॥ भस्मन् अम्र विषे त्वा साद० ॥ ३॥  
ज्योतिषि विजली विषे ॥ ४॥ भूमि विषे ॥ ५॥ प्राण रूप स्थान  
विषे ॥ ६॥ मन रूप स्थान विषे ॥ ७॥ वाचा रूप स्थान विषे ॥ ८॥  
नेत्रो विषे ॥ ९॥ श्रोत्रो विषे ॥ १०॥ दिवि विषे ॥ ११॥ अन्तरिक्ष विषे  
॥ १२॥ समुद्र विषे ॥ १३॥ सिकता विषे ॥ १४॥ अन्न विषे ॥ १५॥  
पञ्च छन्द स्या उपदधाति पञ्च यजुर्भिः । गायत्रेण (गायत्रे वगा  
यत्र) गायत्री छन्द करितुं साद० ॥ १६॥ त्रिष्टुप् छन्द करि ॥ १७॥ जग

वायुविषे अपामे मन्त्र (वायुविषे) त्वां सादयामि ॥ १॥ अपां त्वो द्यन् ओषधि यो विषे त्वा सादयामि ॥ २॥ भस्मन् अम्र विषे त्वा साद० ॥ ३॥ ज्योतिषि विजली विषे ॥ ४॥ भूमि विषे ॥ ५॥ प्राण रूप स्थान विषे ॥ ६॥ मन रूप स्थान विषे ॥ ७॥ वाचा रूप स्थान विषे ॥ ८॥ नेत्रो विषे ॥ ९॥ श्रोत्रो विषे ॥ १०॥ दिवि विषे ॥ ११॥ अन्तरिक्ष विषे ॥ १२॥ समुद्र विषे ॥ १३॥ सिकता विषे ॥ १४॥ अन्न विषे ॥ १५॥ पञ्च छन्द स्या उपदधाति पञ्च यजुर्भिः । गायत्रेण (गायत्रे वगायत्र) गायत्री छन्द करितुं साद० ॥ १६॥ त्रिष्टुप् छन्द करि ॥ १७॥ जग

† अ-मि० अ० ३५४ उ० अ० ३५४ आ० ३५४ क० अ० ३५४ लृ० ३५४ क० अ० ३५४ र० अ० ३५४ य० अ० ३५४  
मि० अ० ३५४ मि० अ० ३५४ जा० मि० अ० ३५४ आ० मि० अ० ३५४ पा० मि० अ० ३५४ ॥ ५३ ॥



तीछन्द०॥१८॥अनुष्टुप्०॥१६॥पंक्ति०॥२०॥५३॥

अ० ७ अयं पुरोभुवस्तस्य प्राणोभौ वायुनोवसन्तः प्राणायनो  
गायत्री वासन्ती गायत्र्यै गायत्रं गायत्रादुपांशु रुरुपा  
ंशु शोस्त्रिदृष्टिदृतेरथन्तरवसिष्ठः ऋषिः प्रजापतिगृही  
तया त्वया प्राणं गृह्णामि प्रजाम्यः॥५४॥†

का० १७० द० ३ प्राणभृत्संज्ञका इष्टका व्याधारणवत् दक्षिणं अंस-  
उत्तरश्रोणि० दक्षिणश्रोणि० उत्तरअंसविषे० कर्णसहिता अक्षणा  
के संलग्न स्वयमातृणां पर्यन्तदश-दश उपधानकरैः॥पञ्चाशद्य  
जूर्ध्वे प्राणभृदिष्टका देवत्यानि १० दै-त्रि० २० या-अ० ३० च० या-उ०  
४० ५० द० या-गा० ५० दै-यं० १० अर्षी-गा० प्रति कण्डिकं दश-द  
५॥ प्रथमं दशकं दक्षिणे अंसे। किसी समय प्रजापति के आगेसे  
प्राणों ने देवता होके उत्क्रमण किया तब तिन्हों से प्रजापतिने कहा  
कि क्यों उत्क्रमण करते हो मुझे प्राप्त होओ फिर प्राण तिससे बोले कि  
हम अन्न बिना स्थित होने को समर्थ नहीं हो सके तिस अन्न को तु  
म सृजना चाहिये कि खड़े हो फिर प्रजापतिने कहा कि हम तुम  
मिलकर अन्न सृजे वृद्धत अच्छा यह कहि कर प्राण और प्रजा-  
पति ने तिस अन्न को सृजा तिससे प्राणों को पोषण किया इति  
इष्टकानां प्राणभृत्संज्ञेत्युक्तं श्रुत्या प्रजापते विश्वस्तात्प्राणा उद-  
क्रामन्तित्यादिकया ८० १० १३-२० ६० अथ मंत्र व्याख्या। जो यह  
अग्नि पुर और भुव वर्तते हैं हे इष्ट के तू तिस रूपा है प्राण एव अ-  
ग्नि होके पुरः साम्ने तिष्ठे है अतः तुरु अग्नि रूपा को उपधान

† अ० व० अ० त० न० इ० व० न० उ० गा० नी० ऋ० गा० म० लृ० गा० शु० अ० उ०  
य० ऋ० नि० म० ऊ० वे० वि० ऋ० प्र० अ० लृ० ॥५४॥

करताहं इति शेषः एवमप्येपि। पुरस्तादुपधीयते प्रागुद्धियेत प्रा-  
 दुपचयेत इति पुरोऽग्निः भवति सर्वरूपेणेति भवत्यस्मात्स-  
 र्वमिति वा भुवोऽग्निः तद्रूपेष्टकाध्येयेति भावः ॥१॥ प्राणति-  
 स अग्निका अपत्य इति शेषः अतएव भौवायनः। हे दृष्टकेतुम्  
 प्राणरूपा को सादन करताहं ॥२॥ प्राण का अपत्य प्राणायन-  
 जो दसन्त ऋतुतिसरूपा को साद ॥३॥ वसन्त का अपत्य वासंती  
 जोगायत्री छन्दतिसरूपा ॥४॥ गायत्री के सकाशसे उत्पन्न गायत्र सामतिस-  
 ५॥ गायत्र सामसे जो उपाठं सुग्रह निर्मिततिस ॥६॥ उपाठं शु-  
 ग्रहसे जो निर्मित त्रिवृत्स्तोमतिस ॥७॥ त्रिवृत्स्तोमसे निर्मित  
 जो रथन्तरष्टुतिस ॥८॥ अधितिष्ठे हे सर्वजन्तुओं को अति-  
 शयेन वस्ता वसिष्ठ सर्वाधार ऋषि ज्ञाता तिस ॥९॥ प्रजाप-  
 ति गृहीतया गृह्णातिः सृष्टिके अर्थ प्रजापति करि सृजी हुई तु  
 म्स्थापित दृष्टकासे सर्व प्रजा के अर्थ प्राण को ग्रहण करताहं  
 अर्थात् प्रजाओं की प्राणसिद्धिके अर्थ तुम्हें उपधान करताहं ॥१०॥  
 अयं पुर इत्यादि दशमन्त्रों से एकही प्राण को ग्रहण करताहं ॥११॥  
 अयं दक्षिणा विश्व कर्मो तस्य मनो वैश्व कर्मणं ग्रीष्मो  
 मोन सस्त्रिष्टुष्टौष्मी त्रिष्टुर्भः स्वारं स्वारादन्तर्यामो  
 न्तर्यामाय च दृष्टः पञ्चदशा हृहङ्ग रद्वाजः ऋषिः  
 प्रजापति गृहीतया त्वया मनो गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥१२॥

११०१२० या-वृ०१३०१५० दे-पं०१४० दे-वृ०१६०१८०१९० या-गा०१७०  
 या-अ०२०० अर्षी-गा०। एभिर्मन्त्रै स्तृतीयं दशकं दक्षिणश्रो

+ अ-मो० अ० त-मू० इ० ग्री-स०। उ० त्रि-ष्मी। ऋ० त्रि-मू० ल० स्ता-म०। आ-  
 अ-प्र०। दे० प-त०। ऊ० भ-विः ऋ० प्र-भ्यः। लृ० ॥५२॥

लो रारभ्योपधेयम्। विश्वं करोति (सर्वको सृजै) विश्वकर्मा (वायु) इ  
 स दक्षिण दिशा विषे आर्या वर्तते भूयिष्ठ वहता है तद्रूपां त्वा-  
 मा दयामि। तुरतिस रूपाको सादन करता हूं ॥११॥ तिसका अप-  
 त्य मन अत एव वैश्व कर्मण मनरूपां सा ॥१२॥ मनका अपत्य-  
 ग्रीष्म ऋतुः तद्रू ॥१३॥ ग्रीष्म से उत्पन्न त्रिष्टुप् छन्द तद्रू ॥१४॥  
 त्रिष्टुप् से उत्पन्न जो स्वारहं साम तद्रू ॥१५॥ स्वारहं साम से उत्प-  
 न्न जो अन्तर्यामि ग्रह तद्रू ॥१६॥ अन्तर्यामि से उत्पन्न जो पञ्चद-  
 शस्तोम ॥१७॥ पञ्चदशस्तोम से जो उत्पन्न बृहत्पृष्ठ ॥१८॥  
 वाज (अन्न) को भरत (धारण कर्ता) मन स्वस्थ मन विषे अन्नम-  
 क्षणे छा की उत्पत्ति से ऋषिः सचेतन मन रूप तद्रू ॥१९॥ धा-  
 तृ करि सृजी तुरु इष्टका करि प्रजा के अर्थ मन गृहण करता हूं  
 २०॥ इन दश मंत्रों से मन एव गृह्णामीत्यर्थः ॥५५॥

अयं पश्चाद्विश्वव्यचास्तस्य चक्षुर्वैश्वव्यचसं वर्षाश्चाक्षु-  
 ष्योजगती वार्षी जगत्याः ऋक्सं ममृक्सं माछुक्कः शुक्रा-  
 त्सं प्रदशः सप्तदशाहं रूपं जमग्निः ऋषिः प्रजापति-  
 गृहीतया त्वया चक्षुर्गृह्णामी प्रजाभ्यः ॥५६॥

२१-या-अ० २२-या-छ० २३-२४-२६-दे-पं० २५-२६-२७-या-गा०  
 २८-या-उ० २९-आर्या गा० अयं पश्चादित्यादि मन्त्रैर्द्वितीयं द-  
 शक मुत्तरश्रोणे रारभ्योपध्यातिप्रतीची गमन शील विश्ववि-  
 चिति (उदित हो प्रकाश करता) विश्वव्यचा (आदित्य) यह प्रसि-  
 द्ध तद्रू ॥२१॥ तिस आदित्यका संबंधि चक्षु अत एव वैश्वव्य

व्य-चाः ॥ अ० त-मृ० इ० व-व्यः ॥ उ० ज-षी० ऋ० ज-मृ० ल० ऋ०-क्र० ॥ आ०  
 शु-श० ॥ ई० स-मृ० ज-षिः ॥ ऋ० प्र-भ्यः ॥ लृ० ॥ ५६॥

चा विधे उत्पन्न तद् ॥२३॥ चक्षुसे उत्पन्न वर्षा ऋतु तद् ॥२३॥  
वर्षा से उ० जगती छन्द त० ॥२४॥ जगती से उ० ऋक्सम संज्ञका  
साम त० ॥२५॥ ऋक्सम से० जो शुक्रग्रह त० ॥२६॥ शुक्र से० जो रुद्र  
दशस्तोम त० ॥२७॥ सप्तदशस्तोम से० जो वै रूप पृष्ठ त० ॥२८॥ जस  
तु (जगत को देखता) अग्नि (सर्वत्र चलता) ऋषति (जानता ऋषि)  
ऐसा जो चक्षु त० ॥२९॥ प्रजापति करि सृजी तुरु दृष्टका करि  
जा के अर्थ चक्षु ग्रहण करता हूं ॥३०॥ दशमन्त्र से अक्षु रेत  
गृह्णामि ॥३१॥

इदमुत्तरात्स्वस्तस्य श्रोत्रं शरच्छ्रोत्रं अनुष्टुप् शारदं अनुष्टु  
भेः ऐडं मैडान्मन्थी मन्थिनेः एकविंशं शारदं एकविंशं शारदं  
राजं विश्वामित्रं ऋषिः प्रजापतिं गृहीतया त्वया श्रोत्रं  
गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५७ ॥

३१.३२.३४.३५.३६. या-गा. ३३. ३६. दे-हृ. ३७. ३८. या-उ. ४०. आ  
धीगा. ॥ दशमन्त्रे अतुर्थे दशकमुत्तरांसादारभ्योपदधाति ॥ सवसे उत्त  
रभाग दिशा जो यह स्वः (स्वर्गलोक) तिस तुरु स्वर्गरूपादिक् कोसा  
३१ ॥ तिस स्वर्ग का संबंधी श्रोत्र-सौव श्रोत्र रूपं त्वां सा ॥ ३२ ॥ श्रोत्र  
से उ० जो शरत् ऋतुः त० ॥ ३३ ॥ शरत् से० जो अनुष्टुप् छन्द त० ॥  
३४ ॥ अनुष्टुप् से० जो ऐडं साम त० ॥ ३५ ॥ ऐडं साम से० जो मन्थी  
ग्रह त० ॥ ३६ ॥ मन्थी ग्रह से० जो एकविंशं शस्तोम ॥ ३७ ॥ एकविंशं  
शस्तोम से० जो वै राजपृष्ठ त० ॥ ३८ ॥ विश्वामित्र ऋषिः सर्वमित्र  
जिस करि तैसा ऋषि (श्रोत्र-श्रद्धयान्य वाक्य श्रद्धा से सर्वमित्र

होता है विश्वामित्र ऋषिरूप जो श्रोत्र तद्रूपा सा ॥३४॥ प्रजापति क  
रि सृजी तुम्हें दृष्ट का करि प्रजा के अर्थ श्रोत्र गृहण करता हूँ ॥४०॥  
दशमन्त्रैः श्रोत्रमेव सादयति ॥५७॥

इयमुपरि मतिस्तस्यैवाङ्गात्याहे मन्तो वाच्यः पङ्क्तिर्हेम  
न्ती पङ्क्तौ निधनवन्निधनवत् आग्रयणः आग्रयणा  
त्रिणवत्रयस्त्रिंशो त्रिणवत्रयस्त्रिंशो भाभ्यां त्रिंशो  
रैव ते विश्व कर्म ऋषिः प्रजापति गृहीतया त्वया वाचं  
गृह्णामि प्रजाभ्यो लोकं ता इन्द्रम् ॥५८॥

इति श्री संहितायाम् सप्तमोऽनुवाकः ७

इति श्री शुक्ल यजुषि माध्यन्दिनीयायां वाजसनेयसंहि  
तायां दीर्घ पाठे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

४१० या-उ० ४२० ४३० ४४० दे० पं० ४५० ४६० या-गा० ४६० या-हृ० ४७०  
या-त्रि० ४८० सा-उ० ५०० आर्षी गा० दशमन्त्रैः पञ्चमं दशकं रेत्  
सिग्भ्यामुत्तरं प्रथमं कृत्वा प्रादक्षिण्येनोपधेयम् ॥ उपरिज  
र्ध्वं देशस्थ चन्द्र इति मात (वाकमन्यते ज्ञायते यया सा मतिः  
वागेव चन्द्रमा हां के ऊपर जोति है है तद्रूपा सा ॥४१॥ तिसचन्द्र  
रूपा मति से उत्पन्न अतएव मात्या जो वाक तद्रूपा ॥४२॥ वाचा से  
उत्पन्न जो हेमन्त करतु त ॥४३॥ हेमन्त से जो पङ्क्ति छन्दत ॥  
४४॥ पङ्क्ति से निधनवत्संज्ञक सामत ॥४४॥ निधनवत्साम से  
जो आग्रयण ग्रह त ॥४६॥ आग्रयण से जो त्रिणवत्रयस्त्रिंशो  
शदो स्तोमत ॥४७॥ त्रिणवत्रयस्त्रिंशो स्तोमों से दोशाकर रैव

१३० तिः ॥ अ० ते-त्या ॥ इ० हे-च्य ॥ उ० ग-ती ॥ त्र० प-ता ॥ त्र० नि-ण ॥ आ० आ-  
शो ॥ इ० वि-ते ॥ ऊ० वि-वि ॥ ऋ० अ-म्य ॥ त्र० ला-त् ॥ के० व ॥ च० इ-म् ॥  
५८॥ ५८॥ लोकं ता इन्द्रम् इति प्रतीकः ॥

त पृष्ठत्वां तद्रू० ॥४८॥ विश्व कर्मा (सब करता है) ऋषिः (वागेव-  
वाचाही सब करती है) वागूपात्वांसा ० ॥४९॥ प्रजापतिकरिसृ-  
जी तुर इष्टका करिके प्रजाके अर्थ वाचा को ग्रहण कर-  
ताहं ॥५०॥ एभिर्देशमंत्रैर्वाचमेव गृह्णाति ॥ ॥ अथ पञ्च क-  
ण्डिकासु प्राण मनश्चक्षुः श्रोत्र वाचां प्रजाभ्यो ग्रहणमित्यस्या-  
र्थ द्वयम् । प्रजाभ्य इति चतुर्थी पक्षे प्रजाके अर्थ प्राणादिकोंका  
ग्रहण पञ्चाशदिष्टकास्थापने प्रजा, यजमाना पत्यपश्वादिकों  
के प्राणादिक पृष्ठहों इत्यर्थः । प्रजाभ्य इति पञ्चमी पक्षे प्रजा-  
नानालोकों के सकाशसे प्राणादिकोंका ग्रहण (अपने वशगा) क-  
रताहं अर्थात् प्राणभृत्तों के उपधानसे समस्त प्रजा मद्वशगाहो-  
वे ॥ ॥ का० १७० ६५ आत्मा के दक्षिण कोणसे ले मध्यात् अ-  
धि स्वय मातृणा पर्यन्त लोकस्पृणा उपधान करै तिन्होंकालो-  
कपुणेत्यभि मंत्रेण ता असेति मंत्रेण अधिवदन स्पर्शकरि-  
के पठनहै ॥ का० १७० ६४ स्वय मातृणा के ऊपर इन्द्रविश्वेति  
मंत्रेण मृतक्षेपः मृदाडालै ॥ तिस्रः ऋचः प्रती कोक्ताः पूर्व  
मुक्तत्वात् १२० ५४-५६ ॥ ५८ ॥ इति प्रथमचितिमंत्राः समाप्ताः

इति श्रीगिरिधरभाष्ये सप्तमोऽनुवाकः ॥

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दनिवारयन्

पुमार्थाश्चतुरेदेयादग्निदेवः सनातनः

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीशाखाध्येतव्याघ्रपादा-  
न्वयविश्वामित्रपुराधिपश्रीमज्जयकिशोरदेववर्मात्मरौकि

णोयन् पतिगिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये-  
प्रथमचित्युपधानं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

हरिः शोम्

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरुपं च साधनैर्बहु रूपकम्

स्वानन्दरायकं कृष्णं ब्रह्म रूपं परं स्तुमः १

द्वितीयचित्तिमन्त्राणां देवाः ऋषयः

अ० १

ध्रुवक्षितिर्ध्रुवयोनिर्ध्रुवासिध्रुवं योनिमासीदसाधुया ॥

उरव्यस्य केतुं प्रथमं जुषाणां श्विनाध्वर्युः सादयतामि

हत्वा ॥१॥ + ध्रु-णा। अ० १। अ-त्वा। ३०॥१॥

ओं नमो याज्ञबल्क्याय

गिरिप्रसादेन संज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके

ईर्यते मनुरध्यायोभाष्ये द्वित्रिचतुश्चितिः

त्रयोदशोऽध्यायः प्रथमाचितिकही गई सा भूलोक रूपा + च  
तुर्दशे विषे द्वितियादितीनि चिति कहिते हैं भूमिसे ऊंचा-  
अन्तरिक्ष से उरला भाग दूसरी चिति है + देवताओं ने अश्वि-  
नी कुमारों से प्रार्थना की जो तुम बैद्य हो तो दूसरी चिति को उप-  
पादक रौय द्दतिन्हों से कहा चित्युपधान में हमें क्या फल यह अश्विनी  
कुमारों ने कहा देवता बोले कि तुम चित्युपधान विषे देवताओं के अ-  
नर्थ होवोगे फिर तिन्हों ने दूसरी चिति उपहित की ॥ तत्रादौ प

† एताद्वितीयमित्यादि शत० ८० २० १० २०

तेऽश्विनावबुद्धित्वा दकयोक्तमिति शत० ८० २० १० ३० श्रुत्यो

अश्विन्य इष्टकाः॥ का० १७०८०१५ पांच कण्डिकाओं से अश्विनी  
संज्ञा इष्टका रेतः सिग्वेला विषे उपगान करे प्रतीष्टकं नित्ये इति  
सूत्रार्थः॥ यश्चाश्विनी देवत्याः प्रथमा विराट् चतस्रस्त्रिष्टुभोय  
नुरन्ताः। अश्विनाध्वर्यु इत्यादि यजुः। हे इष्टके यतः तू स्थिर  
है अतः स्थिर योनिरेतः सिग्वेला लक्षणस्थान) में अधिष्ठित  
हो। कैसी योनि कि साधु श्रेष्ठ। कैसी है तू कि स्थिर है निवास-  
जिगका। अपचल है योनि (कारण) जिसका। प्रथम केतु (स्था-  
न) प्रथमचिति रूप को सेवमाना। इतः परं यजुः किंच दे-  
वताओं के अध्वर्यु अश्विनी कुमार इह रेतः सिग्वेला विषे-  
हे इष्टके तुम्हें उपधान करें॥१॥

कुलायिनी घृतवती पुरंधिः सोने सीद स देने पृ-  
थिव्याः अभित्वा रुद्रा वसवो गृणन्ति मा ब्रह्मपी-  
पिहि सो भगाया अश्विनाध्वर्यु सादयतामि हत्वा  
॥२॥ + कु-या। अ० अ-त्वा। इ०॥ २॥

हे इष्टके पृथिवी के सदन प्रथमचिति रूपस्थान सुख रूप विषंतू  
बैठि। कैसी है तू कुलायिनी- गुहाकारा तथा घृतवती (होष्यमा-  
णा ज्ययुता- वसोर्धारा ह्यत्र होष्यन्ते। पुरंधिः वह इष्टका जात  
को स्थापन करती वा वह धा स्थापन करते हैं। किंच रुद्रों और वसुओं  
लक्षण सब देवता तुम्हें स्तुति करें। किंच सो भग (ऐश्वर्य) के अर्थ इन  
ब्रह्म (मन्त्रों) को प्राप्त हो। अश्विने त्यादि पूर्ववत्॥२॥

स्वैर्हृक्षैर्हृक्षैः पिते हसीददेवानां सुम्ने हतेरणाय॥

+ पृथिवी  
से प्रथमा  
अतः ०८२  
१०५ अन्ते



पिते वै धि सूनवः आसु शोवां स्वावेशा तन्ना संविशस्व  
श्विना ध्वर्यु सादयता मिहत्वा ॥३॥ + से-स्वा. अ. १. २२-त्वा. ३३

+ हे इष्ट के तू इस दूसरी चिति विषे से देखे :- अपने वीर्य + सहित  
वेठि। कैसी कि दक्षपिता, वीर्य की पालायत्री। किमर्थे स्थातव्यं त  
ब्राह्म देवताओं के रमणीय बडे सुख के अर्थ देवता सुखी हों इ  
ति तिष्ठेत्यर्थः। किंच समन्ताद्वावेन शोभन सुख जिस से तादृशी  
सुखपित्री हो। तत्र दृष्टान्तः जैसे पिता पुत्र के अर्थ सुख यिता होता  
है तद्वत्। किंच सुख अवेशवती शरीर करि अवस्थान करि। अ  
श्विनेत्युक्तम् ॥३॥

पृथिव्याः पुरीषमस्य सो नामतां त्वाविश्वे अभिगृणा  
न्तु देवाः ॥ स्तोमं पृष्टा घृतवती हसीद प्रजावदस्मे द्रवि  
णाय जस्वा श्विना ध्वर्यु सादयता मिहत्वा ॥४॥ +

+ हे इष्ट के तू पृथिवी (प्रथमचिति) की पूरकवस्तु + और जलों का  
कारणी भूत रस तू है। कैसी तुम्हें प्रथमचिति पूरिका और जलदर  
सभूता को सब देवता स्तुतिकरे। किंच स्तोम पृष्टा, विवृदादिकल  
मरयन्तरादिक पृष्ट जिस्मे तादृशी स्तोम पृष्टवती। घृतवती-हं  
व्यं नाणाज्य युता सती इस दूसरी चिति विषे वेठि। ततः प्रजावत्  
पुत्र पौत्रादि प्रजासुता धन हमारे अर्थ समन्तात् दे। अन्यद्वा  
ख्यातम् ॥४॥

अदित्यास्त्वापृष्टे सादयाम्यन्तरिक्षस्य धृत्रीं विष्टम्भनीं  
दिशामधिपत्नीं भुवनानाम् ॥ ऊर्मिर्द्रुप्सोऽश्वाम्

सि वि श्व क र्मा त ः ऋषि रश्वि ना ध्व र्यू सा दय ता मि हत्वा ॥ १॥

हे इष्ट के अदित्याः प्रथमचितिरूपा पृथिवी के पृष्ठ के ऊपर तु  
मे स्थापन करता हूँ। कैसी तू मे कि अन्तरिक्ष (भुवर्लोक) की धारण  
करने वाली। पूर्वादि दिशाओं की सम्भन करने वाली भूतजातों  
की स्वामिनी। किंच तू जलों के रस की कल्लोल है। विश्व कर्मा प्रजा  
पति) तेरा दृष्टा। तू मे तेरी को अश्विनी कुमार सादन करें ॥ १॥

शुक्रश्च शुचिश्च ग्रेष्मावृतुः अग्नेरन्तः श्लेषोसिकल्पे  
तां द्यावा पृथिवी कल्पन्ता मापः ओषधयः कल्पन्ता म  
ग्नयः पृथग्मज्येष्ठा य सव्रताः ॥ येऽअग्नयः समन  
सोन्तरा द्यावा पृथिवी इमे ॥ ग्रेष्मावृतुः अभि कल्पमा  
ना इन्द्र मि व देवा अभि सं विशन्तु तथा देवतया द्गिर  
स्वध्रुवे सीदतम् ॥ ६ ॥

का. १७. ८. १६. प्रथमचिति विषे उपहित दोनों ऋतव्यों के ऊप  
र दो ऋतव्ये पद्ये प्राग्लक्षणे अन्त में अभितः उदङ्मुख उ  
पधान करें। शुक्रश्च शुचिश्चेति प्रत्येक को उपधान करिके। ग्रे  
ष्मावृतु इति मन्त्र शेषः दोनों का आलम्भन करि पढ़े ॥ ऋतु  
देवतं यजुः। शुक्रो ज्येष्ठ मासः शुचिः अषाढः ते ग्रीष्म संब  
धि ऋतु के अवयव। अन्यद्वारव्यातम् १३. २५ ॥ ६ ॥

अ. २ सजुर्ऋतुभिः सजुर्विधाभिः सजुर्देवैः सजुर्देवैर्वयोनाधै  
रग्नयै त्वा वैश्वानरा याश्विना ध्वर्यू सा दय ता मि हत्वा सजु  
र्ऋतुभिः सजुर्विधाभिः सजुर्वसुभिः सजुर्देवैर्वयोनाधै

का० १७०८०१८० पांच मंत्रों से पांच वैश्वदेवी संज्ञा दृष्टका पूर्वोदि  
कों में उपधान करें ॥ विश्वदेव दृष्टानि विश्वदेव देवत्यानि पञ्च  
१०४०५ यजूंषि २३ ब्रा० उ० हे दृष्ट के देवताओं के अथर्वयुग्मश्चि  
नी कुमार तिस तुम्हें इस स्थान दूसरी चिति विधे सादन करें ॥ कि  
मर्थ कि सवनरों के अर्थ हित अग्नि की तृप्ति के लिये तिस कि  
से कि जो तू ऋतुओं में सजूः अर्थात् वसन्तादिकों से प्रीति मती  
तथा विधाभिः जगत के सृजने वाले जलों से सजूः ॥ तथा इ  
न्द्रादिक देवताओं से सजूः ॥ तथा वयोनाधैः बाल्यादि बाधते हैं  
प्राणादिक और तिन्ही देवैः दीप्यमानों से सजूः ॥ अथवा वयो  
नाधैर्देवैः छन्दों से सजूः ॥ एवमुत्तरमन्त्रेष्वपि यद्वा ऋतु देव  
प्राणों को सृजिके तिन्हीं से सजूः सयुक् हो के प्रजापति ने जैसे तू  
उपधान की थी एवं मैं भी अग्नि के अर्थ तुम्हें उपधान करता हूँ  
इति शेषः ॥ ॥ उत्तर चतुर्मन्त्रेषु वसुभिः रुद्रैः आदित्यैः विश्वे दे-

१॥ अथैव विधा० शत० ८॥ १॥ ८॥ अथ एव  
सप्तर्षिदाविति मनु० १॥ ८॥

वसज्जरेति विशेषः शेषं पूर्ववत् ॥ ७ ॥

प्राणं मे पात्य पानं मे पाहिव्यानं मे पाहि चक्षुर्मनु-  
र्या विभाहि श्रोत्रं मे श्लाकय ॥ अपः पिबोषधीर्जिह्व-  
द्विपादवचतुत्पात्याहिदिवो वृष्टिमे रय ॥ ८ ॥

का. १७. ८. २०. पांच यन्त्रों से प्राणभृत्संज्ञका दृष्टकापूर्वादि  
कों में उपधान करै ॥ पञ्च वायु देवत्यानि ॥ १३. दै. पं. २. ५. दै. त्रि-  
५. प्रा-गा. ग. हे दृष्टके तू मेरे प्राण (प्राणरूप वायु) को पालन करि ॥  
२॥ एवं अपानं ॥ २॥ व्यानं ॥ ३॥ विस्तीर्ण दृष्टि करिके मेरे नेत्रों को  
विशेषेण प्रकाशय अर्थात् दर्शन समर्थ करि ॥ ४॥ मेरी कर्णेन्द्रिय  
को संघातविषे शक्त अर्थात् बहुशब्द श्रवण समर्थ करि ॥ ५॥ का.  
१७. ८. २१. पांच मंत्रों से अपस्या संज्ञा दृष्टका उपधान करै ॥ अपदेव-  
त्यानि पञ्च १३. दै. व. २. ४. दै. पं. ५. दै. ज. ग. हे दृष्टके तू जल सीं  
चि ॥ १॥ ओषधी से पीति हो ॥ २॥ मनुष्य शरीर को रक्षा करि ॥ ३॥ पशु  
शरीर को पालन करि ॥ ४॥ द्युलोक से वृष्टि को समन्तात् प्रव-  
र्त करि ॥ ५॥ ८ ॥

०३ प्राणदे-  
वायुरिति  
प्रा. ०. ८.  
२. ३. २१.

अ० ३ मूर्धावयः प्रजापतिश्छन्दः क्षत्रं वयो मयन्दं छन्दो वि-  
ष्टम्भो वयो धियतिश्छन्दो विश्वकर्मा वयः परमेष्ठी छन्दो  
वस्तो वयो विवल्नं छन्दो वृष्णिर्वयो विशालं छन्दो  
पुरुषो वयस्तन्द्रं छन्दो व्याघ्रो वयो नाधश्छन्दः सिंहो  
वयश्छन्दः पशुवा द्रुयो ब्रह्मती छन्दः उक्षा वयः  
ककभ्रन्दः ऋषभो वयः सतो रती छन्दो नृचयः ॥ ४ ॥

+ प्रा. हि. अ. अ. हि. इ. व्या. हि. उ. चि. हि. क. अ. हि. ल. अ. अ. त्वो आ. ओ.  
न्य. ई. अ. हि. उ. अ. च. हि. कृ. अ. दि. य. ल. ॥ ८ ॥  
+ मृ. नृ. ग. अ. अ. - नृ. इ. अ. वि. नृ. उ. अ. कृ. अ. च. नृ. लृ. अ. नृ. अ. अ. पु. नृ. ई. अ.  
अ. नृ. अ. अ. - नृ. कृ. अ. प. नृ. लृ. अ. अ. - नृ. अ. अ. नृ. अ. अ. ॥ ४ ॥

का० १७०८२२ दक्षिणोत्तर पश्चिम अनूकान्तों में पांच-पांच  
 वे में चारि वयस्या संज्ञा इष्टका एकोनविंशति मन्त्रों से उपधान करे  
 एकोनविंशतिर्यजूं ठिषिलिङ्गोक्त देवतानि १३१०१७ या-पं० २  
 ५०६०८१३१४१६१८१९ या-बृ० ६० १११५ या-अ० ४१२ या  
 ज० वयः शब्दोपेत मन्त्रै रुपधेया इष्टकाः। अत्र श्रुत्युक्तं निदानम्  
 पहिलें सृजन करते हुए व्याकुल प्रजापति के सकाश से सृजे हुए  
 पशु छन्द रूप में स्थित हो निकल भागे ततः प्रजापति भी गायत्र्या  
 दि छन्द रूप को स्वीकार करि पशु संबंधिनी तिस-तिस अवस्था  
 से तिन पशुओं को प्राप्त हुआ तदभिधाय कामन्त्राः +। तत्रादौ च  
 तुर्भिर्मन्त्रैः प्रजापते रष्टावयवात्मकं गायत्री रूपं परिकल्प्यते। मृ  
 र्धो (प्रधान) प्रजापति छन्दः (गायत्री रूप होकर) वयः ५ वयकरि  
 के पशुओं को प्राप्त हुआ इति शेषः। तिस रूप तु रू इष्टका को अधा  
 न करता हूं इति सर्वत्र शेषः। अनेन मन्त्रेण प्रजापतिर्हीव वयवौ क  
 ल्पितौ ॥१॥ क्षत से बाण करने वाले शरीर वय का प्रजापति हुआ  
 मयंद सुख का देने वाला अथवा अनिरुक्त छन्द होता हुआ ॥२॥  
 अधिपतिः अधिक पालन करने वाला जगत का स्तम्भन कर  
 ने वाला प्रजापति तिस पशु की अवस्था वाला और छन्द हुआ ॥  
 ३॥ परमयद मंतिष्ठने वाला सर्व सृष्टा प्रजापति वय और छन्द हुआ ॥  
 ४॥ एवं प्रतिमन्त्रं द्वौ-द्वाव वयवा वित्यष्टावयवः प्रजापति गायत्री रू  
 पः परिकल्पितः तथा चाष्टसंख्योपेतत्वात् सर्व छन्दः प्रकृतिभूतं गायत्री छ  
 न्दो भूत्वा वयोः वस्ययावक्ष्यमाणान्यश्च दशपशून् प्रजापतिरगृ

प्रजापते विस्तरात् प्रजापति वयवौ कल्पितौ ॥१॥  
 अतिष्ठ कोन विष्ट शति मन्त्राणां मर्धो के धनीयः।

५० २३ ५ ४० २५

ह्लात् ॥ इति ॥ विवलं (वरः उक्ताष्टः एकपदारव्य) छन्द होकर उत्क्रान्तवत्त (अज) को वय करिके ग्रहण करता हुआ ॥ तत्तद्वयोऽवस्थया जग्राह एवमुत्तरमन्त्रेष्वपि विभक्तिपरिणामं कृत्वा तत्तच्छन्दो रूपमास्थाय प्रजापतिस्तत्तद्वयसा तं-तंपशुं गृहीतवानिति योज्यम् विशेषस्तु व्याख्यायते ॥ ५ ॥ विशालं द्विपदा गायत्री रूप छन्द होके वृष्णि (सेचन समर्थः मेष) को वय करिके ग्रहण करता हुआ ॥ ६ ॥ तद्वं पङ्क्ति छन्द होके भागते हुए पुरुष पशु को वय ॥ ७ ॥ अनाधृष्टं विराट् छन्द होके भागते व्याघ्र पशु को वय ॥ ८ ॥ छादयतीति छदिः अति छन्द हो ० सिंह पशु ॥ ९ ॥ अथातो निरुक्तानि छन्दाश्चस्युप दधातीति ८. २. ४. ५ श्रुतेः सप्तानि छन्दांसि दर्शोच्यन्ते ॥ पृष्ठे (पृष्ठ भाग विषे) वहता षष्ठवाट् पांच वर्ष के पशु को बृहती छन्द हो ॥ १० ॥ ककुब्ध छन्द हो ० उक्षा (सेचन समर्थ) पशु को ॥ ११ ॥ सतो बृहती छन्द ० ऋषभ (सेचन समर्थः वृष पशु) को ॥ १२ ॥ ४ ॥

अनङ्गान्वयः पङ्क्ति छन्दो धेनुर्वयो जगती छन्दस्त्रिविर्वयस्त्रिष्टुप् छन्दो दित्य वाङ्मयो विराट् छन्दः पञ्चा विर्वयो गायत्री छन्दस्त्रिवत्सो वयः उष्णिक् छन्दस्तुर्य वाङ्मयानुष्टुप् छन्दो लोकांता इन्द्रम् ॥ १० ॥ +

पङ्क्ति छन्द हो ० अनङ्गा ह (अनः शकट को बहने वाले पशु ॥ १३ ॥ जगती छन्द हो ० धेनु (नवप्रसूता सवत्सार्गे को ॥ १४ ॥ त्रिष्टुप् छन्द हो ० अवय (एमासात्मक अवि- तीनि अवय अर्थात् अष्टादश महीने के पशु को ॥ १५ ॥ विराट् छन्द हो ० दित्य वाङ्मयि निः स्वराट्

न को चाहते दित्यं धान्य को वहते यद्वा दो वर्ष के पशु ॥ १६ ॥  
 पाँची छन्द हो पंचादय (सार्ध द्विवर्ष के) पशु ॥ १७ ॥ उष्णिक्  
 छन्द हो त्रिवत्स (तीनिवर्ष के) पशु ॥ १८ ॥ अनुष्टुप् छन्द हो चार  
 वाद (चारिवर्ष को वहते) पशु ॥ १९ ॥ एवं श्रुत्यन्तः सारेण व्याख्या  
 ताः ॥ का. १७. ८. २४. दक्षिण श्रेणि से ले लो कम्पूणा उपधान करे  
 पुरीष निर्वाप और सप्तर्चोपस्थान पूर्ववत् ॥ १२. ५४-५६ व्याख्या  
 ताः ॥ १० ॥ ॥ इति द्वितीयचितिमन्त्राः समाप्ताः ॥ २ ॥

तृतीयचितिमन्त्राणामिन्द्राग्नीविश्वकर्माचक्षुषिः  
 अ. ४ इन्द्राग्नीः अव्ययमाना मिष्टकां दृढं हंतं युवम् ॥ पृष्ठेन  
 द्यावा पृथिवीः अन्तरिक्षं च विवाधसे ॥ ११ ॥  
 का. १७. ८. २५ तीसरी चिति विषे आत्मा के मध्य में स्वयमात्म  
 को उपधान करे ॥ अनुष्टुप् पूर्वोर्ध्वर्च इन्द्राग्नि देवतः उत्तरः  
 स्वयमात्म देवतः हे इन्द्राग्नी तुम अव्ययमाना (अचलन्ती,  
 भङ्गरहिता) दृष्टका (स्वयमात्म) को दृढी करे। एवं मिन्द्राग्नी  
 प्रत्युक्ता दृष्टका माह। हे स्वयमात्मो अपने उपरि भाग क  
 रिके द्यावा पृथिवी और अन्तरिक्ष को अभिभव करि (लोकत्र  
 यमत्येषि ॥ १२ ॥

विश्वकर्मात्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे व्यचस्वती प्रय  
 स्वती अन्तरिक्षं यच्छान्तरिक्षं दृढं हन्तरिक्षं माहिर्  
 सीः ॥ विश्वस्मै प्राणायोपानाय व्यानायो हानाय प्र  
 तिष्ठायै च रित्राय ॥ वायुश्चाभिपातुमह्यस्वस्त्या छ

हिंसा शंतमेनतया देवतयाङ्गिरस्वध्रुवासीद ॥१२॥

वायु देवयं यज्ञः स्वयमातृलोपधाने एव विनियुक्तम् । हे स्वयमा  
तृलो विश्वकर्मा (प्रजापति) अन्तरिक्षके पृष्ठ (ऊपर) में तुम्हें स्था  
पन करे । कैसी तुम्हें कि अभिव्यक्त युता (विस्तार युक्ता) हे इष्टकेतू  
अन्तरिक्षं यच्छ गन्धर्वाप्सरोगणादिधारकता नियम करि ।  
अन्तरिक्षं हं हयरोपद्रवभावेन दृढीकारि ॥ तिस अन्तरिक्षको हिं  
सान करि । किमर्थं कि इन सबों की प्राणायानं व्यानोदानाख्य-  
वायु वृत्ति लाभ के अर्थ प्रतिष्ठा (स्वगृहस्थिति) के अर्थ चरित्र  
(शास्त्रीयाचरण) के अर्थ । प्राणियों का यह सब लोक की दृढता हीमें  
होता है इस हेतु से नभोनियमनादि प्रार्थना किये इति भावः ॥ किं  
च बड़ी योगक्षेमसम्पत्त्यतिशुभकारिणी और छर्दि (विशेषते  
ज) करिके तुम्हें वायु सर्वतः रक्षा करे । तेरी अधिष्ठात्री जो देवता  
तिस देवता से अनुग्रहीता स्थिरा होके बैठि किजैसे तू अपङ्गिराओं  
के चयनानुष्ठान विषे स्थिति हुई तद्वत् ॥१२॥

राज्ञसि प्राचीदिग्विराडसि दक्षिणादिक्त्वाऽसि प्र  
तीचीदिक्त्वरारुस्यदीची । दग्धिपत्यसि बृहतीदि

क्त्वा ॥१३॥ + रा-का अवि-का इग-स-का उ-स्व-का म-अ-कान् ॥१३॥

का० १७०८२६ वैश्वदेवी वत् इति प्रतिदिशरेतः सिग्वेत्ता में अनू  
कों के विषे पांच दिश्या संज्ञका इष्टका उपधान करे पांचमीद  
क्षिणा को उत्तर करिके इति सूत्रार्थः ॥ दिक्शब्दो पेतत्वान्गना  
णां दिश्या इष्टकाः ॥ दिग्देवत्यानि पंच १ या-गा० २३ या-अ०



४० पा-उ० ५० पा-वृ०। हे इष्ट के रज्जी० रजमाना सती-  
पूर्वादिशा गायत्रीरूपा है॥१॥ विराट्-विविधरजमाना दक्षि-  
णादिक् त्रिष्टुप् रूपा है॥२॥ सम्राट्-सम्यग् राजमाना प्रतीचीदिक्  
जगती है॥३॥ स्वराट्-परनिरपेक्षं स्वयमेव राजमाना सती उदी-  
चीदिक् अनुष्टुप् है॥४॥ अधिकं पातीति अधिपत्नी बृहती  
(प्रोता) उर्ध्वादिक् पङ्क्ति है॥५॥ दिकूलन्दो रूपा तिस्रुं मे साद-  
न करता हं इति सर्वत्र शेषः †॥१३॥

† अन्तरिक्षात् सप्त दिग्गोपायवीजं प्राची इत्या० शत० ८०३०१४० अन्ते।

विश्व कर्मात्मा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे ज्योतिष्मतीम्॥  
विश्वस्मै प्राणायो पानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ॥  
वायु शे धिपतिस्तया देवतयाङ्गिरस्वद्भुवासीद॥१४॥  
का० १००४०३ प्रथमोपहिता विश्वज्योति के ऊपर विश्वज्योतिर-  
ष्ट का को उपधान करै॥ वायु देवत्यं यजुः। हे इष्ट के तुरज्यो-  
तिष्मती (वायुरूपा) को अन्तरिक्ष के पृष्ठ में विश्वकर्मा सादन क-  
रै†। किंच सर्वप्राणादिलाभायतू सर्वज्योति दे। वायु तेरा अधिप-  
तिशिष्टं १२ कण्डिकावत्॥१४॥

नमश्च नभस्य च वार्षिका वृत्तूः अग्नेरन्तः श्लेषोसिक-  
ल्पेतां यावापृथिवी कल्पन्ता मापः ओषधयः कल्प-  
न्ता मग्नयः पृथक् समज्यै स्याय सर्वताः॥ येऽन्नान-  
यः समनसोन्तरा यावापृथिवीः दूमे॥ वार्षिका वृ-  
त्तूः अभि कल्पमाना इन्द्रमिव देवाः अभिसम्वि-  
शन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद्भुवेसीदतम्॥१५॥

† अन्तरिक्षात् सप्त दिग्गोपायवीजं प्राची इत्या० शत० ८०३०१४० अन्ते॥

का० १००४०४ पूर्व ऋतव्याओं के ऊपर दो ऋतव्याएँ उपधान करें ॥  
 ऋतुदेवतं यजुः॥ नभः॥ श्रावणं माम॥ नभस्य॥ भाद्रपदं शेषं  
 व्याख्यातं १३२५॥ १५॥

दुषश्चोर्जश्च शारदावृत्ः अग्नेरन्तः श्लेषोसि कल्पेतां  
 द्यावापृथिवी कल्पन्ता माय ओषधयः कल्पन्ता मुग्ध  
 यः पृथक् अमज्यैष्ठ्याय सव्रताः ॥ येऽ अग्नयः समन  
 सोन्तरा द्यावापृथिवी इमे ॥ शारदावृत्ः अभि कल्पमा  
 ना इन्द्रमिव देवाः अभि संविशन्तु तया देवतयाद्गिर  
 स्वदुर्वेसीदतम् ॥ १६॥

का० १००४०२५ अपरे ऋतव्याएँ पूर्वाओं के ऊपर रखें ॥ ऋतव्यं  
 यजुः॥ इषः॥ आश्विन॥ ऊर्जः॥ कार्तिक॥ शिष्टमुक्तम् १३२५॥ १६॥

अ० ५ आयुर्मे पाहि प्राणं मे पाह्य पानं मे पाह्य व्यानं मे पाहि  
 चक्षुर्मे पाहि श्रोत्रं मे पाहि वाचं मे पिच मनो मे जिन्वा  
 त्मानं मे पाहि ज्योतिर्मे पच्छ ॥ १७॥ +

का० १००४०६ आत्मा के पूर्वभाग में प्राणभृत्संज्ञा दश इष्टका  
 उपधान करें ॥ लिङ्गोक्त देवतानि दशा १२४५६७८९१०  
 दे० पं० ३४ दे० त्रि० हे इष्टके मेरी आयु का तू पालन करि १  
 एवं प्राण २ अपान ३ व्यान ४ चक्षु ५ श्रोत्र का ६ वाचा को काम  
 नाओं से पूरि ७ मन की तृप्ति करि ८ आत्मा (जीव) को पालि  
 ९ मेरे अर्थ तेज दे १०॥ १७॥

माछन्दः प्रमाछन्दः प्रतिमाछन्दोः अस्वी वयं अन्तः

+ आ-हि। अ० प्रा-हि। इ० अ-हि। उ० व्या-हि। ऋ० च-हि। ल० श्रो-हि। वा० वा-हि। म-त्वा। ऊ० आ-हि। ऋ० ज्यो-छ। नृ० १७॥







विनियोगः- प्रतूर्त्तरित्यादीनां चतुर्दशार्धपद्योपधानेविनियोगः॥

१०६-हृ०२३६१०१११३१८६-वि०४५७१४६-ज०८१२१६६-  
पं०४७५-अ०१५५-पं०॥ हे द्रष्टुं के तू त्रिहस्तोमरूपा है ॥ कैसी त्रि

वृत् के आशुः सद स्तोमों को व्याप्त । तद्रूपांत्वांमुपदधामीति सर्व  
त्र प्रोषः ॥ यद्वा आशुः वायु त्रिवृत् तीनों लोकों विषे वर्ते है

सर्वभूतव्यापकत्वादाशुर्वीयुस्तद्रूपासि । एवं श्रुत्यनुसारेण स  
र्वत्र व्याख्यायते ॥ १॥ का० १७०१०८ दक्षिणानूकान्तविहि

ता दक्षिण उत्तर पद्याओं के मध्यमें भान्त इसमन्त्र करि दक्षि  
णापद्याको प्रत्यङ्मुख उपधान करै ॥ भान्तः वज्ररूपजो पंच

दशस्तोम वा भान्तः (चन्द्र पन्द्रह दिनों में पूर्ण और पन्द्रह ही दि  
नों में क्षीण होने से भा) कान्ति अन्त स्वरूप जिसका तद्रूपा है ॥ २॥

का० १७०१०८ उत्तरानूकान्त विहिता दक्षिणोत्तर पद्याओं के  
मध्यमें दक्षिणपद्याको व्योमेति प्रत्यङ्मुख उपधान करै ॥ वि

विधरक्षा करता है प्रजापति सप्तदशः स्तोमः ॥ अथवा संवत्सर  
व्योमा सप्तदशः द्वादशमासाः पञ्च ऋतु रूप सप्त दशावयव

त्वात् तद्रूपासि ॥ ३॥ का० १७०१०७ अथरानूकान्त विहिता द  
क्षिणोत्तराओं के मध्यमें दक्षिण जङ्गमात्री को धरुण इति

दक्षिण मुख उपधान करै ॥ धरुणः धारक प्रतिष्ठाभूत एकविं  
शः स्तोम अथवा धरुण एकविंश अवयव होने के कारण आ

दित्य द्वादशमास पंच ऋतु हैं तीन लोक आदित्य इत्यवयवत्वात्  
इ० ॥ ४॥ का० १७०१०१० चारोंका उपधान करिके चतुर्दश

विनियोगः- प्रतूर्त्तरित्यादीनां चतुर्दशार्धपद्योपधानेविनियोगः॥

॥ स्तोमानुपद  
धातीत्यादिश  
न०८०४१३  
श्रुतेः ॥

॥ सपुरस्तादु  
पदधात्याशु  
स्त्रिवितीत्या  
विशत०८०४  
१०४-३६०  
तिषुदशनीये

र्धं यद्या उदङ्मुख उपधानकरैः प्रवृत्तिरित्यादिचौदह मन्त्रोसै ॥ अ  
 तः परं संबत्सर रूपाण्युपदधाति । प्रकृष्टा तूर्तिः (त्वरा) जिसकी वो  
 ह अष्टादशस्तोम यद्वा संबत्सर प्रवृत्तिरष्टादशा वयवः द्वादश  
 मास पञ्च ऋतुर्ग्रे और संबत्सर तद्रूपा ॥ १॥ तपोरूपनवदशस्तो  
 मः यद्वा संबत्सरस्तपः शीतोष्ण वर्षा करि तपाताहै वोहनवदशः  
 द्वादशमहीने छे ऋतुर्ग्रे संबत्सरतद्रू ॥ ६ ॥ अभिवर्त्यते आवर्त्यते इत्य  
 भीर्कतेः समावृत्तिरूप सो विंशस्तोमः यद्वा अभिवर्तयत्यावर्त  
 यति सब भूतों को इति संबत्सरः वारह महीने सात ऋतुर्ग्रे संव  
 त्सर रूप विंशति संख्या सहित स्तद्रू ॥ ७ ॥ वर्चः विशेष बलकादे  
 नेवाला द्वाविंशस्तोमः यद्वा संबत्सर वर्चस्वितमः द्वादशमहीने  
 सप्त ऋतुर्ग्रे दो अहोरात्र और संबत्सरस्तद्रू ॥ ८ ॥ सम्बिभर्तिसम्प  
 कपोष करनेवाला त्रयोविंशस्तोमः यद्वा संभरति (उत्पन्नकर  
 ता) वासंहरति (विनाशकरता) सम्भरणः संबत्सरः त्रयोदश  
 महीने सप्त ऋतुर्ग्रे द्वे अहोरात्रे और संबत्सरस्तद्रू ॥ ९ ॥ योनिः प्र  
 जोत्यादक चतुर्विंशस्तोमहै यद्वा योनिः सर्वस्थानभूत संबत्सरः  
 चतुर्विंशपक्षात्मकस्तद्रू ॥ १० ॥ गर्भाः सामगर्भः पञ्चविंश  
 स्तोमोसि यद्वा गर्भः संबत्सरः भूतोत्यादकत्वात् चतुर्विंशतिः  
 पक्षाः एकः संबत्सर इति अथवा अधिक मास होके ऋतुर्ग्रे  
 भे गर्भ होताहै तद्रू ॥ ११ ॥ ओजः ओजस्वी तेजस्वी वा ब  
 ज्रः तद्रूपः त्रिणवः स्तोमहै यद्वा ओजः संबत्सरः चतुर्वि  
 शतिपक्षाः अहोरात्र संबत्सरात्मकत्वात् त्रिणवः तीनिगु

लो० २० तद्रू० ॥१२॥ ऋतुः (यज्ञोपयोगी एकविंशस्तोमोऽसि यद्वा  
 संवत्सर एव करोतीति क्रतुः पक्ष २४ ऋतुर्द्वयसंवत्सरात्मकत्वात् १  
 एकविंशस्तद्रू० ॥१३॥ प्रतिष्ठा (स्थितिहेतुः) त्रयस्त्रिंशः स्तोमोऽसि यद्वा  
 संवत्सरः प्रतिष्ठा संवत्सरविषे सवके प्रतिष्ठतत्वं सैपक्ष २४  
 ऋतुर्द्वयसंवत्सर १ तद्रू० ॥१४॥ ब्रध्नः (सूर्य) विष्टपं (नि  
 वासस्थान) ब्रध्नस्य विष्टपं स्वराज्य स्वतन्त्रत्वं तद्रूप तत्त्वदजो  
 चतुस्त्रिंशस्तोम तद्रूपासि यद्वा संवत्सर ब्रध्नस्य विष्टपं रविकरि  
 के कालनिर्माणत्वं सै २४ पक्ष ७ ऋतु २ अहोरात्र १ संवत्सर तद्रू०  
 ॥१५॥ नाकः (स्वर्गकादेनेवात्मा) षड्विंशः स्तोमोऽसि संवत्सरोवा ना  
 कः काम्यता इति कं (सुख) न (नहीं है) कं (सुख) अर्थात् दुःख  
 जहां वोह नाकः षड्विंश २४ पक्ष १२ महीने तद्रू० ॥१६॥ विवर्त्य  
 न्ते आवर्त्यन्ते सामानि जहां इति विवर्तः अष्टाचत्वारिंशः स्तो  
 मः तद्रूपासि यद्वा विविधं वर्तन्ते भूतानि जहां इति संवत्सरः  
 अधिकमासत्वेन पक्ष २६ ऋतु ७ मास १३ अहोरात्र २ तद्रू० ॥१७॥  
 ध्वं (धारक) चतुरुत्तरस्तोमः चतुष्टोम विवर्त पञ्चदश सप्त  
 दश एकविंश स्तोमों का समूह तद्रूपासि। अथवा जगदाधार  
 त्व चारों दिशाओं करि सूपमानत्वं सै वायु चतुष्टोम है ॥१८॥ अ  
 दावन्ते च वायुपधानेन वायुना सर्वभूतानि वशी करोतीति  
 भावः ॥ एतै रष्टा दश मन्त्रैः स्तोम वादिभिः स्तोमरूपत्वं नीता  
 अष्टा दशोष्टका उपधेया इत्यर्थः ॥२३॥  
 अ० ७ अग्निर्भागे सि दीक्षायाः आधिपत्यं ब्रह्मस्य न त्रि व



स्तोम इन्द्रस्य भागो सि विष्णोराधिपत्यं क्षत्रं स्युतं पञ्च  
 दशस्तोमो नृचक्षसां भागो सिधातुराधिपत्यं जनित्रं  
 थं स्युतं सप्तदशस्तोमो मित्रस्य भागो सि बरुणस्या  
 धिपत्यं दिवो वृष्टिर्वीतस्युतं शंकविर्धं शस्तोमो वसु  
 नां भागः ॥२४॥†

का० १०. १०. ११. पूर्वानू कान्त विषे विहिता जंघा मात्री ओं के  
 मध्यमें दक्षिण को उदङ्मुख उपधान करे उत्तरा पूर्वमुपहिता  
 दशयजूंषि चतुर्भिर्मृत्यु योहि न्युपधानं षड्भिः षट् पक्षोपधानं  
 १. सा-पं० २. सा-त्रि० ३. ५. ६. सा-ज० ४. आषीं ५. ७. आषीं ८. ९.  
 आषीं १०. यजुषि० दशैष्टकाः स्युत्संज्ञाश्च तत्रार्थवादः  
 श्रुत्युक्तः। उत्पन्न करिके सृष्टिकी आदिमें प्रजापति ने सब भू  
 त सृजने को गर्भमें किये तिन गर्भ स्थित भूतों का पाप्मा मृत्यु  
 ग्रहण करता हुआ ततः प्रजापति ने देवताओं से कहा कि तुम क  
 रिके सहित में इन भूतों का पाप रूपी मृत्यु से मोचन करा सक्ता  
 हूँ इति देवता बोले कि तहां हम लोकों का क्या लाभ है प्रजापति  
 ने कहा कि मैं तो तिन्हीं में से किसी ने कहा कि हमारा भाग हो-  
 और किसी ने कहा कि हमारा आधिपत्य हो इति ऐसा ही होय  
 ह कहि कर किसी के अर्थ भाग किसी के अर्थ आधिपत्य दे  
 कर तिन्हीं के साथ भूत लोक मृत्यु से छुड़ाए तिस हेतु स्युत द  
 ष्ट का है इति ॥ अथ मंत्रार्थः ॥ हे इष्ट के जो तू अग्नि का भाग  
 विभाग है और जिस तुरू विषे दीक्षा (वाचा) का आधिपत्य

† तत्राच श्रुतिः  
 यजुषि १०. १०. ११. १२. १३. १४. १५. १६. १७. १८. १९. २०. २१. २२. २३. २४. २५. २६. २७. २८. २९. ३०.

† अ-मः। अ० इ-न-मः। उ० मि-मः। ऋ० ॥२४॥



ष्टो मस्तो मोयवाना भागः॥२५॥+

का० १०० १०० १५ चतुर्दशओं से अपरा षट् मन्त्रों से षट् पद्या उपधा  
नकरै ॥ हे इष्ट के तूवसूओं का भाग है तुम्हें रुद्रों का आधिपत्य तु  
म्हें चतुर्विंशस्तोम करिके प्रजा के चतुष्पात् (गवाश्वादिक) पशु  
सृतम् ॥ ५ ॥ हे इ० तू आदित्यों का० तुम्हें मरुतों का० तुम्हें च  
विंशस्तोम० प्रजा के गर्भमृत्यु से रक्षा किये ॥ ६ ॥ हे इ० तू अदिति पृ  
थिवी का० तुम्हें पूषा का० तुम्हें एवस्तोम० प्रजा का ओज  
(बल वा आरवांभातु) सृतम् ॥ ७ ॥ हे इ० तू सविता देवता का० तु  
म्हें बृहस्पति का० तुम्हें चतुष्टोम० समीची भले प्रकार अश्वन  
करते हैं जनजिन्हों में दिशाएँ सृतम् ॥ ८ ॥ २५ ॥

यवानां भा गोस्य यवाना माधिपत्यं प्रजासृताश्च तुश्च  
त्वारिंशस्तोमः ऋभूणां भा गोसि विश्वेषां देवना मा  
धिपत्यं भूतं स्पृतं त्रयस्त्रिंशस्तोमः सहश्च ॥ २६ ॥ †  
हे इ० तू यवों (पूर्वपक्षों) का० अयवों (अपरपक्षों) का० तुम्हें तुम्हें  
चतुश्चत्वारिंशस्तोम० प्रजा सृताः ॥ ८ ॥ ऋतुओं देव विशेषों  
का तू भाग है तुम्हें विश्वेसव देवताओं का आधिपत्य तुम्हें  
त्रयस्त्रिंशस्तोम करिके प्राणिमात्र पाप्मा मृत्यु से रक्षा किये  
तथा यजमानोऽपि सर्वभूत मृत्यु से छुड़ाता रक्षा करता है ॥ १६ ॥

सहश्च सहस्रं च हैमन्तिका वृत्तं अग्नेरन्तः श्लेषेति कल्पे-  
तां द्यावा पृथिवी कल्पन्ता मापः ओषधयः कल्पन्ता  
मग्नयः पृथङ्ममज्यैस्त्राय सव्रताः ॥ येऽग्नयः स

† व-मः॥ अ० आ-मः॥ द० अ-मः॥ उ० दे-मः॥ ऋ० ॥ २५ ॥

‡ व-मः॥ अ० ऋ-मः॥ दे० ॥ २६ ॥

मनसो न्तराद्यावा पृथिवी इमे ॥ हेमन्तिका वृत्ः अभिक  
त्यमाना इन्मिव देवाः अभिसमिन्नुतया देवतया  
ङ्गिरस्वद्भुवेसी दत्तम् ॥ २७ ॥

का. १७. १०. १६. अनूक मभितः द्वे पद्ये उपधान करै ॥ ऋतुदेवत्यं  
यजुः । सह (मार्गशीर्ष) सहस्यः (पौष) ये हेमन्त ऋतु के अवयवः शि  
ष्टं पूर्वतुल्यम् १३. २५ ॥ २७ ॥

अ. ०८ एकं यास्तुवत प्रजापति रधिपति रासीति सभिरस्तुवत ब्रह्मा  
सृज्यत ब्रह्मण स्यति रधिपति रासीत्यत्रभिरस्तुवत भूता  
न्यसृज्यन्त भूतानां पति रधिपति रासीत्स पभिरस्तुवत  
सप्त ऋषयो सृज्यन्त धाताधि पति रासीन्भवभिरस्तुवत ॥ २८ ॥

का. १७. १०. १७. सवदिशा ओं विषे रेतः सिग्बेला में सृष्टि संज्ञा सप्तद  
श इष्टका उपधान करै तिन्हों के मध्य प्रागनूक को दक्षिण करिके  
अष्ट च इति ॥ सप्तदशायजूंषि सृष्टीष्ट का देवत्यानि १४. सा-त्रि. २. १०  
११. १३. १५. १६. १७. यजूंषि ३. ६. ७. १३. सा-ज. ५. सा-पं. ०८. आर्षी ३.  
४. आर्षी वृ. १४. आर्षी ज. १. अत्रनिदानम्. एवं प्रजापति भूतों को सृ  
त्युसै ब्रह्म के प्रजा सृज्यै यह विचार करि प्राणधिष्ठातृदि आदिक देव  
ताओं से बोला कि तुम्हारे साथ हो परमात्मा को स्तुति करि प्रजा उत्प  
न्न करता हूँ देवता बोले कि किस करिके बोह बोला कि मुझ और तुम  
करि तथा यह कहिकर प्राण और प्रजापति करिके स्तुत की ॥ प्रजा  
पतिने एक या वच्चा करि आत्मा को स्तुतिकिया ॥ प्रजा अधीयन्त  
प्रजापत्यर्थ मस्थाप्यन्तेति वा । सजी हुई प्रजा का प्रजापति ही अधिप

तथाच शतं ०८. ४. ३. २. १. तद्देवजपति  
मियां प्रजः

१ वाग्वाग्वाकावा  
देवतदसृवर्ग  
त्यादिशतं ०८  
४. ३. ३. १४ स  
सदशयुतिषु  
सप्तमर्थम्

१ ए-तु. अ. गति-तु. इ. ०. प-तु. उ. ०. स-तु. ॥ २८ ॥

तिहुआ ॥१॥ एवं षोडशमंत्राव्याख्येयाः । तिसृभिः प्राण उदान व्यान  
सै स्तुति की ब्राह्मणजाति सृजी ब्राह्मणस्यति ब्राह्मणजातिका अधि  
पतिहुआ ॥२॥ पञ्चभिः पञ्च प्राणैः सै स्तुति की पंचभूत सृजेभूतोंका  
पति देवतातिन्हों का स्वामीहुआ ॥३॥ सप्तभिः ओत्र २ चक्षु २ नासा २  
वायूप १ सप्तशीर्षण्य प्राणैः सै स्तुतिकिया ततः सप्त ऋषि सृजेधाता ज  
गत्सृष्टाद्यौ देवः स्वामीहुआ ॥४॥ २८॥

नवभि रस्तुवत पितरौ सृज्यन्तादिति रधिपत्यासी देका द  
शभि रस्तुवतः ऋतवो सृज्यन्तार्त्तवाः अधिपतयः आसं  
स्त्रयोदशभि रस्तुवत मासाः असृज्यन्त संवत्सरोधिपति  
रासीत्य च दशभि रस्तुवत क्षत्रमसृज्यन्तेन्द्रोधिपतिरासी  
त्सप्तदशभि रस्तुवत ग्राम्याः पशवो सृज्यन्त बृहस्पतिर  
धिपतिरासीन्नवदशभि रस्तुवत ॥ २९॥ +

नवभिः सप्तशिरके प्राणदोनी चेके (लिङ्ग गुदाबिद्र) इन ८ प्राणैः सै  
प्रजापति ने स्तुतिकी ततः अग्नि स्वात्तादि पितर सृजे अदिति (अखं  
डिता प्रजापतिशक्ति) पितरोंकी पालन करने वालीहुई ॥५॥ एकादश  
भिः दशप्राणैः एकादश मे आत्मा सै स्तुतिकी वसन्तादिषट् ऋतु  
सृजी आर्तवाः ऋतुओं के पालक देवविशेष स्वामीहुए ॥६॥ त्रयो  
दशभिः दशप्राण दोपाद एक आत्मा सै स्तुतिकी ततः चैत्रादिमा  
स सृजे मासाभिमानी अयनद्वयात्मक संवत्सर तिन्हों का अधिप  
तिहुआ ॥७॥ पञ्चदशभिः दशहस्ताङ्गुलयः होकर दो बाहू नाभि  
सै ऊपर का भाग तिन्हों सै स्तुतिकी ततः क्षत्रियजाति सृजी इन्द्र रे-

अथ शाली तदभिमानि भूतस्वामी हुआ ॥ ७ ॥ सप्तदशभिः दशपा  
दाङ्गुलीरं दोऊरू दो जानू दो पाद नाभिसे नाभिसे नीचे का भाग तिन्हें  
से स्तुति करी तब गवाहिक पशु सृजे तिन्हों का बृहस्पति स्वामी हुआ ॥ ८ ॥

नवदशभिरस्तुवत शूद्रार्यो वसृज्येतामहोरात्रे अधिपती  
आस्ता मेकं विठं शत्यास्तु वृत्ते कशपाः पशवो सृज्यन्त  
वरुणोधिपतिरासीत्त्रयो विठं शत्यास्तुवत क्षुद्राः पशवो  
सृज्यन्त पूषाधिपतिरासीत्पञ्च विठं शत्यास्तुवतारुण्याः  
पशवो सृज्यन्त वायुरधिपतिरासीत्सप्त विठं शत्यास्तुवत  
द्यावा पृथिवी व्येता वसवोरुद्रा आदित्याः अनुव्यायं  
स्त एवाधिपतय आसन्नव विठं शत्यास्तुवत ॥ ९ ॥

नवदशभिः दशहस्ताङ्गुलीरं उर्ध्व अधः छिद्ररूपा नवप्राणाः ति  
न्हों से स्तुतिकीनी फिरि शूद्र आर्य (वैश्य) सृजे अहोरात्र तिन्हों के स्वा  
मी हुआ ॥ १० ॥ एकविंशत्याः विंशति करपादाङ्गुलीरं और आत्मा  
इक्की सवें से स्तुति की ततः एकशपा (खुरके) पशु सृजे वरुण तिन्हों  
का अधियति हुआ ॥ ११ ॥ त्रयोविंशत्याः विंशति करपादाङ्गुलियः  
दो पाद और आत्मा तिन्हों से स्तुतिकी क्षुद्र अजादिक पशु सृजे ति  
न्हों का पूषा स्वामी हुआ ॥ १२ ॥ पञ्चविंशत्याः वीस करपादकी अं  
गुलीरं दो कर दो पाद पच्चीसवां आत्मा तिन्हों से स्तुतिकी तब आर  
ण्य पशु कृष्ण भृगादिक सृसे वायु तिन्हों का स्वामी हुआ ॥ १३ ॥ स  
प्तविंशत्याः विंशकरपादाङ्गुलियः दो पाद दो भुजा दो ऊरू और आत्मा  
तिन्हों से स्तुतिकी ततः द्युलोक भूलोक व्येता अर्थात् विशेषेण आ

गच्छताम् अष्टवसु एकादशरुद्र द्वादशादित्य तिन्हों में अनुगतस्व  
मीहुए ॥१४॥ ३०॥

नवविंशत्यास्तु वत वनस्पतयोऽसृज्यन्त सोमो धिपतिरा  
सीदेकविंशतास्तु वत प्रजाऽसृज्यन्त यवाश्चायवाश्च  
धिपतयः आसं स्वयस्त्रिंशतास्तु वत भूतान्यशाम्यन्  
जायतिः परमेष्ठा धिपतिरासील्लोकान्ता इन्द्रम् ॥३१॥

इति श्री संहितायामष्टमोऽनुवाकः ८

इति श्री सुक्तयजुषि माध्यन्दिनीयायां वाजसनेयसंहि  
तायां दीर्घ पाठे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

नवविंशत्याः करपादाङ्गुलयः नवस्त्रिंशद्रूपाः प्राणाः तिन्हों से स्तुति  
की ततः वनस्पतीर्गं अश्वत्थवदादिक सृजंति तिन्हों का सोमस्वामी  
हुआ ॥१५॥ एकविंशताः करपादाङ्गुलयः दशेन्द्रियाणि इकवी  
सवां आत्मा तिन्हों से स्तुति की ततः प्रजासृजीयवाः (पूर्वपक्षाः) अ  
यवाः (अपरपक्षाः) तिन्हों के स्वामी हुए ॥१६॥ त्रयस्त्रिंशताः अङ्गु  
लियें बीस इन्द्रियें दशपाद दो आत्मा तेती सवां तिन्हों से प्रजापति  
ने देवताओं सहित स्तुतिकी ततः सब प्राणी सुखी हुए परमेष्ठी स  
त्यलोक में रहने वाला प्रजापति प्रजाका पालक सब भूतों का  
अधिपति स्वामी हुआ ॥१७॥ यहां जो-जो दृष्टका जिस-जिसमें  
व करि उपधान करिये है सो-सो तिस-तिस मन्त्रोक्त देवतारूप  
करि ध्यातव्य है इत्यर्थः ॥ का० १७० १७० १८० उत्तरांस से ले प्रथम  
ततिवत् लोकम्पूरा उपधानकरै इति सूत्रार्थः ॥ ततः पुरीष

नवविंशत्याः सृज्यन्त वत वनस्पतयोऽसृज्यन्त सोमो धिपतिरासील्लोकान्ता इन्द्रम् ॥३१॥ लोक  
ता इन्द्रम् इति प्रतीकः ४

निर्वपन और सप्तचोपस्थानजाननाजिनमंत्रों की प्रती के लोक पुरा. ता. अ.  
स्य. इन्द्रविष्वा. इतिते तीनों व्याख्या की गई अध्याय १२ का एही ५५  
५६ ॥ ३१ ॥ इतिचतुर्थी चितिपूर्णाः

इति श्रीगिरिधरभाष्येष्टमोऽनुवाकः ८

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीशाखाध्येतव्याघ्रपादान्वयविष्वा  
मित्रपुराधिपश्रीमज्जयकिशोरदेवब्रह्मात्मजरोक्मिण्यनृपतिगिरि  
प्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपेगिरिधरभाष्ये द्वितीयतृतीयचतुर्थ  
चितिमन्त्रनिरूपणचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

हरिः श्रीम्

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्वह रूपकम्

स्वानन्ददायकं कृष्णव्रत्य रूपपरं तुमः १

अथ पञ्चमी चितिस्तन्मन्त्राणां परमेष्ठी ऋषिः

अ० १ अग्ने जातान् प्रणुदा नः सपत्नान् प्रत्यजातान् नुद जातवेदः ॥ अ  
धि नो ब्रूहि सुमनाऽअहेतुस्तवे स्याम शर्मस्त्रिवरस्य उदो ॥ १ ॥

ओं नमो याज्ञवल्काय।

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके।

अस्मिन् पञ्चदशाध्याये वर्ण्यते पञ्चमी चितिः

चतुर्दशे अध्याय विषे दूसरी तीसरी चौथी चिति के मन्त्र कहिकर  
पञ्चदशे में पञ्चमी चिति में आश्विनीवन् असपत्ना संज्ञा इष्ट  
का अन्तों में उपधान करे अग्ने जातान् सहसा जातान् षोड



शी स्तोमः चतुश्चत्वारिंशस्तोमः अग्नेः पुरीषम् इनपांच मन्त्रोंसे प्रत्येक को इति सूत्रार्थः ॥ हे अग्नि देवत्ये त्रिष्टुभौ । हे अग्ने पूर्वउत्पन्न हमारे शत्रुओं को तू प्रकर्षेण नाश करि । किंच हे जात प्रज्ञान अजात-शत्रुओं को निबर्त (उत्पत्तिप्रतिबन्ध) करि । किंच शोभन मनहोके हमें अधिवद् (उपदेश करि) यज्ञसंवधिनी कर्तव्यता को इति शेषः । किंच हे अग्ने तुर संवधि त्रिवरूथ (वरूथ-गृह तीन बरूथों का समाहार अर्थात् यज्ञके सदः हविर्धान आग्नीध्र रूप) विषे हम सदा यज्ञों को करें । कैसे त्रिवरूथमें कि सुखका अत्रय । तथा उद्दे, द्विपद चतुष्पद धनधान्यादिकोंसे समृध्यत ॥ अनेन मन्त्रेण पुरस्तादिष्टका मुपदधाति ॥ १॥

सहसा जातान्प्रणुदा नः सपत्नान्प्रत्यजाता ज्ञातवेदो नुदस्व ॥  
अधि नो ब्रूहि सुमनस्यमानो वयं त्वं स्याम प्रणुदा नः सपत्नान् ॥ २॥

अथ पश्चादुपदधाति ॥ बलकरिके उत्पन्न हुए हमारे शत्रुओं को नाश करि । हे जातवेद उत्पत्त्यमानों को भी नाश करि । किंच हमारे विषे शुभ चित्त होके हम को शत्रुओं के अर्थ अधिक कहि । हम भी तेरे प्रसादसे अधिक होंगे । हमारे शत्रुओं को नाश करि पुनरुक्तिरादरार्थी ॥ २॥

षोडशी स्तोमः ऋजो द्विविणं चतुश्चत्वारिंश स्तोमो वर्धो द्विविणम् ॥ अग्नेः पुरीषमस्यप्सो नाम तां त्वा विध्वेऽभिगृणन्तु देवाः ॥ स्तोमं पृष्ट्वा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्विविणयजस्व ॥ ३॥ +

अथ दक्षिणतः । आसु-पं० इष्टका देवत्यम् । पञ्चदशकलपक्षका

भर्त्ता जो आदित्यरूप स्तोम वा षोडशावृत्युपेतः जो स्तोम और जो ओ  
ज (बल) रूप द्रविण (धन) हे इष्ट के तू तिस उभय रूप है तिस तुम्हें उ  
पधान करता हूँ ॥ अथोत्तरतः । आसु-अ० इष्ट का देवत्वम् । चतुश्च  
त्वारिंशत् आवृत्या सम्पन्न जो स्तोम वा त्रिष्टुप् रूप और जिस का  
बल रूप धन तदुभयरूपा त्वामुपदधामि ॥ अथ मध्ये पञ्चमी । त्रिष्टुप् ।  
प्साभक्षणे नप्साति भक्षयति विनाशयती त्यप्सः रक्षकनामा  
जो अग्नि तिस चन्द्र रूप पञ्चदशकल की पूरयित्री है हे इष्ट के  
जो तू तिस तुम्हें विश्वे देवा मनुतिकरें स्तोम और पृष्ठों से युता औ  
र होय्य माणा घृत युता सती सो तू इस चतुर्थी चिति विषे उपवेश  
करि हमारे विषे पुत्र युक्त धन को दे ॥ ३ ॥

एवञ्छन्दो वरिचञ्छन्दः शाम्भूञ्छन्दः परिभूञ्छन्दः आच्छ  
छन्दो मनञ्छन्दो व्यचञ्छन्दः सिधुञ्छन्दः समुद्रञ्छन्दः  
सरिरञ्छन्दः ककुब्जञ्छन्दः काव्यञ्छन्दोः अङ्गुपञ्छन्दोक्ष  
रपङ्क्तिञ्छन्दः पदपङ्क्तिञ्छन्दो विष्टारपङ्क्तिञ्छन्दः क्षुरो  
भ्रजञ्छन्दः आच्छञ्छन्दः ॥ ४ ॥ +

का० १७.११.५ प्रति दिशा दश-दश विराट् संज्ञा इष्ट का उपधान  
करें ते चत्वारिंशत् पद्या एवेति सूत्रार्थः ॥ चत्वारिंशद्यजूर्ध्वलिङ्गे  
क्तानि इष्ट का देवत्यानि छन्दासि तु चतुरक्षरं दे-बृ० २० पञ्चाक्षरं  
दे-पं० १४ षडक्षरं दे-त्रि० ४ सप्ताक्षरं दे-ज० २ । एति गच्छति चल  
ताहें सर्व जन्तु समूह इस में इति एवः पृथिवी लोकः रा एव छन्द  
रूप करि स्थितत्व वा छादकत्व से छन्द है हे इष्ट के तिस तुम्हें उ

धान करता हूँ। एवं उत्तर मन्त्रों में व्याख्या श्रुत्युक्ता जाननी चाहि-  
 ये ॥१॥ दरिवः प्रभामण्डल करि आव्रियते, अन्तरिक्षलोक  
 तदेव छन्दः ॥२॥ शम्भुः शं सुखं भवत्यस्मान् द्युलोकः ॥३॥ परि-  
 तो भवति व्याप्य वर्ते है परिभू दिशा ॥४॥ आच्छत् आच्छादन क-  
 रता है अपने रस करिके सब शरीर को अन्न तद्रूपा ॥५॥ मनः प्रथ-  
 म सृष्ट प्रजापत्यात्मक जो मन तदेव छन्दः तद्रूपासि ॥६॥ व्यन्त्रः व्या-  
 है सब जगत को आदित्य तद्रूपा ॥७॥ सिन्धुः नाडियों करि शरीर को व्या-  
 प्त है प्राण वायुः तद्रूपा ॥८॥ समुद्रः समुद्रवन्त्यस्मादि कल्प समूहाः इ-  
 ति समुद्रं मनः त ॥९॥ सरिरः सरति वदन गह्वर सैनिक लती वाक्-  
 त ॥१०॥ ककुप् कं सुख को शरीर विषे धारण करता वाकोप करता प्र-  
 काश करता प्राण त ॥११॥ त्रिकुप् त्रैधापान किये उदक् को संभ-  
 न करता उदान त ॥१२॥ काव्यं कवि परमात्मा काय ह काव्य वेद-  
 वयी रूप शब्द त ॥१३॥ अङ्गुष्म कुटिल गति करिके प्राप्नोता ज-  
 ल त ॥१४॥ अक्षरपङ्क्तिः नक्षरतीत्यक्षरा नाशरहितः पङ्क्तिः (अव-  
 लि) जिस की बोह द्यौः त ॥१५॥ पदपङ्क्तिः चरण न्यासों की पङ्क्तिः  
 जिस में बोह भूलोकः त ॥१६॥ विशारपङ्क्तिः विस्तारित प्रसारित  
 हैं वस्तुओं की पङ्क्तिः जिस में बोह दिशा त ॥१७॥ क्षुरः विलेखन खनन  
 योः क्षुरति विलिखति व्याप्त है सब को क्षुरः तीव्र अजते दीप्त है क्षु-  
 रोभ्रजः आदित्य त ॥१८॥ ४॥

आच्छन्दः प्रच्छन्दः संयच्छन्दो विपच्छन्दो वृहच्छन्दो  
 रथन्तरं छन्दो निकायच्छन्दो विवधच्छन्दो गिरच्छन्दो

भुजच्छन्दः सधुस्तुच्छन्दो नुष्टुच्छन्दः एवच्छन्दो वरिव  
च्छन्दो वयच्छन्दो वयस्कच्छन्दो विष्यर्धोच्छन्दो विशाल  
लच्छन्दश्छुदिच्छन्दो दूरोहणच्छन्दस्तन्द्रच्छन्दो अङ्क  
ङ्कच्छन्दः ॥५॥

आच्छत् (आच्छादन करता है) शरीरको) प्रच्छत् (प्रच्छादन करता है) अ  
न्नम् ॥१९॥ २०॥ संयत् (व्यापार से निवर्त करती है) जन्तुओं को)  
रात्रि ॥२१॥ वियत् (विशेषण जाते हैं इधर उधर जन जहां) दिन ॥२२॥  
वृहत् (विस्तीर्ण) स्वर्लोक ॥२३॥ रथन्तरम् रथकरि गमन करने हैं  
जहां) भूमण्डल ॥२४॥ निकायः (नितर शब्द करता है वृक्षों को अ  
खेडता है) वायु ॥२५॥ विवधः (नाश करते हैं पाप के फल भोग  
ते हैं भूतप्रेतादि स्पर्श करि प्राणी जहां) अन्तरिक्ष ॥२६॥ गिरः (भक्षण  
करते हैं) अन्न ॥२६॥ भजः (दीपता है) अग्नि ॥२७॥ संन्तुष्टा भले  
प्रकार स्तुभ्यते ध्यते अर्थात् वशी करते हैं) अन्तुष्टु (निरन्तर स्तुभ्य  
ते नया वाचा ॥२८॥ ३०॥ एवः वरिवः (इति पदद्वयं व्याख्यातम्  
॥३१॥ ३२॥ वयः (वाल्यादि वय का हेतु भूत) अन्न ॥३३॥ ज्यस्कत्  
(वाल्यादि वय करता है) जठराग्नि ॥३४॥ विष्यर्धो (विविध स्पर्ध कर  
ते हैं ऐश्वर्योधिक्य करि जन जहां) स्वर्ग ॥३५॥ विशालम् (विविध  
शोभते हैं जन जहां) भूतल ॥३६॥ छुदिः (छादन करि यै है) अर्क  
रश्मिओं से) अन्तरिक्ष ॥३७॥ दूरोहणम् (दुःखेन आरोहण करने  
को शक्य निष्काम ज्योतिष्ठोमादि यज्ञ प्रयास जात ज्ञान साध्यत्व से)  
रविः ॥३८॥ तन्द्रम् (तन्द्रि सादे मोहे सीदै है स्थान) पंकोचसौ श्रे

अ० २ रश्मिना सत्याय सत्यं जित्वा प्रेतिना धर्मेणा धर्मं जित्वा  
नित्या दिवा दिवं जित्वा सन्धिनान्तरिक्षेणान्तरिक्षं जित्वा  
प्रतिदिना पृथिव्या पृथिवीं जित्वा विष्टम्भेन वृष्ट्या वृष्टिं  
जित्वा प्रवयान् हार्जित्वा नुयारात्र्या रात्रीं जित्वा शिजा-  
वसुभ्यो वसूं जित्वा प्रकेतेना दित्येभ्यः आदित्या जित्वा  
तन्तुना रायः ॥ ६ ॥ †

का० १७. ११. ४. १०. अषाढा वेला में सर्व दिशा विषे स्तोम भागा संज्ञा  
 दृष्टका उपधान करै रश्मि नेत्यादि एकोन त्रिंशत् मन्त्रों से तिन्हों  
 के मध्य पञ्चदश प्रागनूकं दक्षिणेन अर्थात् चतुर्दश प्रागनूकं  
 उत्तरेण उपधेया इति सूत्रार्थः ॥ एकोन त्रिंशद्यजूषि दृष्टका देव  
 त्यानि १. २. ६. ४. १७. या- पं० ३. ८. १८. २६. २४. या- वृ० ४. ५. १०.  
 या- ज० ७. २०. या- उ० ११. सा- गा० १२. १३. १४. १५. १६. या- त्रि० १४.  
 २१. २२. २३. २४. २५. २७. २८. या- अ० १. इमे मन्त्राः श्रुत्या त्रिधा व्याख्या  
 ताः कण्डिका द्वय पर्यन्त में मुनोपहिता. सत्यदोजिन्वेति प्रथमः १६  
 अदोऽस्य मुष्मे त्वा मुपदधामीति द्वितीयः १२ अधिपतिनोर्जोर्जं जि  
 न्वेति तृतीयः प्रकारः ११ ॥ अथ वाक्यार्थः ॥ हे दृष्टके तू रश्मि (अन्न)  
 करि सत्यके अर्थ उपहिता सती सत्य वचन जिन्व (तर्पण करि ॥ १॥  
 प्रेति (प्रकर्षेण देह विद्धे) गति जिसकी (अन्न) तिस करि धर्मके अर्थ उ  
 पहिता सती धर्म की प्रीति हो ॥ २॥ सर्व मन्त्रेषु द्वितीय पदं चतुर्थ्यन्तं

तथा युनाद गजन्व स्याद  
 दानं ०८०५३५ मुनिः ।

† न्वा० म० इ० उ० ऋ० ल० ऋ० ई० ऊ० ऋ० लृ० ऋ० ऌ० ऍ० ॥ ६ ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १ ॥





रस करिके ऊर्ज (अन्तरस) को जिन्व (तर्पय) ॥२६॥ एवं मन्त्रेष्व  
भिधेया नुसारेण व्युत्पत्तिः कार्या ॥२७॥

अ०३ एतस्य प्राची दिग्वसवस्ते देवा अधिपतयोऽग्निर्होती  
नां प्रतिधृती विवृत्त्वा स्तोमः पृथिव्यां श्रयत्नाज्यमु-  
क्थमव्यथाये स्तम्नातु रथन्तरं सोमप्रतिष्ठित्या  
ऽअन्तरिक्षः ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवोमात्रे  
या वरिमाण प्रयन्तु विधृती चायमधिपतिश्च ते त्वा-  
सर्वे संविदानानाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानंचसा  
दयन्तु ॥१०॥

का० १०१२१ पूर्वानूक के स्थानाभावात् पूर्वानूक वर्जित तीनों  
दिशाओं की अनूकों में ऋतव्यावेली विषे अनूक के ऊपर रा-  
जीत्यादि पञ्चकण्डिकाओंमें आश्विनीवत् नाकसत्संज्ञेष्टका  
उपधान करें ॥ पञ्च यजूषि लिङ्गोक्त देवतानि। पुरस्तादुपस्था-  
ति। हे इष्टके तूराज्ञी (राजमाना) प्राची (पूर्व) दिशा है। आठों वसुदे-  
वता तेरे अधिक पालन करने वाले। अग्नि उपद्रव करने वाले  
पराये आयुधों का निराकर्ता। किंच विवृत्तोम तुम्हें पृथिवी वि-  
षे उठावे। आज्यनामक उक्थशस्त्र प्रवो देवायाग्नये इत्यादिक  
ऐतरेय ब्राह्मण २४०० अचलभावके अर्थ तुम्हें हटी करें। रथन्त-  
रसाम अन्तरिक्ष लोक विषे प्रतिष्ठान के अर्थ तुम्हें हटी करें।  
प्रथमोत्पन्न ऋषि (प्राणा) द्युलोक के विषे आकाश के परिमल  
उत्पन्न करिके तुम्हें विस्तारें अर्थात् आकाशका यादृश विस्तार



त्व ता हविशा ला तु मे करे । और विधती इष्ट का ओं का निष्पाद्य यि  
ता पुनः यह अधिपति इष्ट का पालक तु मे विशाला करे यद्वा विध  
ती विशेषेण धारयिता वागभिमानि देवः और यह अधिपति  
प्रधान भूतो देवः मनोऽभिमानि ते देवो नो तु मे विस्तारं । किंच ते  
सर्वे यथोक्ता वस्वादयः एक मत्पेन अवस्थित होकर नाक नहीं  
हैं दुख अर्थात् सुख के पृष्ठ स्वरूप सुखरूप स्वर्ग विषे यजमान  
को और हे इष्ट के तुम्हें को स्थापन करें ॥ स्तोमः सामानि च राजसूय  
प्रकरणे दशमेऽध्याये प्राची मारे हेत्यादि कण्डिकासु १०. १०-१४.  
व्याख्यातानि ॥ १० ॥

विराडसि दक्षिणा दिगुद्रास्ते देवा अधिपतय इन्द्रो हेतीनां  
प्रतिधर्ता पञ्चदशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याध्वंश्रयतु प्रउगमुक्थ  
मव्यथाये स्तभ्रातु वृहत्साम प्रतिष्ठित्याऽअन्तरिक्षऽऋष  
यस्त्वा प्रयमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु वि  
धती चायमाधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे  
स्वर्गे लोकं यजमानं च सादयन्तु ॥ ११ ॥

अथ दक्षिणतः । चारों कण्डिका ओं में देवाः हेतीनां प्रतिधर्तारः  
स्तोमाः उक्थानि और सामानि अन्य हैं परन्तु और सब समान  
हैं ॥ विविधं राजते विराट् । वायुरग्रेगा इति अध्या. १०. ३१.  
प्रउगं शस्त्रम् ॥ ११ ॥

सम्राडसि प्रतीची दिगादित्यास्ते देवा अधिपतयो व  
रुणो हेतीनां प्रतिधर्ता सप्तदशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याध्वंश्र

यतु मरुत्वतीयं मुक्यमव्यथायै सभ्रातुवैरूपं सामं  
प्रतिष्ठित्याऽऽन्तरिक्षऽऽऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु  
दिवो मात्रया वरिणा प्रथन्तु विधर्ता चायमधिपतिश्च  
ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं  
च सादयन्तु ॥१२॥

अथ पश्चात्। सम्यग्राजते सम्राट्। आत्वारथं यथोत्तये इति ऋ  
क्सं० म० ८० ७४१० मरुत्वतीयं शास्त्रम् ॥१२॥

स्वराड् स्युर्दीची दिङ्मरुतसे देवा अधिपतयः सोमो हेती  
नां प्रतिधर्ते कर्क्विशस्त्वा सोमः पृथिव्यां श्रयतु निष्के  
वत्यमुक्यमव्यथायै सभ्रातुवैराजं सामं प्रतिष्ठि-  
त्याऽऽन्तरिक्षऽऽऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मा  
त्रया वरिणा प्रथन्तु विधर्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा  
सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सा  
दयन्तु ॥१३॥

अथोत्तरतः। स्वेनैव राजते स्वराट्। अभित्वः शू नो नुम इत्यादि  
कं ऋक्सं० म० ७२१५२२ निष्केवत्यं शास्त्रम् ॥१३॥

अधिपत्यसि बृहती दिग्विधे ते देवा अधिपतयो बृह-  
स्पतिर्हेतीनां प्रतिधर्ता त्रिणवत्रयस्त्रिंशो त्वा स्तोमो-  
पृथिव्यां श्रयतां वैश्वदेवाग्निमारुतेऽउक्ये अव्यथा  
यै सभ्रीतां शाकरोरेवते सामनी प्रतिष्ठित्याऽऽन्तरि-  
क्षऽऽऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिणा प्र

यन्तु विधर्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविद्वानाना  
कस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥ १४ ॥

अथ मध्ये । हे इष्ट के अधिक पालन करने वाली बृहती प्रौढा ऊर्ध्वा दिशा है । त्रिणव । त्रयस्त्रिंश । दोनो स्तोम । वैश्वदेव । अग्निमारुत । शास्त्र । शाक्वरैवत । साम । करें । द्विवचने विशेष । तत्सवितुर्वरेणीमहे इत्यादि ऋक्सं० म० ५.६.१०.१ वैश्वदेवं शास्त्रम् । वैश्वानराय पृथुपाजसे इत्यादि ऋक्सं० म० ३.१.१३.१ अग्निमारुतं शास्त्रम् ॥ उक्तमन्यत् ॥ १४ ॥

अ० ४ अयं पुरो हरिकेशः सूर्यरश्मिस्तस्य रथगृत्सश्च रथोजाश्च सेनानी  
ग्रामण्यौ ॥ पुञ्जिकस्थला च क्रतुस्थला चाप्सरसौ दृङ्  
क्षणवः पशवौ हेतिः पौरुषेयो वधः प्रहेति स्तेभ्यो नमो  
अस्तु ते नो वन्तु ते नो मृदयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो  
द्वेष्टि तमेषां नम्ये दध्मः ॥ १५ ॥

का० १०.१२.२.२ नाकसद्विषे चुपके से चात्वाल मृदा को डालि  
के नाकसद के ऊपर सब दिशाओं में यथालिङ्ग जिस चिह्न का म  
न्त्र तिस दिशा में पञ्च चूडा संज्ञकाः पञ्चेष्टका उपधान करें । पंच  
यजूंषिलिङ्गोक्तदेवत्यानि । पुरस्तादुपदधाति । जो यह पुरः (अ  
ग्नि) । इष्टकारूप के साहे कि हरिकेशः । हरितवर्णः कनिकवर्ण  
केश सम ज्वाला जिसकी । सूर्य की सी किरणें । तिस अग्नि के रथ  
गृत्स और रथोजा सेनानी और ग्रामाय रथविषे कुशल रथगृ  
त्स सेना नयति सेनानी रथविषे नज जिसका रथोजा अर्थात्

१ पुरस्तादुपधाति यमानत्वात्पुनः अग्निः अग्निर्वै पुरस्ताद्यभगाहेत्यादि शत० च० ६.१.१६-  
१७ अग्निं पञ्चमन्त्राणां मयः ।

रथ युद्धकुशलः सग्रामं नयति ग्राते मणीः एतन्नागको सेनानी ग्रा  
 मायो परिचारको तौ च वासन्ति देह  
 रूपलावण्य सौभाग्यादि गुण सम्पू  
 संवत्स्यो रूपादिज्ञानों की स्थानः भूता। अथवा पुञ्जिक और क्र  
 तुओंका स्थल जिसमें वहुव्रीहन् पुञ्जिकस्थला च क्रतुस्थला  
 दिशा और उपदिशा अप्सराएँ। दक्षिणः (दशानशीलाः) पश  
 वः व्याघ्रादिक हेति आयुध वज्र। योरुषेयः पुरुषसंवंधी वधः  
 हनन प्रहेति प्रकृष्ट आयुध जिस अस्त्र। वेषं छोड़ते जैसे रावण से  
 ना परस्पर रिपु हनन करती हैं वोह पौरुषेय वध है। जिस अग्नि-  
 की ये सामग्री अर्थात् हे इष्ट के तू तिस अग्नि स्वरूपा है। जो यह  
 अग्नि और तिसके जे सेनानी ग्रामण्य औद जे अप्सराएँ और जे  
 हेति प्रहेति तिन सबों के अर्थ सर्वदा नमस्कार हो ते सब हमें सुरवी  
 करें ते हमें रक्षा करें जिस नर का हम अनिष्ट चिन्तन करें और जो  
 नर हम विषे अप्रीति करता है तिस नर को इन पूर्वोक्तों के जम्भ  
 (दंष्ट्रा कराल मुख) विषे हम डालते हैं ॥१३॥

अथ दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य शी  
 सेनानी ग्रामण्यौ ॥ मेनका च सत्त्व  
 तुधाना हेती रक्षां च प्रहेति तस्तेभ्यो नमोऽस्तु ते  
 नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यो द्विष्यो यश्च नो द्वेष्टि त  
 मेषां जम्भे दध्मः ॥१६॥

अथ दक्षिणातः। दक्षिण में यह विश्वकर्मा (सर्व कर्मजिसका बा

सब करता है। वायु तिसके रथ में स्विनः रथ में स्थित शूरशब्द करता है  
सेनानी। और रथेचित्रः रथ दिग्घं स्थित आश्चर्यकारी ग्रामणीः।  
तो ग्रीष्मावतू। मेनका मानते हैं। इससे और सहजन्या सब जनों-  
सहित स्थिता अप्सराएँ। यातुधाना राक्षसों की जातिका अवा-  
न्तरभेद होती। रक्षांसि क्रूर यातुधाना प्रहेती हैं। हे इष्ट के जिस  
वायु के ये सब तू तद्रूपा है। अन्य ध्याख्यातम् ॥ १६ ॥

अयं पश्चाद्विश्वव्यचास्तस्य रथप्रोतश्चासमरथश्च सेना-  
नी ग्रामण्यौ। प्रम्लोचन्ती चान्नुम्लोचन्ती चाप्सरसौ व्या-  
घ्रा हेतिः सर्पो प्रहेति स्तेभ्यो नमोऽस्तु ते नोऽवन्तु ते  
नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेवां जम्भे-  
दध्मः ॥ १७ ॥

अथ पश्चात्। पश्चिम दिशामें यह विश्वव्यचा आदित्य। सबको उदय  
करिके प्रकाश करता। व्याघ्र अथवा पश्चिम में स्पष्ट दीखता है। त-  
सके रथप्रोत रथ में स्थित प्रोत जैसे सेनानी। और असमरथ असा-  
मः। अन्यके रथसे अतुल्य रथ जिसका नाम ग्रामणी। और तो वा-  
र्षिकावतू। प्रम्लोचन्ती प्रम्लोचन करती। नरप्रति आत्मा को दिख-  
लाती और अन्नुम्लोचन्ती बार-बार म्लोचन करती अप्सराएँ व्या-  
घ्राः (बाघ) जिसके हेतिः सर्पोः (साँप) प्रहेति जिसके तद्रूपा है। उक्त  
मन्यत ॥ १७ ॥

अयमुत्तरात्संयतसुस्तस्य ताक्ष्यश्चारिष्टुनेमिश्च सेनानी  
ग्रामण्यौ ॥ विश्वादेवी च धृताची चाप्सरसावापो हेतिर्वातः

प्रहेतिस्तेभ्यो नमोः अस्तु ते नोः वन्तु ते नो मृडयन्तु  
ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥१८॥  
अथोत्तरतः । यह उत्तरमें संयद्धसुः (यज्ञ भले प्रकार गमन कर  
ते धन के अर्थ जिस प्रति मनुष्य यज्ञ प्रति चलते हुआओं के अर्थ  
दान आवश्यक है यज्ञ के उत्तरोपचारत्व से तिसके ताक्ष्य (ती  
क्षा अन्तरिक्ष विषे क्षेपन करता है पक्ष) सेनानी और अरिष्ट  
नेमि (अनुपहिंसिता नेमि आयुध जिसके) ग्रामणी तौ शारदा  
वृत् । विश्वाची सर्वसाधारणत्व से सबको अञ्चन करती और घृ  
ताची घृत को अञ्जति भोजन करती । अप्सराएँ । आपः जलो  
का समूह हेति वातः वायु प्रहेति । तेभ्यः इत्याद्युक्तम् ॥१८॥

अथ मुपर्यवाग्वसुस्तस्य सेनजिच्च सुषेणश्च सेना  
नीग्रामण्यो ॥ उर्वशी च पूर्वचिन्तिश्चाप्सरसावव  
स्फूर्जन्हेति विद्युत्प्रहेति स्तेभ्यो नमोः अस्तु ते नोऽव  
न्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विषो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां  
जम्मे दध्मः ॥ १५ ॥

अथ मध्ये। उपरि उर्ध्व देशविषे यह अर्वाग्वसु पर्जन्य अ  
धो मुख जलरूपधन जिससे वोह अर्वाग्वसु अर्थात् नीचे ज  
ल को प्रजा के अर्थ देता है तिस पर्जन्य के सेनजित् सेना को  
जीतनेवाले सेनानी और सुषेण शोभन है सेना जिसकी प्रा  
मणी तो है मन्त्रिको। उर्वशी उरुपृथु है काम वश जिसका अ  
र पूर्वचिन्ति अतिशय रूपसे पूर्वमेव पुरुषों के चित्तको हरले

सी राते दिगुपदिगूपे अप्सरसौ। अवस्फूर्जो वज्रनिर्घोषमें भय  
हेतु शब्द को करता हेति और विद्युत् विजली प्रहेति। शिष्टं-  
व्याख्यातम् ॥१४॥

अ० ५ अग्नि मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्। अपा  
थं रेतां सि जिन्वति ॥२०॥

का० १७०१२०५ वक्ष्यमाण गायत्र्याद्या छन्दस्या दृष्टकां एक  
एक के स्थान में तीनि उपधान करें तिन्हों में मध्यमा पद्यानूक  
विषे तिसे अमितः द्वेअर्धपद्ये अत्र पूर्वदिशा के अनूकान्त में  
तीनि गायत्री अग्निमूर्धेति प्रत्युचम् एवं वक्ष्यमाण अपीति  
सूत्रार्थः ॥ आग्नेयोऽनुवाकः तन्मध्ये दश संख्याकस्तच्चाः। ति  
स ऋचो गायत्र्यः। आद्या व्याख्याता ३०१२०॥२०॥

अयमग्निः सहस्रिणो वाजस्य श्रुतिनस्पतिः। मूर्धा  
कवी रयीणाम् ॥२१॥

विस्मय दृष्टा। यह अग्नि ऐसा तिसे स्तुति करते हैं इति शेषः। कै  
सा कि सहस्र संख्या इसकी है तिस साहस्री की। शतसंख्या वा  
नू अन्न का पति स्वामी अर्थात् अनेक अन्नों को देने वाला  
तथा धनों का शिखत् उत्तम (अग्निहि सर्वधनानां प्रधान ध  
नं दृष्टा दृष्ट साधनत्वात्) कविः क्रान्त दर्शनः ॥२१॥

त्वामग्ने पुष्करा दध्यथर्वी निरमन्यत। मूर्ध्नी विश्व  
स्य वायते ॥२२॥

व्याख्याता ११०३२० ॥२२॥ इति प्रथमस्तचः ॥१॥

मुवो यज्ञस्य रजसश्च नेतायत्रानियुद्धिः सचसे शिवा  
भिः । दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षा जिह्वामग्ने चकषे ह  
व्य वाहम् ॥ २३ ॥

का० १७. १२. ७ पूर्वदिशा में रेतः सिंगेला विषे त्रिष्टुप्संज्ञादृष्टका  
उपधान करे तृचेन तीनि त्रिष्टुप्छन्दस्का ऋचाओं से एवमग्ने  
पि ॥ तिस्रस्त्रिष्टुभः ॥ प्रथमा व्याख्याता १३. १५. ॥ २३ ॥

अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनु मिवायतीमुषा-  
सम् । यद्वा-इव प्रवया मुज्जिह्वानां प्रभानवः सिस्र  
ते नाकमच्छ ॥ २४ ॥

द्वे बुध गविष्टौ दृष्टे । जनानां ज्ञानश्रद्धाद्विज तर्पण सत्यादिस  
म्यन्न अग्नि होत्रियों के समिन्धन करि अग्नि प्रति बुध्यते अ  
र्थात् कर्मविषे अपने अधिकार को जानता है । तत्र दृष्टान्तः आ  
ती हुइ धेनु को जैसे वत्स प्रति बुध्यते और जैसे उषा को आते प्र  
ति मनुष्याः प्रति बुध्यते ॥ तिस दीप्त अग्नि की रश्मियें स्वर्ग को  
सब ओड़ी से प्रसरती हैं । दृष्टान्त माह यद्वा (वडे) पक्षों वाले पक्षी  
दृक्ष शाखा को प्रकृष्टेन उद्गमन करि नाक (आकाश) प्रति प्रस  
रते हैं तद्वत् ॥ ऋचोऽर्थान्तरं वा । जनानां ऋत्विजों की संवधिनी  
समिधा अग्नि प्रति जलती हैं जैसे प्रातःकाल प्रति गोरें उठती हैं ।  
तिस दीप्त प्रसरती हैं । दृष्टान्तः पक्षियों के मध्य वडे वक्षी जैसे उ  
डके प्रसरते हैं ॥ २४ ॥

अबो चाम कवये मेधाय वचो वन्दारु वृषभाय वृषो



गविष्ठिरो नमसा स्तोममग्नेो दिवीव रुक्ममु रुव्यञ्च  
मश्रेत् ॥२५॥

उद्गातारो वदन्ति- उद्गातार कहिते हैं। किहम क्रान्त दर्शिनू-अ  
ग्नि के अर्थ स्तुति रूपवाक्य कहिते हैं। कैसे के अर्थ कियज्ञ के योग्य  
वृषभ श्रेष्ठ- कामो के वरसने वाले। वृषा सींचने वाले यूने परि  
णाम रहित के अर्थ। कैसा है वाक्य कि वन्दन शील-स्तुति तत्पर।  
ये गविष्ठिरः गवि-वाचिस्थिरो-प्रच्याव्यः- होता अन्न करिके  
युक्त स्तुति को अग्नि आहवनीय विषे अश्रेत् अर्थात् होता-  
अग्नि विषे स्तोम को अर्पण करते याज्या-नुवाक्या ओंसे अन्न  
को अग्नि संवद्ध करता है। तत्र हृष्टान्तः जैसे दुलोक विषे रोच  
मान आदित्य को सन्ध्या वन्दन सूर्योपस्थानादिकों में विप्रयु  
क्ता बहुत सी व्यञ्चाः स्तुति ऐं वा गति ऐं जिसकी वोह उत्प्रेक्षा स्तो  
म सूर्य करि उद्यमीयते ॥२५॥ त्वचः ॥२॥

अयं मिह प्रथमो धायि धात्वभिर्होता यजिष्ठो-अध्व  
रेष्ठीज्यः। यमप्रवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं वि  
भुं विशे-दिशे ॥२६॥

का. १७. १२. ८. तीनि ऋचा ओंसेपश्चात् रेतः सिग्वेला विषे तीनि  
जगतौ संज्ञेष्ट का दक्षिणा मुख उपधान करै ॥ तिस्र जगत्यः।  
आद्या व्याख्याता ३. १५. २६॥

जनस्य गोषा अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुवि  
ताय नव्यसे। घृत प्रतीको दृहता दिविस्पृशा युमद्वि

भाति भरतेभ्यः शुचिः॥२७॥

सुतं भरहृष्टा । जो अग्नि भरतेभ्यः ऋत्विजों के सकाशा से उत्पन्न हुआ । किस लिये उत्पन्न हुआ कि नव्य से सुविताय नवतरण के अर्थ । सो अग्नि दुलोक स्पर्शनी ज्वाला समूह करि कान्तिमान् जैसे तैसे विविध दीप्ये है । कैसा है अग्नि कि जन यजमानका रक्षा करने वाला । जागरण शील कर्म विषे सावधान । सुदक्ष शोभन है उत्साह जिसका वा अति कुशल । घृत प्रतीक घृत मुख में जिसके । शुचिः शुद्ध बहुत सी हवियों के भक्षण से भी उच्छिष्ट नहीं होता वा शोधकः॥२७॥

भरता इति  
कात्विजो  
ममुनिर्ध  
३.१८.

त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहा हितमन्त्रविन्दन्त्रिधिया एव न  
वने । स जायसे मथ्यमानः सहो महत्त्वामाहुः सहस  
स्पुत्रमङ्गिरः॥२८॥

हे अग्ने अङ्गिर के वंश में हुए ऋषि तुम्हें प्राप्त होते हुए । कैसे तुम्हें कि निगूढ प्रदेश जल विषे स्थित । हे अग्ने पुनः नष्ट हुए तुम्हें ना ना वनस्पतियों विषे अत को अङ्गिरा होते हुए । जो कि तुम्हें अङ्गिरा हुए सो तू अब भी अरणियों से उत्पन्न हुआ । कैसा कि बल करि मथ्यमान । हे अङ्गिरः (अग्ने) अत एव तुम्हें बल का पुत्र मुनी श्वर लोग कहिते हैं॥२८॥ तृचः ३॥

सखायः सं वः सम्यच्चमिषश्स्तोमं चाग्नये । वर्धिश  
य क्षितीना मूर्जो नष्टे सहस्वते॥२९॥

का० १७.१२.६. जगती ओं से अपरा तीन अनुष्टुप् संक्षेप का

प्राङ्मुख उपधान करै सरवायः सम् इन तीनि ऋचाओंसै ॥ त्वोनु  
 षुप् ॥ प्रथमा इषोदृष्टा ॥ ऋत्विजं प्रति यजमानो ब्रूते-हे सरवायः  
 (ऋत्विजः) समीचीन इष (हविलक्षण अन्न) और समीचीन स्तो  
 म को तुम सम्पादन करौ अर्थात् अग्नि के अर्थ हविकरौ और  
 त्रिवृत्य च दृशादि स्तोमको कहौ। कैसे अग्नि के अर्थ कि मनुष्यों  
 के बर्षिष्ठ श्रेष्ठ वृद्ध तम अर्थात् सर्व पूज्य। तथा जल के नष्ट पोत्र  
 नाती ॥ तथा बलवान् ॥ २४ ॥

+ अद्भ्यो वनस्पतये जायते तेभ्यो अग्नि रित्यवा यो ओ अग्निः ।

सर्ग-समिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्युर्य आ। इडस्यदे  
 समिध्यसे स नो वसून्याभर ॥ ३० ॥

संवन्नदृष्टा। हे वृषन् (सींचनेवाले) हे अग्ने अर्यः (स्वामी) तू स  
 व फल समन्तात् यजमान करि प्राप्त होता है। गो वा पृथिवी  
 के स्थान उत्तरवेदी विषे कर्म के अर्थ दीप्त होता है सो ऐसा तू  
 हमारे अर्थ धन दे ॥ ३० ॥

त्वां चित्रश्रवस्तम हवन्ते विष्णु जन्तवः। शीचि प्ये  
 शं पुरुप्रियाग्ने हव्याय वोढवे ॥ ३१ ॥

प्रस्कएवदृष्टा। नानविध श्रव (धन वा कीर्ति) जिस का (की)  
 वोह चित्रश्रवाः अतिशयेन चित्रश्रवाः चित्रश्रवस्तमः ति  
 स का संवोधन। हे पुरुप्रिय बहुत यजमानों के प्यारे वा व  
 द्भूत हविहें प्यारे जिसके हे अग्ने प्रजा विषे ऋत्विग्यजमा  
 न तुम्हें आह्वान करते हैं। क्या करने कि हवि प्राप्त को ॥ ३१ ॥  
 त्वचः ॥ ४ ॥

पञ्चमस्तुचोप्रगाथः

एना वोऽग्निं नमसोर्जो नपातमाहुवे । प्रियं चे-  
तिष्ठमरतिथं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥३२॥  
विश्वस्य दूतममृतं विश्वस्य दूतममृतम् । स योजते  
ऽगरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत्स्वाहुतः ॥३३॥  
स दुद्रवत्स्वाहुतः स दुद्रवत्स्वाहुतः । सुव्रह्मा यज्ञः  
सुशमी वसूनां देवर्षेण राधो जनानाम् ॥३४॥

का० १७.१२.१०० अषाढा व्रता के पुरस्तात् तीन बृहतीष्ट का एना  
वः इन तीनों से उपधान करें ॥ तिस्रो बृहती प्रगाथः दो ऋचाओं  
के ग्रन्थन से तीन ऋचाओं का सम्पादन प्रगाथ है तहां बृहती  
सतो बृहती से तीन बृहती की गई जिस का तीसरा चरण द्वाद-  
षाक्षर और तीनों १२.४. अष्टाक्षर वोह बृहती एना वो अ-  
ग्निं नमसोर्जो नपातमाहुवे । प्रियं चेतिष्ठमरतिथं स्वध्वरं विश्व  
स्य दूतममृतम् ॥ इति ॥ जिसके प्रथम त्रितय द्वादशी द्वितीय  
चतुर्थ अष्टाणी वोह सतो बृहती स योजते अरुषा विश्व भोज  
सा स दुद्रवत्स्वाहुतः । सुव्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवर्षेण राधो जना-  
नाम् ॥ इति ॥ तहां बृहती का चौथा पाद दोबार लौटिकर सतो बृ-  
हती के पूर्वार्ध करि सहित दूसरी बृहती की गई सतो बृहती के दू-  
सरे पाद को दोबार फेरिके तिसी के उत्तरार्ध करि सहित तीसरी  
बृहती कीनी एवं तीनों बृहती संहिता में पढ़ी गई तहां आव-  
र्तित पादों के अर्थान्तर के अभावसे दो ऋचाओं की व्याख्या-

† सर्वस्य हि गृहे  
दाहयाको हि  
कार्यकरत्वम्

† वशिष्ठोऽपि  
रथपदं चाथा हतं व

† शमीति कर्मनामनिर्घं ० २२

करतेहें ॥ एनावो वशिष्ठ दृष्ट्वा हे ऋत्विग्यजमान औ तुम संबंधि  
इस नमसा, हविर्लक्षण अन्न करि अग्नि को आह्वान करताहूँ-  
वा तुम इस अग्नि को आह्वान करौ। कैसे अग्नि को कि जल  
के पौत्र यजमानों के प्रीति हेतु अतिशयेन चेतयितार अर  
ति (पयाप्लमति वा उपरमरहित अर्थात्सदोद्यम युक्त वा  
ले† मरण रहित को ॥ अथ सतो बृहती व्याख्यायते। सयो  
सते। जिस अग्नि को आह्वान करताहूँ वोह दोनों शेष रहित  
सब के भोक्तार अश्वरथमें जोड़ताहैं †। वोह ही अग्नि रथा रूढः  
सन् शोभन प्रकारेण हुतः सन् जाताहै। कहा जाताहै सो कहिते-  
हैं कि सुब्रह्मावसूनां वसुशब्दे रुद्रादित्ययोरुपलक्षकः वसु-  
ओं रुद्रों आदित्यों सबन त्रय देवताओं का जहां यज्ञ और जहां  
यजमानों का दीप्यमान धन हविर्लक्षण है अर्थात् तहां अग्नि  
जाताहै। सुब्रह्मा ब्रह्मपदं सर्वः श्रुतिगोपलक्षणं शोभन ब्रह्मा ऋ-  
त्विक् जहां शुभः श्रुतिगुक्तः। सुशमी शोभन कर्म जहां ५ शोभन  
कर्मवान्। बुलायाहुआ अग्नि रथमें अश्वोंको जोड़िके यज्ञविषे  
हवि भोजन को आताहै इति सर्वार्थः ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ तृचः ॥ ५ ॥

अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यही। अस्मे धे-  
हि जातवेदो महि श्रवः ॥ ३५ ॥

का० १७० १२० १३० गायत्री ओं से अपरा तीनि उषिाकं ज्ञा दृष्ट्वा  
उपधान करै ॥ तिस्र उषिा गोतम दृष्ट्वा हे अग्ने हे सहसो यही (बल  
के पुत्र †) हे जातवेदः (उत्पन्नज्ञान) हमारे विषे महि श्रवः महत्

† सह इति वलनामनिर्घं ० २४ यह इति पुत्रनामनिर्घं ० २२

न हे। कैसा है तू कि गोमतः, धेनुयुक्त अन्नका ईश्वर अत एव  
धन और गो दे ॥ ३५ ॥

स इधानो वसुष्क विरुग्निरीडे न्योगिरा। रेवदस्मभ्यं पुर्व  
णीक दीदिहि ॥ ३६ ॥

हे पुर्वणीक (बहुत मुखवाले, सर्वदा हकत्वात् यतो ह्येव कुतश्चा-  
ग्ना वभ्या दधाति तत एव प्रदहतीति श्रुतेः) हे अग्ने हमारे अर्थ ध-  
न वद्यथा तथा सो तू दीप्त हो अर्थात् तुरुकरि तैसै हवि ग्राह्य है जै-  
सै हमें धनाप्ति हो। सो पूर्वोक्त कैसा है तू कि दीप्यमान। धनका नि-  
वास हेतु। क्रान्तदर्शी। अग्निः (अग्ने नयतीत्यग्रणीः) प्रथमय-  
त्न प्रवर्तक। गिरा त्रयीलक्ष एण बेदवाचा करि स्तुतियोग्य ॥ ३६ ॥

क्षपो रजन्नुत त्वनाग्ने वस्तो रूतोयमः। सति गमजम्भ  
रक्ष सो दह प्रति ॥ ३७ ॥

हे रजन् (दीप्यमान) हे तिग्मजम्भ (तीक्ष्णदंष्ट्र वा वज्रदंष्ट्र +) हे  
अग्ने वस्तोः दिन संबंधि और उषः काल संबंधि रक्षसों को सो  
तू प्रत्येक को भस्मी करि। कैसा है तू कि स्वभाव सै ही रक्षसों का  
क्षययिता ॥ ३७ ॥ त्वचः ॥ ३८ ॥

पुनः सप्तमस्तुचः प्रगाथः

भद्रो नोः अग्नि राहु तो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अ-  
ध्वरः। भद्रा उत प्रशस्तयः ॥ ३८ ॥

भद्रा उत प्रशस्तयो भद्रं मनः ह्यणुष्व हव तूर्ये। येना  
समन्तु सा सहः ॥ ३९ ॥

रजन्नाममिति

येना समत्सु सासहोऽवस्थिरा तनुहि भूरि शर्धताम्।  
वने मातेऽभिष्टिभिः ॥४०॥

का० १७.१२.११. बृहती ओं से पुरस्तात् तीन ककुप् संज्ञा इष्टका उप-  
धान करे ॥ प्रगाथः ककुप् सतो बृहती से तीन ककुप् पादा वृत्त्य से  
की गई आवृत्त्य का अर्थान्तर नहीं है। भद्रो नोऽग्निरा०- प्र-  
शस्तयः ॥ इति ककुप् मध्यमपादः द्वादशकः आद्य तृतीयाव-  
ष्टको इति तल्लक्षणं ॥ भद्रं मनः कृणुष्व वृत्र तूर्ययेना समत्सु सा-  
सहोऽवस्थिरा तनुहि भूरि शर्धतां वने मातेऽभिष्टिभिः ॥ इति स-  
तो बृहती तल्लक्षणं व्याख्यातम् ३३.३४ ॥ तत्र ककुब्ब्याख्यायते।  
सौमरि दृष्ट्वा। यजमानश्चित्यमग्निं संबोध्य प्रार्थयते। हे सुभगः शो-  
भनममषड्विधैश्चर्ययुक्तः ऋत्विजों करि आह्वान किये अग्नि हमारे  
अर्थ भद्र भन्दनीय कल्याण हो इति शेषः। किंच तेरा दीया दान क-  
ल्याणकारी हो। अध्वर (यज्ञ) भद्र (श्रेयकारी) हो। और भी प्रशस्त  
या (कीर्ति) भद्र (सुखदायिनी) होंवें ॥ अथ द्वितीया ॥ हे अग्ने-  
जिस मनसा करिके सङ्ग्रामों विषे तू शत्रु ओं को अभिभवता है  
बोह मन वृत्र तूर्ये + पापनाशके अर्थ भद्र कल्याण करि।  
किंच भूरि (बहुत) शर्धताम् (बल करने वालों के सम्बन्धि स्थिर  
धनुषों को ज्या रहित करि। किंच तेरे अभिष्ट मार्गों से हम ओ-  
ग्य वसु सेवन करें ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ४० ॥ तृचः ॥ ७ ॥

१. अथ यज्ञस्य सम्यगस्य धर्मस्य + तूर्यतिवेधकर्माष्टत्रयपापम् पाप्मा-  
यशसः विषयः सोमवरायये  
अवधारण भगवतीरेतेषुः  
वेदत्रयनिश्चिनः ॥

अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः। अस्तमर्वन्त  
आशवोऽस्तं नित्यासौ वाजिन इषथं स्रोतम्य आभर ॥४१॥

का० १७.१२.१४. दक्षिण अनूकान्त विषे तीनि पक्लि संज्ञा इष्टका  
अग्निं तमिति तीनों से उपधान करे ॥ तिस्रः पङ्क्तयः ॥ जो वसुता  
प पाक प्रकाश से उप करिके धन रूप वा वासयिता ॥ तिस अग्नि को  
जानता हूँ । गोएँ जिस अग्नि को उद्धृत जानिकर अस्ता (घर) को  
जाती हूँ यह कि दोह काल हमें होमार्थ प्राप्त हुआ । आश्वः (शीघ्र  
गामी) अश्वजिसे देखिके यजमान के घर को प्राप्त होते हैं । नित्यासः  
सर्व काल भावी बलवन्त अश्व सैन्धवाभिप्रायेण पुनर्वचनमूजि  
से उपासे से गवाश्चादिक मिलते हैं तादृश हे अग्ने स्तुति कारीयज  
मानों के अर्थ अन्न दे ॥ ४१ ॥

सोऽअग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनुवः । समर्वन्तो  
रघुद्रुवः सर्धं सुजातासः सूरय इषथं स्तोतभ्य आ-  
भर ॥ ४२ ॥

जो अग्नि वासयिता तिस अग्नि को स्तुति करता हूँ अथवा वो  
ह अग्नि स्तुति किया गया हमलों गों से । गोएँ जिस अग्नि को भ  
ले प्रकार प्राप्त होती हैं । अश्व जिसे भ०-हैं कैसे हैं कि रघुद्रुवः  
शीघ्र जाते हैं । सूरयः योग्य ऋत्विज लोक जिन्हें समायन्ति अ  
र्थात् जिसके उपासक को सब भजते हैं । कैसे हैं कि सूरयः शोभन  
हैं जन्म जिन्हों का तादृश हे अग्ने तू स्तोत्रियों के अर्थ अन्न दे ॥ ४२ ॥

उभे सुश्वन्द्र सर्पियो रवी श्रीणीषः आसनि । उतो न  
उत्पूर्या उक्थेषु शवसस्पतः इषथं स्तोतभ्य आभ-  
र ॥ ४३ ॥



+ वन्द्यमिति हिरण्यनामनिर्घ. १. ३.

हे सुचन्द्र (शोभनचन्द्र + हिरण्य जिससे वा शोभन आल्हादक  
रनेवाले) हे सुचन्द्र मुख विषे घृत पान के अर्थ इति शेषः। दोनों  
व्यां कार हाथों को सेवन (आश्रय) करि। और हे वलके अधिपते  
उक्त्येषु शस्त्रवत् यज्ञोंमें हमें उत्कर्षेण पूरि धन करिके इति  
शेषः। स्तोत्रियों के अर्थ अन्न दे ॥४३॥ तच्चः ॥ ८॥

अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदि स्पृशम् ।  
अध्यामातुः ओहैः ॥ ४४ ॥

का. १७. १२. १५. उत्तर अनुकान्त विषे तीन पद झुकीष्टका अग्ने त  
मिति तीनोंसे उपधान करै ॥ तिस्रः पद पङ्क्तयः ॥ हे अग्ने तेरा वोह  
क्रतु (तावक प्रसिद्ध यज्ञ) इस विषे हम समृद्ध करै किन स्तुति  
यों कि साम समूहोंसे। कैसे स्तोमों कि ओहैः फल के प्राप्त करने  
वाले वा तेरे कर्म रूप नामोंसे। तत्रै को दृष्टान्तः जैसे अश्व मेध  
को विप्र समृद्ध करते हैं। द्वितीयो दृष्टान्तः हृदय में स्पर्श करने  
वाले अतिप्रिय चिरमन विषे स्थित कल्याण क्रतु (संकल्प) जैसे  
समृद्ध करते हैं ॥ क्रतुर्यज्ञः संकल्पश्चेति दृष्टान्त दार्ष्टान्तकयोः स्य  
सम्बन्धः। चिराभि लषितं यथा सन्तः सम्पादयन्तीत्यर्थः ॥ ४४ ॥

अथाह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः। रथी कृत  
स्य बृहतो बभूव ॥ ४५ ॥

हे अग्ने अथ अथ समनन्तरमेव हमारे यज्ञ का सारथी जैसे  
सै हो अर्थात् सारथी जैसे रथ निर्वाह करता है तैसे यज्ञ निर्वाह  
की हो। कैसे यज्ञ कि कल्याण रूप का। दक्ष समृद्ध वा स्वफलदा

न समर्थः) का। अतिशय साधुका। अमोघफलका। प्रौढका॥४५॥

एभिर्नोऽर्कैर्भवा जोऽर्वाङ् स्वर्णं ज्योतिः। अग्ने  
विश्वेभिः सुमना अनीकैः॥४६॥

हे अग्ने सब मुखों करिके हमारे प्रति अर्वाङ् अभिसुख हो।  
अवर समीप देशको अञ्चन करे इत्यर्वाङ्। अनुगृहाणेत्य  
र्थः। कैसे हैं ये कि हमारे पटे हुए अर्चनीय मन्त्रों करि शोभन मनस्क अ  
र्थात् प्रसन्न होकर हमारे संमुख हो। तत्र दृष्टान्तः स्वर्णज्योतिः-  
(स्वः न ज्योतिः- जैसे स्वः आदित्यरूप ज्योतिः) अर्कैः स्तुत मुद-  
या दारभ्य सर्व प्राणि संमुखं भवति॥४६॥ तृचः॥४७॥

अग्निर्होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुर्हं सूनुर्हं सहसो  
जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम्॥ य ऊर्ध्वया स्वध  
रो देवो देवाच्या कृपा॥ घृतस्य विश्राष्टिम नुवष्टि  
शोचिषा जुह्वानस्य सर्पिषः॥४७॥

का० १७.१२.१६ अग्ने पुरीष मसीति पुरीषशब्दवता मन्त्रेणोप  
हितापञ्चम्य सपत्ना पुरीषवती अध्या० १५.३ निसके पूर्व  
में अतिछन्दस इष्टकाको उपधान करे भद्रा रातिः दृचतूर्ये  
अवस्थिरेति ककुभा १५.३८-४० चतुश्चतुरक्षरसहित अग्निर्हो  
तारं मित्युक्ता। पुरीषवत्यतिछन्द इष्टके प्राग्लक्षणे पुरीषयु  
क्ते च भवतः अनयोरन्तः पुरीषावापः कार्य इति॥ अतिछन्दाः  
अवसानत्रिकोपेता। छन्दांसि गायत्र्यादीनि सप्तातिक्रान्ताति  
छन्दाः। चतुष्षष्ट्यक्षरत्वादष्टिः ककुभामक्षरैः सहा तिष्ठति॥

+ मध्यमानतात्

जो देव दानादि गुण युक्त अग्नि उन्नतया देवताओं प्रतिजाता है देवताओं प्रतिचलनेवाली समर्थ ज्वाला है घृत के पात को अन्विच्छता है। कैसे घृत कि आजु ह्वान (समन्ताद्भूयमान) सर्पि (अग्निके अंगों में प्रसरणशील) के। जो एतादृशः (ऐसा) स्वध्वरः तिस अग्नि की जानता हूँ। कैसे को कि देवताओं के होतार (आह्वतार) दातार वासयितार बलके पुत्र + जातवेद (उत्पन्न प्रज्ञ) न इवार्थे सर्वशास्त्रज्ञानब्राह्मण जैसे स्थित को ॥४७॥

अग्ने त्वं नोऽअन्तम उत ज्ञाता शिवो भवा वरूय्यः ॥

वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमर्ठं रयिं दाः ॥

तं त्वा शीचिष्ठ दीदिवः सुम्नार्य नूनमीमहे सखि

भ्यः ॥४८॥ + अ-य्यः। अ० व-दाः। दू० तं-भ्यः। उ० ॥४८॥

का० १७०१२०१७० अग्नेत्वम् वसुरग्निः तं त्वा इन तीनों से अपर अनूकान्त विषे द्विपदेष्ट का उपधान करे ॥ तिस्रो द्विपदा आग्नेय्यः ॥ व्याख्याता ३२५२६ ॥४८॥ तृचः ॥१०॥

अ० ६ येन ऋषयस्तपसा सत्रमायन्निन्धोना अग्निं त्वस्वरा भरन्तः। तस्मिन् नहं निदधे नाकैः अग्निं यमाहुर्मनवस्तीर्णं बर्हिषम् ॥४९॥

का० १७०१२०१५० मध्योपहित अष्ट दृष्टका गार्हपत्य के ऊपर गार्हपत्यवतही पुनश्चिति को उपधान करे अर्थात् येन इत्यष्ट र्चन ॥ आग्नेयोष्टे षट् त्रिष्टुभः द्वे अनुष्टुभौ। ऋषि (मुनि) लोग जिस तप (एकाग्र चित्) करिके यज्ञ करने को उद्यत

+ मनसश्चेन्द्रियाणांच एकाग्रमपरमंतप इत्युक्तः ॥

हुए। कैसे कि अग्नि को प्रकाश करते हुए। बत्था स्वर्ग लोक को स्वी करते हुए। तिस तपमें हुआ स्वर्गलोक निमित्त अग्नि को में स्थापन करता हूँ। मनवः- मननप्रधाना विद्वान् लोग जि स अग्नि को स्तीर्ण बर्हिषम्, आछादन करते हैं बर्हिजहां बो ह कहिते हैं ॥४८॥

तपन्तीभिरनु गच्छेम देवाः पुत्रैर्भ्रातृभिरुत वा हिरण्यैः।  
नाकं गृभ्णानाः सुकृतस्य लोके तृतीये पृष्ठे अधि  
रोचने दिवः ॥५०॥

हे देवाः (दीप्यमान, ऋत्विजः) स्त्रीओं करि सहित और पु  
त्रों सहित और भाई-भ्रातृ सहित सुवर्णदि द्रव्यों सहित हम अग्नि  
को अनुसरण (सेवन) करते हैं। कैसे अपनी कि तृतीये भूमिको  
आरम्भ करि त्रिसंख्या पूरक दिविके पृष्ठ रवि मण्डल विषे नाक  
हुः स्वहीन- अधिक सुख स्थान को स्वी करें। कैसे दिविके पृ  
ष्ठमें कि शुभ कर्मों के फल भूत दीप्यमान विषे ॥५०॥

आ वाचो मध्यमरुहदुरण्युरयमग्निः सत्यनिश्चेकि  
तानः। पृष्ठे पृथिव्या निहितो दविद्युतदधस्पदं कणु  
ता ये पृतन्यवः ॥५१॥

यह अग्नि वाचो मध्य चयन स्थान † को आरोहण करता हुआ  
सो यह अग्नि पृतन्यवः युद्ध की दृष्टा करने वाले पापियों तिन्नों  
को पैरों के नीचे करे। कैसा है अग्नि कि भुरण्युः (जगद्धर्ता भलो  
का पालक। चेतयमान। भूमि के ऊपर स्थापित। अत्यन्त द्योतमान ॥५१॥

† एतद् तृतीये पृष्ठमित्यादि शत ०. ८. ३. १५. अर्तः।

‡ एतद् वाचो मध्यात्मत्यादि शत ०. ८. ३. २०. अर्तः।

अथ मग्निर्वीरत्नमो वयोधाः सहस्रियो द्योततामप्रयु  
छन्। विभ्राजमानः सरिरस्य मध्य उप प्रयाहि दिव्या  
निधाम् ॥५२॥

यह अग्नि प्रकाश करने दिव्य स्थानों प्रति जावे और स्वर्गलोक  
को जावे। कैसा है अग्नि कि अतिशयेन वीर (शूर) हवि लक्षण  
अन्न का देनेवाला। सहस्रियः सहस्रों दृष्टकाओं करि संमित।  
कर्मविषे प्रमाद रहित। सरिरस्य मध्ये तीनों लोकों के विषे ही  
प्यमान ॥५२॥

सम्प्रच्यवधुमुप सम्प्रयाताग्ने पथो देवयानान्कणुध्व  
म्। पुनः कृण्वाना पितरा युवानान्वाताथ सीत्वयितन्तु  
मेतम् ॥५३॥

मन्त्र दृष्टीनाह। हे ऋषिओ तुम अग्नि प्रति आओ और आकर  
भले प्रकार प्राप्त होओ। एव मृषीनुक्ताग्नि माह हे अग्ने देवयानान्  
देव लोक प्रति हेतुमार्गों को करि। हे अग्ने यतः ऋषिलोग इसय  
ज्ञकोतुमविषे अनुक्रमेण विस्तार करते हुए कैसे हैं ऋषिलोग कि  
फिरि के पितरा वाचा और मन करि तरुण, आयातयामो अन्यो  
न्य संगत करते हैं + अर्थात् जितेन्द्रिय हैं ॥५३॥

उद्ध्व्य स्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते सठं सजेथा मयं  
च। अस्मिन्सधस्थेऽध्युत्तरस्मिन्विश्वे देवा यजमा  
नश्च सीदत ॥५४॥

हे अग्ने तू सावधान हो। प्रतिदिन यजमान को सावधान करि। ततः

† संयताभ्यां वाङ्मनसाभ्यामेव यज्ञसाधनात्।

पितरा युवानान्वाताथ सीत्वयितन्तु मेतम् ॥५३॥  
अग्ने तू सावधान हो। प्रतिदिन यजमान को सावधान करि। ततः

दृष्टा पूर्ते (ओ तस्मार्त कर्मो विषे) यजमान सहित संसृष्ट हो पुरुषव्य-  
त्ययः। किंच हे विश्वे देवा ओ तुमकृत दृष्ट पूर्त ओर निष्पाप यजमान  
देवताओं के साथ स्थितियोग्य इस उतरं सधस्थ (सर्वोत्कृष्टरविलोक-  
द्योर्लोकः) विषे चिरवैठे। विश्वे देवैः सालोक्यं यजमानस्य प्रार्थ्यत  
इति भावः ॥५४॥

योर्वीर्यत  
रुसधस्थ  
मिति प्राग  
८.६.३.२३  
श्रुतेः।

येन वहसि सहस्रं येनाग्ने सर्ववेदसम् । तेनेमं यज्ञं नो  
नय स्वर्देवेषुगन्तवे ॥५५॥

हे अग्ने जिस सामर्थ्य करके सहस्र दक्षिणा क यज्ञ को तू प्राप्त होता  
हे ओर जिस करके सर्ववेदधन दक्षिणा जहां तिस सर्व स्वदक्षिणा  
क यज्ञ को प्राप्त होता है तिस सामर्थ्य करके हमारे इस यज्ञ को देव-  
ताओं प्रति जाने स्वर्ग को प्राप्त करि। यज्ञ के स्वर्ग को जाने में हमारा  
भी तहां जाना होगा। सोऽस्यैष यज्ञो देवलोकमें वाभि प्रैति तदनु-  
ची दक्षिणायां ददाति प्रैति दक्षिणामन्वारम्य यजमान इति श्रु-  
तेः। अतो यज्ञस्य स्वर्गमनं प्रार्थ्यते ॥५५॥

अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातोऽअरोचथाः । तं ज्ञान-  
न्वेग्नः आरोहाथा नो वर्धया रयिम् ॥५६॥

इयं व्याख्याता ३-१४ ॥५६॥

अ०७ तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतूः अग्ने रन्तः श्लेपोऽसि क-  
ल्येतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाय ओषधयः कल्पन्ताम-  
ग्नयः पृथङ्मम ज्येष्ठ्याय सव्रताः ॥ ये अग्नयः समन-  
सोऽन्तरा द्यावापृथिवीऽइमे। शैशिरावृतूः अभि कल्प-

माना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गि  
रुस्वद्ध्रुवे सीदतम् ॥ ५७ ॥

एवं पुनश्चित्युपधान मुक्तापञ्चमचिति शेष भूतेश्च कोपधाने मन्त्रा  
उच्यन्ते का० १७. १२. २२. ऋतव्ये द्वे पद्येष्टके उपधान करै ॥ ऋतु

देवत्यं यजुः + तपो (माघः) तपस्यः (फाल्गुनः) शिशिर ऋतु के अ  
वयव। शिष्टं व्याख्यातम् १३. २५. ॥ ५७ ॥

परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवस्पृष्टे ज्योतिष्मतीम् ॥ विश्वस्मे  
प्राणायानाय व्यानायैदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय ॥  
सूर्यस्तेऽधिपतिस्तया देवतयाङ्गिरुस्वद्ध्रुवा सीद ॥ ५८ ॥

का० १७. १२. २३. यजमान की पद्या विश्व ज्योति को तृतीयोपहिता-

विश्वज्योति के ऊपर उपधान करै ॥ सूर्य देवत्यं यजुः + परमेष्ठी तु  
मे दिव के पृष्ठ ऊपर में सादन करै ॥ सूर्य तेरा पालक इति विशेषः अ  
न्यथा स्यातम् १४. १४. ॥ ५८ ॥

लोकं पृण छिद्रं पृणायौ सीद ध्रुवा त्वम् ॥ बुद्धाग्नी त्वाव  
हस्पतिरुस्मिन्योनावसीषदन् ॥ ५९ ॥

ता अस्य सूदोहसः सोमं श्रीणन्ति पृथ्मयः ॥ जन्मन्ते  
वानां विशस्त्रिधा रोचने दिवः ॥ ६० ॥

इन्द्रं विश्वा अवीरुधन्तसमुद्रव्यचसंगिरः ॥ रथीतमर्धं  
रथीनां बाजानां सत्यतिं पतिम् ॥ ६१ ॥

का० १७. १२. २४. आत्मा के दक्षिण आग्नेय कोण से अपर दिशा  
में रत्निमात्र अधिपद्या द्वय लोक से छोड़कर तृतीय लोक पृण

+ महीधर मते उक्त निबन्धः  
+ शकरो महीधरः

उपधानकरे ॥ तिस्रोऽपि द्वादशे व्याख्याताः ॥ ६१ ॥

प्रोथदश्वो न यवसेऽविध्यन्यदा महः संवरणाद्वा स्यात् ॥  
आदस्य दातोऽनुवाति शोचिरध स्मते व्रजनं कृणामे  
स्ति ॥ ६२ ॥

का० १७० १२० २५० पञ्चमी चिति को पुरीष करि पूर्ववत् प्रच्छादन-  
करिके शर्करामय्यो परस्परसंलग्ने सच्छिद्रे विकर्णी स्वयमातु-  
ष्मा संज्ञा द्वे इष्टके उपधान करते हैं। तिन्हों के मध्य उत्तर दिशामें  
अनूक रेखा के मध्य प्रोथदश्व इति विकर्णीष्टका को उपदधाति  
वशिष्टदृष्टाग्नेयी त्रिष्टुप्। मध्यमानोऽग्निः कथ्यते। यदा जिसका  
लविषें बड़े संवरणात् संव्रियतेऽस्मिन्वाग्निरिति संवरणं अरणि  
काष्ट) तिसव्यस्यात् वितिष्ठते प्रकाश होता है तब प्रोथ (शब्द) कर  
ता है। तत्र दृष्टान्तः अश्वो न अश्वजे सै घास को खाते बोलता है। इ  
स बन्धिज्वलन के अनन्तर वायु अग्नि को अनुलक्षण करि प्रसर  
ता है वाय्वग्न्योः सख्यादिति भावः। कैसा है वायु कि ज्वलते हुए अ  
ग्नि का संदीपन यद्वा इसकी ज्वाला को देखिकर पवन बहता है। अ  
ध (अथ) वात करि अग्नि के ज्वलते सति ते। इस अग्नि के चलने  
का स्थान स्याम होता है ॥ ६२ ॥

आयोष्टु सदने सादया म्यवत श्वा या याथ्समुद्रस्य हृदये

रश्मीवती भास्वती मा याद्यां भास्या पृथिवी मोर्वन्तरिक्षम् ॥ ६३ ॥

का० १७० १२० २५० आयोरिति दो कण्डिका करिके विकर्णी दक्षिणास्य  
यमातुष्माण को उपधान करे ॥ आयोः परमंष्टीति द्वे यजुषी स्वयमा

अथ तस्य व्रजनं कृणामे स्ति ॥ ६२ ॥  
अथ तस्य व्रजनं कृणामे स्ति ॥ ६२ ॥  
अथ तस्य व्रजनं कृणामे स्ति ॥ ६२ ॥



† एतिनिर  
नारगच्छ  
नीत्यापुश  
दित्यः

† समुत्पत्तिरिति समुद्रस्य अदित्यो व क्षाजगत्सप्तकुर्वन्समुद्रज्वरते ॥

तृणादेवत्ये । हे स्वयमातृणा आयोः-आदित्य† के स्थानमें तु मे स्था  
पन करता हूं । कैसे आदित्य के कि अवतः-जगत का पालनेवाला वा  
दीप्यमान । तथा समुद्र (आदित्य ५) कैसे स्थान कि छाया (आश्रयभू  
त-हृदय प्रधानभूत) में । कैसे तु मे कि किरणयुता अतएव शोभमान ।  
तिस किसे कि जो तू द्युलोक को प्रकाश करती है पृथिवी को और विस्ती  
र्ण अन्तरिक्ष को प्रकाश करती है ॥ ६३ ॥

परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवस्पृष्टे व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं-  
दिवं यच्छ दिवं हठं हृदिवं माहिष्ठं सीः ॥ विश्वस्मे प्राणायो  
पानाय व्यानायो दानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय ॥ सूर्यस्त्वाभि  
पातु मद्या स्वस्त्या छर्दिषा शान्तेन तया देवतयाद्भिरस्व  
दधुवेसी दत्तम् ॥ ६४ ॥

व्याख्यातं १४-१२-॥ ६४ ॥

सहस्रस्य प्रमासि सहस्रस्य प्रतिमासि । सहस्रस्योन्मासि-  
साहस्रोऽसि सहस्रोयत्वा ॥ ६५ ॥ †

इति सर्गहितायां सप्तमोऽनुवाकः ७

इति श्री शुक्ल यजुषि माध्यन्दिनशारवीयार्यावाजस  
नेयसर्गहितायां दीर्घपाठे पञ्चदशोऽध्यायः १५

का० १०-१२-२७-इष्टका चितपक्ष पुच्छ सहित अग्निको पीछे उत्तर  
पूर्व दक्षिण पश्चिम विषे एक सहस्र हिरण्य पाकल करिके दो-दो  
सो उदक सहित खड़े हो प्रकिरे ॥ पञ्चाग्नेयानि यजूर्ध्वि १-दे-जा०  
२-या-अ० ३-दे-वि० ४-दे-ह० ५-दे-य० हे अग्ने सहस्र इष्टका

प्रमाण तू है । सहस्र की प्रतिमा (प्रतिनिधी) है सहस्र का उनमा  
न (तुला) है सहस्रार्ह है सहस्राय- अनन्त फल की प्राप्ति के अ  
र्थ तुम्हें प्रोक्षण करता हूँ ॥६५॥

इति श्रीगिरिधरभाष्ये सप्तमोऽनुवाकः ॥

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमो हार्दनिवारयन् ॥  
पुमार्थोऽथ तुरो देयादग्निदेवः सनातनः १५

श्रीमच्छुक्लयजुर्बेदान्तर्गतमाध्यन्दिनी प्रारवाध्ये तद्व्याघ्रपादान्व  
य विश्वामित्रपुराधिपति श्रीजयकिशोरदेववर्ममात्मजरोकिमणे  
य नृपति गिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये पञ्च  
मीचिति वर्णनो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

गिरिप्रसादसंज्ञेन कथिता पञ्चमीचिति  
वेदार्थ दीपके भाष्ये बालकृष्णप्रसादतः

ओम् तत्सत् श्रीबालकृष्णार्पणं मस्तु ॥

ओम् शान्तिः

शान्तिः

शान्तिः

ओम् तत्सत्

हरिः श्रीम्

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्बहु रूपकम् ॥

स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्म रूपं परं स्तुमः ॥१॥

शैलेन्द्रोऽध्यायः परमेश्विनः आर्षदेवानां वा प्राजापते वा

अ० १ नमस्ते रुद्र मन्यवः ॥ उतो त इषवे नमः ॥ बाहुभ्यामु  
त ते नमः ॥१॥

ओं नमो याज्ञवल्काय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके

शतरुद्रियहोमोऽयं षोडशोऽध्याय इत्येते ॥१॥

पञ्चदशोऽध्याये च यनमन्त्रान्समाप्य षोडशेशतरुद्रियारव्यहोममंत्राञ्च्यने  
का० १८० १० १—५ हिरण्यशक्त सैः अग्निप्रोक्षणके अनन्तरमें  
शतरुद्रियसंज्ञक होम है। तिसकी आहवनीय में प्राप्तिविषे अप  
वाद कहते हैं। उत्तरपक्ष पश्चिम कोण विषे जो परिश्रित जंघामात्रा  
दयः पूर्व निरवाता हैं तिन्हे में होम है। तत्र विधिः। आरण्यतिलों से  
मिश्रित गवेधुकों (सकुओं) को अर्कपत्र करि होम। क्या करिके कि  
अर्क काष्ठ करि सन्तत को आरिके परिश्रित में पातन करि अर्क  
पत्र को दक्षिण हस्त से लेकर अर्क काष्ठ को बाए में ले तिसकरि  
पातन करना चाहिये। कोई ऋषिसक्त के स्थान में अजादुग्धको क  
हते हैं। उदङ्मुख हो नमस्ते नमः अध्याय करिके। तहां तीति अनु  
वाकों के अन्त में अर्भकेभ्यश्च नमः इत्यत्र क० २६० जानुमात्र

परिश्रितमें स्वाहाकार करना और पञ्च अनुवाकों के अन्तमें सुध  
 न्वनेत्यत्र क० ३६ नाभिमात्र परिश्रितमें स्वाहाकार है। नमोऽस्तुरु  
 द्वेभ्य इति क० ६४ प्रत्यवरोह मंत्र हैं तिनमें से पहिले मुखमात्रपरि  
 श्रितमें स्वाहाकार है। नमोऽस्तुद्नतीनि कण्डिकाओंकरि प्रति  
 लोम होम है येदिवि क० ६४ मुखमात्रमें येऽन्तरिक्षमितिक० ६५  
 नाभिमात्रमें ये पृथिव्या क० ६६ जानुमात्रमें इति सूत्रार्थः॥ नमस्ते  
 षोडशऽर्चोऽनुवाकः एकरुद्रदेवत्यः आद्या गायत्री तिस्रोऽनुष्टुभः  
 तिस्रः पङ्क्तयः सप्तानुष्टुभः द्वे जगत्यो। अध्यायस्य परमेष्ठि देव प्र  
 जापतय ऋषयः मान इति द्वयोः क० ११-१६ कुत्सोऽपित्ररिषिः॥  
 हे रुद्र-रुत् (दुःख) को दवाने वाले यद्वा रुत् (ज्ञान) को देने वाले अ-  
 थवा पापी मनुष्यों को दुःखभोग से रुलाता है। हे रुद्र तेरे क्रोधके  
 अर्थ नमस्कार हो और तेरे बाणके अर्थ नमस्कार और तेरी वाहु  
 ओंके अर्थ नमस्कार अर्थात् तेरा क्रोध वाण हाथ हमारे वैरि  
 यों प्रति प्रसरेन हम विषे ॥ १॥

या ते रुद्रशिवा तनू रघोरा पापकाशिनी। तया नस्तन्त्रा  
 शान्तमया गिरिशन्ताभिर्चाकशीहि ॥ २॥

हे रुद्र जो तेरी ऐसी देही हे गिरिशन्त तिस देही से हमें देखि। कैसी देही  
 कि मंगलरूपा। यतः अघोरा अविषमा-सौम्या अत एव अपा  
 प काशिनी अर्थात् पुन्य फलको देने वाली। गिरि (कैलाश) विषे  
 स्थित प्राणियों के सुख को विस्तार करने वाली अथवा गिरि वा  
 चा विषे स्थित सुखकों विस्तार करने वाली वामेध विषे स्थित वृ

ष्टद्वारेण सु०-ली अथवा सर्वज्ञ कैसी देही कि शान्तमया-सुखत  
मया ॥२॥

यामिषु गिरिशन्त हस्ते विभर्ष्यस्तवे। शिवां गिरित्र तां कु  
रु माहि ढंसीः पुरुषं जगत् ॥३॥

हे गिरिशन्त तू जिस बाण को हाथमें धारण करता है क्या करने  
कि शत्रुओं प्रति डालने को हे गिरित्र कैलाशविषे स्थित भूतों के बा  
ण करनेवाले तिस बाण को कल्याण कारनी करि किंच पुत्र पौत्रादि  
क और गो अश्व आदिकों को मति मार ॥३॥

शिवेन वचसा त्वा गिरिशास्त्रा वदामसि। यथानः स  
र्वमिज्जगद्यक्ष्मणं सुमना असत् ॥४॥

हे गिरिश (कैलास पे सोनेवाले) स्तुति रूप वचन करितुमै प्राप्त हो  
ने को हम प्रार्थना करते हैं। क्या प्रार्थना कि हमारे सब मनुष्य पशु  
आदि जिस प्रकार करि रोग रहित और शोभन मनस्कहों तैसा  
करि इतिशेषः ॥४॥

अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो देव्यो मिषक्। अहींश्च स  
र्वीज्जम्भयन्तसर्वीश्च यातुधान्यो धराचीः परा सुव ॥५॥

रुद्र मुमै सबसै अधिक कहै तिसके कहते मेरा सर्वाधिक है कैसा  
है अधिक वदनशील किसवों का मुख्य पूज्यत्वात्। देवताओं के  
अर्थहित। रोग का नाश करने वाला, स्मरण करते ही रोगनाश  
से। एवं परीक्ष मुक्ता प्रत्यक्षमाह है रुद्र सब राक्षसी ऐंतू हमसे दू  
रि करि। क्या करिके कि सब सर्प व्याज आदिकों को विनाश करिके।

कैसीहैं राक्षसिएं कि अधोगमन शीला। अर्थात् सर्पनाश राक्षसी-  
क्षेप साथ ही करि ॥५॥

असौ यस्ताम्रोऽपरुण उत बभ्रुः सुमङ्गलः। येचैनं  
रुद्रा अभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशोऽवैषां ह्येदं दे-  
महे ॥६॥

आदित्यरूपेणात्र रुद्रः स्तूयते। जो यह प्रत्यक्ष रुद्र रविस्वरूप और जे  
रुद्रा इसको सब ओड़ीसे पूर्वादिदिशाओं में किरण रूप करि-  
सहस्रशः (असंख्यात) श्रित हैं इन्हीं के अस्मदपराधज क्रोधकी ह  
मभक्ति करि निवारण करते हैं। कैसा है यह कि उदय समय अत्यन्त  
लाल अस्त काल में लाल। और अन्यदा पिशंग वणे। सुमङ्गलः-  
मङ्गलरूप रव्युदये सर्वमङ्गल प्रवर्तनात् ॥६॥

असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः। उन्नेन गोपा  
अहश्च नृहश्च नृदहार्युः सदृष्टो मृडयाति नः ॥७॥

जो यह आदित्य रूप अवसर्पण उदय अस्त करते निरंतर चलता  
है। और इसे गोपाला- बेदोक्त संस्कारहीना भी देखते हैं जल को  
हरण करनेवाली स्त्रियों भी इसे देखती हैं। कैसा है कि नील ग्रीवः वि-  
षधारण करने से नील है कंठ जिसका अस्त होते समय नील कंठ-  
जैसा दीखता है। विशेष करि कै लाल सो रुद्र हमें सुख देवे अर्थात्  
तू यह मंडलवर्ती रुद्र ही तपता है यह जानते सुख करें ॥७॥

नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे। अथोयेऽस्य  
सत्त्वानोऽहंतेभ्योऽकरं नमः ॥८॥

नील ग्रीव रुद्र के अर्थ नमस्कार हो। कैसे कि सहस्र हैं नेत्र जिस  
के-इन्द्रस्योपि। मीदुषे- सीचने वाले अर्थात् पर्जन्य रूप वातरु  
ए। और इस रुद्र के जे प्राणी भृत्य हैं तिन्हों की नमस्कार करता हूं ॥८॥

प्रमुञ्च धन्वन स्त्वमुभयो रात्र्योर्ज्याम्। याश्च ते हस्त इ  
षवः परा ता भगवो वप ॥९॥

हे भगवः षड्विधैश्वर्य युक्त भगवान् हे भगवन् धनुष की दो नों  
कोटियों में स्थिता ज्या-मौर्वी को तू दूर करि और जो तेरे हाथ में वा  
ए हैं तिन्हें परें डारि ॥९॥

विज्यं धनुः कपर्दिनो विशाल्यो वाणवां ॥१०॥ अने श  
न्नस्य या इषव आभुरस्य निषङ्गधिः ॥१०॥

कपर्दि-जटाजूट वाले रुद्र का धनुष मौर्वी रहित हो। और वाणवा  
न् (इषुधिः-भरथरी) विशाल्य विफल-भाल रहित हो। इस रुद्र के  
जे वाण ते नाश हों। इस रुद्र का खड्ग रखने का कोश खड्ग रहित  
हो। अर्थात् रुद्र हमारे प्रति न्यस्त सर्व शस्त्र हो ॥१०॥

याते हेति मीदुष्टम हस्तै बभूव ते धनुः। तया स्मान्वि  
श्वतस्त्वम यक्ष्मया परि भुज ॥११॥

हे मीदुष्टम-हे अति शयेन बर्षने वाले तेरे हाथ विधे जो धनुष-  
आयुध है। एक ते-पदं पाद पूर्णय। तिस धनुरूप आयुध करिके  
हमें सब ओड़ी से पालन करि। कैसी है धनुष कि रोग रहित नि  
रुपद्रव वा द्रव ॥११॥

परि ते धन्वनो हेति रस्मान्वृणक्तु विश्वतः। अथो य इ

हे भगवन् धनुष की दो नों कोटियों में स्थिता ज्या-मौर्वी को तू दूर करि और जो तेरे हाथ में वा ए हैं तिन्हें परें डारि ॥९॥

धुधिस्तवारेऽस्मिन्निर्धैहितम् ॥१२॥

हे रुद्र तेरा धनुष संवन्धी आयुध सब ओड़ीसैं हमें त्यागे अर्थात् नमारे और जो तेरा दधुधि (भर्यरी) तिसैं हमसैं दूरस्थापन करि ॥१२॥

अवतत्य धनुष्वर्धं सहस्राक्ष शतैषु धे निशीर्य शल्या नां मुखा शिवो नः सुमनां भव ॥१३॥

हे सहस्राक्ष सहस्र नेत्र वाले हे शते धुधे सौ भर्यरियों वाले तू हमारे प्रति शान्त शोभन चिन्त हो अर्थात् अनुग्रह करि क्या करि के किध नुषों को ज्या रहित और बाणों को भाल रहित ॥१३॥

नमस्तऽआयुधा यानां तताय धृषावे ॥ उभाभ्यां मुतते न मो बाहुभ्यां तव धन्वेने ॥१४॥

हे रुद्र तेरे आयुध बाण के अर्थ नमस्कार हो कैसे के कि अनातता य धनुषविषे अनारोपित धृषावे धर्षणशील रिपुमारने को प्रगल्भ के और तेरी बाहुओं के अर्थ नमस्कार तेरे धनुष के अर्थ नमस्कार हो तस्यापि विशेषण अनातताय अवतारित मोर्वी काय ॥१४॥

मानो महान्तमुत मानोऽअर्भकं मान उक्षन्तमुत मानो उक्षितम् ॥ मानो वधीः पितरं मोत मातरं मानोः प्रियास्तनो रुद्र रीरिषः ॥१५॥

हे रुद्र हमारे महान्त (बृद्ध, गुरुपितृ व्यादिकों) को मतिमार और हमारे अर्भक (बालक) को मतिमारि हमारे उक्षन्त (सींचे हुए, तक्षक) को मतिमारि और हमारे सींचे (गर्भस्थ) को मतिमारि हमारे प्रिया (पिता) को मतिमारि हमारी माता को मतिमारि + हमारी प्रिया (वत्स)



भा. स्त्री) तन्नूः शरीराणि पुत्र पौत्र रूपाणि मतमारि ॥१५॥

मा नैस्तोके तनये मान आयुषि मा नो गोषु मानोऽश्वेषु रीरिषः ॥ मा नो वीरान् रुद्र भामिनो वधीर्ह विष्यन्तः  
सदमिन्त्वाहवामहे ॥१६॥

हे रुद्र हमारे तोक (पुत्र) तनय (पौत्र) विषे मत हिंसा करि जीवन विषे मत हिंसा करि गोश्रेणि वि० तुरगो वि० अथवा विभक्ति व्यत्ययः तोक तनय आयु गो अश्व को मत मारि और क्रोध युक्त हमारे वीरे (भृत्यों) को मत मारि इसमें तेरा क्या उपकार है वोह यह कि हविर्युक्त हम सदैव तुम्हें याग के अर्थ बुलाते हैं त्वदेक शरणावयमिति भावः ॥१६॥

अ० २ नमो हिरण्यबाहवे सेनान्ये दिशां च पतये नमो नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः, पशूनां पतये नमो नमः शब्धिञ्जराय त्विषीं मतेऽपथीनां पतये नमो नमो हरिकेशायोषवीतिने, पुष्टानां पतये नमः ॥१७॥

नमो हिरण्यबाहव इत्युत्तरं द्रापे इति क० ४७ ऋकपर्यन्तं सर्वाणि यजूंषि। तत्र नमो हिरण्यबाहव इत्यादीनां धनुष्कव्युश्च वो नम इत्यन्तानां क० ४६ चत्वारिंशदधिकद्विंशत संख्याकानां यजुषां तावन्तो रुद्रा देवताः नमो वः किरिकेभ्य इत्यादि चतुर्णां क० ४६ अग्निवायुसूर्यादेवताः रुद्राणां प्रधानभूताः ॥ छन्दांसि तु। चतुक्षरं देवी यङ्किः षडक्षरं यजुर्गायत्री सप्ताक्षरं यजुरुष्णिक् अष्टाक्षरं यजुरनुष्टुप् नवाक्षरं यजुर्बृहती दशाक्षरं यजुः पङ्क्तिः एकादशाक्षरं यजुस्त्रिष्टुप् द्वादशाक्षरं यजुर्जगती चतुर्दशाक्षरं सामोष्णिगेकमेव किरिकेभ्य इति।

एतान्येवान्न छन्दसि॥तद्ब्रह्ममध्येके चन्तोभयतो नमस्कारः॥पदद्वयात्पू  
र्वमेव पदोच्चारणस्यश्चाच्च नमःपदयेषांते उभयतो नमस्कारः हिर  
ण्यवाहवे इत्यादि श्वपतिभ्यश्च नम इत्यन्ताः क०२०॥ततोऽन्यतर  
तो नमस्कारः अन्यतरत आदावेव यजुर्द्वयस्य नमस्कारे येषांते  
नमो भवा येत्यादि क०२० प्रविदते चेत्यन्ताः क०४६॥इषुमद्भ्य इ  
त्यादि क०२२ श्वपतिभ्यश्च इत्यन्ताः क०२० प्रत्यक्षाः व इतियुष्म  
छब्दयोगात् । इषुहृद्भ्य इति क०४६ उभयतो नमस्कारः॥सभाभ्य  
इति क०२४ जातसंज्ञा रुद्राः॥उभयतो नमस्कारः शान्ततमाः अन्य  
तरतो नमस्कारघोरतराः॥तेषां मन्त्राणामर्थ उच्यते एकैकस्यांकण  
कायामष्टावष्टौ रुद्राः॥हिरण्य आभरणरूप बाहुणं जिसकी वोह हि  
रण्य बाहु और वोह हीसे नाकी लानेवाला सेनानी तिस रुद्र के अ  
र्थ नमस्कार॥१॥दिशाओं के पालक रुद्र के अर्थ नमस्कार॥२॥हरि  
तवर्ण हैं केश(पत्र)जिन्होंके तिन वृक्ष रूप रुद्रों॥३॥यशुओं(जीवों)  
के पालक रुद्र॥४॥शष्पिञ्जर(वाल.तृण.तद्वत् पिञ्जर.पीतरक्त  
वर्ण ईदृश दीप्तिमान् रुद्र॥५॥मार्गों के पालक रुद्रकेषां॥नीलव  
र्ण केश(जरारहित)के मङ्गलार्थयज्ञोपवीतधारी रुद्र॥६॥गुणपू  
र्ण मनुष्यों के स्वामी के॥७॥१३॥

नमो बभ्रुशाय व्याधिनेऽन्तानां पतये नमो नमो भवस्य हे  
तये जगतां पतये नमो नमो रुद्राया ततायिने क्षेत्राणां प  
तये नमो नमः सूताया हन्तये वनानां पतये नमः॥१६॥  
वभ्रुशः कपिलवर्ण वा विभर्ति रुद्रमिति वभ्रु-वृषभ-तिसपर वेष्टा



कत्वेन चलनेवाले अर्थात् जहां जाता है सर्वेष्ट लाभ को पाता है-  
रुद्र॥२५॥ शरणागत प्राणियों के पालक॥२६॥ वैरियों का अभि-  
भव करता है निरन्तर वैरियों को मारता है तिसके॥२७॥ सब ओ-  
डी से हनन करने वाली शूरसेना तिन्हें के पालक के॥२८॥ खड्ग  
धारण करने वाले बड़े तिसके॥२९॥ गुप्तचोर तिन्हें के पालक  
के॥३०॥ अपहार बुद्धि करिके निरन्तर चरता है आपण वाठिका  
दिकों में हरणेछा करि चरता है तिसके॥३१॥ बनों के पतिके॥३२॥  
रुद्रो लीलया चोरादि रूपं धत्ते यद्वा रुद्रस्य जगदात्म कत्वा चोरा-  
दयो रुद्रा एव ध्येयाः यद्वा स्तेनादि शरीरे जीवेश्वर रूपेण रुद्रो द्विधा  
तिष्ठति तत्र जीव रूपं स्तेनादि शब्दवाच्यं तदीश्वर रुद्र रूपं लक्ष-  
यति यथा शाखाग्रं चन्द्रस्य लक्षकम् किं बहुना लक्ष्यार्थविवक्षया  
मंत्रेषु लौकिकाः शब्दाः प्रयुक्ताः॥२०॥

नमो बभ्रुवते परिवच्चते स्तायूनां पतये नमो नमो निष-  
ङ्गिणोऽङ्गुधिमते तस्कराणां पतये नमो नमः सका-  
यिभ्यो जिघात्सस्यो मुष्णातां पतये नमो नमो सिम-  
ध्यो नक्तं चरद्ध्यो विक्लानां पतये नमः॥२१॥

प्रतारण करता है सर्वतः प्रता है तिसके॥ स्वामी का आप्त हो के व्यवहा-  
र विषे कही तदीय धन को चलाता है वोह बभ्रुवन् सर्व व्यवहार वि-  
षे धन का चलाना परिवच्चन॥३३॥ गुप्तचोरादिविधा रात्रि में घर वि-  
षे कूमिल देके द्रव्य के चुराने वाले स्वीया एव अहर्निश अज्ञात ओ-  
र हनोर हैं पूर्वस्तेना उत्तरे स्तायव तिन्हें के पतिके॥३४॥ निषङ्गी,

खड्ग वा बाण धारण करनेवाला इशबुधि. भयरी धारण करनेवाले  
तदुभयरूप के॥३५॥ प्रकटचौरों के पतिके॥३६॥ वज्र करि चलने वा  
ले शत्रुओंको मारनेवाले रुद्रके॥३७॥ क्षेत्रादिकों विषे धान्यचुरा  
ने वालों के पालक के॥३८॥ खड्ग धारण करिके रात्रविषे वीथी निर्ग  
त प्राणियों के घातक रुद्रों के॥३९॥ काट फांसिके चुराने वालोंके  
पतिके॥४०॥ २१॥

२०३ नम उष्णीषिणे गिरिचराय. कुलुञ्चानां पतये नमो. न  
म इषुमद्भ्यो. धन्वा विभ्यश्च वो नमो. नम आतन्वानेभ्यः.  
प्रतिदधानेभ्यश्च वो नमो. नम आयच्छ्वो. स्यध्वश्च  
वो नमः ॥२२॥

उष्णीष + सैशिर लपेटिकर ग्राम विषे अपहरने को प्रवृत्तगिरिवि  
षे अध्वन्यों के वस्त्रादि छीनलेनेको. पर्वतादि विषमस्थानचारी  
तदुभयरूप रुद्र॥४१॥ क्षेत्रग्रहादिरूप भूमि को हरते वा कुत्सितको  
हरते तिन्हों के पालकके॥४२॥ जनोंके भीषण को बाण धारण किये  
तिन्हों के॥४३॥ हे रुद्रओं तुम धनुषधारीओंके. चकारे मन्त्रभेद ज्ञाप  
नार्थः एवमग्रेऽपि॥४४॥ आरोपण करतेहैं ज्याको धनुष में तद्रूपीओं  
के॥४५॥ भले प्रकार धारण करतेहैं बाणको धनुष में तिन तुम्हारे  
॥४६॥ आकर्षण करतेहैं धनुषोंको तिन्हों के॥४७॥ क्षेपण करतेहैं बा  
णोंको तिन्हों॥४८॥ २२॥

नमो विसृजद्भ्यो. विध्यद्भ्यश्च वो नमो. नमः स्वपद्भ्यो. जा  
गद्भ्यश्च वो नमो. नमः शयानेभ्यः आसीनेभ्यश्च वो

नमः स्वभ्यः स्वपतिभ्यश्च नमो नमो भवाय च रुद्राय च नमः शर्वाय च पशुपतये च नमो नीलग्रीवाय च शिवाय च ॥२८॥

स्वानः॥ (कुर्कुराः) तिह रूपी ओंकेन॥ ८६॥ तुम कुत्ते ओंके पालकोंके  
॥ ८७॥ नम इषु मद्रोधन्वाधिभ्य इत्यारभ्य क० २२ येवः-शब्दान्तेषु  
जावाचका वानयुष्मदादेशाः॥ इत्युभयतो नमस्कारमन्त्राः समाप्ता  
अथ नमस्कारोपक्रमानाम मन्त्रा उच्यन्ते॥ उत्पन्न होते हैं जन्तु इस  
से तिसके॥ ८१॥ रुत (दुःख) को द्रवाता है ति॥ ८२॥ पाप को मारता  
है ति॥ ८३॥ यज्ञों की रक्षा करता है ति॥ ८४॥ विष भक्षणसे नीला  
है कण्ठ जिसका ति॥ ८५॥ श्वेत है कण्ठ नीलातिरिक्त भाग जिसका  
ति॥ ८६॥ २८॥

नमः कपर्दिने च व्युत्प्रेषाय च नमः सहस्राक्षाय च  
शतधन्वने च नमो गिरिशाय च शिपिविष्टाय च न  
मो मीढुष्टमाय चैषुमते च ॥ २४ ॥

कपर्दी (जटाजूटवाले) के ॥४७॥ अशुभ (मुँह) के शत्रु के ॥४८॥ सह  
खाक्ष (इन्द्रस्त्री) के ॥४९॥ शतधन्या (बहुत धनुषधारी) के ॥५०॥  
गिरि (कैलाश) विषे सोनेवाले के ॥५१॥ शिपिविष्ट (विष्णु रूप वि  
ष्णुः शिपिविष्ट इति श्रुतेः यद्वा शिपि-यशुओं में प्रविष्ट-यसोर्वैशि  
पिरिति श्रुतेः सर्व प्राणिष्वन्तर्यामि तया स्थित इत्यर्थः यद्वा यज्ञोर्वैशिपि  
यज्ञोऽधिदेवतात्वेन प्रविष्टः शिपिरादित्यो वा माण्डलाधिष्ठातेत्यर्थः  
तिसके ॥५२॥ अतिशयेन मेघ रूपी मीचनेवाले ॥५३॥ वागावा

+ च्चभ्योऽपि प्रणतिर्युक्ता शिवादिभ्यो नृशङ्कराः श्वाभोवेदाः श्वपतयो वेदाणापरिपानकाः। शिवरत्ने  
मल्लाख्यरिपुर्भद्राः कर्तुं भयं सपथको भयो यथोक्तं साक्षात्कारवत्तु चमथो हरः। तदा किमन्य  
वेगदेषः (देवाः) सर्वे सगणयुः। नरा वेदाः श्वरूपेण ययुर्देवगणान्विताः। दिशं संपूरयन् स्तेष्वतिभिर्मल  
भीषकाः। ततो भयं ततः। इहमेति वक्तव्यं। तदा प्रभृतिरुद्भवाभ्यं मल्लागिरिति (गिरिति) कीर्तितः। इत्येव

लेके०॥१०४॥२४॥

नमो ह्रस्वाय च० वामनाय च० नमो बृहते च० वरीय  
से च० नमो वृद्धाय च० सदृधे च० नमोऽग्राय च० पय  
माय च० ॥३०॥

रूपतो नमस्काराः॥ अल्पशरीरति०॥१०५॥संकुचितावयवः॥१०६॥  
प्रीटाङ्गहेत०॥१०७॥अतिशयेन वृद्धः तस्मै०॥१०८॥वडी अवस्था का  
त०॥१०९॥सदृध- वडेहे विद्याविनयगुणादिकों से तिन पण्डुतों के  
अ वर्तमान त०॥११०॥जगतके आगे हुआति०॥१११॥प्रथमः सर्वत्र  
मुख्यः त०॥११२॥३०॥

नम आशवे चाङ्गिराय च० नमः शीघ्राय च० शीघ्रा  
य च० नम ऊर्ध्वाय च० वस्वन्याय च० नमो नादेयाय च०  
दीप्याय च० ॥३१॥

जगद्व्याप्तः त०॥११३॥गतिशीलः त०॥११४॥वेगवानूत०॥११५॥शीघ्रः  
आत्मश्लाघी तत्रभवः शीघ्रो जलप्रवाहो वाक्षिप्रौ वा तत्रभवः त०  
॥११६॥कल्लोलों में हुआ त०॥११७॥अवस्वनः स्थिरजल बानीचे  
गतीदिकों में हुआ त०॥११८॥नदी में हुआति०॥११९॥दीप-जल  
न्तरवर्ति निर्जल भूमि में हुआति०॥१२०॥३१॥

अ० ५ नमो ज्येष्ठाय च० कनिष्ठाय च० नमः पूर्वजाय च० पर  
जाय च० नमो मध्यमाय च० पृथ्व्याय च० नमो जघन्याय  
च० बुध्न्याय च० ॥३२॥

वयोऽवस्था विशेषाभिधायकाः षट् नमस्काराः॥ज्येष्ठ- अत्यन्तप्रश

स्यत ॥१२१॥ अत्यन्त युवा वा अत्यन्त ॥१२२॥ पूर्व जगत की आदि-  
में हिरण्यगर्भ रूपेणोत्पन्नः त ॥१२३॥ प्रलय में कालाग्नि रूपकरि उ-  
त्पन्नति ॥१२४॥ मध्ये सृष्टि संहार के अन्तर देवतिर्यगादि रूपेण दु-  
आति ॥१२५॥ अपगल्भ अगल्भ अव्युत्पन्नेन्द्रियस्तद्रूपी वा एकग-  
भीन्तरित के ॥१२६॥ जघन गवादि की का पिछला भाग तत्र भवस्त-  
॥१२७॥ वृक्षादि की की मूल में हुआ त ॥१२८॥ ३२॥

नमः सोम्याय च प्रतिसूर्याय च नमो याम्याय च  
क्षेम्याय च नमः श्लोक्याय चान्वसान्याय च नमः  
वैश्याय च खल्ल्याय च ॥३३॥

सोम गन्धर्वेनगर वा देवों पुण्यपापों से युक्त मनुष्य लोक + तहां हु-  
आत ॥१२९॥ प्रतिसूर विवाहोदित हस्त सूत्र वा अभिचार + तहां हु-  
आत ॥१३०॥ याम्यः पापियों की कर कारि तातात ॥१३१॥ कुशल में  
हुआत ॥१३२॥ श्लोकाः वैदिक श्रौतों वा यश से हुआ त ॥१३३॥ अ-  
वसान समाप्ति वा वेदान्त ताता हुआति ॥१३४॥ सर्व सस्याख्याभूमि  
तहां धान्य रूपेण भवः त ॥१३५॥ सत्य धान्य निवेचन देश तत्र भव-  
स्त ॥१३६॥ ३३॥

नमो वन्याय च कक्ष्याय च नमः श्रवाय च प्रतिश्र-  
वाय च नमः आशुषेणाय च शुरधाय च नमः शू-  
राय चान्व मेदिने च ॥३४॥

वन + में वृक्षादि रूप करि हुआ त ॥१३७॥ कक्ष + नृण वावल्लीत  
हां हुआ त ॥१३८॥ शब्द स्तुती ॥१३९॥ प्रति शब्द स्तुती ॥१४०॥ शीघ्र

+ वने वृक्षों की जलवा वने प्रत्येक वृक्ष प्रकाशे गमामि कानने।  
+ वृक्षों विरुधि दो मूल कक्ष श्रुत वने तुरी ॥

+ पुण्येन पुण्य लोक न पति पापि न पाप मुमाभ्यामनुष्य लोक  
+ नित्याय वै एतुते प्रक्षीप निवत् २२

+ आहुत  
सरं हस्त  
वेमाल्यस्य  
मण्डने। वृणा  
युद्धे च म-  
पुष्टिनिया-  
आगक्षकं  
(कर्णे) का  
मन्त्र मेरे  
पीति विन्वः



सेना बलि०॥१४१॥शीघ्ररथजिसकाति०॥१४२॥युद्धधीरके०॥१४३॥  
रिपुओं को नीचे से विदारण करता है ति०॥१४४॥३४॥

नमो बिल्मिने च कवचिने च नमो बर्मिणे च वस्  
थिने च नमः श्रुताय च श्रुतसेनाय च नमो दुन्दुभ्या  
य च चाहनन्याय च०॥१३५॥

विल्म (शिरस्त्राण जिसका है ति०॥१४५॥ पदस्पृत् कर्पास गर्भ देह  
रक्षक कवच तिस कवची के०॥१४६॥ लोहमय शरीर रक्षक वर्म ति  
स वर्मी के०॥१४७॥ गजोपरिस्थ गजाकार कोष्ठ वस्तु वा रथगु  
प्ति तिस वस्तु की के०॥१४८॥ श्रुत प्रसिद्ध के०॥१४९॥ प्रसिद्धा सेनाजि  
सकी ति०॥१५०॥ दुन्दुभी (भेरी) सैद्धाति०॥१५१॥ ताडन करते हैं-  
जिस से बाजे का तिस दण्ड सैद्धाति०॥१५२॥३५॥

नमो घृणावे च प्रमुखाय च नमो निषङ्गिणे च शुधिमते  
च नमः स्तीक्ष्णैर्बवेचायुधि च नमः स्वायुधाय च सु  
धन्वने च०॥३६॥

प्रगल्भ के०॥१५३॥ विचार करने वाले पण्डित के०॥१५४॥ रक्तायुक्त  
के०॥१५५॥ तूण (भरतरी) युक्त के०॥१५६॥ तीक्ष्ण है वाण जिसके ति०  
॥१५७॥ और और आयुध हैं जिसके ति०॥१५८॥ शोभन आयुध त्रि  
शूल जिसका ति०॥१५९॥ शोभन धनुष जि०॥१६०॥ इति द्वितीया  
शीतिः॥३६॥

अ०६ नमः सुत्याय च पथ्याय च नमः कात्याय च नीप्या  
य च नमः कुल्याय च सरस्याय च नमो नादेयाय च

वैशान्ताय च ॥१३०॥

सुति, क्षुद्रप्रवाह वा क्षुद्रमार्गं तहांहुआति ॥१६१॥ पन्थ, रथ अश्ववि  
मार्ग योग्य तहांहुआति ॥१६२॥ विषम मार्ग वा कुल्याप्रदेश मेंहुआ  
ति ॥१६३॥ नीचे गिरता है जल जहां गिरिका अधोभाग तहांहुआति ॥  
१६४॥ कृत्रिमा सरिता मेंहुआ वादेह में अन्तर्यामि रूप करिति ॥१६५॥  
सर मेंहुआति ॥१६६॥ नदी मेंहुआति ॥१६७॥ अल्प सर में हुआति  
१६८ ॥ ३० ॥

नमः कृष्याय च, वक्ष्याय च, नमो वीर्याय च, तप्याय  
च, नमो मेध्याय च, विद्युत्याय च, नमो वर्ष्याय च, ब  
र्ष्याय च ॥३१॥

कूप मेंहु ॥१६६॥ गर्त मेंहु ॥१७०॥ निमेल शरत् के अश्रु में वा विगत  
दीप्ति जिस सै तिस घनागम तहांहु ॥१७१॥ आतप मेंहु ॥१७२॥ मेघ में  
१७३॥ विजली में ॥१७४॥ वृष्टि में ॥१७५॥ वृष्टि प्रति बन्ध में ॥१७६॥ ३८

नमो वात्याय च, रेण्याय च, नमो वास्तव्याय च, वास्तुपा  
य च, नमः सोमाय च, रुद्राय च, नमस्ताम्राय च, रु  
णाय च ॥३५॥

वात में ॥१७७॥ प्रलय में विद्यमान ति ॥१७८॥ गृह भुव मेंहुआ, वा  
स्तव्य ति ॥१७९॥ गृह भुव को रक्षा करता ति ॥१८०॥ उमा सहित सोम  
ति ॥१८१॥ दुःख नाशक के ॥१८२॥ रक्त वर्ण उदय द्रवि रूप करिति ॥  
१८३॥ अरुण ईषद्रक्त, उदयोत्तर कालीन अर्क रूप करिति ॥१८४॥ ३९ ॥

नमः शंगवे च, पशुपतये च, नमः उग्राय च भीमाय च

नमः अग्नेवधाय च दूरेवधाय च नमो हन्त्रे च हनीयसे च  
नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यो नमस्तारय ॥४०॥

शं (सुख) को प्राप्त करता है वा सुखरूपा वेदवाचाजिसकीति ॥१८५॥  
पशु-प्राणियों का पालकति ॥१८६॥ शत्रुओं के मारने को उग्रायुध  
ति ॥१८७॥ शत्रुओं को भय का उत्पन्न करने वालाति ॥१८८॥ सामने  
में वर्तमान को मारता है ति ॥१८९॥ दूरमें वर्त ॥१९०॥ मारने वाले  
लोकमें जो मारता है अर्थात् तद्रूपेण रुद्र एव हन्ति ति ॥१९१॥ अ  
तिशयेन प्रलयकालमें सबों को मारता है ति ॥१९२॥ हरितर्हें केश य  
त्र जिन्हें के तिन वृक्षों (कल्पतरु रूपी) के ॥१९३॥ तारता है संसारको  
ति ॥१९४॥ ४० ॥

अ०० नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मय  
स्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥४१॥

शं (सुख) होता है वा शं सुखरूप और भव संसाररूप अर्थात् मुक्ति  
रूप और भवरूप ति ॥१९५॥ संसार सुख का देने वालाति ॥१९६॥  
लौकिक सुख करता है ति ॥१९७॥ मोक्ष सुख करता है ति ॥१९८॥ शि  
व (कल्याणरूप-निष्पाप) ति ॥१९९॥ अत्यन्त शिव (भक्तों को भी नि  
ष्पाप करता है) ति ॥२००॥ अस्यां कण्डिकायां षड्यजूर्षि पूर्वस्यां द  
शोक्तेः ॥४१॥

अ०० नमः पार्याय च वार्याय च नमः प्रतरणाय चोत्तरण  
ाय च नमः स्तीर्याय च कूल्याय च नमः शर्ण्याय च  
फेन्याय च ॥४२॥

१. सङ्कचनादि रूपेण लौकिकसुखकारित्वम् शस्त्रादि रूपेण ज्ञानप्रदत्वाभ्योक्षसुखकारित्वमित्यर्थः ॥ एताभ्यां  
७ वाभ्यां साक्षात्सुखकारित्वम् पूर्वपदाभ्यां तद्द्वाराकारणित्वमिति विवेकः ॥

पार संसारब्धि केतीरपरजीवन्मुक्तरूपेण हुञ्जाति॥२०१॥संसारके मध्य  
में संसारित्वेन हुञ्जाति॥२०२॥प्रकर्षेण मन्त्रजपादिकरि पापके तरणे  
का हेतुति॥२०३॥उत्कृष्टेन तत्त्वज्ञान करि संसारोत्तरण हेतुति॥२०४॥  
प्रयागादि तीर्थों में हुञ्जाति॥२०५॥तटमें हुञ्जाति॥२०६॥शष्प वाल तृ  
ण गङ्गातीरेत्यन्त कुशाङ्कुरादि में हुञ्जाति॥२०७॥फेन डिण्डिर में  
हुञ्जाति॥२०८॥४२॥

नमः सिकत्याय च प्रवाह्याय च नमः किर्णशिलाय च क्षय  
णाय च नमः कपर्दिने च पुलस्तये च नमः इरिण्याय च  
प्रपञ्च्याय च ॥४३॥

सिकतामें हु॥२०९॥प्रवाह (स्रोत) में हु॥२१०॥क्षुद्रशिला शर्करारूप  
पाषाण जिस प्रदेश में तद्रूपी के॥२११॥स्थिरजल प्रदेशाति॥२१२॥क  
पर्दी के॥२१३॥पुरः सामने खड़ा है वा शरीर में है सत्ताजिस्की वोह स  
र्वान्तर्यामी ति॥२१४॥ऊपर तृणरहित देश तहां हुञ्जाति॥२१५॥बहु  
सेवित मार्ग में हु॥२१६॥४३॥

नमो ब्रज्याय च गोष्ठ्याय च नमस्तल्प्याय च गेह्याय च  
नमो हृदय्याय च निवेष्याय च नमः कास्याय च गह्वरे  
ष्याय च ॥४४॥

गो समूह में हु॥२१७॥गोष्ठ गौत में हु॥२१८॥शाय्या में हु॥२१९॥गेहघर  
में हुञ्जाति॥२२०॥हृदय में हुञ्जा जीवति॥२२१॥निवेष आवर्त वा नीहार  
जल में हु॥२२२॥काट दुर्गारण्यदेश वा कूप में हु॥२२३॥गह्वरगिरि  
होदिकों वा गम्भीरजलमें खड़ाति॥२२४॥४४॥

भस्मालवक्ष्यते संसृत

नमः शुष्काय च हरित्याय च नमः पार्थिव्याय च रजस्या  
य च नमो लोप्याय चोत्प्लप्याय च नमः ऊर्वी च सूर्या  
य च ॥४५॥

शुष्क-काष्ठादिकमेंहु॥२२५॥ आर्द्रकाष्ठादिकमेंहु॥२२६॥ पांसु(धू  
लि)मेंहु॥२२७॥ रज(गुण वा पराग)मेंहु॥२२८॥ लोप(अगम्यप्रदे  
श वा शंहर)मेंहु॥२२९॥ उत्पलपा(वल्चजादितृणविशेष)मेंहु॥२३०॥  
ऊर्वी(भूमि वा वडवानल)मेंहु॥२३१॥ शोभनऊर्व(कल्पानल)मेंहु॥  
२३२॥४५॥

नमः पूर्णाय च पणशुदाय च नमः उद्गुरमाणाय चात्रभि  
घृते च नमः आखिदते च प्रखिदते च नमः इषु कृड्यो  
धनुष्कृड्यश्च वो नमो नमो वः किरिकेभ्यो देवनां हृद  
येभ्यो नमो विचिन्तकेभ्यो नमो विक्षिण्णकेभ्यो नमः  
आनिर्हतेभ्यः ॥४६॥

तस्मिन् श्रेणं के पत्र स्स्य के ॥२३३॥ शदः शातन वा गिरतं हें पक्वपणस्थित  
देश तद्रूपी के ॥२३४॥ उद्यम करने वाले के ॥२३५॥ शत्रुओं के मारने  
वाले के ॥२३६॥ समन्तात् दैन्य करता है अभक्तों को ति ॥२३७॥ अकर्ष  
ण दैन्य करता है पापिओं को ति ॥२३८॥ बाणों को करने वाले तिन रुद्रों  
के ॥२३९॥ तुम धनुषों के करने वाले रुद्रों के अर्थ नमस्कार हो ॥२४०॥  
तिस्त्रोऽशीतयो रुद्राणां समाप्ताः । एवं चत्वारिंशदधिकशतद्वयमत्रै  
रुद्राय सर्वात्मत्वमुक्तम् ॥ ॥ अथ रुद्रेषु प्रधानभूतानामग्निवायु  
सूर्याणां संवन्धीनि चत्वारि यज्ञं व्युच्यन्ते । चतुर्णामादौ नमः शब्द

चत्वार्येव यजूंषि आद्यं चतुर्दशक्षरं त्रीणि सप्ताक्षराणि तानि व्याहृ-  
ति संज्ञानि॥ नमो वदति। देवताओं (रुद्रों) के हृदयवत्प्रधानभूत तुमअ  
ग्नि वायु सूर्य-ओं के अर्थनमस्कार। देवानां हृदयेभ्य इत्यग्नि वायुरा-  
दित्य-एतानि हतानि देवनाहं हृदयानीति ५.१.१.२३ श्रुतेः। जैसेअ  
झों में हृदय प्रधान है ऐसे ये रुद्रों में प्रधान हैं। कैसे हैं ते कि किरिकेभ्यः-  
वृष्ट्यादि द्वारा जगत करते हैं। एते ही दर्शन सर्व कुर्वन्तीति ५.१.१.२३ श्रुतेः  
॥१॥ पृथक्करते हैं धर्मिष्ठ और पापिष्ठ को तिन अग्न्यादिकों के ॥२॥ विवि-  
ध हिंसा करते हैं पाप को तिन अग्न्यादि ॥३॥ आसमन्तान्निर्गताः सर्गादि  
में लोकों के अर्थ तिन रुद्रावतारों अग्नि वायु सूर्य-ओं के अर्थनमस्कार। ते-  
भ्य सप्तेभ्यस्त्रीणि ज्योतीर्दृष्यजायन्ताग्निर्यो यं पवते सूर्य इति ॥४॥ ४६॥  
अ० ५ द्रापेऽअन्धसस्यते दरिद्र नील लोहित। आसां प्रजानामेषां  
पशूनां मा भेर्मा रोद्धो च नः किं च नार्ममत् ॥४७॥

सप्त ऋच एक रुद्रदेवत्याः। आद्यो परिष्ठाद्वहती। हे द्रापे-पापियों को  
कुत्सितगति प्राप्त करता है। हे अन्धसः-सोम+केपते। हे दरिद्र-निष्परि-  
ग्रह अद्वितीयत्वादिति भावः। हे नीललोहित-कण्ठ में नील अन्यत्र लो-  
हित है हे शिव हमारी इन प्रजाओं पुत्रादिकों को गवादि पशुओं को  
तू भय मत कर। प्रजा पशुओं का भङ्ग मत कर। पुनः हमारा किमपि  
द्विषदचतुष्पदादिकों को रोगी मत कर यद्वा रुग्ण मत हो ॥४७॥

इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयदीराय प्रभरामहे मतीः।  
यथा शमसद्वि पदे चतुष्पदे विश्वं पृष्टं ग्रामेऽअस्मिन्  
नातुरम् ॥४८॥

कुत्सहृष्टा जगती। हम अपनी बुद्धि शंकर के अर्थ समर्पण करते हैं। कै  
से के कि तबसे बड़े वा बलवान + कपर्दी के। शूरयुक्त के वानाश होते हैं  
रिपु जिससे। पुत्रादिकों वा पशुओं के अर्थ अथवा द्विपद चतुष्पदों में  
जिस प्रकार सुख हुआ है इस ग्राम वासस्थान विषे सब प्राणि जान म  
मृद्व निरुपद्रव और स्वस्थ जैसे हुए तैसे हर में मति का समर्पण करते  
हैं इत्यर्थः ॥४८॥

याते रुद्र शिवा तनूः शिवा विश्वाहा भेषजी। शिवा रुतस्य भे  
षजी तथा नो मृड जीवसे ॥४९॥

अनुष्टुप्। जो तेरी ऐसी देही तिस देही से हमारे जीवन को सुख करि। कैसी  
कि शिवा-अघोर। और सब दिनों विषे कल्याण कारिणी औषधिरूपा सं  
सार व्याधिनिवर्तिका। रुत (शरीर व्याधि) की शिवा समीचीन निवर्तिका विधि है ॥४९॥

परि नो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु परि त्वेषस्य दुर्मतिरध्यायोः ॥ अवे-  
स्थिरा मघवद्व्यस्तनुष्व मीदुस्तोकाय तनयाय मृड ॥५०॥

त्रिष्टुप्। रुद्र का आयुध हमें न मारो। और रुद्र की द्रोह बुद्धि हमें त्याग  
करो। हे मेदु कामों के वर्षने वाले तू हृदयनुषों को ज्या रहित करि कि  
मर्थ हविर्लक्षण है धन जिन्हों के तिन यजमानों की भय निवृत्ति के अ  
र्थ। किंच पुत्र और पौत्र को सुख करि ॥५०॥

मीदुष्टम शिवतम शिवो नः सुमना भव। परमे वृक्ष आयुधं  
निधाय कृत्ति वसान आचर पिनाकं विभ्रता गहि ॥५१॥

इयमे कोना यवमध्यात्रिष्टुप्। हे मीदुष्टमः (अतिशयेन कामसेक्तः) हे शि  
वतमः (अत्यन्त कल्याणकर्त्ता) हमारे प्रतिशान्त और हृष्ट चित हो।

किंच दूरस्थ वा बटादि दृक्षमें आयुध (त्रिशूलादिक) को रखिकर बर्म  
को भी रखिकर आगमन वा तप करि। ज्या शरहीन धनुष मात्र को शोभा  
र्थ धारण करते आगमन करि ॥५१॥

विकिरिद्र विलोहित नमस्तेऽस्तु भगवः। यास्ते सहस्रं हं  
हेतयोऽन्यमस्मन्निव पन्तुताः ॥५२॥

हे अनुष्टुभो। हे विकिरिद्र विविध घातादि उपद्रव कानाश करता है हे  
विलोहित विगत है पाप जिससे हे शुद्ध स्वस्व भगवन् तेरे अर्थ नम  
स्कार हो। हे रुद्र तेरे जे असंख्य आयुध हैं ते आयुध हमसे व्यतिरि  
क्त हनन करें ॥५२॥

सहस्राणि सहस्रशो बाह्वोस्तव हेतयः ॥ तासां मीशानो  
भगवः पराचीना मुखो ह्यधि ॥५३॥

हे भगवन् तेरे हाथों में जी सहस्रों आयुध हैं तिन आयुधों के मुख शाल्य  
हमसे पराङ्मुख तू करि। कैसा है तू कि ईशान (जगन्नाथ) अर्थात् ध  
नुः खड्ग शूल बाण बर्मादिक सहस्र-सहस्र संख्या कहें ॥५३॥

असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधिभूम्याम् ॥ तेषां सहस्रयो  
जनेऽव धन्वा नि तन्मसि ॥५४॥

बहुरुद्रदेवत्या दशानुष्टुभोऽवतानसंज्ञाः। भूमिस्थारुद्रा उच्यन्ते।  
असंख्यात जे रुद्र भूमि के ऊपर स्थित हैं। तिन रुद्रों के धनुष सहस्र  
योजन व्यवहित मार्ग विषे हम उतारते अर्थात् अपज्या करिके  
अपने से दूर फेंकते हैं ॥५४॥

अस्मिन्महत्पूणे वेऽन्तरिक्षे भवा अधि ॥ तेषां सहस्रयोजने



ऽवधन्वानि तन्मसि ॥ ५५ ॥

अन्तरिक्षस्था रुद्रा उच्यन्ते। इस अन्तरिक्षविषेऽधिश्रितजे रुद्र हैं ति  
न्हों के धनुष० पूर्ववत्। कैसे अन्तरिक्ष कि विशाल। जल हैं जिसमें  
मेघाधारत्वात् ॥ ५५ ॥

नीलग्रीवाः शितिकण्ठा दिवर्ह रुद्रा उपश्रिताः। तेषां

२२ सहस्रयोजने ऽवधन्वानि तन्मसि ॥ ५६ ॥

द्युस्था रुद्रा उच्यन्ते। रुद्र द्युलोकमें स्थित हैं तिन्हों के० कैसे हैं कि श्या  
म हैं ग्रीवा जिन्हों की। श्वेत हैं कण्ठ तिन्हों का। अर्थात् विषग्रास से कुछ  
एक कण्ठ भाग स्याम कुछ एक श्वेत हैं ॥ ५६ ॥

नीलग्रीवाः शितिकण्ठाः शर्वा अधः क्षमाचराः। तेषां

२२ सहस्रयोजने ऽवधन्वानि तन्मसि ॥ ५७ ॥

पातालस्था रुद्रा उच्यन्ते। जे रुद्र पृथ्वी के अयो भाग में चलते हैं वे  
पाताल में वर्तमान हैं। अन्यत्पूर्ववत् ॥ ५७ ॥

ये वृक्षेषु शृण्विञ्जरा नीलग्रीवा विलोहिताः। तेषां २२

सहस्रयोजने ऽवधन्वानि तन्मसि ॥ ५८ ॥

जे रुद्र वृक्षों (अश्वत्थादिकों) में स्थित हैं। कैसे हैं कि शृण्विञ्जरा बालवृ  
क्ष तद्वत् हैं पिञ्जर हरितवर्ण। नील हैं ग्रीवा जिन्हों की। तथा कोई  
लोहित वर्ण हैं अथवा विगत है लोहित (रुधिर) जिन्हों का लोहितपद  
मांसादिकों का उपलक्षण है विगत है लोहितादि धातुएँ अर्थात् ते  
जो मय शरीर हैं अन्य दुक्तम् ॥ ५८ ॥

ये भूतानामधिपतयो विशिखासः कपर्दिनः। तेषां २२ सह

सयोजनेऽवधन्वानि तन्मसि ॥५५॥

जैसे हैं तिन रुद्रों के पूर्ववत् कैसे हैं कि भूतों देवविशेषों के अधिपतयः अर्थात् शरीर के अन्तर्गत होके मनुष्यों के उपद्रव करने वाले तिनहों के पालक हैं। तिनहों में कुछ एक मुण्ड मुण्डे हुए कुछ एक जरा धारी ॥५५॥

ये पथा पथिरक्षस गेलवृदा आयुर्युधः। तेषां सहस्रयो  
जनेऽवधन्वानि तन्मसि ॥६०॥

आर जे रुद्र ऐसे तिनहों के उक्तम्। कैसे कि पथा, लौकिक वैदिक मार्गों के अधिपति इति पूर्वर्चोऽनुषङ्गः। तथा पथिरक्षसः पथो मार्गः ताः नेव अन्यां का रक्षा करते हैं। गेलवृदाः अन्त्रों के समूह वा पृथ्वी की धारण करते हैं अर्थात् अन्न में जन्तुओं के पोषक हैं। आयुर्युधः यावज्जीव युद्ध करने वाले वा पणी करिके युद्ध करते हैं ॥६०॥

ये तीर्थानि प्रचरन्ति मृकाहस्ता निषङ्गिणः। तेषां सह  
स योजनेऽवधन्वानि तन्मसि ॥६१॥

जे रुद्र तीर्थों प्रयाग काशी आदिकों में चलते हैं। कैसे हैं सृक आयुध हैं हाथ में जिन्हों के। खड्ग हैं विद्यमान जिन्हों के। सृकाहस्तत्वेऽपि निषङ्गित्वोक्तिः खड्ग प्राधान्याय। अन्यदुक्तम् ॥६१॥

येऽत्रेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान्। तेषां सहस्रयो  
जनेऽवधन्वानि तन्मसि ॥६२॥

जे रुद्र भुज्यमान अन्त्रों में स्थित होके जनों की विशेषेण ताडन करते अर्थात् धातु वैशम्य करि रोगों को उत्पन्न करते हैं। तथा पात्रों में स्थित क्षीरेदकादि विषे होके क्षीरदि कपीनेवानों को ताडन करते हैं। अन्त्रोत्कभोक्ताओं को व्याधिओं से पीडा करने का तिनहें अधिकार है इति भावः।

यऽएतावन्तश्च भूयाथ्ससश्च दिशो रुद्रा वितस्थिरे । तेषां थ्सह  
स्रयो जनेऽवध्वन्वानि तन्मसि ॥ ६३ ॥

जे रुद्र एतत्प्रमाण जिन्हों का ते अति शयेन बहुत हैं और कहेहु आंसेभी बहुत हैं जेरुद्र दशदिशाओं में व्याप्त हैं तिन्हों के धनुषों पूर्ववत् ॥६३॥

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां वर्षमिषवः । तेभ्यो दशप्राची  
दश दक्षिणा दश प्रतीची दशां दीची दशोर्ध्वाः । तेभ्यो नमोऽ  
स्तु तेनोऽवन्तु तेनो मृडयन्तु तेयं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टितम  
षां जम्भेदध्मः ॥ ६४ ॥

कण्डिका त्रयात्मिकानि त्रीणि यजुषि प्रत्यवरो ह संज्ञानि बहु रुद्रदेव  
त्यानि । त्रिलोकस्था रुद्रा उच्यन्ते । द्युलोकविषं जेरुद्र वर्तते हैं और जि-  
न रुद्रों की वृष्टि ही वाण आयुध स्थानीया है (अतिवृष्ट्यादि करिषा  
णियों को मारते हैं) तिन रुद्रों के अर्थ नमस्कार हो ॥ तिन रुद्रों के अर्थ प्रा-  
गभिमुखः दश अङ्गुलीं करताहं इति शेषः प्राङ्मुखः अञ्जलि करने  
में प्राची मुखः दश अङ्गुलीं होती है । दक्षिणभिमुखः दश अङ्गुलीः  
करताहं । प्रत्यङ्मुखः दश ० ताहं । उत्तगभिमुखः दश ० ॥ ऊपर में दश ०  
अर्थात् अञ्जलि बांध के नमस्कार करताहं ॥ तिन रुद्रों के अर्थ अ-  
ञ्जलि पूर्व नमस्कार हो । ते रुद्र हमें सुख देवें । किंच ते रुद्र जिस पुरु-  
ष को द्वेष करते हैं इति शेषः और हम जिसे द्वेष करते हैं और जो हमें  
द्वेष करता है जिस पुरुष को पूर्वोक्त रुद्रों के जम्भ दंष्ट्रा कण्ठ मुख  
में स्थापन करते हैं अर्थात् हमारे द्विष और द्विष्य नर को पूर्वोक्त रु-  
द्र भक्षण करें और हमें रक्षा करें ॥ ६४ ॥

नदशावाः भयंजनलक्ष्मिना दीपानाम् ।  
दिशानां दृष्टेः शुभम् ॥

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो येऽन्तरिक्षे येषां वात इषवः॥ तेभ्यो दश  
प्राचीर्दश दक्षिण दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः॥ तेभ्यो  
नमोऽस्तु तेनोऽवन्तु तेनो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वे  
ष्टि तमेषां जम्भे दध्मः॥६५॥

जे अन्तरिक्ष में रुद्र वर्ते हैं तिनहों के अर्थ नमस्कार हो। जिनों के वायु  
आयुध स्थानीय है कुवात से अन्न को विनाश करि वात रोग उत्पादन  
करि के जनों को मारते हैं। तिन अन्तरिक्षस्थ वात रुद्रों के अर्थ नम  
स्कार हो शिष्टं व्याख्यातम्॥६५॥

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषां मन्त्र मिषवः॥ तेभ्यो दश  
प्राचीर्दश दक्षिण दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः॥ तेभ्यो  
नमोऽस्तु तेनोऽवन्तु तेनो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो  
द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः॥६६॥

इतिसर्गहितायानवमोऽनुवाकः॥

इति श्रीशुक्लयजुषिमाध्यन्दिनशाखायां वाज

सनेयसर्गहितायां दीर्घपाठे षोडशोऽध्यायः १६

जे रुद्र पृथिवी में वर्ते हैं तिनहों का अन्न (अदनीयवस्तु) आयुध है अ  
थान्न भक्षण कदन्न भक्षण वा चौर्य में प्रवर्ते हैं रोग को उत्पादन  
करि के जनों को मारते हैं तिन पृथिवीस्थ आन्नायुध रुद्रों के अर्थ न  
मस्कार हो। ते हमें रक्षा करें इत्यादि पूर्ववत्॥ एते प्रत्यवरोह मन्त्राः  
अथ प्रत्यवरोहान्जुहोतीति ४.१.१.३२. व्यवहाराय संज्ञाकरणम् ६६

इति गिरिधरभाष्येनवमोऽनुवाकः॥

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीशाखायामेतुव्याघ्रपादान्वयाय

श्वामित्रपुराधिपतिश्रीजयकिशोरदेववर्मात्मगैकिण्यनृपतिगि  
रिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपेगिरिधरभाष्ये शतरुद्रिय होमव  
र्णनो नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

हरिः ओम्

ओंनमोयज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्वह्निरूपकम्

स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं तुमः १

अ०१ अश्मन्तूर्जं पर्वते शिश्रियाणामद्व्यं आषधीभ्यां वन  
स्पतिभ्यां गधिसम्भृतं पयः ॥ तान् द्वयमूर्जं यतमरुतः म  
र्धिराणां ॥ अश्वमेस्तेक्षुन्मयितुः ॥ ऊर्ग्यं द्विष्मन्तं तं शुग्  
ह्वतु ॥१॥ † अ. १०॥ अ. १०॥ अ. १०॥ अ. १०॥ अ. १०॥ अ. १०॥

ओंनमोयज्ञवल्काय

गिरिप्रसादसंज्ञेनाध्यायः सप्तदशोऽधुना

सेकादिजयपर्यन्तो वेददीपं समीर्यते २

षोडशेऽध्याये शतरुद्रियहोमोक्तः सप्तदशे चित्यपरिषकादिमन्त्रा  
उच्यन्ते ॥ का० १८० २१ पक्षकी अपर संधि कक्ष तिसका समीप  
निकक्ष दक्षिणपक्षकी अपर संधि समीप आत्मा भागमें अश्माओं  
को रवि उदक् कुम्भको ले आदि से आरम्भ करि मपक्ष पुछ् अग्नि  
को प्रदक्षिणजलधारा करि समन्तात् अर्थात् अग्नि से सींचे ॥ य  
जुर्मरुद्देवत्यम् ॥ हे मरुतः तिस प्रसिद्ध अन्न और रसको हमारे अर्थतु  
म स्थापन करो देओ ॥ कैसे हो तुम कि सम्यग्दातार ॥ कैसा अन्न और

रसको कि पाषाणं विन्ध्यहिमवदादिकों में शिश्रियाण। तथा सारभूता  
बल का हेतु। यद्वा अश्विन वति पर्ववति मेघविषे जलको आश्रिता-  
वृष्टि सम्पाद्या। तथा जल यवादिका ओषधि ओं अश्वत्थादिवनस्पति  
ओं के सकाश से अधिक संपादित गो द्वारा करि पय और दुग्धको आ-  
श्रित गौजलपी ओषधि वनस्पति भक्षण करि पय दुहाती हैं। अर्थात्  
तू द्विरूपा मेघोत्पजलरूपा गोसमुत्पा पयरूपा इष और ऊर्जको दे-  
ओ ॥ का० १८०२२ सेक के अन्त में अश्विन पर कुम्भ की अस्मिं स्तेक्षुदि-  
ति रवि के मयित इति फिर लिख पुनः दोवारपरिधिश्च नवरे ॥ दे-  
हृ० अश्विदेवत्या हे अश्विन सर्वभक्षक अग्ने तेरे सुभाहो (बहुहवि-  
षा भोज्यत्वात् ॥ कुम्भमादत्ते ॥ दे- हृ० अश्विदेवता हे अश्विन तेरा मा-  
र भाग मेरे विषे हो इति शेषः ॥ का० १८०२४ तिस पाषाण को कुम्भ में  
करि के दक्षिण वेदि ओणियों में पूर्वाभि मुख खडा हो दक्षिण दिशि वि-  
षे अश्व सहित घट को निरस करे ॥ या- हृ० शुक् देवत माभि चारकम्  
हे अग्ने तेरा शुक् (शोक) तिस नरको प्राप्त हो तिस किसे कि हम जिस  
नरको द्वेष करते हैं हम द्वेष विषय तेरा शोक जाओ ॥ १ ॥

इमा मेऽअग्न इष्टका धेनवः सन्त्वेका च दश च दश च श-  
तं च शतं च सहस्रं च सहस्रं चायुतं चायुतं च नियुतं च  
नियुतं च प्रयुतं चार्बुदं च न्युर्वुदं च समुद्रश्च मध्यं चान्तं  
श्च परार्धश्चैता मेऽअग्न इष्टका धेनवः सन्त्वमुत्रा मुखी-  
ल्लोके ॥ २ ॥

का० १८०२४ कुम्भ निरसन के अनन्तर न देखता लौट कर दक्षिण

मरुती वै दयस्य शतः दूतः ४०१२५ शुनः ॥

वेदिश्रोणि समीपमें ईशानाभिमुख खड़ा हो आत्मा (अग्नि) के ऊपर दोनों हाथ पसारिके यावत् स्पर्श करने को समर्थ तावत्स्पर्श करि इमाम इति दो कण्डिकाओं को स्वरसे जपे ॥ अग्नि देवत्यं यजुः हे अग्ने जे इष्टका पञ्चचितिओं में उपहिता हैं ये इष्टका मेरे अर्थ अमिमतफल की दोग्ग्रीधेनुएँ हों तेरे प्रसादसे इस लोक में इति शेषः तिन्हों की संख्या कहिता है एकेत्यादि यहां एकसे आदिले परार्थपर्यन्त शब्दों से उत्तरोत्तर दशगुणिता संख्या कहिये है। एका एकत्व संख्या विशिष्टा वोह दशगुणिता दशसंख्या को प्राप्त होती है वोह दशगुणिता शत होती पूर्व संख्या सहित उत्तर संख्या का ग्रहण आधिक्य के अर्थ शत दश से गुणित सहस्र सहस्र दश से गुणित अयुत अयुत दश से गुणित नियुत नियुत लक्ष को कहिते हैं नियुत दश से गुणित प्रयुत प्रयुत दशलक्ष को कहिते हैं प्रयुत ग्रहण कोटिका उपलक्षक है प्र० कोटि को० प्रवृद्ध अ० न्यवृद्ध १ एक दश १० दश १०० दश १००० सहस्र १०००० अयुत १००००० नियुत १०००००० प्रयुत १००००००० कोटि १०००००००० अर्बुद १००००००००० न्यवृद्ध १०००००००००० खर्व १००००००००००० निखर्व १०००००००००००० महापद्म १००००००००००००० शङ्कु १०००००००००००००० सवृद्ध १०००००००००००००० मध्य १००००००००००००००० अन्त १००००००००००००००० परार्थ

वेदिश्रोणि समीपमें ईशानाभिमुख खड़ा हो आत्मा (अग्नि) के ऊपर दोनों हाथ पसारिके यावत् स्पर्श करने को समर्थ तावत्स्पर्श करि इमाम इति दो कण्डिकाओं को स्वरसे जपे ॥ अग्नि देवत्यं यजुः हे अग्ने जे इष्टका पञ्चचितिओं में उपहिता हैं ये इष्टका मेरे अर्थ अमिमतफल की दोग्ग्रीधेनुएँ हों तेरे प्रसादसे इस लोक में इति शेषः तिन्हों की संख्या कहिता है एकेत्यादि यहां एकसे आदिले परार्थपर्यन्त शब्दों से उत्तरोत्तर दशगुणिता संख्या कहिये है। एका एकत्व संख्या विशिष्टा वोह दशगुणिता दशसंख्या को प्राप्त होती है वोह दशगुणिता शत होती पूर्व संख्या सहित उत्तर संख्या का ग्रहण आधिक्य के अर्थ शत दश से गुणित सहस्र सहस्र दश से गुणित अयुत अयुत दश से गुणित नियुत नियुत लक्ष को कहिते हैं नियुत दश से गुणित प्रयुत प्रयुत दशलक्ष को कहिते हैं प्रयुत ग्रहण कोटिका उपलक्षक है प्र० कोटि को० प्रवृद्ध अ० न्यवृद्ध १ एक दश १० दश १०० दश १००० सहस्र १०००० अयुत १००००० नियुत १०००००० प्रयुत १००००००० कोटि १०००००००० अर्बुद १००००००००० न्यवृद्ध १०००००००००० खर्व १००००००००००० निखर्व १०००००००००००० महापद्म १००००००००००००० शङ्कु १०००००००००००००० सवृद्ध १०००००००००००००० मध्य १००००००००००००००० अन्त १००००००००००००००० परार्थ

इति पूर्वोक्तस्य निगमनम् । एतद्वेनु भवनं कुत्रार्थ्यते तदाह अन्य-  
जन्म विषं तथा स्वर्गमें हें यद्यपि नियत संख्य इष्टका गिनतेहें तथा  
पि मन्त्र सामर्थ्यात् वर्धमाना एकादि पराधीन्त संख्या होती हैं इति  
भावः ॥२॥

ऋतव स्थ ऋतावृधे ऋतुषा स्थ ऋतावृधेः । घृतश्च्युतो  
मधुश्च्युतो विराजो नाम कामदुया अक्षीयमाणः ॥३॥  
बृहती पङ्क्तिर्वा अग्निदेवत्या इष्टका देवत्या वा । हे इष्टका जे तुम एवं  
विधा हो ते मेरे धेनुएँ होंवें इति पूर्वण संबंधः । कैसी कि ऋतवः वस-  
न्तादि रूपाः । ऋत (सत्य वायज) बढाने वाली । वसन्तादि ऋतुओं-  
में खड़ी तिन्हें । घृत स्रवाने वाली । मधु स्रवाने वाली । नामेति प्रसिद्धो-  
विगजः विशेषेण प्रकाशतीहें ते दशलोकस्पृणांभि प्रायमेतत् ।  
कामोंकी पूरण करने वाली । क्षय रहिताः ॥३॥

समुद्रस्य त्वाव कयाग्ने परिव्ययामसि । पावकोऽ अस्म  
भ्यं ठं शिवो भव ॥४॥

का० १८०२१० मण्डूक शैवल वेतस तरुणारवा वंश में बांधकर ति-  
से हस्तेनादाय अग्निक्षेत्र को प्रति ऋचा करि तिससै कर्षे ॥ आद्याया  
दक्षिण ओणेरारभ्य दक्षिणां सं यावत्कर्षति ॥ द्वे गायत्र्या वग्निदेवत्ये-  
अन्त्यो दशकः ॥ हे अग्ने समुद्र (जल) के शैवाल करिके तुम्हें परितः वे-  
ष्टन अर्थात् उपरि भाग में सर्वत्र विकर्षण करतेहें । और तू हमारे  
र्थ शोधक और शान्त हो ॥४॥

हिमस्य त्वा जरायुणाग्ने परिव्ययामसि । पावकोऽ अस्म

इति पुनर्व  
ऋतावृधेः  
मधुश्च्युतो  
विगजः  
विशेषेण  
प्रकाशतीहें  
ते दशलोक  
स्पृणांभि  
प्रायमेतत्  
कामोंकी  
पूरण करने  
वाली । क्षय  
रहिताः ॥३॥



भ्यर्हं शिवो भव ॥५॥

दक्षिण ओण्या द्युत्तर ओण्यन्तं कर्षति ॥ हिम (शीत) के जरायु बद्धुत्प  
ति स्थानीय शेवाल करि हे अग्ने तुमै संवरण करते हैं तू हमारे ॥५॥  
उप जमन्तुप वेतसे चतर नदीष्वा । अग्ने पित्त मपा मसि  
मण्डूकि ताभिरागहि सेमं नो यत्नं पावक वर्णं ॥ शिवं कथि  
उत्तर ओणे रुतरां सपर्यन्तं कर्षति ॥ जगती विष्टु च्वा । हे अग्ने पृथि  
वी विषे प्राप्त हो । तथा वञ्जुल शाखा में प्राप्त हो नदी के विषे उत्पन्न शे  
वाल में प्राप्त हो । मण्डूक्यवका वेतस शाखाः कर्षणार्थं वेणो वद्धाः  
सन्ति तदयं मन्त्रो वदति । कस्मात्त्वेवमस्माभिः शार्थ्यत इत्यत आह  
हे अग्ने तू जलों का पित्त (तेज) है (योयस्या वयवः सतं नहि नस्ति तद्धर्मो  
न भवति) । एवमग्निं संबोध्य मण्डूकी माह हे मण्डूकि मण्डूकी भेक  
स्तस्य स्त्री) तिन पूर्वोक्त जलों के साथ आगमन करि कि जिन्हों का अ  
ग्नि पित्त है जहां तू उत्पन्न हुई जो तू अग्नि की शान्ति के अर्थ इतस्त  
तः चलती है सो हम लोगों के किये चयन लक्षण यज्ञ को अग्नि समान  
तेजस और फल प्रदत्वेन शान्त करि ॥६॥

अपामिदं न्ययनं समुद्रस्य निवेशनम् । अन्यां स्तेः अस्म  
त्तपन्तु हेतयः पावकोऽस्मभ्यर्हं शिवो भव ॥७॥

उत्तरां सा दक्षिणं सं कर्षति ॥ आग्नेयी ब्रह्मती । इस चित्याग्नि स्थान  
वा मण्डूक्यवका वेतस लक्षण उदक प्राप्ति साधन समुद्र (जलों) के गृ  
हस्थानीय (तद्रूप) है अग्ने तेरी ज्वाला हमारे सकाश से हमारे विरोधी  
पुरुषों को तपावे (क्षेत्र देवे) हमारे अर्थ शोधक और शान्त हो ॥७॥

आग्ने पावक रोचिषा मन्द्रपा देवजिह्वया। आ देवान्वक्षि  
यक्षिच ॥८॥

का० १८०२०११ पक्ष पुच्छों को प्रान्त से आरभ्य-आरभ्य आत्मा को  
आत्म संमुख संधि पर्यन्त प्रति ऋचा करि कर्षे। अग्ने इति दक्षिण-  
पक्ष सन इति पुच्छ पावकया इति उत्तरपक्ष को ॥ आग्नेयी गायत्रीव  
सूयव दृष्टा। हे अग्ने हे पावक हे देव रोचन ज्वाला समूह से आहवनी  
यात्मा करि स्थित है इति शेषः। मदनीया जिह्वा होतृवागूण्या करि इ  
ति शेषः। देवताओं को बुला और पूजि दावग्रेरधिकारी होव माहवनी  
य रूपेण हविर्ग्रहणं चात एव स्तूयते ॥८॥

स नः पावक दीदिवोऽग्ने देवाँ २॥ इहा वह। उप य  
र्त्तु हविश्चनः ॥८॥

गाय आग्नेयी मैधा तिथि दृष्टा। हे पावक हे दीप्तिमन् हे अग्ने देव  
ताओं को इस हमारे यज्ञ में बुला और यज्ञ समीप में हमारा हवि देव  
ताओं को प्राप्त करि ॥८॥

पावकया यश्चितयन्त्या कृपा क्षाम नुरुचः उषसो नमा  
नुना। तूर्वेन्न यामन्ने तशस्य नूरणः आ यो घृणे न तत्  
घाणोऽअजरः ॥१०॥

जगती भरद्वाज दृष्टा। जो अग्नि पृथिवी विषे शोममान है। किस कृ  
पा सामर्थ्य कि तिस सामर्थ्य वा दीप्ति से। कैसी कृपा कि पावयित्री नि  
तयन्ती चेतयन्ती वा चित करने वाली तिस दृढ चय करने वाली से।  
रोचने दृष्टान्तः जैसे उष्ण कालाः भानु करि स्वप्रकाशेन रोचें हैं तद्वत्

+ श.वि.म.नि.ष.१६.

किं च जो अग्नि घृणि + दीप्ति करिके समन्तात् निश्चित शोभता है  
इत्यनुषङ्गः नकारश्चार्थः। किं कुर्वन् किं गमन कुशल अश्वकेया  
मन् नियामक युद्ध में जैसे पराये बलों को हिंसा करता वायामन् श  
ब्दः कर्मवाचकः तु अनर्थकम् कर्म विषेत्वरमाण जैसे अश्वके र  
मणीय पद में अध्वर्यु करि आहित है। तथा तदृषाणः पूर्ण हुतिकाप्य  
सा। जरा रहित। अर्थात् जो ऐसा अग्नितिसे कृषते हैं ॥१०॥

अ० २ नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्तेऽऽस्त्वर्चिषे। अन्यां स्तेऽ  
ऽस्मत्तपन्तु हेतयः पावकोऽऽस्मभ्यर्हेशिवो भव ॥११॥

का० १८.३.५. हिरण्य शकल सहित सुकष्य आज्य दधि मधु घृत कुश  
मुष्टि युता पात्री इन दोनों को लेके अध्वर्यु किन्याग्नि को आरोहण  
करे परन्तु ब्रह्मा यजमान अग्नि से दक्षिण बैठें ॥ आग्नेयी बृहती  
लोपा मुद्रा दृष्ट्वा। हे अग्ने तेरे शोचन हेतु तेज के अर्थ नमोऽस्तु। कैसे  
तेज कि हरता है सवरसों को तिस के अर्थ। तेरे पदार्थ प्रकाशक तेज  
के अर्थ नमोऽस्तु। अन्य दुक्तम् ॥११॥

नृषदे वेदेषुषदे वेद्वर्हिषदे वेद्वन सदेवेद्वस्वर्विदे वे-

द ॥१२॥ न-द। अ-अ-द। इ-ब-द। उ-व-द। ऋ-स्व-द। लृ- ॥१२॥

१२।

का० १८.३.६. आरोहण किये पीछे स्वय मातृण विषे पञ्च गृहीत-  
को हो में पञ्च मन्त्रों से नाभिवदिति दक्षिणां स ओणि द्वयोत्तरां सम  
ध्य में हिरण्य को विनदेरेव ॥ पञ्चाग्नेयानि दे-बृ० १५. दे-पं० २.३.४॥  
मनुष्यों में जठराग्निरूप करि तिष्ठे है वोह नृषत् प्राण तिस के अर्थ  
वेद हविर्दत्तम् वेद शब्दः स्वाहाकारार्थः + ॥१॥ जलों विषे और्वरू

+ प्रत्यक्ष वेतद्य स्वाहाकार इत्यादि शात० ४.२.१७. श्रुतेः

प्रेण सीदति ॥२॥ बर्हिषि यज्ञोंमें आहवनीयादिरूपेण तिष्ठे है-  
वा ओषधियोंमें ॥३॥ वन वृक्षसमूह तहां दावाग्नि रूपेण तिष्ठति ॥  
स्वः स्वर्ग में आदित्य रूपेण विद्यते अर्थात् सीदति यद्वा स्वः आदि-  
त्यं विन्दते तस्मै बषडस्तु ॥५॥१२॥

ये देवा देवानां यज्ञिया यज्ञियान् संवत्सरीणमुपे भाग  
मासते । अहुता दो हविषो यज्ञेऽस्मिन्त्स्यं पिबन्तु  
मधुनो घृतस्य ॥१३॥

का. १८.३.७ पात्र में सिक्त दधि मधु घृत को कुशाओं से परिशि-  
त्सहित सपक्ष पुच्छ अग्नि को भीतर और बाहिर प्रोक्षण करे दो ऋ-  
चाओं करिके ॥ जगत्यो प्राणदेवत्ये । ते प्राणरूपा देवा इस चयन स्न-  
क्षण यज्ञ में मधु दधि घृत रूप हवि के भाग को आपही पीवें अर्थात्  
स्वाहाकार समर्पण विना स्वयमेव स्वीकरें । कैसे हैं ते कि अहुतादः अ-  
हुत को भक्षण करते हैं अन्य देवता अग्नि हुत को भक्षण करते हैं परन्तु  
प्राणाः साक्षात् अन्न को खाते हैं इस हेतु अहुताद हैं । ते कौन कि सं-  
वत्सरीण भाग को उपासते हैं संवत्सरं हि भृत्वाग्निश्चीयते इत्या-  
भिप्रायः ॥ कैसे हैं यज्ञार्ह देवताओं के मध्य यज्ञ योग्य दीप्यमान हैं ॥१३॥

ये देवा देवेष्वधि देवत्वमायन्ये ब्रह्मणः पुरणतारोऽस्म-  
स्य । येभ्योनः ऋते पर्वते धाम किं च न नते दिवो न पृ-  
थिव्या अधि स्नुषु ॥१४॥

जे प्राणादिक देवता इन्द्रादिक देवताओं के विषे देवत्व की प्राप्ति हुए इ-  
न्द्रादीनामपि प्राणादेवाः ॥ जे इस इस ब्रह्म (जीव) के आगे में चलते हैं ॥

† प्राण हि प्राणिनां पुरः सराः अपमग्निर्ब्रह्म तस्यैते पुराणतार इति ४.२.१७५ श्रुतेः ।

स्वः स्वर्ग में आदित्य रूपेण विद्यते अर्थात् सीदति यद्वा स्वः आदि-  
त्यं विन्दते तस्मै बषडस्तु ॥५॥१२॥  
ये देवा देवानां यज्ञिया यज्ञियान् संवत्सरीणमुपे भाग  
मासते । अहुता दो हविषो यज्ञेऽस्मिन्त्स्यं पिबन्तु  
मधुनो घृतस्य ॥१३॥  
का. १८.३.७ पात्र में सिक्त दधि मधु घृत को कुशाओं से परिशि-  
त्सहित सपक्ष पुच्छ अग्नि को भीतर और बाहिर प्रोक्षण करे दो ऋ-  
चाओं करिके ॥ जगत्यो प्राणदेवत्ये । ते प्राणरूपा देवा इस चयन स्न-  
क्षण यज्ञ में मधु दधि घृत रूप हवि के भाग को आपही पीवें अर्थात्  
स्वाहाकार समर्पण विना स्वयमेव स्वीकरें । कैसे हैं ते कि अहुतादः अ-  
हुत को भक्षण करते हैं अन्य देवता अग्नि हुत को भक्षण करते हैं परन्तु  
प्राणाः साक्षात् अन्न को खाते हैं इस हेतु अहुताद हैं । ते कौन कि सं-  
वत्सरीण भाग को उपासते हैं संवत्सरं हि भृत्वाग्निश्चीयते इत्या-  
भिप्रायः ॥ कैसे हैं यज्ञार्ह देवताओं के मध्य यज्ञ योग्य दीप्यमान हैं ॥१३॥  
ये देवा देवेष्वधि देवत्वमायन्ये ब्रह्मणः पुरणतारोऽस्म-  
स्य । येभ्योनः ऋते पर्वते धाम किं च न नते दिवो न पृ-  
थिव्या अधि स्नुषु ॥१४॥  
जे प्राणादिक देवता इन्द्रादिक देवताओं के विषे देवत्व की प्राप्ति हुए इ-  
न्द्रादीनामपि प्राणादेवाः ॥ जे इस इस ब्रह्म (जीव) के आगे में चलते हैं ॥

प्राणों विना चीयमात अग्नि वहने को नहीं समर्थ होता। किंचजि  
न प्राणों विना शरीर कोई भी चेष्टा नहीं करता। इत्यम्भूता जे प्राणा  
देवा ते पुनः कहां हैं तत्राह तेषाण रूपा देवा स्वर्ग में नहीं हैं पृथिवी  
में ते नहीं हैं + यद्वा दिवी के प्रदेशों में न पृथिवी के प्रदेशों में न। किंत  
हि कि स्नुषु अधि स्नु प्रक्षरणे स्त्रीताओं चक्षुरादिकों प्राणायतनों  
में ते अधिश्रत्य वर्ते हैं तेषूपलभ्यन्ते तेषां स विशिष्टः प्रदेशः ॥१४॥  
प्राणदा अपानदा व्यानदा वर्चोदा वरिवोदाः। अन्यो  
स्तेऽस्मत्तयन्तु हेतयः पावकोऽस्मभ्यं ठं शिवो-  
भव ॥१५॥

का० १८.३.८. शोक्षणा के अनन्तर अग्नि से उत्तरे ॥ अग्निदेवत्या  
पङ्क्तिः वहती वा। हे अग्ने तेरी हेतयः (ज्वाला) हमसे अन्यो को तपें और तू  
हमारे अर्थ पावक और शिव हो। कैसा है तू कि प्राणों को यजमान  
के अर्थ देता है अपान को दे० व्यान सर्वशरीर संचारी वायु को दे०  
वर्च बल को दे० धन को देता है ॥१५॥

अ० ३ अग्निस्तिग्ने न शोचिषा यासद्विश्वं न्युत्रिणम्। अग्नि  
र्नो वनते रयिम् ॥१६॥

का० १८.३.१२. शाला में आकर पञ्चगृहीत आज्य को शालाद्वारी  
य अग्नि में होमें ॥ आग्नेयी गायत्री भरद्वाजहृष्टा। अग्नि सवराक्ष  
स को निरन्तर क्षीण करें। किस करिके कि तीक्ष्ण तेज से। किंच अ  
ग्नि हमारे अर्थ धन को देवे ॥१६॥

य इमा विश्वा भुवनानि जुह्व हस्विर्होता न्यसी दत्तिता

नः॥ स आसिषा इविणमिच्छमानः प्रथमं छन्द्वरां ॥  
आविवेश ॥ १७ ॥

का० १०३०१२ पञ्चगृहीत होम के अनन्तर षोडश गृहीत आज्य  
को जुह्वामें करिके जिसके अर्ध को अनुवाक शेष यद्रमाविश्वेत्या  
रभ्य विहव्या यथा सदित्यन्तोऽष्टर्च करि शालाद्वारीमें ही होमें ॥ भु  
वन पुत्रविश्व कर्म दृष्टा विश्व कर्म देवत्याः षोडश त्रिष्टुभः ॥ प्रजाः  
संहरन्तं सृजन्तं विश्व कर्मणं पश्यन्त्यभिः कथयति । जो विश्व कर्म दृ  
न सब भूत जातों के संहार किये सन् स्वयं स्थित होता हुआ । कैसा है कि  
ऋषिः अतीन्द्रिय दृष्टा सर्वज्ञ होता संहार रूप होम का कर्ता । हम  
प्राणियों का पिता जनक अर्थात् जो परमेश्वर प्रलय कालमें सब  
लोकों को संहार करिके स्वयं स्थितवान् । वोह तादृश परमेश्वर आ  
शिषाभिलाषण वद्भुत होंउं इत्येवं रूपेण पुनः सिसृक्षा रूपेण जग  
द्रूप धन को अपेक्षमाणः अवगन् अभिव्यक्त उपाधिओं को जीव  
रूपेण प्रविष्ट हुआ । कैसा कि प्रथम एक अद्वितीय स्वरूप को आच्छाद  
न करता प्रविष्ट हुआ ।

किंस्विदासो दधिष्ठानभारम्भणं कतमत्स्वित्कथासीत् ।  
यतो भूमिं जनयन् विश्वकर्मा विधाभोगे न्महिना वि  
श्वचक्षाः ॥ १८ ॥

अथेश्वरो यथा जगत्सृजति तत्प्रश्नोत्तराभ्यामाह । लोकमें जैसे घटा  
दिबनाने की इच्छा करता कुलाल (कुम्हार) गृहादिक स्थान को अधि  
ष्ठित हो मृद्रूप आरम्भ कहव्य और चक्रादि उपयोगी वस्तु करि घ

\* सोऽकामयत बहुभ्यां प्रजापेयसत्रयोऽतप्यत स तपसा द्वाद्वहं सर्वमसृजत यदिदं किंच तत्सृष्टा तदेवा  
नु प्राविशदित्यादि श्रुतेः ।

न किंच न भिष्यत संदं  
आमीनां  
एवाग्र  
इदमेक  
आत्मावा  
तथा चापनिष्ठः  
सोम्यदमात्र  
आसीदेकमेवाहितीयमित्याद्याः

रादिक निष्पादन करता है ईश्वरस्य तदाक्षिप्यते। स्वदिति वितर्के-  
द्यावा भूमी सृजते हुए विश्व कर्मा का अधिष्ठान क्या होता हुआ क्यों  
कि विना स्थान के कुछ भी नहीं कर सकते। स्वदिति वितर्के आरम्भण  
आरम्भ करते हैं जिस से वोह उपादान कारण जैसे मृदा घटादिकों-  
का और कथा (क्रिया) किस प्रकार थी अर्थात् निमित्त कारण भी क्या  
था दण्ड चक्रसलिल सूत्रादिकों से घटादिक निष्पादन होते हैं तत्स्था-  
नीय क्या था। कि जिस काल में विश्व कर्मा भूमि और स्वर्ग को उत्पन्न  
करते सन् अपनी सामर्थ्य करके द्यावा पृथिवी आछादित करता हु-  
आ। कैसे है कि विश्व चक्षाः सर्वदृष्टा अतीत आगत वर्तमान का  
लों का युगपद् दृष्टा अर्थात् अनन्यशक्तिः ॥१८॥

विश्वतश्चरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्या-  
त्। सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावा भूमी जनयन्द-  
व एकः ॥१९॥

उत्तर माह एकः (असहायः) देवः (विश्व कर्मा) द्यावा भूमी उत्पन्न क-  
रते बाहुस्थानीयों धर्मा धर्मों से संयोग को प्राप्त होता है और पतत्रों  
(पतनशीलों) अनित्यों पञ्चभूतों से संयोग -- ना है अर्थात् धर्मा ध-  
र्मरूप निमित्तों और पञ्चभूतरूप उपादानों से साधना नन्तर वि-  
नेव सब को सृजता है यद्वा धर्मा धर्माभ्यां भूतेश्च संधमति संगम्य  
ति जीवान्। कैसे है कि सर्वतः हंचक्षुर्एजिसकी। सर्वतो मुख हैं जि-  
सके। सर्वतो भुजा हैं जि० और सर्वतो चरण जि० परमेश्वरस्य स्त्री  
प्राणत्मकत्वाद्यस्य यस्य आग्निनीये चक्षुरादयस्ते तदुपाधिकस्य

परमेश्वरस्यैवेति सर्वत्र चक्षुर्गदयः सम्पद्यन्त इत्यर्थः ॥१५॥

किञ्च सिद्धं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावा पृथिवी निष्ठत  
क्षुः । मनीषिणो मनसा पृच्छते दुतद्य दध्यतिष्ठद्भुवना  
नि धारयन् ॥ २० ॥

पुनरपि प्रश्नः । स्वित्ति बितर्के वोह वन कहांथा और वोह वृक्ष कहां  
हुआथा कि जिस वृक्ष और वन से विश्व कर्मा द्यावा पृथिवी गठता-  
छोलता हुआ नहीं तैसा वृक्ष और वन सम्भव है । अर्थात् लोक में गृ-  
हादि निर्माण को इच्छा करता किसी वन में किसी वृक्ष को छेदिकर  
तक्षाणादि से स्तम्भादिकों को करता है यहां वोह नहीं है । किंच हे विद्वां-  
मः मनसा पर्या लोच्य तदपि तुमको पूछता है वोह क्या कि भुवनों को  
धारण करते जिस स्थान को स्थित हुआथा तदपि पृच्छत । कुम्भकाण-  
दि गृहादिक को अधिष्ठित होके घटादिक करता है तदधिष्ठानमपि पृ-  
च्छत ऊर्णनाभि वदय मात्मारम्भण इति भावः ॥ अस्योत्तरं तेतिरी-  
ये कृष्णाय जु ब्राह्मणे २ काण्डे ७ प्रपाठके ६ ७ अनुवाकयो सूचित  
म् माध्यन्दिनीयायानास्ति ॥ ब्रह्मवनं ब्रह्म स वृक्ष आसीत् ६ यतो  
द्यावा पृथिवी निष्ठ तक्षुः । मनीषिणो मनसा विब्रवीमिव ॥ ब्रह्माध्य-  
तिष्ठद्भुवनानि धारयन् ॥ ७ ॥ २० ॥

याते धामानि परमाणि यावमा या मध्यमा विश्वक-  
र्मेनुतेमा । शिक्षा सर्विभ्यो हविषि स्वधावः स्वयं य-  
जस्व तन्व वृधानः ॥ २१ ॥

हे विश्व कर्मन् हे हविलक्षणान्नवान् तेरेजे उत्कृष्ट स्थान और जे-



छोटे स्थान मध्यमस्थान इन्हें सखिओं (यजमानों) के अर्थ दे। कउ  
पकार इति चेत् यजमान संबंधिनी हविके उपस्थित हुए सति अपने  
शरीर को बढा कर आपही पूजि। हम पूजा करते हैं यह कहिने को  
असमर्थ हैं मनुष्य कहां तुम्हें पूजने को समर्थ है इस हेतु कहिते  
हैं कि आपही पूजि ॥ २१ ॥

विश्वकर्महविषा वावृधानः स्वयं यजस्व पृथिवीमुतथा  
म्। मुह्यन्त्वन्येऽभितः सपत्नी इहास्माकं मधवा सू  
रिरस्तु ॥ २२ ॥

हैं विश्वकर्मन् मेरे दिये सैं हर्ष हुए सन् पृथिव्याश्रित भूतों (प्राणियों) और  
रथुलोकाश्रित भूतों को मेरे अनुग्रह के अर्थ आप पूजि। किंचित्तेरे प्रसा  
द सैं अन्य स्थान में स्थित प्राचु मोह को प्राप्त हों वें किंच इस यज्ञ में  
इन्द्र हमारे को सूरिः आत्मज्ञानोपदेष्टा हो ॥ २२ ॥

वाचस्पतिं विश्वकर्माण मृतये मनोजुवं वाजिऽअद्या हु  
वेम। सनो विश्वानि हवै नानि जोषद्विष्व शम्भूरवे  
साधुकर्मा ॥ २३ ॥

विश्वकर्महविषा वर्धनेन चातारमिन्द्रमकृणोरवध्य  
म्। तस्मै विष्णुः समन्ममन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो  
यथासत् ॥ २४ ॥

दे ऋचौ व्याख्याते ७-४५-४६ ॥ २३ ॥ २४ ॥

अ० ४ चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमेनेऽजन्तमन्मा  
ने। यदेदन्ता अददहन्त पूर्वे आदिहद्या वा पृथिवी

अप्रयेताम् ॥ २५ ॥

का०१८.३.१३. अष्टर्चेन षोडश गृहीत के अपरार्धको होमें ॥ यदा इ  
त-यदैव पहिलें वसिष्ठादिक मुनिद्यावा भूमिके अन्तों की हटी करते  
हुए। द्यावा पृथिवी की हटता के अनन्तर मेव द्यावा पृथिवी को पृथु करते  
हुए। तदा द्यावा पृथिवी के प्रथनानन्तर चक्षुरादिक इन्द्रियों का पा  
लक विश्वकर्मा मन से धीर हो निश्चित इन द्यावा पृथिवी ओं प्रति उद  
क को उत्पन्न करता हटता के अर्थ दृष्टि करता हुआ। क्या कर के कि  
नम्र मान द्यावा पृथिवी को थांभ करि इति शेषः अर्थात् जगत के अ  
नुग्रह के अर्थ द्यावा पृथिवी को थांभ के ॥ २५ ॥

विश्वकर्मा विमना आहिहाया धाता विधाता परमोत संहक  
तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्त ऋषीन्पर एक  
माहुः ॥ २६ ॥

जिस लोक में सप्त ऋषि विश्वकर्मा सहित एकत्व को प्राप्त हैं तिस लोक में  
ते पुरुष इष्टों (अभिलषित वस्तुओं) इष्ट (आहुति रसभूत अन्न) सहित भ  
ले प्रकार पुष्ट होते हैं अर्थात् ते विश्वकर्मा लोक में इष्ट भोगों को प्राप्त  
होते हैं। ते कौन कि जिन्हें का विश्वकर्मा सम्यग्द्रष्टा अर्थात् विश्वकर्  
मेद्रष्टा सुखी हों बें। कैसा है विश्वकर्मा कि विमना सर्व कर्मज्ञ। और  
नभोष द्यापकः वा संहर्ता धाता (योष्टा) स्थितिकर्ता। उत्पादक। स  
वों से उक्त। एवं विधो विश्वकर्मा येषां द्रष्टा ते मुच्यन्ते भक्तानेव  
पश्यति तस्माद्भक्तिः कार्येत्यर्थः ॥ २६ ॥

योनः पिता जनिता यो विधाता धमानि वेद भुवनानि वि

आ। यो देवानां नामधा एक एव तर्हि संप्रश्नं भुवना य-  
न्त्यन्या ॥ २७ ॥

जो विश्व कर्म हमारा पालक उत्पादक और जो विशेषेण धारक :  
सेतु : और जो सब स्थानों और भूतजातों को जानता है । और जो एक (अ-  
द्वितीय एव सन् देवताओं के नाम करता है + तस्मात् अन्य भूतजा-  
त संप्रश्न (भले प्रकार प्रश्न) जिसका क्रियामें जैसे तैसे प्रलय काल  
में तिस विश्व कर्म के एकत्व को प्राप्त होते हैं यद्वा संप्रश्न भले प्रका-  
र अपने अधिकार को पूर्ण कर भूतजात चलते हैं स एव स्वाधिका-  
रों में नियुक्त करता है इति भावः ॥ २७ ॥

तः आर्यं जन्तुं द्रविणार्हं समस्माः ऋषयः पूर्वं जरितारो  
न भूना । असूर्ते रजसि निषन्ते ये भूतानि समकृण्वन्  
न्निमानि ॥ २८ ॥

ते पूर्व विश्व कर्म करि सृजे वसिष्ठादिक ऋषि इस भूतग्राम के अर्थ  
द्रविण जल लक्षण वा भोग जात को आभिमुख्येन देते हैं । कैसे दे-  
ते हैं कि न भूना न बाहुल्य करि किंतु युक्ति अर्थात् कामवर्षित्वसे ।  
कैसे हैं कि जरितारः स्तोतारः । ते कौन कि जे ऋषि इन भूतों को सृ-  
जते हैं । अर्थात् तिन्हें जल देकर जिलाते हैं । कैसे हैं कि असूर्ते, सप्तद-  
शावयबलिङ्ग शरीर करि ईरित । तथा अन्तरिक्ष लोक में स्थित ।  
कैसे अन्तरिक्ष कि सूर्ते, विस्तीर्ण ॥ २८ ॥

परो दिवा पर एना पृथिव्या परो देवेभिरसुरैर्यदस्ति ।  
कथं स्विहर्भं प्रथमं दध्ना आपो यत्र देवाः समपश्यन्त

पूर्व ॥ २४ ॥

प्रश्नोत्तररूपामन्त्राः ब्रह्मविषयप्रश्नः॥ विभक्तिव्यत्ययबाहुल्यमन्त्रम  
न्त्रे। जोहैं हृदयमें इति शेषः। जोईश्वरतत्त्वहृत्पुण्डरीकमेंहैं वोहद्यु  
लोकसे दूरमेंतिष्ठैहैं। इसपृथिवीसेभीदूरमें। देवताओंऔरअसु  
रोंसेदूरमें दूरत्वं विलक्षणत्वम् अर्थात्सबजगतके विलक्षणत्व  
मेंगुरुशास्त्रविमुखोंसेनहीं जानियैहैं। किंचस्विदिति वितर्कजलनें  
प्रथम किसगर्भकोधारणकिया। प्रथमोत्पन्ना देवताओं(वशिष्ठादि  
कों)नेजिसगर्भमेंदेखा जगत् इति शेषः॥ भावयहहै कि स्थूलहीय  
ह जगदाधारगर्भरूप नहीं जाना जाता तो अत्यन्त सूक्ष्म तत्त्वको  
जानना कहाँ इसमेंतो कुछ कहनाही नहीं॥२४॥

तमिद्गर्भं त्रयमं दध्रुः प्रापो यत्र देवाः समगच्छन्त वि  
श्वे । अजस्य नाभावध्येकमपितं यस्मिन्विश्वानिभुव  
नानि तस्युः ॥३०॥

प्रत्युत्तरमाह। जलनें तिसी गर्भ को धारण किया कि जिस कारण भू  
त गर्भ में सब देवता संगत हुए वर्तते हैं। ननु तिस गर्भ का कौन आधार  
है तत्राह। जन्म रहित परमेश्वर के नाभिस्थानीय स्वरूप के मध्य  
में एक अविभक्त अलन्य भूत किंचिद्बीज गर्भ रूप स्थापित है  
कि जिस बीज विषे सब भूत जात स्थित हैं + स एव सर्वा अयो ननु  
तस्याप्यन्यः आश्रया इति भावः ॥ ३० ॥

नतं विहाय य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव।  
नीहारेण प्राहृता जल्य्या चासुतप्य उक्थ्य शासश्चरन्ति॥३२॥

॥ अथपणव समजी दोतासुवीजः मयाक्षिप्य नृणां तद्विपत्तयान्तर्मुक्तये समग्रसमर्पयामि तिसृषु ॥ १८ ॥

ब्रह्मानीमुपदिशति। जिसविश्वकमाने ये भूतजात उत्पन्न कियेति सै  
 हे जीवों तुमने न जाना। ननु मैं देव हूँ यज्ञ दत्त हूँ यह हमने  
 अपने को जाना इति चेत् न नहीं मैं प्रत्यय गम्य जीव रूप पर मे  
 श्वर तत्त्व हूँ किंतु हम तुम प्रत्यय गम्य जीवों के अभ्यन्तर वास्तव  
 रूप अन्य है मुरु प्रत्यय से अतिरिक्त सर्वावदान वेद्य ईश्वर तत्त्व  
 विद्यमान है। जीवरूप वत् वोह कहीं भी न जाना इति चेत् तुम ईदृश  
 प्रवर्त हूँ इस हेतु न जाना। कैसे हो कि नीहार (कुहर) सदृश अज्ञान  
 करि आहतत्व से न जाना जैसे नीहार न अत्यन्त असत् दृष्टिके आ  
 वरकत्व से और न अत्यन्त सत् काष्ठ पाषाणादिवत् रोध करने  
 समर्थ अयोग्यत्व से एवं अज्ञान भी नात्यन्त मसत् ईश्वर तत्त्वा  
 वरकत्वात् नापि सत् बोध मात्र निवर्त्यत्वात् ईदृश अनिवेचनी  
 य अज्ञान करि तुम सब जीव प्रवर्त हूँ। न केवल नीहार और ज  
 ल्पन अर्थात् मैं देवता हूँ मनुष्य हूँ मेरा यह घर क्षेत्र इत्यादि अ  
 नृत जल्पन से व्याप्त हूँ। किंच असु तपः कोई क प्रकार करि  
 प्राणों को भरि पोषि कै तितने ही से तत्र ननु परमेश्वर तत्त्व विचार  
 ने को प्रवर्त हैं। नहीं है केवल ऐहिक भोग से तृप्त किंतु उक्थ शासः  
 परलोक भोग संपादन को यज्ञों में शस्त्र स्तुति करते हैं अर्थात् तु  
 म ऐहिक भोग प्रवृत्तों अज्ञान मिथ्या ज्ञान पराधीनों का तत्त्व ज्ञान  
 नहीं हैं ॥ ३१ ॥

विश्वकर्मा ह्यजनिष्ठ देव आदि ह्यन्धर्वोऽभवाद् द्वितीयः ।  
 तृतीयः पिता जनितो षधीनामपांगर्भं व्युद्धात्पुरुषा ॥ ३२ ॥

ब्रह्माण्डमध्यगता नामुत्पत्तिरुच्यते। ब्रह्माण्डमध्यमें विश्वकर्मो देवति  
र्यगादि जगद्देवकर्ता सत्यलोकवासी चतुर्मुखदेव। आदित्यान्तरपुरु  
षरूपेण उत्पन्न हुआ। अनन्तर मंत्र तिस्र अपेक्षा करि दूसरे गन्धर्व  
वाचा वा पृथिवी को धारण करता अग्नि अथवा गानातु गन्धर्व +  
उत्पन्न हुआ। पिता पालयिता ओषधी ओंका उत्पादक पर्जन्य  
पूर्वोक्त दोनों की अपेक्षासे तीसरे हुआ सो पर्जन्य उत्पन्न होकर आहु  
ति परिणामभूतों के गर्भको व्यदधातु धारण करता वा करता है। कैसे ग  
र्भको कि बहूतों के रक्षक वा बहूत प्रकार ॥३३॥ वैश्वकर्मणोमः  
समाप्तः ॥

अयोः एता  
हृग्निर्वासे  
पृथिवीपृथ  
मनेः सत्यो  
मन्यमानो  
गायदित्या  
दिश्रुतेः।

अ० ५ आसुः शिशोः नृषभो नभीमो घनाघनः क्षोभाणश्चर्ष  
णीनाम्। मङ्गलानोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अज  
यत्साकमिन्द्रः ॥३३॥

का० ११०१०४०१०० अग्नि चयन में इध्मको दीपन करि निति प्र  
ति नीयमान आहवनीय विषे ब्रह्मा प्रतिरथसूक्तकी द्वादशशक्त  
चाएँ जपता रक्षितानः चलै ॥ अप्रतिरथदृष्टा इन्द्रदेवत्या द्वाद  
विष्टुभः। इन्द्र शतसंख्याकाः शत्रु सेनाः एकप्रयत्न करिके ही जीत  
ता है। कैसे है इन्द्र कि शीघ्रगामी। वज्रको तीक्ष्ण करता है। वृषभ  
इव भयंकरः। घनाघनः (शत्रुओं का अतिशयेन घातक वाहन होने  
तिवक्ता वा वृष्टिकर्तृ मेघरूपामनुष्यों का चलानेवाला। संक्रन्दनः  
परभयहेतु ध्वनि जिसकी वा शत्रुओं का समाह्वाता। अनिमिषः न  
हीं है निमेष जिसके वोह यद्वा अत्यन्त सावधान। एकवीरः अन्य

निरपेक्षं शत्रुओं को एक एव जेतं समर्थः ॥ ३३ ॥

संकन्देनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्श्ववनेन धृष्णुना  
तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषु हस्तेन वृषा ॥ ३४ ॥  
हे योद्धा मनुष्य औ इन्द्र करिके तुम तिस पणयेवल को जीतौ (वशीकरौ)  
और वशी करिके विनाश करौ। कैसे इन्द्र कि शब्दकारी। एकचित्त।  
जयनशील। युद्धकारी। अजयी। भीतिरहित वाणाद्या युधो पेत।  
कामोंके वर्षक ॥ ३४ ॥

स इषु हस्तेः स निषङ्गिभिर्वशी सत्स्रष्टा स युध इ  
न्द्रो गणेन। सर्षु स्रष्टु जित्सो मया बाहु शार्धु ग्रधन्वा  
प्रति हिताभिरस्ता ॥ ३५ ॥

वोह इन्द्र हमें रक्षा करे इति शेषः। युद्ध के अर्थ संसर्गकर्ता। वशी-  
रिपुओं को वश करता वाजनप्रिय वा स्वतन्त्र वा निगृहीतारिषद्भ  
र्गवा ईश्वर। गणेन रिपु समूह के साथ युद्ध करता है। युद्ध के अर्थ  
संगतरिपुओं को जीतता है। यजमानों के यागमें सोमपान कर्ता। बा-  
हुवलोपेत अर्थात् संयोगितनिरपेक्ष। अपने धनुष करि बाणोंसे क्षे-  
प्ता अर्थात् रिपुनाशयिता ॥ ३५ ॥

बृहस्पते परिदीया रथेन रक्षो हामित्रा नपबाधमानः। प्र  
भञ्जन्तेनाः प्रमृणो युधा जयन्तस्माकं मेध्यविता र-  
थानाम् ॥ ३६ ॥

हे वृस्पते + तू रथ करिके सर्वतः चलि और चलकर हमारे रथोंका  
रक्षक हो। कैसे है तू कि राक्षसों को मारने वाला शत्रुओंको पीछ

\* बृहस्पतिरित्युः वाग्वै ब्रह्मती तस्या एवमितिः व्याकरण कृते तादिन्द्रस्य वाक्यतित्वमिन्द्रस्य पुरोहि-  
तत्वेन वा बृहस्पतिरेव स्मृत्यते।

देता। परकीया सेना को भग्न करता। हिंसकों को जीतता ॥ ३६ ॥

बलविज्ञाय स्थविरः प्रवीरः सहस्वान्वाजी सहमान उग्रः।  
अभिबीरोऽभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमार्तिष्ठ-  
गोवित् ॥ ३७ ॥

हे इन्द्र तू जयन शील रथ को आरोहण कर। कैसा है तू कि पराये बल  
को विशेषण जानता है यद्वा बल करि जानिये है। स्थविरः पुरातन  
सर्वानु शासक। शूर। बलवान्। अन्नवान्। शत्रुओं को अभिभवन्।  
युद्धों में क्रूर। अभितः शूर हैं जिसके। अभितः परिचारिक प्राणी हैं  
जिसके। बल से उत्पन्न +। स्तुति गिरा को जानता ॥ ३७ ॥

गोत्रमिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमन्म प्रमृणन्तमोज-  
सा। दुर्महं सजाता अनु वीर्यध्वमिन्द्रं सखायोऽअनु-  
सर्धं रभध्वम् ॥ ३८ ॥

हे सजाताः अर्थात् समान हैं जन्म जिन्हें का ते समान जन्मानः स  
खायो (देवताओं) इस इन्द्र को वीरकर्मकुर्वाणं अनुगम्य वीरकर्म  
करि प्रोत्साहयत। वेग कुर्वाणं करो। कैसे इन्द्र को कि गोत्रमिदं-  
गोत्र (असुरकुल) को भेदता यद्वा गा जल से त्रायते गोत्र (मेघ) ति  
स के भेत्तार चाचा को जानने वाले। वज्रबाहुओं में जिसके। संग्रामको  
जीतने वाले। बल करि शत्रुओं को हिंसा करते ॥ ३८ ॥

अभि गोत्राणि सहसा गहमानोऽद्यो वीरः शतमन्युरि-  
न्द्रः॥ दुश्च वनः पृतना षाड्युध्योऽस्माकं सेना अवनु-  
प्र युत्सु ॥ ३९ ॥

न स न्यस्यसि जित इन्द्र बलः स्वात



इन्द्र युद्ध विषे हमारी सेना प्रकर्षेण रक्षा करे। कैसा है इन्द्र कि गोत्रों  
असुर कुलों वा मेघ बृन्दों को अभिगाहमानः। दया रहित। विक्रान्त  
शतमन्युः असंख्य क्रोध जिसका वाशतयज्ञ। अप्रच्यव्यः। संग्राम  
को अभिभव करता। अयुध्यः योद्धुं अप्राक्यः नास्ति युध्यः  
प्रतियोधास्येति वा ॥३६॥

इन्द्र आसा नेता बृहस्पतिर्दक्षिण यज्ञः पुर एतु सो-  
मेः। देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो य-  
न्वग्रम् ॥४०॥

इन्द्र और बृहस्पति इन देवसेनाओं का नेता प्रणेता हो इति शेषः  
यज्ञः (यज्ञपुरुष विष्णु) दक्षिणतः चले सोम आगे चले। मरुतदेव-  
ताओं के गणसेना के अग्रभाग में चले। कैसी देवसेनाओं के किश-  
तुओं को मर्दन करती तथा विजयमाना ॥४०॥

इन्द्रस्य वृष्णे बरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्ध-  
उग्रम्। महामनसां भुवनच्यवानां धीषो देवानां जय-  
ता मुदस्थात् ॥४१॥

कामवर्षने वाले इन्द्र राजा बरुण द्वाय आदित्यों और मरुतों इन  
देवताओं का शर्ध बल-गजतुरगरथपत्यात्मक सैन्य का घोष-  
जितं जितं यह शब्द उठा अर्थात् जीत जीत यह कहता इन्द्रादिसे-  
न्यसे उठा कैसे देवताओं कि महन्मन जिन्हों का अर्थात् पुद्ग-  
स्थिरचितों। तथा भुवन (लोक) च्यावन समर्थों। विजयमानों  
का ॥४१॥

उद्धर्षय मघन्नायुधान्युत्सत्वनं मामकानां मनोऽथ  
सिं । उद्धृवहन्वाजिनां वाजिनान्युद्धृथानां जयतां या  
न्तु घोषाः ॥४२॥

हे मघवन् (धनवन्) इन्द्र आयुधों को उद्धृत हर्षाणि करि और मेरे प्रा  
णियों के मन हर्ष युक्त करि । हे वृवहन् (वैरिघातिन्) अश्वों के शीघ्र  
गमन उत्कृष्ट करि । किंच विजय मान रथों के शब्द प्रसरे ॥४२॥

अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता ज  
यन्तु । अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्तस्मां २ ॥ ३ ॥ देवा अव  
ता हवेषु ॥४३॥

शत्रुओं की ध्वजाओं के संयुक्त होने में इन्द्र हमारा रक्षक हो शीतंश  
षः । जे हमारै वाण प्रयुक्त हैं ते पर सैन्यों की जीतें । हमारे जे शूर हैं ते प  
राये भटों से उत्कृष्ट हों । हे देवताओं हवों विषं हमें रक्षा करो ॥४३॥

अमीषो चित्तं प्रति लोभयन्ती गृहाणान्यप्ये परेहि ।  
अभि प्रेहि निर्दह हत्सु शोकै रन्ध्रेना मित्रा स्तमसा स  
चन्ताम् ॥४४॥

हे अश्वे अपगमन करने वाली सुख और प्राणों को इन्द्र सेना संबंधि  
नी शत्रुओं के चित्तों को मोह करने वाली शत्रु गात्रों को ग्रहण  
करि फिर अन्यरिपुओं के ग्रहण की शत्रु संघ प्रति जाके तिन्हें के  
हृदयों को शोक (धन पुत्र नाशानि निमित्त) से जला । किंच शत्रु  
लोग गाढा धकार करि संयुक्त हो ॥४४॥ द्वादशैन्द्र्यः समाप्ताः ॥

अवसृष्टा परापत शरव्ये ब्रह्मसर्गशिते । गच्छामित्रान्

पद्यस्व मामीषां कं चनोच्छिषः॥४५॥

इत ऋक् तुष्टयस्य विनियोगः कात्यायनेनोक्तः॥ इयं मिषु देवत्या  
नुष्टुप्। हे शरव्ये (हिंसिका शरमयी हेति) ब्राह्मण (मन्त्र) करिके तीक्ष्ण  
कीहुई हम करि छोड़ी सहसा पराई सैन्य विषे गिरि। और गिरि करि  
शत्रुओं को प्राप्त हो और प्राप्त होके शत्रु शरीरों में प्रवेश करि शत्रुओं  
के मध्य में किसी पुरुष को मत छोड़ि अर्थात् सब को मारि॥४५॥

प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु। उग्रा वः सन्तु वा  
हवोऽनाधृष्या यथासंथ॥४६॥

योद्ध देवत्यानुष्टुप् योद्धन्स्तीति। हे नर (हमारे योद्धा) औ तुम पराई  
सैन्य प्रति प्रकर्षण जाओ तहां विजय पाओ इन्द्र तुम्हारे अर्थ सुख  
देवें। किंच जैसे तुम किसी से तिरस्कार किये न जाओ। तैसें भुज दण्ड  
उग्रा युध हो॥४६॥

असौ या सेना मरुतः परेषामभ्येति न औजसा स्पर्ध  
माना। तां गृह्णत तमसा पव्रते न यथामीऽअन्योऽअ  
न्यं न जानन्॥४७॥

मरु देवत्या त्रिष्टुप्। हे मरुत औ जो (प्रसिद्धा) सेना इन शत्रुओं की ह  
मारे को समन्तात् आती है। कैसी कि बल करिके स्पर्धमाना ति  
स सेना को अंधकार करिके तुम संवृत करो। तैसें संवृत करो जैसे  
निक लोग परस्पर न जानें। कैसे तम करिके कि जिस करि व्याप्तों  
का कर्म नाश हो अर्थात् तैसें तमसे संवृत करो॥४७॥

यत्र वाणाः सम्पतन्ति कुमार विप्रिरवा इव। तत्र इ

न्त्रो बृहस्पतिरदितिः शर्म यच्छतुर्विधा हाशर्म यच्छतु ॥४८॥

विश्वहीदति  
वपः

इन्द्र बृहस्पत्यदिति देवत्या पाङ्कुरष्टाक्षरपञ्चपादा। जिस युद्ध में शत्रु युक्त बाण दूधर उधर हो गिरते हैं। तत्र दृष्टान्तः कुमार विशिखा इव शिखा रहित मुण्डित मुण्ड विकीर्ण कवचवा अपि बालक चपल होकर जैसे दूधर उधर चलते हैं तद्वत्। तिसयुद्ध में इन्द्र हमारे अर्थ विजयोत्थ सुख देवे। कैसा है इन्द्र कि बृहस्पति बड़े मन्त्रों का पालक विजयोचित मन्त्रों का जानने वाला। अदिति नहीं है खण्डन जिसका अखण्डित शक्ति। सब शत्रुओं का हन्ता वो ह शर्म देवे। यद्वा तिसयुद्ध में इन्द्र बृहस्पति देवगुरु और अदिति इन्द्रमाता सब दिनों में सर्वदा सुख देवे ॥४८॥

विश्वहीदति  
वपः

मर्मीणि ते वर्मण छादयामि सोमस्त्वा राजा मृतेनानु  
वस्ताम्। उरोर्वरीयो वरुणस्ते हृणेतु जयेन्त त्वानु दे  
वा मदन्तु ॥४९॥

का० १३.३.१० महाव्रत याग में अध्वर्यु क्षत्रीके परिधानार्थ कवच देवे ॥ सोम वरुणदेवदेवत्या त्रिष्टुप्। हे यजमान तेरे मर्मों (जीवस्थानों) को कवच करि छादन करता हूँ। राजा (विप्रादिकों) का अधिपति सोम। अमृत मरण निवारक इस कवच करि तुम्हें आच्छादन करे। तथा वरुण तेरा वर्म कवच उरुतर पृथीय करे। किंच देवता तुम्हें अनुकूल हो के हर्षित वा उत्साह युक्त करे ॥४९॥

अ० ६ उदै न मुत्तं नयाग्ने घृतेना हुत। रायस्यो धेणु सठिं सृज  
प्रजया च बहुं हृधि ॥५०॥

का १८.३.१४. अशुष्का उदम्बरतरुसै उठाई रत्निमें घृतविषें स्थिताः  
 ताः प्रादेशमात्री तीनि समिधाएँ तीनि ऋचाओं करि शालाद्वारीमें हो  
 में तताग्नि प्रणयनमित्यर्थः ॥ तिस्रोऽनुष्टुभः प्रथमाग्निदेवत्यादि  
 तीयेन्द्रदेवत्या तृतीया लिङ्गोक्त देवता । हेष्टतेनाहुत आज्यकरिके सर्व  
 तोह्यमा हेअग्ने इस यजमान को अतिशयेन ऊँचा करि । उत्कृष्टत्व-  
 ऐश्वर्य को प्राप्त करि ऐश्वर्यमेवाह धनसमृद्ध करिके जोडि और पुत्रपौ-  
 त्रादि संतति सै बडा अर्थात् बहु कुटुम्बी करि ॥ ५० ॥

इन्द्रे मं प्रतरं नय सजातानामसहृषी । समेनं वर्चसा सजदे  
 वानां भागदा असत् ॥ ५१ ॥

हे इन्द्र परमैश्वर्य युक्त इस यजमान को प्रकाष्ट ऐश्वर्य प्रति प्राप्त करि ।  
 तदेव दर्शयति कि समान जातियों के नियमन समर्थ हो । किंच इस यज-  
 मान को तेजस्वी करि । यह यजमान देवताओं का यज्ञ विषे भागप्र-  
 दाता हो ॥ ५१ ॥

यस्य कुर्मो गृहे हविस्तमग्ने वर्धया त्वम् । तस्मै देवा अ-  
 धि ब्रवन्त्यं च ब्रह्मणस्पतिः ॥ ५२ ॥

हम ऋत्विज जिस यजमान के घरमें पुरोडाश प्रधान कर्म करें हे अ-  
 ग्ने तिस यजयजन को तू बढ़ाय । देवता तिस यजमान के अर्थ अधिक  
 कहें यह सबसै अधिक है । और यह यजमान वैदिक कर्म का पा-  
 लक हो । यद्वा देवता ब्रह्मणस्पति और अग्नि इसके अधिक कहें ॥ ५२ ॥

उदुत्वा विश्वे देवा अग्ने भरन्तु चित्तिभिः । स नो भवशि-  
 वस्त्वर्धं सुप्रती को विभावसुः ॥ ५३ ॥

का० १८० ३१८ होता करि प्रथम ऋचाके तीनि बार पढ़ते प्रतिप्रस्थाता उदुत्वेति मन्त्र करि प्रदीप्त इध्म को शालाद्वारी से ऊर्ध्व उत्पाटन करे ॥ व्याख्याता १२० ३११ ॥ ५३ ॥

पञ्च दिशो देवार्थं यजमानवन्तु देवीरयामतिं दुर्मतिं बाधमानाः । रायस्योषे यजपतिमाभजन्ती रायस्योषे अथियज्ञोऽश्रियात् ॥ ५४ ॥

का० १८० ३१८ ततः ब्रह्मा होता अध्वर्यु प्रतिप्रस्थाता यजमान पञ्च दिश इत्यादि ऋक्पञ्चक करि चित्य प्रति जावे । यज्ञाग्नि साधन वादिन्यः पञ्च ऋचः आये द्वे त्रिष्टुभौ प्रथमा दिग्देवत्या । पञ्च दिशः प्राची दक्षिणा प्रतीची उदीची मध्या रूपा दीप्यमाने हमारं यज्ञ को रक्षा करें । कैसी हैं दिशा कि देवी हैं इन्द्र यम वरुण सोम ब्रह्मा संबन्धिनी हैं । तथा हमारी अमति (प्रज्ञामान्त्र) पाप विषया दुष्ट मति को नाश करती । तथा धन पुष्टि में यजमान को भागी करती हैं । किंच हमारा यज्ञ धन की पुष्टि में अधिक समृद्ध हो ॥ ५५ ॥

समिद्धेऽग्नावधिं मामहान् उक्थयन्तु ईक्ष्यो गृभीतः । तप्तं घर्मं परिगृह्या यजन्तो जीयद्यज्ञमयजन्त देवाः ॥ ५५ ॥

आग्नेयी । दीव्यन्ति । व्यवहरन्ति ब्रह्मत्व होत्र आध्वर्यवादि कर्मों करि प्रचरते हैं देवता (ऋत्विज लोग) जबकि तप्त घर्म (प्रज्वलित प्रवर्ग्य) को परिशासों से लेकर पूजते हैं । और जब ऊर्ज (हविर्लक्षण अन्न) करिके पूजते । तब अग्नि में दीप्यमान होते उक्थयन्त (उक्थ

यजमानवन्तुः इति यक अथ यजमानः

शस्त्रहं यत्र बाहन जिसके बोह शस्त्रैरेव यज्ञोवाह्यतो कैसा है उक्थप  
त्र कि स्तुतियोग्य। अधिमा महान पूजता है देवताओं को यद्वा अधि  
क मामहान यजमान है जिस यज्ञमें ॥५५॥

देव्याय धर्त्रे जोष्टे देवश्रीः श्रीमनाः शतपयाः। परिगृह्य  
देवा यज्ञमायन्देवा देवेभ्योऽध्वर्यन्तोऽस्थुः ॥५६॥  
अग्निदेवत्या ब्रह्मती पङ्क्तिर्वा। एवंविध अग्निके अर्थ यज्ञ है इति-  
शेषः। कैसेके अर्थ कि देवताओं के हित तिसके। धर्ता-यागद्वारा जगतके  
धारण करने वाले के। जोष्टा-हमारे दिये हविके सेवन करने वाले। कै-  
सा है यज्ञ कि देवश्रीः देवताओं को हविर्दान करि सेवता। श्रीमनाः  
सेवन करते हैं इन्द्रादिकों को श्री-यजमान तिनविषे अनुग्रहरूपम  
न जिसका यद्वा श्री है मनमें जिसके श्री देने को मन जिसका। शतसंख्या  
कहे पयः प्रभृति हवि जिसके बोह देवाः (ऋत्विजलोग) ऐसे यज्ञाग्निको  
गृहण करि यज्ञ प्रति प्राप्त होते हैं। किंच दीप्यमान ऋत्विज देवताओं के  
अर्थ अध्वर करने को इच्छा करते खंडे हैं ॥५६॥

वीतर्हं हविः शमितर्हं शमिता यजध्ये तुरीयो यज्ञो यत्र ह  
व्यमेति। ततो वाका आशिषो नो जुषन्ताम् ॥५७॥

हवि र्यज्ञ देवत्या ब्रह्मती। यज्ञ जिसकाल में होमने योग्य हविको प्राप्त होता  
है ततः यज्ञ से उठे वाक्य (ऋग्यजुः साम लक्षण) और आशिषा (प्रभीष्टा)  
र्थ शंसन हमें सेवन करें अर्थात् यज्ञफल हमें आलिङ्गन करें। कैसा ह  
विकि देवताओं का इच्छा तथा शमिता (संस्कृत) कैसा यज्ञ कि तुरीयः (च-  
तुर्थ-आदिमें यजुका जप फिर होता का ऋचापठन ब्रह्माका अप्र

तिरथ काण्डी ३३-४४. जप और ऐसेही चार्थें होमहैं +। यद्वा आदि में अध्वर्यु करि आश्रावण फिरि आग्नीध्र करि प्रत्याश्रावण ततः अध्वर्यु करि प्रेषः पुनः होता करि वषट्कार इति यज्ञश्चतुर्थो कल्प्यते ॥

+ अध्वर्यु पुरस्तादा  
जुषी प्रजपताया  
दि० शत० ४० २३१  
श्रुतिः  
५१॥

सूर्य रश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात्सविता ज्योतिरुदयां ॥ ३॥ अजस्रम्। तस्य पूषा प्रसवे याति विद्वान्सम्यग्यन्विष्वामुवनानि गोपाः ॥ ५७॥

अग्नि देवत्या त्रिष्टुप्। ज्योतिरूप अग्नि निरन्तर प्रतिदिन पूर्व दिशा में आहवनीय रूप से होमके अर्थ उदय होता है। कैसा है अग्नि कि सूर्य रश्मिः सूर्य की सी हैं किरिणें जिस की वा सूर्य रूप और रश्मि रूप। हरिकेश हरता है दारिद्र्य को। सुवर्ण तद्वत् केशस्थानीय हैं ज्वाला जिस की। सविता प्राणियों को तत्तद्वापारों में प्रेरक। तिस ऐसे अग्नि की आज्ञा में पूषा (पूषक-सूर्य) उदय अस्त द्वारा करि अठता है कैसा है सूर्य कि विद्वान् अहोरात्रि प्रवर्तनात्मक अपने अधिकार को जानता। सब लोकों को भले प्रकार देरवता। गोपाः धर्म कारक्षक ॥ ५७॥

विमान एष दिवो मध्यः आस्तः आप्रिवात्रोदसी अन्तरिक्षम्। स विश्वाची रभिचष्टे घृताची रन्तरा पूर्वमपरं च केतुम् ॥ ५८॥

का० १८० ३० १६० अध्वर्यु आग्नीध्र गृह से दक्षिण दिशा में पृष्ठ्या संलग्न पृष्णि तनु वृत्त वाचित्रवर्ण पाषाण को विमान इति दो ऋचाओं से उपधान करें ॥ विश्वा वसु हृष्टा आदित्य देवत्या त्रिष्टुप् आदित्याध्यासे नाशमा स्तूयते। यह अशमा आदित्य रूपेण दिव (अन्तरिक्ष) के मध्य में ति





हवनीय के योनि (कारणभूत आग्नीध्र) को प्रविष्ट होता हुआ + यह अश्वमादिव आग्नीध्र स्थानीय अन्तरिक्ष के मध्यमें स्थापित हुआ रज (जगत) के अन्त उत्पत्ति प्रलय रूप दोनों कीटियों को परमेश्वररूपेण विश्वक्रमेणातिरक्षति च। कैसा है अश्वमाकि उक्षा-यागद्वारेण फलाभिवर्षकः॥ बहु फलात्वात्समुद्रसदृशः॥ अरुणः पूर्वमन्त्रे सूर्य साम्यात्सूर्यसदृशः॥ सुवर्णः स्वर्गं प्रत्युज्जमनहेतुत्वात्पक्षिसदृशः॥ ६०॥

इन्द्रं विश्वा अवीरुधन्तसमुद्रव्यचसंगिरः॥ रथीतमर्धं रथीनां वाजानां धंसत्यति पतिम्॥ ६१॥

का० १८०३२१ पृथ्व्यश्वमा को कचिद्भुवदेशमें स्थापन करिके इन्द्रं विश्वा इत्यादि चारि ऋचाओं करि सब चयन प्रति जावे॥ व्याख्या ता १२०५६॥ ६१॥

देवहूर्यज्ञ आ च वक्षत्सुहूर्यज्ञ आ च वक्षत्। यक्ष दग्निर्देवो देवां २॥ आ च वक्षत्॥ ६२॥

विधृतिदृष्टा यज्ञदेवत्यानुष्टुप्। देवताओं का आह्वाता यज्ञदेवताओं को बुलावे और पूजे। सुम्नधनपुत्र कलत्रादिसे उन्हें सुख का करने वाला यज्ञदेवता०-वै। और अग्निदेवता देवता०-पूजे॥ ६२॥

वाजस्य मा प्रसव उद्राभेणोदगृभीत्। अधो सपत्नानिन्द्रो मे निग्राभेण धर्तुः २॥ अकः॥ ६३॥

इन्द्रदेवत्यानुष्टुप्। वाज(अन्न)की उत्पत्ति वा अनुज्ञा उद्राभ(उद्ग्रहण-ऊँचे ग्रहण-दान) करिके मुझे उद्ग्रहण करे। अथ नीचे हाथ करि भिक्षादि कीयाविष्णुता वा अन्नाभाव करि इन्द्रमेरे शत्रु-

+ युरा हवनीयसु हय आग्नीध्राबु हरेदित्या हवनीय योनिस्वमाग्नीध्र स्यान्मातमन्यत्र।

ओं को भिक्षुक करें ॥ ६३ ॥

उद्गमं च निग्रामं च ब्रह्म देवा अवी वृधन् । अधो सप  
त्नो निन्द्राग्नी मे विषूची नान्व्यस्यताम् ॥ ६४ ॥

इन्द्राग्नि देवत्वा नुष्टुपू । देवतां हम विषयक उत्कर्षे शत्रु विषयक अ  
पकर्षे ब्रह्म (त्रयी लक्षणयन्त्र विषयक) को वटावें । अथानन्तरं मेरे शत्रु  
ओं को नानागती करिके इन्द्राग्नी दोनों विनाश करें अर्थात् अ  
पुनरागमन के अर्थ पटकें ॥ ६४ ॥

अ० ७ क्रमध्व मग्निना नाकमुख्यं हस्तेषु विभ्रतः । दिवस्पृष्ट  
स्वर्गत्वा मिश्रा देवे भिराध्वम् ॥ ६५ ॥

का० १८०४०१ ते ऋत्विज क्रमध्वमिति पाँच ऋत्विजों से तीर्थ करि  
चित्पाग्नि को आरोहण करें ॥ आग्नेय्य नुष्टुपू । हे ऋत्विग्यजमान  
ओं तुम अग्नि (चित्य) करि स्वर्ग को आक्रमण करो । कैसे हो तुम  
कि उखाविषें संस्कृत उख्याग्नि को हाथों में धारण करते । अद्वा  
उख्याग्नि को हाथों में धारण करते अग्नि (अनेक चित्पाग्नि) स  
हित चित्त के ऊपर पैर (आरोहण) करें । फिर दिवः (अन्तरिक्ष के  
पृष्ठ स्वर्ग) को जाकर देवताओं से संयुक्त होने बैठें ॥ ६५ ॥

प्राची मनु प्रदिशं प्रेहि विद्वा नग्ने रग्ने पुरोऽग्निर्भवे  
ह । विश्वा आशा दीद्यानो विभाहूर्जो नोधेहि द्विपदे  
चतुष्पदे ॥ ६६ ॥

आग्नेयी त्रिष्टुपू । हे अग्ने इस लाये हुए उख्य अग्नि की प्राची प्रह  
ष्टा दिशा को लक्ष करिके तू प्रकर्षण जा । कैसे है तू कि विद्वान् अप

ने अधिकार को जानता। और जाकर हे अग्ने इस प्रदेश (अग्नि दृष्ट का निष्पादित चितिरूप) का पुरो ग्नि (पुरोगन्ता मुख्य) हो। त तः हमारे द्विपद (पुत्रादिकों) चतुष्पद (गवादिकों) के अर्थ अन्न स म्यादन करि ॥ ६६ ॥

पृथिव्या अहमुदन्तरिक्षमारुहमुन्तरिक्षादिवमारुह  
मू। दिवो नाकस्य पृष्ठात्स्वर्ग्योतिरगामहम् ॥ ६७ ॥

आग्नेयी पिपीलिक मध्या ब्रह्ती। यजमान आह में पृथिवी से ऊँ  
चा चल कर अन्तरिक्ष को आरूढ़ हूँ। तिस अन्तरिक्ष से चल कर  
द्यु लोक को आरूढ़ हूँ। द्युलोक का जो दुःखरहित प्रदेश। तिसके  
उपरि भाग से स्वर्ग्योतिः स्वर्गलोकस्थ आदित्य मण्डल को मैं प्राप्त  
हूँ ॥ ६७ ॥

स्वर्पन्तो नापेक्षन्तः आद्यांशं रोहन्ति रोदसी। यज्ञं ये वि  
श्वतो धारं सुविद्वांसो विते निरे ॥ ६८ ॥

आग्नेयी अनुष्टुप्। जे सुविद्वांसः ज्ञानकर्म समुच्चय करने वाले  
यज्ञ को अनुतिष्ठें हैं। कैसे यज्ञ का कि विश्वतो धारं विश्वतो धारा-  
जिसकी तिसे आहुति दक्षिणान्नानि यज्ञकी धारा एँवा वैश्वान  
र मारुत पूर्ण हुति वसी धारा वाज प्रसवीयानि यज्ञकी धारा एँ यज्ञ  
जगत के धारण करने वाले को। ते यज्ञ करने वाले स्वर्ग को गये पुत्र  
पश्वादिकों की अपेक्षा नहीं करते कृत कृत्य होने से। और स्वर्ग को  
आरोहण करते हैं कैसे स्वर्ग कि रोदसी रुणद्धि जरा मृत्यु शोकादि  
कों की। यद्वा जे यजमानाः सुविद्वांसः सुष्टु कर्म प्रकार को जानके

जगद्धरणहेतु यज्ञ को विशेषेण करते हैं ते यजमान द्या अन्तरिक्ष को आरोहण करते तथा रोदसी द्यावापृथिवी को आरोहण करते हैं ततः स्वर्गस्य आदित्य मण्डल को प्राप्तहुए अन्यत्किमपि स्थान को नहीं अपेक्षा करते ॥ ६८ ॥

अग्ने प्रेहि प्रथमो दैवयतां चक्षुर्देवानां मुत मर्त्यानाम् ।  
इयक्षमाण भृगुभिः सजोषाः स्वर्ग्यन्तु यजमानाः स्वस्ति ॥ ६९ ॥  
आग्नेयी त्रिष्टुप् । हे अग्ने देवताओं को इच्छा करने वाले यजमानों के पुरतः प्रकर्षेण जा । कथं मया ग्रतो गन्तव्यं तत्राह जो कि तू देवताओं और मनुष्यों के चक्षुः स्थानीय लोक में गये पुरुष की दृष्टि के पुरतः जाता है । किंच पूजने को इच्छा करने वाले यजमान स्वस्ति जैसे जैसे अपविनाशेन स्वर्ग को प्राप्त हों वें । कैसे कि भृगु गोत्र विप्रों से है समा न प्रीति जिन्हों की ते । भृगु ग्रहणमनूचान ब्राह्मणोपलक्षणम् । उत्तम विप्रैः प्रीतिमन्तः ॥ ६९ ॥

नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेंते शिशु मे कर्ठ समीची ।  
द्यावाक्षामा रुक्मोऽ अन्तर्विभाति देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाः ॥ ७० ॥

का. १८. ४. २ अध्वर्युः स्वयमातृणेषु का के ऊपर समीप में प्रति प्रस्थात्रा के तिस अग्नि को धारण करते कृष्णवर्ण श्वेतवत्सार्गो के जुहू स्थानीय मृन्मय दुग्ध दोहन यात्र करि स्वयमातृण को सींचते इध्मस्थ अग्नि में नक्तोषासेति दो ऋचाओं से हो में व्याख्याता १२. २. ॥ ७० ॥

अग्ने सहस्राक्ष शतमूर्धञ्छतं ते प्राणाः सहस्रं व्याना  
त्वष्टं साहस्रस्य रायः ईशिवे तस्मै ते विधेम वाजाय  
स्वाहा ॥ ७१ ॥

आग्नेयी विराट् पंक्तिः दशाक्षरचतुः पादा । हे अग्ने सहस्राक्ष  
हिरण्यशकलही हैं सहस्र नेत्र जिसके +) हे शत मूर्धन शतसंख्या-  
क हैं शिर जिसके +) जिसमें शत प्राण सहस्र ५ व्यान हैं । और जो तू  
सहस्र धनका प्रभु है । तू तैसे के अर्थ हम हविरूप अन्न देते हैं । स्वा  
हा एतद्भविः सुहृतमस्तु ॥ ७१ ॥

सुपर्णोऽसि गरुत्मान्पृष्ठे पृथिव्याः सीद । भासान्तरिक्षमा  
पृण ज्योतिषा दिवमुत्तमान तेजसादिश उहै रुह ॥ ७२ ॥

का. १८. ४. ४ स्वय मातृणां में सुपर्णोसीति दो ऋचाओं और बषट्का  
र करिके अग्नि को स्थापन करें ॥ अग्नि देवत्या पङ्क्तिः । हे अग्ने तू सुपर्  
ण (पक्ष्याकार गरुडसमान) है । गरुत्मान् (अशनयावान्) है । अतः  
पृथिवी के ऊपर बैठ । अपने प्रकाश से अन्तरिक्ष को सर्वतः पूरि । आ  
पनी सामर्थ्य से द्युलोक को ऊंचा संभित करि । तथा स्वतेज करि दि  
श उत्कर्षण हठी करि वा प्रकाशि ॥ ७२ ॥

आजुह्वानः सुप्रतीकः पुरस्तादग्ने स्वं योनिमासीदसाधु  
या । अस्मिन्संयस्येऽध्युत्तरस्मिन्विश्वे देवा यजमान  
श्च सीदत ॥ ७३ ॥

आग्नेयी त्रिष्टुप् । हे अग्ने तू आज्ञयमानः सन् सुप्रतीकः (शोभ  
नमुखः) सन् पूर्वदिशा विधेय समीचीन अपने स्थान को अधितिष्ठ

हे विश्वे देवाः औ तुम और यजमान इस पुरोवर्तिनि अधिक उत्कृष्ट  
स्थान अग्नि सहित बैठने योग्य यज्ञारव्य स्वर्गमें बैठो (द्यौर्वाज  
नरठं सधस्थमिति ५. २. ३. ३५. श्रुते ॥ ७३ ॥

ताथं सवितुर्वरेण्यस्य चित्रामाहं वृणे सुमतिं विश्वज-  
न्याम् । यामस्य कण्वोऽअदुहत्सपीनाथं सहस्रधारां  
पयसा महीं गाम् ॥ ७४ ॥

का. १८. ४. ६. अग्निनिधान के अनन्तर तिस अग्नि में तीनिसमि  
धाएँ अध्वर्युधारण करे ताथं सवितुरिति शमीमयीं विधेमिति वैक  
ङ्कतीं प्रेक्षोऽअग्नः इत्योदुम्बरीमित्यर्थः ॥ कण्वदृष्टासावित्री पुरस्ता  
ज्ज्योतिषत्रिष्टुप् । वरणीय सवितुः संबन्धिनीति तिस शोभनाबुद्धिको  
में आभिमुख्येन स्वीकरताहं । कैसी सुमति को कि चित्रा (चायनी  
या. स्वापेक्षितवहुविधफलदानसमर्था । विश्वजन्या (सर्वजनोंके  
अर्थहित वा जगदुत्पादनसमर्था । तिस किसे कि कण्व मुनि इसस  
विता की जिस सुमति में धेनु अनुग्रहकारिणी बुद्धिको दुहता  
हुआ कैसी को कि प्रकर्षण पयकरि पूरित सहस्रधारा युक्त यज्ञा वहु  
त कुदुम्ब की धारयित्री पयसामहीम् बहुदुग्धा सर्वसिद्धिदात्री  
को । रवेर्मतिर्या कण्वेन दुग्धा वा महं वृणे इति सर्वार्थः ॥ ७४ ॥

विधेमते परमेजन्मन्त्रग्ने विधेम स्तोमै रवरे सधस्थे ।  
यस्माद्योने रुदारिथा यजे तं प्रत्वेदुवीथं वि जुहुरे स  
मिद्धे ॥ ७५ ॥

गृत्समदृष्टा त्रिस्थानाग्निदेवत्या त्रिष्टुप् । हे अग्ने दिवि में तुरु

आदित्यात्मा करि स्थित के अर्थ हम हविदेते हैं अन्तरिक्षस्थित  
तुरुविजली रूप के अर्थ सोत्रों से हम परिचर्या करते हैं। हे अग्ने  
जिस दृष्टकाचितरूप स्थान से तू उद्गत है तिस स्थान को मैं पूजता  
हूँ। ततः तुरुसम्यक् प्रज्वलित दिशे हवियें होमता हूँ ॥ ७५ ॥

ब्रह्मे अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्या यविष्ट। त्वां  
शश्वन्त उपयन्ति वाजाः ॥ ७६ ॥

वसिष्ठ दृष्टाग्नि देवत्या विराडनुष्टुप्। हे अति युवा हे अग्ने तू हम  
रे पुरो अग्ने दीप्त हो। कैसे है तू कि अनुपक्षीण सूर्यसमित् का  
ष्टाकरि प्रकर्षण दीप्त यद्वा लाह मयी ज्वलन्ती स्थूणा अनुपक्षी  
णा सूर्यसमाना ज्वाला करि दीप्त सूर्य शब्दो ज्वालोपलक्षकः  
हे अग्ने यतः निरन्तर भाविनो हवियें तुम्हें प्राप्त होते हैं अतः  
दीप्त हो ॥ ७६ ॥

अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमेः कतुं न भद्रं हृदि स्पृश  
म्। ऋध्या मा तः ओहे ॥ ७७ ॥

का ० १८. ४. ८. समिध आधान करि कै अग्ने तमिति दो ऋचाओं  
से स्तुवा करि दो घृताहुती तिस अग्नि में होमें व्याख्याता १५.  
४४. ११७. १॥

चिन्ति जुहोमि मनसा धृतेन यथा देवा इहा गमन्वीति  
होत्रा ऋता वृधः। पत्ये विश्वस्य भूमनो जुहोमि विश्व  
कर्मणे विश्वाहादाभ्यर्ठं हविः ॥ ७८ ॥

विश्व कर्म देवत्यातिजगती। मनसा और धृतेन सह ऋत्विग्यजमा



नों की चित्ति को होमता (अग्निसम्बद्धकरता) हूं अर्थात् अग्नित  
च परिज्ञानार्थं चित्तन (सन्तान) करता हूं + तैसै होमता हूं किजैसे-  
इस यज्ञ में देवता आवें। कैसे देवता कि वीति होत्राः कामितयज्ञाः  
ऋत (सत्य वा यज्ञ) के बढाने वाले। किंच सब दिनों विषे अनुपहत  
स्वाद हवि विश्वकर्मा (प्रजापति) के अर्थ होमता हूं। कैसे प्रजापति कि  
सब जगत के बडे पति ॥७८॥

सप्त तेऽग्ने समिधः सप्त जिह्वाः सप्त ऋषयः सप्त धा  
मे प्रियाणि। सप्त होत्राः सप्तधा त्वं यजन्ति सप्त योनी  
रा पृणस्व घृतेन स्वाहा ॥७९॥

का० १८४५ और पूर्ण हुति (घृत से पूर्ण सुचा करि आहुति) हो  
में ॥ सप्त र्षि दृष्टा आग्नेयी। हे अग्ने तेरी सप्त समिधाएँ (शीर्षण्याः  
प्राणायतनाः) ओत्र २ नेत्र २ नासा छिद्र २ मुख १ हैं। किंच तेरी सप्त  
जिह्वाएँ (ज्वालारूपा हिरण्याङ्गणया आगमोक्ता यद्वा आथर्वणि  
कोक्ताः मुण्डक० १२ काली १ कराली २ च मनोजवा ३ च विलोहिता ४  
चापि सधूमवर्णा ५ स्फुलिङ्गिनी ६ विश्वरुची ७ च देवी लेलायमाना  
इति सप्त जिह्वा ॥ इति हैं। तथा सप्त ऋषयः (मरीच्यादयः) तेरे द्रष्टार  
हैं। तथा सप्त प्रियाणि धामानि (गायत्र्यादि सप्त छन्दाश्च सि ॥ यद्वा  
अहवनीय १ गार्हपत्य २ दक्षिणाग्नि ३ सम्य ४ आवसथ्य ५ प्राजा  
हित ६ अग्नीध्रीय ७ सोमयागमें बहिधारक हैं। किंच हे अग्ने सप्त  
होत्रादयः (होता १ प्रशास्ता २ ब्राह्मण छठ्ठीसी ३ पोता ४ नेष्टा ५ आ  
ग्नीध्र ६ अछावाक ७ ऋत्विज लोग सप्त प्रकारों अग्नि होम १

अत्यग्निष्टोमं २ उक्थ्य ५३ षोडशी ४ अतिरात्र ५ आप्तोर्योम ईवाज  
पेय ७ से तुमै पूजते हैं। हे अग्ने सोतू सप्तयोनीः (चितीः ॥) घृतकरिके  
समन्तात् पूरि स्वाहा सुहुतमस्तु यद्वा स्वाहा (यज्ञरूपः ॥) त्वंसप्तयो  
नी धृतेनापृणस्व ॥ ५८ ॥

५ उक्थ्य

॥ सप्तचिति  
कोऽग्निरिति  
८.२.३.४४-  
श्रुतेः।

॥ यज्ञोवेसा  
हाकार इति  
४.२.३.४४-  
श्रुतेः।

अ० ८ शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्च सत्यज्योतिश्च ज्योतिष्मा  
श्च। शुक्रश्च नृत्तपाश्चात्य ठंहाः ॥ ८० ॥

का० १८.४.२३.२४. वैश्वानर पुरोडाशसेया ग करिके वैठकर आ  
हवनीय विषे हाथ करि सर्वहुत मारुत पुरोडाशों को होमें, शुक्र  
ज्योतिः इति एक-एक मन्त्र से एक एक को। यद्वा प्रथमकाल में वैश्व  
ानर पुरोडाश को विस्तीर्ण करिके वैश्वानर पुरोडाश के ऊपर हीमा  
रुतों को होमें। अरण्यविषे अनूच्य सातवें पुरोडाश को विमुख संज्ञ  
क उग्रश्च भीमश्चेति अध्याय ३० का एडी ७ वक्ष्यमाण मन्त्र करि हो  
में ॥ षट्मरुदेवत्याः आद्या उष्णिक् एकैकस्या मृचि सप्त-सप्त मरुतः ॥  
शुक्रज्योतिरित्याद्या एकोनपञ्चाशन्मरुतः तुम आज (अब इस  
हमारे यज्ञ में आओ इति यच्च मर्चि ८४. अन्वयः ॥ तन्नामानि व्या  
ख्यायन्ते शुक्र (शुद्ध वा शुक्र की सी ज्योति का सा तेज जिस  
का बोह ॥ १॥ दर्शनीय ज्योति जिस की ॥ २॥ ब्रह्मलक्षण ज्योति ॥ ३॥  
तेज मान् ॥ ४॥ प्रकाशता है ॥ सत्य वा यज्ञ का पालक ॥ ६॥ पाप को  
छोड़िके वर्ते है ॥ ७॥ चकाराः समुच्चयार्थः ॥ ८० ॥

ईहङ्गा न्या हङ्गः सहङ्गः प्रतिसहङ्गः। मितश्च संमितश्च  
संभराः ॥ ८१ ॥

द्वे गायत्र्यो । इस पुरेडाश को लेकर देखता है ॥७॥ अन्य भी पुरे  
डाश को देखता है ॥८॥ समान को देखता है ॥९॥ तिस-तिस प्रति  
समान को देखता है ॥१०॥ मान को प्राप्त यद्वा उत्तमाधममध्यमसे  
तुल्य ॥११॥ एकी भाव करि मान को प्राप्त ॥१२॥ साथ भरणा करता  
है ॥१३॥ ८१॥

ऋतश्च सत्यश्च ध्रुवश्च धरुणश्च । धर्ता च विधर्ता च  
विधारयः ॥८२॥

सत्यरूप ॥१४॥ वस्तु में हुआ ॥१५॥ स्थिर ॥१६॥ धारक ॥१७॥ धारण  
करता है ॥१८॥ विशेषेण धारण करता ॥१९॥ विविध धारण ॥  
२०॥ ८२॥

ऋतजिच्च सत्यजिच्च सेनजिच्च सुषेणश्च । अन्तिमि  
त्रश्च दूरेऽमित्रश्च गणः ॥८३॥

उष्णिक् । यज्ञ को जीतता है ॥२१॥ याता तथ्य को जीत ॥२२॥ शत्रुसे  
न्य को जीत ॥२३॥ शोभना सेना जिसकी ॥२४॥ समीप में मित्र जि  
सके ॥२५॥ दूर में शत्रु जिसके ॥२६॥ गिनता है सबको ॥२७॥ ८३॥

ईहक्षास एताहक्षास ऊषुणः सहक्षासः प्रतिसहक्षा  
स एतन । मितासश्च संमितासो नोऽग्र्य सभरसो म  
रुतो यज्ञेऽस्मिन् ॥८४॥

जगती । हे मरुतश्रेयो तुम इतने कैसे हो कि इससे देखते हो ॥२८॥  
इतने को देखते हो ॥२९॥ उ-सु-नः- एतत्पदत्रयं पाद पूर्तये ॥ स  
मान दर्शन हो ॥३०॥ प्रत्येक को समान दर्शन हो ॥३१॥ प्रमाण से

हो ॥३३॥ संगत्य प्रमाणसैहो ॥३४॥ समानअलङ्कारादिककोथार  
ए करते वा आदर सहित वर्तमानहो ॥३५॥ बहु वचन मादार्थ  
म् ॥८४॥

स्वतवाँश्च प्रधासी च सांतपुनश्च गृहमेधी च । क्री  
डी च शाकी चोज्जेयी ॥८५॥

गायत्री उष्णिग्वा । आद्याः पञ्च चानुर्मास्य देवताः । स्वाधीनबल  
युक्त ॥३६॥ पुरोडाश भक्षण शील ॥३७॥ सूर्यसम्बन्धी ॥३८॥ गृहध  
मेवान् ॥३९॥ सदा क्रीडन शील ॥४०॥ शक्त ॥४१॥ उत्कृष्टजयनशी  
ल ॥४२॥ एते मरुतो यूपमत्र यज्ञे एतनेति पूर्वणान्वयः ॥८५॥

अध्या० ३६० ॥ उग्रश्च भीमश्च ध्वान्तश्च धुनिश्च । सासह्योश्चामि  
युग्वाच विक्षिपः स्वाहा ॥७॥ विमुख मन्त्रोपि प्रसङ्गाद्याख्यायते ॥  
गायत्री । उत्कृष्ट ॥४३॥ विभेत्यस्मादसौ भीमः ॥४४॥ शत्रुओंको  
न्या करताहै ॥४५॥ शत्रुओंको कम्पाता ॥४६॥ शत्रुओंको अभिभ  
वता ॥४७॥ भक्तोंका सुखयोक्ता ॥४८॥ शत्रुओंको क्षेप्ता ॥४९॥ स्वा  
हा । इतने मरुतों के अर्थ पुरोडाश सुद्धतहों ॥७॥ ८५॥

इन्द्रं देवीर्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानोऽभवन् यथेन्द्रं देवी-  
र्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानोऽभवन् । एवमिमं यजमानं  
देवीश्च विशो मानुषीश्चानुवर्त्मानो भवन्तु ॥८६॥

का० १८०४२५ कर्मापवर्गान्ते में यजुः जपे ॥ मरुदेवत्यं यजुः ।  
यह देव संबंधिनी प्रजा मरुद्रूपा इन्द्रानुगामिनी हुई इति स्वरू  
पाख्यानम् । देवसंबंधिनी प्रजा मरुद्रूपा जैसे इन्द्रको अनुसरण

करिके वर्तमानाहुई उपमानमेतत् देवसंबंधिनी और मनुष्य  
संबंधिनी प्रजा ऐसे ही इन्द्रवत् इस यजमान को अनुसरण करिके  
वर्तमाना हों इति प्रार्थना ॥ ७६ ॥

अ० ७६ इमं स्तनमूर्जस्वन्तं धयापां प्रपीनमग्ने सरिरस्य म  
ध्यै । उत्सं जुषस्व मधुमन्तमर्वन्तसमुद्रियर्धं सदनमा  
विशस्व ॥ ७७ ॥

का० १८.४.२६ इमं स्तनमिति मन्त्रगण को अध्याय समाप्ति प  
र्यन्त यजमान से अध्वर्यु पढावे वा आय जपें ॥ त्रयोदशर्च आग्ने  
यस्त्रिष्टुप्छन्दस्कोऽनुवाको यज्ञस्तुतिर्वसोर्धाराभिवादिनी घृतस्तु  
तिर्वा । हे अग्ने सरिर (लोक) के मध्य में वर्तमान तू इस सुग्लक्षण  
स्तन वा सुच से गिरती घृतधार को पान कर । कैसे स्तन किवि  
शिष्टरसवन्त को । तथा अपां प्रपीनम् + घृतसे पूर्ण । हे अर्वन् सर्व  
नः चलते उत्स (उत्स्यन्दन-सुग्लक्षणकूप) को सेवन कर कैसे  
उत्स कि मधुमन्त (मधुखादघृत करिके युक्त) को किंच समुद्रियस  
मुद्र सम्बन्धि-चयनयाग सम्बन्धि गृह को आविशस्व-तृप्त हो के  
यज्ञ गृह को सेवन कर ॥ ७७ ॥

घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतमस्य धाम ।  
अनुषधमावह मादयस्व स्वाहा कृतं वृषभ वक्षि ह  
व्यम् ॥ ७८ ॥

गृत्समददृष्टा । में घृत को सींचने चाहता हूं + यतः इस अग्नि का  
घृत उत्पत्ति स्थान है \* । जो अग्नि घृत को आश्रित है । इस अग्निका

वसोर्धारायु दा होयते त  
सुग्लक्षणकूपकल्पनास्तन  
उच्यते ।

\* अर्चयन् अर्चयन् अर्चयन्  
पाद्यतमं चानि ।

\* त्रयोदशैः समुद्राः अग्निं यजमानाः प्रवृत्ताः  
इति सांख्येयसंहितायां अग्निमुद्रादिकं चानि ।

+ अग्निमुखे मेदुमिच्छति

\* अग्निर्यस्येयोने ह्यज्यत तस्ये घृतमुत्पन्नमासीदिति श्रुतेः गर्भो धा  
रेदकमुत्पन्नम् ।

घृतही धाम स्थान वा तेजकरनेवाला है। अतः हे अध्वर्यो अनुष-  
ध (स्वधा- अन्न) को उपलक्ष करि निस अग्नि को आवह प्रथम अ-  
न्न अन्न को उपकल्प्य पश्चात् बुला और बुलाके तृप्त करि और तृप्त  
करिके यह कहि कि हे वृषभा कामों के वर्धनेवाले स्वाहाकार करिहु  
त हव्य को तू देवताओं प्रति प्राप्त करि। यद्वा जिसे प्रति दिन सींचा  
चाहता हूं जिसका घृतयोनि घृत को आश्रित और जिसका घृत धाम  
है सो तू अनुषध को उपलक्ष्य देवताओं को बुलाके तृप्त करि और हवि  
प्राप्त करि इत्यग्निं प्रत्येदोक्तिः यतो वन्देः कर्म हव्यं देवानामावाह-  
नं हविर्वहनं च ॥ ८८ ॥

समुद्रा दूर्मिर्मधुमां ॥ उदार दुपाथं शुना सममृतत्व  
मानर। घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृ-  
तस्य नाभिः ॥ ८९ ॥

वामदेवदृष्टा। अत्रान्नाध्यासेन घृतं सूयते प्राणध्यासेन चाग्निः। समु-  
द्र (घृत) से मधुमान् (रसवान्) कल्लोल कंचाचला अक्षीणत्वा हृत  
स्य समुद्रेणोपमानम् अन्नदेवताभिप्रायं वासात्क्षीणेव। और उनके  
अणु (प्राण-जगत्प्राणभूत अग्नि) से एकी होकर व्याप्तहुआ अर्थ  
तू अन्न और प्राण एकी होकर अमृतत्व को प्राप्तहुए। तिस घृतका गु-  
ह्य (अविद्वानों से अनजाना) नाम श्रुतिमन्त्र पठित जो है वोह कहि  
ये है इति शेषः। किं तदाह कि देवानां जिह्वा (अत्यभिलाषसे देव-  
ताओं की जिह्वोत्थाननिमित्त) है। और जो सर्व प्रकाशनाम वो-  
ह भी कहिये है कि अमृतस्य नाभिः अमरण धर्मका बंधन है

जिह्वा से अमृतत्व प्राप्त हुवा अमृतत्व ही अमृतत्व है। अमृतत्व ही अमृतत्व है। अमृतत्व ही अमृतत्व है।

† न देतय जुहपारि  
श्वनिरुक्तेमिति  
श्रुतेः॥

‡ अथास्य घृत कीर्तिं वे वाग्निर्देवानामुत्तरादुज्ज्वलति १०.४.१.१.३.श्रुतेः॥

(योहि घृतमश्नाति सदीर्घायुर्भवति॥ यद्वा ऋगर्थेन मन्त्रः स्तूयते  
अर्थेन घृतम् । समुद्रात् आग्निकयजुः समुद्रहमारे यज्ञसैजो  
ऊर्मिः (शब्दसंघात नानाख्यातोयसर्ग निपातरूप उपमोत्प्रेक्षा  
रूपकाद्यलङ्काररूप) मधुमान् (रसवान् वाक्यार्थगुणोंसैयुक्त  
उदारत् मुखसै जठा स एव उपांशु (क्रियमाणसवन) सै अमृतत्व  
को प्राप्तहुः॥ † इसहेतु अग्निचयनवालोंसै प्रकाशनीयहै। इत्य  
र्थः। घृतका गृह्यजो नामहै वोही देवताओंकी जिह्वोत्थाननिमित्त  
है किं पुनर्होमः॥ ५॥ अमृतस्य नामभिः नहन अर्थात् घृत यजनसै  
यजमानों का अमृतत्व प्रापकहै। अतो अग्निविद्धिर्हयते स्तूयते  
च घृतमिति भावः॥ ८४॥

वयं नाम प्रब्रवामा घृतस्यास्मिन् यज्ञे धारयामा नमो  
भिः॥ उप ब्रह्मा अणवच्छस्यमानं चतुःशृङ्गोऽवमी  
होर एतत्॥ ८५॥

जो कि घृत नामो चारणही देवताओंका प्रियहै इसहेतु हम इस  
यज्ञमें घृत का नाम स्तुति करतेहैं। नमोभिः नमस्कारोंवाह वि  
रूप अन्नोंसै धारण करतेहैं यज्ञको इति शेषः। किंच ब्रह्मा अ  
त्विक्काशस्यमान् (स्तूयमान) एतत् घृतनाम सुनें। यथा गौरः (गो  
रवणे शुद्ध यज्ञ) एतत् घृत यज्ञफलरूप को अमीवत् उद्गिर  
ति निर्वहताहै यज्ञपरिणामाभिप्रायम्। कैसाहै गौर कि चतुःशृ  
ङ्गः चारि ऋत्विजशृङ्ग भूतहैं जिसके॥ ८५॥

चत्वारि शृङ्गा त्रयोऽस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासौ

अस्य। त्रिधा वद्धो वृषभी रोरवीति महो देवो मर्त्यो-  
२॥ आविवेश ॥ ६१ ॥

यज्ञपुरुषदेवत्य ऋषभो मन्त्रः। चतुःशृङ्गोऽवमीदित्युक्ता चतुःशृ-  
ङ्गयज्ञं वृषभरूपेण प्रतिपादयितुमाह। जो वृषभः। कामों का वर्षने  
वाला रोरवीति। अत्यर्थ शब्द करता है सो यह महो देवः। महान्दे-  
व ब्रह्मादिस्तंब पर्यन्त प्राणियों का ऊपजीव्य ज्ञान कर्म समुच्चय  
कारिविद्वानों का शरीरभूत मनुष्यों को व्याप्त हो तिष्ठे है। जिस वृषभ  
(यज्ञ) के चारि शृङ्ग ब्रह्मा ज्ञाता होता अध्वर्यु तीनिपाद ऋक्  
यजुसाम हो शिरः हविर्धान प्रवर्ग्य सात हाथ सात होता है और जो त्रिधा  
तीनि प्रकारें प्रातः सवन माध्यन्दिन सवन तृतीय सवन सैव इह है ॥  
यद्वा यास्कानुसारेण व्याख्येयः निरूप्य १७० चत्वारो वेदाः शृ-  
ङ्गाणि त्रयः पादाः सवनानि द्वे शीर्षे प्रायणी योदयनीये सप्त ह-  
स्ताः गायत्र्यादि सप्त छन्दांसि त्रिधा बद्धः मन्त्रब्राह्मण कर्त्तव्ये वैदः ॥  
शब्दग्रामो वायतन्त्यनुसारेण। चत्वारि शृङ्गाणि नामाख्यातो य-  
सर्गनिपाताः त्रयः पादाः प्रथमपुरुष मध्यमपुरुषोत्तमपुरुषाः  
त्रयः काला वा द्वे शीर्षे कार्यता व्युद्भूते सप्तहस्ताः विभक्तिरूपः  
त्रिधा बद्धः एकवचन द्विवचन बहुवचनैर्वैदः। वृषभ इवायमन्य-  
शास्त्राणि अधः कृत्वा रोरवीति सोऽयं महान्देवो मर्त्यो नाविवेश  
आविशति प्रतिपादयति मनुष्येष्विति मनुष्याधिकारत्वाच्चा-  
स्त्रस्येति न्यायात् ॥ ६१ ॥

त्रिधा हितं पणिभिर्गुह्यमानं गवि देवा सोऽघृतमन्त्रवि

श्री  
महति पुज्यति महति वा  
रिति भावः  
+ मत्तु र्काम्यहविर्धाने की वा  
+ मत्तु र्काम्यहविर्धाने की वा  
+ मत्तु र्काम्यहविर्धाने की वा  
+ मत्तु र्काम्यहविर्धाने की वा



न्दन्। इन्द्र एकं सूर्य एकं जजान वेनादे कथं स्वधया  
निष्टतक्षुः॥४२॥

नीनि प्रकारों से इन लोकों में स्थापित यज्ञ परिणामभूत घृत को प  
णिभिः असुरों से गुप्यमान होते देवासः देवता धेनुविधे आनु पू  
र्व्यात् पाते हुए। तिसके एक भाग को इन्द्र उत्पन्न करता हुआ तेवा  
एते आहुति होते उत्क्रामतस्ते अन्नरिक्षमाविशत इत्यादि श्रुति  
षु इन्द्रस्य जनकत्वं दर्शयति। सूर्य एक भाग को उत्पन्न करता हुआ  
तत उत्क्रामतस्ते दिवमाविशत इत्यादि श्रुतिः सूर्यस्य घृतभाग  
जनकत्वं दर्शयति। वेनात् यज्ञसाधनभूत अग्निसे एक को स्वध  
या वेताहुति लक्षण अन्न करिके द्विजातिलोग निकालते हुए य  
स्ततः पुत्रो जायते स लोक प्रत्पुत्यायीत्येतदुक्तं भवति॥४२॥

एता अर्षन्ति हृद्यात्समुद्रा छतत्रजा रिपुणा नावचक्षे।  
घृतस्य धारा अभिचाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्ये  
आसात्॥४३॥

एता वाच ऊँची चलती हैं कहां से कि हृदय समुद्र (अद्वैतकलुषतदेव  
ताया थात्म्यचिन्तन सन्तानरूप निगम निरुक्त निघण्टु व्याकरण  
शिक्षा छन्द करि पवित्रों से) कैसी वाणी है कि शतब्रजाः बहुत हैं  
गति हैं जिन्हों की अर्थात् बह्वर्ष्या। और जे चलती हुई रिपु (कुता  
किक वृन्द शत्रु) करि नहीं खण्डित हो सकतीं ते घृत की धारा ऐसे  
देखता हूं। और इन वाचाओं के मध्य में जो हिरण्य य दीप्यमान  
वेतस (अग्नि) है तिसै देखता हूं\*॥ यद्वा घृत धारा एवोच्यन्ते जे ए

† अग्निदेवाचा मधिष्ठात्री देवता

ता हृदय समुद्रसंघतधाराचलतीहैं हृदयेन संकल्प्य यजनाद्ब्रह्मा  
दुद्गतिरित्युच्यते। शतवृक्षा नानागतयः। और जे यज्ञपरिपन्थिदे  
खने नहीं सकते ते घृतधारा देखताहूँ। और जो यह हिरण्ययज्ञा  
हवनीय अग्नि इन धाराओं के मध्यमें स्थित है तिसंभी देखताहूँ  
अर्थात् द्रव्य और देवता को याथातथ्येन में देखताहूँ ॥८३॥

सम्यक् सवन्ति सुरितो न धेना अन्तर्हृदा मनसा पूयमा  
नाः। एते अर्षन्त्यूर्मे यो घृतस्य मृगा-इव क्षिपुणो रीष  
माणाः ॥८४॥

जे धेनाः-वाणियें नदी हैं जेसे अनवच्छिन्न प्रवाहाः भले प्रकार प्रसर  
तीहैं। कैसीहैं धेनाः कि शरीरान्तरव्यवस्थित हृदय पावन स्थानीय  
और मन करि पूयमान (शब्द दोषों से विविच्यमान हैं) वे अग्निको ही  
स्तुति करतीहैं इति शेषः। और जे एते घृत की कल्लों लें सुक्परिभृष्टाः  
चलतीहैं वे भी अग्निको तर्पण करतीहैं इति शेषः। तत्र दृष्टान्तः क्षि  
पुण (व्याध) से पलायमाना मृग जैसे अर्थात् जे घृत की कल्लों लें  
चलतीहैं वे अग्निको तर्पण करतीहैं। श्रुति द्रव्य चाग्न्यर्थ मेवे  
ति भावः ॥८४॥

सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति य  
द्वाः। घृतस्य धारा अरुषो न वाजी काष्ठा भिन्दन् नूर्मि  
भिः पिन्व मानः ॥८५॥

घृत की धाराएँ सुन्दुरब से गिरतीहैं। कैसी धाराएँ कि यद्वाः (ब  
ड़ी) तत्र दृष्टान्तद्वयम् जैसे नदीओं के वात प्रमियः (तरङ्ग) विष

म प्रदेशमें गिरते हैं तब तू कैसी है तरङ्ग कि श्रूषणासः क्षिप्र है गम  
नजिहोंका । अन्यो दृष्टान्तः जैसे अरुषः जात्यादि से उत्क्राष्ट अ  
श्वः पतति टपकता है । तैसे काष्ठाः । आज्यन्तों (संग्रामप्रदेशोंको) विदीर्ण  
करते ऊर्मि (काष्ठाभेद) नोत्थ्रमस्वेदोदक से भूमि को सींचते वोह  
अश्व जैसे गिरकर अन्तों को खाता है एवं पतन्ती घृतधारा अग्नि  
भक्षण करता है ॥ ६५ ॥

अभिप्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्यः स्मयमानासोः  
अग्निम् । घृतस्य धाराः समिधो न सन्त ता जुषाणे हर्य  
ति जात वेदाः ॥ ६६ ॥

घृत की धारा अग्नि प्रति जाती है । तत्र दृष्टान्तः योषा इव जैसे स्त्री  
पति को । कैसी स्त्रियाँ कि समान हैं मन जिन्होंके रूप यौवन सम्यक्-  
थोड़ी हैं सती हैं । ने धारा हैं अग्नि को हरती वा व्याप्त होती हैं । कैसी धा  
रा हैं कि समिधः दीप्त करती हैं अग्नि को । किंच जात वेदाः जात प्र  
ज्ञानोऽग्निः प्रीतियुक्तः सन् ते घृत की धारा हैं हर्यति प्राप्त होता वा  
कामना करता है नास्य ग्रहण शक्ति परिहरण मस्तीति भावः ॥ ६६ ॥

कन्या- इव बहू मेत वाऽऽ अक्ष्यज्ञाना अभिचाक-  
शीमि । यत्र सोमः सूपते यत्र यज्ञो घृतस्य धारा अभि  
तप्यन्ते ॥ ६७ ॥

घृत की धारा हैं तहां जाती हैं । कहां कि जिस स्थान में सोम (लतावि  
शेषः) अभिषवण करिये हैं और जहां यज्ञ (सौत्रामण्याख्य) क  
रिये हैं तहां घृत की धारा हैं देखता हूं । तत्र गमने दृष्टान्तः जैसे क

न्या अज्जि (भग) को अज्जानाः (व्यक्त) योग्य करिके प्रति प्रति प्राप्त होती हैं तैसे यज्ञ प्रति घृत धारा जाती हैं अर्थात् तापयज्ञ सहिता घृत धाराएं देखता हूं ॥ ४७ ॥

अभ्युर्वत सुष्टुतिं गव्यं माजिस्मासु भद्रं द्रविणानि  
धत्त । इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत्य  
वत्से ॥ ४८ ॥

हे देवताओं तुम शोभमा स्तुति और आजि (यज्ञ) प्रति सर्वतः आओ। कैसे यज्ञ प्रति कि गव्य (घृत) है विद्यमान जिसे मैं। और आकर हमारे कल्याणों और धर्मों को स्थापन करे वा देओ। किंच हमारे इस यज्ञ (सौत्रामणी) को देवता देवतासु देवलोक में प्राप्त करे। किंच जे ये घृत की धारा रसवती जैसे तैसे प्रसरती हैं तिन्हें भी देवलोक विषं प्राप्त करे अर्थात् यज्ञ द्रव्य के स्वर्ग प्रति जाते यजमान जाता ही है ॥ ४८ ॥

धामन्ते विश्वं भुवनमधि श्रितमन्तः समुद्रे हृद्यन्तस्य  
पि। अपामनी के समिधे य आभृतस्तमश्याममधुम  
न्तं तः ऊर्मिम् ॥ ४९ ॥

इति श्री संहितायां नवमोऽनुवाकः ४

इति श्री शुक्लयजुषि माध्यन्दिनशास्त्रीयायां वाज

सनेय संहितायां दीर्घपाठे सप्तदशोऽध्यायः १७

ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं निखलं जगदाहुति परिणामभूतं मन्यमानो  
मुनिराह। हे अग्ने सब भूत जात तेरी धामन् (विभूति विषे) अधिश्रि

त(आश्रित-स्थित)है अर्थात् त्वन्महिमोत्थ है। और जो समुद्रविषे-  
 तथा हृदयके मध्य तथा आयु(ब्रह्मा के जीवन पर्यन्त)में जो भूत जाते हैं  
 वोह भी तेरी विभूति में स्थित हैं। इस हेतु में प्रार्थना करता हूँ कि रस-  
 वन्त त्वदीय घृत कल्लोल को हम अश्याम(भक्षण करें वा प्राप्त होंवें)  
 तिस किसे कि अपामनीक(सुख विषे जो कल्लोल समिथ(पणिकेसा  
 थ युद्ध)में आहरण किया-त्रिधाहितं पणिभिरिति क० २ उक्तत्वा  
 त्। हविः परिणामी रस के हण भोक्ता होंवें इति भावः देवत्व को प्राप्त  
 होंवें इति वक्रोक्त्या प्रार्थ्यन्तं ॥ यद्वास्या ऋचोऽर्थान्तरमुच्यते। हे अ-  
 ग्ने यह सब भूत जात तेरे धाम विषे अधिश्रित हैं वोह तेरा धाम कहां-  
 कहां यह कहिते हैं कि अन्तः समुद्रे-समुद्र विषे वडवाग्नि रूप करि  
 वा समुद्र अन्तरिक्ष(१)में सूर्य रूप करि हृदि अन्तः-हृदय में जाना  
 गिरूप वा जठराग्निरूप करि आयुषि-अन्न विषे सब प्राणियों के  
 आहार रूप करि अपामनीके-उदकों के संघात में वैद्युताग्निरू-  
 पेण-समिथे-संग्राम में शौर्याग्निरूप करि एवं सब स्थानों में स्था-  
 पित जो तेरा धाम रूप कल्लोल घृत रूप वा उदक रूप तिस तेरे माधुयों  
 पेत को हम प्राप्त होंवें भाव यह है कि सर्व रस भोक्ता रहें ॥ ६६ ॥

इति श्री गिरिधरभाष्येन वमोऽनुवाकः ६

श्री वेदार्थप्रदीपेन तमो हार्दनिवारयन्

पुमार्थाश्चतुरो देया दग्निदेवसनातनः

इति श्री मच्छुक्लपजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनी शाखाध्येतव्या ब्राह्मपादा  
 न्वय विश्वामित्रपुराधिय श्रीमज्जयकिशोरदेववर्मात्मजरोक्मिण्य

नृपतिगिरिप्रसादेनरचिते श्रीवेदार्थप्रदीपेगिरिधरभाष्येसेका  
दिजयपर्यन्तवर्णनोनाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

हरिः ओम्

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं हिरूपं च साधनैर्वेदरूपकम्

स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः १८

वाजश्च मे देवानामार्षम्

अ० १९ वाजश्च मे प्रसवश्च मे प्रयतिश्च मे प्रसितिश्च मे धीतिश्च मे  
क्रतुश्च मे स्वरश्च मे श्लोकश्च मे श्रवश्च मे श्रुतिश्च मे ज्यो  
तिश्च मे स्वश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१॥

ओं नमो याज्ञवल्काय

गिरिप्रसादसंज्ञेन भाष्येऽष्टादश ईर्यते

वसोर्धारादिकोऽध्यायश्चित्युपस्थावसानकः १८

सप्तदशोऽध्याये चित्यारोहणादि मन्त्रा उक्ताः इदानीमष्टादशाऽध्याये  
वसोर्धारादि मन्त्रा उच्यन्ते ॥ का० १८०५१० ततः यजमान आज्य  
को संस्कार करि अर्थपरिमाणं वडी औदुम्बरी सुचा (महता सुचा)  
करिके पञ्चवार गृहीत आज्य को आरण्य विषे अ नूच्य पुरो  
डाश के अधिकरण में तिस ऊपर संतत अविच्छिन्नधार जैसै तैसै  
वसोर्धारा संज्ञा आहुति को होमें घृत में अग्नि प्राप्ति होते वाजश्चे-  
त्यादि होम मन्त्रों का आरम्भ करै अष्ट अनुवाकों वाजश्चेत्यादि वे-  
द स्वाहान्त एकोनत्रिंशत् कण्डिकात्मकों सै ॥ वाजश्च मे चकारः

समुच्चयार्थाः। यज्ञेन इमं मेरे किये यज्ञ करि वाजादयः पशुर्गर्वाः क  
 ल्पन्ताम् कृत्वाः (सम्यन्त्र) होवें अर्थात् वोह यज्ञ वाजादिकों का दण  
 ना हमारे अर्थ होवें अयोः इदं च मे देहीदं च मः इति ४.३.२.५ श्रुते।  
 यद्वा वाजादिक पदार्थ मेरे यज्ञविषे अग्नि को तर्पण वा अभिषि  
 च्चन करे अनेन चत्वा ग्रीणाम्यनेन चत्वाभिषि च्चामीत्यादि ४.३.  
 २.५ श्रुतिः। द्वौ द्वौ कामावनुपक्षयाय संयुज्याच्चकारेण कन्याकु  
 मारविव तथा च श्रुतिः ४.३.२.६ द्वौ द्वौ कामावभिरूपौ संयुनक्त्य-  
 व्यवच्छेदाय यथा व्योक्तौ संयुज्यादिति। अथ पदार्था व्याख्याय-  
 न्ते। वाजश्चेत्यादियजुषां देवा ऋषयः अग्निर्देवता छन्दांसि पिङ्ग  
 लोक्तान्यक्षरसंख्यया ज्ञेयानि। एतैर्यजुर्भिर्यजमानोऽग्नेः कामा  
 न्याचते वाजो मेऽस्त्वित्यादि॥ तत्रैकाधिकानि चतुःशतं यजूषिका  
 मास्तु पञ्चदशोत्तरं शतमातद्यथा। वाजश्चेत्याद्यासु ज्येष्ठं च मे ४ वसुच  
 मे १५ इति कण्डिकाद्वयवर्जितासु एकोनविंशति कण्डिकासु त्रयोदश-त्र  
 योदश यजूषि सन्ति ज्येष्ठं च मः इत्यस्यां ४ पञ्चदश वसुच मः इत्यस्यां-  
 १५ नव। अग्निश्च मे घर्मश्च मः इत्यस्यां २२ द्वादश कामास्तु त्रयोदश  
 अङ्गुलयः शक्ररयो दिशश्च मः इत्येकं यजुः कामास्त्वत्र त्रयः। व्रतं  
 च मः इत्यस्यां २३ षट् कामास्तु दश अहोरात्रेऽर्कवर्षीवे बृहद्रथन्तरे-  
 च मः इत्येकं यजुः षट् कामाः। एका च मः इत्यस्यां २४ त्रयस्त्रिंशत्  
 चतस्रश्च मे २५ अत्र त्रयोविंशतिः। अविश्च मे २६ त्रैकादश। पृष्टवा  
 द्वा मे २७ इत्यत्र नव। वाजाय स्वाहेति २८ अत्र चतुर्दश। आयुर्यज्ञेने  
 ति २९ अत्रैकविंशतिः कल्पन्ता मन्तानि द्वादश १२ स्तोमश्चेति षट् २६

स्वर्देवाः १६ प्रजापतेः २० वेदस्वाहा २१ एकैकं एवमेकाधिका च तुः श  
ती ॥ अथ यजुषामर्थाः ॥ अन्नं अन्नदानाभ्यनुज्ञा देवो भोजन  
करोण्युद्धि बन्धन अन्नविषयोत्सुक्य ध्यान संकल्पवायज्ञ साधु  
शब्द यद्यवन्ध वास्तुति वेदमन्त्रा वाश्रवण सामर्थ्य ब्राह्मण वाश्र  
वण सामर्थ्य प्रकाश स्वर्ग एते मे मम यज्ञेन कल्पन्ताम् कल्पन्ता  
मितिकण्डिकान्तस्य समुदायापेक्षया बहुत्वम् मे-पादानामारुति  
प्रत्येकं प्राप्स्यथी एवं सर्वत्र ॥१॥

प्राणश्च मेऽपानश्च मे व्यानश्च मेऽसुश्च मे चित्तं च मेऽग्राधी  
तं च मे वाक् च मे मनश्च मे चक्षुश्च मे श्रोत्रं च मे दक्षश्च मे ब  
लं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२॥

ऊर्ध्व संचारी शरीरवायु अधोवृत्तिवायु सर्वशरीरचारी प्रवृत्तिमा  
न्वायु मानस संकल्प वाह्यविषयज्ञान वागिन्द्रिय मनः चक्षु इ  
न्द्रिय श्रवणेन्द्रिय ज्ञानेन्द्रिय कौशल कर्मेन्द्रिय कौशलाणतानि  
यज्ञेन मे कल्पन्ताम् ॥३॥

ओजश्च मे सहश्च मेऽआत्मा च मे तनूश्च मे शर्म च मे व  
र्म च मेऽङ्गानि च मेऽस्थीनि च मे परूथंश्च मे शरीराणि  
च मेऽआयुश्च मे जरा च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥४॥

बलहेतु अष्ट मोधातुः शरीरबल वा सपत्नाभिभवित्व पर  
मात्मा रम्यं वपुः सुख कवच हस्ताद्यवयवाः शरीरगत हृदियं  
अङ्गुल्यादि पर्वाणि पूर्वानुक्ताः शरीरवयवाः जीवन वार्धका  
न्त आयु एते यज्ञेन सम्पद्यन्ताम् ॥५॥



ज्येष्ठं च मेऽअधिपत्यं च मे मन्युश्च मे भामश्च मेऽम  
श्च मेऽम्भश्च मे जेमा च मे महिमा च मे वरिमा च मे प्र  
थिमा च मे वर्धिमा च मे द्राघिमा च मे वृद्धं च मे वृद्धिश्च मे  
यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥४॥

प्रशस्तत्वं स्वामित्वं । मानसः कोपः । अधिक्षेपादितिङ्गको वात्यको  
पः । अपरिमेयत्वं । अन्यैरियत्तया परिहेतुमशक्यत्वम् । शीतमधुर  
जलं । जयसामर्थ्यं । सम्पत्त्यादिकरिमहत्वं । प्रजादिविशालता । गृ  
हक्षेत्रादिविस्तारः । दीर्घजीवित्वं । अविच्छिन्नवंशत्वं । प्रभूतमन्न  
धनादि । विद्यादिगुणैः सै उत्कर्षः । एते मे कल्पन्ताम् ॥४॥

अ०२ सुतं च मे श्रद्धा च मे जगच्च मे धनं च मे विश्वं च मे मह  
श्च मे क्रीडा च मे मोदश्च मे जातं च मे जनिष्यमाणं  
च मे सूक्तं च मे सुकृतं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥५॥

यथार्थभावित्वं । परलोकविश्वासः । जङ्गम-गवादि । कनकादि ।  
स्थावरः । दीप्तिः । अक्षय्यतादि । क्रीडादर्शनसैद्ग्य-आहर्षः । पुत्रोत्प  
न्नमपत्यम् । भविष्यदपत्यम् । ऋक्समूहः । ऋक्याऽजान्य शु-  
भादृष्टः । एते कल्पन्ताम् ॥५॥

ऋतं च मेऽमृतं च मेऽश्वत्थं च मेऽनामयश्च मे जीवातुश्च  
मे दीर्घायुत्वं च मेऽनमित्रं च मेऽभयं च मे सुखं च मे शयनं  
च मे सूषाश्च मे सुदिनं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥६॥

यज्ञादिकर्म । तत्फलभूतं स्वर्गादि । धातुक्षयादिरोगाभावः । सामान्य-  
व्याध्यादिरहित्यम् । अधिनाशकमोषधम् । बहुकालमायुः । श

तु राहित्यम् । भीतिराहित्यम् । आनन्दः । संस्तुता शय्या । स्नानसंध्या  
दियुक्तः प्रातःकालः । यज्ञदानादियुक्तं सर्वेदिनम् एते मे यज्ञेनां स  
ध्यन्तु ॥ ६ ॥

यन्ता च मे धर्ता च मे क्षेमश्च मे धृतिश्च मे विश्वं च मे मह  
श्च मे संविच्च मे ज्ञात्रं च मे सूश्च मे प्रसूश्च मे सीरं च मे ल  
यश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ७ ॥

अश्वादिनिर्यन्ता । पोषकः पित्रादिः । विद्यमानधनस्य रक्षणशक्तिः ।  
आपत्स्वपि स्थिरचित्तत्वम् । सर्वानुकूल्यम् । पूजा । वेदशास्त्रादि  
ज्ञानम् । विज्ञानसामर्थ्यम् । पुत्रादि प्रेरण सामर्थ्यम् । पुत्रोत्पत्त्या  
दि सामर्थ्यम् । हलादि कृषि कृतधान्यनिष्पत्तिः । कृषि प्रतिबन्ध  
निवृत्तिः ॥ ७ ॥

शं च मे मयश्च मे प्रियं च मेऽनुकामश्च मे कामश्च मे सोम  
नसश्च मे भगश्च मे द्रविणं च मे भद्रं च मे श्रेयश्च मे वस  
यश्च मे यशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ८ ॥

ऐहिक सुख । आमुष्मिक सुख । प्रीत्युत्पादक वस्तु । अनुकूल य  
त्न साध्य पदार्थे । विषयभोगजनित सुख । मनः स्वास्थ्यकरावन्धु  
वर्ग । सोभाग्यधन । ऐहिक कल्याण । पारलौकिकश्रेय । निवास  
योग्य वसुमानुदादि । कीर्ति एते कल्पन्ताम् ॥ ८ ॥

अ०३ कर्कमे सूनृता च मे पयश्च मे रसश्च मे घृतं च मे मधु च  
मे सग्धिश्च मे सर्पातिश्च मे कृषिश्च मे वृष्टिश्च मे जैत्रं च  
मेऽशोद्धिद्यं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ९ ॥

अन्न। प्रियासत्यावाक्। दुग्ध। तत्रत्यः सारः। आज्य। क्षौद्र। बन्धुः श्रेष्ठः।  
हितभोजन। बन्धुः-तपान। कृषिकृतधान्यसिद्धिः। धान्यनिष्पादि-  
कानुकूलावृष्टिः। जयसामर्थ्यं। चूतादिदृक्षोंकी उत्पत्ति। एते यज्ञे-  
न कल्पन्ताम् ॥४॥

रयिश्च मे रायश्च मे पुष्टं च मे पुष्टिश्च मे विभुश्च मे प्रभुश्च मे  
पूर्णं च मे पूर्णतरं च मे कुर्यवं च मेऽक्षितं च मेऽन्नं च मेऽ-  
क्षुश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१०॥

सुवर्णं। मुक्तादिमणयः। धनपोषः। शरीरपोषकः। व्याप्तिसामर्थ्यं।  
ऐश्वर्यं। धनपुत्रादिबाहुल्यम्। गजतुरगादिबाहुल्यम्। कुत्सितधा-  
न्यमपि। क्षयहीनं धान्यादि। अन्नमोदनादि। भुक्तान्नपरिपाकः।  
एते कल्पन्ताम् ॥१०॥

वित्तं च मे वेद्यं च मे भूतं च मे भविष्यच्च मे सुगं च मे सु-  
पथ्यं च मेऽऋक्षं च मेऽऋक्षिश्च मे कृत्तिश्च मे मतिश्च मे  
सुमतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥११॥

पूर्वलब्धवित्तम्। लब्धव्यम्। पूर्वसिद्धं क्षेत्रादि। सम्पत्स्यमानं क्षेत्रा-  
दि। सुखगम्योद्देशः। शोभनहित। समृद्धयज्ञफल। यज्ञादिसमृद्धिः।  
कार्यक्षेमं दृष्ट्यादि। स्वकार्यसामर्थ्यं। पदार्थमात्रकानिश्चयः। दुर्व-  
टकार्यादिविषे निश्चयः। एते यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥११॥

व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे मुद्गाश्च मे ख-  
ल्वाश्च मे प्रियङ्गवाश्च मेऽणवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवा-  
राश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१२॥

ब्रीहिः। अण्डुलविशेषाः। यवाः। माषाः। तिलाः। मुद्गाः। चणकाः। लङ्गाः।  
कङ्काः। कोगुनी। चैना। श्यामाकाः। तृणधान्यानि ग्राम्याणि  
कोश्वत्वेन प्रसिद्धानि। नीवागः। (तृणधान्यान्यारण्यानि।  
गोधूमाः। मसूराः। एतेधान्यविशेषामे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥१२॥  
अ०४ अश्मा चमे मृत्तिका चमे गिर्यश्च मे पर्वताश्च मे सिकता  
श्च मे वनस्पतयश्च मे हिरण्यं च मे ज्यश्च मे श्यामं चमे  
लोहं च मे सीसं च मे त्रुपु चमे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥१३॥  
पाषाणः। मृत्तिका। गोवर्धनावुदरेवतिकादयः। क्षुद्रपर्वताः। मन्दिर  
हिमाचलादयः। महान्तः पर्वताः। शर्कराः। पुष्पविना फलनेवाले  
पनस उदुम्बरादयः। सुवर्णं वा रजतं। लोहा। ताम्रलोहकांस्य रज  
तं वा कनकं। लोहं + सर्वं तैजसं। सीसा। रंगं। एते कार्ये विशेषेषु मे  
कल्पन्ताम्॥१३॥

अग्निश्च मः। आपश्च मे वीरुधश्च मः। ओषधयश्च मे  
क्लृप्यश्च मे। क्लृप्यश्च मे ग्राम्याश्च मे पश  
वः। आरण्याश्च मे वित्तं च मे वित्तिश्च मे भूतं च मे भू  
तिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥१४॥

पृथिवीस्थो वह्निः। अन्तरिक्षस्थानि जलानि। गुल्माः। फलपाका  
न्ताः। भूमिकर्षणबीजवापादि कर्मो सै निष्यादनकी जावे। ब्रीहि  
यवादयः। स्वयमे वोत्यद्यमानाः। नीवारगवेधुकादयः। गोश्च  
महिषश्च अजाश्च अवि गर्दभ उष्ट्रादयः। ग्राम्यपशवः। हस्ति सिंह शर  
भ मृग गदय मर्कटादयः। आरण्यपशवः। पूर्वतन्व्य। भाविलाभः।

जातपुत्रादिक। स्वार्जितमैश्वर्यम्। एतानियज्ञेनममसम्पद्यन्ताम् ॥१४॥  
 वसु च मे वसतिश्च मे कर्म च मे शक्तिश्च मेऽर्थश्च मः  
 एमश्चमः इत्या च मे गतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१५॥  
 धनगवादिक। वासस्थानगृह। अग्निहोत्रादिकर्म। तिन्हों की अनु  
 श्रान सामर्थ्य। अभिलषितः पदार्थः। प्राप्तव्योऽर्थः। इष्टप्राप्त्युपा  
 यः। इष्टप्राप्तिः। एते कल्पन्ताम् ॥१५॥

अ० ५ अग्निश्च मः इन्द्रश्च मे सोमश्च मः इन्द्रश्च मे सविता  
 च मः इन्द्रश्च मे सरस्वती च मः इन्द्रश्च मे पूषा च मः इ  
 न्द्रश्च मे बृहस्पतिश्च मः इन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१६॥  
 अर्थार्धेन्द्राणि जुहोति ६.३.२६ अर्थस्येन्द्रदेवत्यत्वादर्थस्य नाना  
 देवत्यत्वात्। अग्नि सोम सवित सरस्वती पूष बृहस्पतयः प्रसिद्धाः ते  
 समानभागत्वादिन्द्र एकैकया सह पठ्यते। यास्कोक्ता इन्द्रशब्दस्य ना  
 नार्थाः कार्याः एवमग्रेऽपि कण्डिकाद्वये। एते कल्पन्ताम् ॥१६॥  
 मित्रश्च मः इन्द्रश्च मे वरुणश्च मः इन्द्रश्च मे धाता च मः  
 इन्द्रश्च मे त्वष्टा च मः इन्द्रश्च मे मरुतश्च मे विश्वे च मे  
 देवा इन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१७॥  
 मित्रवरुणधातृत्वष्टामरुद्विश्वेदेवाः प्रसिद्धाः। प्रत्येकमिन्द्रः। एते  
 कल्पन्ताम् ॥१७॥

पृथिवी च मः इन्द्रश्च मेऽन्तरिक्षं च मः इन्द्रश्च मे द्यौ  
 च मः इन्द्रश्च मे समाश्च मः इन्द्रश्च मे नक्षत्राणि च  
 मः इन्द्रश्च मे दिशश्च मः इन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्प-



प्रापन्नो ध्रुवो वैश्वानर शब्दे नोच्यते । मरुत्वतीया इति बहुवच-  
नं त्रित्वात् मरुत्वतीयो महामरुत्वतीयः कुण्ड मरुत्वतीयश्चेति ।  
अभिषेचनीये सारस्वतीनामर्पो ग्रहणमेव सारस्वती ग्रहसारस्व-  
तं ग्रहं गृह्णातीति तत्राभ्यानात् ॥ २० ॥

सुचश्च मे चमसाश्च मे वायव्यानि च मे द्रोणकलशश्च  
मे ग्रावाणश्च मे अधिषवणे च मे पूतभृच्च मे आधव-  
नीयश्च मे वेदिश्च मे बर्हिश्च मे वभृथश्च मे स्वगाका-  
रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २१ ॥

सुचो जुहादयः । चमसानि ग्रहपात्राणि । वायव्यानि पात्रविशे-  
षाः । अधिषवणे काष्ठफलके । पूतभृदाधवनीयो सोमपात्रविशे-  
षो । स्वगाकारः शम्पुवाकः तेन यथास्वं देवतानां हविरङ्गीकारत्-  
प्रसिद्धमन्यत् । एते मम यज्ञेन निमित्तेन कल्पन्ताम् ॥ २१ ॥

अग्निश्च मे घर्मश्च मे र्कश्च मे सूर्यश्च मे प्राणश्च मे  
अश्वमेधश्च मे पृथिवी च मे गदितिश्च मे दितिश्च मे द्यौश्च  
मे अङ्गुलयः शक्करायो दिशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २२ ॥

कण्डिकाद्वयेन यज्ञक्रतुहोमः अथैतान्यज्ञक्रतूजुहोत्यग्निश्च  
म इति ८.३.३.१ श्रुतेः । अग्निः चीयमोनो वह्निरग्निष्टोमो  
वा । घर्मः प्रवर्ग्यः । इन्द्रायार्कवते पुरोडाशमिति विहितौ यागो  
र्कः । सौर्यं चरुमिति विहितः सूर्यः । प्राणोगवामयनम् । अश्वमेधः  
प्रसिद्धः । पृथिव्यदितिदितिदिवो देवताविशेषाः । अङ्गुलयः विरा-  
ट्पुरुषावयवाः । शक्करयः शक्तयः । दिशः प्राच्याद्याः । एते य

ज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२२॥

व्रतं च मः ऋतवश्च मे तपश्च मे संवत्सरश्च मे होरा  
त्रैऋतवर्षीवे बृहद्रथन्तरे च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२३॥

व्रतं नियमः । ऋतवो वसन्तादयः । तपः कच्छं चान्द्रायणादि । सं  
वत्सरः प्रभवादिः । अहश्च रात्रिश्चाहो रात्रे दिननिशो । ऊरुचाष्टी  
वन्तो जानुनी च ऊर्वशीवे अवयव विशेषो । बृहद्रथन्तरे ए  
तन्नाम के सामनी । एतानि कल्पन्ताम् ॥२३॥

एका च मे तिस्रश्च मे तिस्रश्च मे पञ्च च मे पञ्च च मे  
सप्त च मे सप्त च मे नव च मे नव च मः एकादश च मः  
एकादश च मे त्रयोदश च मे त्रयोदश च मे पञ्चद  
श च मे पञ्चदश च मे सप्तदश च मे सप्तदश च मे  
नवदश च मे नवदश च मः एकविंशतिश्च मः ए  
कविंशतिश्च मे त्रयोविंशतिश्च मे त्रयोविंशति  
श्च मे पञ्चविंशतिश्च मे पञ्चविंशतिश्च मे सप्तविं  
शतिश्च मे सप्तविंशतिश्च मे नव विंशतिश्च मे नव  
विंशतिश्च मः एकत्रिंशच्च मः एकत्रिंशच्च मे त्र  
यस्त्रिंशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२४॥

अप्युग्मस्तोमहोमार्थी मन्त्राः अथायुज स्तोमाज्जुहोतीति ३.३.२  
श्रुतेः । एकमादाय द्वितीयां विहाय तृतीयामादाय चतुर्थीं विहाय  
परित्यक्त समसख्याकेनात्तविषमसख्याकेन मन्त्रेण युग्मान्स्तोमा  
ज्जुह्यादित्यर्थः । आदरातिशयद्योतनार्था सर्वत्र पुनरुक्तिः ।



अयुग्मस्तोम होमैः सर्वकायावाप्तिः तथा श्रुतिः ४.३.३.२ एतद्वै  
देवाः सर्वान्कामानाप्तायुग्भि स्तोमैः स्वर्गं लोकमायैस्तैश्चैवेनक्ष-  
जमानाः सर्वान्कामानाप्तायुग्भि स्तोमैः स्वर्गं लोकमेतीत्यादि ॥२४॥

चतस्रश्च मे ऽष्टौ च मे ऽष्टौ च मे द्वादश च मे द्वादश च मे  
षोडश च मे षोडश च मे विंशतिश्च मे विंशतिश्च मे  
चतुर्विंशतिश्च मे चतुर्विंशतिश्च मे ऽष्टाविंशतिश्च मे  
ऽष्टाविंशतिश्च मे द्वाविंशच्च मे द्वाविंशच्च मे षट्त्रिं-  
शच्च मे षट्त्रिंशच्च मे चत्वारिंशच्च मे चत्वारिं-  
शच्च मे चतुश्चत्वारिंशच्च मे चतुश्चत्वारिंशच्च मे  
ऽष्टाचत्वारिंशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२५॥

एक कण्डिकाया युग्मस्तोमान्जुहोति अथ युग्मतो जुहोति चतस्र-  
श्च मऽइति ४.३.३.४ इथमं चतस्र इत्येतां संख्यामादाय चतु-  
रुत्तरत्वेन स्थितान्युग्मानस्तोमानष्टा चत्वारिंशत्पर्यन्तान्जुहुया-  
दित्यर्थः । तत्फलं स्वर्गप्राप्तिः एतद्वै छन्दार्थस्यब्रुवन्त्यातयामा-  
वाऽअयुज स्तोमा युग्मभिर्विंशतिं स्तोमैः स्वर्गं लोकमयामेति न-  
थैतद्यजमानो युग्मभि स्तोमैः स्वर्गं लोकमेतीति ४.३.३.५ श्रुतेः ।  
पूर्व-पूर्वमुत्तरेण सम्यधाति वृक्षारोहणवत् तथा च श्रुतिः । ४.३.  
३.६ पूर्व-पूर्वमुत्तरेणोत्तरेण संपुनक्ति यथा वृक्षं रोहन्नुत्तरामु-  
त्तरार्धं शार्वार्धं समालम्भ्य रोहेनावृत्तदिति अत्रोक्ता संख्या सं-  
ख्येषानिष्ठा । एते यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२५॥

अविंश्च मे अवी च मेदित्यवाद् मेदित्योही च मे प

आविश्च मे पञ्चावी च मे त्रिवत्सश्च मे त्रिवत्सा च मे  
तुर्यवाट् मे तुर्योही च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २६ ॥

कण्डिकाद्वयं वयोहो मे विनियुक्तम् । तथा च श्रुतिः । २६.३.३.७. अ  
थ वयाधंसि जुहोति अविश्च मद्रति पशवो वै वयाधंसि पशुभि  
रंवेन मे तदन्नेन ग्रीणात्यथो पशुभिरेवेन मे तदन्नेनाभिषिञ्चती  
ति ॥ डेटवर्षका वृषभः । तैसी गो । दो वर्षका वृषभः । तैसी गो । ढाई व  
र्षका । तैसी । तीनि वर्ष । तैसी । साटे तीनि वर्ष । तैसी । एते य  
ज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २६ ॥

पष्ठवाट् मे पष्ठोही च मः उक्षा च मे वशा च मः ऋष  
भश्च मे वेहश्च मे ऋद्धाश्च मे धेनुश्च मे यज्ञेन कल्प  
न्ताम् ॥ २७ ॥

चारिवर्ष । तैसी । सेचनक्षमो वृषः । वन्ध्या गो । अतियुवांबेल ।  
गर्भधातिनी गो । शकटवहन समर्थ वृष । नव प्रसूता गो । एते मम  
यज्ञेन निमित्तेन कल्पन्तां स्वस्वव्यापार समर्था भवन्तु यद्वा यज्ञे  
न मम कल्पन्तां मह्यमुपभोगक्षमा भवन्त्वित्यर्थः एवं पूर्वत्र ॥ २७ ॥

अ० ८ वाजाय स्वाहा प्रसवाय स्वाहा पिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा व  
सवे स्वाहा हूर्यते ये स्वाहान्ते मुग्धाय स्वाहा मुग्धाय वेनर्षिना  
य स्वाहा विनर्षिनेऽपान्त्याय नाय स्वाहान्त्याय भो  
वनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहा धि पतये स्वाहा प्र  
जापतये स्वाहा । दूर्यते राणिमत्राय यन्तासि यमनऊ  
र्जे त्वा वृष्ट्यै त्वा प्रजानां त्वाधि पत्याय ॥ २८ ॥

नयोऽव्ययः  
कालः तयोऽव्ययः  
अविष्वासात्मकः  
अविष्वासात्मकः  
अविष्वासात्मकः

अथ नाम ग्राह होमः तथा च श्रुतिः ४.३.३.८. अथ नाम ग्राहं  
 जुहोति वाजाय स्वाहेत्येतद्वै देवाः सर्वान्कामानाप्नाथैतमेव प्र  
 त्यक्षमप्रीणं सत्यैवेतद्यजमानः सर्वान्कामानाप्नाथैतमेव प्रत्य  
 क्षं प्रीणातीति । वाजो अन्नं तस्मै स्वाहेति होम मन्त्रः वाजादीनि  
 चैत्रादि महीनां के नाम हैं तिन नामों की लेके होमें इत्यर्थः॥ वाजः  
 अन्न की प्रचुरता से चैत्र अन्न रूप है । प्रसवः अनुज्ञा रूप (जल-  
 क्रीडादिक में अनुज्ञादान से) वैशाखः॥ अपिजः जल से उत्पन्न  
 (जल की डारतत्वात् ज्येष्ठः॥ कतुः यागरूपत्वात् तुर्मस्यादियाग प्रा  
 चुर्यात् अषाढः॥ वसुः वासकरता (चातुर्मस्ये यात्र निवेधात् आवणः॥  
 अहर्षतिः दिनों का स्वामी सूर्य (तापकरत्वात् भाद्रपदः॥ मुग्धमहः तुषा  
 रदि करि मोहरूपदिवरा आश्विना मुग्धवै नर्दं शिनः॥ अल्पघटिका  
 वत्वेन विनाशशीलः स्नाननियमादिकरि पापनाशकत्व से अमुग्धः  
 कार्तिकः॥ अविनर्दं शिनः (विनाशरहित) आन्त्यायनः (सर्वों के नाश में)  
 अविशिष्ट विष्णु रूप मार्गेश्वरः॥ आन्त्य भौवनः लोकस्वरूप (पृथिवी)  
 रत्वात् जाठरग्नि दीप्तिकरत्वेन पौषः॥ भुवनस्य पति भूतजातका  
 पति (स्नानादिना पुण्यजनकत्वात् पालकत्वं माघः॥ अधिपतिः अ  
 धिक पालक (वर्षान्तत्वात् फाल्गुणः॥ प्रजापतिः एवं द्वादशमासाधि  
 ष्ठात् प्रजापति नामक देवता के अर्थः॥ स्वाहेति होमार्थे सर्वत्र॥ हे  
 अग्ने यह ते राज्य (जहां-जहां यज्ञ करिये हैं वोह तेरा ही राज्य है।  
 किंच हे अग्ने तू मित्र (यजमान) का नियामक है। केंसां हे तू किनिय  
 न्ता । अग्निष्टोमादिकर्मों में सर्वों को नियमकर्ता । अतः ऊर्ज वि



चनम्; अनेन वसोर्धारायाः सर्वकाम प्राप्तिहेतुत्वमुक्तम्। वेदस्वा  
हेति वसोर्धारा होमार्था मन्त्रः वेडिति वषट्कारः। वषट्कारे हैष परोऽ  
सं यद्वेङ्कारे वषट्कारेण वावै स्वाहाकारेण वा देवेभ्योऽन्नं प्रदीयत इ  
ति ६.३.३.१४ श्रुतेः ॥ इति वसोर्धारा होम मन्त्राः समाप्ताः ॥ २६ ॥

अ० ४ वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदिति नाम ववसा करामहे  
यस्यामिदं विश्वं भुवनमाविवेश तस्यां नो देवः सविता  
धर्मं साविषत् ॥ ३० ॥

का० १८.५.४.५ क्षेत्रवपवत्सर्वोषध को उदुम्बर चमस में भरिके-  
तिस सर्वोषध चमसवत् चतुष्कोणपुष्कर उदुम्बर सुवासे वाजस्ये म  
प्रसव इति ६.२३-२४ वाजपेय सम्बन्धी वाजप्रसवीय सप्तमन्त्रों से हो  
मिके वाजस्य नु प्रसवे इत्यादि आम्निक वाज प्रसवीय सप्तमन्त्रों से प्र  
तिमन्त्र तिस ही सर्वोषध और सुवा करि होमें ॥ व्याख्याता ६.५ ॥ ३० ॥

विश्वेऽद्य मरुतो विश्वं ऊती विश्वे भवन्त्वग्नयः समि  
द्धा ॥ विश्वे नो देवा अवसा गमन्तु विश्वमस्तु द्रविणं वा  
जोऽग्नये ॥ ३१ ॥

लु शोधाना कष्टा वैश्वदेवी विष्टुः। आज के दिन में सब मरुतः सप्तकणः  
आवें। और भी सब देवता गण अष्टबसुद्वादशादित्य एकादश रुद्र इस्त  
र्पण निमित्त करि आवें। विश्वे देवा और गण देवता हमारे अन्न (हवि नि  
मित्तम) करि हवि ग्रहण के अर्थ आवें और तिन के आगमन से सब अ  
ग्नि (गार्हपत्यादय) भले प्रकार दीप्त हों। वे अश्वीतूतिहों के अर्थ होमने  
से। तिन देवताओं की तुष्टि से सब धन गो भूहि रण्यादि और अन्न हमारे

रेंहो॥३१॥

वाजो नः सप्त प्रदिशाश्चतस्रो वा परावतः॥ वाजो नो विश्वेदे

वैर्धनं साता विहावतु॥३२॥

तिस्रोऽन्नदेवत्याः तत्राद्यानुष्टुप् द्वे त्रिष्टुभौ॥ हमारे को अन्न सप्त प्रदिशाः

भूरादि तीनों लोक प्राच्यादि चारों दिशाएँ और परावतश्चतस्रः महर्जन

स्तपः सत्याख्याः समन्तात् पूरण करें इति शेषः वाशब्दश्चार्थः यद्वा हम

रे दिये अन्न करि सप्त प्रदिशाः और चतस्रो महाराद्या नृप होवें । किंचिद

न सातौ धन के सम्भजन काल की प्राप्ति में अन्न हमें विश्वेदेवाओं स

हित पालन करें इह इल्लोक वा यज्ञ में जब हमें धनेछा होवें तब हम

रें देव तर्पण क्षम बह्वन्न हो इति वाक्यार्थः॥३२॥

वाजो नोऽद्य प्रसुवाति दानं वाजो देवाँ २॥ ऋतुभिः क

ल्पयाति । वाजो हि मा सर्ववीरं जजान विश्वा आशा वा

जपतिर्जपेयम्॥३३॥

आज के दिन में अन्न अन्नाधिष्ठात्री देवता हमें प्रेरणा करें अनुज्ञा

देवैरानार्थ को इति शेषः अर्थात् अन्न दानेछा हमें होवै । अन्न देव

ताओं सहित यथास्थान कल्पना करें अर्थात् जिस काल में जो देवता

यष्टव्य हैं तिसे तहां पूजें और + अन्न मुझे सर्ववीर पुत्रपौत्रादि पुत्र

करें । ततः वाजपतिः समृद्धान्न होकर मैं सब दिशाएँ नीतूँ अर्थात्

सब दिशाएँ अन्न दान से वशी करूँ॥३३॥

वाजः पुरस्तादुत्तमं धृतो नो वाजो देवान्नुविषा वर्धया

नि । वाजो हि मा सर्ववीरं चकार सर्वा आशा वाजपति

+ प्रकृष्टेन शब्देन प्रकृष्टं लोकां पदिशाः प्राच्या  
द्याः परावक्त्रे दूरार्थः महाराद्याः महाराजाः  
मतीत्यवर्तते।

# हिंसाकाराः

भवेयम् ॥३४॥

अन्न हमारे साम्ने हो और हमारे घर के मध्यमें हो। अन्न हमारे हविक  
रिके देवताओं की पोंषे। और अन्न मुझे पुत्रपौत्रादियुक्त करे। अन्न पा  
लकहोके में सब दिशाएँ हों ऊँ दिगूपता व्यापकता प्रार्थ्यते यद्वा  
सब दिशाएँ वशी करूँ ॥३४॥

सं मा सृजामि पयसा पृथिव्याः सं मा सृजाम्यद्भिरेष  
धीभिः। सोऽहं वाजर्हं सनेयमग्ने ॥३५॥

आग्नेय्यो द्वे विराजौ। हे अग्ने जो में पृथिवी सम्बन्धि पय (रस) करि  
के आत्मा (अपने) को संयुक्त करता हूँ। जल और ओषधि ओं से प्रा  
हूँ। सो में पय जल ओषधि ओं से संयुक्त शरीर होके अन्न को सम्म  
जूँ। यद्वा व्यत्ययेन हे अग्ने जो में पृथिवी के पय जल और ओ  
षधि ओं में तुझे संयुक्त करता हूँ सो में अन्न को सम्मजूँ ॥३५॥

पयः पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो  
धाः। पय स्वतीः अदिशः सन्तु मह्यम् ॥३६॥

हे अग्ने तू पृथिवी विषे रस को स्थापन करि। और ओषधि ओं  
में र-रि। स्वर्ग में ०। और अन्तरिक्ष में र-। किंच मेरे अर्थ विषे  
दिशा और विदिशा रस युता हो में अर्थात् आहुति परिणामेन पृ  
थिव्या दयो ममाभीष्टा हो में ॥३६॥

देवस्य त्वासवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाह्व्यां पूषणो हस्ता  
भ्याम्। सरस्वत्यै वाचो यन्तु र्यज्ञेऽग्नौः साम्राज्येना  
भिरिञ्चामि ॥३७॥ + दे-म। अ-स-मि। इ० ॥ ३७॥

का० १८.५.६-६. कर्मोपवर्गमें औदुम्बर चतुष्कोणस्तुवको आहवनी  
 यमें डालिकर अग्निपुच्छसे उत्तरदिशामें परिश्रितसंलग्नश ग्रीव उ  
 त्तरक्षीम कृष्णजिनको फैलाकर तहां स्थित ब्रह्मवर्चसकामो यजमा  
 न चयनकृत अन्वारम्भ अध्वर्यु करि सर्वोषधसे सींचियेहै। क्पाक  
 रिके किसर्वोषध शेषमें जल डालिके अभिषेकस्यैव द्रव्यसाध्यत्वात्  
 अपर्यपूर्वपक्षः सिद्धान्तमाह अथवा क्षीरोदकसे पूर्वपक्षनिरासे शेष  
 जलसे कोन क्यों कि तहां क्षीरोदकहै वाजपेयिकानीति श्रुतेः ४.३.४.७. य  
 हां वाजपेयसम्बन्धी वाजप्रसवीय सुनियेहें तहां उदकक्षीरहें तिनहें ही  
 उदुम्बरे पात्रे अप आसिच्य पयश्चेत्युक्तेः का० १४.५.२०. दसकारणति  
 स में मिश्रितहीसे अभिषेकहै नही है जलसेक इत्यर्थः ॥ देवस्य त्वा प्रा  
 वृ० व्याख्यातम् १०१० सरस्वत्यै लिङ्गोक्तदेवतम् प्रा-वृ० सरस्वतीसम्ब  
 न्धिनी वाणी और नियन्ता प्रजापति के यन्त्रसे अग्निके साम्राज्य (चक्र  
 वर्तित्व) करिके हे यजमान तुम्हें सींचताहूँ मेरे किये अभिषेकसे वाक्  
 सिद्ध ऐश्वर्य और साम्राज्य तेरे हों इत्यर्थः ॥ ३७॥

अ० १० ऋताषडृतधामाग्निर्गन्धर्वस्तस्योषधयोऽप्सरसो मुदो  
 नामे। सैन इदं ब्रह्म क्षवं पातु तस्मै स्वाहा वाट ता  
 भ्यः स्वाहा ॥ ३८॥

का० १८.५.१६. आज्यसे द्वादश गृहीत लेके विभागसे द्वादशांश  
 करिके ऋतेत्यादि द्वादश मन्त्रोंसे प्रतिस्वाहाकार राष्ट्रमृत्संज्ञा  
 आहुतिहोमें व्यतिथक्त द्वादश मन्त्रोंमें पूर्वो मन्त्रः स्वाहा वाडि  
 त्यन्तः उत्तरस्ताभ्यः स्वाहेत्यन्तः ततः मन्त्र में जे पुल्लिङ्ग हैं-



मवेयम् ॥३४॥

अन्न हमारे साम्ने हो और हमारे घर के मध्यमें हो। अन्न हमारे हविकारिके देवताओं को पोषे। और अन्न मुझे पुत्रपौत्रादियुक्त करे। अन्न पालक हो के में सब दिशाएँ हों ऊँ दिगूपता व्यापकता प्रार्थ्यते यद्वा-  
सब दिशाएँ वशी करूँ ॥३४॥

सं मा सृजामि पयसा पृथिव्याः सं मा सृजाम्यद्विरोष-  
धीभिः॥ सोऽहं वाजर्हं सनेयमग्ने ॥३५॥

आग्नेय्यो द्वे विरजौ। हे अग्ने जो में पृथिवी सम्बन्धि पय (रस) करि के आत्मा (अपने) को संयुक्त करता हूँ। जल और ओषधिओं से सृज हूँ। सो में पय जल ओषधिओं से संयुक्त शरीर हो के अन्न को सम्मज्जूँ। यद्वा व्यत्ययेन- हे अग्ने जो में पृथिवी के पय जल और ओषधिओं से तुझे संयुक्त करता हूँ सो में अन्न को सम्मज्जूँ ॥३५॥

पयः पृथिव्या पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो  
धाः॥ पय स्वतीः अदिशः सन्तु मह्यम् ॥३६॥

हे अग्ने तू पृथिवी विषे रस को स्थापन करि। और ओषधिओं में र-रि। स्वर्ग में ० और अन्तरिक्ष में र-। किंच मेरे अर्थ विषे दिशा और विदिशा रस युता हो में अर्थात् आहुति परिणामेन पृथिव्या दयो समाभीष्टा हो में ॥३६॥

देवस्य त्वासवितुः प्रसवे अश्विनोर्बाहुभ्यां पूषणो हस्ता-  
भ्याम्। सरस्वत्ये वाचो यन्तु र्यत्रैणाग्नेः साम्राज्येना-  
भिषिञ्चामि ॥३७॥ + दे-मा अचस-मि ३० ॥ ३७॥

का० १८. ५. ६४-६५. कर्मापवर्गमें औदुम्बर चतुष्कोणसुवको आहवनी  
यमें डालिकर अग्निपुच्छसे उत्तरदिशामें परिश्रित संलग्न प्राग्ग्रीव उ  
त्तरलोम कृष्णाजिनको फैलाकर तहां स्थित ब्रह्मवर्चसकामो यजमा  
न चयनकृत अन्वारम्भ अध्वर्यु करि सर्वौषधसे सींचिये है। क्या क  
रिके किसर्वौषध शेषमें जल डालिके अभिषेकस्येव द्रव्यसाध्यत्वात्  
अयं पूर्वपक्षः सिद्धान्तमाह अथवा क्षीरोदकसे पूर्वपक्षनिरासे शेषे  
जलसे कोन क्यों कि तहां क्षीरोदक है वाजपेयिकानीति श्रुतेः ४. ३. ४. ७. य  
हां वाजपेयसम्बन्धी वाजप्रसवीय सुनिये हैं तहां उदकक्षीर हैं तिन्हें ही  
उदुम्बरे पात्रेऽप्यशसिच्य पयश्चेत्युक्तेः का० १४. ५. २०. इस कारण ति  
समें मिश्रित हीसे अभिषेक है नहीं है जलसे क इत्यर्थः ॥ देवस्य त्वा प्रा  
वृ० व्याख्यातम् १०१० सरस्वत्यै लिङ्गोक्त देवतम् प्रा० ४० सरस्वती सम्ब  
न्धिनी वाणी और नियन्ता प्रजापति के यन्त्रसे अग्निके साम्राज्य (चक्र  
वर्तित्व) करिके हे यजमान तुम्हें सींचता हूं मेरे किये अभिषेकसे वाक्  
सिद्ध ऐश्वर्य और साम्राज्य तेरे हों इत्यर्थः ॥ ३७॥

अ० १० ऋता षडृतथा माग्निर्गन्धर्वस्तस्योषधयोऽप्सरसो मुदो  
नाम । सैन इदं ब्रह्म क्षवं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ता  
भ्यः स्वाहा ॥ ३८ ॥

का० १८. ५. १६. आज्यसे द्वादश गृहीत लेके विभागसे द्वादशांश  
करिके ऋतेत्यादि द्वादश मन्त्रोंसे प्रतिस्वाहाकार राष्ट्रमृत्संज्ञा  
आहुति होमें व्यतिषक्त द्वादश मन्त्रोंमें पूर्वो मन्त्रः स्वाहा वाडि  
त्यन्तः उत्तरस्ताभ्यः स्वाहेत्यन्तः ततः मन्त्रमें जेषुल्लिङ्ग हैं-

सन इदं ब्रह्मेत्यादीनि तिन व्यवहित पठितों को भी निकालि पठिक  
 र पूर्वमन्त्र सम्पाद्य है. और जे स्त्रीलिङ्ग तस्योषधयोऽप्सरस इत्यादी  
 निहें तिन्हें को उठाय के उत्तरमन्त्र है ॥ द्वादश यजूंषि गन्धर्वाप्सरो  
 देवत्यानि । तत्रायं विभागः । ऋताषाडृतधामाग्निगन्धर्वः सन इदं  
 ब्रह्मक्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाडिति वाडन्तः पूर्वः पूर्वो मन्त्रः तस्योषध  
 योऽप्सरसो मुद्रो नाम ताभ्यः स्वाहेति स्वाहान्त उत्तर-उत्तरो मन्त्रः पू  
 र्वोगन्धर्वदेवत्यः उत्तरोऽप्सरदेवत्यः एवं यच्च कण्डिका स्वप्यग्रे मन्त्र  
 विभागो ज्ञेयः । १। ऋताषाडृतः संहितः २। सुषुम्णाः ३। इषिरः ४। भुज्युः ५।  
 प्रजापतिः ६ इति षण्णं पूर्वमन्त्राणामृताषाडित्यादिनामका गन्धर्वा  
 देवताः तस्योषधयः ७ तस्य मरीचयः ८ तस्य नक्षत्राणि ९ तस्यापः  
 १० तस्य दक्षिणाः ११ तस्य ऋक्सामानि १२ इति षण्णं मुत्तरमन्त्राण  
 मोषध्यादिनामका अप्सरसो देवताः ॥ अथ मन्त्रार्थः ॥ जो अग्निगन्ध  
 र्व है सो हमारे इस ब्रह्म (ब्राह्मण जाति) और क्षत्र (क्षत्र जाति) को रक्षा करे। कैसा  
 है गन्धर्व कि ऋताषाडृत सत्य को सहता अर्थात् असत्य में कुपित होता। तथा  
 ऋतधामा सत्य अविनश्वर धाम जिसका जो ऐसा अग्नि तिस अ  
 ग्नि गन्धर्व के अर्थ स्वाहा वाड (वषट्कारेण) सुहुतमस्तु ॥ १॥ तिस अग्नि  
 गन्धर्व की जो ओषधी हैं (व्रीधाद्या) नाम करिके अप्सरा हैं स्त्रीत्वेन  
 भोग्या हैं। कैसी ओषधी हैं कि मोदित होते हैं मनुष्य जिन्हें सैतिह ओ  
 षधी ओं के अर्थ स्वाहा सुहुतमस्तु ॥ २॥ ३॥

न पुरोसे पूर्वसे जुहो नीत्यादि प्रातः ४. ४. १६-१२। अग्निमन्त्रार्थोदयो नीयः।

संहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्स  
 रस आयुवो नाम । सन इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै-

स्वाहा वाटताभ्यः स्वाहा ॥३६॥

जो सूर्य गन्धर्व सो हमारे व्र०। कैसा है कि सँहितः (भले प्रकार से स्थापन करता है) अहीरात्र को। विश्वसामा (सब साम हैं) प्रतिपाद कत्व करि जिस के वा सर्व साम रूप तिस सूर्य ॥३॥ तिस सूर्य की मरीचि नामा-तेजस्व सरेणवः) अप्सराएँ। कैसी किसमन्तातु मिश्री होती हैं ति न्त मरीचि श्री ॥४॥३७

सुषुम्णाः सूर्य रश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुर्यो नामे। सन इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाटताभ्यः स्वाहा ॥४०॥

जो चन्द्रमा गन्धर्व सो हमारे ०। कैसा कि सुषुम्णाः (शोभन सुखप्रदः) याज्ञिकानां चन्द्रलोकाप्तेरुक्तत्वात्। तथा च सूर्य रश्मिः (सूर्य की सी किरणें) जिसकी। तिसके ॥ तिसकी नक्षत्र +। नामा अप्सराएँ। कैसी रँ कि भेकुर्यः क्रान्ति करती हैं। तिन्हों के ॥ ६॥४०॥

इषिरे विश्वव्यचा वातो गन्धर्वस्तस्यायोऽप्सरसः ऊर्जो नामे। सन इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाटताभ्यः स्वाहा ॥४१॥

जो वायु गन्धर्व सो ह०। कैसा कि इषिरः (शीघ्रगमनः) विश्वव्यचाः (सर्वतो गमनः) तिसके ॥ तिसकी आपः नामा अप्सराएँ। कैसी हैं कि ऊर्जः (धान्य उत्पादन से जिलाती हैं) तिन्हों के ॥ ७॥४१॥

भुजुः सुपर्णे यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा अप्सरसस्तावा नामे। सन इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वा

स्वाहा वाटताभ्यः स्वाहा ॥३६॥  
जो सूर्य गन्धर्व सो हमारे व्र०। कैसा है कि सँहितः (भले प्रकार से स्थापन करता है) अहीरात्र को। विश्वसामा (सब साम हैं) प्रतिपाद कत्व करि जिस के वा सर्व साम रूप तिस सूर्य ॥३॥ तिस सूर्य की मरीचि नामा-तेजस्व सरेणवः) अप्सराएँ। कैसी किसमन्तातु मिश्री होती हैं ति न्त मरीचि श्री ॥४॥३७  
सुषुम्णाः सूर्य रश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुर्यो नामे। सन इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाटताभ्यः स्वाहा ॥४०॥  
जो चन्द्रमा गन्धर्व सो हमारे ०। कैसा कि सुषुम्णाः (शोभन सुखप्रदः) याज्ञिकानां चन्द्रलोकाप्तेरुक्तत्वात्। तथा च सूर्य रश्मिः (सूर्य की सी किरणें) जिसकी। तिसके ॥ तिसकी नक्षत्र +। नामा अप्सराएँ। कैसी रँ कि भेकुर्यः क्रान्ति करती हैं। तिन्हों के ॥ ६॥४०॥  
इषिरे विश्वव्यचा वातो गन्धर्वस्तस्यायोऽप्सरसः ऊर्जो नामे। सन इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाटताभ्यः स्वाहा ॥४१॥  
जो वायु गन्धर्व सो ह०। कैसा कि इषिरः (शीघ्रगमनः) विश्वव्यचाः (सर्वतो गमनः) तिसके ॥ तिसकी आपः नामा अप्सराएँ। कैसी हैं कि ऊर्जः (धान्य उत्पादन से जिलाती हैं) तिन्हों के ॥ ७॥४१॥  
भुजुः सुपर्णे यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा अप्सरसस्तावा नामे। सन इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वा

वृताभ्यः स्वाहा ॥४२॥

जो यज्ञ गन्धर्व सोह ॥ कैसाकि भुज्युः पालन करता है भूतोंको।  
सुपर्णः (शोभन है स्वर्ग गमन जिसका) उस यज्ञ के स्वर्ग में जातेय  
जमान जाता है। तिसके ॥४॥ तिसकी दक्षिणानाम अप्सराएँ। कै  
सीएँ कि स्तावाः (स्तुतिकरिये है यज्ञ और यजमान जिन्हों करि।  
तिन्हों के ॥१०॥४२॥

प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वसस्य ऋक् सामान्य  
प्सरस एष्टयो नाम। सन इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा  
वाटताभ्यः स्वाहा ॥४३॥

जो मन रूप गन्धर्व सोहमारे ॥ कैसाकि प्रजापतिः (प्रजाका पालक।  
विश्व कर्मा सब करता तिसके ॥११॥ तिसकी ऋक्सामा अप्सराएँ नाम  
प्रसिद्ध हैं। कैसी कि एष्टयः (काङ्क्ष्या करिये है अभीष्ट जिन्हों करि।  
तिन्हों के ॥१२॥४३॥ इति राष्ट्रभृद्धोमः समाप्तः ॥

सनो भुवनस्य पते प्रजापते यस्य तः उपरि गृहा यस्य वे  
हा अस्मै ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्राय महि शर्मयन् स्वाहा ॥४४॥

को ०१८.५.१० राष्ट्रभृद्धोम के अनन्तर पूर्व संस्कृत आज्य से पांचवा  
र लेकर आहवनीय के ऊपर प्रति प्रस्थानादि से धार्य माण रथ के  
शिरपर तिस आज्य को पञ्चधा घँटिके पञ्चकत्वः हो में पञ्चवारं मन्त्र इ  
ति ॥ प्रजापति देवत्या प्रस्तार पङ्क्तिः। हे भुवन के पालक हे प्रजापते जि  
सनेरे स्वर्ग में गृह हैं अथवा जिसनेरे इह (भूलोक) में गृह हैं सो तू ह  
मारे इस ब्राह्मण और इस क्षत्रिय के अर्थ महत्सुख दे स्वाहा सु



यावो देवाः सूर्ये रुचो गोष्वश्वेषु या रुचः । इन्द्राग्नीता  
भिः सर्वाभी रुच नो धत बृहस्पते ॥४७॥

का० १८.६.६ पूर्वसंस्कृत आज्यस्यैक-एकवारलेकरनवाहुती  
होमें यास्ते १.यावः २.रुचनः ३.तत्वा ४.स्वर्णेति कण्डिकाकेपांच  
मन्त्रोंसे पांच ५.६.७.८.९. एवं नव ॥ द्वे व्याख्याते १३.२३.२३ ॥  
४६॥४७॥

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचर्तं राजसु नस्तृधि । रुचं  
विश्येषु शूद्रेषु मर्यि धेहि रुचा रुचम् ॥४८॥

अग्नि देवत्याऽनुष्टुप् । हे अग्ने हमारे ब्राह्मणों में दीप्ति आरोप  
एकरि । हमारे क्षत्रियों में दी० वैश्यों में और शूद्रों में दी० किं  
च हमारे विषे दीप्ति सहित दीप्ति (अनविच्छिन्ना दीप्ति) ॥ यद्वा ब्रा  
ह्मण राजन्य विद्वत्शूद्रों में जो दीप्ति तिसै हमारे विषे स्थापन  
करि ॥४८॥

तत्वा यामि ब्राह्मण वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो  
हविर्भिः । अहं उमानो वरुणेह बोध्युरुशर्त्तुमान  
आयुः प्रमोषीः ॥४९॥

वरुण देवत्या त्रिष्टुप् अनुः शेषदृष्टा । हे वरुण यजमान हविये दे  
नेसै जो + धनपुत्रादिक को इच्छा करता है जिस काम को तेरे लिये  
हविर्दिया वोह यजमानेष्ट तुम्हें सै में यामि (याचना + करता हूं) वो  
ह तुम्हें करि के देने योग्य है । कैसा हूं मैं कि त्रयी लक्षण वेद सै तुम्हें स्तु  
ति करता । किंच हे उरुशर्त्तु (बहुस्तुते) इस स्थान में अ क्रोध होकर

+ नित्य ३.१२

+ अत्र द्वौ तद्धो वदन्ते तत्रैकस्य यजुर्परिणामः कार्यः ॥

तू मेरी प्रार्थना जानि। किंच हमारा जीवन मत चुराइ अर्थात् पूर्ण आयु दे ॥४६॥

स्वर्णं घर्मः स्वाहा स्वर्णं र्कः स्वाहा स्वर्णं शुक्रः स्वाहा-  
स्वर्णं ज्योतिः स्वाहा स्वर्णं सूर्यः स्वाहा ॥५०॥

पञ्चाग्नेयानि १३४५ दे-वि० २ दे-पं०। सूर्यो हर्देववाचीस्वशब्दः।  
नवार्थे। अर्काश्च मेधसंतति संज्ञाः पञ्चाहुतयः। अर्क (अग्नि) अ  
श्च मेध (सूर्य) तिन्हों की सन्तति ऐं अग्न्यादित्येककारिका आ  
हुति यें होमें। अथार्काश्च मेधयोरित्यादिषष्ठां शत० ४० ४० ३०  
१८-२३ श्रुती नामनुसारेण मन्त्राणां व्याख्या यथा। न इवार्थे  
स्वः (देवसः) ऐंसे जो मर्म (आदित्य) तिसे स्वाहा (अग्निमें) होमताहूं तम  
ग्नाविति शेषः पूरणीयः (आदित्य को अग्नि में स्थापन करताहूं)। स्व  
(सूर्य) ऐंसे जो अर्क (अग्नि) तिसे आदित्य में स्थापन करताहूं॥ स्वः (देव  
ता) ऐंसे जो शुक्र (आदित्य) तिसे आदित्य हीमें स्थापन०॥ स्वः (स्वर्ग)  
ऐंसे यह ज्योति (अग्नि) तिसे अग्नि ही में स्थाप०॥ एवं अग्नि को  
सूर्य में सूर्य को अग्नि में और सूर्य को सूर्य में और अग्नि को अग्नि  
में स्थापन करिके किंवहुना तिन्हों का संयोग करि सूर्य को उत्तमक  
रे। स्वः (सर्वदेवरूप) ऐंसे जो सूर्य तिसे स्वाहा (उनम करताहूं)। एवं  
पञ्चाहुतिभिरग्न्यर्के योरैकं विधाय सर्व देवेष्कर्कस्योत्तमत्वं ह्य  
तमिति भावः॥ ५०॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ३० ॥  
 अ० ११ अग्निं युनज्मि शवसा घृतेन दिव्यं सुपर्णं वयसा  
 ब्रह्मन्तम् । तेन वयं गमेम ब्रह्मस्य विष्टपठं स्वरु

५०  
+ स्वि-हा। अ-न-वृ-उ-। न-ग-स्व॥५०॥  
५१ अ-व्य-या-ना-म-ने-वा-ये-त्वा-स्वा-हा शब्द उत्तमार्थः सर्वे देवाभिन्नाः सन्त्याभासंते वस्तुनः सूर्य ए  
व नाना रूपैः स्तीति वशब्दार्थः॥



हाणु अधि नाक मुत्तमम् ॥११॥

का. १८. ६. १६. प्रातरनुवाको पाकरणसे पहिले यथापूर्वमिति उप-  
धानक्रमसे तीन ऋचाओं करि प्रत्येक परिधी के स्पर्श करिके अग्नि  
योजन करै ॥ अग्नि देवत्या द्वे त्रिष्टुभौ तृतीया यङ्किः। बल और घृत क-  
रि अग्निको संयुक्त करता हूं। कैसे को कि दिवि में हुए। शोभन गमन  
वयसा (धूम करिके) वरे को +। किंचतिस अग्नि करिके युक्त ब्रध्न  
(आदित्य) के विष्टप वगत है ताप अर्थात् दुःस्वजिसका उस लोक को  
हम जावें। नः ब्रध्न विष्टप के ऊपर से स्वर्ग लोक को आरोहण कर  
ते हुए नाक (दुःस्वरहित) त्रेष्ट लोक को जावें ॥५१॥

इमौ ते पक्षावजरो पतत्रिणौ याम्याथं रक्षाथं स्युहथं  
स्यग्ने। नाभ्या पतेम सुकृता मु लोकं यत्र ऋषयो नृ-  
गमुः प्रथमजाः पुराणाः ॥५२॥

हे अग्ने जो तेरे ये उत्तर दक्षिण पक्ष हैं। कैसे कि जरा रहित सदानवी-  
न। उत्पन्न शील। कि जिन पक्षों से तू राक्षसों को मारता है। उएवा-  
र्ये। ऐसे तिन्ही पक्षों से हम सुकृता पुण्य करने वालों के लोक को  
जावें। कि जिस सुकृल्लोक में प्रथमोत्पन्न पुरातन ऋषि लोग ग-  
ये ॥५२॥

बन्तुर्दक्षः प्रपेन ऋतावा हिरण्यपक्षः शकुनो भुर-  
एयुः। मूहान्तसधस्यै ध्रुव आ निषन्तो नमस्ते अस्तु  
आ मा हिरेसीः ॥५३॥

हे अग्ने जो तू एतादृश है तिस तेरे अर्थ नमस्कार हो तू मुझे हिंसा

मतकर। कीदृश है तू कि इन्दुः। ईश्वर वा चन्द्र वा दाल्हादक। दक्ष उ  
त्साहवान्। श्येनः। (श्येन पक्षिवत्) आकाशधारित्वात् यद्वा शंसनी  
यगतिः। अतावा (सत्य) यज्ञ वा उदकवाला। हिरण्यपक्षः। (सुवर्ण)  
शकल हिरण्य रूप है पक्षजिसके। शकुन्ः। (पक्ष्याकारः)। भुरण्युः  
पोषकः। महान् (प्रभावेन)। ध्रुवः। (स्थिर)। ब्रह्माकरि सह स्थान में  
समन्तात् बैठे ॥५३॥

दिवो मूर्धासि पृथिव्या नाभिरूर्गेयामोषधीनाम्। वि  
श्वायुः शर्म सप्रथा नमस्यथे ॥५४॥

का० १८. ६. १७. यज्ञायज्ञियस्तोत्र प्रकरण से पहिले दिवोमूर्धेति  
हो च्छा ओं करि दक्षिण उत्तर परिधिओं की संन्धिओं की उपस्पर्श  
करिके अग्निविमोचन करे ॥ आग्नेयी परोक्षिका। हे अग्ने जो तू ऐसा  
तिस पथ (स्वर्गमार्ग) के अर्थ नमस्कार हो (अग्नि मुखोहि देवयान  
पन्थाः श्रुतावुक्त) ॥ केसा है तू कि दिवोमूर्धा (स्वर्लोक का उत्तमाङ्गस्था  
नीय) पृथिवी का नाभि (मध्यस्थानीय)। जल और ओषधीओं का  
सार। विश्वायुः (बहुजीवन वा सब प्राणियों का जीवन) शर्म (सर्वों का  
शरणभूत सप्रथाः (विस्तार सहित वर्तमान) तिर्यगूर्ध्वमधश्चानवच्छि  
न्न प्रभावः। ऐसे अग्नि के अर्थ नमः ॥५५॥

विश्वस्य मूर्धन्नधितिष्ठसि श्रितः समुद्रे ते हृदयमप्स्वा  
मुष्णो दत्तोदधिं भिन्त। दिवस्पृज्योदन्तरिक्षात्पृथि  
व्यास्ततो नो दृष्टाव ॥५६॥

आग्नेयी महापङ्क्ति जगती। हे अग्ने सो तू हमलोगों की दृष्टिक

रिके रक्षा करि। क्या करिके कि दिवः (द्युलोक) से पर्जन्य (मेघ) से अन्तरिक्ष (आकाश) से पृथिवी के सकाश से अन्यत्र वा जहां जल ततः प्रदेश से जल लेकर इति शेषः। जोतूश्रितः (इन्द्रियों सुषुम्णा नाडी को आश्रित) होकर सबों के मूर्धन् (ऊपर में) रविरूप करि दीप्यमान है। जिस तेरा समुद्र (अन्तरिक्ष) तहां मध्यभाग पृथ्वी में चरल अर्थात् त्रिलोक व्यापी है। जिस तेरा जलों में जीवन ॥ है। किंवहुना हे अग्ने उदधि (मेघों ॥) को भिन्धिकर जल दे ॥ ५५ ॥

इष्टो यज्ञो भृगुभिराशीर्दी वसुभिः। तस्य न दूष्टस्य  
भीतस्य द्रैविणे हागमे ॥ ५६ ॥

का. १७. ६. १६. समिन्द्र ए इत्यादि नव ६ समिष्ट यजुओं ७. १५. २२ के होमान्त में इष्टो यज्ञः इष्टो अग्निः इन दोनों अपर आग्निक दो समिष्ट यजुओं को होमें ॥ यज्ञदेवत्या उषिगगालवदृष्टा। अध्वर्युर्द्रव्यं प्रत्याह। हे द्रव्यतिस यजमान के इस सदन में तू आ। कैसे यजमान कि हमारे इष्ट (प्यारे के) तिस किस के कि जिसके भृगु गोत्री ब्राह्मणों और वसुओं आदि देवताओं करि इष्ट सम्पादित हैं। कैसे यज्ञ कि आशिओं (अभिलषित पदार्थों) का दाता। अर्थात् ब्राह्मणों देवताओं करि जिसका यज्ञ किया तिसके घर में तू सर्वदा ठहरि ॥ ५६ ॥

इष्टोः अग्नि राहुतः पिप्यतु न दूष्टं हविः। स्वगेदं  
देवेभ्यो नमः ॥ ५७ ॥

अग्निदेवत्या गायत्री गालवदृष्टा। अग्नि हमारे अभिलषित को पूर्ण वा पालन करे। कैसे अग्नि कि कृतपागः। हवि करिके सम

यजमानाधीनः जीवनं तत्र जलं दक्षः जलं ततोऽग्निरित्युक्तं जलाधीनः जीवनं तत्र

न्नात् तर्पितः। किंच यद् नमः हविः समिष्टयजुर्लक्षणा देवताओंके  
अर्थ हो। कैसा कि स्वयं गमनशील ॥ १७ ॥

अ० १२ यद्वा कृतात्समसुसोद्धो वा मनसो वा सम्भृतं चक्षुषो  
वा। तदनु प्रेत सुकृतोऽमु लोके यत्र ऋषयो जग्मुः प्रथ-  
मजाः पुराणाः ॥ १८ ॥

का० १८. ६. २२. साग्निचित्ये मैत्रावरुण्य नूबन्ध्या वैश्यमेकाभवति-  
तेन तिसकी हृदय शूल संबन्धिसमिदाधानान्न करते यद्वा कृतादि  
ति प्रति ऋचा आठ सुवाहुती होमें ॥ अष्टावृत्त अग्नि देवत्या वि-  
श्वकर्म दृष्टा तृतीया देवी वा आद्या जगती तिसस्त्रिष्टुभः चतस्रो  
नुष्टुभः। हे ऋत्विज ओ तुम तिस प्रजापति के किये कर्म की अनुसरो  
अर्थात् प्रजापति के शरीर से उत्पन्न जो वैदिक कर्मनिसे करौ। तिस  
कर्म के करने से पुण्यवानों के लोक (स्वर्ग) को जाओ कि जहां पूर्वोत्पन्ना  
पुराण (पहिले) और नये अजर अमर ऋषि लोग गये। वोह कोन कर्म  
कि जो प्रजापति के आकृत (अभिप्राय) वा हृदय बुद्धिमान संकल्पात्म  
क और चक्षुरादि इन्द्रियों से प्रसृत हैं अर्थात् प्रजापति ने जो सर्वांग  
करि कर्म सृजातिसे करिके स्वर्लोक को जाओ। कैसा कर्म कि सम्भृत (स-  
म्भारों से पुष्ट पूर्ण सामग्रीक ॥ मनः प्रवर्तक आत्मनो धर्म आकृ-  
तम् ॥ १८ ॥

एतद्धं संधस्य परि ते द्दामि यमावहा छेवधि जातवेदाः।  
अन्वागन्ता यज्ञपतिर्वोऽत्र तथै स्म जानीत परमे  
व्योमन् ॥ १९ ॥

सहतिष्ठन्ति देवा यज्ञेति सधस्थः स्वर्गः तं प्रार्थयते। हे सधस्थ इस यजमान को तूरे अर्थ देता हूँ। जात वेदा (अग्नि) जिस देवधि (सुखनिधि) आहुति यरिणामभूत) को प्राप्त करता है। तिस यज्ञ फलभूत और सुख निधि को तुम्हें देता हूँ। अर्थात् दोनों को रक्षणार्थ तूरे अर्थ देता हूँ॥  
 एवं यजमान और यज्ञ को स्वर्ग में समर्पण करितस्थान् देवानर्थयते अन्विति हे देवता ओ यज्ञपति (यजमान) तुम्हें कर्म समाप्ति में प्रत्याग मन करता है। इस उत्कृष्ट व्योम (आकाश-स्वर्गभूत) में आयेति स यजमान को तुम जानो अर्थात् स्वर्ग में आया वोह तुम लोगों करि सम्भावनीय है॥ ५५॥

एतं जानाथ परमे व्योम देवाः सधस्था विद रूपमस्य।  
 यदा गच्छात्यथिभिर्देवयानैरिष्टा पूर्ते कृणा वायावि  
 रस्मे॥ ६०॥

सहतिष्ठन्ति सधस्थाः॥ उत्कृष्ट स्वर्गभूत आकाश में सहस्थिता हे देवता ओ इस यजमान को जानो। किंच इस यजमान के रूप (वित्त) को जानो। विदित रूप यह यजमान जब कि देवयान (स्वर्ग मार्ग) करि के आवै है सब दृष्टा पूर्त ओत स्मार्त कर्म फल इस यजमान के अर्थ प्रकटी करे अर्थात् देओ॥ ६०॥

उद्बुध्य स्वाग्ने प्रतिजागृहिः त्वमिष्टा पूर्ते संहिंसे जेत्याम  
 यं च। अस्मिन् सधस्थेऽप्युत्तरस्मिन् चिन्वे देवा य  
 जमानश्च सीदत॥ ६१॥

येन बहसि सहस्रं येनाग्ने सर्ववेदसम्। तेनेमं यज्ञं

नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे ॥६२॥

हे व्याख्याते १५-१४-१५ ॥६१॥ ६२॥

प्रस्तरेण परिधिना सुचा वेद्या च बर्हिषा । ऋचेमं य

ज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे ॥६३॥

हे अग्ने देवताओं प्रति प्राप्ति योग्य इस हमारे यज्ञ को स्वर्ग प्रति प्राप्ति करि। कैसे को कि प्रस्तर (सुगाधार भूत-दर्भमुष्टि) करि परिधि-ओं (तीनों बाहु मात्रकाष्टों) सुचा (जुह्वादिकाओं) वेदी वा मिताभूमि बर्हि (दर्भपूलक) और ऋचा (ऋगादि मन्त्रों) करि उपलक्षित को इति शेषः ॥६३॥

यहूतं यत्परादानं यत्पूर्तं याश्च दक्षिणाः । तद्गनिर्वैश्वकर्मेणः स्वर्देवेषु नोदधत् ॥६४॥

वैश्वकर्मा (प्रजापति से हुआ विश्वकर्ता अग्निः) हमारे तिसदान को स्वर्लोक में देवताओं के मध्य में स्थापन करे फल भोग के अर्थ। वोह कोन कि जो दत्त (भार्या पुत्रजा मातृ भगिनी तत्पत्यादिकों के अर्थ दिया) और जो परादान (दयादि करि अन्य पशु कृपणादिकों के लिए दिया) और जो पूर्त (स्मृति विहित विप्र भोजन वापी कूपतडागा रामादि) और जो दक्षिणा (यज्ञ सम्बन्धिनी) यज्ञे गते यज्ञाङ्गत्वाद्यजमानः स्वर्गत एव ॥६४॥

यत्र धारा अनयेता मधो घृतस्य च याः । तद्गनिर्वैश्वकर्मेणः स्वर्देवेषु नोदधत् ॥६५॥

विश्वकर्ता अग्नितिस स्वर्ग में देवताओं विषे हमें स्थापन करे कि

जिस देशमें मधु घृत की च ओर-ओर पय दधि आदिकों की धारा  
(प्रवाह) अनपेता (उपसृज्य माना अप्यक्षीण) वर्ते हैं ॥ ६५ ॥

अग्नि रस्मि जन्मना जात वेदा घृत में चक्षु रमृतं मः  
आसन् । अर्कस्त्रिधातू रजसो विमानोऽजस्रो घर्मो  
हवि रस्मि नाम ॥ ६६ ॥

अग्न्य द्वैत वादिनी त्रिष्टुप् भारती देवश्वा देववात दृष्टा यज्ञे  
विनुयुक्ता । अग्नि प्रकरणत्वाद्यजमान आत्मान मग्नि त्वेन ध्या  
यति । जन्मना उत्पत्यैव में अग्नि (अग्नि रूपा हूँ) नाम करि हविः  
(पुरोडाशदिक) में हूँ । कैसा हूँ में कि जात वेदाः (जात जात विन्द  
त इति) सब उत्पन्न का स्वामी । अर्कः (अर्चनीय यज्ञ त्रिधातुः  
(ऋग्यजुः साम लक्षणा जिसके) रजसो विमानः (उदक का निर्मा  
ता । अजस्रः (अनुपक्षीण) घर्मः (आदित्य रूप वा मैघ रूप । ए  
ता दृशः अग्नि में हूँ । यतस्ततः घृत मेरे नेत्र (घृत हो) भी की देख  
ता हूँ इति भावः । अमृतं मः आसन् (हवि मेरे मुख में) हो मे हविकों  
अमृत करता हूँ इति भावः । एव मात्म न्यग्न्य द्वैतं सम्पाद्यम् ॥ ६६ ॥

ऋचो नामास्मि यजूंश्च षिनामास्मि सामानि नामास्मि  
येऽग्नयः पाञ्चजन्या अस्यां पृथिव्या मधि ।  
तेषामसि त्वमुत्तमः प्रनो जीवा तवे सुव ॥ ६७ ॥ †

ऋचः ॥ आत्म देवत्यं यजुः ॥ यज्ञेऽस्य विनियोगो नास्ति । यजमानो  
ऽनेनात्मनि वेदत्रयात्मकं भावयति । नाम करिके में ऋचा (ऋग्वे  
द रूप) हूँ यजुर्वेद रूप ० साम वे ० ॥ का० १८० ६० २३ चित्य अग्निका





पियारु(देवताओं के हिंसा करने वाले)को ॥६६॥

विने इन्द्र मृगो नहि नीचा यच्च पृतन्यतः। सोऽअस्मोर  
ऽअभिदा सत्यधरं गमया तमः ॥७०॥

भारद्वाज सुत शासदृष्टा। व्याख्याता ८.४४.॥७०॥

मृगो नभीमः कुचरो गिरिष्ठा परावतः। आजगन्था प  
रस्याः। सुकठं सठिणाय पविमिन्द्र तिगमं वि शत्रून्ता  
टिवि मृगो नुदस्व ॥७१॥

जय दृष्टा त्रिष्टुप्। हे इन्द्र परस्याः परावतः (दूरदेश और दूरदिशा)  
से आगमन करि। और आकर शत्रुओं को विशेषेण ताडि। और  
संग्रामों को विशेषेण दूर करि। क्या करि के कि पवि(वज्र) को तीक्ष्ण  
करि के। कैसे पवि कि शत्रु शरीर विषे चलते तिसै। तिगम (उत्साह व  
न्त। कैसे कि मृगोन (जैसे मृग सिंह दूरसे चलकर प्राणियों को  
मारता। कैसा कि भीम (भयंकर) कुचरः (कुत्सित चलने वाला)। गि  
रिष्ठाः (पर्वताश्रयः) ॥७१॥

वैश्वानरो न उतयः आ प्रयातु परावतः। अग्निर्नः  
सुष्टुतीरुप ॥७२॥

हे वैश्वानर देवत्ये गायत्री त्रिष्टुभौ द्वितीया कुत्सदृष्टा। वैश्वान  
र (अग्नि) हमारी शोभना स्तुति श्रवण करने को दूरदेशसे आवै।  
किस लिये कि हमारे रक्षा करने को ॥७२॥

पृष्टो दिवि पृष्टोऽअग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओष  
धी रा विवेश। वैश्वानरः सहसा पृष्टोऽअग्निः स

नो दिवा स रिष्यातु नक्तम् ॥ ७३ ॥

वैश्वानर (अग्नि) दिवस में हमें रक्षा करे और बोहरात्रि में हमें रक्षा करे अर्थात् सर्वदा हमें रक्षा करे। वोह कौन कि जो अग्नि दुःलोक में पृष्ठ है कौन यह आदित्यात्मा करितपता मुमुक्षुओं से पृष्ठ है (अन्तरिक्षेय मेतमादित्ये पुरुषं वेदयन्ते स इन्द्रः स प्रजापतिस्तद्वत्तेति श्रुतेः)। और जो अग्नि पृथिवी (अन्तरिक्षलोक) पृष्ठ है कौन यह विद्युदात्मा करि स्थित अलार्थिओं से पृष्ठ है। और जो सब ओषधी-ओं (ब्रीही आदिकों) से पृथिवी हो पृष्ठ है कौन यह प्रजाओं का जीवन हेतु ताप पाक प्रकाश से उपकरता है। और बल करि अश्वर्य करि मथ्यमानः सन् पृष्ठ है कौन यह मनुष्यों से मथिये हैं। सो यह अग्नि दिन रात्रि बध से रक्षा करे अर्थात् हमें न मारे ॥ ७३ ॥

अश्याम तं काममग्ने तवोती अश्यामरयिषं रयिवः सुवीरम्। अश्याम वाजमभि वाजयन्तो अश्याम युम्न मजराजरं ते ॥ ७४ ॥

आग्नेय्यो कामवत्यो द्वे त्रिष्टुभो आद्या भरद्वाज दृष्टा। हे अग्ने तेरे पालन करि हम तिस काम (अभिलाष) को प्राप्त हों वें अर्थात् तू तिसै इच्छा करते हैं। हे रयिवः (धनवन्) सुवीररयि (शोभन पुत्रों सहित धन) को प्राप्त हों वें। वाजयन्तः (बन्धि पूजा करते) अन्न को समन्तात् प्राप्त हों वें। हे अजर (जरारहित) अक्षीण तेरे युम्न यश को प्राप्त हों वें अर्थात् सर्वदा यशस्वि हों वें ॥ ७४ ॥

वयं ते ऽश्रुद्य ररिमा हि काममुत्तानहस्ता नमसोप  
सद्यः । यजिष्ठेन मनसा यक्षि देवानस्त्रेधता मन्मना  
विप्रो ऽग्ने ॥ ७५ ॥

कतिसुन उत्कीलदृष्टा । हे अग्ने जिस कारण हम तेरे अर्थ काम (हवि) देते हैं । क्या करिके किनमस्कार करि उपसद्य अर्थात् निकट आकर हवि देते हैं । कैसे हैं हम कि ऊंचे हैं हाथ जिन्हों के अर्थात् खोली हैं मुठी छोड़ो हैं कार्यण । तथा मन करि उपलक्षित सावधान । कैसे मन करि किय जिष्ट (अतिशयेन यष्ट) तथा अनन्यगत । मन्मदेवता याथात्म्यज्ञ । यतः एतादृशेन मनसा हम हवि देते हैं अतः हे अग्ने विप्र (प्रेधावी) तू देवताओं को पूजि अर्थात् मेरे विये हविसे देवताओं को तर्पण करि ॥ ७५ ॥

धाम छद्ग्निरिन्द्रो ब्रह्मा देवो बृहस्पतिः । सचैतसो विश्वे दे  
वा यज्ञं प्रावन्तु नः शुभे ॥ ७६ ॥

विश्वदेव देवत्यानुष्ठुप् । एते देवा हमारे यज्ञ को रक्षा करें अर्थात् अन्यूनातिरिक्तिकरे (अन्यूनातिरेक एव कर्मणोरक्षणम्) शुभ (दृष्ट स्थान) और स्वर्ग में स्थापन करें इति शेषः यद्वा शुभस्थान में यज्ञ को प्रकृष्टेन रक्षा करें । एते के कि अग्निः । देव इति सर्वत्र सम्बन्धनीयम् ॥ इन्द्रः । ब्रह्मा । चतुर्मुखः । बृहस्पतिः । (जीवा और विश्वे देवा) धामों (स्थानों) को आछादन न्यूनों को पूरण अति रिक्तों को समीकरण इदं सर्वेषां विशेषणम् । तथा सचैतसः (प्रज्ञया सहिताः) वासमानचित जिन्हों का । समाना अग्न्या द्यौ मयज्ञं रक्षन्ति ।  
त्यर्थः ॥ ७६ ॥

त्वं यविष्ठ दास्युषो नृः पाहि शृणुधी गिरः । रक्षा तोकमु  
तत्सना ॥ ७० ॥

इति संहितायां त्रयो दशोऽनुवाकः १३

इति श्री शुक्लयजुषि माध्यन्दिन श्रावणीयायां वाजसनेयसंहिता  
यां दीर्घपाठे षादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

व्याख्याता १३. ५२. ॥ ७० ॥

इति भाष्ये त्रयो दशोऽनुवाकः १३

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दनिवारयन्

प्रमार्थोऽनुरोदेयादग्निदेवः सनातनः १८

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमध्यन्दिनीयश्रावण्येतद्व्याघ्रपादान्वयवि  
श्वामित्रपुराधिपति श्रीमज्जयकिशोरदेववम्भोत्तमजरोक्किमण्य  
नृपतिगिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपेगिरिधरभाष्येगिरिप्र  
सादसर्वश्वेवसोर्धोरादि चित्युपस्थानान्तवर्णनो नामाष्टादशोऽ  
ध्यायः ॥ १८ ॥ आदितः अनुवाकसंख्या ॥ ६७ ॥

इति सर्वानुक्रमणिभाष्येगिरिप्रसादरचिते वेदार्थप्रदीपे-

द्वितीयाध्यायस्यैकत्रिंशोः खण्डः ३१

चैत्रमासे शुक्लपक्षे त्रयो दश्यां रवौ दिने

ग्रहनेत्राङ्गभूवर्षेऽग्निमन्त्राः समागमन्

अतः परं विभिरध्यायेः सौत्रामणीमन्त्रा उच्यन्ते

विश्वामित्रपुराणनवलदुर्गस्थव्याघ्रपादप्रकाशकाशमयन्त्रालये मुद्रितम्  
विक्रमाब्दः १८२४ शकाब्दः १७४४ ज्येष्ठकृष्ण ३ भृगुवार ॐ शान्तिः

**हरिः ओम्**  
**अथ संक्षेपतः सूचीपत्रम्**

अथाग्निमन्त्राणां सूचीपत्रम्					
पृष्ठांक	पंक्त्यांक	विषय	पृष्ठांक	पंक्त्यांक	विषय
४०१	७	प्रथमचितिमन्त्राः	६७६	४	युग्मस्तोम होम मन्त्राः
५२८	८	द्वितीयचितिमन्त्राः	६७६	२१	वयो होम मन्त्राः
५३६	९	तृतीयचितिमन्त्राः	६७७	१६	नामग्राह होमः
५४२	१२	चतुर्थचितिमन्त्राः	६७८	४	कल्प होमः
५५३	१४	पञ्चमीचितिमन्त्राः	६८०	४	इतिवसोर्धोममन्त्राः समाप्ताः
५८८	६	शतरुद्रियहोममन्त्राः	६८०	५	वाजप्रसवीयानि
६१६	८	चित्यपरिधेकादिमन्त्राः	६८२	१५	अभिषेकः
६२४	२१	वैश्वकर्महोममन्त्राः	६८३	१५	राष्ट्रभृद्धोमः
६३३	१०	अप्रतिरथसूक्तम्	६८६	१४	रथशिरसिहोमः
६३७	२०	अप्रतिरथसूक्तसमाप्तम्	६८७	२	वायुहोममन्त्राः
६५२	७	पूर्णहूतिमन्त्रम्	६८७	२०	नवाहुतीः
६५३	५	मरुद्धोममन्त्राः	६८८	२०	अग्नियोजनम्
६५५	१६	मरुद्देवत्यं यजुः	६८९	७	अग्निविमोचनम्
६५६	४	यज्ञस्तुतिर्वसोर्धोमिवादिनीघृतस्तुतिर्वा	६९२	८	समिष्टयजुर्होमः
६६५	८	वाजश्चेत्यादियजुर्भिर्यज्ञसमानोऽग्नेः कामान्याचते	६९३	३	यदाकृतादित्यश्चर्चः
६७२	७	अर्धेन्द्रहोममन्त्राः	६९६	३	अग्न्यहेतवादिनी
६७३	४	ग्रहहोममन्त्राः	६९७	१६	आत्मदेवत्यं यजुः
६७४	१३	यज्ञक्रतुहोममन्त्राः	६९७	१७	चित्राण्युपस्थानम्
६७५	८	अयुग्मस्तोमहोममन्त्राः	७०१	७	पुरीषवतीचित्युपस्थानम्
				२१	इति सूचीपत्रम्

## वेदार्थप्रदीपेगिरिधरभाष्ये

हरिः प्रोम्

ओं नमो यत्तपुरुषाय

पञ्चात्मकद्विरूपं च साधनैर्वह रूपकम्  
स्वानन्ददायकं कृत्स्नं ब्रह्म रूपपरं तु मः १५

अथ सौत्रा मणी प्रजापते रार्षमश्विनो सरस्वत्याश्च

अ० १ स्वाहीं त्वा स्वादुना तीव्रां तीव्रेणा मृता मृतेन । मधुमती  
मधुमता सृजामि सटं सोमेन । सोमोऽस्य श्विभ्यां पच्यस्व  
सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्रामो पच्यस्व ॥ १ ॥ †

नत्वा सरस्वती देवी मश्विनो च पुरन्दरम्  
प्रदीपे त्रिभिरध्यायैः सौत्रामाण्यः समीर्यते १५

अथ सौत्रा मणी मन्त्रास्त्रिभिरध्यायैस्तेषां प्रजापत्यश्वि सरस्व-  
त्य ऋषयः ॥ ऋद्धि काम स्याग्निचितो मुखेतरद्धि सोमवा-  
मिनो मुखेन सोम वामिनो राज्यच्युत नृपस्य पशुकामस्य च सं-  
त्रामणीयागः ॥

ओनमोयाज्ञवल्काय

गिरिप्रसादसंज्ञेनाध्यायोनवदशोऽधुना  
सुरादीन्द्राभिषेकान्तोवेदभाष्ये समीर्यते ॥ १५

अन्तःपात्यस्थानमें गोचर्मविषे इतने पदार्थ स्थापन करें- सोमसुरा  
विक्रयी वाल्कीवसे मोल लेकर सीसा (धातु) से शष्य (विरूढा ब्रीह  
यः) लेकर ऊर्ण (ऊन) करि तोकों (विरूढायवों) को सूत्रसे लाजाभ  
ष्ट ब्रीहयों को किसी एक द्रव्यसे नग्नहु (सर्जत्वक् त्रिफला शुण्ठी पु  
नर्नवाचतुर्जातक पिप्पली गजपिप्पली वंशावका हृहच्छत्राचित्रकेन्द्रवाण्य  
श्वगन्धाधान्यकयवानी जीरक द्वय हरिद्रा द्वय विरूढयव ब्रीहयः)  
को शष्य तोक लाज नग्नहुओं को दक्षिण द्वारसे अग्नि गृह प्रति  
लेजाके भले प्रकार चूर्ण करि दर्शपौर्णमास धर्मसे ब्रीहि श्यामाक  
के चरु बहुत जलमें पकाकर श्रुतालम्भ के अनन्तर तिन चरुओं के  
उष्ण निःस्त्राव को पृथक् पात्रों में लेके शष्यादि चारों के चूर्णों से मि  
लाय स्थापन करें- दोनों आचामरूप चूर्णों की मासर संज्ञा है ॥ का  
१६. १. २१. एवं आचाम चूर्ण संसर्गसे मासरत्व निध्यादन के अन  
न्तर ओदनों ब्रीहि श्यामाक चरुओं को चारों चूर्णों से मिलाकर  
स्वाहीत्वा १ दूध मन्त्र और अहं शुना ते २०. २०. इस ऋचासे एक पा  
त्रमें चूर्ण संसृष्ट ओदनों को मासरों से मिलाकर शालाके नैऋत्य  
कोण में गर्त करके तीनिरात्र स्थापन करें। अयमर्थः। चरुओं को  
उद्दासन करि दोनों का पृथक् आचाम ग्रहण है ततः त्रिधा किये-  
शष्य तोक लाज चूर्णों के तृतीयांश को देधा करके आचाम ओ

में डालें. ततः नग्नहु चूर्ण द्वेधा करिके एकार्ध को द्वेधा विभागक  
 रि आचाम ओं में डालें। एवं चूर्ण संसृष्ट आचाम ओं की मासर-  
 संज्ञा है। ततः शण्यतो कमलाज चूर्णों के दूसरे तृतीयांश को द्विधा  
 करिके एक-एक भाग ओदन ओं में डालें. नग्नहु चूर्ण के द्वितीया  
 र्ध को द्वेधा करिके ओदन ओं में डालें. ततः ओदन ओं को एकपा  
 त्र में करिके तत्र आचाम ओं को डालें. ततः स्वादीं त्वा अर्धं शुना  
 ते इन मन्त्रों से चूर्ण मासर सहित ओदन ओं का आड्डालन क  
 रिके संसर्ग करना ततः त्रि एव निधानं हे शण्यतो कमलाज चूर्णों  
 के तृतीयांश का प्रतिदिन सुर में निवा पार्थ रक्षण है इति सूत्रार्थः  
 स्वादीं त्वा। सुर सोम देवत्या नुष्टुप् सुर रूपः सोमो देवता। अथ मं  
 त्रार्थः॥ हे सुरे तू मे सोम से संयुक्त करता हूँ। कैसे तू मे सादीं (मिष्ट)  
 मिष्ट रसा। तीर्त्रां (शीघ्र) मदनजनका। अमृत तुल्या। मधुर स्वादोपेता।  
 कैसे सोम से कि मीठे कटुरस सुधा तुल्य मधुर स्वादु॥ सोमोऽसि।  
 चत्वारि यजूंँसि १० दै-अ० २० या-गा० ३० या-उ० ४० या-वृ० सुरादे  
 वत्यानि। पूर्व एव विनियोगः॥ हे सुरे तू सोम संसर्ग से सोम है अतः  
 तू मे कहिता हूँ कि अश्विनी कुमारों के अर्थ पाक हो और सरस्व-  
 ती के अर्थ पाक हो और भले प्रकार रक्षा करने वाले इन्द्र के॥१॥  
 परीतो विञ्चता सुतर्दं सोमो य उन्नमर्दं हविः॥ दध  
 न्वा यो नर्योऽप्रप्स्वन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः॥२॥  
 का० १६. १. २२-२७. सायं होम के अन्त में अश्विभ्यामपाकरोमि  
 इति हाथ से एक गौ को स्पर्श करि तिसे दुहिके दुग्ध से अध्वर्यु सुरा



को सींचे परीतं इस मन्त्र से। रक्षित शय्य चूर्णों के तृतीयांश को सुरभाण्ड में डाले। दूसरे दिन की निशान्त में सरस्वत्याऽऽपाक रोमि इति दो गौऽओं को स्पर्श करि तिन्हों के दुग्ध से तिसी मन्त्र करि सुरा को सींचे और तोकन चूर्ण के तृतीयांश को डाले। तीसरे दिन रवि में इन्द्राय सुत्रामोऽपाक रोमि इति तीन गोरों स्पर्श करि तिन्हों के एक की किये दुग्ध से सुरा को सींचे तिसी मन्त्र करि और लाज चूर्ण तृतीयांश को डाले॥ भरद्वाज दृष्टा सोम देवत्या ब्रह्मती। हे ऋत्विः इतः गौ के सकाश से गृहीत दुग्ध करि इति शेषः अभिषुत सोम परिस्र द्रूप को तुम पर इतः सींचो। तिस किसे कि जो सोम सब हवियों में श्रेष्ठ है और जो नरों के अर्थ हित होते यजमान को धारण करता हुआ। जलों के मध्य वर्तमान जिस सोम को पाषाणों से अध्वर्यु अभिषवन करता हुआ। तिस सोम सुरा रूपा पन्न को पय से सींचो इति सम्वन्धः॥२॥

वायोः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ्क सोमोऽतिद्रुतः॥ इन्द्रस्य युज्यः सरवा॥ वायोः पूतः पवित्रेण प्राङ्क सोमोऽतिद्रुतः॥

इन्द्रस्य युज्यः सरवा॥३॥ + वा-स्वा॥ अ० १८ अ० ३॥

का० २४ अ० ८-१० वायोः पूतः इति द्वे ऋचौ पुनाति तः इति तृतीया तासां व्युत्क्रमेण विनियोगमाह। पूता सुरा को लेकर गोऽश्व केश निर्मित बन्ने से पलाश पात्र में तिसै छाने पुनाति ते ४ इस मन्त्र से तिसै वारण करना केचित् मुखेतर छिद्र सोम वामिन यजमान के सौ वामणि में वायोः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ्क इति मन्त्र से सुरा को छानते हैं और मुखेन सोम वामि यजमान के वायोः पूतः पवित्रेण प्राङ्क इति मन्त्र

सैं सुरा को छानते हैं ॥ ऋ क्रयमाभूति हृष्टं सोमदेवत्यं गायत्रम् । प्रन्य  
च्चति (अधोमुखचलता - गुदद्वारा गया) सोम पवित्र (उदरान्तर्वर्ति) ।  
वायु करि पूत (शुद्ध) है । कैसा कि इन्द्र का योगार्ह सरवा ॥ प्रा च्चति (ऊँ  
चे चलाता - मुखसे निकलता) सोम पवित्र (हृदयान्तर्वर्ति) वायुसे पूत  
है जो इन्द्र का योग्य सरवा ॥ ३॥

पुनाति ते परिस्वुतं सोमं सूर्यस्य दुहिता । वारेण शश्व  
ता तना ॥ ४ ॥

अध्वर्युर्यजमानं प्रत्याचष्टे । हे यजमान सूर्य की दुहिता (पुत्री) शश्व  
तेरे परिस्वुत (सुरा) और सोम को पवित्र (शोधन) करे । यद्वा लुप्तोपमा-  
नम् तरे परिस्वुत को सोम वत्यवित्र करे । यद्वा सोमरूपा यन्ना परिस्वुत  
को शश्व शोधे । किस छाने करिकि अश्व बालनिर्मित । कैसे किशश्व  
त (अनादि) तथा तन (धनरूप) करि ॥ ४ ॥

ब्रह्म क्षत्रं पवते तेज इन्द्रियं सूर्या सोमः सुत आ  
सुतो मदाय । श्रुकेण देव देवताः पिप्रग्धि रसेनान्नं य  
जमानाय धेहि ॥ ५ ॥

का० १६.२.११. अज मेष लोमकृत छाने सैं वेतस पात्र विषे उत्तर  
दिशामें दुग्ध को छानें ब्रह्म क्षत्रमिति मन्त्रेण ॥ सुरा सोम देवत्यात्रि  
ष्टुप् । हे देव सोम श्रुक् (शुद्ध - वीर्य) करितू देवताओं (अग्न्यादिकों)  
को तृप्त करि । पुनः रस (घृतादि) सहित अन्न यजमान के अर्थ  
दे । क्योंकि सोम तू अभिषुतः मन् ब्राह्मण क्षत्रिय को तेज (कान्ति)  
इन्द्रिय (इन्द्रिय सामर्थ्य) देता है । आसुतः सुरया तीव्री कियेस

अश्वो वै सूर्यस्य दुहितीति श्रुतिः ।

अश्वो वै सूर्यस्य दुहितीति श्रुतिः ।

न तू मदके अर्थ होती है। अर्थात् ईदृशसामर्थ्ययुक्त तू देवताओं और यजमान को अभीष्टेन पूर्ण करि ॥५॥

कुविदङ्ग पवमन्तो यव चिद्यथा दान्त्येनु पूर्व विपूये।  
इहे हैंषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नम उक्तिं यज  
न्ति। उपयाम गृहीतोऽस्य श्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय  
त्वा सुत्राम्णा एषते योनि स्तेजसे त्वा वीर्याय त्वा बला  
य त्वा ॥६॥ + कु-न्ति। अ०। उ-मो। इ०। ए-त्वा। उ०॥६॥

का० १६.२.१३.१४. एवं सुरा पय को छानिकर कुविदङ्गेति मन्त्रेण  
तीनि पयो ग्रहों को ग्रहण करै- मन्त्र पाठ में उपयाम गृहीतोऽसि।  
एषते द्वे यजुषी एकवार पटीहुई तीनों ग्रहों में पृथक् होती हैं ॥ त  
तश्चेते मन्त्राः। कुविदङ्गेति ऋचा को पठिके उपयाम गृहीतोऽ  
स्य श्विभ्यां त्वा। ऋग्व्याख्याता १०.३२. हे पयो ग्रह तू उपयाम पा  
त्र करि गृहीत है श्विनी कुमारों के अर्थ तुम्हें ग्रहण करता हूँ।  
सादयति एषते योनि स्तेजसे त्वा। यह तेरा स्थान तेज के अर्थ तुम्हें  
सादन करता हूँ। द्वितीये पयो ग्रहे कुविदिति पठित्वा उपयाम गृही  
तोऽसि सरस्वत्यै त्वा। सरस्वती के अर्थ तुम्हें ग्रहण करता हूँ। सादय  
ति एषते योनि वीर्याय त्वा। वीर्य के अर्थ तुम्हें सादन करता हूँ ॥ तृ  
तीय पयो ग्रहे कुविदित्यन्ते उपयाम गृहीतोऽसीन्द्राय त्वा सु  
त्राम्णा। रक्षक इन्द्र के अ०। सादयति एषते योनि बलाय त्वा।  
बल के अर्थ तुम्हें सा०॥ एतेषां क्रमादश्वत्थो दुम्बरन्यग्रोधया  
वैर्ग्रहणम् ॥६॥

नाना हि वां देव हितं सदैव स्तुतं मासर्षे संक्षया परमे  
व्योमन् सुगन्धमसि शुष्मिणी सोमं एष मा माहि र्दंसीः  
स्वायोनिम विप्रान्ति ॥ ७ ॥

का० १४. २. २१. नाना हीति मन्त्रेण मयः स्थालियों से तीन मु  
राग्रहों को ग्रहण करे। आदिमें आश्विन पयो ग्रह को लेके आसा  
दन करि आश्विन सुराग्रह का ग्रहण आसादन ततः सारस्वत  
पयो ग्रह सुराग्रह का आसादन ततः ऐन्द्र पयो ग्रह सुराग्रह  
काहे। क्रमेण वा। उपयामयोनी अत्रापि पृथक् प्रथमे नाना हीति  
पठित्वोपयाम गृहीतोऽस्याश्विनं तेज इति ग्रहण मेष ते योनि मर्दा  
य त्वेति सादनम् द्वितीये नाना हीत्यन्ते उपयाम गृहीतोऽसि सारस्व  
तं वीर्यमिति ग्रहण मेष ते योनिरानन्दाय त्वेति सादनम् तृतीये  
नानेत्यन्ते उपयाम गृहीतोऽस्येन्द्रं बलमिति ग्रहण मेष ते योनिर्म  
हसे त्वेति सादनमिति सूत्रार्थः ॥ सुरा सोम देवत्या। हे सुरा सोमो जि  
सकारण तुम्हारा नाना (पृथक्) स्थान किया। कैसा स्थान कि देवता  
ओंके अर्थ पथ्य वा स्थापित। इस कारण परम उत्कृष्ट व्योमवद्विशा  
ल हवन स्थानों में तुम संसर्गन करो। एवं द्वौ प्रत्युक्ता सुरा माह हे  
सुरे तू सुरा है कैसी कि शुष्मिणी (बलवती) अतः तुम्हें पी के मत्त होता  
है। यह सोम शान्त है अतः अपने स्थान को प्रवेश करती हुई सो  
म की मत्त बिनाशि माशब्दः पाद पूरणः ॥ ७ ॥

उपयाम गृहीतोऽस्याश्विनं तेजः सारस्वतं वीर्यमैन्द्रं बल  
म्। एष ते योनि मर्दाय त्वानन्दाय त्वा महसेत्वा +

सा-त्रि०। आश्विनं तेजः साक्षात्त्वमेव। और सरस्वती संबंधि सामर्थ्य  
तूहें। और इन्द्रसम्बन्धि बल तूहें इति शेषः। सादयति यजुः। यहते  
रस्थान प्रमोदके अर्थ तुम्हें सादन करता हूं। आनन्दके० मह-  
त्वके० प्रत्येकं मन्त्राः॥ ८॥

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि वीर्यं मसि वीर्यं मयि धेहि  
बलं मसि बलं मयि धेहि लो जोऽस्यो जो मयि धेहि मन्यु  
रसि मन्यु मयि धेहि सहोऽसि सहो मयि धेहि॥ ४॥ +

का० १४. २. १०. आश्विन ग्रह ग्रहण के अनन्तर सादन से पहिले द्वेदर्भ  
तृणे प्रागये पात्र के ऊपर करिके गोधूम कुक्कुट (स्थूल वदरी फल)  
का चूर्ण साथही दुग्ध में डाले॥ त्रीणि पयो देवत्यानि १. या-वृ० २.  
३. या-पं०। हे दुग्ध तू तेज है अतः मूर्धविषं तेज स्थापन करि +॥  
का० १४. २. १८. इन्द्रयवों सूक्ष्म वदरी फलों का चूर्ण सारस्वत पयो ग्रह  
में डाले॥ हे ग्रह तू वीर्य है अतः मूर्धमें वीर्य स्थापन करि॥ का० १४. २.  
२०. यवों अति स्थूल वदरी फलों का चूर्ण ऐन्द्र पयो ग्रह में डाले॥ हे ग्र-  
ह तू बल है अतः मूर्धविषं बल स्थापन करि॥ का० १४. २. २३. २४.  
वृक व्याघ्र सिंह के मिश्रित केशों से प्रतिमन्त्र सुराग्रहों को मिश्रित कर  
रे० ओजोऽसीत्याश्विनम् मन्युरसीति सारस्वतम् सहोऽसीत्येन्द्र-  
म् राके आचार्या वृकादिकेशों करियथासंख्य ग्रह को मिश्रित कर  
ते हैं वृक के शैराश्विनम् वैयाघ्रैः सारस्वतम् सैं है ऐन्द्रम्॥ सुरा-  
देवत्यानि त्रीणि १. या-अ० २. या-पं० ३. या-वृ०। हे सुरे तू ओज है अतः  
मूर्धमें कान्ति स्थापन करि॥ तू मन्यु (मानस कोप) है अतः मु०॥ स

न. वा. यशस्य कः सततं निरुप्यत र दिति न्यायात् ।

ह (बल) है अतः मु० ॥ ४ ॥

या व्याघ्रं विषूचि को भौ वृकं च रक्षति । श्वेनं पतत्रिणं  
हं सिंहं हं सेमं पातु र्हंसः ॥ १० ॥

का० १४. २. २०. अध्वर्यु प्रति प्रस्थाता रौ साथ ही अन्तःपात्यस्थान  
में अवस्थित प्राङ्मुख यजमान को श्वेनपिच्छों से मार्जन करे ही  
क्षावदिति एक करि नाभिसे ऊपर प्रदक्षिण दूसरे करि नीचे एक  
वार यद्वा दोनों करि नाभिसे नीचे और ऊपर द्विरिति ॥ हे मवर्चि ह  
ष्टा विषूचि देवत्यानुष्टुप् । व्याध्यधिसृञ्ची देवतास्तिसा प्रार्थ्यते । जो  
विषूचिका विषु सर्वत्र अद्भुति गच्छति विषूची सेव विषूचिका रौ  
गविशेषः । व्याघ्र वृक इन दोनों को रक्षा करती तथा श्वेनपक्षी औ  
र सिंह दोनों को रक्षा करती है नहीं हैं तिनमें अन्तःपरिणामजनित  
दोष । वोह विषूचिका इस यजमान को अहं (व्याधिहेतुभूतपाप) से  
रक्षा करे ॥ १० ॥

यदापिपेष मातरं पुत्रः प्रमुदितो दधेनू । एतत्तद्गने अ  
नृणो भवा म्यहं तो पितरो मया ॥ सम्पृच स्थ सं मा भद्रे  
ए पृङ्क् विपृच स्थ वि मा पाप्मनो पृङ्क् ॥ ११ ॥ +

का० १४. २. २०. अग्नि प्रेक्षस्वेति प्रेषा करि अध्वर्यु यजमान को अ  
ग्नि दिखाता है सो प्रेषित यदापिपेष मन्त्रेण औत्तर वेदिक अग्नि  
को देखता है ॥ अग्नि देवत्या बृहती । में पुत्र प्रमुदित (प्रलुष्ट) स्तनपान  
करता जो माता (जननी) को आपिपेष पेरों से पीडा देता हुआ । हे अ  
ग्ने इस से तेरे समक्ष अनृणा (ऋणत्रयरहित) हूं अतएव कहिता

हं किं मेने मातापितानहीं पीडितकियेजो पुत्रप्रत्युपकरनेको असमर्थ  
हे सगवपितरों का हन्नेति भावः॥ का० १८०. २. २४० यजमानसाथही  
सम्पृचस्थ से पयो ग्रहों का स्पर्श करे ॥ पयो ग्रह देवत्यमूया-वि० हे  
पयो ग्रह ओ तुम स्वत एव संयोजका हो अतः मुझे कल्याण युक्त क  
रो ॥ का० १८०. २. ३० विप्रचस्थ इससे सौरग्रहों का यजमानस्य० ॥  
सुराग्रह देवत्यमू य-वि० हे सुराग्रह ओ तुम वियोजका हो अतः मु  
झे निष्याप करो ॥ ११॥

अ० २ देवा यज्ञमतन्वत भेषजं भिषजाश्विना। वाचा सरस्व-  
ती भिषगिन्द्रायेन्द्रियाणि दधतः ॥ १२॥

देवा यज्ञमित्यादिकण्डिकाविंशतिर्ब्राह्मणरूपातो विनियोगाभावात्  
ब्राह्मणानुवाकोविंशतिरनुष्टुभः सौत्रामण्याः सोमसाम्यप्रतिपा  
दिकाः ॥ अत्रेतिहासः ॥ अनुपहृतसोमपानसैभृष्ट इन्द्रके वीर्यको  
नमुचि असुरनेपिशा तहां देवताओं ने इन्द्र का भेषज्य किया तहां  
अश्विनी कुमार और सरस्वती भिषज (वैद्य) हुए और सौत्रामणी  
औषध हुआ तथा च श्रुतिः शत० १२०. ३. १० त्वष्टा हतपुत्रोऽभिचर  
णीयमपेन्द्रं सोममाहरत्तस्येन्द्रो यज्ञवेशासं कृत्वा प्रासहा सोमम  
पिबन्स विष्वङ् व्यर्चत्तस्य मुखात्प्राणेभ्यः श्रीयशसान्यूर्ध्वान्युद  
क्रामंस्तानि पशून्प्रादिषुः सस्मात्पशवो यशो यशो ह भवति य ए  
वं विद्वान्सौत्रामण्याभिषिच्यते ततोऽस्माऽ एतमश्विनौ च सरस्व  
ती च यज्ञं समभरन्ते सौत्रामणी भेषज्याय तयैनमभ्यषि च्वंस्त  
तो वै स देवानां षं श्रेष्ठोऽभवच्छ्रेष्ठः स्वानां भवति य एतयाभिषिच्य

तः इति॥ देवताओं ने यज्ञ (सौत्रामण्याख्य) भेषज (इन्द्र के ओष-  
धरूप) को विस्तार किया तब अश्विनी कुमार वैद्य हुए इति शेषः॥  
और सरस्वती वाणी (त्रयीलक्षणा) करि वैद्य हुई। कैसे हैं सरस्वती अ-  
श्विनी कुमार कि इन्द्र के अर्थ वीर्यो (सामर्थ्य) को देते॥ १२॥

दीक्षाये रूपं शय्याणि प्रायणीयस्य तोक्मानि। क्रय-  
स्य रूपं सोमस्य लाजाः सोमाश्च शवो मधु॥ १३॥

इदानीं सौत्रामण्याः सोमसम्पत्तिं निरूपयति। शय्य (नवप्ररूढ व्री-  
हिरूप) दीक्षणीयेष्टि के रूप हैं (शय्याणि दीक्षणीयात्वेन ध्येयानि।  
एवमग्रेऽपि। तोक्म (नवप्ररूढयव) प्रायणीयेष्टि के रूप जानना। ला-  
जा (मृष्टवीहि) सोमक्रय का रूप हैं। मधु सोम के अंशुर्ण (खण्ड) निरूप-  
य करि जानना यद्वा मधुरस्वाद लाजा ही सोमांशुर्ण जानना॥ १३॥

आतिथ्यरूपं मासरं महावीरस्य नग्नहः। रूपमुपसदा-  
मेतत्सिखो रात्रीः सुरासुता॥ १४॥

किंच मासर (व्रीहि श्यामा को दनाचामयोः शय्य तोक्म लाज नग्न-  
हचूर्णेः संसर्गो मासरं पूर्वमुक्तम्) आतिथ्येष्टिका स्वरूप जानना  
सर्जत्वगादिषड्विंशति वस्तून् ये कीकृतानि नग्नहः पूर्वोक्तः वोह महा-  
वीर (धर्म) का रूप॥ जो त्रिरात्र पर्यन्त सुरा आसुता (सब को एकपा-  
त्र में करि स्वादीं त्वेति मन्त्रेण गर्त में स्थापन) एतत् उपसत्संज्ञा  
इष्टी ओं का रूप॥ १४॥

सोमस्य रूपं क्रीतस्य परिस्रुत्यरिषिच्यते। अश्विभ्यां दु-  
ग्धं भेषजमिन्द्रायेन्द्रं सरस्वत्या॥ १५॥



जो अश्विनीकुमारों और सरस्वतीने इन्द्र देवत्य इन्द्र के अर्थ ओ-  
 ध्रं दुग्धं पयः अश्विभ्या मपा करोमीति दुग्धेनैकगोः पयसा सर-  
 स्वत्याः अपा करोमीति दुग्धेन गोद्वय पयसा इन्द्रापाप करोमीति दुग्धे-  
 न गोत्रय पयसा तीनि दिनमें परिस्तुत् सुराजिससै सींचियेहें वोह  
 क्रीतसोमका रूप० एकस्याः पयसापाकृतेनाश्विनेन परिषिञ्चतिसा-  
 रस्वतेन द्वयोः प्रातः ऐन्द्रेणोत्तमेति स्मरणमिति १६.१.२३.२५.२७.  
 कात्यायनेन निर्दिष्टत्वादश्विभ्यां सारस्वत्याचदुग्धमिति निर्देशः ॥१५॥

आसन्दी रूपं रंजासुन्द्ये वेद्यै कुम्भी सुराधानी। अ-  
 न्तर उत्तर वेद्या रूपं कारोतरोभिषक् ॥१६॥

यजमान के अभिषेकार्थ आसन्दी (मश्विका) सोम की आसन्दी का  
 रूप तत्त्वेन ध्येया। सुराधानी (सुरा ररवतेहें जिसे वोह कुम्भी) वेदि  
 (सोमिक वेदि) का रूप० अन्तर (दोनों वेदियों का मध्यभाग) उत्तर  
 वेदी रूप० कारोतर (सुराछानने की चालनी) इन्द्र और यजमान  
 का मिषक् जानना ॥१६॥

वेद्या वेदिः समाप्यते बर्हिषा बर्हिरिन्द्रियम्। यूपेन यू-  
 पे आप्यते प्रणीतोऽग्नि रग्निना ॥१७॥

वर्तमाना वेदि करि सोमिकी वेदि भले प्रकार प्राप्त है अर्थात् त  
 द्रुपाध्येया। बर्हिः ओं करि सोमिक बर्हि समाप्यते। इन्द्रियों करि  
 इति शेषः इन्द्रिये (सामर्थ्य) समाप्यते फलदाने उभयोरप्यस्ती-  
 त्यर्थः। यूप करि यहं यूप आप्यते। अग्नि करि प्रणीतोऽग्नि  
 (सोमिक) आप्यते ॥१७॥

हविर्धानं यदश्विनाग्नीध्रं यत्सरस्वती । इन्द्रायेन्द्रं  
सदस्क्रुतं पत्नीशालं गार्हपत्यः ॥१८॥

इस सोत्रामणी में जो अश्विनी कुमार देवता वर्तते हैं तिन अश्विस-  
द्भाव से सौमिक हविर्धान आय्यते इत्यनुषङ्गः । यहां जो सरस्वती  
देवता है तिस सद्भाव करि सौमिक आग्नीध्र आय्यते । इन्द्र के अर्थ  
जो हवि बोह सौमिक सदः पत्नीशाला गार्हपत्यरूपेण ध्येयम् ॥१८॥

प्रेषेभिः प्रेषानां प्रोत्याग्नीभिः प्रीर्यज्ञस्य । प्रयाजेभिर  
नुयाजान्वषट्कारेभिराहुतीः ॥१९॥

प्रेषाओं से प्रेषाओं को प्राप्त होता है । आग्नीओं प्रयाजयाज्याओं से  
यज्ञ की आग्नीएँ प्राप्त । प्रयाजेभिरित्यादि वाक्य चतुष्टयस्योत्तर प  
दलोपश्छान्दसः । प्रयाजों से प्रयाजों को । अनुयाजों से अनु । वष-  
ट्कारों से वष । आहुतियों से आहु । प्रेषादीनामुभयत्र सद्भावा  
त् ॥१९॥

पशुभिः पशूनां प्रोति पुरोडाशैर्हवींश्च । छन्दोभिः सा  
मिधेनीर्याज्याभिर्बषट्कारान् ॥२०॥

पशुओं करि पशु । पुरोडाशों से पुरो । हवियों से हवि । छन्दों से छन्दों ।  
सामिधेनियों से सामि । याज्याओं से याज्या । वषट्कारों से वष । प  
श्वेदीनामुभयत्र सद्भावात् । अत्राप्युत्तरार्धलोपः पूर्ववत् ॥२०॥

धानाः करम्मः सक्तवः परीवापः पयोदधिः । सोमस्य-  
रूपं हविष आमिक्षा वाजिनं मधु ॥२१॥

धानादयः सोम का रूप जानना । धानाः । भृष्टधान्यकरम्मः । उद

मन्य।सक्तवः(सतुः। परीवायः(हविष्यङ्गि। दूध। दही। एतानि  
सोमरूपम्। आमिक्षा(फटेदुग्ध)मधुर औरवाजिन(फटेदुग्धका  
जल हविकारूपहे॥२१॥

धानानां रूपं कुवलेन परीवायस्य गोधूमाः। सक्तूनां  
रूपं वदरमुपवाकाः करम्भस्य॥२२॥

नन्वधस्तनमन्त्रे धानादीनां सोमरूपत्वमुक्तम् तेऽत्र कुत्र सन्ती  
ति धानादि सोमहविषां सोमस्य च सम्पत्तिं सौत्रामणीद्रव्यैरा  
ह। कुवल(कोमल वदरीफल)पूर्वोक्त धानों का रूप०। गोधूमाः  
परीवाय का रूप०। सर्व वदरीफल सक्तुओं का रूप० उपवाकाः  
(यवाः)करम्भका रूपजानना॥२२॥

पयसौ रूपं यद्यवा दध्नी रूपं कर्कन्धूनि। सोमस्य  
रूपं वाजिनर्तं सौम्यस्य रूपमामिक्षा॥२३॥

जे यवाः ते पयका रूप कर्कन्धु(स्थूलवदर)दधिका रूप वाजिन  
सोम का रूप आमिक्षा सौम्यचरुका रूपजानना॥२३॥

आश्रावयेति स्तोत्रियाः प्रत्याश्रावोऽऽनुरूपः। यजेति  
धय्यारूपं प्रगाथा येयजामहाः॥२४॥

शस्त्र सम्पत्तिमाह। आश्रावयेति शब्दः स्तोत्रियारूप(स्तोत्रे प्रथ  
म स्तुचोऽनुवाकः) जानना। प्रत्याश्रावः(अस्तु श्रोषडिति शब्दः)  
अनुरूपः(उत्तरस्तुचः तद्वत्)। यजेति शब्दः धय्या(निष्केवत्ये-  
स्तोत्रियानुरूपयोरनन्तरं धय्या शस्यते) जानना। येयजामहाः(येय  
जामहः इति शब्दः प्रगाथा रूपत्वेन ध्येयाः॥२४॥

अर्धः ऋचै रुक्म्यानां रूपं पदे राप्नोति निविदः ॥ प्रणवैः

श स्त्राणां रूपं ययसा सोम आप्यते ॥ २५ ॥

अत्रत्य अर्धः ऋचो (अधोरियो) करि उक्थो (शस्त्रविशेषों) के रूपको प्राप्त होता है। यहाँ में न्यूनता का प्रा० प्रणव (ओंकार) से शस्त्र के रूप० दुग्ध करि सोम प्रा० अर्धः ऋचो उक्थादयो ध्येयाः ॥ २५ ॥

अश्विभ्यां प्रातः सवनमिदं ऐन्द्रं माध्यन्दिनम्। वैश्वदेव  
ठं सरस्वत्या तृतीयमाप्तं सवनम् ॥ २६ ॥

सवन सम्पत्तिमाह। अश्विनी कुमार देवताओं से प्रातः सवन को प्रा  
प्त है इन्द्र देवता करि इन्द्र देवत्य माध्यन्दिन सवन प्राप्त है सरस्वती-  
देवी करि विश्व देवत्य तृतीय सवन प्राप्त है ॥ २६ ॥

वायव्यैर्वायव्या न्याप्नोति सतेन द्रोणकलशम्। कुम्भीभ्यां  
मम्भूणो सुते स्थालीभिः स्थाली राप्नोति ॥ २७ ॥

वायव्यों पात्रों करि वायव्यों सोम पात्रों को प्रा० वैतसपात्र है तिस  
करि द्रोण कलश को प्रा० कुम्भीभ्यां (प्रातस्त्रिद्रा कुम्भी मुराधानी दो  
नों करि अम्भूणो (पूत मृदा धवनीयो सोमाभिषवन करते तिन्हें प्रा०  
स्थाली करि स्थाली प्रा० ॥ २७ ॥

यजुर्भिराप्यन्ते ग्रहा ग्रहे स्तोमाश्च विष्टुतीः। छन्दोभिरु  
क्था शस्त्राणि साम्नावभृथ आप्यते ॥ २८ ॥

यजुःओं से यजूं वि प्रा० ग्रहा ग्रहों से प्रा० स्तोमों से स्तोम प्रा० विष्टुति  
ओं (विविध स्तुतिओं) से विष्टुति प्रा० छन्दों से उक्थों और शस्त्रों को प्रा०  
साम करि साम प्रा० अवभृथ करि अवभृथ प्रा० ॥ २८ ॥

इडाभिर्भक्षानाप्नोति सूक्तवाकेनाशिर्यः । श्रुयुतापत्नीसंया-  
जान्तसमिष्ट यजुषासंस्थां ॥ २४ ॥

इडासे इडा को प्रा० भक्षों से भक्ष को प्रा० सूक्त वाकों से सू० आशिषा-  
ओं से आ० श्रुयु (होम विशेष) से श० पत्नी संयाज से य० समिष्ट यजु  
से स० संस्था से सं० । इडादीनामुभयत्र सद्भावात् ॥ २४ ॥

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् । दक्षिणा  
श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥ ३० ॥

हुतोच्छिष्ट भक्षश्च तूरात्रमग्निहोत्रं जुहोतीति व्रतेन दीक्षा को प्रा० दी-  
क्षा से दक्षिणा को प्रा० दक्षिणा करि श्रद्धा (आस्तिक्य बुद्धि) को प्रा० श्र-  
द्धा करि सत्य (ज्ञान अनन्त ब्रह्म) को प्राप्त होता है श्रद्धा विना ज्ञाना-  
भावात् ॥ ३० ॥

एतावद्रूपं यज्ञस्य यद्देवैर्ब्रह्मण कृतम् । तदेतत्सर्वमाप्नो-  
ति यज्ञे सौत्राणी सुते ॥ ३१ ॥

यज्ञ (सोम यज्ञ) का एतावत् (एतत्परिमाण) रूप को जो देवताओं और  
ब्रह्मा (प्रजापति) ने किया (देखा) दर्शन करणयोः को भेदः सुप्त प्रतिबु-  
द्ध्या यो दर्शनं बुद्धिपूर्वं तु करणम् । सौत्रा मणी यज्ञ विषे सुरा सो-  
म अभिषवन करते सति तदेतत् सोमयागरूप सव को प्राप्त हो-  
ता है ॥ ३१ ॥ इति ब्राह्मणोऽनुवाकः समाप्तः ॥

अ० ३ सुरावन्तं बर्हिषदं सुवीरं यज्ञं हिन्वन्ति महिषा न-  
योभिः । दधानाः सोमं दिवि देवता सु मदे मेन्द्रं यजमा-  
नाः स्वर्काः ॥ ३२ ॥

का० १४. ३. ८. सुरावन्तमिति मन्त्रेण अभ्यर्च्युं तीनि पयो यहाँ को साथ  
ही होमें ॥ एवं सौत्रा मण्याः सोम सम्यति मायाद्य प्रकृति मनु  
सरति । चतस्रस्त्रिष्टुभोऽश्विसरस्वसत्येन्द्रदेवताः महिषाः (महा  
न्तः ऋत्विजः) । यज्ञ (सौत्रा मणी संज्ञ) को हिन्वति (वदाते वा प्राप्त क  
रते हैं) । कैसे यज्ञ को कि बर्हिः ओं पर वैठते हैं देवता जहां । तथा सुराव  
न्त को । सुवीर (शोभन ऋत्विज) को कैसे हैं महिषाः कि नमः (नमस्का  
र वा अन्नों सहित स्वर्ग में वर्तमान देवता ओं विषे सोम को धारण  
करते । तिस यज्ञ में इन्द्र को यजमानाः (पूजा करते) हम हृष्ट होँ । कै  
से हैं हम कि स्वर्काः (शोभन हैं) अर्चन वामन्त्र जिन्हों केते । यद्वा शो  
भन है अर्क (अन्न) जिन्हों के ॥ ३२ ॥

यस्ते रसः सम्भृत ओषधीषु सोमस्य शुष्मः सुरया सु  
तस्य । तेन जिन्व यजमानं मदेन सरस्वती मश्विना वि  
न्द्रमग्निम् ॥ ३३ ॥

का० १४. ३. ९. प्रति प्रस्थाता पालां शोरबलसै दक्षिण में अग्नि वि  
धेयजै मृन्मय पात्र आहुति को नही व्याप्त होते इत्युक्तेः ॥ हे सुरे ओषधियों  
में वर्तमान जो तेरा रस एकी किया । और सुरा सहित सोम का जो व  
ल है । तिस मर्जन क सुरारस और सोम शुष्म से यजमान और  
सरस्वती मश्विनी कुमार इन्द्र अग्नि को तृप्त करि ॥ ३३ ॥

यमश्विना नमुचेरासुरादधि सरस्वत्य सुनो दिन्द्रिया  
य । इमं तर्ह्य अकं मधुमन्तमिन्दुं सोमं राजानमि  
ह भक्षयामि ॥ ३४ ॥

२२. ८. ३. २. कुंभः ॥  
+ अन्ति सोम विपश्चिदिति ॥  
+ अको विवरित्यादि ॥  
नि ६. ३. ४. ॥

का० १४. ३. १०-१३. अध्वर्यु प्रति प्रस्थाता आग्नीध्र आश्विनपथो  
ग्रह को क्रमेण दो-दो आवृत्य करि भक्षण करें सकृन्मन्त्रः होता  
ब्रह्मा मैत्रावरुण पूर्ववत् सारस्वत पथो ग्रह को भक्षण करें यज  
मानेन्द्र पथो ग्रह को भक्षण करें ॥ नमुचिनेन्द्रस्य वीर्यं पीतमृतस्मि  
न्हते रुधिरमिश्रः सोमे जातस्तं देवाः पयुस्तदभिवादिन्येषा ऋक्।  
असुरके पुत्रनमुचिके स काशसे जिस सोम को अश्विनी कुमारे ने आ  
हरण किया इति शेषः (अश्विनो ह्येनं नमुचे रध्या हरतमिति १२. ८. १।  
३. श्रुते। और जिस अश्विनी कुमारे को रिलाये हुए को सरस्वती ने इन्द्र के वी  
र्य वा भैषज्य के अर्थ अभिषेक वण किया तिस अश्विनी कुमारे को रि  
लाये सरस्वती सुत इस राजा को इस यज्ञ विषे में भक्षण करता हूँ।  
कैसे सोम को कि शुद्ध (लोहिता संसृष्ट) अत एव रसवन्त परमैश्व  
र्य प्रद ॥ ३४ ॥

यदत्र रिपुर्धं रसिनः सुतस्य यद्विन्द्रेऽपि बह्वची-  
भिः ॥ अहं तदस्य मनसा शिवेन सोमर्धं राजानमिह  
भक्षयामि ॥ ३५ ॥

का० १४. ३. १४. पूर्ववत् अध्वर्यादयः आश्विन होत्रादयः सारस्व-  
त यजमानेन्द्र सुराग्रहों को यदत्रेति मन्त्रेण विहार दक्षिण  
में स्थित प्राचीना वीति भक्षण करें आघ्राण मन्येन मृत्येन भ-  
क्षणम् ॥ रसवत अभिषुत सोम के जिस भाग सुरा में लगे हुए  
और जिस सुरा लग्न सोमांश को शचीभिः (कर्मों से) शुद्ध क-  
रि के इन्द्र ने पिया तिस सुरा निर्गत सोम को शिव (शुद्ध) मनक

रिके दसयज्ञमें मैं (सुरासकाशंसे शुद्ध करि +) भक्षण करता हूँ ॥३५॥

पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधानमः पितामहेभ्यः स्वधायि  
भ्यः स्वधानमः प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधानमः  
अक्षन्पितरोमीमदन्तपितरो ती तृपन्तपितरः पितरः  
शुन्धध्वम् ॥३६॥ +

अदुतः पयम्  
नमाशिवः नम्य  
शिवः नमः वा-अप  
भक्षोपत्सुगवा  
। नमः पितृभ्यः  
वेनेमतः कृत्वा  
तमस्वन्तः शक्ति  
१३८०१०५  
श्रुतोः।

का० १८०१०१० सुराग्रहों का भक्षण घ्राण और अन्यमूलकरिभूषा  
ल पान ये तीनि पक्ष कहे चौथा कहिता है अथवा परिधिसे बाहि  
र में स्थित आहवनीय के अङ्गारों विषे होम शेष सुराग्रहों को पि  
तृभ्य इति प्रति मन्त्र होमें तदेवाह उत्तर अङ्गारमें आश्विन मथ्यम  
में सारस्वत दक्षिणमें ऐन्द्र सुराग्रहों को होंमें ॥ अपसव्येन कर्म । स  
प्रयजूषि पितृदेवत्यानि १० या-त्रि० २० आसु-अ० ३० सा-अ० ४० दे-  
य० ५० ई० या-अ० ७० या-गा० पितरों के अर्थ स्वधा संज्ञक नमः (अ  
न्न) होय द्वापितरों के अर्थ स्वधा (अन्न) हो और तिन्हों के अर्थ नम  
स्कार हो कैसें के कि स्वधा (अन्न) प्रतिजाने हैं एवं शीलाः स्वधायिनः  
तिन्हों के अर्थ ॥ एवं पितामहेभ्य इति मन्त्रों व्याख्येयौ ॥ का० १८०३०  
१८० सौरग्रह होम पात्रक्षालनजल करिके यथा होम अङ्गारों को सीं  
वे अक्षन् अमीमदन्त अतीतृपन्त मन्त्रों से ॥ पितरोने भक्षण किया ॥ पि  
तर तृपन्त ॥ हम लोगों करि पितर तृपन्त ॥ यद्वा हम लोगों को तृ  
पन्त ॥ अभीष्ट दान करि तृपन्त करते हैं ॥ का० १८०३० १८० पितरः शुन्ध  
ध्वं इति जपै ॥ हे पितरः तुम पाणि प्रक्षालन करि शुद्ध होओ ॥ ३६॥  
पुनन्तु मा पितरः सोम्यासः पुनन्तु मा पितामहाः पुन

तिः  
म त्वधा न पितृणां मन्त्रं प्रतिजिह्वति

+ पि-मः ॥ अ० १०॥ प्र-मः ॥ ३०॥ अ-२०॥ अ० ३०॥ लक्ष्मणा० पि-मः ॥ ३६॥  
५ पितृभ्य इति बहुवचन पितृव्याद्यपेक्षं पूजार्थं वा ।



नु प्रपितामहाः पुदित्रेण शतायुषा ॥ पुनन्तु मापिताम  
हाः पुनन्तु प्रपितामहाः पुदित्रेण शतायुषा विभवायुर्व्य  
भवे ॥ ३७ ॥ † पु-पा॥ अ० पु-वे। द० ॥ ३७ ॥

का० १४. ३. २० दक्षिणा हवनीयपार्श्वयोः होनोत्तम्भोके ऊपर द  
क्षिणाग्रवशर खिकेतत्रस्थे शिवे शतछिद्राकुम्भीको रविकुम्भी  
केतलमें वालों को रविकेतहंसुरशेषको सींचि अग्निके ऊपर सु  
वती सुरविषे नवर्च यजमान प्रति वाँचे गोश्ववालकृतं सुराग-  
लनम् पवित्रमजाविलोमकृतम् पयोगलनम् हिरण्यं शतमा-  
नमितन् प्रतृचं वाचनमिति सूत्रार्थः ॥ पुनन्तुमानवर्चपावमान  
म् आद्ये द्वे पितृदेवत्येऽनुष्टुभौ प्रजापतिदृष्टे। पितरमुक्ते शोधे किस  
से कि पवित्र गोश्ववालकृत से कैसे से कि शतायु (शतवर्षमित आयु  
जिस करि तिस से अर्थात् जिसकरि पवित्र हुए शतायु होती है। पि  
तामहाः और प्रपितामहाः मुझे पवित्र करें कैसे हैं पित्रादयः कि सो-  
म्याः (सोम को सम्पादन करते ॥ आदरार्थं पुनर्वचनम् पितामहाः  
प्रपितामहाश्चमां पुनन्तु शतायुषा पवित्रेण। एवं पित्रादयोऽसौ प्रामे  
सर्व आयु को प्राप्त हों उं ॥ ३७ ॥

अग्निः आयुर्धृषिपवसः आसुवोर्जमिषं च नः ॥ आरे  
बाधस्व दुष्टानाम् ॥ ३८ ॥

वैश्वानरसहस्रान्निदेवत्यागावजी। हे अग्ने तू स्वत एव आयुः प्रप  
कों कर्मों की चेष्टा करता है। अतएव हमारे अर्थ दुष्ट (वीहि आदि-  
धान्य) और ऊर्ज (दध्यादि) दे (जीवन हेतुत्वात्। किंच दूरस्थित

दुष्टानां (दुर्जनों- बाबलेकुलों- भेडियाओं- दुष्टों) को नाश करता है  
दुर्जने जीवनाशकैः ॥३८॥

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसाधियः । पुनन्तु विश्वा  
भूतानि जातवेदः पुनीहि मा ॥३९॥

अनुष्टुप् लिङ्गोक्तदंजनधीविश्वभूतजातवेदो देवत्या देवानु  
गामिनो जनाः मुमै पुनन्तु मनसहित बुद्धि वा कर्माणि मुमै पुनन्तु  
सर्वभूत मुमै पु० हे जातवेदः तूभी मुमै पवित्र करि ॥३९॥

पवित्रेण पुनीहि मा शुक्रेण देव दीद्यत् । अग्ने क्रत्वा क्र  
तू २ ॥४०॥

अग्नि देवत्या गायत्री । हे अग्ने हे देव शुद्ध पवित्र से मुमै पवित्र क  
रि । केसाहे तू कि दीयमान । किंच हे अग्ने हमारे यज्ञों को अनुलक्ष्य  
करिके क्रतु (कर्म) से तू पवित्र करि यज्ञ में मुमै पवि० वायज्ञों को  
भले प्रकार कराय ॥४०॥

यज्ञे पवित्रमर्चिष्यग्ने विततमन्तरा । ब्रह्म तेन पुना  
तु मा ॥४१॥

आग्नेयी गायत्री तृतीयः पादो ब्रह्म देवत्यः । हे अग्ने तेरी ज्वाला  
ओं के मध्य में जो ब्रह्म (त्रयीरूप वा परब्रह्मरूप) पवित्र विस्तृत है  
निस पवित्र से आप मुमै पवित्र करा ओ ॥४१॥

पवमानः सोऽअद्य नः पवित्रेण विचर्षणिः । यः पो  
ता स पुनातु मा ॥४२॥

सोम देवत्या गायत्री + तृतीयः पादो वायु देवत्यः । बौह पवमान शो

विचर्षणिः

धक सोम) इस दिन में पवित्र सैं हमें शोधे के साथे सोमविचर्षणि-  
 (हृष्टा) कृता कृतज्ञ वाविशिष्ट हैं मनुष्यः ऋत्विजजिसके वोह किं  
 च जो पोता (पवित्र करने वाला + वा वायु) वोह मुझे पवित्र करे ॥ ४२ ॥  
 उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च । मां पुनीहि  
 विश्वतः ॥ ४३ ॥

+ महोदधरमते

सवित देवत्या गायत्री हे देव सवितः दोनों करिके सर्वतः मुझे पवित्र  
 करि किन् दोनों कि पवित्र (अजाबिलोमनिर्मित) और सब (अनुज्ञा)  
 करि अर्थात् तेरी आज्ञा से यज्ञ सिद्धि है ॥ ४३ ॥

वैश्वदेवी पुनती देव्या गायत्र्यामिमा बहव्यस्तन्वो बी  
 तपृष्ठाः । तथा मदन्तः सधमादेशु बयश्च स्याम पति यो  
 रयीणाम् ॥ ४४ ॥

विश्व देव देवत्या त्रिष्टुप् । इयं प्रवल्हिका । अज्ञाता भिक्षेया । ततः  
 कां चिद्देवतामुद्दिश्य व्याख्यास्यामः दक्षिणाग्नेरुपरि शतावृणा  
 कुम्भी क्षरति ताम् सौत्रामणी वा वाचं वा उखां वा । देवी योतमा  
 ना सुरा कुम्भी आई कैसी कि वैश्वदेवी (सब देवताओं के अर्थ-  
 हिता वा सब देवताओं के अर्थ आई) पावन करने वाली । जिस कुम्भी  
 में ये प्रत्यक्षतो दृश्यमानाः बहु संख्या काः तन्वः (शरीर प्राया)  
 धाराएँ बँते हैं वे सीतन्वः कि बीतपृष्ठाः (इष्ट हैं स्वरूप जिन्हों के  
 ने कामिन शरीर) सुरा धाराएँ सुरों करि चाह की जाती हैं । जिस कुम्भी  
 करि सधमादेश (साथ मदकी प्राप्ति है) जिन यज्ञस्थानों में मोदमानाः  
 सन्तः हम धनों के पति होवें ॥ ४४ ॥

ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये । तेषां लोकः स्वधान  
मो यज्ञो देवेषु कल्पताम् ॥४५॥

का० १४.३.२३. सह दृहीत आज्य को दक्षिण अग्नि में प्राचीनावी  
नी दक्षिण मुख यजमान जुझ करि होमें ॥ दे अनुष्टुभौ । आद्यापितृ  
देवत्या । यभके राज्य (लोक) में जे पितर वर्ते हैं । कैसे पितर कि समानाः  
जाति रूपादि से तुल्याः । समनसः तुल्यमनस्काः । तिन पितरों के लो  
क में स्वधानमः (स्वधाशब्दोपलक्षितनमस्कार हो यदा अन्न और  
नमस्कार हो । और यज्ञ देवताओं को तर्पण समर्थ हो ॥४५॥

ये समानाः समनसो जीवा जीवेषु मामकाः । तेषां श्रीर्मयि  
कल्पतामस्मिं लोके शत वसनाः ॥४६॥

का० १४.३.२४. उत्तर वेद्याहवनीय में सव्य करि यजमान अगली  
४६. ऋचा से होमें ॥ यजमानाशूः श्रीदेवत्या । जीवों (प्राणियों) में जे  
समानाः समनसः मेरे प्राणिनः हैं । सपिण्डाः जे मेरे ते मामकाः इ  
स लोक (भूलोक) में शत वर्ष तिन मेरे जीवों की श्री मुरु विषे लुप्ता  
हो अर्थात् तिन्हें छोड़ि मुरुविषे आश्रित हो गोत्रिणोहि पापात्मानः  
सहजाः शत्रवोऽत एवं प्रार्थ्यते ॥४६॥

हे सृतीः अश्रुण्वं पितृणामहं देवानां मुत मर्त्यानाम् ।  
नाभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं च ॥४७॥

का० १४.३.२५. ऋत्विग्यजमानों के अन्वारम्भ किये पर अध्वर्युप  
य होमें ॥ देवयान पितृयान मार्ग देवत्या त्रिष्टुप् । मर्त्यो (मरण ध  
मी प्राणियों) के हे सृती (दो मार्ग) में ने सुने । कीन हे सृती अतः ग्राह

॥४७॥

हे सृतीः अश्रुण्वं पितृणामहं देवानां मुत मर्त्यानाम् ।  
नाभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं च ॥४७॥

\* देवताओं का मार्ग और पितरों का मार्ग है। पितरों और मातरों की जो  
अन्तरा भूलोक द्युलोक के मध्य बौह कम्पमान क्रियावत् यह सर्वा  
नस्तीओं देवयानपितृयानों से संगत है तिन स्त्रीओं के अर्थ सु  
हुत हो ॥४७॥

इदं हविः पजननं मेऽस्तु दशवीरुं सर्वगणं स्वस्तये।  
आत्मसनि प्रजासनि पशुसनि लोकसन्त्यभयसनि।  
अग्निः प्रजा बहुलां मे करोत्वन्न पयो रेतोऽपस्मा  
सुधत्त ॥४८॥

का० १५.३.२६. उरवास्थित पय शेष को यजमान भक्षण करें ॥  
यजमानाशी देवत्या अवसाना अष्टिः। यह पयोरूप हवि मेरे स्व  
स्ति (अविनाश) के अर्थ हो। कैसा हवि कि प्रजात्या दक। जिस केपी  
ने से दशवीरों (प्राण. अपान. व्यान. उदान. समान. नाग. कूर्म.  
ह्मकर. देवदत्त. धनंजय. संज्ञक दश प्राणों) की स्वस्थता होती है  
तथा सर्व गणों (सब अङ्गों) की स्वास्थ्य है। आत्मसनि (आत्मा की  
देती वा सम्भजती। प्रजासनि पशुसनि लोक (ऐहिक सुरव) सनि  
अभय (स्वर्ग) सनि। एवं प्रार्थ्याग्निं प्रार्थ्यते अग्नि मेरी प्रजा को  
बहुला करें। एव मग्निमुत्ता वरत्विज आह हे ऋत्विजः हमलो  
गों विषे अन्न दुग्ध रेत (वीर्य) तुम स्थापन करें ॥ प्राणा वै दशवी  
रा इत्यादि० शत० १२.०.१.२२. श्रुतेः ॥४८॥

अ० ४ उदीरता मवरः उत्परात् उन्मध्य माः पितरः सोम्यासः।  
असुं यः ईषुरवृका ऋतशास्ते नो वन्तु पितरो ह

\* वास्तव में वायु प्राण एक है परन्तु स्थान कार्य भेद करि दृश है। हृदयस्थ ऊर्ध्व वा रीश्च  
गो गत वायु २ सर्व शरीर गत ३ कण्ठस्थ ४ नाभिस्थ ५ सोम्य कुटी ६ पलक लगाने खोलने वा  
ला ७ क्षुधा के रनहार ८ जठ्र मालता है ९ शरीर को फडकाता है १० इति निवेदन भाष्ये ॥

वेषु ॥४६॥

का० १४. ३. २१. उदीरतामित्यादि त्रयोदशोर्चाऽनुवाकः तत्र उदीर-  
ताम् ४६. अङ्गिरसः ५०. येन ५१. इति वरुणस्य स्याग्नेष्वानित्य-  
न्त्यायाश्च ६१. विनियोगः कल्पकृतोक्तः त्वं सोमेति ५२. त्वं सोमव-  
ताम् बर्हिषद् इति ५३. त्वं बर्हिषदाम् आपन्तु न इति ५४. त्वं  
मग्निष्वानानाम् पुनन्तु मेति ३६. नवञ्च वाचनानन्तरं त्वं सोमे-  
त्यादि ५२. त्वं कल्पयातीत्यन्तं नवञ्च प्रत्युचमध्वर्युर्यजमाने  
न वाचयतीत्यर्थः ॥ त्रयोदशशङ्खदृष्टाऽपितृदेवत्याः एकादशी अ-  
ग्निष्वानाऽपितरः ५६. इयं जगती अन्या द्वादशविष्टुभः ॥ इत्यलोक-  
में अवस्थित पितर ऊंचेलोक को जावें। परलोक में स्थित पितर तिसस्या-  
नसे भी परस्थान को जावें। मध्यलोक में स्थित ऊंचे जावें। कैसे हैं पित-  
र कि सोम को सम्पादन करते। और ते देवत रूप को प्राप्त ते पितर आह्वा-  
नों में हमें रक्षा करें। कैसे कि नदी हैं शत्रु जिन्हें वे ते उदासीना वरुण  
सत्यज्ञावा यज्ञज्ञा स्वाध्यायनिष्ठावा ॥४६॥

अङ्गिरसो नः पितरो नवर्गवा अयर्वाणा भृगवः सोम्या-  
सः। तेषां वयं सुमतो यज्ञिया नामपि भद्रे सोमन्-  
से स्याम ॥५०॥

जे हमारे पितर हैं तिन्हें की शोभन बुद्धि में हम हों वें (ते हमारे में सुम-  
ति करें) और तिन्हें के कल्याणकारि शोभन मनस्व में हम हों (हमारे वि-  
षे कल्याण मन करें)। कैसे तिन्हें कि यज्ञ सम्पादकों के। कैसे हैं पित-  
र कि अङ्गिरसः (अङ्गिरसी बहून्पत्यानि) नवा (नूतन हैं) गवा (गति

ये वानवनीया स्तोतव्या तिनहोंकी। अथर्वणः अथर्वणो मुनेर्वहन्य  
 पत्यानि। भृगवः भृगून्यत्यानि। सोम्यासः सोमसम्यादिनः॥५०॥  
 येनः पूर्वे पितरः सोम्यासोः नूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः॥  
 तेभिर्यमः संहंरणो हवींश्च्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममन्तु॥५१॥  
 हमारे जे पहिले पितरः सोमयान को देवताओं प्रति प्राप्त करते हुए  
 कैसे कि सोमसम्यादन करने वाले। वसिष्ठाः (वसिष्ठ के गोत्रापत्या)  
 नि। यमः तिनहों करि संरणः प्रीयमाणः सन् प्रतिकाम हवियों को  
 मक्षण करे। कैसे है यम कि कामयमान। कैसे तिनहों कि कामय  
 मानों करि॥५१॥

त्वर्हं सोम प्रचिकितो मनीषा त्वर्हं रजिष्ठमन्तु नेषि प  
 न्याम्। तव प्रणीती पितरो न इन्दो देवेषु रत्नमभज  
 न्त धीराः॥५२॥

तू अपनी बुद्धि करि ऋजुतम देवयान पन्था को प्राप्त कराता है। कैसे  
 सा है तू कि विशिष्ट चैतन्य युक्त। किंच हे इन्दो सोम हमारे पितरों ने ते  
 रे अभ्यनुज्ञान करि देवताओं की वेष्टि में रत्न रमणीय यज्ञफल।  
 को सेवन किया सोमयागे ने व स्वर्ग प्ते। कैसे पितरों कि धीमन्तों (यज्ञ  
 ज्ञान वन्तों) ने॥५२॥

त्वया हिनेः पितरः सोमपूर्वे कर्माणि चक्रुः पवमान  
 धीराः। बन्वन्ववातः परिधी२॥५३॥ रपोर्णु वीरेभिरश्वैर्म  
 घवा भवानः॥५३॥

हे सोम हे पवमान शोधक हमारे धीमन्तों पूर्वजाः पितरों ने जि

सकारण से तुरु करियज्ञादि कर्म किये अतः प्रार्थना करते हैं कि तू  
परिधी ओं (सर्वतः उपद्रव के अर्थ खड़े हु ओं) को निकालि। कैसा है तू  
कि हमारे कर्मों को सम्भजमान। तथा वाताद्युपद्रवरहित। किंच वीरें  
ओर अश्वों सहित हमारा धनवान् हो यो यस्य दाना सतदीय धनवा  
निति लोक प्रसिद्धिः ॥५३॥

तव सोम पितृभिः संविदानोऽनु द्यावा पृथिवीऽ आततन्व।  
तस्मै न इन्द्रो हविषा विधेम वयं स्थ्याम पतयो रयी-  
णाम् ॥५४॥

हे सोम तू द्यावा पृथिवी को विस्तार करता हुआ। कैसा तू कि पितरों  
के साथ संवाद करने वाला। हे इन्द्रो तिसतेरे अर्थ हम हवियें देते हैं ओ  
र हविर्दान से हम धनों के पति हों वें ॥५४॥ सोम वतां पितृणां षडृचः  
समाप्तः ॥

बर्हिषदः पितर ऊत्युर्वा गिमा वो हव्या च कृमा जुषध  
म्। त आगता वसा शतमेनाथा नः शं योर रपो दधाम  
त ॥५५॥

हे बर्हिषदः (बर्हि ओं पर बैठने वाले पितर ओं) ते तुम रक्षण निमि  
त्त करि उरें आओ किमर्थ मिति चेत् कि तुम्हारे इन हवियों को हम  
करते हुए तिन्हें तुम सेवन करो। इस के अनन्तर सुख पितृ तम अन्न  
करि नर्पित हुए हमारे सुख रोग शमन भयों का पृथक्करण ओर पापा  
भाव स्थापन करो ॥५५॥

आहं पितृन्सुविदत्राँ शं अविस्ति न पातं च विक्रमणं



च विष्णोः। बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजेन्त पितृ-  
स्तद्दहामिष्ठाः॥५६॥

में पितरों करि अभिसुरबेन जानता हूं। कैसे पितरों कि कल्याण दान  
ओं। किंच विष्णु (व्यापनशील यज्ञ) के नपात (नहीं है जहां गये हू-  
ओं का पात देवयान मार्ग) और विक्रमण (विविध गमना गमन कि जहां  
गये हू) ओं का पुनः भोगान्त में पतन है पितृयान पथ) अर्थात् यज्ञ स  
म्बन्धि ओं देवयान पितृयान पन्था ओं और उद्गामि पितरों को जानता  
हूं। इस कारण कहिता हूं कि जे बर्हिषदः पितरः सबनीय लक्षण अन्न-  
सहित अभिषुत सोम के पान को सेवन करते हैं ते इस यज्ञ में आवें॥५६॥

उपहूताः पितरः सोम्यासौ बर्हिषेषु निधिषु प्रियेषु। न  
आगमन्तु तद्दह शुवन्त्वधिब्रुवन्तु ते वन्त्वस्मा  
न्॥५७॥

ते पितर इस यज्ञ में आवें ते हमारा वचन सुनें और सुन कर पितरों  
करि पुत्रों की जो कहिन्ना उचित है निसे कहें हमें पालन करें।  
कैसे हैं पितर कि अभिरुचित हवियों में आजा देने वाले सोम्याः के  
से हवियों कि बर्हिषों परसादिन तथा निधिवत्स्थापनीयों में॥

५७॥ बर्हिषदां पितृणां त्वः समाप्तः ॥ ॥

आयन्तु नः पितरः सोम्यासौ अग्निश्चात्ताः पृथिभिर्देव-  
यानैः। अस्मिन्यज्ञे स्वधया मदन्तोधिब्रुवन्तु ते व-  
न्त्वस्मान्॥५८॥

हमारे पितर देवयान मार्ग करि आवें देवताओं सहित चलते हैं पितर

रजिन्हों में ते देवयान मार्ग हैं। कैसे पितर कि सोम पानाही। अग्निष्वाताः  
अग्नि करि स्वादिताः अग्निर्यो न्दहन् स्वादयति। औतस्मार्ते कर्मानुष्ठापि  
नः। जिन्हों के पुत्रादिकों करि एतत्कर्म अनुष्ठान करिये हैं। किंच पितर  
र आकर इस यज्ञ में स्वधा अन्न करि तृप्त हुए हमें अधिक कहें तिन्हों के  
वाक्य से तैसे ही हम अधिक होवें ते पितर हमें पालन करें ॥ ५८ ॥

+ तदुक्तम् पुनरे  
लोकां यतिषोचि  
णानन्त्यमप्युने  
अथ पुत्रस्य यो  
वेणु ब्रध्नस्याप्रो  
तिविष्टमिति

अग्निष्वाताः पितर एह गच्छत सदः-सदः सदत सुप्रणी  
तयः। अन्ता हवींश्चि प्रयतानि बर्हिष्यथा रयिष्ठं सर्व  
वीर दधातन ॥ ५९ ॥

हे अग्निष्वाता पितर औ इस यज्ञ में तुम आओ और आकर सदः-स  
दः (प्रतिघर में) बैठो। कैसे हो तुम कि शोभना प्रणीती वाले। ततः  
सद में बैठे हुए हवियों को भक्षण करो। कैसे हवियों को किर्दमोप  
र नियम पूर्वक स्थापित हैं। इसके अनन्तर तृप्त हुए सर्व वीर धन  
को स्थापन करो ॥ ५९ ॥

येऽअग्निष्वाता येऽअनग्निष्वाता मध्ये दिवः स्वधया  
मादयन्ते। तेभ्यः स्वराडसुनीति मेतां यथा वशं तन्वुं  
कल्पयाति ॥ ६० ॥

जे पितर अग्निष्वाताः (अग्नि करि दग्ध हुए विधिवदौर्ध्वदेहिक  
को प्राप्त) और जे अनग्निष्वाताः (नहीं हैं अग्नि करि स्वादित, अ  
दग्ध, शूमशान कर्म को न प्राप्त हुए) स्वर्ग के मध्य में स्वधा (स्वक  
मोर्पार्जित अन्न) करि तृप्त हुए सुख को सेवन करते हैं। स्वराड  
(स्वैने वरजते) यमतिन पितरों के अर्थ यथा कामनर शरीर को

देंवें। कैसी शरीर कि असुनीति (प्राणयुक्ता-चिरकालजीवनी) को  
ते जैसे पुनः स्तम्भन कर तेहें ॥६०॥

अग्निष्वात्ता नृतुमतौ हवामहे नाराशंसे सोमपीथं  
यः आशुः। ते नो विप्रासः सुहवा भवन्तु वयधंस्यामप  
तयो रयीणाम् ॥६१॥

अग्निष्वात्ता पितरों को हम आह्वान करते हैं। कैसे कि ऋतुयुक्तों को  
जे पितर नाराशंस चमस में सोमपान को पीते हुए। ते पितर हम  
रे बुलाये शीघ्र आवें। एवं बुलाये पितरों विषे हम धनों के स्वामी हों  
वें ॥६१॥ चतस्र ऋचः समाप्तः ॥

अ० ५ आच्या जानु दक्षिणतो निषद्ये मं यज्ञमभिगृणीत विश्वे। माहि  
दं सिष्टं पितरः केन चिन्नो यद्वा आगः पुरुषता कराम ॥६२॥

कात्यायनेन आच्यजान्वित्यनुवाकस्य विनियोगो नोक्तः उदीरतामि  
त्यनुवाकद्वयस्य आद्वेऽश्वत्सु द्विजेषु जपे विनियोगः ॥ दशर्चोऽनुवाकः  
आद्या नवपितृदेवत्या। द्वे त्रिष्टुभौ। हे पितरः सब (सोमवन्तो वर्हिषदोऽ  
ग्निष्वात्ताश्च) तुम इस यज्ञ (सौवामणी) की स्तुति करो अर्थात् दक्षिणा  
मन्त्रकाल कर्तृ हविर्यजमानोत्कर्ष करियह यज्ञमलाहै यह स्तुति करे  
क्या करिके कि वाई जानु को नीची डालि तथा दक्षिणाभिमुख बैठि क  
रि। किंच हे पितरः किसी भी अपराध करि हमें हिंसा मत करो। क्यों  
कि पुरुष भाव (चलचिन्त) सैतुम्हारा अपराध हम करें यद्यपि हम अ  
पराधी हैं तथापि हमें मत मारी ॥६२॥

आसीना सोऽअरुणीनामुपस्थे रयिधंत दशशुषे मर्त्या य।

के सहिते वा स्वभावः अथेनं पितरः प्राचिना वीतिनः सव्यं जान्वा च्योसीदन्निति श्रुतेः।

अथ मादेनाशंसे सुजमनं हविर्यजमानोत्कर्ष करियह यज्ञमलाहै यह स्तुति करे  
क्या करिके कि वाई जानु को नीची डालि तथा दक्षिणाभिमुख बैठि करि।  
किंच हे पितरः किसी भी अपराध करि हमें हिंसा मत करो। क्यों  
कि पुरुष भाव (चलचिन्त) सैतुम्हारा अपराध हम करें यद्यपि हम अपराधी हैं  
तथापि हमें मत मारी ॥६२॥

पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्रयच्छत त इहोर्जिदधात ॥ ६३ ॥  
हे पितरओ हविदेनेवाले मर्त्य (यजमान) के अर्थ तुम धन को देओ  
कैसे हों तुम कि अरुणी ओं (अरुण वरुण ऊर्ण ओं) के उपरि भाग में  
वैठे हों ५ यद्वा अरुण वरुण रषिय ओं के उत्संग में वैठें आदित्य लो  
क स्याः) हों किंच हे पितर ओ पुत्रों (यजमानों) के अर्थ तिस धन को दे  
ओ (जो अभी धन तिसै देओ पितरों के पुत्र से यजमान हें) ते  
तुम इस हमारे यज्ञ में ऊर्ज (रस) को स्थापन करो ॥ ६३ ॥

यमग्ने कव्यवाहन त्वं चिन्मन्य से रयिम् तं नो गीर्भिः  
वायं देवत्रा पनया युजम् ॥ ६४ ॥

हे अनुष्टुभौ हे कव्यवाहनः १ हे अग्ने तू भी जिस रयि (हविर्लक्षण  
धन) को उत्तम जानता है हमारे तिस रयि को देवता ओं में दे कैसे धन  
को कि गीः (वाचा ओं पुरोऽनुवाक्या यज्या वषट्कार लक्षणा ओं) करि  
सुनने योग्य को। तथा योग्य को ॥ ६४ ॥

योऽग्निः कव्यवाहनः पितृभ्यस्तद्वत्तदर्थः ॥ प्रेदु ह  
व्यानि वोचति देवेभ्यश्च पितृभ्य आ ॥ ६५ ॥

जो कव्यवाहनोऽग्निः पितरों को दृष्ट करता हुआ कैसे पितरों को कि क  
त सत्य वा यज्ञ को वटाते हैं तिन्हें। वोह अग्नि देवता ओं और पितरों के  
अर्थ हवियें कहै अर्थात् ये देवता ओं और ये पितरों के अर्थ यह कहै ॥ ६५ ॥

त्वमग्ने ईदितः कव्यवाहनाय हुव्यानि सुरभीणि  
कृत्वी। प्राशः पितृभ्यः स्वधया तेऽपक्षन्नद्धि त्वं देव प्र  
यता हवींश्श्रुषि ॥ ६६ ॥

५ पाणिः कुतपाः क्रियते ता ऊर्णो अरुण भवन्ति कुतपं चास नंद आदिति मनु. ३. २३४. वी  
लि. आ. ३. पवित्राणि दोहिवः कुतप रितिला रिति च २३५ कुतपं नेपाल कम्बल मिति कुल्लुः

१ कव्यपितृभ्योरयमग्ने वहनीति कव्यवाहनः

चंतस्त्रिष्टुभः। हे कव्यवाहनः हे अग्ने तू हवियें सुगन्धित करिकें क  
हता हुआ। कैसा है तू कि ईडितः (देवताओं और ऋत्विजों करि स्तुति  
किया गया। किंच हवियों को वहि करि स्वधा (पितरों के मन्त्र) से पित  
रों के अर्थ देता हुआ। और ते पितर भक्षण करते हुए। हे देव तू भी शु  
द्ध हवियें भक्षण करि ॥ ६६ ॥

ये चेह पितरो ये च नेह योश्च विअ योऽ॥ उच न प्रवि  
अ। त्व वैत्य यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञं सुकृतं  
जुषस्व ॥ ६७ ॥

जे पितर इस लोक में वर्तें हैं और जे इस लोक में नहीं हैं और जिन  
पितरों को हम जानते और जिन्हें प्रकर्षण नहीं जानते हैं। हे जात  
वेदः ते पितर यति (जितने) वर्तें हैं तिन्हें तू जानता है यद्वा यतीन् (शु  
द्धों) नित्य नैमित्तिकानुष्ठा नैर्निष्ठापान् तिन्हें तू जानि। किंच स्व  
धा (पितरों के अन्न) से शोभन यज्ञ को तू सेवन करि ॥ ६७ ॥

इदं पितृभ्यो नमोऽश्स्त्वय्ये पूर्वी सो यः उपरास ईयुः  
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजना सुवि  
क्षु ॥ ६८ ॥

जे पितर पूर्वासः पूर्व ईयुः स्वर्ग को गये) और जे उपरासः उपर  
तव्यापारः कृतकृत्य होकर परं ब्रह्म को प्राप्त हुए। और जे पार्थि  
वे रजसि (पृथिवी की अग्नि में) भले प्रकार बैठे और जे निश्चय  
यजमान लक्षणा प्रजा में स्थित हैं। कैसी प्रजा कि सुवृजना शोभ  
न बल जिस में तिस धर्म रूप बल युक्ता में इस दिन में तिन चतु

विधों (स्वर्ग ब्रह्माग्नि यजमानस्थों) के अर्थ यह नमस्कार हो ॥६८॥

अथा यथा नः पितरः परासः प्रत्ना सौः अग्नः ऋतमा  
शुषाणाः । शुची द्यन्दी धिति मुक्थशासः क्षामाभिन्द-  
न्तौः अरुणीरपञ्जन् ॥६९॥

हे अग्ने हमारे पितर अध (देह पातो नरकाल) जिस प्रकार शुचि (नि-  
र्मल) दीधित रविमण्डल को प्राप्त हुए । कैसे पितर कि परा (उत्कृष्टाः)  
प्रत्ना (पुण्यः) ऋत (यज्ञ) को व्याप्त हुए । एवम्भूताः पितरः जैसे देवया-  
न को प्राप्त तैसे हम भी अरुणवर्ण सूर्य रश्मिओं को व्याप्त हो देवया-  
न मार्ग को प्राप्त होंगे । कैसे हम कि यज्ञों में शस्त्रों को पढ़ते हैं । तथा भूमि  
को भेदते (वेदिचात्वाल यूपा वटोपर वादि खनन करि विदारण करते  
अर्थात् सर्वोपकारण से यज्ञ को करते) हैं ॥६९॥

उशन्तस्त्वा निधी मत्युशन्तः समिधीमहि । उशन्तु शत  
आवह पितृन् हविषेऽपतवे ॥७०॥

अनुष्टुप् । हे अग्ने उशन्तः (कामयमाना) हम तिस तुम्हें स्थापन कर-  
ते हैं । कामयमाना एव हम तुम्हें संदीपन और तुम्हें कामयमानः काम-  
यमान पितरों को प्राप्त करि क्या करने कि हवियें भोजन करने को ॥७०॥

अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रो देवर्तयः । विश्वा यदज-  
य स्पृधेः ॥७१॥

ऐन्द्री गायत्री अग्रियानु वाक निदानभूता । हे इन्द्र जब कि तू स-  
ब संग्रामों को जीतता हुआ तब जलडिण्डीर करि नमुचि असुर  
का शिर छेदता हुआ ॥७१॥

अ० ६ सोमो राजा मृतं सुत ऋजीषेण जहान्मृत्युम् । ऋतेन  
सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्रमन्थसु इन्द्रस्येन्द्रियमिदं  
पयोऽमृतं मधु ॥७२॥

का० १४. २. २४. अष्टर्च अनुवाक करि समान काल ही पयो ग्रहों और  
सुरा ग्रहों की अध्वर्यु उपस्थान करै यद्वा चारि करि पयो ग्रहों और च  
रि करि सुरा ग्रहों को ग्रहण के अनन्तर ही उपस्थान करै मन्त्र पाठ क  
मादत्रालेखीत्यर्थः ॥ अश्विसरस्वतीन्द्रहृष्टा अष्टोऽरुचः आद्यास्ति सो  
महाबृहत्याः ॥ सोमो राजा अभिषुतः सन् अमृतरूप रसरूप होता है  
क्योंकि ऋजीष (नीरस सोमलता चूर्ण) करि मृत्यु (स्थूलभाव) को ना  
श करता है। इस ऋत (सत्य) करि यह सत्य जाना कि जो अंध (अन्व सो  
म) का विपान (विविच्यपान) शुक्र (शुद्ध) है अतएव इन्द्रियों को वीर्य प्र  
दह्नुः आ और पय इन्द्र का ऐसा हो कैसा कि इन्द्रियों को वीर्य बत् (अ  
मृत अजर अमरत्व प्रद) और मधु (मधुर) ॥ अफांफेनेनेत्यस्य मन्त्रास्या  
स्याष्टर्चानुवाकस्य च श्रुत्या सम्बन्ध उक्तः १२. ७. ३. ४. तस्य शीर्ष्णि  
छिन्ने लोहितमिश्रः सोमोऽनिष्टत् तस्मादबीभत्सन्त त एतदन्वसो  
विपानमपश्यन्त्सोमो राजा मृतं सुत इति तेनेनर्हं स्वदयित्वात्म  
न्मदधतेति । यथा एक कारणानि वस्तूनि विविच्यमानानि दृश्यन्ते  
यथा च पृथग्भूतानि संमृष्टानि पुनर्विविच्यन्ते एवमपि लो  
हितमिश्रः सोमो विविक्तः सोम एवेति सर्वानुधाकार्थः ॥७२॥  
यद्वा सायनानुसारेण व्याख्यातेतिरेय ब्राह्मण काण्ड २ प्रपाठ ६  
अनुवाक २। यह अभिषुत सोम राजा आप अमृत समान है जैसे

+ अमृतस्यैवममृतपदस्यममृतमभावः।

अमृत पीनेवाले की अपमृत्यु नहीं ऐसे सोमप की भी अपमृत्यु नहीं। तत्रायं हेतुः ऋजीष (कीट कस्थानीय नीरस) करि मृत्युको नाश करता हुआ। ऋजीष अपमृत्यु प्राप कर सनि। सरण करितिस के परित्याग से अपमृत्यु का हेतु परित्याग किया। अतः यह ऋत (यज्ञ निष्पादन) करि इन्द्रियों की वृद्धि का हेतु है तिस हेतु यह सत्य शपथ करता हूँ। और अन्नरस से विशेषेण पान योग्य सोमरसरूप है। अतः शुद्ध जो यह इन्द्र है तिस की भी इन्द्रिय वृद्धि का कारण किञ्च यह द्रव्य मधुर क्षीररूप अत एव अमृत रूप है ॥१॥ ७२॥

अथः क्षीरं व्यपिबत्क्रुद्धिं रसो धिया। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥७३॥

आङ्गिरसः (अङ्गो का रस प्राण) जैसे क्रुद्ध (हंस) हो बुद्धि करि जल के सकाश से दुग्ध को पीता है (मिले हुए दूध जल से क्षीर ही हंस पीता यह जाति का स्वभाव है। इस सत्य करि यह सत्य है कि जो अन्न का विपान शुक्र हो निरन्तर इन्द्र का पय वीर्य अमृत हो ॥ यद्वा साय० दृष्टान्तः - जैसे लोक में क्रौञ्चपक्षी आङ्गिरसः (पुष्टशरीर) तादृशः स्वबुद्धि करि क्षीर पात्र में स्वमुखे क्षिप्ते सति मुखगतरस सम्पर्क से क्षीरांश और जलांश को न्यास करता है, तहां जल भाग को छोड़ि क्षीर भाग को पीती है तद्वत् यह इन्द्र भी सोमरस को जल भाग से विवेचन करि पीता है। अतः इन्द्रियद्वारेण इन्द्रिय वृद्धि हेतु सोम है तदेतत्सत्यम् ॥२॥ ७३॥



सोममद्यो व्यपिवच्छन्दसा हंसः शुचिषत् । ऋतेन  
सत्यमिन्द्रियं विपानर्हं शुक्रमन्थस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं  
पयोऽमृतं मधु ॥ ७४ ॥

हंसः (आदित्यः) जल के सकाश से छन्द (वेद- वेद रूप किरणों) करि  
जैसे सोम को पीता है (सोम और उदक से सूर्य सोमही को पी) । ऋतेन  
त्युक्तम् । कैसा रवि कि शुचि (निर्मल गगन) में वास करना ॥ यद्वा साय-  
व्याख्या शुचि (स्वर्ग) हंसः (सब प्राणियों के हृदय में स्थित जीवात्मा त  
द्रूप धारी इन्द्र) छन्दसा साक्षितया ॥ २ ॥ ७४ ॥

अन्नात्यरिसुतो रसं ब्रह्मण व्यपिवत्क्षत्रं पयः सोमं प्रजा  
पतिः । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानर्हं शुक्रमन्थस इन्द्रस्ये-  
न्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ७५ ॥

अतिजगती । प्रजापतिः (प्रथम शरीरी) परिसुतो अन्नात् (सुररूप अ-  
न्न से) रस को ब्रह्मणायत्री लक्षण करि विविच्य पीताहुः आ । और क्षत्र  
क्षत्रिय के पान वशीकरण को पय और सोम को पीताहुः आ अनेन  
सत्यनेन सत्यम् ॥ ७५ ॥

रेतो मूत्रं विजहाति योनिं प्रविशतिन्द्रियम् । गर्भोजरण्यु  
णहृतं उत्वं जहाति जन्मना ॥ ऋतेन सत्यमिन्द्रियं  
विपानर्हं शुक्रमन्थस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं म-  
धु ॥ ७६ ॥

अति शक्थी है । इन्द्रिय (पुम्प जनन लिङ्ग) योनि (स्त्री जनन) में प्र-  
वेश करते वीर्य को छोड़ता है योनि प्रदेश से अन्यत्र मूत्र को स

मानद्वारहं रेत मूत्र के परन्तु मूत्रस्थान सै रेत अन्यत्र तिष्ठेहे ।  
जरायु (गर्भवेष्टन) करि आवृत गर्भजन्म करि जरायु को त्यागता  
हे । ऋतेनेति व्याख्यातम् ॥ यद्वा साय० जैसे लोक में पुरुष  
विश्व को त्यागता है एवं इन्द्र भी एक पात्र में स्थित सोम के सार  
को लेता और असार को त्यागता है ॥ ७६ ॥

+ भिन्नस्थाना  
नामेकद्वाराणामाद्यमुदाहरण  
मएकस्थानानामेकद्वाराणां द्वितीयम् ।

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत्सत्यानृते प्रजापतिः । अश्रद्धामनृ  
तेऽदधाच्छ्रद्धां सत्ये प्रजापतिः । ऋतेन सत्यमिन्द्र  
यं विपानेन शुक्रमन्थे स इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृ  
तं मधु ॥ ७७ ॥

प्रजापतिः रूपे (रूपवती मूर्तिमती) सत्यानृते देवके व्याकरण पृ  
थक्क करता हुआ (यह सत्य यह असत्य) तदेवाह अनृतमें अश्र  
द्धा (नास्तिक्यबुद्धि) सत्यमें श्रद्धा (आस्तिक्यबुद्धि) स्थापन करता हुआ ।  
अनेन ऋतेनेत्युक्तम् ॥ ७७ ॥

वेदेन रूपे व्यपिबत्सुतासुतौ प्रजापतिः । ऋतेन सत्यमि  
न्द्रियं विपानेन शुक्रमन्थे स इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृ  
तं मधु ॥ ७८ ॥

महा ब्रह्मी । प्रजापति (प्रथमशरीरी वा प्रजापति प्रजाका पालक  
इन्द्र) सुत (सोम) असुत (पय और परिसुत) के रूप वेद (ज्ञानवात्र  
यीविद्या) करि विविच्य पीतवान् । ऋतेनेत्युक्तम् ॥ ७८ ॥

दृष्ट्वा परिसुतो रसं शुक्रेण शुक्रं व्यपिबत्पयः सोमं  
प्रजापतिः । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानेन शुक्रमन्थे स

इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥७६॥

अतिजगती। प्रजापतिः परितुत (सुरा) केरस को देखि शुक्र (मन्त्र) करि पय और सोम को शुक्र (शुद्ध) करिके वियुज्य पीता हुआ। अतेनेत्युक्तम् ॥७६॥

अ०७ सीसेन तन्त्रं मनसा मनीषिण ऊर्णसूत्रेण कवयो वयन्ति।  
अश्विना यज्ञं सविता सरस्वतीन्द्रस्य रूपं वरुणो  
मिषज्यन् ॥८०॥

का० १६.४.१२.१३. ऋषभों (बडे बैलों) के खुरों से वसा को लेसी सेनेति प्रति मन्त्र द्वाविंशत् सुरा ग्रहों + को होमें. एक मन्त्र करि दो ग्रहों को ॥ अश्वि सरस्वतीन्द्र देवत्याः षोडश जगत्यः जगती भिर्जुहोतीति १२.८.३.१३. श्रुतिबलाद्बह्वक्षरन्यूनानामपि कासां चिज्जगतीत्वमेव। दस्त्रादिभिर्यथा इन्द्रस्य भैषज्यं कृतं तदनेनानुवाकेन प्रतिपाद्यते। अश्विना (अश्विनौ- दसौ- अश्विनी कुमार) सविता सरस्वती और वरुण मन से विचारि करि यज्ञ (सौत्रामणी) को निष्यादन करते हैं। किस करि कि सीसा (शष्पक्रयपा) और ऊर्णसूत्र (तोकमक्रयण) से। तत्र दृष्टान्तः जैसे कोई सीसाधातु विशेष करि तन्त्र (अङ्गदविशेष) बनाता और ऊर्णसूत्र करि तन्त्र (पटविशेष) को विनता है तद्वत् +। कैसे हैं अश्विना दयः कि मेधाविनः। क्रान्त दर्शनाः। इन्द्र के रूप के भिषज्यन् अर्थात् इन्द्र की भैषज्य के अर्थ यज्ञ को निष्यादन करते हैं ॥८०॥  
तदस्य रूपममृतं शचीभिस्त्रिस्तो दधुर्देवताः सर्ग

† पञ्चपत्नीपद इति परिशिष्टे किः।

† तन्त्रं एष्टेचसिद्धन्ते परछन्दाप्रधानयोः अङ्गदैकुटुम्बकतेतन्नुवानेपरिछन्द इति कोशम्।

राणाः॥ लोमानि शष्पैर्बहुधा न तो कर्मभिस्तु गस्पमा  
५२ सममवन्न लाजाः॥ ८१॥

तीनों देवता (अश्विसरस्वत्यः) भले प्रकार रम माणासत्यः इस इन्द्रके  
तिस अमरण धर्मि रूप को शचीओं (कर्मों) करि संदधुः (कर्मों) से सं  
धान करते हुए तदेवाह लोमों (इन्द्रके रोमों) को शष्पों (विरुद्ध ब्रीहिओं)  
से संदधुः और त्वचा को तोकमों (विरुद्ध यवों) से संदधुः लाजान  
(और लाजा) इसका मांस हुआ ॥ अध्याय समाप्ति पर्यन्त नका  
राः सर्वे चकारार्थः॥ ८१॥

तदश्विना भिषजा रुद्रवर्तनी सरस्वती वयति पेशोऽ  
अन्तरम् । अस्थि मज्जान् मासैरेः कारोतरेण दधते  
गवो त्वचि॥ ८२॥

रुद्रवर्तनी (रुद्रवत् मार्गजिन्हों का ते वारुण वर्तनी) भिषजा (बैद्य)  
अश्विनी कुमार और सरस्वती तदन्तर (शरीरान्तर वर्ति) इन्द्र के रूप  
को भले प्रकार बांधते हैं। तदेवाह मासर (शय्यादि चूर्ण निःस्त्राव)  
से अस्थिओं को भ. हे। कारोतर (सुरा पावन चालनी) से मज्जा को  
कैसे हैं ते किण्वों के चर्म पर सुरा को स्थापन करते ॥ ८२॥

सरस्वती मनसा पेशलं वसु नासत्याभ्यां वयति दर्शनं  
वपुः । रसं परिस्नुता न रोहितं नृग्नहृर्धीरस्तसरं न  
वेम॥ ८३॥

नासत्या (अश्विनी कुमारी) सहिता सरस्वती वसु (धन) और द  
र्शनीय वपु को पटमिव सृजती इन्द्र का इति शेषः कैसे साध

नकिपेशल(हिरण्यवत् वारूपवत् +)। मनकरिविचारि के इति शेषः।  
परिस्वृत(सुर) के रोहित(लोहित) और रस को सृजती इन्द्रवपुरज  
न के अर्थ अतएव वेदेषु इन्द्रो रोहितः पठ्यते। अथ तदा नग्नहुः  
(कि एवः पूर्वोक्तः सुरकन्दः) तसर(वयनसाधन) और वेम(वेमा) त  
सरधिमनौकुविन्दानां प्रसिद्धौ। कैसा नग्नहुः किधीरः बुद्धिको प्रेर  
णा करता अर्थात् मादक ॥८३॥

पयसा शुक्रममृतं जनिवर्धं सुरया मूत्राज्जनयन्तरेतः।  
अपामर्तिं दुर्मतिं बार्धमाना ऊवध्यं बार्धं सत्त्वं तदा  
रात् ॥८४॥

प्रकृतत्वात् अश्विनी कुमार और सरस्वती दुग्धकरि वीर्य को उ  
त्पादन करते इन्द्रका इति शेषः। कैसे वीर्य कि शुक्र अनश्वमा  
न जननशील। समीपमें स्थित होतिस(प्रसिद्ध) ऊवध्यवातनाली  
गत और सव्यको और सुरकरि मूत्र को उत्पन्न करते हैं। कैसे हैं ते कि अ  
मति(बध्यभाव) और दुर्मति(दुर्बुद्धि) को निवर्त करते अर्थात् सु  
बुद्धि देते हैं ॥८४॥

इन्द्रः सुत्रामा हृदयेन सत्यं पुरोडाशेन सविता जजा  
न। यकृत्स्नीमानं वरुणो भिषज्यन्मर्तसे वायवे न  
मिनातिपितम् ॥८५॥

भले प्रकार रक्षा करने वाला इन्द्र(पुरोडाशदेवता) इन्द्रके हृदयक  
रि हृदय को उत्पादन करता है। और सविता पुरोडाश करि इ  
न्द्रके सत्य को जजान। वरुण इन्द्र की चिकित्सा करते सन् यकृ

तू(कालखण्ड)और लोमान(गलनाडिका) को जजान। वायव्यो  
(सोमिकोर्ध्वपात्रो) मतस्ने(हृदयोभयपार्श्वस्थे अस्थिनी) और पि  
नको सृजताहै ॥ ८५ ॥

आन्त्राणि स्थालीर्मधु पिन्वमाना गुदाः पात्राणि सुदु  
घानधेनुः। श्येनस्य पत्रं न लीहा शचीभिरासन्दीमा  
मिरुदरं न माता ॥ ८६ ॥

+ सोमिक।  
न्योर्ध्वपा  
त्राणि वायु  
व्यसंस्तानि।

स्थाली (आन्त्राणि) हुई कैसी स्थाली कि मधुसिञ्चन्त्यः। पत्रगुदस्या  
न द्रुण। और शोभन हो ग्धीधेनु आदित्येष्टि की दक्षिणरूपा गु-  
दा ही हुई। और श्येन के पात्र लीहा (हृदयवामभागस्य स्थितमांस-  
पिण्ड गुल्फसंज्ञ) हुआ। और आसन्दी शची करि नाभि और उदर  
हुआ कैसी आसन्दी कि माता (जननी स्थानीया- आसन्द्या म  
भिषिच्यतेऽ तस्ततो जायत इव ॥ ८६ ॥

कुम्भो वनिष्ठुर्जनिता शचीभिर्यस्मिन्नग्रे योन्यां गर्भोऽ  
अन्नः। लाशिर्यक्तः शतधार उत्सो दुहे न कुम्भी स्वधा  
पितृभ्यः ॥ ८७ ॥

सुराधानकुम्भ शचीओं (कर्मी) करि वनिष्ठु (स्थूलान्त्र) उत्पन्न कर  
ताहै। प्रथम जिस कुम्भरूप योनिस्थान के मध्य में गर्भ (सुरारू-  
पा) उषित है। शतधार उत्स (कूपतुल्य) कुम्भ स्पष्ट शिशु हुआ। और  
र कुम्भी सुराधानी पितरों के अर्थ अन्न को पूरती है ॥ ८७ ॥

मुखं सदैव शिर इत्सतेन जिह्वा पवित्रमश्विनास  
न्तरस्वती। चप्यन पायुर्मिषगस्य वाली वृत्तिर्नशे-

पो हरेसा तरुस्वी ॥८८॥

इस इन्द्र के सत् (पात्रविशेष) शिर हुआ। पवित्र जिह्वा हुई। अश्विनी कुमार और सरस्वती मुख हुए। और चण्डपायु इन्द्रि हुई। बाल (सुरगलनबस्त्र) इस इन्द्र के वैद्य गुदा और लिङ्ग हुए बालेन त्रयं जातम् केसा लिङ्ग कि तरस्वी (वेगवान् ॥८८॥

अश्विभ्यां चक्षुर्मृतं ग्रहाभ्यां छागैर्न तेजो हविषा  
शृतेन। पश्माणि गोधूमैः कुर्वन्ते रूतानि पेशो न शुक्र  
मसितं वसाते ॥८९॥

अश्विनी कुमारों ने इस इन्द्र के चक्षुकिये ग्रहों (अश्विनी कुमारों) ने नेत्रही अमृत (अनम्बर) किये। छागरूप पक्ष हविकरि चक्षुसंबंधि तेज किया। गोधूम पक्षों करि नेत्र लोम किये कुवलों (वदरों) करि उतानि (चक्षुनिविष्ट लोम) किये। शुक्ल और कृष्ण नेत्रगत रूप अश्विनी कुमारों ने किया प्रकृतत्वात् ॥८९॥

अविर्न मेघो नसि वीर्याय प्राणस्य पन्था अमृतो ग्र  
हाभ्याम्। सरस्वत्यु पवाकैर्व्यानं नस्यानि बर्हिर्वद  
रेर्जजान ॥९०॥

अवि (सारस्वत) और मेघ इन्द्र की नासिका में वीर्य के अर्थ अ  
वस्थित हुए। सारस्वत ग्रहों ने प्राण वायु का मार्ग अनम्बर  
किया। सरस्वती उपवाकों (यवाङ्गुरों) करि इन्द्र की व्यान वायु  
को उत्पन्न करती है। बर्हि वदरों सहित नासिका के लोमों को  
उत्पन्न करती है ॥९०॥

इन्द्रस्य रूपभृषभो बलाय कर्णभ्याश्च श्रोत्रममृतं  
ग्रहाभ्याम् । यवान बर्हिभुवि केसरणि कर्कन्धुजज्ञे  
मधुसारघं मुखोत् ॥४१॥

अथभः सामर्थ्यके अर्थ इन्द्रके रूपको करता हुआ। ऐन्द्र ग्रहोंकरि  
भूतभवव्यवर्तमानशब्दग्राहिकर्णशकुलियोंमें श्रोत्रेन्द्रिय स्थापन  
की गई। यवा और बर्हिः भुओंके रोम हुई कर्कन्धु (बदरमुखसे सार  
घ मधुतनुत्यलाला श्लेष्मादि उत्पन्न करते हुए) ॥४१॥

आत्मसुपस्थे नवकस्य लोम मुखे शमश्रूणि न व्याघ्रलो  
म। केशान शीर्षन्यशसे त्रियै शिरवा सिंहेहस्य लोमत्वि  
षिरिन्द्रियाणि ॥४२॥

आत्मा (शरीर) और उपस्थ (गुह्य) में नवकके लोम हैं ते वृकके लोम हैं।  
और मुखमें जे शमश्रु (डादीमूँछ) हैं ते व्याघ्रलोम हैं और शिरमें  
जे यशके अर्थ केश और जे शोभाके अर्थ शिरवा और जीत्विषि  
(कान्ति) और जे इन्द्रियें ते सब सिंहके लोम हैं ॥४२॥

अङ्गान्यात्मन्निषजा तदश्विनात्मानमङ्गेः समधात्स  
रस्वती । इन्द्रस्य रूपं शतमानमायुश्चन्द्रेण ज्योति  
रमृतं दधानः ॥४३॥

अश्विनी कुमार वैद्य आत्मा (शरीर) में अङ्गों (अवयवों) को भले  
कार योजते (जोड़ते) हुए सरस्वती तिस आत्मा को अङ्गोंकरि जोड़ती  
हुई। कैसे अश्व्यादयः कि इन्द्रके रूप और आयु को चन्द्र (आल्हा  
दक) ज्योति सहित अनश्वर सम्पादन करने कैसे रूप कि शतमान

सामर्थ्यके अर्थ इन्द्रके रूपको करता हुआ। ऐन्द्र ग्रहोंकरि भूतभवव्यवर्तमानशब्दग्राहिकर्णशकुलियोंमें श्रोत्रेन्द्रिय स्थापन की गई। यवा और बर्हिः भुओंके रोम हुई कर्कन्धु (बदरमुखसे सारघ मधुतनुत्यलाला श्लेष्मादि उत्पन्न करते हुए) ॥४१॥



अनेक प्राणियों की पूजा जिसमें तिस जगत्पूज्यको ॥६३॥

सरस्वती योन्या गर्भमन्तरश्चिभ्यां पत्नी सुकृतं विभर्ति।

अपाथं रसेन वरुणो न सामेन्द्रंश्चिपै जनयन्सु  
राजा ॥६४॥

सरस्वती अश्विनी कुमारे की पत्नी होंके योनिके मध्यमें इन्द्रल-  
क्षण गर्भको शोभन कृतजैसे तें विभर्ति धारण करती और जलों  
का ईश्वर वरुण उदकरसभूत साम करि इन्द्रको शोभाके अ-  
र्थजनयन्सन् विभर्तीत्यनुषङ्गः ॥६४॥

तेजः पशूनां हविरिन्द्रिया वत्परिस्तुता पयसा सार-  
थं मधु। अश्विभ्यां दुग्धं भिषजा सरस्वत्या सुता सुता  
भ्याममृतः सोम इन्द्रः ॥६५॥

इतिसर्द्धहितायां सप्तमोऽनुवाकः ७

इतिश्री शुक्ल यजुषि माध्यन्दिनीयायां वाजसनेयसर्द्ध  
हितायां दीर्घपाठे एकोनविंशोऽध्यायः ॥१६॥

वैद्यों अश्विनी कुमारे और सरस्वती नें इन्द्रियवान् (वीर्यवान्)  
पशुओंका सम्बन्धि हविले और परिस्तुत पय सहित सारथ और  
र मधु लेकर तेज दुग्ध सवाया। और परिस्तुत पय करि अमृत  
रूप ऐश्वर्य प्रद सोम दुहा ॥ एवं जिन सरस्वती अश्विनी कुमारे  
नें इन्द्रके अर्थ नानाद्रव्योंसे अनेक रसोंको लेकर उपकार  
किया तिन सौवामणी द्रष्टाओंके अर्थ नमस्कार ॥६५॥

इति गिरिधरभाष्ये सप्तमोऽनुवाकः ७

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दनिवारयन्  
 पुमार्थाश्चतुरो देयाद्यज्ञदेवः सनातनः  
 श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीयशारवाध्येतु व्याघ्रपादान्व  
 यविश्वामित्रपुराधिय श्रीमज्जयकिशोर देववर्मात्मजरोक्मिणे  
 यनृपतिगिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपेगिरिधरभाष्येसोत्रा  
 मणीप्रकरणे सुरादीन्द्राभिषेकान्तवर्णनो नाम ऊनविठंशोऽध्या  
 यः ॥ १४ ॥

हरिः ओम्

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधने बहुरूपकम्

स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं तनुमः १

अ० १ क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य नाभिरसि । मात्वा हि षं सी-  
 न्मा मा हि षं सीः ॥ १ ॥ + क्ष-सि। अ० मा-सीः ३० ॥ १ ॥

ओं नमो याज्ञवल्काय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके

सेकासन्द्यादिहोत्रान्तोर्विठंशोऽध्यायः समीर्यते १०

का० १४. ४. ७. जानुप्रमाणपादा आसन्दी वेदियों के मध्यमें सोमा  
 न्दीवत् (सुज्जरञ्जु सैविनी दोषाद दक्षिण वेदि दोषाद उत्तर वेदि  
 में जैसे जैसे) स्थापन करें ॥ क्षत्रस्येति आसन्दी देवत्या द्विपदा  
 गायत्री । हे आसन्दि तू क्षत्र का उत्पत्तिस्थान है (आसन्द्यामभि-  
 धिक्ते गुणधर्मानर्हति रज्जेति भावः) और क्षत्र का बन्धन है ॥ का०

१४.४.८. आसन्दि पर कृष्णाजिनको बिछावै ॥ मात्वेति कृष्णाजिन  
देवत्याग्रा-गा ॥ हे कृष्णाजिन आसन्दि तुमै न मारे और तू मुमै म  
त मारि + ॥ १ ॥

निषसाद धृत व्रतो वरुणः पस्त्यास्वा। साम्राज्याय सुक्रतुः।  
मृत्योः पाहि विद्योत्याहि ॥ २ ॥ +

का. १४.४.८. निषसादेति मन्त्रेण यजमान कृष्णाजिन पर बैठे ॥ व्या  
ख्याता १०.२७. ॥ का. १४.४.१०.११. आसन्दि पर बैठे यजमान के  
पैरों के नीचे दो रुक्म (मण्डलाकार भूषण विशेष) रखे राजत को स  
व्य के मृत्योरिति मन्त्रेण सौवर्ण को रुक्म के विद्योदिति सौवर्ण रु  
क्म को शिर पर एक आचार्य कहिते हैं ॥ रुक्म देवत्ये यजुषी दैव्यौ वृ  
हत्यौ । हे रुक्म मृत्यु (अकाल मरण) से मुमै रक्षा करि ॥ हे सौवर्ण रुक्म  
विजली (विजली पात) से मुमै रक्षा करि ॥ २ ॥

देवस्य त्वां सवितुः प्रसवेऽश्विनो ब्राह्म्या पूषणो हस्ताभ्या-  
म्। अश्विनो भैषज्येन तेजसे ब्रह्मवर्चसाया भिरिच्छामि  
सरस्वत्ये भैषज्येन वीर्यायान्नाद्याया भिरिच्छामीन्द्रस्येन्द्रि-  
येण बलाय श्रियै यशसे भिरिच्छामि ॥ ३ ॥ +

का. १४.४.१४. वेतस पात्रस्थापित वसाग्रह शेषों से प्रतिदिश स्थि  
त अध्वर्यु आमुखादवसावयन् आसन्दीस्थ यजमान को सींचे  
मन्त्र त्रयेण कैसे कि सब सुगन्धिओं चन्दन कर्पूर कस्तूरी के स  
रदि से उद्धर्तित को । देवस्य त्वेति सवित्र यजु का तीनों मन्त्रों में आ  
नुषङ्ग हैं । चतुर्थो भिषेकः उत्तरे स्थित तीनों मन्त्रों महा व्याहृति

+ नि-तु ॥ अ० म-हि । द० वि-हि । उ० ॥ २ ॥

+ दे-म । अ० अ-मि । द० से-मि । उ० इ-मि । अ० ॥ ३ ॥

+ यज्ञेति कृष्णाजिन पर स्पृशे वासन्या हिंसाये दिति १२.८.३.४. अ० ॥

यों से अथवा इन्द्रस्येति तृतीय मन्त्र से करे ॥ देवस्य व्याख्यातम्  
१०१० ॥ अश्विनोः । त्रीणि लिङ्गोक्त देवतानि १० प्रा-८०२ ३० आर्षी  
॥ हे यजमान अश्विनी कुमारों के वैद्य कर्म करि तुम्हें अभिषेक  
करता हूँ किमर्थ कि तेज (कान्ति) के अर्थ ब्रह्मवर्च (सर्वत्र अस्सलि  
त वेद वेदाङ्ग जनित कीर्ति) के अर्थ ॥ और सरस्वती के मिष कर्म  
करि वीर्य (सामर्थ्य) के अर्थ अन्न भक्षण सामर्थ्य के अर्थ तुम्हें अभि  
षेक करता हूँ ॥ और इन्द्र की इन्द्रिय (इन्द्रिय पादव सामर्थ्य) करि बल  
(सामर्थ्य) श्रिय (सर्व समृद्धि) यश (कीर्ति) के अर्थ तुम्हें अभिषेक कर  
ता हूँ ॥ ३॥

कोऽसि कतमोऽसि कस्मै त्वा कार्य त्वा । सुश्लोक सुमङ्ग  
ल सत्य राजन् ॥ ४॥

का० १६०४०१६० अध्वर्यु यजमान का स्पर्श करे ॥ प्रजापत्या गायत्री  
उष्णिगर्भा । हे यजमान तू प्रजापति है श्रेष्ठ प्रजापति है (प्रजापति ब  
हुत हैं तिन्हें में तू उत्तम है) प्रजापति पद प्राप्ति के अर्थ तुम्हें में अभिषे  
क करता हूँ आ इति शेषः और प्रजापति के भाव के अर्थ अभिषे ॥  
का० १६०४०२०० अध्वर्यु करि स्पर्श किया यजमान सुश्लोकादिसंज्ञ  
कों नरों को बुलावे ॥ हे सुश्लोक (शोभन है कीर्ति जिसकी) यहां आ  
इति शेषः । शोभन मङ्गल (उदय) जिसका हे सुमङ्गल तू यहां आ ।  
हे सत्य राजन् (अविनाशी राजा जिसका) आ ॥ ४॥

शिरो मे श्रीर्यशो मुखं त्विधिः केशाश्च शमश्रूणि । राज्ञो मे  
प्राणोऽमृतं सन्म्राट् चक्षुर्विराट् श्रोत्रम् ॥ ५॥

का. १४.४.२१. यजमान यथालिङ्ग अङ्गों को स्पर्श करे ॥ इन्द्रशरीर वयवदेवताकं पञ्चर्च तत्र तृतीया गायत्री अन्त्याव्यवसाना महापङ्क्तिः तिस्रोऽनुष्टुभः ॥ अभिषिक्तो यजमान इन्द्ररूप आत्मानं सर्वात्मकं पश्यन्नाह ॥ मेरा शिर शोभा हो वावर्ने मेरा मुख यश हो केश और मुख केलोम दीप्ति हो ॥ राजा (दीप्यमान) मेरा प्राण वायु अमृत हो ॥ चक्षु इन्द्रिय भले प्रकार राजमान हो ॥ श्रोत्रेन्द्रिय विविध राजमान हो ॥ ५॥

जिह्वा मे भद्रं वाङ्महो मनो मन्युः स्वराड्भामः ॥ मोदाः

प्रमोदा अङ्गुली रङ्गानि मित्रं मे सहः ॥ ६॥

मेरी रसनेन्द्रिय कल्याण रूपा हो ॥ वागेन्द्रिय पूज्यमाना हो ॥ मनको धरूप हो क्रोधफल देवे ॥ क्रोध खेनैव राजमान हो नतु कुतश्चित्प्रतिहान्यतामित्यर्थः ॥ १॥ अङ्गुलिरं आनन्दरूपा हो ॥ अङ्गानि प्रकृष्टहर्षा हों ॥ मेरामित्र रिपुनाशक हो ॥ ६॥

बाहू मे बलमिन्द्रिय ठं हस्तौ मे कर्म वीर्यम् ॥ आत्माश्च त्रमुरो मम ॥ ७॥

मेरी बाहू बलवन्त होंवें ॥ और इन्द्रिय स्वकार्यक्षम हों ॥ मेरे हस्त सत्कर्म कुशल सामर्थ्यवन्त होंवें ॥ मेरा आत्मा (अन्तरात्मा) और हृदय त्राण करने वाला हो ॥ ७॥

पृष्ठी मे राष्ट्र मुदरमठसौ ग्रीवाश्च ओणी ॥ कुरूऽपरुत्नी जानुनी विशेषे मेऽङ्गानि सर्वतः ॥ ८॥

मेरा पृष्ठ प्रदेश देशवत्सर्वाधार हो ॥ मेरा उदर कन्धे काण्ठदेशक

+ तदुक्तम् शक्तिरहितोऽपि कुप्यते मानं चोदयति सेवकजनोऽपि अर्थरहितोऽपि कामी जानाति विषयविडम्बयितुमिति

दि ऊरू अरत्नी (हस्तदेशी) और जानु हैं और सब अन्य अङ्ग प्रजा  
वत् पोष्य हैं ॥ ८ ॥

नाभिर्मे चिन्तं विज्ञानं पायुर्मेऽपचितिर्भसत् । आनन्द  
नन्दावाण्डो मे भगः सौभाग्यं यसः ॥ जङ्घाभ्यां पद्भ्यां  
धर्मोऽस्मि विशि राजा प्रतिष्ठितः ॥ ९ ॥

मेरी नाभि ज्ञानरूप हो । गुदाज्ञानजनित संस्काराधार हो । भसत् (स्त्री  
प्रजनन) प्रजारूप सुभग हो (यजमान पत्नी विषय मेतत् । मेरे वृषण  
सम्भोगजनित सुख के भोक्ता हों । मेरे अलिङ्ग सर्वदा भोगासक्त हो ।  
जङ्घाओं और पैरों (सर्वाङ्गों) से धर्मरूप होने से ही प्रजाविधे राजा प्र  
तिष्ठित हूँ (धर्म प्रतिष्ठित ही राजा होता है) ॥ ९ ॥

प्रतिक्षेत्रे प्रतितिष्ठामि राष्ट्रे प्रत्यश्वेषु प्रतितिष्ठामि गोषु ।  
प्रत्यङ्गेषु प्रतितिष्ठाम्यात्मन्यति प्राणेषु प्रतितिष्ठामि पुष्टे  
प्रति द्यावा पृथिव्योः प्रतितिष्ठामि यज्ञे ॥ १० ॥

का. १६. ४. २३. आसन्दी से यजमान उतरे । विश्वदेवदेवत्यं यजुः । मेक्ष  
त्रियजाति में प्रतिष्ठा युक्त हूँ । देश, अश्वों गोओं, अङ्गों (करपादाद्य  
वयवों) चित्त, यच्च प्राणों, समृद्धि, स्वर्ग, पृथिवी, यज्ञ (ज्योतिष्टोमा  
दिकों) विषे प्रतिष्ठा युक्त हूँ । क्रियापादावृत्तिः फलातिशय द्योतनार्थः ।  
क्षत्रियदेशयोः प्रतिष्ठा वशीकरणम् गोः श्व प्रतिष्ठा तत्प्राप्तिः प्राणा  
ङ्ग प्रतिष्ठा नीरोगत्वम् आत्मप्रतिष्ठा निराधित्वम् पुष्ट प्रतिष्ठा धनस  
मृद्धिः द्यावा पृथिव्योः प्रतिष्ठोभयलोककीर्तिः यज्ञे प्रतिष्ठा यज्ञकर  
णम् वश्यविश्वः पशुमान् निराधिव्याधिः श्रीमान्यज्ञकर्ता च भवे

यमिति भावः ॥१०॥

त्रया देवा एकादश त्रयस्त्रिंशः सुरार्धसः ॥ बृहस्पतिपुरोहिता देवस्य सवितुः सर्वे ॥ देवा देवैरेवन्तु मा ॥११॥

का० १४. ५. ८. शस्त्रसमाप्तिविषे वषट्कत त्रया इति कण्डिका द्वयात्मक मन्त्र करि त्रयस्त्रिंश वसाग्रह को हो में ॥ देव देवत्या त्रयवसाना पक्षि एकादश देवता वक्ष्यमाण देवताओं सहित मुँरै रक्षा करें ॥ कैसे हैं कि त्रयाः (तीनि हैं अवयव जिन्हों के) एकादश त्रिगुण) ते कितने यह आप ही कहिता है कि त्रयस्त्रिंशः (ते तीस है संख्या जिन्हों की ते) शो भन है धन जिन्हों का ॥ तथा बृहस्पति पुरोहित है जिन्हों का ॥ तथा सविता देवता की आज्ञा में वर्तमाना ॥ दीप्यमान है ॥११॥

प्रथमा द्वितीयैर्द्वितीयास्तृतीयैस्तृतीयाः सत्येन सत्यं यज्ञेन यज्ञो यजुर्भिर्यजूंश्चैषि सामेभिः सामान्यृग्भिर्ऋचः पुरोऽनुवाक्याभिः पुरोऽनुवाक्या याज्याभिर्यज्या वषट्कारैर्वषट्कारा आहुतिभिराहुतयो मे कामान्त्समर्धयन्तु भूः स्वाहा ॥१२॥

कथमवन्तु तत्राह ॥ विश्व देव देवत्य माशीर्लिङ्ग मू यजुः ॥ प्रथमा देवा द्वितीयां सहित मुँरै रक्षा करें ॥ द्वितीया तीसरीं सहित ॥ तृतीयाः सत्यसहित ॥ सत्य यज्ञ सहित ॥ यज्ञ यजुओं सहित ॥ यजुँ सामों सहित ॥ साम ऋचाओं स ॥ ऋचाँ पुरोनु वाक्याओं स ॥ पुरोनु वाक्याँ याज्याओं स ॥ याज्याँ वषट्कारों स ॥ वषट्कारा आहुतिओं ॥ एवं ती निप्रकार एकादश संख्य देवताओं करि उत्तरोत्तर पालिता आहु

तियें मेरे अभिलाषों को पूरण करें भूः भुवनं भूः हुतं इदं स्वाहा सुहु  
तमस्तु ॥१२॥

लोमानि प्रयतिर्मम त्वङ्मांश्चानतिरागतिः ॥ मांश्च संमन्त्र  
पनतिर्वस्वस्थि मज्जा मंश्चानतिः ॥१३॥

का० १४० ५० १० यजमान ग्रह शेष को प्रत्यक्ष उपहव पूर्वक भक्षण क  
रें ॥ लोमत्वगादि देवतानुष्टुप् मेरे लोमप्रयतिः (जैसे मेरे लोमों में प्र  
यति (प्रयत्न) वर्तते है तैसे उद्यामी मेरी त्वचा आनति (अर्थात् मेरी त्व  
चा को देख आते और मन करते हैं प्राणी) मेरा मांस उपनति (उपन  
मन करते हैं प्राणी जहां) मेरे अस्थि वसु धनरूप मेव मेरी मज्जा  
आनति (अनमन्ति भूतानि यत्र उपलक्षणमेतत् अर्थात् मेरी  
सप्त धातुएँ जगद्वशी करण समर्था हैं ॥१३॥

अ० ४ यहैवा देव हेडनं देवासश्च कृमा वधमग्निमी तस्मादे  
न सो विश्वान्मुञ्चत्वर्ह हसः ॥१४॥

इत उत्तरं भवभृवः ॥ का० १४० ५० १३ अवभृथेष्टि करिके यहैवा इत्या  
दि वरुण नो मुञ्च इत्यन्त १८ अ० सार्धकण्डि का चतुष्कात्मक म  
न्त्र से मासर कुम्भ को जल में तारे ॥ अग्नि वायु सूर्य देवत्यानि ति  
स्त्रोऽनुष्टुभः कूष्माण्डी संज्ञाः ॥ दीप्यमाना हे देवता ओहमनें जो  
देवताओं का हेडन (अपराध) किया अग्नि तिस पाप से मुर्झे पृथ  
क् करे और सब पापों (विघ्नों) से छुडावे ॥१४॥

यदि दिवा यदि नक्त मेनांश्च सि च कृमा वधमग्निमी तस्मादे  
न सो विश्वान्मुञ्चत्वर्ह हसः ॥१५॥



यमिति भावः ॥१०॥

त्रया देवा एकादश त्रयस्त्रिंशः सुरार्धसः । बृहस्पतिपुरोहिता देवस्य सवितुः सवे । देवा देवैरेवन्तु मा ॥११॥

का० १४. ५. ८. शस्त्रसमाप्तिविषे वषट्कत त्रया इति कण्डिका द्वयात्मक मन्त्र करि त्रयस्त्रिंश वसाग्रह को होमें ॥ देव देवत्या त्रयवसाना पण्डित एकादश देवता वक्ष्यमाण देवताओं सहित सुमैरक्षा करें । कैसे हों कि त्रयाः (तीनि हैं अवयव जिन्हों के एकादश त्रिगुण) ते कितने यह आप ही कहिता है कि त्रयस्त्रिंशः (ते तीस हैं संख्या जिन्हों की ते शोभन है धन जिन्हों का । तथा बृहस्पति पुरोहित है जिन्हों का । तथा सविता देवता की आज्ञा में वर्तमानाः । दीप्यमान है ॥११॥

प्रथमा द्वितीयैर्द्वितीयास्तृतीयैस्तृतीयाः सत्येन सत्यं यज्ञेन यज्ञो यजुर्मिर्यजुश्च सामेभिः सामान्युग्भिर्ऋचः पुरोऽनुवाक्याभिः पुरोऽनुवाक्या याज्याभिर्याज्या वषट्कारैर्वषट्कारा आहुतिमिराहुतयो मे कामान्त्समर्धयन्तु भूः स्वाहा ॥१२॥

कथमवन्तु तत्राह । विश्व देव देवत्य माशीर्लिङ्गम् यजुः । प्रथमा देवा द्वितीयों सहित सुमैरक्षा करें । द्वितीया तीसरो सहित तृतीयाः सत्यसहित सत्य यज्ञ सहित यज्ञ यजु ओं सहित यजुँ सामों सहित सम ऋचा ओं स ० ऋचाँ पुरोनु वाक्या ओं स ० पुरोनु वाक्याँ याज्या ओं स ० याज्याँ वषट्कारों स ० वषट्कार आहुति ओं ० एवंत निप्रकार एकादश संख्य देवताओं करि उत्तरोत्तर पालिता आहु

तिथें मेरे अभिलाषों को पूरा करूं भूः भुवनं भूः हुतं इदं स्वाहा सुहु-  
तमस्तु ॥१२॥

लोमानि प्रयतिर्मम त्वङ्माऽऽनतिरागतिः ॥ मांश्च संमन्त्र-  
यन्तिर्वस्वस्य मज्जा मः आनतिः ॥१३॥

का० १४० ५१० यजमान ग्रह शेष को प्रत्यक्ष उपहव पूर्वक भक्षण क-  
रे ॥ लोमत्वगादि देवतानुष्टुप् मेरे लोमप्रयतिः (जैसे मेरे लोमों में प्र-  
यति (अयत्न) वर्तते है तैसे उद्यामी मेरी त्वचा आनति (अर्थात् मेरी त्व-  
चा को देख आते और मन करते हैं प्राणी) मेरा मांस उपनति (उपन-  
मन करते हैं प्राणी) जहां मेरे अस्थि वसु धनरूप मेव मेरी मज्जा  
आनति (अनमन्ति भूतानि यत्र उपलक्षणमेतत् अर्थात् मेरी  
सप्त धातुएं जगद्वशीकरण समर्था हैं ॥१३॥

अ० ४ यहै वा देव हेडनं देवासश्च कृमा वधम् ॥ अग्निमी तस्मादे-  
न सो विश्वान्मुञ्चत्वर्हहसः ॥१४॥

इत उत्तरमेव भूवः ॥ का० १४० ५१३ अवमृथेष्टि करिके यहै वा इत्या-  
दि वरुण नो मुञ्च इत्यन्त १८ अ० सार्धकण्डि का चतुष्कात्मक म-  
न्त्र से मासर कुम्भ को जल में तारे ॥ अग्नि वायु सूर्य देवत्यानि ति-  
स्रोऽनुष्टुभः कूष्माण्डी संज्ञाः ॥ दीप्यमाना हे देवता ओहमनें जो  
देवताओं का हेडन (अपराध) किया ॥ अग्नि तिस पाप से मुझे पृथ-  
क् करे ॥ और सब पापों (विघ्नों) से छुड़ावे ॥१४॥

यदि दिवा यदि नक्त मेनांश्च सि चकृमा वधम् ॥ वायुमीत-  
स्मादेन सो विश्वान्मुञ्चत्वर्हहसः ॥१५॥

यदिचेत् दिनमें यदिरात्रि में हमने पाप किया। वायुतिसपाप और सब पापों (विघ्नों) से मुझे छुड़ावे ॥१३॥

यदि जाग्रद्यदि स्वप्न ऽ एनाथ्सि च ह्रमा वयम् । सूर्यो मात स्मा देन सो विष्णोन्मु च्चत्विह हसः ॥१६॥

यदि जाग्रदवस्था में यदि स्वप्न अवस्था में हमने पाप किया। सूर्य तिसपाप से और सब पाप से मुझे छुड़ावे ॥ अतुत्यात्वन्यथा व्याख्यातम् । जागते में मनुष्यों प्रति जो पाप किया सो ते में पितरों प्रति जो पाप किया तिस से मुझे छुड़ावे ॥१६॥

यज्ञा मे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये । यच्छूद्रे यदर्ये यदेनश्च ह्रमा वयं यदेकस्याधि धर्मणि तस्या वयं जनमसि ॥१७॥

लिङ्गोक्त देवतं यजुः । ग्राम में बन में सभा में पक्षपातादि जो पाप इन्द्रिय विषय में परापवाद परनारी दर्शनादि जो देवता विषय में वाशूद्र में वैश्य में जो पाप हमने किया । आवयोः दोनो पत्नी यजमान में से एक का भी कर्म विषय में जो पाप धर्म लोपोपलक्षणा तिस पाप का तू नाशक है । कुम्भं प्रतिवचनम् ॥१७॥

यदापो ऽ अघ्या इति वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च । अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः । अवदेवे देव हत मे नो ऽ यक्ष्य व मर्त्ये मर्त्य कृतं पुरु सवर्णा देव रिषस्याहि ॥१८॥ + य-च। अ० अ-हि। इ० ॥१८॥

यदापः जोजल इति विशेषः अन्यद्वारव्यातम् ई. २२। का. ०२८. २. १४. पूर्ववत् अवभृथेत्यादि शोषधीरुताप इत्यन्त मन्त्रकरि सुरा

कुम्भ का जल में मज्जन है ॥ अवभृथ व्याख्यातम् ३४८ इयान्वि  
शेषः अयक्षि अवायक्षि नाशितवानहं ॥ १८ ॥

समुद्रे ते हृदय मस्वन्तः संत्वा विशन्त्वोषधीरुतापः ॥ सु  
मित्रिया न आप औषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु  
योऽस्मान्देष्टुर्यं च वयं द्विष्मः ॥ १९ ॥

समुद्रे ते द्विपदा विशद्वन्तः आपो देवता व्याख्यातम् ८२५ ॥ का० १४  
५१५ यजमान अवभृथ प्रदेश से दो विक्रम उदीची में चलकर  
सुमित्रिया इति जलाञ्जलि को ले जिस दिशा में किरिपु है तिस प्रति  
दुर्मित्रिया इति सींचे ॥ व्याख्यातम् ६२२ ॥ १९ ॥

द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव ॥ पूतं पवि  
त्रेण वाज्य मापः सुन्धन्तु मे न सः ॥ २० ॥

का० १४ ५१६ जलस्थायिव जायापती सौमिका वभृथवत् स्नानक  
रि के कर्मकाल में धारण किये वस्त्र को जल में डालें ॥ अब देवत्यानु  
ष्टुप् जल मुझे पाप से पृथक् करे ॥ तत्र दृष्टान्तत्रयमाह - द्रुपदादिवे  
ति - द्रु तरु तन्मय पदपादुका तिस से छूरा जैसे पादुका दोष से अस  
म्बद्ध होता है ॥ और जैसे स्वेदयुक्त स्नान करते मल से पृथक् होता है  
जैसे पवित्र ऊर्ण के छन्ने करि तवाया आज्य तिनका ताते कीट प  
तङ्ग से पृथक् होता ॥ तैसे जल मुझे सुद्ध करे ॥ २० ॥

उह्यं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् ॥ देवं देवत्रा सूर्य  
मर्गन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ २१ ॥

का० १४ ५१७ सोमवदिति उह्यमिति मन्त्रेण जल से निष्क्रमण

है- अपाम सोम ममृता अभूमेति ऋग्वे० ८.४८.३. जप करते स-  
 बों का त्रिपशु देश विषे अगमन है ॥ सूर्य देवत्यानुष्टुप् प्रस्कण्वदृष्टा  
 हमतमो बहल इस लोक से निकले। कैसे हैं हम उत्कृष्ट स्वर्ग को देख  
 ते किंच देवलोक में सूर्य को देखते हुए ज्योति ब्रह्मरूप को प्राप्त ॥  
 अपोऽअद्यान्व चारिषठं रसेन समसृक्ष्महि। पपस्वा  
 नग्नऽआगमं तं मा सर्गस्तज्ज बर्चसा प्रजया च धनै  
 न च ॥ २२ ॥

का० १५.५.१८. यजमान आहवनीय को उपस्थान करे ॥ अग्निदेव  
 त्यापङ्क्तिः। हे अग्ने तिस मुझे ब्रह्मतेज पुत्रादि प्रजा और सुवर्णदिध  
 न करि भले प्रकार जोड़ि जोकि मैं आप (जल) को प्राप्त हूँ और जो मैं रस  
 (जल) करि संसृष्ट हूँ और जो मैं उदकवान् होकर आया हूँ। तिस मुझे  
 बर्च (तेज) आदि से जोड़ि ॥ २२ ॥

एधोऽस्येधिषीमहि समिदसि तेजोऽसि तेजो मयि धेहि।  
 समाववर्ति पृथिवी समुषाः समुसूर्यः। समु विश्वमिदं ज  
 गत् ॥ वैश्वानर ज्योतिर्भूयासं विभून्कामान्युश्मवे भूः स्वा  
 हा ॥ २३ ॥ + ए-हि।अ०।स-हि।इ०।स-त०।उ०।वे-हा।ऋ० ॥ २३ ॥

का० १५.५.१८. यजमान एधोऽसीति मन्त्र करि समिध लेके समिद  
 सीति मन्त्रेण अग्नि में धारण करे ॥ समिदेवत्ये यजुषी। हे समित्  
 तू दीपिका है हम तेरे प्रसाद से धनादि करि दृष्टि को प्राप्त हों ॥ हे  
 समित् तू प्रकाशती (दीपती) है और तेज है (तत्संयोगे नाम्नेर्ज्वलना  
 त् अतः सुरू विषे तेज धारण करि ॥ का० १५.५.२०. यजमान स

कृद्गृहीत आज्य को कण्डिका शेष करि होसैं ॥ समाववर्त्ति आग्ने-  
यी अनिरुक्त गायत्री वैश्वानरज्योतिरिति यजुः। पृथिवी समाव व-  
र्त्ति नाश होती है। और उषाः दिन भी समाववर्त्ति एवं सूर्यः समा-  
समस्त जगत् स० ॥ अतः में वैश्वानर समस्त नरों के अर्थहित पर  
मात्मा तद्रूप ज्योति ब्रह्म एव हों उँ। बड़े कामों मनोरथों को प्रा-  
प्त हों उँ। भूः स्वाहा भुवनः सत्तामात्र ब्रह्म तिसके अर्थ सुदुत हो ॥ २३ ॥

अ० ३ अभ्यादधामि समिधमग्ने व्रतपते त्वयि। व्रतं च अ-  
हं चोपैमीन्धे त्वा दीक्षितोऽग्रहम् ॥ २४ ॥

का० १६. १. ११ सोऽत्रामणि की आदि में आदित्येष्टिको समाप्त-  
करि त्रिपञ्चर्य आहवनीय दक्षिणाग्नि विहरण करि और अ-  
ग्न्यन्वाधान ब्रह्मवरण करिके आहवनीयविषे पजमान तीनि  
समिधाएँ प्रति वृत्तासे आधान करता है ॥ अग्निदेवत्यास्तिसोऽ-  
नुष्टुभः आश्वतराश्विदृष्टा। हे अग्ने व्रतों (कर्मों) के पालक में तुम्हें  
विषे समिध होमता हूँ तिस समिदाधान करि दीक्षित हो व्रत (कर्म)  
और श्रद्धा (विश्वास) को पहूँचता हूँ तुम्हें दीपन करता हूँ ॥ २४ ॥

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चैः प्रजातः सह। तं लोकं  
पुण्यं प्रज्ञैषं यत्र देवाः सहागमन्ता ॥ २५ ॥

पुण्य (पवित्र) लोक को जानूँ (लोकमप्राप्तानां तल्लोकज्ञानं न भ-  
वतीति स्वर्लोक गमनं प्रार्थ्यते। वोह कोन कि जिस लोक में ब्राह्म-  
ण जाति और क्षत्रिय जाति वियोग रहित तिष्ठें हैं कैसे ब्रह्म क्षत्र-  
कि सम्यञ्चैः भले प्रकार अश्वते। और जहां अग्नि सहित देवता

चरते हैं। अर्थात् सदाचारविप्राः और क्षत्रियाः जहां जाते हैं तिस  
देवलोकको प्राप्त होंगे ॥२५॥

यत्रेन्द्रश्च वायुश्च सम्यच्चै चरतः सह। तं लोकं पुण्यं श-  
शेषं यत्र सेदिर्न विद्यते ॥२६॥

जिस लोक में इन्द्र और वायु भले प्रकार अश्वते चरते हैं और  
जहां सेदि (अन्नाप्राप्तिजनित दुःख) नहीं विद्यमान है तिसलो-  
कको पवित्र जानता हूँ ॥२६॥

अर्धंशुना तेऽअर्धंशुः पृथ्यतां परुषा परुः। गन्धस्ते सो-  
ममवतु मदाय रसोऽअच्युतः ॥२७॥

सुरादेवत्यानुष्टुप् सुरासंजने विनियुक्ता तत्सूत्रं सौत्रा मण्यार-  
म्भे १६.१ लिखितम् ॥ हे सुरे तेरे अंशु हैं (भाग) सोम के अंशुओं  
के साथ जुड़े तेरे पर्व सोम के पर्वों के साथ युक्त हों। तेरे गन्ध अ-  
नश्वर और रस सोम आलिङ्गन करे किमर्थ कि मद के लिये  
(सुरा युक्त सोम पीने में मदजनक होता है इस हेतु दोनों का  
योग हो ॥२७॥

सिञ्चन्ति परिषिञ्चन्त्युत्सिञ्चन्ति पुनन्ति च। सुरा-  
ये बभ्रुवै मदे किंत्वो ब्रदति किंत्वः ॥२८॥

सुरादेवत्येन्द्र देवत्या बानुष्टुप् पूतसुरादाने विनियोग उक्तः का-  
१६.२.७ ॥ बभ्रुवर्णा सुरा के मद में स्थित सुराकरिमत्त इन्द्र किं-  
त्व किंत्व यह कहता है किसकी तू इत्यादिक अनिरस्कार कर-  
ने वाले बचन कहता है। जिस सुरा को ऋत्विज पात्र में सींचते

पय आदि करि परि सींचते ग्रहों से उन्सींचते और गोवाल पवित्रहि  
रण्यादि करि पवित्र करते हैं ॥२८॥

धानावन्तं करम्भिणामपू पवन्तमुक्थिनम् । इन्द्र प्रा  
तर्जुषस्वनः ॥२९॥

इन्द्रदेवत्या गायत्री विश्वामित्रदृष्टा स्मार्ते श्रवणा कर्माणि धाना हो  
मे विनियुक्ता प्रातः सवने पुरोडाश पुरे अनुवाक्यापि । हे इन्द्र तू प्रातः  
काल में हमारे पुरोडाश को सेवन करि कैसे को कि धानावन्त कर  
म्भिण अपूवन्त उक्थिन (शस्त्र-स्तुति युक्त) को ॥२९॥

बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम् । येन ज्योति रज  
नयन्तृता वृधो देव देवाय जागृवि ॥३०॥

का० १४. ५. २. अध्वर्यु करि प्रेषित ब्रह्मा इन्द्रदेवत्या बृहती ऋचावि  
धे साम गावे ॥ इन्द्रदेवत्या बृहती नृमेध पुरुष मेधदृष्टा । हे मरुतः  
(ऋत्विजः) इन्द्र के अर्थ तुम बृहत्साम गाओ कैसे बृहत् कि वृत्र (पाप  
वादेत्य) प्रतिशति शयेन गन्तार को । ऋत (यज्ञ) को बढ़ाते देवता वाक्  
त्विज जिस साम गान देवता (इन्द्र) के अर्थ तेज को उत्पादन करते  
कैसे तेज कि देव (दीप्यमान) जागृवि (जागरणशील-अविनश्वर  
को) । साम गाने नेन्द्र स्तेजस्वी जात इत्यर्थः ॥३०॥

अध्वर्योऽग्निभिः सुतर्हि सोमं पवित्रः आनय । पुना  
हीन्द्राय पातवे ॥३१॥

का० १४. २. ११. ब्रह्मा पय को अनुमन्त्रण करे । ऐन्द्री गायत्री । हे अ  
ध्वर्यो तू सोम को कम्बलमय छत्ने में सींचि कैसे को कि पाषाणों



करि अभिषुत । ततः गलाय इन्द्रकेपानार्थं ॥३१॥

अ०४ यो भूतानामधिपतिर्यस्मिं लोका अधि श्रिताः । य ईशं  
महतो महासेनं गृह्णामि त्वामहं मयि गृह्णामि त्वाम-  
हम् ॥३२॥

का० १४०४२४ अभिषेक से पहिले सीसेन तन्त्रमिति १४०८० षोड-  
श ऋचाओं करि द्वाविंशत् वसाग्रह हैं तिन्हों के संस्त्रव करि यजमा-  
न का अभिषेक किया फिरि अध्वर्यु मृतानामिति सार्धकण्डिका-  
त्मक मन्त्र करि त्रयस्त्रिंशतमे वसाग्रह को आर्षभस्वर से ग्रहण क-  
रै ॥ आत्मप्रवादा ग्रहदेवत्या नारायणीया कौण्डिन्यदृष्टा पङ्क्तिः ।  
जो परमात्मा भूतों (जरायादि चतुर्विधों) का अधिपति और जिसमें  
भूरादिलोका अधिश्रिताः अर्थात् यदाधारा हैं । महान् (सर्वोत्क-  
ष्ट) जो महत्त्व प्रमुख तत्त्वों का ईशानियन्ता वर्तते है । हे ग्रहमें  
तिस परमात्मा करि तुम्हें ग्रहण कर्ता हूं मयि परमात्मभावभाषने  
मयि विषये में तुम्हें ग्रहण कर्ता हूं ॥३२॥

उपयाम गृहीतोऽस्य श्विभ्यो त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा  
सुत्राम्णा एषते योनि रश्विभ्यो त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय  
त्वा सुत्राम्णे ॥३३॥ † उ-मो। अ०। ए-मो। इ० ॥३३॥

उपयाम० यजुसा-त्रि० व्याख्यातम् १०३२ इ० एषते यजुः प्राबु०  
सादने विनियोगः । ग्रह देवते द्वे यजुषी ॥३३॥

प्राणपा मेऽपानपाश्चक्षुष्याः श्रोत्रपाश्च मे वाचो मे  
विश्वभेषजो मनसोऽसि विलायकः ॥३४॥

का० १४. ५. ४. सशस्त्र ग्रह होम के अनन्तर शेष को सब ऋत्विज दो  
कण्डिकाओं करि संधते हैं ॥ ग्रहदेवत्ये दो अनुष्टुबुपरिष्ठादृत्यो  
। हे ग्रह तू मेरे प्राणों का पालक अपान का पालक है नेत्रों का रक्ष  
क और मेरे श्रोत्रों का रक्षक है । मेरी वागिन्द्रिय का विश्व भेषज (   
सब औषध जिस से वोह वाणी औषध उन्मार्गे निवृत्ति और जपा  
दिमें प्रवृत्ति तिसका कर्ता ) है । और मन का विलायक ( विषयों से  
निवर्त करि आत्माविषे स्थापक आत्मज्ञान प्रद यद्वा चक्षुरादि  
कों के साथ विलायक सब इन्द्रियों के साथ मन का जोड़ने वा  
ला ) है ॥ ३४ ॥

अश्विने कृतस्य ते सरस्वति कृतस्येन्द्रेण सुत्रामणा कृ  
तस्य । उपहूत उपहूतस्य भक्षयामि ॥ ३५ ॥

हे ग्रह आज्ञा पाया मैं तुम्हें भक्षण करता हूँ । कैसे तेरे काकि अश्वि  
नी कुमारें करि दृष्ट तिसका । सरस्वती करि दृष्ट का भले प्रकार ज्ञा  
नकर्ता इन्द्र करि दृष्ट का । ऋत्विजों करि आज्ञा दिये का ॥ ३५ ॥

॥ इत्याध्वर्यवं समाप्तम् ॥

अ० ५ समिद्ध इन्द्र उषसामनी के पुरे रुचा पूर्व कदा नृधान  
त्रिभिर्देवैस्त्रिंशता वज्रबाहुर्जयानं वृत्रं विदुरे  
ववार ॥ ३६ ॥

इतः सोत्रामणिकं होत्रमुच्यते ॥ का० १४. ६. १२. समिद्ध इन्द्र इत्या  
द्या एकाद ऋचाँ प्रथम ऐन्द्र पशुकी अप्रिये प्रयाजयाज्यां  
आङ्गिरस दृष्टा एकादशाप्रियः त्रिष्टुभः तासां क्रमादेना त्व

ता इध्मः तनूनपान्नराशंसो वाइडः बर्हिः द्वारः उषासानक्ता  
 दैव्यो होतारो तिस्रो देव्यः त्वष्टा वनस्पतिः स्वाहा कृतयः एता देव  
 ताः यथा योगमिन्द्र विशेषण त्वेन व्याख्येयाः अनुवाकेनानेनेन्द्रः  
 स्तूयते। इन्द्र ने वृत्र (मेघ वा दैत्य) को मार और बुरः (द्वारों, मेघ के  
 स्रोतों) को विवृत किया वा दैत्य पुर द्वारों को शून्य किया। कैसा है  
 इन्द्र कि समिद्ध संदीप्त मुख प्रातः काल में आगे प्रसरती हैं दीप्ति  
 हैं आदित्यात्मा करि पूर्वदिश को कर्ता। और तेती सो ३३ देवताओं  
 सहित वर्धमान। वज्रपाणि ॥ ३६ ॥

नराशर्द्धसः प्रति शूरे मिमानस्तनूनपात्प्रति यज्ञस्य  
 धामे। गोभिर्वपावान्मधुना समञ्जन्हिर ऐषेऽश्वन्त्री य  
 जति प्रचेताः ॥ ३७ ॥

एकस्यामृचिनाराशर्द्धसस्तनूनपातो। प्रचेता (कर्मज्ञाता यजमान)  
 तिस इन्द्र को प्रतिदिन यजता है। तिस किसे कि जो ऐसा नराशर्द्ध  
 स (नरों, ऋत्विजों करि समन्तात् शस्त्रों करि स्तुति करिये है यद्वा  
 नरास्मिन्नासीनाः शंसन्तीति निरु० ८६ यास्कीत्तेः नराशंसो  
 यज्ञः तद्रूप वा तद्वान्। यज्ञस्य धाम (यज्ञ के स्थानों को जानता)  
 एकः प्रतिमिमान इत्यनेन सम्बध्यते परे यजतीत्यनेना तथा  
 शौर्यवान्। तनूनपात् तनोति (विस्तारता है) सृष्टिको तनूः प्र-  
 जापति मरीचि तिसकानपात् नाती कस्यपात्मजः यद्वा शरी-  
 र को जठराग्नि करि रक्षा करता अग्नि तद्रूप वा तनोति भोग  
 नू गो तिसका पौत्र घृत गोसे पय होतो है तिससे घृत अर्थात्

घृतरूप वा घृतवान्। गोभिर्वपावान् (पशुसम्बन्धिनी करिवपा  
वान्) मधुस्वादोपेत घृतकरि समञ्जन हवियों को भक्षण करता  
हिरण्येः पशवदानभूतकरि चन्द्री सुवर्णमस्यास्तीति ॥३७॥

ईडितं देवैर्हरिवां ॥३८॥ अभिष्टिरा जुह्वानो हविषा श  
र्धमानः ॥ पुनर्दुगे गोत्रभिद्वज्रबाहु रेषातु यज्ञमुप  
नो जुषाणः ॥३८॥

एवंविधि इन्द्र आवै कैसा कि देवता ओं करि पूजित (स्तुत) हरी  
अश्वों वाला। अभिष्टिः (समन्तात् याग जिसका वा अभिस्तूपते।  
हवि निमित्त करि द्विजों से आहूयमान। अतिवलायमान। गो  
त्रभिनत् (भूमिको दृष्टि से त्राण करनेवाले मेघ तिन्हें दृष्टिके  
अर्थ भिन्दता वा गिरियों को भिन्दता। वज्रधरः। हमारे यज्ञको उ  
पसेवमानः ॥३८॥

जुषाणो बर्हिर्हरिवान् इन्द्रः प्राचीनर्धं सीदत्पृदिशा  
पृथिव्याः ॥ उरुप्रथाः प्रथमानं स्प्योनमादित्यै रक्तं व  
सुभिः सजोषाः ॥३९॥

इन्द्र हमारे प्रागभव प्रदेश प्रति बैठे कैसा इन्द्र कि हरी अश्वों युक्त।  
पृथिवी (देवयजनभूमि) को प्रदिशता। विस्तीर्ण रव्याति जिसकी प्री  
ति सहित संतुष्ट। बर्हिर्ओं करि सेवमान कैसी बर्हिर्एँ कि वि  
स्तीर्ण। सुखरूप। आदित्यों वसुओं और मरुतों करि अक्तचि  
कनी की हुई ॥३९॥

इन्द्रं दुर्ः कवष्यो धावमाना वृषाणं यन्तु जनयः सु

समस्तद्विरित्युक्तिः ॥३८॥  
हविषा घृतेन समादित्यै रक्तं व  
सुभिः सजोषाः ॥३९॥  
आदित्यादीनामुक्तवान् रक्तं व  
सुभिः सजोषाः ॥३९॥

पत्नीः। द्वा॒रे दे॒वी रु॒मितो वि॒श्रयन्ता॑रं सु॒वीरा॑ वी॒रं प्रथ॑मा  
ना महो॑भिः ॥४०॥

दुरः (यज्ञ गृह द्वार) इन्द्र को प्राप्त हों। कैसे इन्द्र को कि वर्षने वाले। श्र  
र। कैसी गृह द्वार कि कवच्यः (शब्द करती वा शब्द करते हैं मनुष्य  
जिन्हों में। तथा धाव माना (आदर युक्ताः। तथोपमानम् जनयः सुप  
त्नीः (शोभना साध्विर्एँ पत्नी यज्ञ में सहाधि कारिणीयैस्त्री जैसे लु  
प्तोपमानम् ते जैसे धाव माना प्राप्त होती हैं तैसे द्वार इन्द्र को प्राप्त हों  
किंच इन्द्र को प्राप्त होकर द्वारे देवी सर्वत्र विद्यता हों। कैसी हैं द्वारः कि  
शोभन वीर (ऋत्विज लोग हैं जिन्हों में) बड़े तेजों वा उत्सवों से विस्त  
ता होती हैं ॥४०॥

उ॒षा सा॒नक्ता॑ ब॒हती॒ बृह॑न्तं प॒र्यस्व॑ती सु॒दु॒ष्टे शूर॑मिन्द्र  
म्। त॒न्तुं त॒तं पेश॑सा सं॒वये॑न्ती दे॒वानां॑ दे॒वं य॑जतः  
सुरु॑क्मे ॥४१॥

उषा आदित्य प्रभा और नक्ता रात्रि इन्द्र को (करि) यजतः (संगत-सं  
गम) करें। कैसे इन्द्र कि महान्त सर्व देव पूज्य को। कैसी हैं उषा सा  
नक्ता कि बड़ी बृहत्क वालियें अवश्यायवतिर्एँ शोभन दुग्धारें वि  
चित्र रूप करि योजती हैं इन्द्र को तत्र दृष्टान्तः जैसे पर (वस्त्र के अ  
र्थ विस्तीर्ण सूत्र को रूप करि कोई विनता है। तथा शोभन कान्ति  
जिन्हों की ॥४१॥

दे॒व्या मि॒मा॒ना म॑नु॒षः पुरु॑त्रा हो॒ता रा॒विन्द्रं॑ प्रथ॒मा सु॒  
वा॒चा। मूर्ध॑न्य॒ज्ञस्य॑ म॒धुना॒ दधा॑ना प्रा॒चीनं॑ ज्योति॒र्ह

विषा वृधातः ॥४२॥

यह अग्नि और यह वायु मध्यम ते देवताओं के होनेों होतार वायव-  
गनी प्राची दिशा में वर्तमान ज्योति (आहवनीयाख्य) को हवि करिष-  
दाते। कैसे होतार कि बहुधा यज्ञ की निर्मिमाण करते। मनुष्य होता  
से आदिहें। वाचा जिन्हों की ते। यज्ञ के सूर्यन् (प्राधानाङ्ग में) इन्द्र को  
स्थापन करते ॥४२॥

तिस्त्रो देवी हविषा वर्धमाना इन्द्र जुषाणा जनयो न प-  
त्नीः। अर्चिन् तन्तुं पयसा सरस्वती डा देवी भारती वि-  
श्व नृतिः ॥४३॥

सरस्वती इडा भारती तीनों देवियें पय हवि करिके यज्ञ को विघ्नर-  
हित करें इति शेषः। पुष्टियुक्ताः। साध्वी स्त्री (पत्नीएँ) जैसे इन्द्र को  
सेवमानाः। दीप्यमानाएँ सर्व गामिनीएँ ॥४३॥

त्वष्टा दधक्षुष्म मिन्द्राय वृषोऽपाकोऽचिष्टुर्यशसे पु-  
रूणि। वृषा यजन्वृषाणं भूरिरेता मूर्धन्यज्ञस्य समन-  
क्तु देवान् ॥४४॥

त्वष्टा यज्ञ के शिरस्थानीय आहवनीय विषे देवताओं को भोज-  
न करावै। कैसा त्वष्टा कि यशस्वि सेक्त इन्द्र के अर्थ बहुत बल  
को धारण कराता। तथा अपाकः नहीं विद्यमान है प्रशस्यजि  
सैं वर्षनेवाला वर्षनेवाले इन्द्र को पूजता। भूरिरेताः (सर्वज-  
नकः। त्वष्टा करता है।)। एसा त्वष्टा देवताओं भोजन करावै ॥४४॥

वनस्पतिरवसृष्टो न पाशैस्त्वन्या समञ्जश्छमितान

के।  
०.८.१३.यास्कीतिः।  
रितयथेति निरु-  
क्षत्त्वक्षितिक

देवः । इन्द्रस्य हव्यैर्जठरं पूरणनः स्वदाति यज्ञं मधुना  
घृतेन ॥४५॥

वनस्पति यूपदेवता मधु(रस) और घृत करि यज्ञ को आस्वादन  
वा भोजन करावै कैसा वनस्पति कि अवसृष्टोन (आज्ञ प्रजैसे  
पाशों करिके अपने में पशुओं को योजता । तत्र दृष्टान्तः जैसे श  
मिता पशुओं को पाशों करि अपने में योजता है । तथा हवियों क  
रि इन्द्र के उदर को पूरण करता ॥४५॥

स्तोकानामिन्दुं प्रति शूर इन्द्रो वृषायमाणो वृषभस्तु  
षाट् । घृतं पुषा मनसा मोदमानाः स्वाहा देवा अमृता  
मादयन्ताम् ॥४६॥

इन्द्र और स्वाहा कृतयः देवाः तृप्त हों । किस उद्देश्य करि कि स्तो-  
कानामिन्दुं प्रति स्तोका (वपासम्बन्धि घृतविन्दुएँ) तत्सम्बन्धि-  
जो इन्दु (सोम) तिस प्रति तिस उद्देश्य करि वपास्तोकों में सोमत्व  
आरोपण करिये है अर्थात् वपास्तोक रूप सोम को उद्देश करि इ  
न्द्र और स्वाहा कृतयः तृप्त हों । कैसा इन्द्र कि शूर वृषायमाण श  
त्रुओं प्रति गरजता वर्षनेवाला शत्रुओं को अभिभवता । कैसे स्वा  
हा कृतयः कि घृतविन्दु करि हीमन से मोदमानाः (संतुष्टाः) । अम  
रणधर्माणः (नहीं है मरण जिन्हों का ते ॥४६॥

अ० ६ आया त्विन्द्रो वसु उपे न इह स्तुतः सधु मादस्तु शूरः ।  
वा वृधानस्त बिषीर्यस्य पूर्वीर्द्यौर्न क्षत्रमभिर्भूति  
पुष्पात् ॥४७॥

का० १६. ६. १३. और वषा की आपात्विन्द्र इति ४० पुरोऽनुवाक्या  
आनइन्द्रो दूरादिति ४० याज्या. पशुपुरोडाश की आनइन्द्रो हरि  
भिरिति ४६ पुरोऽनुवाक्या. त्रानारमिन्द्रमिति ५० याज्या. पशुयाग  
में इन्द्र. सुत्रामेति ५१ पुरोऽनुवाक्या. तस्य वयमिति ५२ याज्यास  
त्रार्थः ॥ सप्तत्रिंशुभ इन्द्रदेवत्याः ॥ आद्या वामदेवदृष्टा ॥ इन्द्रह  
में रक्षा करने को समीप आवे। यहां आकर देवताओं के साथ भी  
जन कर्ता हो। कैसा इन्द्र कि शूर (विक्रान्त)। हम लोगों करिस्तुति कि  
या। वर्धमान। जिस इन्द्र के पहिले तविष्यः (बल) वृत्रवधादयः स्व  
र्ग जैसे कहियें हैं अर्थात् स्वर्ग जैसे स्तुति करियें हैं तेसे इन्द्र के बल  
स्तुति करियें हैं। और जो इन्द्र हमारे शत्रु को पुष्ट करता है कैसे शत्रु कि  
अभि भवनशील (शूर) को। वोह इन्द्र आवे इति सम्बन्धः ॥ ४७ ॥

आन इन्द्रो दूरादा न आसादभिष्टिक्कदवसे यासदु  
ग्रः ॥ ओजिष्ठेभिर्नृपतिर्वज्रबाहुः संगे समत्सु तुर्वणिः

पृतन्यून ॥ ४८ ॥

इन्द्र हमारा दूरप्रदेश (दुर्लभ) से आवे। और निकट प्रदेश से आवे।  
क्या करने कि हमारे रक्षा की कैसा इन्द्र कि अनारथ प्रदः ॥ उत्कृष्टः ॥  
ओजिष्ठेभिः (तेजस्वित में वेद्युक्तः) नरो कापालक। वज्र बाहुओं  
में जिसके। तथा संगे समत्सु. संग समदिति द्वे संग्राम नामनी नि  
घं ० २. १० संगे (एक संग्राम में) समत्सु (बहुत संग्रामों में) अर्थात्  
दोनों में शत्रुओं को हनन करता ॥ ४८ ॥

आन इन्द्रो हरिभिर्यात्वच्छावीचीनो ज्वसे राधसे च ।

‡ तिस्रहं वामदेवदृष्टिः इति हलायुधः ।

५ तविष्यति वल नाम नवतेर्द्विदिक  
मरण इति निह. २५ यास्कः ।



तिष्ठति वज्री मधवा विरप्शीमं यज्ञमनु नो वाज  
सातो ॥४६॥

इन्द्र अभि सुख होकर हम को अभि आयातु (आवे)। किन्हीं करि  
कि हरी-अश्वों। किसलिये कि रक्षण के अर्थ और धन के अर्थ औ  
र आकर वज्री इन्द्र हमारे इस यज्ञ प्रति अन्नसम्भजननिमि  
त्त में तिष्ठे। कैसा कि मधवा (धनवान्) विरप्शी (महान्) ॥४६॥

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्र हवे-हवे सुहवर्षर  
मिन्द्रम्। हवामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति नो मध  
वा धात्विन्द्रः ॥४७॥

गर्गहृष्टा + रक्षितार इन्द्र को प्रीणयितार इन्द्र को हव-हव (आ  
ह्वान-आह्वान वायज्ञ) में सुहव (सुखेन आहूयतः इति सुहव)  
को शूर को शक्र (समर्थ) को पुरुहूत (बहुतों करि आहूत) को ईदृश  
इन्द्र को बुलाता हूँ। मधवा (धनवान्) इन्द्र बुलाया हूँ आहूत आ  
विनाश स्थापन करे। इन्द्र शब्दा वृत्तिरादरार्था ॥४७॥

इन्द्रः सुत्रामा स्वर्वा २॥ अवीभिः सुमृडी को भव  
तु विश्ववेदाः। बाधतां द्वेषोऽश्मयं कृणेतु सुवीर्य  
स्य पतयः स्याम ॥४८॥

इन्द्र अन्नों करि शोभन सुखकारी होवे। कैसा इन्द्र कि सुत्रामा (म  
भले प्रकार त्राण करता है)। स्ववान् (धनवान्) विश्ववेदा (सब ध  
न जिसका बोह) और वोह इन्द्र दौर्भाग्य को निवर्त करे। और आ  
भय करे। किंच इन्द्र के प्रसाद से हम सुवीर्य धन के स्वामी होवें

शोभनवीरों पुत्रादिकों के अर्थहित तिस सुवीर्य के ॥५१॥

तस्य वयं सुमनो यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्या-  
म। स सुत्रामा स्ववा ॥ इन्द्रोऽस्मेऽग्राचि द्वे-  
षः सनुतर्पु योतु ॥५२॥

हम तिस इन्द्र के शोभन बुद्धि में हों भद्र (कल्याणरूप) शोभन मन  
में हों अर्थात् इन्द्र हमारे विषे सुमति और मन भद्र करें। कैसे  
इन्द्र के कि यज्ञसम्पादक सुरक्षक धनवान् ब्रह्म इन्द्र हमसे  
दूर में वर्तमान हो भाग्य को अन्तर्हित कर के पृथक् करें ॥५२॥

आ मन्दैरिन्द्र हरिभिर्योहि मयूर रोमभिः। मात्वा के  
चिन्त्रियमन्वि न पाशिनोऽति धन्वैव तां ॥ इहि ॥५३॥

विश्वामित्र दृष्टा ब्रह्मती। आमन्दैः एवेत् अनयोर्विनि यो गाभावः।  
हे इन्द्र तू हरी अश्वों करि आ कैसें करि कि गम्भीरनाद मयूर के से रे  
म जिन्हों के तिन मयूर सम वर्ण करि। किंच कोई दुष्ट लोग आते हू  
ए तुम्हें न बाँधें तत्र दृष्टान्तः पाशहस्ता व्याधिलोग जैसे पक्षियों को  
बाँधते हैं तैसे तुम्हें न बाँधें और जे परियन्ही लोग हों वे तिन्हें अतिक्रम-  
ण करि आ कैसें कि धन्व-निरुद्धक देशः जैसे पान्य मरुदेश को  
अतिक्रमण करि चलते हैं तैसे आ ॥५३॥

एवेदिन्द्र वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासोऽभ्युर्चन्त्य  
कैः। स न स्तुतो वीरवद्धातु गोमधूयं पातस्वस्ति  
भिः सदानः ॥५४॥

वसिष्ठदृष्टा। वसिष्ठापत्यानि मुनयः अर्को (मन्त्रों) से एवमेव इ

इन्द्र को पूजते हैं कैसे इन्द्र को कि वर्षितार वज्र बाहू तिसै वोह इन्द्र  
स्तुति किये सन् पुत्र युक्त गोसंयुक्त धन हमारे अर्थ देवै। एवं पाद त्र  
येणेन्द्रं स्तुत्वा ऋत्विज आह-हे ऋत्विजः तुम अविनाशों करि स  
र्वदा हमें रक्षा करो ॥ ५४ ॥

अथ होत्रं विपशोः

अ० ७ समिद्धोऽग्नि रश्मिना तप्तो घर्मो विराट् सुतः। दुहे  
धेनुः सरस्वती सोमं ह्यशुक्रमिहेन्द्रियम् ॥ ५५ ॥

का० १४. ६. १५. समिद्ध इत्याद्याद्वादश अनुष्टुप् छन्दस्काः विपशुकी आशि  
ये (प्रयाजयाज्याएँ) हैं ॥ विदभिर्दृष्टा अश्वि सरस्वत्येन्द्र देवत्या आ  
प्री संज्ञा द्वादशानुष्टुभः। अश्विना वध्वर्यु देवानामिति तौ प्रतिहो  
ता आह-हे अश्विनी कुमारो अग्नि दीप्त (हविके जलाने समर्थ) है  
घर्म (प्रवर्ग्य) तप्त है विविधं राजमान सोम अभिषुत है किंच धेनुगुणों  
की प्रीणयित्री सरस्वती ने सोमको दुहा है कैसे सोम को कि शुद्ध इ  
न्द्र के अर्थ हित बल करने वाला। एता वता यज्ञ सम्पन्नि है तुमभी  
आओ इति भावः ॥ ५५ ॥

तनूपा भिषजा सुतेऽश्विनोभा सरस्वती। मध्वा रजा  
ह्यसीन्द्रियमिन्द्राय पृथिभिर्वहान् ॥ ५६ ॥

दोंनो अश्विनी कुमार सरस्वती मधु करि लोकों को दुहते हैं। कैसे  
अश्विनी कुमार कि शरीरों के रक्षा करने वाले वैद्य। क्सति। सोमे  
अभिषुते सति पूरते हैं। किंच अश्विनी कुमार सरस्वती इन्द्र के अर्थ  
वीर्य को यज्ञ मार्ग करि प्राप्त करने हैं ॥ ५६ ॥

इन्द्रायैन्द्रुं सरस्वती नराशुं सैन नग्नहम् । अघाता  
मश्विना मधु भेषजं भिषजा सुते ॥ ५७ ॥

सरस्वती नराशंस (यज्ञसहित इन्द्र के अर्थ सोम और सुराकन्द-  
धारण करते हुए किंच वैद्यों अश्विनी कुमारों के सोम अभिषुते स  
ति मधुर औषध धारण करते हुए ॥ ५७ ॥

आजुह्वाना सरस्वतीन्द्रायैन्द्रियाणि वीर्यम् । इडाभिर  
श्विनाविषुं समूर्जुं सठं रयिंदधुः ॥ ५८ ॥

इन्द्र को बुलाने वाली सरस्वती और अश्विनी कुमार इन्द्र के अर्थ  
इन्द्रिये (चक्षुरादीनि) देते और वीर्य (सामर्थ्य) देते हुए पशुओं स  
हित अन्न देते हुए दध्यादि और धन देते हुए ॥ ५८ ॥

अश्विना नमुचेः सुतुं सोमं शुक्रं परिस्तुता । सरस्व  
ती तमामरद्वर्हिषेन्द्राय पातवे ॥ ५९ ॥

इन्द्र के पानार्थ अश्विनी कुमार सुरा सहित अभिषुत अमलिन सो  
म को नमुचि असुर के सकाश से आहरण करते हुए और सरस्वती  
तिसही सोम को बर्हिषा स्तरणार्थ सहित आहरण करती हुई ॥ ५९ ॥

कवष्यो न व्यचस्वती रश्विभ्यां नदुरे दिशः । इन्द्रो नरो  
हसीऽनुभे दुहे कामान् सरस्वती ॥ ६० ॥

अस्यामुचित्रयो नकारश्चार्थाः । अश्विनी कुमारों सहित सरस्वती  
और इन्द्र दोनों द्यावा पृथिवीओं के सकाश से कामों को दुहते हुए द्वा  
रों और दिशाओं के सकाश से दुहते हुए कैसी द्वारों कि सच्छिद्राः श्व  
काशवत्यः ॥ ६० ॥

उषासानक्तमश्विनादिवेन्द्रं सायमिन्द्रियैः संजाना  
ने सुपेशसा समञ्जाते सरस्वत्या ॥ ६१ ॥

हे अश्विनी कुमारे रविप्रभा और रात्रि सरस्वति सहित दिवस और  
र सायंकाल में इन्द्र को वीर्यो सहित जोड़ते हुए। कैसे हैं ते कि ए  
कमती। शोभन हैं रूपजिन्हें के शुक्ला उषा कृष्णा रात्रिः ॥ ६१ ॥

पातं नोऽश्विना दिवा पाहि नक्तं सरस्वति। देव्या  
होतारं भिषजा पातमिन्द्रं सचा सुते ॥ ६२ ॥

हे अश्विनो दिवस में हमें रक्षा करो हे सरस्वति रात्रि में हमें रक्षा क  
रि। हे देव सम्बन्धि होता ओ वैद्य ओ अश्विनो सोमः भिषुते सति ए  
की होकर तुम इन्द्र को रक्षा करो ॥ ६२ ॥

तिस्रस्त्रेधा सरस्वत्यश्विना भारतीडो। तीव्रं परिस्रुता  
सोममिन्द्राय सुषुबुर्मदम् ॥ ६३ ॥

तीनों देवियों और अश्विनो सुर सहित सोम को इन्द्र के अर्थ अ  
भिषवन करते हुए। कौन तीनों कि सरस्वती भारती और इडा  
कैसी हैं कि तीनि प्रकार करि स्थिताः इति शेषः सरस्वती मध्यस्था  
ना भारती द्युस्थाना इडा पृथिवीस्थाना कैसे सोम को कि पदुत्व  
कर मदजनक को ॥ ६३ ॥

अश्विना भेषजं मधु भेषजं नः सरस्वती। इन्द्रे त्वष्टा  
यशः श्रियं रूपं रूपमधुः सुते ॥ ६४ ॥

अश्विना हमारे सरस्वती और त्वष्टा प्रयाज देवता सोम के अभि  
षुत होने पर इन्द्र में वस्तुओं को स्थापन करते हुए किन वस्तुओं

कों कि ओषध और मधुरूप ओषधकीर्ति लक्ष्मीनानाविधरूपको ॥६४॥

ऋतुधेन्द्रो वनस्पतिः शशमानः परिस्रुता। कीलालम-  
श्विम्या मधु दुहे धेनुः सरस्वती ॥६५॥

वनस्पतिः प्रयाजदेवः स्तुतिज्ञानसन् काल-कालमें सुरा सहित  
कीलाल (अन्नरस) को इन्द्र के अर्थ दुहते हुए किंच सरस्वती अश्वि-  
नी सहिता धेनु होकर इन्द्र के अर्थ मधु दुहती हुई ॥६५॥

गोभिर्न सोममश्विना मासरेण परिस्रुता। समधातुर्ह स-  
रस्वत्या स्वाहेन्द्रे सुतं मधु ॥६६॥

हे अश्विना मासर करि परिस्रुत सहित और गोप्रभृति पशुओं सहि-  
त अभिषुत सोम को और मधु इन्द्र विषें तुम आरोपण करते हुए  
हे स्वाहाकृतयः प्रयाजदेवाः तुम सरस्वती सहित इन्द्र विषें सोम  
मधु आरोपण करते हुए ॥६७॥

अ० ८ अश्विना हविरिन्द्रियं नमुचेर्धिया सरस्वती। आशुक्रमासु-  
राहसुमयमिन्द्राय जम्बिरे ॥६८॥

का० १४-६-१६-१० अश्विनेत्याद्यास्तिस्रस्त्रिंशत् वयानां क्रमाद्या-  
ज्यापुरोऽनुवाक्याः तत्प्रकारमाह अश्विनवपायागे अश्विनेति  
६० अनुवाक्या यमश्विनेति ६० याज्या सारस्वतवपायागे यमश्वि-  
नेति ६० अनुवाक्या तमिन्द्रमिति ६० याज्या ऐन्द्रवपायागे  
तमिन्द्रमिति ६० अनुवाक्या अश्विनेति ६० याज्येति सूत्रार्थः ॥  
एकैकाश्वि सरस्वतीन्द्र देवत्यास्तिस्रोऽनुष्टुभः। अश्विना और सर-  
स्वती ने बुद्धि करि के नमुचि असुर के सकाश से इन्द्र के अर्थ इत

नी वस्तुर्ह्ये आहरण कीर्त्तितनीकि अमलिन हविः इन्द्रिय(वीर्य) और मघ(महनीय)सुधन ॥६७॥

यमुष्मिना सरस्वती हविषेन्द्रमवर्धयन्। सविभेद बलं  
मुधं नमुचावासुरे सचा ॥६८॥

अश्विना और सरस्वती हवि करिके जिस इन्द्र को बढाते हुए वोह  
इन्द्र नमुचि असुर सहित मघ(महनीय बल मेघ) को विदारण क  
रता हुआ ॥६८॥

तमिन्द्रं पशवः सचाश्विनोभा सरस्वती। दधाना अभ्य  
नूषत हविषा यज्ञ इन्द्रियैः ॥६९॥

कर्माङ्गभूता पशवः गोमेखजाः दोनों अश्विनो और सरस्वती  
सहित एकी हो यज्ञमें हवि और वीर्य करि पुष्ट करते तिस इन्द्र को अ  
भ्य नूषत(बढाते) वास्तुत करते हुए ॥६९॥

य इन्द्र इन्द्रियं दधुः सविता वरुणो भगः ॥ स सुत्रामा ह  
विष्यतिर्यजमानाय सश्वत ॥७०॥

का० १४०. ६. १८. य इन्द्र इतितिस त्रयाणं पशु पुरोडाशानां या  
ज्यानुवाक्याः पूर्ववत् य इन्द्र ७०. सविता ७१. इत्येन्द्रस्यानुवा  
क्या याज्ये. सविता ७१. वरुणः क्षत्रम् ७२. इति सावित्रस्य ते वरुणः  
क्षत्रम् ७२. य इन्द्र ७०. इति वारुणस्येति सूत्रार्थः ॥ प्रत्येकमिन्द्र  
सवितृ वरुण देवत्यास्तिस्रोऽनुष्टुभः ॥ सविता वरुण भग इति जे  
तीनों देवता इन्द्र विषे वीर्य को स्थापन करते हुए। वोह हवियों का  
स्वामी शोभन त्राण कर इन्द्र यजमान को इष्टदान करि सुखी

करै ॥ ७० ॥

सविता बरुणे दधद्यजमानाय दाशुर्वे । आदत्तनमु  
चेर्वसु सुत्रामा बलमिन्द्रियम् ॥ ७१ ॥

सुत्रामा इन्द्र नमुचि असुरके सकाश सै जो वसु धन और बल  
वीर्य ग्रहण करता हुआ सविता बरुण और भग पशु पुरेडाशम  
नृदेवाः तिस नमुचि सै लाये वसादिको यजमान के अर्थ देवे  
कैसे यजमान कि हवि देनेवाले के अर्थ ॥ ७१ ॥

बरुणः क्षत्रमिन्द्रियं भगेन सविता श्रियम् । सुत्रामा  
यशसा बलं दधाना यज्ञमाशत ॥ ७२ ॥

बरुण सविता और सुत्रामा इन्द्र यज्ञ (सौत्रामणी) को आशत (भक्ष  
ण करते वा व्याप्त हुए) कैसे हैं ते कि क्षत्र (ज्ञान सामर्थ्य) वीर्य को भ  
ग्य सहित लक्ष्मी और यश सहित बल को यजमान में स्थापन क  
रते हैं तहां बरुण क्षत्र और वीर्य को स्थापन करता है सविता भगप्रिय  
को सुत्रामा यश और बल को इति विभागः ॥ ७२ ॥

अश्विना गोभिरिन्द्रियमश्वेभिर्वीर्यं बलम् । हविषेन्द्र  
रस्वती यजमानमवर्धयन् ॥ ७३ ॥

का. १४. ६. १४. अश्विना गोभिरिति तिस्रो हविषां याज्यानुवा  
क्याः न्यूर्ववत् अश्विना ७३. ता नासत्या ७४. इत्याश्विन पशु  
यामे पुरेऽनुवाक्यायाज्ये ता नासत्या ७४. ताभिषजा ७५ इति सा  
रस्वते ताभिषजा ७५. अश्विना ७३. इत्येन्द्रे इति सूत्रार्थः ॥ अश्वि  
सरस्वतीन्द्र देवत्यास्तिस्त्रोऽनुष्टुभः ॥ अश्विना और सरती इतने



पदार्थो करि इन्द्र और यजमान को बढ़ाते हुए। किन्हों करि नत्राह  
गो प्रभृति पशुओं इन्द्रिय पाटव अश्वों (दक्षिणारूपों) वीर्य (मनःसा  
मर्थ्य) बल (शरीर दार्ढ्य) और पशु पुरोडाश करि। इन्द्र का वर्धन नृत्ति  
और यजमान का वर्धन धन पुत्र पश्वादि पुष्टि ॥ ७३ ॥

ता नासत्या सुपेशसा हिरण्यवर्तनी नरा। सरस्वतीह  
विष्मतीन्द्र कर्मसु नोऽवत ॥ ७४ ॥

वे नासत्या (नहीं हैं असत्य) अश्विना और सरस्वती कर्मों (सौत्रा  
मण्यादियागों) में हमें रक्षा करें हे इन्द्र तू भी हमें रक्षा कर। कैसे  
नासत्या कि हिरण्य करि उषलक्षित है मार्ग जिन्हों का वे अर्थ  
तू जिस मार्ग में चलते हैं तहां सुवर्ण ही है। शोभन हैं रूप जिन्हों के  
और नराकार हैं। कैसी सरस्वती कि हविष्मती ॥ ७४ ॥

ता भिषजा सुकर्मणा सा सुदुघा सरस्वती। सवृत्रहा शत  
क्रतुर्गन्ता दधुरिन्द्रियम् ॥ ७५ ॥

वे षां ह वै अश्विनो और गोह प्रसिद्धा सरस्वती वोह प्रसिद्ध वृत्रहा  
इन्द्र कर्त्ता। सा सुदुघा (एतत्कल्प्यमव) के अर्थ वीर्य को धार  
ण करती। शत क्रतु ही राट्ट पाव रूप करि बहुधा होता है देवा  
नाम चिन्त्य शक्तित्वात्। कैसे वैद्य कि शोभन हैं कर्म जिन्हों के। कै  
सी सरस्वती कि साधु दोहना। कैसा वृत्रहा कि शत क्रतु बहु कर्मकर्ता  
वा शत संख्या ककिये हैं अश्व मेध जिसने ॥ ७५ ॥

युवर्धं सुरममश्विना नमुचावासुरे सचा। विप्रिपानाः  
सरस्वतीन्द्र कर्मस्वावत ॥ ७६ ॥

का० १६. ६. २०. तीनों पयो ग्रहों और सुराग्रहों की युवमिति पुरोऽनुवाक्या  
पुत्रमिवेति याज्या ॥ द्वे अश्वि सरस्वत्येन्द्रदेवत्येऽनुष्टुप्त्रिष्टुभौ । हेअश्वि  
नो हेसरस्वति तुमनमुचि असुर में वर्तमान सुरामय ग्रहको साथहीवि  
विधपान करतेहुए कर्म में इन्द्रको समन्तात् रक्षाकरौ ॥ ७६ ॥

पुत्रमिव पितरावश्विनो मेन्द्रावयुः काव्यैर्दृढं सनाभिः ।  
यत्सुराम व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वामघवन्ममि  
षाक् ॥ ७७ ॥

इयं व्याख्याता १०. ३४. ॥ ७७ ॥

यस्मिन्न्वास ऋषभास उक्षाणो वशा मेषा अवसृष्टा  
स आहुताः । कीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे हृदा मतिं  
जनय चारुमग्नये ॥ ७८ ॥

का० १६. ६. २१. पशोः सम्बन्धिनिस्त्रिष्टुक्कथागमें यस्मिन्न्वास इ  
ति पुरोऽनुवाक्या आहव्यग्न इति याज्या ॥ द्वे अग्निदेवत्ये जगतीत्रि  
ष्टुभौ । हे अध्वर्यो तिस अग्निके अर्थ मनो बुद्धि शुद्धे करौ कैसे अग्नि  
के अर्थ कि कीलालपे (अन्नरसकोपीनेवाले के) । सोमपृष्ठ (सोमकी  
आहुतियें होमियें हें) तिसके । शुभमति करनेवाले के । तिस किसके  
कि जिस अग्निमें एते पशवः अवसृष्टाः (अवदायावदाय चतुरव  
त्तेन निःक्षिप्ताः) तथा आहुताः (आदायादाय हुताः) के पशवः कि  
अश्वः ऋषभाः उक्षाणः (सेचनसमर्था वृषाः वा) वशाः (बन्धाः)  
मेषाः (अजाः) जिसमें एते पशवो हुताः तिसके अर्थ मनः शु  
द्धि करे इति हानुर्वीक्षम् ॥ ७८ ॥

अहाव्यग्ने हविरास्ये ते सुचीव घृतं चम्बूव सोमः।  
वाजसनिर्धं रयिमस्मे सुवीरं प्रशस्तं धैहि यशसं  
बृहन्तम् ॥ ७५ ॥

हे अग्ने तेरे मुखमें हवि सर्वतः होम करते हुए संतत होम दृष्टान्तः सुची  
व घृतम् जैसे सुचामें घृत सर्वदा स्थित चम्बा (अधिषवण चर्म) में सो-  
म जैसे सर्वदा स्थित तैसे में तेरे मुखमें हवि होमा। हे अग्ने सो-  
नू हमारे विषे ये वस्तुएं स्थापन करि। कौन कि वाजसनि (अन्न  
का भोग) सुपुत्र युक्त धनं सर्व लोक प्रसिद्ध यश वा सोम दे (यशो वै  
सोमो राजेति श्रुतेः ॥ ७५ ॥

अ० ७५ अश्विना तेजसा चक्षुः प्राणेन सरस्वती वीर्यम्। वाचेन्द्रो  
बलेनेन्द्राय दधुरिन्द्रियम् ॥ ७६ ॥

का० १५. ६. २६. ७. १-३. त्रयस्त्रिंशवशा ग्रह सादन के अनन्तर अ-  
ध्वर्यु का होता के पुरस्तात् प्रति गरार्थ उपवेशन कही तदाह प्रति  
गरिष्यति अध्वर्योः पुर उपविष्टे सति अध्वर्यु शो सावो ३ मिति बु-  
लाकर अश्विना तेजसा चक्षुः इत्येका दशर्च शस्त्रको शंसा करे  
प्रथम और अन्न की दोनों ऋचाएँ तीनि-तीनि बार शंसनीय हैं  
मध्यस्थ तीनों तृचों की आदिमें आहावः करिये ॥ प्रथमाश्वि स-  
रस्वत्येन्द्र देवत्यानुष्टुप्। अश्विनो तेजसहित चक्षु इन्द्रियेन्द्र के  
अर्थ देते हुए सरस्वती प्राण सहित वीर्य इन्द्र के अर्थ० और इन्द्र  
कल्यान्तरीण) वल सहित वाचा इन्द्र (एतत्कल्योत्य) के अर्थ० एवं अ-  
श्वि सरस्वतीन्द्रा इन्द्र के अर्थ० ॥ ७६ ॥

गोमदूषु एणसत्याश्वावद्यात मश्विना। वर्तीरुद्रा नृपाय्य  
म॥८१॥

गृत्समददृष्टा अश्विदेवत्यास्तिस्रो गायत्र्यः। हे नासत्यो अश्विना  
हे रुद्रौ (शत्रुओं के रुलाने वाले ओ) तुम मार्ग करि नृपाय्य (यज्ञ)  
प्रति आओ क्या करि के कि गो युक्त अश्व युक्त धन लेकर ॥८१॥

न यत्परो नान्तर आदधर्ष हृषणवसू। दुःशर्त्तुसोम  
त्यो रिपुः ॥८२॥

हे हृषणवसू (वृष्टि ही है धन जिन्हें कायदा वृष्टि करि के लोकों को  
स्थापन करते हैं) हे अश्विनो दुःशर्त्तुस (दुष्ट अपवाद को शंसाक  
रता शत्रुमर्त्यः (मनुष्यापरः असम्बद्धः अन्तरः सम्बद्धः स्वकीयो  
अपि ईदृशो मर्त्यः जिस इन्द्र को पराभव करने नहीं समर्थ है ॥८२॥

तान् आवोत मश्विना रयिं पिशंगसंहशम्। धिष्णावरि  
वो विदम् ॥८३॥

हे धिष्णो (धिष्णाग्निरूपो वाधाता) हे अश्विना तुम हमारे धन  
को लाओ। कैसे धन को कि पिशंगसंहश (पीतवर्ण सुवर्ण तथा  
वरिवो विदम् (धन को प्राप्त होता ॥८३॥

पावकानः सरस्वती वाजेभिर्वोजिनीवती। यज्ञं बभृक्षि  
यावसुः ॥८४॥

मधुच्छन्दो वृष्टाः सरस्वती देवत्यास्तिस्रो गायत्र्यः। सरस्वती हमारे  
यज्ञ को वष्टु (कामयताम् चाहें जो जिसे इच्छा करता है वो ह  
तिस प्रति आता है अर्थात् हमारे यज्ञ प्रति आवे। कैसी सरस्वती कि पा

वयित्री। वाजों (अन्त्रों) करि वाजिनीवती (अन्त्रहं विद्यमानजिसमें  
बोह वाजनी-यज्ञक्रिया-वाजनी विद्यमानहै जिससे बोह वाजि  
नीवती-यज्ञाधिष्ठात्री। धी (कर्म) करि वसु (धन) जिससे बोह धि  
या वसु ॥ ८४ ॥

चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्। यज्ञं दधे  
सरस्वती ॥ ८५ ॥

सरस्वती यज्ञ को धारण करती है। कैसी कि सूनृताओं (प्रियसत्य  
वचनों-वेदयत्री शब्दों) की प्रेरयित्री। शोभना बुद्धिओं की देने  
वाली ॥ ८५ ॥

महोऽऽर्णः सरस्वती प्रचेतयति केतुना। धियो विश्वा  
विराजति ॥ ८६ ॥

सरस्वती केतु (कर्मों वा यज्ञ) करि बड़े उदकों को चेताती (सबभू  
मि में वृष्टि कराती) है। किंच सर्वजन्तुओं की बुद्धि प्रकाश करती है  
निसे स्तुति करता हूँ ॥ ८६ ॥

इन्द्रायाहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः। अण्वीभिस्तनू  
धुतासः ॥ ८७ ॥

मधु इन्द्राया इन्द्र देवत्यास्तिस्रो गायत्र्यः। हे चित्रभानो (नाना  
विधा रीति यों वाले) हे इन्द्र तू आ। क्योंकि ये सोम अभिषुत हैं। कैसे  
हैं ये कि तुझे कामना करते। तथा अण्वीयी (अङ्गुलीयों) और त  
न (दशाधवित्र) करि शोधन किये। अर्थात् शोधिताः सुताः सोमा इ  
न्द्र हमें पीवे यह चाह करते हैं इस हेतु आ ॥ ८७ ॥

इन्द्रायाहि धियेवितो विप्रजूतः सुतावतः । उपब्रह्मा  
णि वाघतः ॥ ८८ ॥

हे इन्द्र अपनी बुद्धि करि प्रेरित हू आ (अनन्य प्रेरित) यहां आ। केसा  
हैं तू कि विप्रजूतः (मेधावियों करि सेवितः) किमिति आगन्तव्यमि  
ति चेत् कि सोमाभिषववान यजमान के ब्रह्माणि (हवियों) के समी  
पमें वाद्यतः (ऋत्विज) वर्तते हैं इति शेषः अर्थात् ऋत्विज हविर्ले  
के स्थित वर्तते हैं ॥ ८८ ॥

इन्द्रायाहि तूनुजान् उपब्रह्माणि हरिवः । सुते दधिष्व  
नश्चनेः ॥८४॥

हे हरिवन् हे इन्द्र तूनु जानः (त्वरमाणः) सन्तू हवियों प्रति  
आ। और जाके सोमे भिषुते सति हमारा चनः (अन्न) सोम  
रूप हवि उदर में धारण करि ॥ ८४ ॥

अश्विना पिवतां मधु सरस्वत्या सजोषसा । इन्द्रः सुवा  
मा वृत्रहा जुषन्तां सोम्य मधु ॥ ४० ॥

इति स र्द्धं हितायां नवमोऽनुवाकः ४

इति श्री शुक्लयजुषि माध्यन्दिनीयायां वाजसनेयसठं  
हितायां दीर्घपाठे विठंशोऽध्यायः ॥२०॥

अश्वि सरस्वतीन्द्र देवत्यानुष्टुप् । अश्विनौ मधुर स्वाद सोमको-  
पिये । कैसे अश्विनौ कि सरस्वतीसे प्रीतियन्तौ । किंच सुत्रामाभले  
प्रकार रक्षा करनेवाला वृत्रहा (वृत्रहन्ता) प्रोसाइन्द् और अश्विनौ  
सरस्वती मधुर सोममय हविको सेवन करें ॥४०॥

॥ अथ श्रीमद्भागवतसूक्तम् ॥

५० प्रश्ननाम  
निघ. २७

इति गिरिधरभाष्येन वमोऽनुवाकः

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीयशाखाध्येतव्याप्रपादान्च  
यविश्वामित्रपुराधिपश्रीमज्जयकिशोरदेववर्मात्मजैरेविमण्यन्  
पतिगिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये सौत्रामणिप्र  
करणे सेका सन्धादिहोत्रान्तवर्णेनो नामविर्ठशोऽध्यायः ॥२०॥

हरिः श्रीम्

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्बहुरूपकम्

स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः २१

अ० १ इमं मे वरुण शुची हव मद्या च मृडय। त्वामवस्युराच  
के ॥१॥

ओं नमो याज्ञ बल्क्याय

गिरिप्रसादसंज्ञेनाध्यायो वेदार्थदीपके

याज्यादिप्रेषणान्तोयमेकविंशः समीयते २१

का० १५. ७. १३. अवभृथेष्टि मे वरुण एक कपाल पुरोडाशकी इ  
मं मे पुरोऽनुवाक्या तत्त्वा याज्या ॥ हे वरुण देवत्ये गायत्री त्रिष्टुभौ  
शुनः शेष दृष्टे। हे वरुण तू मेरे इस आह्वान को सुनि। और आज  
के दिन में हमें सुरव करि। क्योंकि मैं तुम्हें चाहता हूँ। कैसा हूँ मैं कि  
अपनी रक्षा को तुम्हें इच्छा करता ॥१॥

तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशस्ते यजमानो

हविर्भिः॥ अहेडमानो वरुणेह वोध्युरुशर्त्तं स मानश्चा  
युः प्रमोषीः॥२॥

व्याख्याता १८०४८५॥२॥

त्वं नोऽग्ने वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेडोऽवयासि  
सीष्टाः॥ यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांश्चसि  
प्रमुं मुग्ध्यस्मत्॥३॥

का० १८०१७०१४० अवभृथेष्टिमें ही अग्निवरुणयागविषे पुरोऽनुवा  
क्यायाज्ये ३४॥ अग्निवरुणदेवत्ये त्रिष्टुभौ वामदेव दृष्टे। हे अग्ने  
तू हमारे प्रतिवरुण देवता का क्रोधनिवर्तकरि। किंच सब दोर्भाग्य  
हमारे सकाशसे दूरिकरि। कैसा तू कि अपने अधिकार को जानता।  
अति शयेन यष्टा। वह्नितमः (हवियों का बौद्धा। शोशुचानः (अ  
त्यन्त प्रकाशता॥३॥

सत्वं नोऽग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठोऽस्या उषसो  
व्युष्टो। अवयश्चनो वरुणर्त्तं रराणो वीहि मृडीकर्त्तं  
सुहवो न एधि॥४॥

हे अग्ने सो तू इस उषाके व्युष्टिकाल (इस दिन) में ऊती (अवन) रक्ष  
न करि हमारा रक्षक और नेदिष्ठ (समीपतम) हो। यद्वा अत्यन्तमव  
तमः। किंच रराणः हवियें देते सन् हमारे वरुण को पूजिततः सु  
ख करै हवि भक्षण करि। किंच हमारा सुहवः (स्वाह्वान) हो॥४॥

महीमूषु मातरर्त्तं सुज्जताना मुतस्य पत्नी मवसे जुवे  
म। तुविक्षत्रा मजरन्ती मुरुची च सुशर्मणमदिति



ठं सुप्रणीतिम् ॥ ५ ॥

का० १४.७.१५ आदित्यं चरुं यक्ष्यमाणो निर्वपत्यादित्यमीजा  
न इत्यादावन्ते चादित्यचरुः तिसकी सुत्रामाणमिति ईपु  
रोऽनुवाक्या मही मूषितियाज्या ॥ अदिति देवत्या त्रिष्टुप् । हमरक्ष  
करने योग्य अदिति (अदीना-देवमाता) को बुलाते हैं । कैसी अदि  
ति कि बड़ी को । सुब्रतां (शोभनकर्मा) की माता (निर्मात्री) को । ऋ  
त (यज्ञ) की पत्नी (पालयित्री) को । तुविक्षत्रा (बहुक्षत्रा-त्राणशी  
ला) को । जररहिता को । बहुगमनशीला को । सुशर्माण (शोभ  
न आश्रय वा सुखजिसका तिस) को सुप्रणीति (शोभनाप्रणीति-  
प्रणयन-भजनजिसका तिस) को ॥ ५ ॥

सुत्रामाणं पृथिवी द्यामनेह सठ्ठं सुशर्माणमदितिं सु  
प्रणीतिम् । देवीं नावथं स्वरित्रामनागसमस्त्रवन्तीमा-  
रुहेमा स्वस्तये ॥ ६ ॥

+ गयज्ञातगयस्मान्  
अदिति देवत्या गयप्लावदृष्टा । देवसम्बन्धिनी नाव यज्ञरूपा को  
स्वस्ति (कल्याण-अविनाश) के अर्थ हम आरोहण करें यज्ञक  
रि के स्वर्ग को जावें । कैसी नाव कि सुत्रामा । पृथिवी-विशाला । द्या  
(स्वर्गरूपा-स्वर्गहेतुभूता) । अनेहस (क्रोधरहिता) । यदालुप्तोपमा  
नम् पृथिवी जैसे पालयित्री स्वर्ग जैसे क्रोधरहिता । साधुसर  
णभूता । अदिति । सुप्रणीति (साधुप्रणेत्री) । स्वरित्रा (साधुकेन्दु  
वाला-प्रयाजादयो-रित्रस्थानीयाः) । अनागस (अनपराधा)  
अस्त्रवन्ती (अच्छिद्रा-दोषरहिता) ईदृशी नाव को आरोहण करूं ॥ ६ ॥

† अरित्रशब्दः कोन्दुवालवाचकः अरित्रं के निपातक इत्यभिधानात् अमर १.२.२७ ।

सुनावमारुहेयमस्रवन्तीमनागसम् । शतारित्राथस्व-  
स्तये ॥ ७॥

स्वर्गसम्बन्धिनी देवत्या गायत्री । तद्वै सर्व एव यज्ञो नोः स्वर्ग्येति-  
श्रुतेः स्वर्ग्यो नो र्यज्ञ एव । शोभनानाव यज्ञ रूपा कोऽविनाश (सं-  
सारसागरोत्तराणां) के अर्थ आरोहणकरं अर्थात् यज्ञकरं । कैसी  
को कि अछिद्रा । अनागस (सर्वेष्टदा । बहुकेन्दुवाला ऋग्यजुः सा-  
म करि ॥ स्मार्ते नावा रोहणे विनियोगोऽस्या ऋचः तथा च पारस्क-  
रगृ० ३. १६ ॥ ७॥

आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् । मध्वा रजो  
थंसि सुक्रतू ॥ ८॥

का० १४. ७. १६. अवभृथ सैनिकलि मैत्रावरुणी पयस्या करियजै  
इति जो पयस्या तिसकी आनो मित्रावरुणेति पुरोऽनुवाक्या प्रवा-  
हवेति याज्या ॥ मित्रावरुण देवत्याः गायत्री विश्वामित्रहृष्टा । हे मित्रा-  
वरुणो देवो हमारे गव्यूति (यज्ञमार्ग) को घृत करितुमसींचो यद्वा ग-  
वि (पृथिवी) में ऊतिं (अवनहेतुभूतक्षेत्रको) घृतैः (शुद्धोदक करि)  
सींचो । किंच हे सुक्रतू (शोभन हैं कर्मजिन्हों के हे सुकर्माणों) मधुक-  
रि लोकों को सींचो ॥ ८॥

प्रबाहवा सिस्रतं जीवसे न आनो गव्यूतिमुक्षतं घृतैर्न ।  
आ मा जने अवपतं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा ह-  
वेमा ॥ ९॥

मित्रावरुण देवत्या त्रिष्टुप् वसिष्ठहृष्टा । हे मित्रावरुणो हे तरुणो

(छिन्नजरसौ) हमारे चिरजीवन जीवनविघ्न निवारण के अर्थ बाहुएं प्रसारो। किंच हमारे गव्यूति (क्षेत्र) को घृत जल करि सींचो। तुम्हारे निष्पन्न धान्य करि यज्विन मुझे जनपद में तुम समन्तात् सुनाओ यह देओ यही में चाहता हूँ अर्थात् लोक में मुझे कहो। किंच तुम मेरे इन आह्वानों को अर्थात् सुनि के पूर्वोक्त करो ॥४॥

शं नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्कोः  
जम्भयन्तोऽहिं रुक्मं रक्षांश्च सनेम्यस्मद्यु यवन्न-  
मीवाः ॥१०॥

वाजे-वाजेऽवत वाजिनो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः  
अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देव-  
यानैः ॥११॥

१४.७.१७. पयस्या में वाजिनयाग है तहां शंन इति पुरेऽनुवाक्य  
वाजे-वाज इति याज्या ॥ व्याख्याते ४.१६.१८. ॥१०॥११॥

३.७.२ समिद्धोऽग्निः समिधा सुसमिद्धो वरेण्यः ॥ गायत्री छ-  
न्द इन्द्रियं त्र्यविर्गोर्वयो दधुः ॥१२॥

का. १४.७.१८. वायोधस पशु में समिद्धोऽग्नि रित्याद्या एकादश  
ऋच अग्नियें प्रयाजों की याज्या ॥ एकादश आग्नी अनुष्टुभः स्व-  
स्त्यात्रेयहृष्टा वयोधा इन्द्रो देवता। अग्नि गायत्री छन्द और गौये-  
तीनों इन्द्र में इन्द्रिय (वीर्य) वयः (सत्त्व अन्न वा आयु) देवें। केसा  
अग्नि समिधा प्रयाज देवता करि दीप्ति है और अति दीप्ति है प्र-  
याज घृत करि इति शेषः वरेण्य (सम्भजनीय) है। कैसी गौ कि त्र्यविः

(तीनि अवय अनुचरत्व करि जिसके वा + एक वर्ष छै महीने की ॥१२॥

तनूनपाच्छुचिब्रतस्तनूपाश्च सरस्वती। उषिाहा छन्द इन्द्रियं दित्यवाङ्मोर्वयो दधुः ॥१३॥

तनू(जल)कानपात्(नाती)अग्निः वातनू(गौओ)कानपात् घृत प्रयाजदेवता सरस्वती उषिावछन्द और गोये चारो इन्द्र विषे इन्द्रियं कैसा तनूनपात् कि शुद्ध है कर्म(ब्रत)जिसका। कैसी सरस्वती कि शरीरकी रक्षा करनेवाली। कैसी गौ कि दित्य हवि को बहती ॥१३॥

इडाभिरग्निरीक्षः सोमो देवोऽमर्त्यः। अनुष्टुप्छन्द इन्द्रियं पञ्चाविर्गोर्वयो दधुः ॥१४॥

इडा प्रयाजदेवता सहित अग्नि सोमो देवः अनुष्टुप्छन्द और गो ये पांचो इन्द्र विषे कैसा अग्नि किस्तुत्य कैसा सोम कि अमरणाधर्मा कैसी गो कि पांच अवय अनुचर जिसके वा दो वर्ष छै महीनेको ॥१४॥

सुबर्हिरग्निः पूष एवान्तस्तीर्णवर्हि रमर्त्यः। बृहती छन्द इन्द्रियं त्रिवत्सो गोर्वयो दधुः ॥१५॥

शोभन वर्हिः प्रयाजदेवता अग्निबृहती छन्द गो ये चारो इन्द्रिय और वय इन्द्र में स्थापन करें। कैसा अग्नि कि पूषा युक्तस्तीर्ण वर्हि ये जिसकी बौह अनश्वर। कैसी गौ कि तीनि बछड़े अनुचर जिसके वातीनि वर्ष की ॥१५॥

दुरो देवीर्दिशो महीर्जसा देवो बृहस्पतिः। पङ्क्तिः प्रछन्द इहे

न्द्रियं तुर्यवाङ्मोर्वयो दधुः॥१६॥

द्वारे देव्यः प्रयाजदेवता महती दिशा ऐं ब्रह्मादेवः बृहस्पति पङ्क्तिः छन्द चारि वर्ष की गौ ये छे देवता इस इन्द्र में इन्द्रिय और वय ररेवं॥१६॥

उषे यत्नी सुपेशासा विश्वे देवा अमर्त्याः॥त्रिष्टुप्छन्द इ

हेन्द्रियं पष्ठवाङ्मोर्वयो दधुः॥१७॥

दिवचनात् उषे दिन और रात्रि अमर्त्याः विश्वे देवाः त्रिष्टुप्छन्दः पष्ठ(भार) को वहती गौ ये पांच इन्द्र में ० कैसी उषे कि यत्नी (वडी) शोभन हैं रूप जिन्हों के॥१७॥

देव्या होतारा भिषजेन्द्रेण सयुजा युजा॥जगती छन्द इ

न्द्रियमनङ्गान्मोर्वयो दधुः॥१८॥

देव्यो होतारो प्रयाजदेवो (यह अग्नि और यह मध्यमो वायु) जगती छन्द अन(शकट)को वहते अनङ्गान्मोः ये चारो इन्द्र में ० कैसे होतारों कि वैद्यो इन्द्र के साथ सयुजो संयुक्तो युजो परस्पर संयुक्तो॥१८॥

तिस्र इडा सरस्वती भारती मरुतो विशाः॥विशट्छन्द

इन्द्रियं धेनुर्गौर्न वयो दधुः॥१९॥

इडा सरस्वती भारती तीनों प्रयाजदेव्यः मरुतो विशाः (इन्द्र प्रजाः) विशट्छन्द और धेनु (दोग्ध्री) गौ ये छे इन्द्र ०॥१९॥

त्वष्टा तुरीयो अद्भुत इन्द्राग्नी पुष्टि वर्धना॥द्विपदा छ

न्द इन्द्रियमुक्षा गौर्न वयो दधुः॥२०॥

त्वष्टा प्रयाजदेवः इन्द्राग्नी द्विपदा छन्द और उक्षा (सेक्ता) गौ ये पांच इन्द्र ० कैसा त्वष्टा कि तुरीय (पूर्ण व्याघ्र) अद्भुतः (महान्) कैसे इ

न्नाग्नी किं पुष्टि (धनादिषोष) के वटानेवाले ॥ २० ॥

शमिता नो वनस्पतिः सविता प्रसुवन्भगम् । कुकुच्छ-  
न्द इहेन्द्रियं वशा वेहद्वयो दधुः ॥ २१ ॥

वनस्पति प्रयाजदेव सविता (सूर्य) कुकुच्छन्द वशा (वन्ध्या) गोवे-  
हत् (गर्भघातनी) गोये पांच इन्द्र । कैसा वनस्पति कि हमार शमि-  
ता (सुखयिता) कैसा सविता कि भग (धन) को देता ॥ २१ ॥

स्वाहा यज्ञं वरुणः सुक्षत्रो भेषजं करत् । अतिछन्दा इ-  
न्द्रियं बृहद्वेषभो गोर्वयो दधुः ॥ २२ ॥

शोभनक्षत्र (क्षतत्राण जिसका) वोह वरुण स्वाहा (स्वाहाकृति प्रया-  
जदेवों) सहित यज्ञलक्षण औषध इन्द्र के अर्थ करें । किंच अतिछ-  
न्दा छन्द बडा ऋषभगोवरुण और स्वाहाकृतयः ये चारों इन्द्रिय  
और वय इन्द्र विषे देवें ॥ २२ ॥

अ० ३ वसन्तेन ऋतुना देवा वसवस्त्रिवृता सुताः । रथन्तरेण  
तेजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥ २३ ॥

का० १४. ७. २० वयो धस पशु में ही छै ऋचाएँ वपादिकों की याज्या  
नुवाक्याः तत्र वपायागे वसन्तेनेति २३ पुरोऽनुवाक्या । ग्रीष्मेणे-  
ति २४ याज्या । पशुपुरोडाशयागे वर्षाभिरिति २५ पुरोऽनुवाक्या ।  
शारदेनेति २६ याज्या । हव्यादियागे हेमन्तेनेति २७ पुरोऽनुवा-  
क्या । शैशिरिणेति २८ याज्येति सूत्रार्थः ॥ अनुष्टुभः षट् लिङ्गो  
क्तदेवताः वयोया इन्द्रे देवतेत्यर्थः । वसवो देवा इन्द्र विषे तेजस  
हित हवि (वपाख्य) और वय (शक्ति) स्थापन करें कैसे वसवः कि व

सन्त ऋतु त्रिवृत्स्तोम और रथन्तर पृष्ठ करि स्तुताः ॥२३॥

ग्रीष्मेण ऋतुना देवा रुद्राः पञ्चदशे स्तुताः ॥ बृहता

यशसा बलं हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥२४॥

रुद्र देवा इन्द्र में यश सहित बल हवि और वयस्थाप ॥ कैसे रुद्रा :

कि ग्रीष्म ऋतु पञ्चदश स्तोम और बृहत्पृष्ठ करि स्तुताः ॥२४॥

वर्षामि ऋतुना दित्या स्तोमे सप्तदशे स्तुताः ॥ वै रूपेण वि

शोमसा हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥२५॥

आदित्याः देवा इन्द्र में विश प्रजा और ओजसहित हवि ॥ कैसे

आदित्या कि वर्षा ऋतु सप्तदश स्तोम और वै रूप पृष्ठ करि स्तुताः ॥२५॥

शारदेन ऋतुना देवा एकविंश ऋभवस्तुताः ॥ वै राजे

न श्रिया श्रियं हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥२६॥

ऋभु संता देवाः इन्द्र में श्रिय हवि ॥ कैसे ऋभवः कि शरद ऋतु ए

कविंश स्तोम वैराज पृष्ठ और लक्ष्मी करि स्तुताः ॥२६॥

हेमन्तेन ऋतुना देवास्त्रिणवे मरुते स्तुताः ॥ बलेन शक्ते-

रीः सहो हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥२७॥

मरुतो देवाः इन्द्र में बल सहित इन्द्रिय सामर्थ्य हवि ॥ कैसे मरुतः कि हे-

मन्त ऋतु त्रिणव स्तोम शाक्वर पृष्ठ करि स्तुताः ॥२७॥

शैशिरेण ऋतुना देवास्त्रयस्त्रिंशोऽमृतास्तुताः ॥ सत्ये-

न रेवतीः क्षत्रं हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥२८॥

अमृता देवाः सत्य सहित क्षत्र (क्षतत्राण) हवि और वय (शक्ति) इन्द्र में

स्थापन करें ॥ कैसे अमृताः कि शिशिर ऋतु त्रयस्त्रिंश स्तोम रेवतपृ

घृकरिस्तुताः ॥ २८ ॥

अ० ४ होता यक्षत्समिधाग्निमिडस्य दे० अश्विनेन्द्रं सरस्वती-  
मृजो धूम्रो न गोधूमैः कुर्वन्ते भेषजं मधु शष्येर्न तेज  
इन्द्रियं पयः सोमः परिस्तुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य  
होत० र्यज ॥ २८ ॥

का० २४. ६. १४. होता यक्षत्समिधाग्निमिडस्य इत्यादयः द्वादश  
कण्डिकाएँ त्रिपशुकी प्रयाज प्रैषाहँ ॥ द्वादशाप्रीणां प्रयाज वाज्या  
नां प्रैषा अश्वि सरस्वतीन्द्रदेवत्या। होता यक्षत्समिधाग्निमित्यादि-  
सूक्ता ब्रूहीत्यन्ताः २४-६१ सर्वाणि यजूंषि इति हलायुधः २४. ३० एका  
धिका अत्यष्टि ४१. अ० ३० उ० प्रा० पं० ४८-५१. आर्ष्य स्त्रिष्टुभः व्यव  
हित पद प्राया ५१. अष्टि ६० धृतिः ६१ विकृतिरिति महीधरः। देव्यो (देवस्य  
मन्त्रि होता) समिधा प्रयाज देवता सहित अग्नि अश्विनी कुमार  
इन्द्र और सरस्वती को इडः पद (गोपद आहवनीय) विषे यक्षत् (यज  
तु यजे)। तिसयाग में अज और धूम्र (मेष) गोधूमों (गेंहुओं) कुव  
लों (वेरों) और शष्यों (अद्भुत ब्रीहियों) सहित ओषध होता है इ  
न्द्र के अर्थ इति शेषः कैसा ओषध कि मधुर तेजः प्रद इन्द्रिय साम  
र्थ्य प्रद। किंच ते अश्वि सरस्वतीन्द्रा देव्य होता करि इज्यमानाः स  
न्तः पय मदिरा सहित सोम घृत और मधु को पिये हे होतः (मनुष्य  
होतः) तूभी अश्व्यादिकों के अर्थ आज्य को दे ॥ २८ ॥

होता यक्षत्तनूनपात्सरस्वतीमविर्मेषो न भेषजं पृथा  
मधुमता भरन् अश्विनेन्द्राय वीर्यं वदरैरुपवाकाभिर्भेष-

गोपदेव्याप्यतः इत्यभिप्रायेणेदेवचनम्



जं तोक्मभिः पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्य  
स्य होतुर्यज ॥ ३० ॥

देव्यो होता तनूनयात प्रयाजदेव सरस्वती अश्विनौ और इन्द्रकोय  
जै। तत्र यागे अवि(अज) और मेष रसवता यज्ञ मार्ग करि आत्मा-  
को लाते सन् वदरीफलों इन्द्रयवों तोक्मों (अङ्कुरित ब्रीहियों वा प-  
वों) सहित वीर्यकर औषध होता है। अश्वि सरस्वतीन्द्रा देव्यहोता  
करि इज्यमान पय आदिको पियें हे होतः तूभी आज्यको दे ॥ ३० ॥

होता यज्ञन्वरा श्रुतं न नग्नहुं पतिर्हं सुरया भेषजं  
मेषः सरस्वती भिषग्रथो न चन्द्यश्विनौ वर्षा इन्द्रस्य  
वीर्यं वदरैरुपवाकाभिर्भेषजं तोक्मभिः पयः सोमः  
परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतुर्यज ॥ ३१ ॥

देव्यो होता नरा शंस प्रयाजदेव सरस्वतीको और भिषज अश्विनीकुमारों  
के रथ को यजै के सारथ कि सुवर्णमयः + तहां सुरा सहित नग्नहुः  
(किएवः) मेषः तीनों पशुओं की वया वदर इन्द्रयव और तोक्माओं  
सहिता इन्द्रका वीर्यकर भेषहो। अश्व्यादयः पय आदीनि पियें हे  
होता आज्यको दे। के सा नरा शंस कि पालक ॥ द्वितीयो भेषज शब्द  
आर्षः ॥ ३१ ॥

होता यक्षदिडेडित आजुह्वानः सरस्वतीमिन्द्रं बलं  
न वर्धयन्नुषभेण गवैन्द्रियमश्विनेन्द्राय भेषजं य-  
वैः कर्कन्धुभिर्मधु लाजैर्न मासरं पयः सोमः परिस्रुता  
घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतुर्यज ॥ ३२ ॥

रथमयागे अश्विनौ वन इन्द्राय अग्रायुधं वाहनं  
कायं सतीत्यस्यैव इन्द्राय तमेव तस्मै तविन्द्या  
नस्यात्मा बहुधा हि स ॥

देव्यो होता इडा प्रयाज देवता को सरस्वती इन्द्र और अश्विनो को यज्ञेया  
करिकैकि ऋषभ और गोधेनु और बल करि इडादिकों को वताता यज्ञे  
कैसा होता कि ऋत्विजों करि मृत इडादिकों को बुलाता। तत्र यवोंक  
कन्धुओं और लाजाओं सहित मधु और मासर (ओदन कानिः साव)  
इन्द्र के अर्थ वीर्य कर ओषध होता है। आश्व सरस्वतीन्द्रा होत्रेज्य  
माना पय आदीनि पियें और होताः तूयजि ॥ ३३ ॥

होता यक्षद्वर्हिस्त्वा मदा भिषङ्गा सत्या भिषजाश्विना  
श्वा शिशुमती भिषभेनुः सरस्वती भिषगुह इन्द्रा  
य भेषजं पयः सोमः परितुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्य  
स्य होत र्यज ॥ ३३ ॥

देव्यो होता ऊर्णजैसं मदीय वर्हि प्रयाज देव को वेद्यो सत्य रूपों अ  
श्विनो और सरस्वती को यज्ञे। तत्र शिशुमती अश्वा (बडवा) भिष  
क धेनुः और भिषक् इन्द्र के अर्थ ओषध दुहती (पूरती) है (अश्वा  
दयो दक्षिणा दीयन्ते। ते पय आदीनि पियें होता यजि ॥ ३३ ॥

होता यक्षद्वुरो दिशः कवप्यो न व्यचस्वतीरश्विभ्यां  
न दुरो दिश इन्द्रो न रोदसी दुधे दुहे धेनुः सरस्वत्य  
श्विनेन्द्राय भेषजं शुक्रं न ज्योतिरिन्द्रियं पयः सोमः  
परितुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होत र्यज ॥ ३४ ॥

देव्यो होता द्वारः प्रयाज देवीः को और इन्द्र सरस्वती अश्विनो को  
यज्ञे कैसी है द्वार + कि दिशा ऐसे साव काशाः कवप्यः (समुषिण)  
अत एव व्यचस्वतीः (गमन वत्यः) दिक् तुल्या द्वार अश्विनीकु

द्वार शब्दस्य सम्प्रसारणम्

मारों सहिता सती रोदसी (द्यावापृथिवीओं) के सकाश सै इन्द्र के अर्थ  
दुहती कैसी रोदसी कि दुधे दुहे। और सरस्वती धेनु होके इन्द्र के अर्थ  
शुद्ध ज्योति और वीर्य दुहती। अन्यदुक्तम् ॥ ३४ ॥

होता यक्षत्सुपेश सोषे नक्तं दिवाश्विना समञ्जाते सरस्व  
त्या त्विषिमिन्द्रे न भेषजं श्येनो न रजसा हृदाश्रिया  
न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य  
होतर्यज ॥ ३५ ॥

होता सुपेशसा सुरूषे उषे (रातिदिन) प्रयाजदेवों और सरस्वती स-  
हित अश्विनी कुमारों को यजै। और तो अश्विनो राति और दिन में  
रज (ज्योति) और चित्त श्रिय सहित मासर रूप ओषध और श्येन प-  
त्र कान्ति को इन्द्र में जोड़ते। ते पय आदीनि पिये हे होतः तूयजि ॥ ३५ ॥

होता यक्षदैव्या होतारा भिषजाश्विनेन्द्रं न जागृवि दिवा  
नक्तं न भेषजैः शूषं सरस्वती भिषक् सीसेन दुह इन्द्रि  
यं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्य-  
ज ॥ ३६ ॥

दैव्यो होता दैव्यो होतारो (अयं चाग्निरसौ च मध्यमः) इन्द्र प्रयाजदे  
वों को और भिषजों अश्विनो इन्द्र को यजै। भिषग्भूता सरस्वती भे-  
षजों सहित शूष (बल) और वीर्य को सीसा करिके दुहती कैसी सर-  
स्वती कि दिन राति जागरण शीला (स्वकार्य सिद्धाव प्रमत्ता) अ-  
श्व्यादयः पय आदी ॥ ३६ ॥

होता यक्षत्सो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधा तवोऽपसो रू

पमिन्द्रे हिरण्ययमश्विनेडा न भारती वाचा सरस्वती-  
मह इन्द्राय दुह इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु  
व्यन्त्वा ज्यस्य होत यजे ॥ ३७ ॥

देव्यो होता इडा भारती और सरस्वती तीनों प्रयाजदेवियों इन्द्र और  
र अश्विनो को यजै। जो सरस्वती वाचा (त्रयीलक्षणा) करि ओषध-  
और द्योतमानरूपतेज और इन्द्रिय इन्द्रके अर्थ दुहती। क्या करिके  
कि त्रयस्त्रिधातवः (तीनों पशुओं करि तीनों यातु हैं प्रधानाङ्गोपपन्न  
क्षणाः प्रकाराजिन्हों के)। कैसे पशवः कि अप्सः कर्मवन्तः। तीनों  
पशुओं ज करि भेषज रूप इन्द्रिय महंसि इन्द्रके अर्थ दुहती। सिष्टं  
समानम् ॥ ३७ ॥

होता यक्षत्सुरेतसमृषभं नर्यापसं त्वष्टारमिन्द्रमश्विनो  
भिषजं न सरस्वतीमोजो न जूतिरिन्द्रियं वृको न रभसो  
भिषग्यशः सुरया भेषजं श्रिया न मासरं पयः सोमः  
परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वा ज्यस्य होत यजे ॥ ३८ ॥

होता त्वष्टार प्रयाजदेवको इन्द्र अश्विनो सरस्वती और भिषज को य  
जै। कैसे त्वष्टार कि सुरेतस (शोभन वीर्य वृष्टि लक्षण जिस का वा  
युरुष के रेतः कारण भूत) वर्षितार नरों के अर्थ हित कर्म जिस का  
तिसै। केन यजतु तदाह रभसः (सोद्यमः) भिषक् (वेद्यभूत) जो वृको  
तिस करि और सुरा करि और भेषजो मासर तिस करि यजै। एवं  
च यागे ओज तेज जूति (वेग) वीर्य और श्री सहित यश इन्द्रमें हों  
इति शेषः। शिष्ट मुक्तम् ॥ ३८ ॥

पमिन्द्रे हिरण्ययमश्विनेडा न भारती वाचा सरस्वतीमोजो न जूतिरिन्द्रियं वृको न रभसो

भिषग्यशः सुरया भेषजं श्रिया न मासरं पयः सोमः

होता यक्षद्वनस्पतिर्ऋषितारर्ऋषतक्रतुं भीमं न मन्यु  
र्ऋराजानं व्याघ्रं नमसाश्विना भामर्ऋसरस्वती भिषगिन्द्र  
य दुहः इन्द्रियं पयः सोमः परित्सुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्य  
स्य होत र्यज ॥ ३६ ॥

देव्यो होता वनस्पति प्रयाजदेव को व्याघ्र विशेषेण जिघ्रति ऐसे राजन  
शतक्रतु इन्द्र अश्विनो और सरस्वती को अन्नकरि यजे कैसे वन  
स्पति कि पूपरूपेण पशुओं के संस्कर्तार भयंकर क्रोधात्मा को। वै  
द्यरूपा जो सरस्वती इन्द्र के अर्थ क्रोध और वीर्य दुहती। ते वनस्प  
त्यादय पय आदी ॥ ३६ ॥

होता यक्षदग्निं स्वाहाज्यस्य स्तोकानां स्वाहा मेद  
सां पृथक् स्वाहा छागमश्विभ्यां स्वाहा मेषर्ऋसरस्व  
त्यै स्वाहा ऋषभमिन्द्राय सिंहाय सहसः इन्द्रियं  
स्वाहाग्निं न भेषजं स्वाहा सोममिन्द्रियं स्वाहेन्द्रर्ऋ  
सुत्रामारर्ऋसवितारं वरुणं भिषजां पतिं स्वाहा व  
नस्पतिं प्रियं पाथो न भेषजं स्वाहा देवा आज्यपा  
जुषाणो अग्निर्भेषजं पयः सोमः परित्सुता घृतं मधु  
व्यन्त्वाज्यस्य होत र्यज ॥ ४० ॥

होता अग्निं प्रयाज देव वा आहवनीय को यजे। किंच घृत के स्तोको  
(विन्दुओं) को स्वाहा (सुष्टु आह-शोभन कहता है) यजमान इति शेषः।  
मेदसां-वपासम्बन्धि मेदों को भलेहें यह पृथक् कहता है। अ  
श्विनीकुमारों के अर्थ छाग को शोभन कहता है। सरस्वती के अ

र्थ मेष को शोभ०। इन्द्र के अर्थ वीर्य प्रद ऋषभ को शोभ० कैसे इन्द्र  
कि सिंह तुल्य शत्रुओं के अभिभवित्र तथा बलात्मक के अर्थ। और  
मेषज (हितकारिण) अग्निको शोभ०। और वीर्य प्रद सोम को शोभ० एता  
वग्नी वोमा वाज्यभागो सु आहेत्यर्थः। सुत्रामा इन्द्र को सविता को  
और वेद्यों के यति वरुण को शोभ० यशुपुरोडाश देवताः सु आहेत्य  
र्थः। प्रिय (इष्ट) पाथ (अन्नभूत) और मेषज यशुदेवता के वनस्पति प्र  
याज देव को शोभ०। आज्यपा देवताओं को शोभ०। मेषज (ओष  
धभूत) को सेवमान अग्नि अश्वि सरस्वती और इन्द्र दैव्य होता-  
करि इज्यमानाः पय आ०॥४०॥

अ०५ होता यक्षदश्विनौ छागस्य वपाया मेदसो जुषतां हविर्हो  
तर्यजे। होता यक्षत्सरस्वती मेषस्य वपाया मेदसो जुष-  
तां हविर्हो तर्यजे। होता यक्षदिन्द्र मृषभस्य वपायामे  
दसो जुषतां हविर्हो तर्यजे॥ ४१॥ + हो-जा अ०६० उ०॥४१॥

का०१६६२२ होता यक्षदश्विनौ छागस्य होता यक्षत्सरस्वती मेष  
स्य होता यक्षदिन्द्रस्येति एक कण्डिका में तीनों वपाओं की क्रम से  
प्रेषा है॥ सप्तलिङ्गोक्त देवता ४१-४५। दैव्यो होता अश्विनो को यजे  
इज्यमानो तो अश्विनो छाग की वपा का मेध सम्बन्धि हवि (स्निग्धभा-  
ग) सेवन करें हे होतः यजि॥१॥ होता सरस्वति को यजे वोह मेष की  
व०॥२॥ होता इन्द्र को यजे वोह इन्द्र ऋषभ की व०॥३॥४१॥

होता यक्षदश्विनौ सरस्वतीमिन्द्रं सुत्रामाणमिमे सो  
माः सुरामाणश्छागेन मेधैर्ऋषभैः सुताः शब्धैर्न तोक्म

+ प्रयाजानुयाजा वै देवा आज्यपाः। स्वाहेति क्रियाया यजमानः कर्ता देवा ह वा ऊचुर्ह  
न्त विजितमेवानु सर्वं यज्ञं संहस्थापयेत्युपक्रम्य तत उत्तमे प्रयाजे स्वाहाकारेणैव  
यज्ञं समाप्त्यप्यन्नित्याहेति श्रुतेः समाप्तिवचनाः स्वाहाकारः।

मिलीजैर्महस्वन्तो मदा मासरेण परिकृताः शुक्राः पयः  
स्वन्तोऽमृताः प्रस्थिता वो मधुश्चुतस्तान्निविना सरः  
स्वतीन्द्रः सुत्रामा वृत्रहा जुषन्तां सोम्यं मधु पि  
बन्तु मदन्तु व्यन्तु होतुर्यज ॥४२॥

का० १४. ६. २३. होता यक्षदश्विनो सरस्वती मिन्द्रमिति चोथा ग्र-  
हों का प्रेष ॥ होता अश्विनो सरस्वती और सुष्टु रक्षितार इन्द्र को  
यजें। एवं होतारमुक्ताध्वर्यूनाह- हे अध्वर्यवः ये सोमाः तुम करि  
अभिषुतहें। कैसे सोमाः कि छागों में और ऋषभों से सुरामा-  
णाः (रमणीयाः वा सुरामयहें) तथा शब्धों तोक्यों और लाजाओं  
करि तेज युक्तहें। मदाः (तृप्त करतहें) पूर्वोक्त मासर करि अलंकृत  
शोचिष्मन्त। पययुक्त। अमृतकल्प। प्रस्थित होमाभिमुख चलित।  
और मधुस्त्राविहें। अश्विनो सरस्वती और सुत्रामा वृत्रहन्ता इन्द्रति  
न सोमों को सेवन करें सोम्य मधुके पियें मदन्तु (तृप्त हों) व्यन्तु (रा-  
जें वा हविभक्षण करें) हे होतः तूभी यजि ॥४॥ ४२॥

होता यक्षदश्विनो ब्राह्मणस्य हविष आनामद्य मध्यतो  
मेद् उद्धृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो यस्ता नूनं  
घासेऽज्ज्राणां यवसप्रथमानां सुमत्क्षराणां श-  
तरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्र-  
णितः शितामत उत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करत ए-  
वाश्विना जुषेतां हविर्होतुर्यज ॥४३॥

का० १४. ६. २४. चतुर्थे प्रेषा से आगे में पठनमाना (४१) होता यक्षद

अश्विनौ छागस्य हविष इत्याद्याः तीनों यथा लिङ्ग आश्विनादि हविर्या-  
गों की प्रेषा हैं ॥ दैव्यो होता अश्विनौ को यजे । तो इज्यमानो अश्विनौ  
छाग सम्बन्धि हविका + भक्षण करें । किंच आज दिन में उदर मध्यसे  
उद्धत मेद वपारूप को भक्षण करें कथमुद्धतं तत्राह यज्ञ के द्वेषाओं  
(असुरराक्षसों) से उठाये अर्थात् जवतक ते पराभव के अर्थ आवेति-  
स से पहिले ही उद्धत को तथा गृभः पौरुषेय्याः (इडा से पहिले उद्ध-  
त को) वपायामिडा प्रयोजनाभावात् कैसी गृभः कि पौरुषेय्याः  
पौरुषेयी ऋत्विगर्था तिस से ॥ तो अश्विनौ निश्चय अङ्गों का भक्ष-  
ण करें । कैसे अङ्गों कि यास (ग्रास) में अजरो (नवीनों) रुचिजनकों)  
का + तथा यवसों अन्नों के मध्य प्रथमों मुख्यों का (मांसत्वात् ए-  
तद्वै परममन्नाद्यं यन्मार्तं समिति श्रुतेः । सुमत्क्षरों (अपने आप  
क्षरतों) शतरुद्रियों (असंख्य हैं स्तुतिर्यै ऋजिन्हों की तिन बहुमन्त्रस्तु-  
तों का) अग्निकरि आस्वादितों अर्थात् पाककाल में पूर्व अग्निक-  
रि सुश्रुतों । पीवोपवसनों (स्थूलाङ्ग समीपस्थित सूक्ष्मों का) किंच पा-  
र्श्व प्रदेश कटि प्रदेश शिताम (बाहु प्रदेश ५) छेदन प्रदेश से । अङ्गा-  
दङ्गात् (प्रत्यङ्ग से) अवदानधर्मकरि गृहीतों अङ्गावयवों का अ-  
श्विनौ तिन्हें भक्षण करें इति पूर्व ए सम्बन्धः । एवं अश्विनौ हविः  
सेवन करें भक्षितावदानो तो करतः तस्मिन्मिति शेषः पुनर्वच-  
नमादराय । हे मनुष्य होतः त्वमपि यज ॥ ५ ॥ ४३ ॥

होता यक्षत्सरस्वती मेषस्य हविष आवयदद्य मध्यतो  
मेद उद्धतं पुरा देवोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घसेन्नु

कर्मणि यज्ञः

अश्विनौ निश्चय अङ्गों का भक्षण

रुद्र इति स्तो-  
त्र नाम मुनि-  
यं ० ३ १६  
रुद्र इति स्तो-  
त्र नाम मुनि-  
यं ० ३ १६



नं घासेऽप्रज्राणं यवसप्रथमानां सुमत्क्षराणां  
 शतरुद्रियाणामग्निघातानां पीवोपवसनानां पार्श्व  
 तः श्रोणिः शितामत उत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां  
 करदेवर्धं सरस्वती जुषतां हविर्होतुर्यज ॥४४॥  
 होता सरस्वती को यजै वोह सरस्वस्वती मेष का हवि भक्षण करै  
 अद्य मध्यतो मेद् इत्यादिव्याख्या पूर्ववत्। वोह अङ्गों को भक्षण  
 करै। एवं सरस्वती हवि सेवन करै और नृपिकरै। इत्येक वचनानि  
 अन्यदुक्तम् ॥६॥४४॥

होता यक्षदिन्द्रमृषभस्य हविष आवयद्य मध्यतो  
 मेद् उद्धृतं पुरा द्वेषोम्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घसेन्नु-  
 नं घासेऽप्रज्राणं यवसप्रथमानां सुमत्क्षराणां  
 शतरुद्रियाणामग्निघातानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः  
 श्रोणिः शितामत उत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां कर  
 देवमिन्द्रो जुषतां हविर्होतुर्यज ॥४५॥  
 होता इन्द्र को यजै वोह इन्द्र ऋषभ का भक्षण करै एवं इन्द्र हवि  
 सेवन करै इत्यन्तं पूर्ववत् ॥७॥४५॥

होता यक्षद्वनस्यतिमभि हि पिष्टतमया रभिष्ठया र  
 शनयाधित। यत्राश्विनोऽश्विनस्य हविषः प्रिया धामा  
 नि यत्र सरस्वत्या मेषस्य हविषः प्रिया धामानि य  
 त्रेन्द्रस्य ऋषभस्य हविषः प्रिया धामानि यत्राग्ने  
 प्रिया धामानि यत्र सोमस्य प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्य

सुत्राम्नाः प्रिया धामानि यत्र सवितुः प्रिया धामानि य  
त्र वरुणस्य प्रिया धामानि यत्र वनस्पतेः प्रिया पाथ  
श्चसि यत्र देवानां माज्यपाणां प्रिया धामानि यत्राग्ने  
र्हीतुः प्रिया धामानि तत्रैतान् स्तुत्येवोपस्तुत्येवोपा  
वस्त्रक्षद्रभीयस-इव कृत्वी करदेवं देवो वनस्पतिर्जुष-  
ताश्च हविर्हीतयेज ॥४६॥

का० १६. ६. २५. अन्तमें पढ़ा मानौ होता यक्ष वनस्पति मभि होता य  
क्षदग्निश्च स्विष्टकृतमिति क्रमेण वनस्पति याग और स्विष्टकृदा-  
गमें प्रेषो ॥ यूपो देवता। दैव्यो होता वनस्पति यूप को सर्वतः यजे  
जिस कारण वनस्पति रज्जु करिके धारण करता हुआ यशुओं को  
इति शेषः कैसी रज्जु कि अत्यन्त सुरूपा ॥ इदानीं वनस्पतिः प्राथ्य  
ते जहां अश्विनीः सम्बन्धि छागरूप हवि के प्रिय (दृष्ट) धाम (स्था-  
न) वर्ते हैं इति शेषः एवमग्नेऽपि जहां सरस्वती सम्बन्धि मेषरूप  
हवि के प्रिय० जहां इन्द्र सम्ब० ऋषभरूप० हवि प्रिय० एतेषां पशुदे-  
वानां स्थानानि। जहां अग्नि के प्रि० जहां सोम के प्रि० एतावाज्य-  
भागो। जहां सुत्राम्ना इन्द्र के प्रि० जहां सविता के प्रि० जहां वरुण  
के प्रि० एते यशु पुरोडाशदेवाः। जहां वनस्पति के प्रिय पाथ (अ-  
न्त) हैं। अथ जहां आज्यपा देवताओं प्रयाजयाज्याओं के प्रिय स्था-  
न हैं। जहां हीतुरग्नेः स्विष्टकृत के प्रि० स्था० हैं। एतान् छागादीन्  
पशुओं को रभीयस-इव + और अत्यन्त रक्षार करिके और प्र  
कर्षेण स्तुत और समीप में स्तुत करितिन पूर्वोक्त स्थानों में वन-

स्यति देवता उपावसक्षन् (स्थापन करै) वनस्पति देव एवं करत्-  
(करै) और हवि सेवन करै हे मनुष्य होतः तूभीयजि ॥४६॥

होता यक्षदग्निं स्विष्टकृतमया इन्द्राग्निं रश्मिनो अग्निं  
स्य हविषः प्रिया धामान्ययात् सरस्वत्या मेषस्य हवि-  
षः प्रिया धामान्यया इन्द्रस्य ऋषभस्य हविषः प्रि-  
या धामान्यया इग्नेः प्रिया धामान्यया सोमस्य प्रिया  
धामान्यया इन्द्रस्य सुत्रामाः प्रिया धामान्यया इति  
तुः प्रिया धामान्यया वरुणस्य प्रिया धामान्यया इन्द्र-  
स्यतेः प्रिया पाथां स्यया इन्द्राग्निं आज्यपानां प्रिया  
धामानि यक्षदग्नेर्होतुः प्रिया धामानि यक्षत्सं महि-  
मानमायजतामेज्या इषः कृणोतु सोऽध्वरा जात-  
वेदा जुषतां हविर्होतुर्यज ॥४७॥

स्विष्टकृतदग्निदेवता। होता स्विष्टकृतदग्नि को यजै जो अग्निः स्विष्ट-  
कृत अश्विनी कुमारेण सम्बन्धि अग्निरूप हवि को प्रियों स्थानों  
को अयात् (अयाक्षीत् इष्टवान्) अर्थात् अवदानों को यजता  
इष्टा एव मयै अपि सरस्वती० मेष० इन्द्र० ऋषभ० एता प्रधान  
देवताः। अग्निके प्रियधामों को अयात् सोमके प्रि० एता वाज्य  
भागो। सुत्रामा इन्द्र० सवितुः० वरुण० एताः पशुपुरेडाशदेवताः।  
वनस्पतेः० एतत्प्रधानाङ्गम्। आज्यपादेवा० एते प्रयाजानुयाजाः।  
होतुरग्नेः स्विष्टकृतः अपने ही प्रियधामों को इष्टवान्। स्व महिमानं  
अपनी विभूतिको इष्टवान्। किंच एज्या समन्तात् (यजने योग्या) या

गार्हापत्यः (सकामाप्रजा) आयजताम् (भलेप्रकारं यज्ञं अर्थात् या  
गशीला और यागयोग्या होंवे) वोह जात वेदा (स्विष्टकृदग्नि) अध्व  
रं (यज्ञों) को करें और हवि सेवन करें। हे मनुष्य त्वमपि यज ॥४७॥  
अ० ६ देवं बर्हिः सरस्वती सुदेवमिन्द्रे अश्विना । तेजो न चक्षु  
रक्ष्यो बर्हिषा दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु  
यज ॥४८॥

का० १६, ७, ८, ९ देवं बर्हिः सरस्वतीत्याद्या एकादश कण्डिकात्रि  
पशुओं के अनुयाजों की प्रैषा और याज्या होती है ॥ एकादशानुया-  
जप्रैषा अश्विसरस्वतीन्द्रदेवत्या । सुदेव (शोभना देवाजिसके वोह) जो  
बर्हिदेव (अनुयाजदेवता) तिसबर्हि सहित सरस्वती और अश्विनो  
इन्द्र में तेज दधुः (धारण करें) न (और) इन्द्र के नेत्रों में चक्षु इन्द्रिय  
धारण करें । वसुवनन (धनलाभ) के अर्थ और वसुधेयस्य (वसुनिधा  
नके अर्थ) अश्विसरस्वतीन्द्रा व्यन्तु (हवि भक्षण करें) हे मनुष्य हो  
तः त्वमपि यज ॥४८॥

देवीर्द्वारो अश्विना भिषजेन्द्रे सरस्वती । प्राणं न वीर्यं न  
सि द्वारो दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥४९॥  
जे द्वारो देवी (यज्ञगृहद्वारो देव्यो अनुयाजदेवाः) तिनद्वारों सहित अ  
श्विनो बैद्यो और सरस्वती इन्द्र में वीर्य और बल धारण करें इन्द्र की  
नासिका में प्राणेन्द्रिय और घ्राणेन्द्रिय स्थापन करें वसु वनेतिव्या  
ख्यातम् ॥४९॥

देवी उषासावश्विना सुत्रामेन्द्रे सरस्वती । बलं न वा

चमास्यः उषाभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्य-  
न्तुयज ॥ ५० ॥

उषासा देवी (नक्तोषसौ अनुयाजदेव्यो) तिन नक्तोषाओं सहित अश्वि-  
नो और सुत्रामा (शोभनरक्षयाकर्त्री) सरस्वती इन्द्र में बल को दधुः औ-  
र सुख में वागिन्द्रिय को दधुः वसित्युक्तम् ॥ ५० ॥

देवी जोष्टी सरस्वत्यश्विनेन्द्रमवर्धयन्। ओत्रं न कर्णे-  
योर्यशो जोष्टीभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य  
व्यन्तुयज ॥ ५१ ॥

जे जोष्टी सुख की सेवन करनेवाली अनुयाज देवी धावा पृथिवीएँ  
वा अहोरात्रे +) तिन जोष्टीओं सहित सरस्वती और अश्विनेन्द्रको  
वढाते हुए कथमवर्धयन् तत्राह इन्द्र में यश दधुः और कर्णों में ओ-  
त्र इन्द्रिय को दधुः वसु ॥ ५१ ॥

देवी ऊर्जाहृती दुधे सुदुधेन्द्रे सरस्वत्यश्विना भिषजाव-  
तः। शुक्रं न ज्योति स्तनयो राहृती धत्त इन्द्रियं वसुवने  
वसुधेयस्य व्यन्तुयज ॥ ५२ ॥

जोष्टोरेव देवता विकल्पः। जे देवी ऊर्जाहृती ऊर्जा (सरस्वती) आहुति  
आहुति वा आह्वान जिन्हें का ते दुहे (कामपूरके) सुदुधे (सुदोहने)  
तिन आहुतियों सहित सरस्वती और भिषजो अश्विनेन्द्रको  
रक्षा करते हैं कथम् तदाह ज्योतिः (तेज) इन्द्र में धारण करते हैं औ-  
र स्तनों में शुक्र इन्द्रिय रखते हैं वसु ॥ ५२ ॥

देवा देवानां भिषजा होता राविन्द्रमश्विना। वषट्कारैः

सरस्वतीत्विषिं न हृदये मतिर्हं होतुभ्यां दधुरिन्द्रियं व  
सुवर्ने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५३ ॥

देवताओं के देवों जो होतारों अनुयाज देवों तिन होतारों और वषट्कार  
सहित भिषजों अश्विनो और सरस्वती इन्द्र में त्विषि (कान्ति) रखते हृ  
दय में मति और बुद्धीन्द्रिय दधुः वसु ॥ ५३ ॥

देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवी रश्मिनेडा सरस्वती । श्रूषं न मध्ये  
नाभ्यामिन्द्राय दधुरिन्द्रियं वसुवर्ने वसुधेयस्य व्यन्तु  
यज ॥ ५४ ॥

जे तीनों देवियें भारती इडा सरस्वती तिन तीनों देवियों सहित अ  
श्विनो सरस्वती और इडा इन्द्र की नाभि और मध्यमें श्रूष बल औ  
र इन्द्रिय रखें वसु ॥ ५४ ॥

देव इन्द्रो नराशंसस्त्रिवरूथः सरस्वत्याश्विभ्यामीयते  
रथः । रेतो न रूपममृतं जनित्रमिन्द्राय त्वष्टादधदिन्द्रि  
याणि वसुवर्ने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५५ ॥

नराशंस देवोऽनुयाज रूपो यज्ञः । रेत (वीर्य) रूप (सौन्दर्य) अमृतजनि  
त्र (उत्तमजन्म) और इन्द्रिये इन्द्र के अर्थ रखें । कैसा नराशंस कि इन्द्र  
ऐश्वर्यवान् त्रिवरूथः तीनिवरूथः घरः सद हविर्याग आग्नीध्रजि

हं सके बोह) तथा त्वष्टा जगत्कर्ता । जिस नराशंस का रथ सरस्वतीओं

के ५ अश्विनी कुमारों से चलाइये है । वसु ॥ ५५ ॥

शोंवं

शेष

देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यपर्णेऽश्विभ्यां सरस्वत्यासु  
पिप्यल इन्द्राय पच्यते मधु । ओजो न जृतिर्ऋषभो न मा

मं वनस्पतिर्नो दधेदिः

यज ॥ १६ ॥

देयाणि वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु

वनस्पतिर्देवः हमारे को ओजतेज)जू.

ये स्थापन करे जो वनस्पतिर्युयः इन्द्र के ति (वेगाभाम (क्रोध) और इन्द्र  
हे इन्द्र के अर्थ फल दे। कैसा वनस्पति वि अर्थ मधुर फलपकता फलता  
ए पत्र पते हैं अश्विनी कुमार सरस्वती जि देवा जिसके हिरण्यमय प  
ल (शोभन फल) हैं। ऋषभः (पूज्य है) वसु ॥ १५ ॥ वनस्पति के सुपिप्प

देवं बर्हिर्बर्हितीनामध्वरे स्तीर्णं मश्विम् ॥

स्वत्या स्योनमिन्द्र ते सदः। ईशायै मन्युः ॥ मूर्ता मराः सर

षा दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज जानं बर्हि

हे इन्द्रः वारितीनां (जल में गति जिन्हों की तिन जलों झवा ओष ॥ १० ॥

की सम्बन्धि बर्हि हैं तेरे सदः सद में अध्वर (यज्ञ) में अश्विनी कुमारों

और सरस्वती करि आस्तुत हैं कैसी बर्हिः कि दीप्यमान ऊर्ण जैसे को

मल अत एव सुखरूप। किंच अश्विसर स्वत्यः बर्हिओं सहित दीप्य

न क्रोध और इन्द्रिय हे इन्द्र तुरु विषे ऐश्वर्य के अर्थ दधुः। वसु ॥ १५ ॥

देवोः अग्निः स्विष्टकृद्देवान्यक्षयथायथं होता रावि ॥ १५ ॥

मश्विना वाचा वाचं सरस्वती मग्निं सोमं स्विष्टं

स्विष्ट इन्द्रः सुत्रामा सविता बरुणो भिषगिष्टो देवो वन

स्पतिः स्विष्टा देवा आज्ययाः स्विष्टोः अग्निरग्निना हो

ता होत्रे स्विष्टकृद्दशो न दधेदिन्द्रिय मूर्जे मयचिति ॥ १५ ॥

धां वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ १८ ॥

स्विष्टकृत् (शोभनयाग को करता) अग्निर्देवः यथा यथं (जैसे जैसे) इष्ट  
व्य तैसैः वक्ष्यमाण देवतओं को इष्ट करे (यजै) । किन देवताओं को  
तदाह होता रहे (अयं चाग्निरसौ च मध्यमो वायुः होतु मैत्रावरुणो  
वा) इन्द्र और अश्विनो वाचा (मन्त्र) करि वाचा को सरस्वती अग्नि औ  
र सोम को यजै । किंच स्विष्टकृत् शोभनयज्ञकारी सुत्रामा शोभनर-  
क्षक इन्द्रस्विष्टः (सुष्टु इष्टः) सविता वरुण और भिषगिष्टः वनस्पति  
देवः इष्टः आज्यपादेवाः प्रयाजानुयाजाः स्विष्टाः अग्नि (अधिष्ठाता)  
अग्नि (भोम) करि हविर्द्धारस्विष्टः (सुष्टु इष्टः) । किंच होता देव्यः स्विष्ट  
कृत् मनुष्य होता के अर्थ यश इन्द्रिय ऊर्ज (अन्न) अपचिति (पूजा)  
स्वधा (पितरों के अर्थ अन्न) देवैः । वसुवनन और वसुधान के अर्थ देवा  
हविभक्षण करें हे मनुष्य होतः यजि ॥ ५४ ॥

अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन्पक्तीः पच  
न्पुरोडाशान्वध्नन् अश्विन्यां छागर्धं सरस्वत्यै मेषमिन्द्राय ऋ  
षभर्धं सुन्वन् अश्विन्यां सरस्वत्या इन्द्राय सुत्रामो सुरा  
सोमान्त्सूपस्था अद्य ॥ ५५ ॥

का० १४. ७. १०० अग्निमद्य होतारमित्यादि सूक्ता ब्रूहीत्यन्तः कण्डिका  
त्रयात्मकः सूक्तवाक में प्रैषः होता है ॥ लिङ्गोक्त देवतः सूक्तवाक प्रैषः ।  
यह यजमान आज अग्नि होतार को वरण करता हुआ क्या करिके  
कि पचाने योग्य हवियों को पचाके सामान्येनोक्ता विशेष माह पुरोडा-  
शों को पचाके अश्विनी कुमारों के अर्थ छाग को बाँधकर यूप में इति  
शेषः सरस्वती के अर्थ मेष को बाँध और इन्द्र के अर्थ ऋषभ को बाँ



ध तथा अश्विनौ सरस्वती और सुष्टुरक्षक इन्द्र के अर्थ सुर और सोमों को सुवाय अग्नि को वरण करता हुआ ॥ ५६ ॥

सूपस्था अद्य देवो वनस्पतिरभवदश्विभ्यां छागेन सरस्वत्यै मेषेणेन्द्राय ऋषभेणाक्षं स्तान्मेदस्तः प्रति पचता गृभीषता वीरुधन्त पुरोडाशैरपु रश्विना सरस्वतीन्द्रः सुत्रामा सुरसोमं स्वामद्य ॥ ६० ॥

आज वनस्पतिदेवः छागकरिके अश्विनी कुमारों के अर्थ सूपस्था अभवत् सुष्टु उपतिष्ठते सेवते सूपस्थाः छागकरि अश्विनी कुमारों की सेवा करता हुआ। मेषकरि सरस्वती के अर्थ सूपस्था होता हुआ ऋषभ करि इन्द्र के अर्थ सूपस्था हुआ वनस्पतिने छाग मेष ऋषभ करि अश्विनादिकों का उपस्थान किया। वोह कैसे जानात ह कहता है अश्व्यादयो मेदस्तः (मेद वषा को आरम्भ करितिन छागादिकों को भक्षण करते हुए। पुनः पक्व अवदानों को प्रतिग्रहण करते हुए। पुनः ते पुरोडाशों कर बढते हुए। किंच अश्विना सरस्वती और सुत्रामा इन्द्र सुरा सोमों वा सुरामय सोमों को पीते हुए ॥ ६० ॥

त्वामद्य ऋषः आर्षेयः ऋषीणां नपादवृणीतायं यजमानो बहुभ्य आ संगतेभ्य एष मे देवेषु बसु वार्यायक्ष्यत इति ता या देवा देव दानान्यदु स्तान्यस्मा ऽ आ च शास्वा च गुरस्वेषितश्च होतरसि भद्रवा व्याय त्रेषितो मानुषः सूक्तवाकाय सूक्ता ब्रूहि ॥ ६१ ॥

इति संहितायां षष्ठोऽनुवाकः ६

इति श्री शुक्ल यजुषि माध्यन्दिनीयायां बाजसनेयसर्गं हितायां  
दीर्घपाठे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

दैव्यो होताः अग्निरुच्यते। हे ऋषे (मन्त्रदृष्टः) हे अर्षेय यजमान अर्षेये  
व्रियते। हे ऋषियों के नपात् (पुत्र) यह यजमान बहुम्यः संगतेभ्यः  
(मिलित देवताओं के अर्थ) इस हेतु अथ तुम्हें ही भले प्रकार वरण क  
रता हूँ। यह क्या कि यह अग्नि मुझकरि देवताओं के अर्थ देने योग्य  
धन को ग्रहण करेगा। किंच हे देव अग्ने जिन तिन दानों को देवा देते ह  
एतिन दानों को इस यजमान के अर्थ इच्छा करि। दान के अर्थ उद्यम क  
रि। हे होतः तू इषित प्रेषित (प्रेरित) कथम् तदाह कि भद्रवाच्याय कह  
ने योग्य शुभवाणी के अर्थ अर्थात् भद्र कहि इति प्रेषित है। किंच सूक्ति  
यतू कहि इति सूक्तवचन के अर्थ और सूक्त कहिने को मानुष होता प्रे  
षित है ॥ ६१ ॥

॥ इति भाष्ये षष्ठाऽनुवाकः ६

श्री वेदार्थप्रदीपे नतमो हादिनिवारयन् पुमार्थं चतुरो देवाद्यज्ञदेवः सनातनः  
श्रीमच्छुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीयशाखाध्येतव्या घ्रादान्वयविश्वा  
मित्रपुराधिप श्रीमज्जयकिशोरदेववर्मात्मज ऐकिर्गण्य नृपतिगिरिप्रसादे  
नरचिते श्री वेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये सौत्रामणी प्रकरणे याज्या प्रेषा  
वर्णनो नामेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ॥ समाप्तोऽयं सौत्रामणीयागः

आदितोऽनुवाकसंख्याद्वाविंशः २१

इति सर्वानुक्रमणिभाष्ये गिरिप्रसादरचिते श्री वेदार्थप्रदीपे द्वितीयोऽध्यायः २  
ज्येष्ठमासे भले पक्षे दशम्यारविवासे ग्रहनेत्राङ्कभूवर्षे सौत्रमन्त्राः समागमन्  
अतः परं चतुर्भि रध्यायेः अश्वमेधो वार्यते

## अथःसंक्षेपतःसौत्रमन्त्राणसूचीपत्रम्

पृष्ठा	पङ्क्तिः	विषय	पृष्ठा	पङ्क्तिः	विषय
७०३	५	अथ सौत्रा मणी	७६८	८	द्वैकर्मसु अविनुयुक्ताः
७१२	८	ब्राह्मणेऽनुवाकः	७७०	५	अथ होत्रं त्रिपशोः
७१८	१४	सुरावन्तं चतुर्ऋचम्	७७०	६	समिद्धोऽग्निद्वादशाग्नी
७२१	२१	नवर्चपावमानम्	७७३	१३	वपानां याज्याऽनुवाक्याः
७२५	१	येसमानाश्चतुर्ऋचम्	७७४	१३	पशुपुरोडाशानां याज्यानुवाक्याः
७२६	२०	सोमवतां पितृणां षडृचः	७७५	१५	हविषां याज्यानुवाक्या
७२८	१३	बर्हिषदां पितृणां तृचः	७७६	२०	गृहाणां पुरोऽनुवाक्या याज्या
७३०	१८	अग्निष्वात्तानां पितृणां चतुर्ऋचः	७७७	४	स्विष्टकृद्वागे पुरोऽनुवाक्या
७३२	१०	आच्याजान्वित्यनुवाकः			याज्या
७३६	१	सोमो राजेत्यष्टर्चोऽनुवाकः	७७८	१०	अश्विना तेजसेति शस्त्रम्
७४०	५	सीसेन तत्रमित्यनुवाकः	७८२	१०	इमं मे एकादशर्चोऽनुवाकः
७४७	१२	क्षत्रस्येत्यनुवाकः	७८६	१४	समिद्धोऽग्नि एकादशाग्नी
७५३	१२	अवभृथः	७८८	१३	वपादीनां याज्याऽनुवाक्या
७५७	१७	अभ्यादधामीत्यनुवाकः	७८९	२	त्रिपशोः प्रयाज प्रेषा
७६०	२	यो भूतानामित्यनुवाकः	७८७	१०	वपादीनां प्रेषा
७६१	१५	इत्याध्वर्यवं समाप्तं अथ होत्रम्	८००	१७	वनस्पतिस्विष्टकृतोः प्रेषो
७६१	१६	समिद्ध इन्द्र एकादशाग्नी	८०३	४	त्रिपशोः याज्या प्रेषा
७६६	१४	वपानां याज्याऽनुवाक्याः	८०७	१२	सूक्तवाक प्रेषः
					इति सूचीपत्रम्

विश्वामित्रपुरीयनबलदुर्गस्थव्याघ्रपादप्रकाशकाशमयन्त्रालये मुद्रितम्  
विक्रमाब्दाः १८२८ शकाब्दाः १७४८ आवर्णमुक्ता बुधवारजेम् शान्तिः

हरिःॐ

चत्वारोऽध्यायाऽश्वमेधमन्त्रास्तेषां प्रजापतिर्ऋषिः

पञ्चात्मकं द्विरुपच साधने वैद्विरूपकम्  
स्वानन्ददायकं कृष्णब्रह्मरूपं परं स्तुमः॥

अ०१ तेनोऽसि शुक्रममृतमायुष्या आयुर्मे पाहि देवस्य त्वास  
वितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूषणो हस्ताभ्यामादेदे॥१॥†

नत्वा गमं चोग्रसेनं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम्  
वेदे चतुर्भिरिध्यायै रश्वमेधः समीर्यते

बाईसके अध्याय से ले पच्चीस पर्यन्त अश्वमेधके मन्त्र तिन्हों  
को प्रजापति ने देखा। सर्वकामा राजा का अश्वमेध यज्ञ तिसका  
फाल्गुण शुक्ला अष्टमी की आरम्भ है ॥

ओनमोयाज्ञवल्क्याय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके

अश्वमेधाहुतिर्नामद्वाविंशोऽध्याय इत्येते २२

का० २१. ४. चतुःसुवर्णनिर्मित आभरणविशेषनिष्क कोयजमानके कण्ठमें  
वाधते अश्वर्युते जो सिद्धमन्त्रको पढ़े और तिस निष्क को प्रातर्होम के अन्त में पूर्ण हु  
ति करि अश्वर्युके अर्थ देवै ॥ तेजोसीत्यस्य प्रा-अ० सौवर्णनिष्कं देवता  
हे निष्क तेज है आग्नेयत्वसै। शुक्रं- और अग्नि का वीर्य है अग्निर्हव  
यो मिदध्यावित्युपक्रम्य तासुरेतः प्रासि चतद्विरण्यमभवदिति  
श्रुतेः। अमृतं और वह्नितापमें अनुच्छिद्य (द्या) मानद्रवत्वाधिक  
रणत्व और दान करि अमृतत्व प्रदानसै हिरण्यदा अमृतत्वं भ  
जन्त इति श्रुतेः। आयुष्या आयुका पालन करने वाला गोपायिता  
अतः याचुना करता हूँ कि मेरी आयु की रक्षा करि यज्ञसमाप्ति प  
र्यन्त आयु को प्रार्थना करता हूँ ॥ का० २०. १. २०. देवस्य त्वेत्यादिसर  
मारपन्तीत्यन्तेन मन्त्रेण त्रयोदशारत्निदर्भमयी द्विगुणा अश्वं  
न्धनार्थं रशना (लेजु) को ले ब्रह्मन् अश्वमित्यादि तेन- राध्या समित्य  
न्त ४. अ० मन्त्रको ब्रह्माति कहै ॥ देवस्य त्वा व्याख्याता १. १०. आ  
द देति दे- अ० इयमपि व्याख्याता १. २४. ॥ २॥

इमामगृह्णान् रशनामृतस्य पूर्व आयुषि विदयेषु  
कव्या। सा नो अस्मिन्सुत आवभूव कृतस्य साम  
न्तरमारपन्ती ॥ २॥

संवत्सर यज्ञ पुरुष दृष्टा रशनादेवत्या त्रिष्टुप्। हमारे इस य

ज्ञ में ब्रह्म रशना उत्पन्ना। कैसीकि यज्ञ के प्रसार को कहती अर्थात् य  
ज्ञ प्रसार हो यह कहिती। वोह कौनकि यज्ञों में कुशल प्राप्तापत्यादिक  
जिस इस रशना को यज्ञ के पूर्व आयु के प्रारम्भ में ग्रहण करते हुए  
जो पूर्वोक्त गृहीता वोह रशना यहां उत्पन्न हुई इत्यर्थः ॥२॥

अभिधा असि भुवनमसि यन्तासि धर्ता। स त्वमग्निं वै  
श्वानरुं सप्रथसं गच्छ स्वाहाकृतः ॥३॥

का० २००१२०० तं बधान देवेभ्यः प्रजापतये तेन राधुहीति ४ इ० मन्त्र  
करि ब्रह्मा से आज्ञापाया अध्वर्युः अभिधा असी त्यादि स्वगात्वा देवे-  
भ्यः प्रजापतये इत्यन्तेन मन्त्रेण रशना से अश्व को बांधे ॥ लिङ्गोक्ता-  
नि यजूंषि अश्वो देवताद्यस्य। हे अश्व जो तू अभिधा और सबों का  
आश्रय है और नियमन कर्ता और जगत का धारण करने वाला है।  
एवंविधः तू स्वाहाकार करिके होमाहुआ अग्नि को प्राप्त हो। कैसे अ-  
ग्नि कि सवनरों के अर्थहित विस्तार सहित वा सर्वतः तिर्यगूर्ध्व और  
र अधः प्रयत ॥३॥

स्वगात्वा देवेभ्यः प्रजापतये ब्रह्मन् अश्वं भन्त्स्यामि देवे-  
भ्यः प्रजापतये तेन राध्यासमू। तं बधान देवेभ्यः प्रजा-  
पतये तेन राधुहि ॥४॥ + स्व-मू। अ० तं-हि। इ० ॥४॥

हे अश्व तुम्हें देवताओं और प्रजापतिके अर्थ आपही से चलने वा-  
ला करता हूँ इति शेषः ॥ ब्रह्मन् अश्वं सा-पं० ब्रह्म देवता ब्रह्माण्डमा-  
न्वयते। हे ब्रह्मन् देवताओं और प्रजापतिके अर्थ अश्व बंधन करता हूँ ति-  
स अश्व बंधन से कर्म समाप्ति रूपा सिद्धि को प्राप्त हों ॐ ॥ तं बधान अध्व

यु देवतं यजुः ब्रह्मा प्रसूति । हे अध्वर्यो जिसे बाँधता चाहता है तिस अध्व को देवताओं और प्रजापति के अर्थ बाँधि तिस अध्व बंधन से यज्ञ स माहित लक्षण सिद्धि को प्राप्त होगा ॥४॥

प्रजापतये त्वा जुष्टं प्रोक्षामिन्द्राग्निभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि वायवे त्वा जुष्टं प्रोक्षामि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि सर्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि योऽपर्वन्तं जिघोथ्सति तमभ्यमीति वरुणः । परोमर्तः परः श्वा ॥५॥ †

का. अ. १३. १. ततः अध्वर्यु तडागादिस्था जल विषे जाकर तिस जल से पांच मन्त्रों करि प्रतिमन्त्र से अध्व को प्रोक्षण करे ॥ लिङ्गोक्त देवतानि य. अ. १. या-नि. २. या-पं. ३. या-हृ. ४. ५. या-ज. ॥ हे अध्व प्रजापति के अर्थ प्यारे तुम्हें सींचता हूँ इस सींचने से प्रजापति के से वीर्य को अध्व में स्थापन करे ॥ तथा च श्रुति शत. १३. १. २. ५. प्रजापतिर्वै देवानां वीर्यवत्तमो वीर्यमेवास्मिन्दधाति तस्मादध्वः पशूनां वीर्यवत्तम इति ॥१॥ इन्द्राग्नी के अर्थ-हूँ इस से इन्द्राग्नी के से ओज को स्था-करे ॥ शत. १३. १. ३. ६. इन्द्राग्नी वै देवानां मौजस्वितमाऽओज एवास्मिन्दधाति तस्मादध्वः पशूनां मौजस्वितम इति ॥२॥ वायु के अर्थ-हूँ इस से वायु के से वेग को-करे ॥ शत. १३. १. २. ७. वायुर्वै देवानां माशिष्ठो जव मे वास्मिन्दधाति तस्मादध्वः पशूनां माशिष्ठ इति. आशिष्ठो वेगवत्तरः ॥३॥ विश्वे देवाओं के अर्थ-हूँ इस से अध्व में यश को-करे ॥ शत. १३. १. २. ८. विश्वे वै देवा यशस्वितमा यश एवास्मिन्दधा

ति तस्मादश्वः पशूनां यशस्वितम इति ॥४॥ सवदेवताओंके अर्थप्रि  
 यतुं प्रोक्षण करताहं। इससे सवदेवता अश्वमें स्थापन करे ॥ शत०  
 १३०१२४० सर्वेभ्यस्त्वा देवेभ्योजुष्टं प्रोक्षामीति सर्वा एवास्मिन्देवताः  
 अश्वे अन्वायातयतीति ॥५॥ का० २००२०१० शूद्रस्य वैश्यामं उत्पन्नं हु-  
 आ पुरुष अश्वर्यु करि प्रेरित चतुर्नेत्रं श्वानं रं रं रं के मुशालं सै हनन  
 कर्त्तुं सतियोऽश्वेन्तमित्यादि- वरुण इत्यन्त मन्त्र को यजमान अ-  
 तिपेटे ॥ गायत्री पूर्वार्धेऽश्वस्तुतिः परार्धे लिङ्गोक्तदेवता। जो अश्वन्त  
 अश्वको मारने की इच्छा करता वरुण तिस अश्वमारनेवाले को मारे ॥  
 का० २००२०२० परोमर्तः परः श्वा इति मन्त्रसे वेतस वृक्ष कृत कटक क-  
 रि मृतक श्वान को अश्व के नीचे जल में तिगड़े ॥ अश्व को मारने की  
 इच्छा करने वाला मनुष्य पराभूतः (अथस्पदं नीतः) नीचे पटक आओ  
 र श्वान परें किया अर्थात् श्वानरूपसे अश्व काहन्ता ही पराभूतः ॥३॥  
 अ० २ अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा पां मोदाय स्वाहा सवित्रे  
 स्वाहा वायवे स्वाहा विष्णवे स्वाहेन्द्राय स्वाहा बृहस्प-  
 ते स्वाहा मित्राय स्वाहा वरुणाय स्वाहा ॥६॥ +  
 का० २००२०३० ततः स्थावरजलके सकाशसे अश्वको अग्निके स-  
 मीपलाकर अग्नये स्वाहेत्येक कण्डिकात्मक अनुवाक करि प्रति मन्त्र  
 एकवार ग्रहण करी जिह्वासे स्तोकीय संज्ञा दश आज्या हुति होमें अथ-  
 वा अनुवाक को आवर्तन-आवर्तन करि सहस्र आज्या हुति होमें ॥  
 दश यजूर्हवि १०२४०५०६०७०८०९० दे-पं० ३०८० दे-ज० १०० दे-त्रि०  
 लिङ्गोक्तदेवतानि। अङ्गीतीत्यग्निः। सुनोतीति सोमः। अपांजलानां

+ अ-हा। अ० सी-हा। इ०। अ-हा। उ०। स-हा। ऋ०। व-हा। लृ०। वि-हा। आ०। इ-हा। ऊ०। मि-  
 हा। ऋ०। व-हा। लृ०॥६॥



मोदाय मोदयति हर्षयति मोदः। सूते सविता। वानीति वायुः। बेवेष्टि  
व्याप्नोति विष्णुः। इन्द तीन्द्रः। बृहतां वेदानां पतिर्बृहस्पतिः। मिधति  
स्मिधति मित्रः। वृणोति भक्तं भजते वरुणः। एताभिराहुतिभिरेतेभ्यो  
दशदेवेभ्योऽश्वददाति तथा च श्रुतिः १३.१.३.३ एतावन्तो वै सर्वे देवास्ते  
भ्य एवैनं जुहोतीति ॥ ६ ॥

अ० ३ हिङ्गाराय स्वाहा हिङ्गुताय स्वाहा क्रन्दते स्वाहा वक्रन्दाय  
स्वाहा प्रोथते स्वाहा प्रप्रोथाय स्वाहा गन्धाय स्वाहा प्राताय  
स्वाहा निविष्टाय स्वाहोपविष्टाय स्वाहा संदिताय स्वाहा  
बल्गते स्वाहा सीनाय स्वाहा शयानाय स्वाहा स्वपते स्वाहा  
जाग्रते स्वाहा कूर्जते स्वाहा प्रबुधाय स्वाहा विजृम्भमाणाय  
स्वाहा विचृताय स्वाहा संहानाय स्वाहोपस्थिताय स्वाहायना  
य स्वाहा प्रायेणाय स्वाहा ॥ ७ ॥

का० २०.३.३ हिङ्गाराय स्वाहेत्यादिकों के अर्थ उद्धार किये हुए दक्षिण  
ग्नि में प्रति मंत्र प्रक्रम संज्ञक उन्नं चास होमों को होमों ॥ अश्वस्ये को  
नपचाशच्चेष्टितानि (व्यापारा) कण्डिका द्वयात्मके नानुवाकेन द्वे  
यजुषि। हिङ्गाराय (हींसता गृहिकार) तिसके अर्थ स्वाहा (हविर्दत्तम् ॥ १ ॥  
हिङ्गुत (कियाजिसने हिङ्गार) तिस-त्तम् ॥ २ ॥ क्रन्दन् (बड़ा शब्द करता) ३  
अवक्रन्दन् (नीचे से बड़ा शब्द करता) ॥ ४ ॥ प्रोथन् (घास खाता) आफु  
र्रवोलता ॥ ५ ॥ प्रप्रोथ-प्रकृष्टेन प्रोथति ॥ ६ ॥ गन्धलेता ॥ ७ ॥ आघ्राण  
करता ॥ ८ ॥ निवेश करता ॥ ९ ॥ उपवेश करता ॥ १० ॥ सन्दित (खण्डन-  
टाप मारता) ॥ ११ ॥ बल्गन् (कूमता) ॥ १२ ॥ आसीनः-चुपचाप खड़ा ॥ १३ ॥

शयन करता ॥२४॥ सोताहुआ ॥२५॥ जायत ॥२६॥ कूजता ॥२७॥ प्रवुह ॥  
२८॥ जम्माईलेता ॥२९॥ विशेषेणदीप्तिमान् ॥३०॥ संगतशरीर ॥३१॥ उ-  
पस्थित ॥३२॥ अयतेअयनः-धरकरता ॥३३॥ अकृष्टमयतेकूदता-उकल-  
ता ॥३४॥ अ।

यते स्वाहा धावते स्वाहोद्गताय स्वाहोद्गताय स्वाहाशू-  
काराय स्वाहा शूकताय स्वाहा निषण्णाय स्वाहोत्थिता-  
य स्वाहा जवाय स्वाहा बलाय स्वाहा विवर्तमानाय  
स्वाहा विवृत्ताय स्वाहा विधून्वानाय स्वाहा विधूता-  
य स्वाहा शुश्रूषमाणाय स्वाहा शृण्वते स्वाहेक्षमाण-  
य स्वाहेक्षिताय स्वाहा वीक्षिताय स्वाहा निमेषाय स्वा-  
हा यदति तस्मै स्वाहा यत्तिबति तस्मै स्वाहा यन्मूत्रं  
करोति तस्मै स्वाहा कुर्वते स्वाहा कृताय स्वाहा ॥ ८ ॥

एतीतियन्-धीरे-धीरे स्वाभाविक चलता ॥ २५ ॥ धावति किसी  
वस्तुकी ओड़ी चलता ॥ २६ ॥ उदाव (अधिकगतिजिस्की ॥ २७ ॥ उहु-  
त (अधिकभागता ॥ २८ ॥ शूडितिकरोति (सिंहफुङ्गारकरता ॥ २९ ॥ किया  
जिसने शूकार ॥ ३० ॥ वेठता ॥ ३१ ॥ उठता ॥ ३२ ॥ जवते-वेगवान् ॥ ३३ ॥  
वलजिसें है ॥ ३४ ॥ विवर्तमान्-इधर उधर लुठता ॥ ३५ ॥ विवृत्त (इधर  
उधर लुठताहुआ ॥ ३६ ॥ कम्पता ॥ ३७ ॥ विधूयते-सौ विधूतः (कांपकर  
गिरता ॥ ३८ ॥ सुननेकी इच्छाकरता ॥ ३९ ॥ सुनता ॥ ४० ॥ ईक्षमाण-दे-  
खता ॥ ४१ ॥ देखताहुआ ॥ ४२ ॥ वीक्षित-विशेषेणदेखताहुआ ॥ ४३ ॥  
पलकमारता ॥ ४४ ॥ जोकुछखाता तस्मै ॥ ४५ ॥ जोजलादिकपीतातिस

पान करने वाले के अर्थ ॥४६॥ जो मूत्र करता तस्मै मूत्रकर्त्रे ॥४७॥ करता ॥४८॥ करता ह्यु आ। तस्मै स्वाहेति सर्वत्र ॥४९॥ इत्येकोनपञ्चाशत्प्रक्रमा ॥८॥

अ० ४ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥४॥

षडुचः सवितुर्देवत्या गायत्र्यः सावित्रीणामिष्टीनां याज्यानुवाक्याः ॥ प्रथमा व्याख्याता ३.३५.॥४॥

हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुपह्वये । स चेत्ता देवता पदम् ॥१०॥

मेधातिथिदृष्ट्या । में रक्षा के अर्थ सविता को आह्वान करता हूँ । कैसे सविता को कि हिरण्य पाणिजिस्का । यतः बोह सविता चेतयिता (सर्वज्ञ) । देवता । यदं ज्ञानियों का स्थान ॥१०॥

देवस्य चेततो यहीं प्र सवितुर्हवामहे । सुमतिर्धं सत्यरोधसम् ॥११॥

हम सविता देवता की सुमति (शोभना बुद्धि) को प्रकर्षण प्रार्थना करते हैं । कैसे सविता की कि चेततः (चेतता) । कैसे सुमति को कि वडी सत्य (अनश्वर) है धन जिस का वा सत्य को साधन कराती ॥११॥

सुष्टुतिर्धं सुमतीदधौ रतिर्धं सवितुरीमहे । प्र देवाय मती विदे ॥१२॥

हम सविता देवता की शोभन स्तुति और दान को प्रकर्षण याचना करने हैं । कैसे सविता की कि शोभन मति को बढ़ाता । तथा सर्वों की

मति को जानता ॥१२॥

एतिष्ठं सत्यंति महे सवितारमुपेह्वये । आसुवं देव  
वीतये ॥१३॥

में देवताओं के तर्पणार्थ सविता को आह्वान करता और पूजता हूँ ।  
कैसे सविता को कि दान को देता । श्रेष्ठों का पालक । आभिमुख्य-  
न कर्मों को आज्ञा देता ॥१३॥

देवस्य सवितुर्मतिमासुवं विश्वदेव्यम् । धिया भगं म-  
ना महे ॥१४॥

सविता देवता की मति (बुद्धि) प्रति हम बुद्धि से भग (धन) को याचना  
करते हैं अर्थात् सविता देवता की बुद्धि हमारे विषे दान तत्परा हो । कैसे  
भग की कि धन करि सबों के आज्ञा देने की समर्थ । सब देवताओं के  
अर्थहित । धने नैव देव तर्पणादित्यर्थः ॥१४॥

अग्निं स्तोमेन बोधय समिधानो अमर्त्यम् । हव्या दे-  
वेषु नो दधत् ॥१५॥

तिस्रः स्वष्ट कृति पुरोऽनुवाक्याः । अग्नि देवत्या गायत्र्यो यथा संख्यं  
(क्रमं) सुतम्भर विश्वामित्र विश्वरूप दृष्टाः । हे अध्वर्यो तू भले प्रकार  
दीपन करि के स्तुति से अग्नि को अवगतार्थ करि । कैसे अग्नि की  
कि मरण धर्म रहित सो अग्नि बोधित हुआ हमारी हवियों देवताओं  
के विषे धारण करे यह उसका अधिकार है ॥१५॥

स हव्यवाडमर्त्य उशिग्दूतश्च नो हितः । अग्निर्धिया स  
मृणवति ॥१६॥

वोह आग्नि बुद्धि करि देवताओं के साथ हविर्दान के अर्थ एकी है कैसा  
है अग्नि कि हवियों का वोटा। मरणहीन। उशिकू-कामनीय वामेधा  
वी। देवताओं का दूत। चनोहितः-अन्न के अर्थ हित-हविरूप अन्न के  
भक्षण के अर्थ स्थापित ॥ १६ ॥

अग्निं दूतं पुरो दधे हव्य वाहमुपब्रुवे। देवाँ २॥५ आसा  
दयादिह ॥ १७ ॥

जिस अग्नि को मैं पुरतः स्थापन करता हूँ तिस प्रति कहिता हूँ क्या कि  
हे अग्ने इस यज्ञविषे देवताओं को समन्तात् सादन करि। कै से अग्नि  
को कि दूत देवताओं हवि का वोटार ॥ १७ ॥

अजीजनो हि पवमान सूर्ये विधारे शक्नोति पर्यः। गो  
जीरया ररंहमाणः पुरन्ध्या ॥ १८ ॥

अरुण (अरुण) त्रसदस्युभ्यां हृष्टा पवमानदेवत्यापि पीलिकामध्या  
कृतिरनुष्टुप्। पवमानस्तुतिः। हे पवमान तूने सूर्य को उत्पन्न किया है  
सामर्थ्य से जल को विशेषेण धारण किया है किस हेतु करि कि गोओं  
की जीविका का हेतु जल को धारण किया है तिन्हों के हवि से यज्ञ नि-  
ष्पत्ति और प्राणियों के जीवन से। कैसा है तू कि पुरन्ध्या ररंहमाणः-ब  
हुत स्थापन करनेवाली धाराओं से प्राप्त होता अर्थात् दशापवित्र  
से द्रोण कलश को प्राप्त होता ॥ १८ ॥

अ० ५ विभूर्मात्रा प्रभूः पित्राश्वोऽसि हयोऽस्यत्योऽसि मयोऽस्यर्वा  
सि सप्तिरसि वाज्यसि वृषासि नृमणा असि। ययुर्नामासि  
शिशुर्नामास्यादित्यानां यत्वान्विहि देवा आशापाला एतं

देवेभ्योऽश्वमेधाय प्रोक्षितं रक्षतेह रन्तिरिह रमता-  
मिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा ॥१६॥†

का० २००२१६ तीसरी सावित्री इष्टीकी समाप्ति में अश्वयु यज-  
मानो अश्व के दक्षिण कर्ण में विभूर्मात्रेति मन्त्र को जपे ॥ अश्व  
देवतं यजुः ॥ हे अश्वत् माता पृथिवी के सकाश से समर्थ है, पिता  
दिवि के सकाश से समर्थ है ॥ अथ नामभिरश्वं स्तोति । तू अश्व  
मार्ग को व्याप्त होता वा व्याप्त है । हय-चलता है । अत्य (सतत  
गामी) है । मय (चलता वा सुखरूप) है । अर्वा (चलता वा वै-  
रियों को मारता है) सन्निसेन्य करि भले प्रकार प्राप्त होता है । वाजी  
(गति शील वा पक्षोंवाला) है । वृषा (सींचनेवाला) है । नृमणा (यज  
मानों में मनरखता) है । ययु (चलता अश्वमेधीय अश्व) है । किंच  
नामकरि शिशु (स्तनको छूश करनेवाला) है । एवं विधिनामा तू आदि  
त्यों अर्थात् देवताओं के मार्ग को प्राप्त हो ॥ का० २००२१२ देवा आशा  
पाला इति चतुर्विंशति वार्षिक अश्व शतमध्यस्थ ईशान दिशामें उ-  
त्सृष्ट अश्व के रक्षक नरों को शिक्षा करि नियत करे कैसे नरों को कि ति-  
तनेही अनुचरी संख्यक अर्थात् शत १०० राजपुत्र शत १०० क्षत्रिय-  
पुत्र शत १०० सूत ग्रामणी (सूत-अश्वपोषक, ग्रामणी-मुख्यतिन्हेंके)  
पुत्र शत १०० क्षात्र संगृहीत्यों (क्षत्तार-आयव्यय-अध्यक्ष-तिन्हेंके)  
पुत्र क्रमसे कवचि-निषङ्गि-कलापि-दण्डिनः अर्थात् राजपुत्र कव-  
चि क्षत्रिय पुत्र खड्ग सहित सूत ग्रामणी पुत्र इषुधिमन्त क्षात्र संगृ-  
हीत पुत्र वंशादि दण्ड धराः बडवा और जल स्नान से अश्व डीलना-

† शत० १३०२१६ अश्वमेधमाता सो यिमा  
अश्वमेधं न परिदरातीति

वर्षभरि आश्व का रक्षण तवतक यजमान वावाता (प्यारीराणी) के साथ शयन करे सावित्री करे वीणा गान पारिलव शस्त्र का पाठ और धृति होम इत्यादि ज्ञेय मिति सूत्रार्थः ॥ देव देव्यं आर्च्यं ३० आशादि शः पालयन्तीति आशापाला हे देवा तुम इस अश्व को रक्षा करे के से को कि याग के अर्थ जोक्षित (जोक्षण करि संस्कृत) राजपुत्रादिकही आशापाला हे तदुक्तं शतं वै तल्प्या राजपुत्रा आशापालास्तेभ्य ए वै नं परिददातीति शत ० १३ १ ६ २ ॥ का ० २० ३ ४ सूर्य अस्तद्गुणपर अग्नि होम से पहिले अग्नि होत्रार्थ उद्धृत आहवनीय में चतस्र ४ धृति संज्ञा आहुति प्रति मंत्र वर्ष पर्यन्त होमें एवं चत्वारिंशदधिका चतुर्दशशती १४४० होती है तथा च श्रुतिः संवत्सरमाहुतीर्जु होति षोडशानवतीरेता वा अश्वस्य बन्धनं ताभिरेवैनं बध्नातीति शत ० १३ १ ६ २ ॥ चत्वारि यजूषि १३ दे- बृ ० २ दे- यं ० ४ दे- ज ० अग्निदेवत्यानि चतुर्थमन्त्रान्ते स्वाहाकार अवणानिष्वपि स्वाहाकारः प्रयोज्यः ॥ अश्वं प्रत्युच्यते हे अश्व यह रमण तेरा हो ॥ १ ॥ यहां तुम रमण करौ ॥ २ ॥ यह तेरा सन्तोष हो ॥ ३ ॥ इस यज्ञ में निजधरण हो स्वाहा ॥ १४ ॥

अ० ६ काय स्वाहा कस्मै स्वाहा कतमस्मै स्वाहा स्वाहाधिमाथीताय स्वाहा मनः प्रजापतये स्वाहा चित्तं विज्ञातायादित्यै स्वाहा दित्यै मह्यै स्वाहा दित्यै सुमृडी कायै स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा सरस्वत्यै पावकयै स्वाहा सरस्वत्यै बृहत्यै स्वाहा पूषणे स्वाहा पूषणे प्रपथ्याय स्वाहा पूषणे नरंधियाय स्वाहा त्वष्ट्रे स्वाहा त्वष्ट्रे तुरीपाय स्वाहा त्वष्ट्रे पुरु रूपाय स्वा

हा विष्णावे स्वाहा विष्णावे निभूयपाय स्वाहा विष्णावे  
शिपिविष्टाय स्वाहा ॥२०॥

का० २००४३५ चारि ४ अध्वरि ४ औद्भरणों को होमिके काय स्वाहे-  
त्याश्वमेधिक तीनि उद्भरणों को होमें अत औद्भरण होमके अन्तर  
दीक्षणीया शेष को समाप्त करि कृष्णजिन दीक्षा तत्र उपवेशनान्ताक  
रिये है। सप्ताह प्रचरन्तीति शत० १३१०२ श्रुतेः सप्ताह दीक्षणीया  
करिये है तत्र प्रतिदिवस का कर्तव्य कहिये है अध्वर दीक्षणीया के चा-  
रि ४ औद्भरणों (आकृत्यै प्रयुजेत्यादि ४०७) और तीनि ३ तीनि आ-  
श्वमेधिको (काय स्वाहेति कण्डिका पठित प्रति दिवस अन्य-अन्य  
पाठक्रमेण एवं सात०-सात० प्रति दिवस होमिये। काय स्वाहेति कण्डिका  
कामें पठित सात त्रिकों के मध्य सात दिवसों विषें क्रमेण एक-एक त्रि-  
क होमिये है तहां दूसरे त्रिक के तीनों मन्त्रों की आदि में स्वाहा कार  
है ॥ औद्भरण संज्ञानि यजूर्ध्विलिङ्गोक्तदेवतानि काय-प्रजापतिके  
अर्थ सुहृतमस्तु ॥१॥ कस्मै-प्रजापति-मस्तु ॥२॥ कतमस्मै-श्रेष्ठप्रजा-  
पति ॥३॥ १॥ आधान को अधीत (प्राप्तके अर्थ ॥१॥ मन विषें वर्तमान  
२॥ सर्वो के चित्त साक्षि प्रजापति के अर्थ ॥३॥ २॥ अरवशिङ्गता के अ०  
१॥ पूज्या अदितिके अर्थ ॥२॥ सुवयित्री अदितिके अर्थ ॥३॥ ३॥ स-  
रस्वति-वागधिष्ठात्री के अर्थ ॥१॥ शोधयित्री सरस्वती के अर्थ ॥२॥  
बड़ी सरस्वती के अर्थ ॥३॥ ४॥ पूषा के अर्थ ॥१॥ प्रगत पंथा तत्र भवप्रप-  
थ्यः पूषा के अर्थ ॥२॥ नरको उदयेन शब्द यति पूषा के अर्थ ॥३॥ ५॥  
त्वष्टा (तनू करने वाले के अर्थ ॥१॥ तुरीष-वेग को रक्षा करने वाले के



अर्थ०॥२॥ बहुरूपी त्वष्टाके अर्थ०॥३॥६॥ व्यापक विष्णु के अर्थ०॥  
१॥ निभूयप (नितरंभूत्वा- मत्स्यादि अवतार करि रक्षा करने वाले  
विष्णु के अर्थ०॥२॥ शिपिविष्ट (पशु-प्राणियों में अन्नर्यामिरूपेण  
प्रविष्ट) विष्णुके अर्थ०॥३॥७॥२०॥

विश्वो देवस्य नेतुमर्तो ब्रूरीत सख्यम् । विश्वो रायः ईषु-  
ध्यति युमं वृणीत पुष्य से स्वाहा ॥२१॥

का०२००४०८०१०० सातमी दीक्षणीया में यह विशेष है कि प्रतिदि-  
वस चारि ४ आध्वरिक ओहूभण होमते हैं तिन चारों के स्थान में  
हैं ६ आग्निक आकृति प्रयुजमग्निं स्वाहेति ११६६ होमिके ओ-  
र आश्व मेधिक तीनि विष्णवे स्वाहेत्यादिक होमि विश्वो देवस्य  
दशमे ओहूभण को होमं इति ॥ व्याख्याता ४०८०॥२१॥

अ०७ आ ब्रह्मन्ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः  
शूर इषव्यो गतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वो-  
ढान् दृष्टानाशुः सप्तिः पुरंधिर्योषा जिष्णूरयेष्टाः सभेयो  
युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः प-  
र्जन्यो वर्षेतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो  
नः कल्पताम् ॥२२॥

का०२००४०११० कृष्णजिन दीक्षा से आरम्भ करि के उरवाविषं त्र-  
यो दश समिदाधान पर्यन्त कर्म करि अध्वर्युही आब्रह्मन् यहज-  
पे उत्सर्गोपस्थान काल में एक आचार्य आब्रह्मन् इस जपको र-  
खा करते हैं यद्वा आश्व के उत्सर्ग काल विषे अर्थात् विभूर्मात्रेति १४

जपके अनन्तर ॥ लिङ्गोक्त देवता महीधर मते उत्कृति छन्दः । है ब्रह्मन्  
हमारे देश विषे ब्रह्मवर्चसी (यज्ञाध्ययनशील) ब्राह्मण उत्पन्न हो ।  
और क्षत्रिय ऐसा उत्पन्न हो । कैसा कि शूरः (पराक्रमी) शूर विक्रान्तो शूर  
यति शूरः । इषव्य (बाणों से वीधने वाला) वावाण विद्या कुशल । अतिव्या  
धी (शत्रुभेदनशील) । महारथः (एक सहस्र को जीते बौह महारथः) । दुग्ध  
पूरयित्री धेनुः उत्पन्न हो राष्ट्रे इति सर्वत्र सम्बन्धः । वृषभ (बैल) वहन  
शील हो । अश्व शीघ्रगामी उ०-हो । स्त्री पुरंधिः (सर्वगुण सम्पन्न शरीरको  
धारण करने वाली) उ०-हो । रथ में स्थित युयुत्सु नरजयनशील उ०-हो । इस  
यजमान का युवा (समर्थ) सभाविषे योग्य वीर पुत्र उ०-हो । किंच हमारे रा  
ष्ट्र विषे पर्जन्य (मेघ) निरन्तर कामना में वर्षे । हमारे यवाद्या औषधी एं  
फल युक्ता (स्वयमेव फल) होंवें । हमारा योगक्षेम- योग करि युक्त क्षेम- यो  
ग (अलब्ध का लाभ) क्षेम (लब्ध का परिपालना) कृप हो ॥ २२ ॥

अ० ८ प्राणाय स्वाहा पानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा चक्षुषे स्वाहा  
श्रोत्राय स्वाहा वाचे स्वाहा मनसे स्वाहा ॥ २३ ॥

का० २००४३१० आज्यादिकों का प्रति प्रहर विषे एक-एक को क्रमकरिके  
सर्वरात्र उत्तर वेदिस्थ अग्नि में होम करे प्राणाय स्वाहेत्यादि द्वादशक-  
ण्डिकात्मक अनुवाकों से । किं कृत्वा आवर्तम् कि प्राणाय स्वाहेत्यादि एकशता-  
य स्वाहेत्यन्त मन्त्र गण को आवर्त-आवर्त करिके सर्वरात्रमिति द्वितीया ग्र  
हण से होम क्रिया का सबरात्रिका संयोग करियें है ततः प्रथम याम में घृत से  
याग है दूसरे में सक्तु-ओं से तीसरे में धानों से चोथे में लाजा से । एकस्मे इति  
द्वादशेऽनुवाके ३४ एकस्मे स्वाहा द्वाभ्यां स्वाहेत्यत्र त्रिभ्यः स्वाहा चतुर्भ्यः

स्वाहा पञ्चभ्यः स्वाहा षड्भ्यः स्वाहा सप्तभ्यः स्वाहा अष्टभ्यः स्वाहा नव-  
भ्यः स्वाहेत्येव मादयो मन्त्राः अपठितं हं परन्तु एक-एक के उच्चय करिके श-  
तपर्यन्तों का प्रयोजन है एकोत्तर जुहोतीति शत० १३२१५ श्रुतिसे। व्यु-  
ष्टा (रात्रिकी समाप्ति विषे व्युष्टायै स्वाहेति एक घृत की आहुति को और स-  
र्यके उदय में स्वर्गाय स्वाहेति होमें इति सूत्रार्थः॥ लिङ्गोक्तदेवतानि यजू-  
ंश्च। प्राणदय इन्द्रियदेवाः॥ २३॥

अ० ८ प्राच्यै दिशे स्वाहा वाच्यै दिशे स्वाहा दक्षिण्यै दिशे स्वाहा वा-  
च्यै दिशे स्वाहा प्रतीच्यै दिशे स्वाहा वाच्यै दिशे स्वाहो दीच्यै दि-  
शे स्वाहा वाच्यै दिशे स्वाहोर्ध्व्यै दिशे स्वाहा वाच्यै दिशे स्वा-  
हा वाच्यै दिशे स्वाहा वाच्यै दिशे स्वाहा॥ २४॥

अ० १० अद्भ्यः स्वाहा वाभ्यः स्वाहोर्दकाय स्वाहा तिष्ठन्तीभ्यः स्वाहा  
स्रवन्तीभ्यः स्वाहास्यन्दमानाभ्यः स्वाहा कूप्याभ्यः स्वाहासूया-  
भ्यः स्वाहा धार्याभ्यः स्वाहा एवाय स्वाहा समुद्राय स्वाहा सरि-  
राय स्वाहा॥ २५॥

अ० ११ वाताय स्वाहा धूमाय स्वाहाभ्राय स्वाहा मेधाय स्वाहा विद्योत-  
मानाय स्वाहा स्तनयते स्वाहा वस्फूर्जते स्वाहा वर्षते स्वाहा व-  
वर्षते स्वाहोग्रं वर्षते स्वाहा शीघ्रं वर्षते स्वाहो हृल्लते स्वाहो  
हृहीनाय स्वाहा पुष्पाय स्वाहा शीकाय स्वाहा शुष्माभ्यः स्वाहा  
द्राघुनीभ्यः स्वाहा नीहाराय स्वाहा॥ २६॥

अ० १२ अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहेन्द्राय स्वाहा पृथिव्यै स्वाहान्तरिक्षा-  
य स्वाहा दिवे स्वाहा दिग्भ्यः स्वाहाशम्यः स्वाहोर्ध्वै दिशे स्वा

हार्वाच्ये दिशे स्वाहा ॥२०॥

अ० १३ नक्षत्रेभ्यः स्वाहा नक्षत्रियेभ्यः स्वाहा होरात्रेभ्यः स्वाहार्ध  
मासेभ्यः स्वाहा मासेभ्यः स्वाहऋतुभ्यः स्वाहार्तवेभ्यः स्वा  
हा संवत्सराय स्वाहा द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा चन्द्राय स्वाहा  
सूर्याय स्वाहा रश्मिभ्यः स्वाहा वसुभ्यः स्वाहा रुद्रेभ्यः स्वाहा  
क्षिप्तेभ्यः स्वाहा मरुद्भ्यः स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा मूले  
भ्यः स्वाहा शारवाभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा पुष्येभ्यः  
स्वाहा फलेभ्यः स्वाहोषधीभ्यः स्वाहा ॥२०॥

अ० १४ पृथिव्यै स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा सूर्याय स्वाहा च  
न्द्राय स्वाहा नक्षत्रेभ्यः स्वाहा द्यौः स्वाहोषधीभ्यः स्वाहा वन  
स्पतिभ्यः स्वाहा परिल्लवेभ्यः स्वाहा चरचरेभ्यः स्वाहा सरीस  
येभ्यः स्वाहा ॥२१॥

अ० १५ असवे स्वाहा वसवे स्वाहा विभुवे स्वाहा विवस्वते स्वाहा गण  
ध्रिये स्वाहा गणपतये स्वाहा भिभुवे स्वाहा धिपतये स्वाहा  
श्रुषाय स्वाहा सर्षपसूर्याय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा ज्योतिषे स्वा  
हा मलिमुचाय स्वाहा दिवा पतयते स्वाहा ॥२२॥

अ० १६ मधवे स्वाहा माधवाय स्वाहा शुक्राय स्वाहा शुचये स्वाहा न  
भसे स्वाहा नभस्याय स्वाहेषाय स्वाहोर्जाय स्वाहा सह  
से स्वाहा सहस्याय स्वाहा तपसे स्वाहा तपस्याय स्वाहा  
हसस्पतये स्वाहा ॥२३॥

अ० १७ वाजाय स्वाहा प्रसवाय स्वाहा पिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा

स्वः स्वाहा मूर्ध्ने स्वाहा व्यश्रुविने स्वाहान्त्याय स्वाहान्त्या-  
य मौदनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाधिपतये स्वा-  
हा प्रजापतये स्वाहा ॥३२॥

अ० १८ आयुर्यज्ञेन कल्पतां स्वाहा प्राणो यज्ञेन कल्पतां  
स्वाहा पानो यज्ञेन कल्पतां स्वाहा व्यानो यज्ञेन कल्पतां  
स्वाहा दानो यज्ञेन कल्पतां स्वाहा समानो यज्ञेन क-  
ल्पतां स्वाहा चक्षुर्यज्ञेन कल्पतां स्वाहा श्रोत्रं यज्ञेन  
कल्पतां स्वाहा वाग्यज्ञेन कल्पतां स्वाहा मनो यज्ञे-  
न कल्पतां स्वाहात्मा यज्ञेन कल्पतां स्वाहा ब्रह्मा यज्ञेन  
कल्पतां स्वाहा ज्योतिर्यज्ञेन कल्पतां स्वाहा स्वर्ग-  
ज्ञेन कल्पतां स्वाहा पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां स्वाहा पंक्तौ  
यज्ञेन कल्पतां स्वाहा ॥३३॥

अ० १९ एकस्मै स्वाहा द्वाभ्यां स्वाहा शताय स्वाहेकशताय स्वा-  
हा व्युष्ट्यै स्वाहा स्वर्गाय स्वाहा ॥३४॥  
इति सर्गं हितायामेकौनविंशोऽनुवाकः १९  
इति श्री शुक्ल यजुषि माध्यन्दिनीपायां वाजसनेयसर्गहि-  
तायां दीर्घपाठे द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

प्राच्यादिदेवताः ॥२४॥ अद्भ्यः जलदेवताः ॥२५॥ वाताय मेघोपयोगि-  
देवताः ॥२६॥ अग्नये । आग्न्यादयः प्रसिद्धाः ॥२७॥ नक्षत्रेभ्यः । न-  
क्षत्रादयः कालाधिष्ठात्र्यः ॥२८॥ पृथिव्यै । पृथिव्यादयो लोकाधिष्ठा-  
त्र्यः ॥२९॥ असवे । अस्वादयश्च ॥३०॥ मधवे । मध्वादयो मासाधिष्ठा

तारः ॥३१॥ वाजाय । वाजादयोऽन्नाधीशाः ॥३२॥ आयुः । यज्ञेनाश्वमेधे  
 नायुः कल्पताम् एवमग्नेऽपि प्रार्थना मन्त्राः ॥३३॥ एकस्मै । संख्या  
 धीशाः । व्युष्टीरात्रिः स्वर्गो दिनम् रात्रिर्वै व्युष्टिरहः स्वर्गोऽहोरात्रे  
 ऽ एव तत्प्रीणातीति श्रुतेः १३.२.१.६ ॥ प्राणादयोऽश्वमेधस्या वय-  
 विनोऽवयवाः स च प्रजापतेरवयवः स आत्मन इत्यात्मैव स्तूयते इ-  
 ज्यते इति भावः सर्वमिदं यदयमात्मेति श्रुतेः ॥३४॥

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दनिवारयन्

पुमार्थाश्चतुरो देयाद्धर्मपुत्रोयुधिष्ठिरः २२

इतिगिरिधरभाष्येएकोनविंशोऽनुवाकः १४

श्रीमच्छुक्लं यजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीशारवाध्येत व्याघ्रपादान्व-  
 यविश्वामित्रपुराधिपश्रीमञ्जयकिशोरदेववर्मात्मजसौवित्रो  
 यनृपतिगिरिप्रसादेन रचितेश्रीवेदार्थप्रदीपेगिरिधरभाष्ये अश्व-  
 मेधाहुतिवर्णनो नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

हरिः ओम्

ओं नमोयज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरुपं च साधनैर्बहुरूपकम्

स्वानन्ददायकं कृष्णब्रह्मरूपं परं स्तुमः २३

अ० १ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।  
 स दधार पृथिवीं धामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधे-  
 म ॥४॥

ओं नमो याज्ञवल्काय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके

त्रयोविंशोऽयमध्यायो वर्ण्यतेऽष्टाध्वमेधिकः २३

द्वाविंशो होममन्त्रास्त्रयोविंशोऽध्याये शिष्टं कर्मेच्यते का० २०.५.१२.  
प्रातः काल दूसरे दिनमें उक्थ्य संस्य दिवस होता है तहां महिम संज्ञक  
दो ग्रहों का आगन्तुत्व से आग्रयण उक्थ्य के मध्य में ग्रहण करें (अन्त-  
राग्रयणोक्थ्या वागन्तुस्थानं ग्रहाणमिति वचनात्) दोनों के मध्य में  
पूर्व महिमान की सौवर्ण उलूखल करिके ग्रहण करें ॥ व्याख्याता  
१३.४.॥१॥

उपयाम गृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष  
ते योनिः सूर्यस्ते महिमा यस्तेऽहन्त्संवत्सरे महिमा सं-  
म्बभूव यस्ते वायवन्तरिक्षे महिमा सम्बभूव यस्ते दि-  
वि सूर्ये महिमा सम्बभूव तस्मै ते महिम्ने प्रजापतये स्वा-  
हा देवेभ्यः ॥ २ ॥ + उ-मिः अ० ए-मा इ० य-भ्यः ॥ ३० ॥ २ ॥

प्रजापत्यं यजुः ॥ उपयाम० प्रजापति के अर्थतुम् रुचित को हे ग्रह ग्रह  
ण करता हूं ॥ का० ४.५.२५. एव ते योनिरिति ग्रह सादनम् ॥ या-त्रि० ॥  
यह तेरा स्थान तेरी महिमा (शक्ति) सूर्यः दीपस्येव प्रभा ॥ का० २०.७.१६.  
पूर्व महिमान ग्रह को होमें वषट् कृते सर्वहुतम् ॥ देवदेवत्यं यजुः ॥  
हे महिमन् जो तेरी महिमा दिवस और संवत्सर निमित्त विषे उत्पन्न  
हुई वायु और अन्तरिक्ष विषे जो तेरी महिमा उत्पन्न दिवि और सूर्य  
विषे जो तेरी महिमा उत्पन्न तिस महिम्न प्रजापति और देवताओं

के अर्थ स्वाहा-सुहुत मस्तु ॥२॥

अ० २ यः प्राणतो निमेषतो महित्वैक इन्द्राजा जगतो बभूव ।  
य ईशोऽस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा  
विधेम ॥३॥

का० २० ५ २ दूसरे महिमान ग्रह को राजत उलूखल करिके ग्रहण क  
रें ॥ हिरण्य गर्भहृष्टाक देवत्याविष्टुपू। तिस प्रजापति देवता के अर्थ ह  
मने हवि दिया। तिस किस के कि जो प्रजापति जीवन करते निमेषण (ह  
गादि इन्द्रियों के व्यापार) करते अर्थात् सचेतन अगत का एक एक  
राजा हुआ तिस महित्व (महाभाग्य) करिके। और जो इस द्विपद (म  
नुष्य पक्षी आदिकों) और चतुष्पद (हस्ती गवादिकों) प्राणिजात का रे  
श्वर्य करता है ॥३॥

उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनि-  
श्चन्द्रमास्ते महिमा यस्ते रौत्रौ संवत्सरे महिमा सम्बभूव  
यस्ते पृथिव्यामग्नेो महिमा सम्बभूव यस्ते नक्षत्रेषु चन्द्र-  
मसि महिमा सम्बभूव तस्मै ते महिम्ने प्रजापतये देवेभ्यः  
स्वाहा ॥४॥ + उ-मि। अ० ग-मा। इ० य-हा। उ० ॥४॥

उपया मेति व्याख्यातं यजुः २ ॥ सादयति ॥ या-ज० चन्द्रमा तेरी महिमा ॥  
का० २० ७ २६ वपायाग के अन्त में दूसरे महिम्न करिके पूर्व वदिति स  
र्वहुत महिमान की होमें ॥ यजुः ॥ हे महिमन् रात्रि और संवत्सर विषे जो  
तेरी महिमा ० पृथिवी और अग्नि विषे जो ० नक्षत्र और चन्द्रमा विषे  
जो ० सर्व व्यापक जो ० तिस महिम्न प्रजापति और देवताओं के अर्थ स्वा



हा सुहृन्मस्तु ॥ ४॥

अ० ३ युक्तानि ब्रह्ममूर्ध्वं चरन्तं परि तस्थुः । रोचन्ते रोचना  
दिवि ॥ ५॥

का० २०५११ अश्व की रथ में जोड़े ॥ मधुच्छन्दोदृष्टा आदित्यदेवत्या  
गायत्री । कर्मोद्येयित ऋत्विज लोग ब्रध्न (आदित्य) की रथ में जो  
डते हैं । कैसे ब्रध्न कि क्रोध रहित वैदिक कर्म सिद्ध्यर्थ सर्वत्र चल  
ने की । जिस ब्रध्न की शक्ति हैं आकाश में प्रकाश हैं वा चन्द्र तारादी  
नि शक्ति हैं सूर्य की आकर प्रकाश हैं ॥ ५॥

युक्त्वन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसारथे । शोणं धृष्णं नृ  
वं हसा ॥ ६॥

का० २०५१२ इतर तीनि अश्वों को जोड़े ॥ गायत्री अश्वस्तुतिः । ऋत्वि  
जः हरी अश्वों रथ में जोड़ते हैं । कैसे कि इस अश्वमेधिक अश्व के  
काम्य सम्पादनो नही है एक रथ चलाने की शक्ति इति विपक्षसा (शरी  
र को ग्रहण करने वा विविध हैं पक्षजिन्हों के यद्वाविरिति शकुनिना  
मर्त पक्षिणः इव पक्ष हैं जिन्हों के । रत्नौ प्रगल्भौ नृणं वीढारे ॥ ६॥

यद्वातौऽअपोऽअगनीगन्ध्रियामिन्द्रस्य तन्वम् । एतं  
स्तौतृनेन यथा पुनरश्वमावर्तयासिनः ॥ ७॥

का० २०५१४ चारों अश्वों करि युक्तरथ को अध्वर्यु यजमान आगे ह  
ए करि तडागादिजल प्रति जाकर जल विषे अश्व के प्रविष्ट होने में  
यजमान प्रति पड़े ॥ बृहती अश्वस्तुतिः । वातसमानवेगो अश्व जिस  
कारण जलें के आगनीगन्ध्रियामिन्द्रस्य गया और इन्द्र के प्यारे शरीर को अत्य

+ अश्व आदित्यदेवत्या गायत्री अश्वस्तुतिः । ऋत्विजः हरी अश्वों रथ में जोड़ते हैं । कैसे कि इस अश्वमेधिक अश्व के काम्य सम्पादनो नही है एक रथ चलाने की शक्ति इति विपक्षसा (शरीर को ग्रहण करने वा विविध हैं पक्षजिन्हों के यद्वाविरिति शकुनिनामर्त पक्षिणः इव पक्ष हैं जिन्हों के । रत्नौ प्रगल्भौ नृणं वीढारे ॥ ६॥

यद्वातौऽअपोऽअगनीगन्ध्रियामिन्द्रस्य तन्वम् । एतं स्तौतृनेन यथा पुनरश्वमावर्तयासिनः ॥ ७॥

थे गया और इन्द्र के प्यारे शरीर को अत्यर्थ गया अतः हेस्तोतः (अ-  
ध्वर्यो) इस हमारे अश्व को इस मार्ग करि कि जिस मार्ग करिआवा-  
फिरि तिसी करि लोटा ओ ॥७॥

वसवस्त्वाञ्जन्तु गायत्रेण छन्दसा रुद्रास्त्वाञ्जन्तु त्रैष्टुभे-  
न छन्दसादित्यास्त्वाञ्जन्तु जागतेन छन्दसा भूर्भुवः स्व-  
र्लोजी अश्वाची अन्यव्ये गव्यः एतदन्तमत्त देवा एतदन्त-  
महि प्रजापते ॥८॥†

का० २०५१५ जल प्रदेश से देवयजन प्रति आये रथसे छूटे अश्व को  
महिष्याद्याः तीनों पत्नि हैं यथाक्रम अश्व के पूर्वादिकों को घृत से चुपरे  
महिषी पूर्वकाय को वसव इति वावाता देह मभ्य को रुद्रा इति परिचृता  
पश्चाद्वागको आदित्या इति मन्त्रेणेति सूत्रार्थः ॥ लिङ्गाक्त देवत्यानि १  
३ आसु-अ० २५-ज० त्रीणि हे अश्व आठो वसुदेवता गायत्री छ-  
न्द करि तुमै स्निग्ध करे ॥ एकादश रुद्र त्रिष्टुप् छ० ॥ द्वादश आदि-  
त्य जगती छ० ॥ का० २०५१६ महिष्याद्याः तीनों पत्नि हैं एकाधिक  
शत-एकाधिक शत सुवर्ण मणीओं को जैसे नगिरें तैसे केसों (शिरः  
स्कन्धपुच्छ रोमों) में बाँधे अर्थात् महिषी अश्व शिर रोमों में भूरिति-  
१०१ मणी हैं बाँधे वावाता ग्रीवा रोमों में भुव इति १०१ परिचृता पुच्छ रो-  
मों में स्वरिति १०१ बाँधे ॥ भूर्भुवः स्वः व्याख्याता ३५३० ॥ का० २०५  
५१८१६ सक्तुधाना लाजा रूप रात्रिद्वत शेष को अश्व के भक्षार्थ देवे  
और जो अश्व न खावे तो जल में डाले ॥ लाजीन् अश्व देवत्यं यजुः ॥ ला-  
जाओं का समूह सक्तुओं का समूह यवों का समूह दध्यादि गविओं

का समूह हे देवताओं इस अन्न को खाओ हे प्रजापते इस अन्न को खा ये  
भ्योऽश्वः प्रोक्षितस्तद्रूपोऽश्वः सम्बोध्यते ॥८॥

कः सिंदेका की चरति क उं सिज्जायते पुनः ॥ किं सिद्धि  
मस्य भेषजं किं चावपनं महत् ॥९॥

का० २००५२० यूपके दक्षिणतः उदङ्मुख ब्रह्मा यूपोत्तरतः दक्षिण  
मुख होता की पूछे ॥ ब्रह्मोद्ये कर्मणि होतुर्वत्स्य एव प्रश्न प्रति प्रश्न भू-  
ताश्च तस्रोऽनुष्टुभः ॥ सिदिति वितर्के एक असहायः ॥ अकेला कों  
न चलता है ॥ उपाद पूरणः कः सित् विनष्ट होने पर उत्पन्न होता है ॥  
किं सित् शीत की औषध है ॥ किं सित् बड़ा वपने का स्थान है ॥९॥

सूर्य एका की चरति चन्द्रमा जायते पुनः ॥ अग्निर्हिम-  
स्य भेषजं भूमिश्चावपनं महत् ॥१०॥

का० २००५२१ होता ब्रह्मा प्रति कहै ॥ सूर्य अकेला + चलता है (अने-  
न होतु ब्रह्माणो यजमाने ब्रह्मवर्चसं यतः ॥ असेो वाऽआदित्य ए-  
का की चरत्येष ब्रह्मवर्चसं ब्रह्मवर्चसमेवास्मिंस्तद्धत इति १३२६  
१० श्रुतेः ॥ चन्द्रमा क्षीणहुआ फिर करि बढता है (अनेना युर्थतः ॥  
चन्द्रमा वै जायते पुनरायुरेवास्मिंस्तद्धत इति ११ श्रुतेः ॥ हिम की  
औषध अग्नि है (अनेन तेजो यतः ॥ अग्निर्वै हिमस्य भेषजं तेज  
एवास्मिंस्तद्धत इति १२ श्रुतेः ॥ भूमि (यह लोक) बड़ा वपने का स्था-  
न है (अनेनास्मिन्प्रतिष्ठां यतः ॥ अयं वै लोक आवपनं महदस्मिन्ने-  
व लोके प्रतितिष्ठतीति १३ श्रुतेः ॥१०॥

का सिंदासी तू वै चित्तिः किं सिंदासी दृहद्वयः ॥ का

१ एक की नीचा धमक है जो मय के चलते ऊँचे का दे न क्षम  
नार दिखला दे न हो देता ।



(नही है कृष्ण) लाच्छनजिसमें वोह ब्रह्मा (चन्द्रमा†) हमें रक्षा करे वा हमारे अश्व को रक्षा करे॥ अग्नि के अर्थ नमस्कार हो (विघ्नाभावायाग्नेर्नतिः क्रियते॥१३॥

सर्गं शितो रश्मिना रथः सर्गं शितो रश्मिना हयः॥ सर्गं शितोऽपस्वप्सुजा ब्रह्मा सोमपुरोगवः॥१४॥

नितोऽश्वदेवत्या नुष्टु धिरा द्विष्टुभः क्रमेण†। हयः (अश्वः) रश्मि करि संशित शोभित†) है। अप्सुजा (जलमें हुआ) अश्व वा जल करि मंशित है। कैसा है कि ब्रह्मा (परिवृटः) सोमपुरोगवः (सोम को आगे करि स्वर्ग लोक को जाता है)॥१४॥

स्वयं वाजिंस्तनुं कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व। महिमा तेऽन्ये न न सं न शो॥१५॥

हे वाजिनू तू अपने शरीर (रूप) को करि याद श मिच्छ सीति १३.२.७.११ श्रुतेः (जैसा तू चाहता है) स्वाण्यते रहै इति भावः अतः अपने को पूजि नहीं तेरा अन्य पूजने वाला स्वयं जुषस्व (इष्टस्थान को सेवन करि)। यतः तेरी महिमा अन्य महिम करि नहीं व्याप्त होती॥१५॥

नवाऽवः एतन्म्रियसे न रिष्यसि देवाँ ॥ इदेषि पृथिभिः सुगेभिः॥ यत्रासते सुकृतो यत्र ते ययुस्तत्र त्वा देवः सेविता दधातु॥१६॥

हे अश्व हम लोगों करि जो तू संज्ञपन किया जायगा इस करि तू नहीं मरता और न बिनाश को प्राप्त होता। जिस साधु गमन देवयान मार्ग करि देवताओं प्रति जाता है। किंच साधु कारिणः मनुष्य जिस लोक में रहते और

† सम्पूर्वः श्रयतिः शोभनार्थः रथः रश्मिना कृत्वा संशितः दर्शनीयो भवति तस्माद् रथः पयुतो दर्शनीय तमो भवतीति १३.२.७.८ श्रुतेः॥  
‡ अप्सुपोनिर्वाश्व इति १३.२.७.१० श्रुतेः॥  
§ सोमपुरी ग(म) मेवेन ठं स्वर्ग लोक गमयतीति १० श्रुतेः॥

† वाजिनू तू अपने शरीर (रूप) को करि याद श मिच्छ सीति १३.२.७.११ श्रुतेः॥  
‡ अप्सुपोनिर्वाश्व इति १३.२.७.१० श्रुतेः॥  
§ सोमपुरी ग(म) मेवेन ठं स्वर्ग लोक गमयतीति १० श्रुतेः॥

जहां ते सुकृती गये तिस लोक में सविता देवता तुम्हें स्थापन करे +॥१६॥

+ सविता वै न  
र्षस्वर्गलोके द  
धातीति १३.२  
७.१२. शुतेः।

अग्निः पशुरासीत्तेनायजन्त स एतं लोकमजयद्यस्मिन्

ग्निः स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबेता अपः। वा

युः पशुरासीत्तेनायजन्त स एतं लोकमजयद्यस्मिन्वायुः

स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबेता अपः। सूर्यः पशुरा

सीत्तेनायजन्त स एतं लोकमजयद्यस्मिन्सूर्यः स ते लो

को भविष्यति तं जेष्यसि पिबेता अपः॥१७॥

का० २०.६.०० अपां पेरुरिति ६.१०. प्राकृत मन्त्र और अग्निः पशुरिति वै

कृत मन्त्र करि प्रोक्षणी अश्व के पीने के लिये ग्रहण करे ॥ अश्व देवतानि

त्रीणि यजूंषि। सृष्टि देवताओं का अग्नि पशुहुआथा तिस अग्निरूप प

शु करि देवता यजन करते हुए बौह अग्नि पशुभाव को छोड़ि इस (पृथ्वि)

लोक को जीतता हुआ जिस लोक में अग्नि है हे अश्व बौह लोक तेरा हो

गा तिस लोक को तू जीतेगा यह प्रोक्षणी का जल पी +। वायुः पशु हुआथा

सूर्य पशु हुआथा वायुलोक (अन्तरिक्ष) सूर्यलोक स्वर्ग वे भी तेरे होंगे

अपन्यत्समानम् ॥१७॥

अ० ५ प्राणाय स्वाहा पानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा। अम्बे अम्बि

के अम्बालिके न मा नयति कश्चन। सप्तस्त्यश्वकः सुभ

द्रिकां काम्यील आशिनीम् ॥१८॥ +

का० २.६.११ परिपशव्ये स्वाहा देवेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ६.११. दो आहु

तियों होमि के आणायेत्याथा नीनिआहुतियों होमें एक अश्वगंश का

आदि में चारि अन्नमें ॥ त्रीणि यजूंषि १.३.दे-पं ०२.दे-वि १.१.१.१

+ प्राणनेत्रासिद्धिमादि० शत० २३० २४० २५० २६० २७० २८० २९० ३०० ३१० ३२० ३३० ३४० ३५० ३६० ३७० ३८० ३९० ४०० ४१० ४२० ४३० ४४० ४५० ४६० ४७० ४८० ४९० ५०० ५१० ५२० ५३० ५४० ५५० ५६० ५७० ५८० ५९० ६०० ६१० ६२० ६३० ६४० ६५० ६६० ६७० ६८० ६९० ७०० ७१० ७२० ७३० ७४० ७५० ७६० ७७० ७८० ७९० ८०० ८१० ८२० ८३० ८४० ८५० ८६० ८७० ८८० ८९० ९०० ९१० ९२० ९३० ९४० ९५० ९६० ९७० ९८० ९९० १०००

त्यादि स्नानाद्धितियोंसे अश्वको प्राणवन्त करता है + ॥ का० २०० ६० १२०  
सब पत्नीएँ पशु शोधन केलिये पान्नेजनी हस्ताः पशुओं प्रति प्राप्तिहे-  
ने नमस्तः आताने ॥ ६० १२० प्राकृतमन्त्र और अम्बे इत्याश्व मेधिक  
मन्त्र को कहै ॥ अश्व स्तुतिरनुष्टुभः । पत्यः परस्परं वदन्ति हे अम्बे हे  
अम्बिके हे अम्बालिके नामान्येतानि कोईक नर (मनुष्य) मुझे नहीं  
प्राप्त करता तर्हि किमर्थ गम्यते तत्राह अश्वकः (खोटा घोड़ा) अकु-  
त्सितोऽपीर्षया कुत्स्यते सुभद्रिका (खोटी स्त्री) सुभद्रिका ईर्ष्याया कु-  
त्स्यते तिस नारी को लिये सोता है अश्व अन्य को लेकर सोता है इ-  
ति मया गम्यते ननु आं कश्चन्नयतीति भावः । कैसी सुभद्रिका कि का-  
म्पील नगर में रहती तिसै (तत्र हि विदग्धाः सुरूपा कामिन्या भवन्ति) ॥ १८

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिं  
हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिं हवामहे वसो मम ।

आहमजानि गर्भधमा त्वमजसि गर्भधम् ॥ १९ ॥ +

का० २०० ६० १३० सब पत्नीएँ पान्नेजनी हस्ता हो प्राण शोधन से पहिले  
अश्व को तीनि-तीनि प्रदक्षिण देवें मध्य में तीन अप्रदक्षिण फिरें  
तीनों मन्त्रों से और वसो ममेति तीनों में अनुषङ्ग है ततश्चैवम् प्रथम  
गणानां इस मन्त्र करि तीनि प्रदक्षिण फिरें तहां एक मन्त्र पूर्व क दोचुप  
कैसे फिरि प्रियाणाम् तीनि अप्रदक्षिण निधीनाम् तीनि प्रदक्षिण ऐ-  
से नव ८ कृत्व इति सूत्रार्थः ॥ चत्वारि लिङ्गोक्तानि यजूर्ध्वि हे अश्व  
हम तुम्हें आह्वान करती हैं कैसे तुम्हें कि गणों के मध्य गण रूपेण पा-  
लक को । प्रियों वल्लभों के मध्य प्रिय के पालक को निधीओं (सुखनि-

वींओं के मध्य सुखनिधि के पालक को। हे वसुरूप अश्व मेरा पति तू  
हुआ इति शेषः। का० २००६१४ पत्नीओं करि शोधित पशुओं के प्राणों वि  
षे अध्वर्यु यजमान प्राण शोधन करते आहमजानीति मन्त्रेण महि  
षी अश्व समीपमें सोवै ॥ अश्व देवत्यम्। हे अश्व गर्भधारक रेत (शुक्र)  
को मैं षींचि कर डालती हूँ और तू गर्भधारक रोम षींचि कर डालि ॥ १६ ॥

ता० उभौ चतुरः पदः सम्प्रसारयाव स्वर्गे लोके ओर्णवायं  
वृषा वाजी रेतोधा रेतो दधातु ॥ २० ॥

पूर्वमन्त्र शेषः। तू और मैं दोनों चारो पैरों को पसारें तेरे दो मेरे दो एवं  
संवेशन प्रकारः ॥ का० २००६१५ अधीवास (नीचे और ऊपर से आछा  
दन शक्त वस्त्र) करि स्वर्गलोक इति अश्व महिषी को आछादन करे ॥  
अध्वर्युर्वदति। हे अश्व महिष्यो तुम स्वर्गलोक इस यज्ञभूमि में  
कपडे करि आछादित होओ ॥ का० २००६१६ महिषी आपही अश्व  
शिश्न को निकालि वृषा वाजीति अपनी योनि में रखे ॥ अश्व देवत्य  
म्। अश्व मेरे विषे वीर्य स्थापन करे कैसा अश्व कि सींचने वाला वी  
र्य का धारण करने वाला ॥ २० ॥

अ० ६ उत्सक्थ्या अव गुदं धेहि समञ्जिं चारया वृषन्। यस्त्रीणां  
जीवभोजनः ॥ २१ ॥

का० २००६१७ उत्सक्थ्या इति अश्व को यजमान अभिमन्त्रित करे ॥  
अश्व देवत्या गायत्री। हे वृषन् (सेक्तः) अश्व महिषी की गुदा के ऊप  
र वीर्य धारण करि कैसी महिषी कि उत्सक्थ्या (ऊंची हैं करूँ जिसकी)  
तिसकी। कथं तदाह किलिङ्ग की भले प्रकार योनि में प्रवेश करि जो

त पशुवे स्वर्ग लोको पत्र पशु हं सं प्रपयती  
ति १३.२.८.५ अन्तेः।



लिङ्ग स्त्रीओं का जीव भोजन है जिस लिङ्ग के योनि में प्रविष्ट होते स्त्रियों में जीवती और भोगों को प्राप्त होती हैं तिसै प्रवेश करि ॥२१॥

यका सको शकुन्तिका हलगिति वञ्चति । आहन्ति गमे य सो निगलालीति धारका ॥२२॥

का. २०. ६. १८. अध्वर्या दयः पञ्च हये- हये साविति नमोच्चारणपूर्वक हये हये प्रियं वदे- जघन चपले मन्मथ मोहिनीत्यादि संमुखी करि करिके दशर्च सम्बन्धिनी दे- दे ऋचाओं करि कुमारी पत्नीओं के साथ उपहास सहित भले प्रकार कहें तहां प्रथम अध्वर्यु कुमारी को पूजता है अर्थात् हये-हये कुमारी यका सको शकुन्तिकेति ॥ कुमार्यादिदेवत्या दशतन्मध्ये द्वितीयो परिष्ठाद्वहती अन्या नवानुष्टुभः ॥ अङ्गुल्या योनिं प्रदर्शयन्नाह । यका (या-जो) असको (असो-यह) शकुन्तिका (अल्पपक्षिणी) इव आहलक (हलेहले) शब्द करती हुई चलती है (स्त्रीओं की शीघ्रगमन में योनि हल हला शब्द करती है । जब कि शकुनिसदृश्या गम (भग) में लिंग आहन्ति (भले प्रकार जाता है तब धारका लिङ्ग की धारण करने वाली योनि) निगलालीति (निरन्तर में वीर्य को भरती है) चाहे जितनी पोंछो लिङ्ग के घुसते ही सरला होजाती है) यद्वा शब्दानुकरणम् गलाल शब्द करती है (जबकि विशेषतः सरला होजाती है तब गलाल शब्द निकलता है ॥२२॥

यको असको शकुन्तक आहलगिति वञ्चति । विवक्षत- इव ते मुख अध्वर्यो मा नस्त्वमभिभाषथाः ॥२३॥

कुमारी अध्वर्यु प्रति कहती है । अङ्गुल्यां शिरः प्रदर्शयन्त्याह । हे

न यह बोली अध्वर्यु को वीर्य को वाती है बोली जाती है पश्चात् दम कहती है दमारी बात नहीं जानते हो स्वयं कसम है सच नचमुहम है पश्य रसमी वसनात् नसम है रसमी अयं योनि समतपः न दमः

के शब्दानुकरणम्

५ वर्ण विपर्ययः यह भी उसी बोली-बोली जाती है पश्चात् तो या स्त्री ओं चेला आली ।

अध्वर्यो जो यह अल्पपक्षी इव बोलने को इच्छा करता तेरा मुख ऐसे  
से हलहल बोलता इधर उधर चलता है (अग्रभागमें सच्छिद्र लिंग ऐसे  
तेरा मुख भासे है) अतः हमारे प्रतिमति बोलि तुल्यत्वात् ॥ २३ ॥

माता च ते पिता च तेऽग्रे वृक्षस्य रोहतः । प्रतिला मीतिने  
पिता गर्भे मुष्टि मर्तठं सयत् ॥ २४ ॥

ब्रह्मा महिषी माह । हये-हये महिषि तेरे माता और पिता जब कि वृक्षज-  
नित (काष्ठमय) मुञ्च के ऊपर आरोहण करते हुए तब तेरे पिताने योनिमें  
मुष्टि तुल्य लिङ्ग (छोटा और मोटा दृढ़ होता है लम्बा पतला लंचिजाता  
है युक्तत्वात्) को डाला एवं तवोत्पत्ति वा लिङ्ग को उत्थान करि अलंकृत  
त किया प्रतिलामी (तेरे भोग से चिकना हुआ) यह कहि कर इति शेषः ॥ २४ ॥

माता च ते पिता च तेऽग्रे वृक्षस्य क्रीडन्तः । विवक्षत-इव ते  
मुखं ब्रह्मन्मा त्वं वदो बद्ध ॥ २५ ॥

अनुचरी सहिता महिषी ब्रह्मा प्रति कहती है । हे ब्रह्मन् तेरे माता और  
पिताने जब काष्ठमय मुञ्च के ऊपर में रमण किया तब तेरी उत्पत्ति है  
तवापि तुल्यम् (यत्रोभयोः समो दोषः परिहारोऽपि वा समः । नैकः  
पर्यन्तु योक्तव्यस्तादृगर्थविचारण इति न्यायात् तुरक रि यह कहना यो-  
ग्य नहीं इति भावः । एवं सत्यपि बोलने को इच्छा करता ऐसे तेरा मुख लखि  
ये है इति शेषः । हे ब्रह्मन् तू बहुत मत बोलि ॥ २५ ॥

ऊर्ध्वामेना मुच्छापय गिरौ भार्ठ हरन्निव । अथास्ये मध्यमे  
धतांश्शीते वाते पुनन्निव ॥ २६ ॥

उद्गाता वावाता माह । कंचिन्नरं प्रत्याह । हे नर इस वावाता को ऊँची उ-

ठाओ। कैसे कि जैसे कोई पर्वत के ऊपर भार को आरोहण करते निसे उ-  
ठाता है तैसे इसे ऊँची करो। कैसे ऊँची कीजिये तहां कहिता है जैसे इ-  
स वावाता की योनि बढि जावै तैसे बीच में पकडि कर उठाओ। दृष्टान्त-  
न्तर माह जैसे शीते वाते पुननिव- (धान्य पवन (परवत वाई) करिके  
कृषान धान्य पात्र (छवडा) को उठाता है तैसे ॥ २६ ॥

ऊर्ध्वमैन मुच्छयता द्विरे भार्ठं हरन्निव। अथास्य मध्यमे-  
जतु शीते वाते पुननिव ॥ २७ ॥

वावातो ज्ञातारं प्रत्याह। भवतोऽप्येतत्समानम्। हेनर इस उ ज्ञातार को  
ऊँचा उठाओ गिरे भारमिति पूर्ववत्। जैसे इस उ ज्ञाता का लिङ्ग काँपे  
लहके शीते वाते उक्तम् ॥ २७ ॥

यदस्या अर्द्धं भेद्याः कृधु स्थूल मुपात सत्। मुष्काविदस्या  
एजतो गोशुफे शकुला विव ॥ २८ ॥

होता परिवृक्ता माह। जबकि इस परिवृक्ता की छोटी योनि प्रति स्थूल लि-  
ङ्ग जाता है तब दोनों वृषण इस की योनि के ऊपर काँपते हैं अर्थात् योनि  
के छोटे होने और लिङ्ग के स्थूल होने से वृषण बाहिर रहते हैं। तत्र दृष्टा-  
न्तः जैसे उदक पूर्ण तडाग में गो के पद के नीचे मत्स्य काँपते हैं। कैसी  
इस की कि अर्द्ध भेद्याः (भगविरार्य है जिस की बा भग भेदिये है जिस  
की ॥ २८ ॥

यदेवासौ ललामगुं प्र विष्टीमि नुमा विष्टुः। सक्त्वा देदिश्य  
ते नारी सत्यस्यासि भुवो यथा ॥ २९ ॥

परिवृक्ता होतार माह। जब देवासः (देवता) क्रीडा करते हैं होत्रा दिश्य-

जबकि पवन मही चलता तब वे पवन पार हो दोहने वर को रोहरा कर दोहो होया से पवन चलाने है

विजलोग (ललामगु) लिङ्ग को योनि में प्रवेश करते हैं। ललामेति सुखना  
म. सुख को प्राप्त होता है लिङ्ग वालिङ्ग योनि में प्रवेश करके उठता पुण्ड्रा-  
कार होता है। कैसा है लिङ्ग कि विशेषण गीला अर्थात् लिङ्ग योनि प्रवे-  
श में भी गिजाता है। जबकि देवता (शिशु क्रीडी लोग) लिङ्ग को योनि में प्र-  
वेश करते हैं तब स्त्री ऊरुओं करि अत्यन्त लखिये है अर्थात् भोग समय  
में स्त्री के सब अङ्गों के पुरुष व्याप्तत्व से ऊरुमात्र से ही लखिये है कि यह  
स्त्री है। तत्र दृष्टान्तः सत्यस्याक्षिभुवो यथा इति सत्य दो प्रकार का औरों  
का देखा और कानों का सुना- जैसे कोई अक्षिभुवा प्रत्यक्ष सत्य  
करि अत्यन्त लखिये है तहां विश्वास होता है तैसे ऊरुओं करि देखने  
से नारी लखिये है इत्यर्थः। ओत्र ग्राह्येतु सत्ये वक्तु रास तमत्वमपे-  
क्षितम् ॥ २६ ॥

यद्धरिणो यवमति न पुष्टं पशु मन्यते । शूद्रा यदर्यजा-  
रा न पोषाय धनायति ॥ ३० ॥

क्षत्ता पाला गलीमाह। जबकि हिरण क्षेत्रस्थ धान्य को भक्षण करता  
है तब क्षेत्री पशु (हिरण) को पुष्ट हुआ नहीं मानता अर्थात् मेरे धान्य भ-  
क्षण से पशु पुष्ट हुआ यह भला नहीं जानता कि तु मेरे क्षेत्र को खाया इ-  
ससे दुःखी होता है। एवं शूद्र जाति स्त्री अर्यजारा होती है अर्थात् वैश्य  
जब शूद्रा प्रति जाता है तब शूद्र पुष्टि को नहीं इच्छा करता (मेरी स्त्री वै-  
श्य के भोग से पुष्ट हुई नहीं इच्छा करता किंतु व्यभिचारिणी हुई यह  
दुःखी होता है ॥ ३० ॥

यद्धरिणो यवमति न पुष्टं बहु मन्यते । शूद्रो यदर्यजे

जारे न पोष मनु मन्यते ॥३१॥

पालागली क्षतारमाह । जव हिरण क्षेत्रवाताहै तव ब्रह्म जैसै तैसै प-  
शु को पुष्ट नही मानता इदं भवतोऽपि तुल्यम् इयान्विशेषः जब शू-  
द्र वैश्याकाजार होताहै तब वैश्य पुष्टि को नही मानता अर्थात् मेरी स्त्री  
पुष्टा हुई यह नही भन्ना मानता किंतु शूद्र (नीच) ने भांगी यह लेश  
पाता है ॥३१॥ इति श्लील भाषणं (गालीबकना) समाप्तम् ॥

दधि क्रावोऽश्वकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः । सुरभि-  
नो मुखं कर्त्तव्यं आयुर्धृषितारिषत् ॥३२॥

का० २० ई० २१ महिषी (यजमान की प्रथम परिणीता पत्नी) अश्व समीप  
में सीती हुई को उठाकर अध्वर्यु ब्रह्मा उद्गाता होता क्षता मन्त्र को पढ़े ॥ वा-  
मदेवात्मज दधि क्राव दृष्ट्वा श्वदेवत्यानुष्टुप् सुरभि मती । हम अध्वर्या  
दि कीं ने बुरा काम किया अश्लील भाषण मिति शेषः । किमर्थम् अश्व के  
संस्कारयेति शेषः अर्थात् अश्व संस्कार के लिये श्लील भाषण किया । कै-  
से अश्व के कि दधि क्रावा (मनुष्य को धारण करते चलता है) तिसके ।  
जयन श्लील के । चलने वाले के । हमारे मुख सुगंधित करें यज्ञ इति  
शेषः अर्थात् श्लील भाषण से दुर्गन्ध प्राप्त मुखों को यज्ञ सुगंध करें ।  
किंच हमारे आयुर्धृषि (वाल्म्य यौवन वार्धक्य जीवनो को बढ़ावें) मंठव-  
क ने गाली देने से मुख में दुर्गन्ध हो जाती और अवस्था घट जाती है इ-  
स कारण मुखों में सुगन्ध और जीवन की वृद्धि यज्ञ से प्रार्थना की ॥ इ-  
ति सुरभि मती ऋक् ॥३२॥

अ० ७ गायत्री त्रिष्टुब्ज गत्यनुष्टुप् ऋक् सहा । बृहत्पुष्णिहा

+ सुरभि मती भव मनोऽनुष्टुप् ऋक्  
युक्त इति १३२ ई० अ० ७ अ० ७

ककुप्सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥३३॥

का० २०७१ गायत्री त्रिष्टु विति षड्च दो-दो ऋचाओं करि महि-  
ष्याद्याः तीनों पत्नीएँ ताम्ररूप्य स्वर्णमयी प्रत्येक १०१-१०१-१०१  
एकाधिकशत सूचीओं से अश्वके अङ्गमें शासके मार्गों को करें (शासके  
सुख प्रवेश के लिये सुईयों से वितुन-वितुन के अश्वत्वच को जर्जरी  
करें ॥ अश्वदेवत्याः षड्चः आद्योष्णिक् । हे अश्व गायत्री त्रिष्टु पूजग  
ती अनुष्टुप् पङ्क्ता करि सहित ब्रह्मती उष्णिक् सहित ककुपये छन्दांसि  
इन सूचीओं से तुम्हें संस्करें (विकरण व्यत्यय असि पथ के अर्थ त्वग्भेद  
न संस्कार है ॥३३॥

द्विपदा याश्चतुष्यदास्त्रिपदा याश्च षट्पदाः । विछन्दा

याश्च सछन्दाः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥३४॥

चतस्रोऽनुष्टुभः ॥ दोपद हैं जिन्हें के ते जे चारिपद के जे तीनिपद के जे  
छेपद के जे छन्द लक्षण हीन जे छन्द लक्षण युक्त ते सब छन्दों की जा  
तियें हे अश्व सू० ॥३४॥

महानाम्न्यो रेवत्यो विश्वा आशाः प्रभूवरीः । मेधीर्विद्युतो

वाचेः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥३५॥

महत् नाम जिन्हें के ते महानाम्नी शक्य ऋचाएँ । जिन ऋचाओं में स-  
म गाया जाता हे वे रेवती । सब दिशाएँ । कैसी दिशाएँ कि प्रभूवरीः (स-  
व भूतों के धारण करने की समर्थ हैं । मेघसे उठी विजली और वेद  
क्षणावाचा । ये सब हे अश्व ० ॥३५॥

नार्यस्ते पत्न्यो लोम विचिन्वन्तु मनीषया । देवानां पत्न्यो

दिशः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥३६॥

हे अश्व नारियें (स्त्रियें) तेरे रोमों को मन से क्वारि उखेड़ें। कैसी स्त्रियें कि यजमान भार्या (महिष्याद्या) पति हैं। किंच इन्द्रादि देवताओं की पति हैं प्राच्याद्यादिशाएँ हे अश्व ॥३६॥

रजता हरिणीः सीसा युजो युज्यन्ते कर्मभिः। अश्वस्य वा-  
जिनेस्त्वचि सिमाः शम्यन्तु शम्यन्तीः ॥३७॥

रजताः (रजतमय्यः) हरिणीः (सुवर्णमय्यः) सीसाः (ताम्रमय्यः) तीनि प्रकारकी सूचीएँ होती हैं लोहमयी रजतमयी हिरण्मयी दिशाएँ लोहमयी अवान्तर दिशाएँ रजतमयी ऊर्ध्वा हिरण्मयी तिन्हों से सीमा करती हैं + सूचीओं का दिग्वृत्त होने से अश्व संस्कार क्षमत्व है ते सूचीएँ कर्मों करि अश्व देह में सीमाकरण योग्या होती हैं। कैसी हैं ते किएकी भूताः। ते सूचीएँ वेगवान् अश्व त्वचा में भले प्रकार रेरवाएँ करें। कैसी हैं कि संस्कार करने वाली हैं ॥३७॥

कुविदङ्गः यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वविषूयः इहे-  
हैषां कृणुहि मोजनानि ये वर्हिषो नमउक्तिं यजन्ति ॥३८॥

व्याख्याता १०३२ अ. ॥३८॥

अ० ८ कस्वाक्यति कस्वा विशास्ति कस्ते गात्राणि शम्यति। क  
उ ते शमिता कविः ॥३८॥

का० २०७६ षडृच अनुवाक करि अश्व के उदर को फाँड़े मेद के उ-  
दरण के अर्थ वपा के अभाव से उदर मध्यस्थ घृताभश्चेत मांस को मेद  
कहते हैं ॥ अश्वदेवत्या षडृचः आद्या गायत्री। हे अश्वकः (प्रजापति) तु

मे छेदता है। हे अश्व प्रजापति तुम्हें विशास्ति त्वचा काटता है। तेरे गा-  
त्रों को शमन करि हविकरता है। और प्रजापति ही मेधावी तेरा शमि-  
ता शमन करनेवाला अर्थात् प्रजापति ही सब करता है कुछ मैं न  
हीं करता हूँ ॥३६॥

ऋतवस्तः ऋतुथा पर्व शमितारो विशासतु। संवत्सर-  
स्य तेजसा शमीभिः शम्यन्तु त्वा ॥३७॥

पञ्चानुष्टुभः। हे अश्व ऋतुएँ शमितारः ऋतुथा (काल-कालमें) तेरे  
पर्वों (अस्थिग्रन्थियों) को कर्मों करि भिन्न करें। किस करि कि संवत्सर  
त्यक काल के तेज से। किंच ऋतुएँ तुम्हें पर्वविशासन करि हविकरें ॥३८॥

अर्धमासाः परूथंषि ते मासा आच्छेन्तु शम्यन्तः। अहो-  
रात्राणि मरुतो विलिष्टं सूदयन्तु ते ॥३९॥

परवारे और महीने तिन्हों के अभिमानी देवाः संस्कार करते हे अश्व  
तेरे पर्वों को भले प्रकार छेदें। किंच अहोरात्राभिमान्नी देवा और मरुदे-  
वा तेरे अल्प अङ्गों को व्यर्थ न होने दें ॥४०॥

दैव्या अध्वर्यवस्त्वाच्छेन्तु वि च शासतु। गात्राणि पर्वश-  
स्ते सिमाः कृण्वन्तु शम्यन्तीः ॥४१॥

देव सम्बन्धनी अश्विनी कुमार अध्वर्यु हे अश्व तुम्हें समन्तात् छेदें  
और हविकरें किंच तेरे शरीरों पर्वों-पर्वों में मर्यादा (रेखा) करे केसी रे-  
खा है कि संस्कुर्वाणाः ॥४२॥

शोस्ते पृथिव्यन्तरिक्षं वायुश्चिद्रूपेणानु ते। सूर्यस्ते नक्ष-  
त्रैः सह लोकं कृण्वन्तु साधुया ॥४३॥



स्वर्गपृथिवी अन्तरिक्ष तीनों लोकों के अभिमानी देवाः अग्नि वायु सूर्य और वायु (शरीरस्थ प्राणादि) हे अश्व तेरे छिद्रों (न्यूनों) को पूरे किं च नक्षत्रयुक्त सूर्य तुझे उत्तम लोक देवे ॥४३॥

शान्ते परंभ्यो गात्रेभ्यः शमस्त्ववरेभ्यः । शमस्थभ्यो मज्जाभ्यः शमस्तु तन्त्रे तव ॥४४॥

हे अश्व तेरे ऊंचे अवयवों (शिरादिकों) के अर्थ सुख हो । और नीचे गात्रों (पादादिकों) के अर्थ सुख हो । तेरे अस्थों (हड्डों) और मज्जा के अर्थ सुख हो किम्बहुना तेरे सब शरीर का भी सुख हो ॥४४॥

अथ ब्रह्मोद्यम्

अ० ४ कः स्विदेकाकी चरति क उ स्विज्जायते पुनः । किं स्विद्विमस्य भेषजं किम्बावपनं महत् ॥४५॥

का० २००७१०० वषा होम से पहिले चारि ऋचाओं से पूर्व वदुक्ति प्रत्युक्त्वा सद्के मध्यमें जाकर होता और अध्वर्यु संवाद करें ॥ अष्टादश ऋचो ब्रह्मोद्य संज्ञाः ब्रह्मोद्यं परस्परं संवादः आद्याश्च तस्मिन्नुष्टुमः ४५-४८ चतुस्त्रिष्टुमः ४९-५२ ततश्च तस्मिन्नुष्टुमः ५३-५६ पुनः षड्विष्टुमः ५६-६२ होताध्वर्यु पृच्छति व्याख्याता ४ ॥४५॥

सूर्य एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः । अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत् ॥४६॥

अध्वर्यु प्रत्याह । व्याख्याता १०० ॥४६॥

किं स्वित्सूर्य समं ज्योतिः किं समुद्र समं सरः । किं स्विन्मृगिष्ये वर्षीयः कस्य मात्रा न विद्यते ॥४७॥

अध्वर्युर्होतारं पृच्छति। हे होतः सूर्य मण्डल तुल्य तेज कौन है तिसैक  
हु। समुद्र समान सर कौन। पृथिवी के सकाशसे वर्षीय(महत्तर) कौन कि-  
सका परिमाण नहीं है ॥४७॥

ब्रह्म सूर्य समं ज्योतिर्द्यौः समुद्र समं सरः। इन्द्रः पृथिव्यै।  
वर्षी यानोस्तु मात्रा न विद्यते ॥४८॥

होता प्रत्याह। सूर्य समान ज्योति ब्रह्म(त्रयीलक्षण वा पर) है। समुद्र स-  
म सर द्यौ(अन्तरिक्ष) है क्योंकि वृष्टि होती है। पृथिवी के सकाशसे इन्द्र  
वर्षीयान्(वृद्धतर) है। और गौ(धेनु) का परिमाण नहीं है (यज्ञ धारकत्वा-  
त् ॥४८॥

पृच्छामि त्वा चितये देव सरव यदि त्वमत्र मनसा जगन्म-  
येषु विष्णुस्त्रिषु पदेष्वेष्टस्तेषु विश्वं भुवनमाविवेशी-  
३॥गी॥४९॥

का० २०. ७. ११. ब्रह्मा उद्गाता को पूछे चारि ऋचाओंसे सदमें ॥ ब्रह्मा  
उद्गातारं पृच्छति। हे देवताओं के मित्र उद्गातः तुम्हें ज्ञान के अर्थमें  
पूछता हूँ यहाँ मेरे किये प्रश्नमें जो कि तू मन करि जानता है। किं पृ-  
च्छसीत्यत आह- विष्णु (यज्ञ) जिन तीनों पदों (गार्हपत्या हवनीयद-  
क्षिणाग्नि) में याग करि तर्पित है तिन तीनों पदों में सब भूत जात प्र-  
विष्ट हैं वानही ॥४९॥

अपि तेषु त्रिषु पदेष्वस्मि येषु विश्वं भुवनमाविवेशी-  
सद्यः पर्येमि पृथिवीमुत घामेकेनाङ्गेन दिवोऽप्य-  
पृष्ठम् ॥ ५० ॥

+ भुवनमाविवेशी इति व्याख्येयः

उद्गाता प्रत्याह । जिन तीनों पदों में सब भूतजात प्रविष्ट हैं जो तूमें पूछा ति-  
न्ही तीनों पदों में में भी स्थित हूँ और तूभी तहां ही है कि मे ताव देव जान-  
ता हूँ किंतु पृथिवी द्यां (स्वर्ग) दिवः (स्वर्ग) का उपरि भाग भी सद्यः (स्व-  
क्षणमेव) एके नाङ्गेन (मन करि) पर्येमि (जानता हूँ) किंमुने भूतानि  
प्रविष्टास्तीति भावः ॥ ५० ॥

केष्वन्तः पुरुष आविवेश कान्यन्तः पुरुषेऽर्पिता-  
नि । एतद्ब्रह्मन्नुपवल्हामसि त्वा किं स्थिन्नः प्रतिवो-  
चास्यत्र ॥ ५१ ॥

उद्गाता ब्रह्माणं पृच्छति । हे ब्रह्मन् पुरुष किन पदार्थों के मध्यमें  
समन्तात् प्रविष्ट है । पुरुष के मध्य में कौन वस्तु स्थापित हैं । एतत्  
तुमै स्पर्धा करि पूछता हूँ । इस प्रश्न में क्या तू कहिता है ॥ ५१ ॥

पञ्चस्वन्तः पुरुष आविवेश तान्यन्तः पुरुषेऽर्पिता-  
नि । एतत्त्वात्र प्रतिमन्वानोऽपस्मि न मायया भवस्युत्त-  
रे मत् ॥ ५२ ॥

ब्रह्मा प्रत्याह । पुरुष (आत्मा) पांचो प्राणों के मध्यमें प्रविष्ट हैं ते (प्रसिद्ध)  
श्रोत्राधिकरण पुरुष के मध्य में स्थापित हैं (प्राणात्मना मन्योऽन्यापेक्षासि-  
द्धिरित्यर्थः) न चात्मानमन्तरेण प्राणाः ख्यायन्ते त प्राणानन्तरेणा-  
त्मेति बहुच श्रुतेः यद्वा पांचो भूम्यादि भूतों में आत्मा प्रविष्ट है औ-  
र ते आत्मा में प्रविष्ट हैं (तानि सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशदिति श्रुतेः) । हे  
उद्गातः मैं इस प्रश्न में यह उत्तर देता हूँ । किंच बुद्धि करि मूर्खसे उत्तर  
अधिक तू नहीं (मूर्खसे बुद्धिमान नहीं है) ॥ ५२ ॥

अ० १० का स्विदासीत्यूर्वचिन्तिः किं स्विदासी हृहृदयः । का स्विदा-  
सीत्यिलिप्यिला का स्विदासीत्यिशंगिला ॥ ५३ ॥

का० २० ७. १२ फिरि सदसै निकलकर हविर्धान के सामने उत्तर वेदिके  
पीछे बैठकर होता अध्वर्यु चारि ऋचाओं से संवाद करें ॥ होना अध्वर्यु पृ-  
च्छति । व्याख्याता ११ ॥ ५३ ॥

द्यौरासीत्यूर्वचिन्तिरश्व आसी हृहृदयः । अविरासीत्यिलि-  
प्यिला रात्रिरासीत्यिशंगिला ॥ ५४ ॥

अध्वर्यु प्रत्याह । व्याख्याता १२ ॥ ५४ ॥

क ईमरे पिशंगिला क ई कुरु पिशंगिला । क ई मास्कन्द-  
मर्षति क ई पन्थां विसर्पति ॥ ५५ ॥

अध्वर्यु होतार पृच्छति । अरे होतः कौन पिशंगिला और कौन कुरुपिशंगि-  
ला और कौन फुद्दी मारिके चलता और कौन मार्ग प्रति सरपट्टा भर-  
ता है ॥ ५५ ॥

अजारे पिशंगिला आवित्कुरुपिशंगिला । शश आस्कन्द-  
मर्षत्यहिः पन्थां विसर्पति ॥ ५६ ॥

होता प्रत्याह । अरे अध्वर्यो अजा (नित्या माया वा रात्रि) रूप को भक्षण  
करती है । आवित् (सेही) कुरु (शब्दानुकरण) पिश (अवयव) कुरु कु-  
रु शब्द करती हुई मूलाद्यवयवों को निगलती है ५ । शश (सस्सा) फुं-  
दक-फुंदक करि चलता है । सर्प मार्ग को विशेषण जाता है ॥ ५६ ॥

कत्यस्य विष्ठाः कत्यक्षराणि कति होमासः कतिधा स-  
मिद्धः । यज्ञस्यै त्वा विदया पृच्छमत्र कति होतार ऋतु-

५ कुरु इति शब्द कुर्वीणा पिशान्मूलाद्यवयवाभिलति पिशंगिला मूलानां शतं कुक्षो ग्यापय-  
ति शतं च भक्षयतीति सेधायाः स्वभावः ।

अरे इति नीच मन्त्रो धनम् ।  
पिशंगिला (माया) अध्वर्युसुते गवा-  
वपि रूपानि न प्रतीयन्ते तमसः ।

शो यजन्ति ॥ ५७ ॥

का० २०७०१३० उत्तरी पश्चादुक्तौ ब्रह्मा और उद्गाता चारि ऋचाओं से संवाद करें। ब्रह्मोद्गातारं पृच्छति। इस यज्ञ के कितने विष्टाः (विशेषणति) छे हे यज्ञ जिन्हों में ते अन्न हैं। और अक्षर कितने। होम कितने। समिधाएँ कितनी। यज्ञवेदित्व हेतु करि इस स्थान में तुम्हें में पूछता हूँ कि ऋतु-ऋतु में कितने होता पूजते हैं ॥ ५७ ॥

षडस्य विष्टाः शतमक्षराण्यशीतिर्होमाः समिधो ह  
नित्तः। यज्ञस्य ते विदथा प्रब्रवीमि सुप्त होतार ऋतुशो  
यजन्ति ॥ ५८ ॥

उद्गाता प्रत्याह। इस यज्ञ के छे ६ अन्न हैं (सर्वेषां मन्त्रानां षड्रसात्मत्वात्)। शत अक्षर हैं (छन्दों से) यज्ञ निष्पादन करिये हैं और ते छन्द गायत्र्यादि अतिधृत्यन्त चतुर्दश चतुर्विंशत्यक्षरादि चतुर्वर्णान्तर तिन्हें की क्रमोत्क्रमगति करि दो मिलने से शत अक्षर होते हैं। तथाहि। गायत्री २४ अक्षर अतिधृति ७६ एवं १०० उषाक् २८ धृति ७२ एवं १०० अनुष्टुप् ३२ अत्यष्टि ६८ एवं १०० वृहती ३६ अष्टि ६४ एवं १०० पङ्क्ति ४० अतिशक्ती ६० एवं १०० त्रिष्टुप् ४४ शक्ती ५६ एवं १०० जगती ४८ अतिजगती ५२ एवं १०० अनेनाभि प्रायेण शतमक्षराणीत्युक्तम्। अशीष् होम हैं (अश्व मेघ में इक्कीस २१ यूप हैं तहां अग्निष्ट मध्यम यूप में अश्व तू परगोमृगों को जोड़ें इतरों में षोडश पशुओं को तहां बीस २० यूपों में चारि-चारि अशीष् पशु होते हैं इत्यभि प्रायेणोक्तम् अशीतिर्होमाः॥ ह (स्फुटं) नीनि ३ समिधाएँ अश्व तूपर गोमृग प्रजापति के पशु हैं न

द्रूपा समिधाऽग्रे से यज्ञ प्रकाशे है। किंच सप्त० होतारः (बषट्कर्तारः) + अ. २  
का. २३. अ. २६  
ऋतुयज्ञों में यजते हैं ॥ ५८ ॥

कोऽस्य वेद भुवनस्य नाभिं को द्यावा पृथिवीऽअन्तरिक्षम्। कः सूर्यस्य वेद बृहतो जनित्रं को वेद चन्द्रमसं यतो जाः ॥ ५९ ॥

उद्गाता ब्रह्माणं पृच्छति। हे ब्रह्मन् इस भूतका नाभि (वन्धन स्थान) कारण) कौन जानता है। द्यावा पृथिवी और अन्तरिक्षको कौ०-हैं। वडे सूर्यकी उत्पत्ति किससे है। यतः चन्द्रमाकी उत्पत्ति तिसे कौन जानता है ॥ ५९ ॥

वेदाहमस्य भुवनस्य नाभिं वेद द्यावा पृथिवीऽअन्तरिक्षम्। वेद सूर्यस्य बृहतो जनित्रमर्थो वेद चन्द्रमसं यतो जाः ॥ ६० ॥

इस भुवन का कारण मैं जानता हूँ परब्रह्मैव जगत्कारण है। द्यावा पृथिवी और अन्तरिक्ष को ब्रह्मका विकार भूत जानता हूँ। वडे सूर्यका उत्पत्ति कारण ब्रह्म ही जानता हूँ। और यतः परमात्मा से दृष्टा चन्द्रमाको जानता हूँ ॥ ६० ॥

पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः। पृच्छामि त्वा वृषोऽअश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योम ॥ ६१ ॥

का० २० ७. १४. यजमानोऽध्वर्यु पृच्छति। हे अध्वर्यो पृथिवी का परमन्त (अवधिभूतपर्यन्त) तुम्हें मैं पूछता हूँ। जिस स्थल में भूतजात का कारण वोह भी तुम्हें पू० सीचने वाले अश्व के वीर्यको तु० वाणी (त्रयीलक्षणा)

के उत्कृष्ट स्थान को तुम्हें पूछता हूँ ॥६१॥

इयं वेदिः पुरोऽन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य ना-  
भिः । अयं सोमो वृषणोऽश्वस्य रेतः ब्रह्मायं वाचः  
परमं व्योम ॥६२॥

का० २००७०१५ अश्वर्युः यजमानं प्रत्याह । यह वेदि (उत्तरवेदि) पृथिवी  
की परअवधि है (वेदेः सर्वपृथ्वीरूपत्वात्) । यह यज्ञ (अश्वमेध) प्राणिजा-  
त का कारण है (यज्ञाद्वै प्रजाः प्रजायन्त इति श्रुतेः) । यह सोम (सोमलता)  
अश्व का वीर्य है । यह ब्रह्मा (ऋत्विक्) वाणी (त्रयीरूपा) का परमस्थान  
है (ब्रह्मणः स्त्रिवेदसंयोगात् ॥६२॥ ॥ इति ब्रह्मसोद्यं समाप्तम् ॥

अ० ११ सुभूः स्वयम्भूः प्रथमोऽन्तर्महत्पुर्णवे । दधे ह गर्भमृत्वि-  
यं यतो जातः प्रजापतिः ॥६३॥

सुभूरिति पूर्वस्य महिम्नः पुरोऽनुवाक्या उत्तरस्य याज्या च । उदिते ब्र-  
ह्मसोद्यं सम्प्रपद्याध्वर्युर्हिरण्यमेन पात्रेण प्राजापत्यं महिमानं ग्रहं गृ-  
ह्णाति तस्य पुरोरुग्धिरण्यगर्भः समवर्तताग्र इत्यथास्य पुरोऽनुवाक्या  
सुभूः स्वयम्भूरिति १३.५.२.२३ श्रुतेः । प्रजापतिदेवत्यानुष्ठुप् । पुरुषः म-  
हति अण्वेव (कल्पान्तकालीनसमुद्र) के मध्यमें गर्भको स्थापन करता हू-  
आ । कैसा कि सुभू (विश्वोत्पादक) स्वयं भू (स्वेच्छाधृत शरीरः) । कैसे गर्भको  
कि ऋत्विग्यम् (प्राप्तकालम्) जिस गर्भ से प्रजापति ब्रह्मा उत्पन्न हुआ ॥६३॥

होता यज्ञत्प्रजापतिर्ऋं सोमस्य महिम्नः । जुषतां विबतु से-  
मर्धं होतुर्यज ॥६४॥

प्राजापत्यः महिम्नः प्रेषः । होता यक्षत्प्रजापतिमिति प्रेष इति १३.५.२

२३ श्रुतेः। यजुः। महिमसंज्ञकसोमग्रह के सम्बन्धि प्रजापति को देवो हो-  
ता यजन करे। इज्यमान वोह प्रजापति सेवन करे और सोममहिम ग्रह  
को पीवै। हे मनुष्य होतः तू भी यजन करि ॥६४॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परि ता बभूव। य-  
त्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽस्तु वयथ्स्योम पतयो रयीणाम् ॥६५॥

इति संहितायामेकादशोऽनुवाकः ११

इति श्री सुक्तयजुषिमाध्यन्दिनीयायां वाजसनेयसंहितायां  
दीर्घपाठे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

पूर्वस्य महिम्नो याज्या। प्रजापतेन त्वदेतान्यन्य इति होता यजतीति-  
२३ ५ २ २३ श्रुतेः। हिरण्यगर्भदृष्टा प्रजापतिदेवत्या त्रिष्टुप्। दशमे  
अध्याये २० अ. यजुर्मध्या व्याख्याता अत्रतुं ऋगियम् ॥६५॥

इति भाष्ये एकादशोऽनुवाकः ११

श्रीवेदार्थ प्रदीपेन तमोहार्दनिवारयन्  
पुमार्थाश्चतुरो देया धर्मपुत्री युधिष्ठिरः २३

श्री मच्छुक्त यजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनी शाखाध्येत व्याघ्र पादान्व-  
य विश्वामित्रपुराधिप श्रीमज्जय किशोर देव वर्मात्मज ऐकमणेय  
नृपतिगिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थ प्रदीपे गिरिधरभाष्ये आश्वमेधि  
कस्त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

हरिः शोम्  
गोनमोयत्तपुरुषाय



पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनेर्वह्निरूपकम्

स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परंस्तुमः २४

अ. १

अश्वस्तूपरो गोमृगस्ते प्राजापत्याः कृष्णाग्रीव आग्नेयो  
रराटे पुरस्तात्सारस्वती मेष्पुधस्ताद्वन्वी राश्विनावधोराभो  
बाह्वोः सौमायोषणः श्यामो नाभ्याथं सौर्ययामो श्वेत-  
श्च कृष्णश्च पार्श्वयोस्त्वाष्टौ लोमशसंवथो सवथ्योर्वी-  
यव्यः श्वेतः पुच्छइन्द्राय स्वपस्याप वेहहैष्णवो वा-  
मनः ॥१॥

ओं नमो याज्ञवल्काय

गिरिप्रसादसंगेन वेदभाष्ये समीर्यते

वेदनेत्रमितोऽध्यायो देवतापशुवाचकः २४

श्रुतिरूपमन्त्रा आश्वमेधिकानां पशूनां देवतासम्बन्धविधायिनोऽध्या-  
येनोच्यन्ते ॥ का. २०. ६. २-५. अग्निष्टेऽश्वतूपरगोमृगान्नियुनक्ति य-  
थोक्तमश्वदो देवताः यथाश्वस्तूपरोऽध्यायः पर्यङ्मानश्च पञ्चदश-  
पञ्चदशरेहितादीन्सौर्यान्तानितरेषु ॥ तत्राश्वमेधे एकविंशतिर्यूपाः  
सन्ति तत्र मध्यमो यूपोऽग्निष्टसंज्ञः तत्र सप्तदश पशवो नियोजनीयाः  
तान्देवतासम्बन्धकथनपूर्वकमाह । अश्वस्तूपरो गोमृगस्ते प्राजापत्याः ।  
अश्वः तूपरः (शृङ्गोत्पत्तिकालेऽतीतेऽपि शृङ्गहीनः) गोमृगः (गवयः)  
एते प्राजापतिर्देवताः ततः प्राजापतये जुष्टं नियुनज्मीति मन्त्रेण ब-  
न्धनीयाः । एवमग्रेऽपि यो यद्देवत्यः पशुः सः अमुष्मे जुष्टं नियुनज्मी-  
त्यादिमन्त्रैर्बन्धनीयः ॥ आग्नेयोऽग्निर्देवतः कृष्णाग्रीवः श्यामव-

एगलोऽजः अश्वस्य पुरस्तात् ललाटे उपायेन बन्धनीयः। हन्वीरथ सा-  
त्सारस्वती मेघी बन्धः। आश्विनावधीरामौ अधोभागे सुक्तवर्णवज्रो-  
बाह्वोः अश्वस्य पूर्वपादयोरेकैकः। सोमपूषदेवत्यः श्यामः सुक्तकृष्ण-  
रोमाजोऽश्वस्य नाभ्यां बन्धः। श्वेतः कृष्णश्च सौर्ययामौ श्वेतः पशुः सूर्य-  
देवतो दक्षिणपार्श्वे बन्धः। यमदेवतः कृष्णोऽश्ववामपार्श्वे। त्वाष्ट्रोऽन्व-  
ष्ट्रदेवतो लोमशसक्थौ बहुरोमपुच्छिकौ पशू अश्वस्य सक्थ्योऽरुवोः।  
आत्यदयोरेकैकः। वायव्यः श्वेतवर्णः पशुरश्वस्य पुच्छे। स्वपस्यायशो-  
भनकर्मणे इन्द्राय स्वपस्येन्द्र देवता वेहतर्गमघातिनी वैष्णवो वाम-  
नः पशुश्च पुच्छेऽएव अङ्गान्तरानुक्तेः॥ एवमश्वदिभिः सह पञ्चदश-  
भवन्ति एते पर्यङ्का उच्यन्ते। अत्राश्वस्य शरीरं तरणाय तृवीफलवद्-  
ज्जुं बद्धागुम्फनीयम् ततः कृष्णग्रीवः आग्नेयो रराट् इत्यादयोऽश्व-  
स्य शरीरे यथोक्तस्थाने सम्बद्धायां रज्ज्वा बन्धनीयाः ततो रोहितो धूम्र-  
रोहित इत्यादयो द्वादशसंख्याकाः शितिबाहुरन्यन्तः शितिबाहुः समन्त-  
शितिबाहुस्ते बार्हस्पत्या इत्यन्ता मध्यमे एव यूपे नियोज्याः सप्तदशैव  
पशून्मध्ये यूपः आलभतः इति १३. ५. १. १५. श्रुतेः तत्र त्रयोऽश्वतूपर-  
गोमृगाः द्वौ चाग्नेयावेकादशिनौ द्वादश रोहितादयः एवं सप्तदश म-  
ध्यमे यूपे। ततः पृषती क्षुद्रपृषतीत्यादीनां श्वेताः सौर्या इत्यन्तानां १५  
शतत्रयसंख्याकानां पशूनां मध्ये पञ्चदश-पञ्चदश पशूनेकैकस्मिन् यूपे  
युनक्ति। एवमितरेषु यूपेषु पञ्चदश-पञ्चदशैते पशवः एकैकश्चै-  
कादशिनः। एवं मध्यमयूपव्यतिरिक्तेषु विंशतियूपेषु षोडश-षोडश  
पशवो भवन्ति षोडश-षोडशैतरेष्विति १३. ५. १. १५. श्रवणात्॥ १॥

रोहितो धूम्ररोहितः कर्कन्धुरोहितस्ते सौम्या बभ्रुररुणबभ्रुः  
शुकबभ्रुस्ते वारुणाः शितिरन्ध्रोऽन्यतः शितिरन्ध्रः समन्त-  
शितिरन्ध्रस्ते सावित्राः शितिबाहु रन्यतः शितिबाहुः स-  
मन्तशितिबाहुस्ते बार्हस्पत्याः पृषती क्षुद्रपृषती स्थू-  
लपृषती ता मित्रावरुण्यः ॥२॥

रोहितः सर्वरक्तः धूम्ररोहितः धूम्रवर्णमिश्रो रक्तः तृतीयः कर्कन्धुरो-  
हितः बदरसदृशरक्तः ते त्रयः सौम्याः सोमदैवत्याः सोमाय जुष्टं नियु-  
नज्मीत्यादिमन्त्रेण प्रत्येकं मध्यमे यूपः एव नियोज्याः । ततो बभ्रुः क-  
पिलवर्णः अरुणबभ्रुः अरुणवर्णमिश्रः कपिलः शुकबभ्रुः शुकवर्ण-  
समवर्णः कपिलश्च ते त्रयो वारुणाः वरुणदैवत्याः मध्यमयूपः एव ।  
शिति कृष्णं रन्ध्रं छिद्रं यस्य स शितिरन्ध्रः अन्यतद्व्येकपार्श्वे शिति-  
रन्ध्रः एते सारस्वताः मध्यमे एव । शितिबाहुः श्वेतपूर्वपादः अन्यतः  
शितिबाहुः एकस्मिन्नेव पार्श्वे शितिपादः समन्तशितिबाहुः सर्वश्वेत-  
बाहुः शिती धवलमेचको एते बार्हस्पत्याः बृहस्पतिदैवत्याः मध्यमे  
एव ॥ ॥ अथ द्वितीययूपे । पृषती विचित्रवर्णविन्दुयुक्तशरीरा क्षुद्र-  
पृषती सूक्ष्मविचित्रविन्दुयुक्ता स्थूलपृषती स्थूलविचित्रविन्दुयुक्ता  
एते स्त्रीपशवो मित्रावरुण देवताः द्वितीये यूपे नियोज्याः ॥२॥

शुद्धवालः सर्वशुद्धवालः मणिवालस्तः आश्विनाः श्वेतः  
श्वेताक्षोऽरुणस्ते रुद्राय पशुपतये कर्णा यामा अवलिक्ता  
रौद्रा नभोरूपाः पार्जन्याः ॥३॥

शुद्धवालः शुभ्रवालः सर्वशुद्धवालः मणिशुद्धवालः मणिवर्णकेशः

ते त्रय अश्विदैवत्याः द्वितीये । श्वेतः श्वेतवर्णः श्वेताक्षः श्वेतनेत्रः अस्-  
 णः रक्तः ते त्रयोरुभय पशुपतये पशुपतिरुद्रदेवता द्वितीये । कर्णस्त्र-  
 यः पशुविशेषाः कर्णश्चन्द्रे च दृक्षेचेति विश्वोक्तेः कर्णश्चन्द्रसदृश  
 श्वेत कर्णस्त्रयः पशवः बहुवचनस्य त्रित्वे पर्यवसानात् यामाः य-  
 मदेवताः द्वितीये । अवलिप्ताः सगर्वास्त्रयो रौद्राः । एते द्वितीये पञ्च  
 दश ॥ ॥ अथ तृतीये यूये । नभोरूपाः आकाशवन्नीलवर्णाः पर्जन-  
 न्याः पर्जन्यदेवताः पशवस्तृतीये नियोज्याः ॥ ३ ॥

पृश्निस्तिरश्ची न पृश्नि रूर्ध्व पृश्निस्ते मारुताः फल्गू लोहितो-  
 णी पलक्षी ताः सारस्वत्युः झीहाकर्णः शुण्ठकर्णः अद्या-  
 लोहकर्णस्ते त्वाष्ट्राः कृष्णग्रीवः शितिकक्षः अजिसक्थ-  
 स्तः ऐन्द्राग्नाः कृष्णाञ्जिरल्पाञ्जिर्महाञ्जिस्तः उषसाः ॥ ४ ॥

पृश्निः विचित्रवर्णः तिरश्चीनानि पृश्नीनि विंदवो यस्य सः एवमू-  
 र्ध्वानि पृश्नीनि यस्य सः ते त्रयो मारुताः मरुदेवतास्तृतीये । फल्गूः  
 अपुष्टशरीरं लोहितोणी रक्तरोमवती पलक्षी श्वेता पलक्षशब्दो-  
 वलक्षार्थः श्वेतपर्यायः तास्तिस्त्रोऽजाः सारस्वत्यः सरस्वतीदेवतास्त-  
 तीये । झीहाकर्णः झीहा रोगविशेषः तद्युक्तो कर्णो यस्य स झीहाकर्णः  
 अन्येषामपि दृश्यत इति पा० ६. ३. १३०. संहितायां दीर्घः शुण्ठकर्णः दू-  
 स्वकर्णः अद्यालोहकर्णः रक्तवर्णकर्णः ते त्रयस्त्वाष्ट्राः त्वष्ट्रदेवतास्त-  
 तीये । कृष्णग्रीवः शितिकक्षः श्वेतकक्षः अजिसक्थः अजि पुरादं-  
 सक्थोरूर्वोर्यस्य सः ते त्रय ऐन्द्राग्नाः इन्द्राग्निदेवताः तृतीये । पञ्च-  
 दश पूर्णाः ॥ ॥ अथ चतुर्थे कृष्णाञ्जिः कृष्णपुण्ड्रः अल्पाञ्जिः महाञ्जिः अल्पम-

ञ्चि यस्य स तथा ते त्रय उषस्याः उषोदेवताश्चतुर्थे यूषे नियोज्याः ॥४॥

शिल्पा वैश्वदेव्यो रोहिण्यस्त्रयवयो वाचेऽविज्ञाता अदित्ये  
संरूपा धात्रे वत्सतर्यो देवानां पत्नीभ्यः ॥५॥

विचित्रवणास्त्रिः स्त्रीपशवो वैश्वदेव्यः विश्वदेवदेवताश्चतुर्थे रोहिण्यः  
रक्तवर्णाः त्रयवयः सार्धसंवत्सरास्त्रिस्तो जावाचे वाग्देवताश्चतुर्थे ॥ ५ ॥  
विज्ञाताः कृष्णाग्रीवादिचिह्नविज्ञानशून्यास्त्रयः पशवोऽदित्ये अदि-  
तिदेवताश्चतुर्थे ॥ संरूपाः समानरूपास्त्रयः पशवो धात्रे धातृदेवताश्च  
तुर्थे ॥ एवं पञ्चदश ॥ ॥ अथ पञ्चमे यूषे तिस्रो वत्सतर्यः बालङ्गाग्यो  
देवानां पत्नीभ्यः तद्देवताः पञ्चमे ॥५॥

कृष्णाग्रीवा आग्नेयाः शितिभ्रवो वसूनां रोहिता रुद्रा-  
णां श्वेता अवरोकिण आदित्यानां नभोरूपाः पार्जन्याः ॥६॥

कृष्णाग्रीवाः कालकण्ठास्त्रयः पशव आग्नेयाः अग्निदेवताः पञ्चमे ।  
शितिभ्रवः श्वेतवर्णभ्रूयुक्तास्त्रयो वसूनां वसुदेवताः पञ्चमे । रोहि-  
ताः रक्तवर्णस्त्रयः रुद्राणां रुद्रदेवताः पञ्चमे । श्वेताः अवरोकिणः  
अवलोकितः यद्वा अबाधस्ताद्वोकः छिद्रं येषां ते छिद्रं निर्व्यथनं  
रोकः ते त्रयः आदित्यानां तद्देवताः पञ्चमे ॥ ॥ अथ षष्ठे यूषे  
नभोरूपाः पार्जन्यास्त्रयः षष्ठे ॥६॥

उन्नत ऋषभो वामनस्तरेन्द्रावेषावा उन्नतः शिति  
बाहुः शितिपृष्ठस्तरेन्द्राबार्हस्पत्याः शुक्ररूपा बा  
जिनाः कल्माषा आग्निमारुताः श्यामाः पौष्णाः ॥७॥

उन्नतः उच्चः ऋषभः पुष्टः वामनः बहून्यपि वयसि गते रुद्रि-

रहितः ते त्रय ऐन्द्रा वैष्णावाः इन्द्रविष्णुदेवताः षष्ठे । उन्नतः शिति-  
बाहुः श्वेतपूर्वपादः शितिपृष्ठः श्वेतपृष्ठः ते त्रयः ऐन्द्रावार्हस्पत्याः  
इन्द्रबृहस्पतिदेवताः षष्ठे । शुकरूपाः शुक्लपक्षिसमवर्णाः त्रयोवा-  
जिनाः वाजिदेवताः षष्ठे । कल्माषाः कर्बुरास्त्रयः पशव आग्नि-  
मारुताः षष्ठे । एवं पञ्चदश ॥ ॥ अथ सप्तमे यूपे । श्यामाः शु-  
क्ल कृष्णवर्णाः पौषाः पूषदेवताः सप्तमे ॥ ७ ॥

एता ऐन्द्राग्ना द्विरूपा अग्नीषोमीया वामना अनड्वाह  
आग्नावैष्णावा वृशा मैत्रावरुणयोऽन्यत अन्यो मैत्र्यः ॥ ८ ॥  
एताः कर्बुरवर्णास्त्रय इन्द्राग्निदेवताः सप्तमे । द्विरूपाः वर्णद्वयोपे-  
तास्त्रयः अग्नीषोमीयाः अग्निसोमदेवत्याः सप्तमे । वामना अ-  
नड्वाहः त्रय आग्नावैष्णावाः अग्निविष्णुदेवत्याः सप्तमे । व-  
शाः बन्ध्याः तिस्रोऽजाः मैत्रावरुणयः तद्देवताः सप्तमे ॥ ॥ अथ  
ष्टमे यूपे । अन्यत अन्यः एकपार्श्वे कर्बुरवर्णस्तिस्रोऽजामैत्र्यः  
मित्रदेवत्याः अष्टमे ॥ ८ ॥

कृष्णाग्नीवा आग्नेया बभ्रवः सोम्याः श्वेता वायव्या  
अविज्ञाता अदित्यै सरूपा धात्रे वत्सतर्प्यो देवानां  
पत्नीभ्यः ॥ ९ ॥

कृष्णाग्नीवा आग्नेयास्त्रयः अष्टमे । बभ्रवः कपिलवर्णास्त्रयः सो-  
म्याः सोमदेवत्याः अष्टमे । श्वेतास्त्रयः वायव्याः वायुदेवत्याः अ-  
ष्टमे । अविज्ञाताः चिन्हाविशेषेणाज्ञातास्त्रयः अदितिदेवत्याः अ-  
ष्टमे ॥ ॥ अथ नवमे । सरूपाः धातृदेवत्याः नवमे । वत्सतर्प्यः देव-

पत्नीदेवत्यास्त्रयः नवमे ॥८९॥

कृष्ण भौमा धूम्रा अन्तरिक्षा बृहन्तो दिव्याः शबला  
वैद्युताः सिध्मास्तारकाः ॥९०॥

कृष्णः भौमाः भूमिदेवत्यास्त्रयः नवमे । धूम्रवर्णस्त्रयः अन्तरि-  
क्षदेवत्याः नवमे । बृहन्तो महान्तस्त्रयः दिव्याः द्युदेवत्याः नव-  
मे ॥ ॥अथ दशमे। शबलाः कर्बुरास्त्रयः वैद्युताः विद्युदेवत्याः  
दशमे । सिध्माः सिध्मारव्यरोगवन्तस्त्रयः तारकाः नक्षत्रदेवत्याः  
दशमे ॥९०॥

अ० ३ धूम्रान्वसन्ताया लभते श्वेतान्त्रीष्माय कृष्णान्वर्षाम्यो  
ऋणान्छरदे पृषतो हेमन्ताय पिशङ्गाञ्छिशिराय ॥९१॥

धूम्रवर्णान् त्रीनजान् वसन्ताय वसन्तदेवतानालभते नियुनक्ति  
दशमे । श्वेतान् त्रीन्त्रीष्माय दशमे । कृष्णवर्णान् त्रीन्वर्षाम्यः द-  
शमे ॥ ॥अथैकादशे। ऋणान् रक्तान् त्रीन् शरदे एकादशे ।  
पृषतः नानावर्णविन्दुयुक्तान् त्रीन्हेमन्ताय एकादशे । पिशङ्गान्  
लोहितमिश्रकपिलवर्णान् त्रीन् शिशिराय एकादशे ॥९१॥

अवयो गायत्र्यै पञ्चावयस्त्रिष्टुभे दित्यवाहो जगत्त्रैत्रिव-  
त्सा अनुष्टुभे तुर्यवाह उषिाहे ॥९२॥

सार्धसंवत्सरास्त्रयः गायत्र्यै एकादशे । सार्धद्विसंवत्सरास्त्रयः त्रिष्टु-  
भे एकादशे ॥ ॥अथ द्वादशे यूपे । दित्यवाहः द्विसंवत्सरास्त्रयोज-  
गत्त्रै द्वा० । त्रिवत्साः त्रिवर्षाः त्रयोऽनुष्टुभे द्वा० । तुर्यवाहः सार्धत्रि-  
संवत्सरास्त्रय उषिाहे द्वा० ॥९२॥

पष्टवाहो विराजः उक्षाणो बृहत्याः ऋषभाः ककुभेः  
नङ्गाहः पङ्क्त्यो धेनवोऽतिक्षन्द्से ॥ १३ ॥

पष्टवाहः चतुःसंवत्सरास्त्रयो विराजे द्वा० । उक्षाणः सेचनसम-  
र्था पुवानस्त्रयः बृहत्ये द्वा० ॥ ॥ अथ त्रयोदशे यूपे । ऋषभाः  
उक्षाणोऽप्यधिकवयस्काः त्रयः ककुभे त्रयोदशे । अनङ्गाहः शक-  
टवहनसमर्था अजास्त्रयः पङ्क्त्यो त्रयो० । धेनवः नवप्रसूता  
अजास्त्रिः अतिक्षन्द्से त्रयो० ॥ १३ ॥

कृष्णाग्रीवा आग्नेया बभ्रवः सौम्या उपध्वस्ताः सवित्रा व-  
त्सतर्यः सारस्वत्यः श्यामाः पौष्णाः पृश्नयो मारुता बहु-  
रूपा वैश्वदेवा वशा द्यावापृथिवीयाः ॥ १४ ॥

अथ चातुर्मास्यदेवाः पशवः श्वेताः सौर्षा इत्यन्ताः । तत्र प्रथमं वैश्व-  
देवपर्वपशव उच्यन्ते । कृष्णाग्रीवाः त्रयः आग्नेयाः त्रयो० । बभ्रवः क-  
पिलास्त्रयः सौम्याः ॥ ॥ अथ चतुर्दशे यूपे । उपध्वस्ताः उपध्वंसनम-  
धः पतनं तद्गुणविशिष्टा वर्णान्तरमिश्रिता वा त्रयः सवितृदेवताः  
चतु० । वत्सतर्यः तिस्रः सरस्वतीदेवताः चतु० । श्यामाः शृङ्गकृष्णाव-  
र्णाः पौष्णाः पूषदेवत्याः चतु० । पृश्नयः तनुकाया विचित्रवर्णा वा त्र-  
यो मरुदेवताः चतु० । बहुरूपास्त्रयो वैश्वदेवाः चतु० ॥ ॥ अथ पञ्च-  
दशे । वशाः वन्ध्यास्त्रिः द्यावापृथिवीयाः द्यावापृथिवीदेवत्याः  
पञ्च ॥ १४ ॥

उक्ताः संचरा एता एन्द्राग्नाः कृष्णा वारुणाः पृश्नयो मा-  
रुताः कायास्तूपराः ॥ १५ ॥



अथ वरुणप्रयासपर्वपशव उच्यन्ते । संचर शब्देन कृष्णाग्नीवा  
 आग्नेया इत्यादयः पूर्वकण्डिकोक्ताः पञ्चदश पशव उच्यन्ते  
 पञ्च संचराणि हवींषि भवन्तीति वत् यथा चातुर्मास्येषु चतु  
 र्षपि पर्वसु आग्नेयादीनि पञ्च हवींषि समानानि एवमत्रापि  
 चतुर्णां पर्वणां सम्बन्धिनां आद्यानां पञ्चानां देवानामाद्या ए  
 ते पञ्चदश पशवः समाना एव भवन्ति । तेन संचरा उक्ताः आ  
 ग्नेयादयः पञ्चदश पशव उक्ता इत्यर्थः । आग्नेयाः कृष्णाग्नीवास्त्र  
 यः पञ्चदशे । सौम्याः बभ्रवस्त्रयः पञ्च० । सावित्रा उपध्वस्ता त्र  
 यः पञ्च० । सारस्वत्यः वत्सतर्यः तिस्रः पञ्च० ॥ अथ षोडशे ।  
 पौष्णाः श्यामाः त्रयः षोडशे । ऐते संचराः उक्ताः । एताः कर्बुरास्त्र  
 य ऐन्द्राग्नाः इन्द्राग्निदेवताः षो० । पृश्नयः तनुशरीरास्त्रयः मारु  
 ताः षो० । त्रयः तूपराः निःशृङ्गाः कायाः कदेवताः षो० ॥ १५ ॥

अग्नयेऽनीकवते प्रथमजाना लभते मरुद्भ्यः सांतपने  
 भ्यः सवात्यान्मरुद्भ्यो गृहमेधिभ्यो बक्षिहान्मरुद्भ्यः  
 क्रीडिभ्यः सर्गसृष्टान्मरुद्भ्यः स्वतवद्भ्योऽनुसृष्टान् ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशे । अथ साकमेधपशवः । प्रथमजान् मात्रा प्रथमग  
 र्भे जातान् त्रीन् अजान् अनीकवते अनीकवद्गुणविशिष्टायाग्नये  
 आलभते नियुनक्ति सप्त० । वातसमूहो वात्या तया सह वर्तन्त इ  
 ति सवात्याः वातमण्डलीमध्यस्थान् त्रीनजान् सांतपनेभ्यः मरु  
 द्भ्यः सप्त० । बक्षिहान् चिरप्रसूतान् त्रीन् गृहमेधिभ्यो मरुद्भ्यः स  
 प्त० । संसृष्टान् सहसृष्टान् त्रीन् क्रीडिभ्यो मरुद्भ्यः सप्त० । अनु

सृष्टान् अनु क्रमणेजातान् त्रीन् स्वतवड्यो मरुद्भ्यः सप्त ॥ १६ ॥

उक्ताः संचरा एता ऐन्द्राग्नाः शशुङ्गा माहेन्द्रा बहुरूपावै-  
श्वकर्मणाः ॥ १७ ॥

अथाष्टादशे यूपे महाहविः पशवः कृष्णग्रीवादयः पञ्चदश पूर्व-  
वत् ॥ ॥ अथैकोनविंशतितमे एताः कर्बुरास्त्रय ऐन्द्राग्नाः एकोन-  
शशुङ्गाः संहितायां दीर्घः प्रकृष्टशुङ्गयुक्ता माहेन्द्रदेवताः एकोन-  
बहुरूपास्त्रयो वैश्वकर्मणाः विश्वकर्मदेवताः एकोन ॥ १७ ॥

धूम्रा बभ्रुनीकाशाः पितृणां सोमवता बभ्रवो धूम्रनी-  
काशाः पितृणां बर्हिषदा कृष्णा बभ्रुनीकाशाः पितृ-  
णामग्निघातानां कृष्णाः पृषन्तस्त्रैयम्बकाः ॥ १८ ॥

अथ पित्र्येष्टि देवतापशवः । धूम्राः कृष्णवर्णमिश्रा लोहितवर्णः  
बभ्रुनीकाशाः कपिलवर्णसहस्रास्त्रयः पशवः सोमवता पितृणां  
नियोज्याः एकोन ॥ बभ्रवः कपिलाः धूम्रनीकाशाः धूम्रा इव नित-  
रां काशान्ते इति तादृशास्त्रयः बर्हिषदा पितृणामेकोन ॥ ॥ अ-  
थ विंशे यूपे । कृष्णाः बभ्रुनीकाशाः अग्निघातानां पितृणां विंशे ।  
कृष्णाः पृषन्तः विन्दुयुक्ताः त्रैयम्बकाः त्रैयम्बकदेवताः विंशे ॥ १८ ॥

उक्ताः संचरा एताः शुनासीरीयाः श्वेता वायव्याः श्वेताः  
सौर्याः ॥ १९ ॥

अथ शुनासीरीयपशवः । तत्र संचराः आग्नेयादयः पञ्चदशोक्ताः ।  
तेन कृष्णग्रीवा आग्नेयाः विंशे । बभ्रवः सौम्याः विंशे । उपध्व-  
स्ताः सावित्राः विंशे ॥ ॥ अथैकविंशे यूपे । वत्सतयः सारस्वत्यः ए-

कविंशे । श्यामाः पौष्णाः एक० । एताः कर्बुराः शुनासीरीयाः शुना-  
रदेवताः एक० । श्वेताः त्रयो वायव्याः वायुदेवत्याः एक० । श्वेताः त्रयः  
सौर्याः सूर्यदेवताः एक० ॥ एवं समाप्ताः यूपाः इत्यश्वाद्याः सौर्यान्ताः  
सप्तविंशत्यधिकशतत्रयं ३२० ग्राम्याः पशवः सर्वे उक्ताः ॥ १६ ॥

वसन्ताय कपिञ्जलानालभते ग्रीष्माय कलविङ्कान्  
षोभ्यस्तित्तिरीन् च रदेवर्तिका हेमन्ताय ककराञ्छि शि-  
राय विककरान् ॥ २० ॥

अथारण्याः पशव उच्यन्ते ॥ का० २० ६६ कपिञ्जलादीन्पृषतान्ता-  
स्त्रयोदश-त्रयोदश यूपान्तरेषु । अत्रैकविंशतिर्यूपाः तेषां यूपानां  
विंशतिरन्तरालानि तेष्वन्तरालेषु अन्तरालोत्पत्तिक्रमेण कपिञ्ज-  
लादयस्त्रयोदश-त्रयोदश पशव आलम्बनीयाः । अत्र यूपान्तरा-  
लेष्वारण्यपशूनां बन्धनोपाय उक्तो मानवसूत्रे नाडीषु क्षुधिमश-  
कान् करण्डेषु सर्पान् पञ्जरेषु मृगव्याघ्रसिंहान् कुम्भेषु मकरम-  
त्स्यमण्डूकान् जालेषु पक्षिणः कारसु हस्तिनो नौषु चोदकानि  
यथार्थमितरानिति । ये पशवो येनोपायेन यूपान्तरालेषु तिष्ठन्ति  
ते तेनोपायेन स्थापनीया इति तात्पर्यम् ॥ अत्र येषामारण्यजीववा-  
चिपदानामर्थो न ज्ञायन्ते ते निगमनिरुक्तनिघण्टुव्याकरणोत्सा-  
दितृत्यभिधानग्रन्थेभ्यो विलोक्यावगन्तव्याः आटवीकेभ्यश्च  
लक्षणीयाः ॥ तत्र प्रथमत्यन्ते यूपान्तराले त्रीन्कपिञ्जलान्  
सन्ताय आलभते नियुनक्ति । त्रीन्कलविङ्कान् चटकान्ग्रीष्मा-  
य । तित्तिरीन् त्रीन्षोभ्यः । वर्तिकाः पक्षिविशेषान् शरदे । त

तस्त्रयाणां ककाराणां मध्ये एकं ककरं हेमन्ताय ॥ ॥ अथ द्वितीये-  
ऽवकाशेशिष्टो द्वौ ककरो पक्षिविशेषौ हेमन्ताय । त्रीन्विककरान् शि-  
शिगय ॥ २० ॥

अ० ३ समुद्राय शिशुमारनालभते पर्जन्याय मण्डूकान्द्रो म-  
त्स्यान्मित्राय कुलीपयान्वरुणाय नाक्रान् ॥ २१ ॥

त्रीन् शिशुमारान् जलचरजन्तून्समुद्रायालभते । त्रीन्मण्डूकान्भे-  
कान्यर्जन्याय । त्रयाणां मत्स्यानां मध्ये द्वौ अद्भ्यः ॥ ॥ अथ तृतीया-  
ऽवकाशे एकं शिष्टं मत्स्यमद्भ्यः । त्रीन्कुलीपयान् जलजान्मित्राय ।  
त्रीन्नाक्रान् नक्रा एव नाक्रास्तान् जलचरान् वरुणाय ॥ २१ ॥

सोमाय हंसानालभते वायवे वलाका इन्द्राग्निभ्यां  
कुञ्चान्मित्राय मधून्वरुण चक्रवाकान् ॥ २२ ॥

त्रीन् हंसान्सोमाय । तिस्रो वलाकाः वकपत्नीः वायवे ॥ ॥ अथ चतुर्थे-  
ऽवकाशे । त्रीन् कुञ्चान्यक्षिणः इन्द्राग्निभ्यां । त्रीन्मधून् जलकाका-  
न्मित्राय । त्रीन् चक्रवाकान्वरुणाय ॥ २२ ॥

अग्नये कुटूरानालभते वनस्पतिभ्य उलूकानग्नीषोमा-  
भ्यां चाषानश्विभ्यां मयूरान्मित्रावरुणाभ्यां कपो-  
तान् ॥ २३ ॥

त्रीन्कुटूरान् कुक्कुटानग्नये । ततस्त्रयाणामुलूकानां मध्ये ए-  
कमुलूकं वनस्पतिभ्यः ॥ ॥ अथ पञ्चमेऽवकाशे द्वौ उलूखौ क-  
कवेरिणौ । त्रीन् चाषानग्नीषोमाभ्यां त्रीन्मयूरानश्विभ्यां त्रीन्कपो-  
तान्मित्रावरुणाभ्याम् ॥ २३ ॥

सोमाय लवानालभते त्वष्ट्रे कौलीकान्गोषादीर्देवान्  
पत्नीभ्यः कुलीका देवजामिभ्योऽग्नये गृहपतये पारु-  
ष्णान् ॥२४॥

त्रयाणां लवानां लावकानां मध्ये द्वौ सोमाय ॥ ॥ अथ षष्ठेऽव-  
काशे एकं लवं सोमाय । कौलीकान्यक्षिणः त्वष्ट्रे । तिस्रो गोषादीः  
गवं सादयित्रीः पक्षिणीः देवानां पत्नीभ्यः । तिस्रः कुलीकाः पक्षिणीः  
देवजामिभ्यः देववधूभ्यः जामिस्वस्त्यकुलस्त्रियोः । त्रीन्यारुणासंज्ञा-  
नगृहपतयेऽग्नये ॥२४॥

अद्वे पारवतानालभते रात्र्यै सीचापूरहोरात्रयोः संधिभ्यो  
जतूर्मासेभ्यो दात्योहान्तसंवत्सराय षडृतः सुपर्णान् ॥२५॥  
अथ सप्तमेऽवकाशे । त्रीन्यारवतान्कलरवानद्वे तिस्रः सीचापूः पक्षि-  
णीः रात्र्यै तिस्रो जतूः पात्रारव्याः पक्षिणीः अहोरात्रयोः संधिभ्यः । त्रीन्दा-  
त्यूहान् कालकण्ठान्मासेभ्यः त्रयाणां महतां सुपर्णानां मध्ये एकं सं-  
वत्सराय ॥ ॥ अथाष्टमेऽवकाशे द्वौ महान्तौ सुपर्णौ संवत्सराय ॥२५॥

भूम्याऽआखूनालभतेऽन्तरिक्षाय पाङ्क्तान्दिवे कशादि-  
ग्भ्यो नकुलान्बभ्रुकानवान्तरदिशाभ्यः ॥२६॥

भूम्यै आखून्मूषकान् त्रीन् पाङ्क्तान् मूषकजातिविशेषानन्तरिक्षा-  
य कशां तद्वेदानेव दिवे त्रीन्कुलान्दिग्भ्यः तत्र द्वौ अष्टमे ॥ ॥ अथ  
नवमे एकम् । त्रीन्बभ्रुकानवान्तरदिशाभ्यः ॥२६॥

वसुभ्य ऋश्यानालभते रुद्रेभ्यो रुरुतादित्येभ्यो न्यङ्कुचिभ्यो  
भ्यो देवेभ्यः पृषतान्साध्येभ्यः कुलुङ्गान् ॥२७॥

त्रीनृष्यान् वसुभ्यः ऋष्यादयो मृगविशेषाः । रुद्रेभ्यः रुरुन् । त्री-  
न्यङ्कुनादित्येभ्यः ॥ अथ दशमेऽवकाशे त्रीनृषतान्विश्वेभ्यो  
देवेभ्यः त्रीन्कुलङ्गान् साध्येभ्यः ॥ २७ ॥

ईशानाय परस्वत आलभते मित्राय गौरान्वरुणाय म-  
हिषान्वहस्पतये गवर्षास्वष्ट्रजघ्नान् ॥ २८ ॥

परस्वतः मृगविशेषानीशानाय । त्रीनगौरान्वृगान्मित्राय त्रीन्महि-  
षान्वरुणाय तत्रैकं दशमे ॥ अथैकादशेऽवकाशे द्वौ महिषौ त्री-  
न्नाजयान्गोमदृशानारण्यपशून्वहस्पतये त्रीनुष्टानूत्तष्ट्रे ॥ २८ ॥

प्रजापतये पुरुषान्वहस्तिन आलभते वाचे सुषींश्चक्षुषे  
मशकांश्चोत्राय भृङ्गाः ॥ २९ ॥

प्रजापतये पुरुषान्वहस्तिनः त्रीन् । त्रीन्सुषीन्चक्रतुण्डान्वाचे तन्मध्ये  
द्वौ सुषी एकादशे ॥ अथ द्वादशेऽवकाशे एकं सुषिम् । त्रीन्मश-  
कान् चक्षुषे । त्रयो भृङ्गाः ओत्राय नियोज्याः ॥ २९ ॥

प्रजापतये च वायवे च गोमृगो वरुणायारण्यो मेघो य-  
माय कृष्णो मनुष्यराजाय मर्कटः शार्दूलाय रोहिद्विष-  
माय गवयी क्षिप्रश्येनाय वर्तिका नीलंगोः कृमिः स-  
मुद्राय शिशुमारो हिमवते हस्ती ॥ ३० ॥

प्रजापतये च वायवे च एको गोमृगः गवयः । एक आरण्यो मेघो व-  
रुणाय । एकः कृष्णो मेघो यमाय । एको मर्कटः मनुष्यराजाय । ए-  
को रोहिद्विष्यः शार्दूलाय । एका गवयी ऋषभाय तदारव्यदेवाय ॥  
॥ अथ त्रयोदशेऽवकाशे एकावर्ति क्षिप्रश्येनाय देवाय । एकः कृमिः

कीटः नीलंगोः नीलंगवे । शिशुमारः एको जलचरः समुद्राय ।  
हस्ती हिमवते ॥३०॥

अ० ४ मयुः प्राजापत्य उलो हलिक्षणो वृषदंशस्ते धात्रे दिशं  
कङ्को धुङ्गाग्नेयी कलविङ्को लोहिताहिः पुष्करसादस्ते  
त्वाष्ट्रा वाचे कुच्चः ॥३१॥

मयुः प्राजापत्यः तुरगवदनः किंनरः प्राजापतिदेवतः । उलो मृगवि-  
शेषः हलिक्षणः सिंहविशेषः वृषदंशो विडालः ते त्रयो धात्रे एकः  
कङ्कः वकः दिशं दिग्भ्यः । एका धुङ्गा पक्षिणी आग्नेयी अग्निदेव-  
त्या । कलविङ्कः चटकः लोहिताहिः रक्तवर्गसर्पः पुष्करसादी पुष्क-  
रे सीदतीति कमलभक्षी पक्षिविशेषः ते त्रयः त्वाष्ट्राः त्वष्ट्रदेवताः  
॥ अथ चतुर्दशैवकाशे एकः कुच्चः वाचे ॥३१॥

सोमाय कुलङ्गः आरण्योऽजो नकुलः शका ते पौष्णाः  
क्रोष्टा मायोरिन्द्रस्य गौरमृगः पिबो न्यङ्कुः ककदस्ते  
ऽनुमत्ये प्रतिश्रुत्वाये चक्रवाकः ॥३२॥

कुलङ्गः कुरङ्गो हरिण एकः सोमाय । आरण्यो वनजोऽजश्छागः न-  
कुलः शका शकुन्तिः ऐते त्रयः पौष्णाः पूषदेवत्याः । क्रोष्टा शृगालो  
मायोर्देवस्य । एको गौरमृगः इन्द्रस्य । पिबो मृगविशेषः न्यङ्कुः अ-  
पि कक्कटः स एव ते त्रयोऽनुमत्ये । चक्रवाकः प्रतिश्रुत्वाये ॥३२॥

सेरी बलाका शार्गः सृजयः श्याण्डकस्ते मैत्राः सर-  
स्वत्येः शारिः पुरुषवाक् आविद्वीमो शार्दूलो वृकः पृदा  
कुस्ते मन्यवे सरस्वते शुक्रः पुरुषवाक् ॥३३॥

वलाका वकस्त्री सूर्यदेवत्या । शार्ङ्गः पक्षिविशेषः ॥ ॥ अथ पञ्चद-  
शोऽवकाशे सृजयः पक्षिविशेषः शयाण्डकोऽपि ते मैत्राः मित्रदेव-  
त्याः पुरुषवाक् मनुष्यवद्वादिनी शारिः शुकी सरस्वत्यै । श्वावित्  
सेधा भौमी भूदेवत्या शार्ङ्गलो व्याघ्रः वकः चित्रकः पृदाकुः सर्पः  
ते त्रयो मन्यवे । पुरुषवाक् शुकः सरस्वते समुद्राय ॥ ३३ ॥

सुपर्णः पर्जन्य आतिर्वाहसो दर्विदा ते वायवे बृहस्पत-  
ये वाचस्पतये पैङ्गराजोऽलज आन्तरिक्षः स्रवो मद्गुर्मत्स्य-  
स्ते नदीपतये द्यावापृथिवीयः कूर्मः ॥ ३४ ॥

सुपर्णः गरुत्मान्पर्जन्यः पर्जन्याय आतिः आडी वाहसः दर्विदा का-  
ष्ठकुट्टः ते त्रयः पक्षिविशेषाः वायवे । बृहस्पतये वाचस्पतये वाचो  
वाण्याः पतये इति बृहस्पतिविशेषणम् ईदृशाय बृहस्पतये पैङ्गरा-  
जः पक्षिविशेषः ॥ ॥ अथ षोडशोऽवकाशे । अलजः पक्षिविशेषः  
आन्तरिक्षः अन्तरिक्षदेवतः । स्रवः जलपक्षी मद्गुः कारण्डवः म-  
त्स्यः ते नदीपतये । कूर्मः कछपः द्यावापृथिवीयः द्यावापृथिवीदेवतः ॥ ३४ ॥

पुरुषमृगश्चन्द्रमसो गोधा कालका दार्वाघाटस्ते वनस्पती-  
नां हकवाकुः सावित्रो हर्षसो वातस्य नाक्रो मकरः कुलीप-  
यस्तेऽकूपारस्य द्वियै शाल्यकः ॥ ३५ ॥

पुरुषमृगः पुंमृगः चन्द्रमसः । गोधा कालका पक्षिविशेषः दार्वाघा-  
टः सारसः ते वनस्पतीनाम् । हकवाकुः ताम्रचूडः सावित्रः सवितृ-  
देवतः हंसः वातस्य नाक्रः मकरः कुलीपयः ते त्रयो जलचरविशे-  
षाः अकूपारस्य समुद्रस्य त्रपाणं मध्ये द्वौ षोडशौ ॥ ॥ अथ सप्त



दःवकाशे एकः कुलीपयः अकूपारस्य । शल्यकः श्वाविन् द्विष्टे  
देव्ये ॥३५॥

एण्यन्ते मण्डूको मूषिका तित्तिरिस्ते सर्पणा लोपास  
आश्विनः कृष्णो रात्र्याः ऋक्षो जतूः सुषिलीका त इत  
रजनानां जहका वैष्णवी ॥३६॥

एणी मृगी अन्हः आलभ्या । मण्डूको मूषिका तित्तिरिः ते त्रयः स  
र्पाणाम् । लोपाशो वनचरविशेषः आश्विनः अश्विदेवतः । कृष्णो  
भृगः रात्र्ये । ऋक्षः भक्षूकः जतूः सुषिलीका एते पक्षिविशेषेते  
त्रयः इतरजनानां देवानाम् । जहका गात्रसंकोचनी वैष्णवी विष्णु-  
देवत्या ॥३६॥

अन्यवापोऽर्धमासानां मृश्यो मयूरः सुपर्णस्ते गन्धर्वीणा-  
मपाभुद्रे मासां कश्यपो रोहितकुण्डुणाची गोलत्तिका ते  
प्सरसां मृत्युदेऽसितः ॥३७॥

अन्यवापः कीकिलारव्यः पक्षिविशेषोऽर्धमासानां पशुः ॥ अथा-  
द्यादशेऽवकाशे । ऋष्यो मृगविशेषः मयूरः बही सुपर्णो गरुत्मान्  
ते गन्धर्वीणां पञ्चावः । उद्रः जलचरः कर्कटसंज्ञः अपां पशुः । क-  
श्यपः कश्यपः मासां मासानाम् । रोहितः ऋष्यः कुण्डुणाची वनचरी  
विशेषः गोलत्तिकापि ते त्रयोऽप्सरसाम् । असितः कृष्णः पशुर्मृ-  
त्युदे ॥३७॥

अर्धहर्षतुनामारवुः कशी मान्यालस्ते पितृणां बला-  
याजगरो वसूनां रुषिर्जलः कपोतः उलूकः शशस्ते

निर्ऋत्ये वरुणायारण्यो मेषः ॥३८॥

वर्षाहः वर्षाभूः भेकी ऋतूनाम् । आखुः मूषकः कशः मान्थाल-  
श्च तद्विशेषो ते त्रयः पितृणाम् ॥ ॥ अथैकोनविंशे । अजगरे  
महासर्पः बलाय । कपिञ्जलो वसूनाम् । कपोतः उलूकः शशः ते  
निर्ऋत्ये । आरण्यो मेषो वरुणाय ॥३८॥

श्वित्र आदित्यानामुष्ट्रो घृणीवान्वाध्रीनसस्ते मत्याः अर-  
ण्याय सुमरो रुरुः रेंद्रः कयिः कुटरुर्दीत्यो हस्ते वाजिनां  
कामाय पिकः ॥३९॥

श्वित्रः श्वेतः पशुरादित्यानाम् । उष्ट्रः दीर्घग्रीवः घृणिवान् तेजस्वी  
पशुविशेषः संहितायां घृणिशब्ददीर्घः । वाध्रीनसी कण्ठे स्तनवा-  
नजः ते त्रयो मत्ये देव्ये । सुमरः गवयो अरण्याय देवाय । रुरुः मृगः  
रेंद्रः रुद्रदेवतः कयिः पक्षिविशेषः ॥ ॥ अथ विंशेऽवकाशो कु-  
टरुः कुककुटः दात्याहः कालकण्ठः ते त्रयो वाजिनां देवानाम् ।  
पिकः कोकिलः कामायः ॥३९॥

खड्गो वैश्वदेवः श्वा कृष्णाः कर्णे गर्दभस्त रक्षुस्ते रक्ष-  
सामिन्द्राय सूकरः सिंध्यहो मारुतः कृकलासः पिप्पका  
शकुनिस्ते शरख्याये विश्वेषां देवानां पृषतः ॥४०॥

इति संहितायां चतुर्थेऽनुवाकः ४

इति श्री शुक्ल यजुषि माध्यन्दिनीयायां वाजसनेयसंहिता-  
यां दीर्घपाठे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

खड्गो मृगविशेषो विश्वदेवदेवतः । एकः कृष्णाः श्वा सारमेयः द्वि-

त्रीयः कर्णे लम्बकर्णे गर्दभः तृतीयस्तरक्षुः मृगादनः ते त्रयो र-  
क्षसां पशवः । सूकरः इन्द्राय । सिंहो मारुतः मरुद्देवतः । कृकला-  
सः सरदः पिप्यका पक्षिणी शकुनिः पक्षी ते त्रयः शरव्याये । एकः  
पृषतः मृगविशेषो विश्वेषां देवानां पशुर्मवति विश्वेभ्यो देवेभ्यो  
जुष्टं वियुनज्मीतियोज्यः ॥ ॥ एवं षष्ठ्यधिकं शतद्वयशरणा  
पशवउक्ताः ॥ ॥ अत्रद्वाविंशतिरेकादशिनः २२ सप्तविंशत्यधिका-  
नि त्रीणि शतानि अश्वाद्यः सौर्यान्ताः ३२७ षष्ठ्यधिकं शतद्वयं  
कपिल्लाद्यः पृषतान्ता आरण्याः पशवः २६० सर्वे मिलित्वा ष-  
ट् शतानि नवाधिकानि पशवो भवन्ति ६०६ । श्लोकश्च षट् श-  
तानि नियुज्यन्ते पशूनां मध्यमेऽहनि अश्वमेधस्य यज्ञस्य  
नवभिश्चाधिकानि चेति ॥ तेष्वारण्याः सर्वे उत्सृष्टव्या न तु  
हिंस्याः ॥ ४० ॥

इति श्रीगिरिधरभाष्येचतुर्थोऽनुवाकः ४

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दनिवारयन्

पुमार्याश्चतुरोदेया इमे पुत्रोयुधिष्ठिरः २४

श्रीमच्छुक्ल यजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनी शारवाध्येतव्याघ्रपादान्वय  
विश्वामित्रपुराधिप श्रीमज्जयकिशोरदेववर्मात्मज रोकिमणेयनृ-  
पतिगिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपेगिरिधरभाष्येऽश्वमेधप्र-  
करणे देवतासम्बन्धविधायि पशुवर्णनो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः  
२४ ॥

हरिः ओम्

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्वद्विरूपकम्

स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं तु मः २

अ० १ शादं दक्षिरवकां दन्तमूलैर्मृदं बर्सेस्ते गान्द्रं ध्याम्यां  
सरस्वत्याः अग्रजिह्वं जिह्वाया उत्सादमवक्रन्देन ता-  
लु वाजुर्हं हनुम्यामप आस्पेन दृषणमाण्डाभ्यामादि-  
त्या शमश्रुभिः पन्थानं भूभ्यां द्यावापृथिवी वर्तीभ्यां वि-  
द्युतं कनीनकाभ्यां शुक्लाय स्वाहा कृष्णाय स्वाहा  
पार्याणि पक्ष्माण्यवार्या इक्षवोऽवार्याणि पक्ष्माण्य-  
वार्या इक्षवः ॥ १ ॥

ओं नमो याज्ञवल्काय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके

पञ्चविंशोऽयमध्यायो वर्ण्यते वाजिमेधिकः ३५

का० २००८४५ वनस्पतियागके अनन्तर सिष्टकृद्यागसै पूर्वशूल  
विषे अपित मांस को प्रजापति + के अर्थ होमिके अमुष्मे स्वाहेति  
शादादित्वगन्त १-४ देवताओं और अश्वके अङ्गों के अर्थ घृतहो-  
में अनादेशे घृतस्योक्तत्वात् । और अग्निर्हं हृदये नेत्यादि विश्वे  
भ्यो देवेभ्यः स्वाहेत्यन्ता ३४०८-१३ आहुतियें भी होमें अश्वमेध-  
त्वात् तत्राग्निर्हं हृदये नेत्यादि पुरीतदित्यन्ता ३४०८४ देवताओं  
र अश्वङ्ग हैं ततः लौमभ्यः स्वाहेत्यादि द्यावापृथिवीभ्यां स्वा

† अनापत्योऽश्व इति वचनात्

हेत्यन्ता १०-१३ प्रायश्चित्ताहुतयो द्विचत्वारिंशत् ॥ तत्र शादं दद्वि-  
 रित्यादि-पृथिवीं त्वचेत्यन्तः संहिता भागो ब्राह्मणं न मन्त्राः १-२०  
 यजूर्ध्वि । शादादयो देवाः दन्ताद्यङ्गानि । ततः चतुर्गृहीत आज्य  
 कीले-लेकर शादाय स्वाहा दद्विः स्वाहेत्यादि पृथिव्ये स्वाहेत्यन्तं जु-  
 हुयादित्येकः पक्षः शाखान्तरोदितः । शादं दद्विः ग्रीणामि स्वाहेत्या-  
 दि होम मन्त्राः । देवता भोक्त्री द्वितीयया निर्दिश्यते अश्वङ्गं भोग्यं  
 तृतीयया करणविभक्त्या निर्दिश्यते । कचित्केवला देवतैव यथा  
 शुक्लाय स्वाहा कृष्णाय स्वाहेति कचिदन्यविभक्त्यैव इव्यदेवतयो  
 निर्देशः यथा अग्नेः पक्षतिर्वायोर्निपक्षतिरिति । तथा च श्रुतिः  
 १३.३.५.१ शादं दद्विरवकां दन्तमूलैरित्याज्यमवदानानि कृ-  
 त्वा प्रत्याख्यायं देवताभ्य आहुतीर्जुहोति या एव देवता अपि भागा-  
 स्ता भागधेयेन समर्धयतीति । अस्यायमर्थः । शादं नाम देवमश्व-  
 स्य दद्विर्दन्तैः प्राणामीति शेषः स्वाहाकारो दानार्थः । ततश्च शा-  
 दं दद्विः ग्रीणामि स्वाहेति एवमन्यान्यपि यांज्यानि । आज्यमव-  
 दानानि कृत्वा आज्यमेवाश्वङ्गत्वेन परिकल्प्य प्रत्याख्याय-  
 मवदानमवदानं प्रति शादादिदेवता आख्यायाख्यायाज्याहु-  
 तीर्जुहोति संकल्पिताश्वङ्गभावा घृताहुतीः शादादिभ्यो ददति  
 एवं कुर्वन्नपि भागाः कल्पितभागास्ता भागेन समर्धयति ग्रीणा-  
 तीत्यर्थः ॥ अथ संहितार्थः । अश्वके दान्तों करि शाद देवताको  
 ग्रीणामि नृत्तकरताहं । दान्तों कीजड करि अश्वका देवताको ग्री-  
 णान्तों कीपीठि करि मृददेव । दंष्ट्राओं करि जेगा हे । जिह्वाके अ-

ग्र करि सरस्वती दे०। जिह्वा क० उत्साद दे०। तालु० अवक्रन्द०। हनु-  
 ओं (वक्त्रैक देश०) वाज०। मुख० आपो०। अण्डो (वृषणो) वृषण०।  
 श्रमश्रुओं (मुखकेशों) आदित्यों०। भ्रूओं (ललाट गरोमपङ्क्तिओं) पश्या-  
 न०। वर्तुओं (पक्ष्मपङ्क्तिओं) द्यावापृथिवी०। कनीनकाओं (नेत्रकी पु-  
 तली) विद्युत०। शुक्लाय स्वाहा कृष्णाय स्वाहा देवोद्देश एव नत्वङ्गम-  
 शुक्लाय कृष्णाय देवाय सुहुतमस्तु यद्वा चतुर्थ्याश्वाङ्गमेव निर्दिश्य-  
 ते प्राजापत्योऽश्व इति वचनाद्देवोऽध्याहर्तव्य शुक्ल और कृष्ण अश्वके  
 अङ्ग करि प्राजापतिको प्री० एवं लोमभ्यः स्वाहेत्यादावपि बोध्यम् ३६-  
 १०-१३। पक्ष्मों (नेत्रोपरिलोमों) ऊपर के पलक की विरूपनियों०। पार०। इ-  
 क्षुओं० (नेत्राधोभागरोमों) नीचे के पलक की विरूपनी०। अवार०। विपरी-  
 तं वा अवार्याणि (अवार देवत्यानि) पक्ष्माणि इक्षवः पार्थाः (पार देवत्याः) ॥१॥

अ० २ वातं प्राणेनापानेन नासिके उपयाम मधरेणोष्ठेन स-  
 दुत्तरेण प्रकाशेनान्तरमनूकाशेन बाह्ये निवेश्य मूर्ध्ना  
 स्तनयितुं निर्बाधेनाग्निं मुस्तिर्धरेण विद्युतं कनीन-  
 काभ्यां कर्णाभ्यांश्च श्रोत्रं श्रोत्राभ्यां कर्णौ नेदनीम-  
 धर कण्ठेनापः शुष्ककण्ठेन चित्तं मन्याभिरदितिष्ठ  
 शीष्णा निर्वृतं निर्जर्जल्येन शीर्ष्णा संक्रोशेः प्राणानि  
 व्याणं सुपेन ॥२॥

अश्वकी प्राण वायु करि वातको प्री०। अपान वायु० नासिकासंज्ञक  
 हो देवताओं०। नीचे के ओष्ठ० उपयाम दे०। ऊपर के ओष्ठ० सत्संज्ञक  
 दे० प्रकाश (ऊपर के देह की कान्ति) अन्तर दे०। नीचे के देह की का-

नि० बाह्यदे० मस्तक० निवेष्ट्य०। शिरोऽस्थि मध्य संलग्न मज्जा भाग०  
 स्तनयिन्तु०। शिरो मध्यस्थ जर्जर मांस भाग (मस्तक मज्जा +)० अश  
 नि० कनीनकाओं० विद्युत०। कर्णों (कर्णशङ्कुलीओं)० श्रोत्र (अत्राश्वा  
 ङ्गात्मिक एव देवता)० श्रोत्रेन्द्रियों० कर्णों० कण्ठ धो भाग० तेदनीदे०।  
 कण्ठ के निर्मांस देश० आपदे०। मन्या (ग्रीवा के पीछे की नाडियों)० चि  
 त्त०। शिरः अदिति०। नितरजर्जरीभूत शिर भाग० निर्वृति०। संक्रोशों  
 (चलते हुए अश्व के बोलने वाले अङ्गों)० प्राण देवताओं०। स्नुप् (शिरवा  
 भूत अङ्ग)० रेष्माण०॥२॥

अ० ३ मशकान्के शैरिन्द्रं स्वपसा वहैन बृहस्पतिर्हं शकुनि  
 सादेन कूर्मोऽहं फेराक्रमणं स्थूराभ्यामृक्षलाभिः क  
 पिञ्जलाञ्जवं जङ्घाम्यामध्वानं बाहुभ्यां जाम्बीलेना  
 रण्यमग्निमतिरुग्भ्यां पूषणं रोभ्यामश्विनावर्तं सोम्या  
 धं रुद्रं रोराभ्याम्॥३॥

केशों (स्कन्ध रोमों)० मशक देवताओं०। वह (स्कन्ध)० इन्द्र०। कैसे वह क  
 रिकि स्वपसा शोभन है अप० कर्म स्पर्शाधारण नखहनादिक जिस  
 का। शकुनि (पक्षी वत्) साद (गमन) वेगवत् कूटना तिस करि बृहस्पति०।  
 खुरों० कूर्म देवताओं०। गुल्फों०। आक्रमण०। अक्षलाओं (गुल्फाधः स्थाना  
 डियों)० कपिञ्जल देवताओं०। जङ्घाओं (गुल्फ जानुओं के मध्य भाग)०।  
 जब०। बाहुओं (अगिले पैर की जानुओं के ऊर्ध्व भाग)०। अध्वान०। जाम्बी  
 र (जम्बीर तरु के फल सहश जानु मध्य भाग)०। अरण्य०। अत्यन्त रो  
 चमानों (जानु देशों)०। अग्नि०। कर्णों (अगिली जानुओं के अधो देशों)०।

पूषा ० अंसो (स्कन्धो) ० अश्विनी कुमारो ० रोरी (अंसग्रन्थिग्री) ० रुद्र ॥ ३ ॥

अ० ४ अग्नेः पक्षतिर्वायोर्निपक्षतिरिन्द्रस्य तृतीया सोमस्य च  
तुथ्येदित्ये पञ्चमीन्द्राण्ये षष्ठी मरुतां सप्तमी बृह-  
स्पतेरष्टम्युर्यमणे नवमी धातुर्दशमीन्द्रस्यैकादशी व-  
रुणस्य द्वादशी यमस्य त्रयोदशी ॥ ४ ॥

अत्र षष्ठ्या देवतोद्देशः प्रथमयाङ्गोद्देशः ततोऽस्त्वित्यध्याहारः । अ-  
ग्नेः देवस्य पक्षतिरस्तु । पक्षः साध्यविरोधयोः बले काले पतत्रे च रु-  
चौ पार्श्वे प्रकल्पिते इत्यभिधानोक्तेरत्र पक्षः पार्श्ववाची पक्षस्य मूलं  
पक्षतिः पक्षातिरिति पा० ५ २ २५ मूलार्थे तिगत्ययः ततः पक्षस्य पार्-  
श्वस्य मूलभूतान्यस्थीनि बङ् क्रिशब्दवाच्यानि पक्षतिशब्देनोच्य-  
न्ते तानि च प्रतिपार्श्वं त्रयोदश भवन्ति षड्विंशतिरश्वस्य बङ्-  
क्रय इति श्रुतेः कौषीत० ब्रा० १० ४ । तेषां क्रमेण देवतासम्बन्धं  
वक्तिः । तत्रादौ दक्षिणपार्श्वे देवता आह अग्नेः पक्षतिः ।  
दक्षिणपार्श्वका पहिला अस्थि अग्निदेवता का हो विभक्तिन्यत्ययो  
वा पक्षति करि अग्नि देवता को प्रीणामि तृप्त करताहं । निपक्षति  
द्वितीया पक्षति वायु देवता ० । तृतीया पक्षति इन्द्रस्येत्यादीनि स्पष्टा-  
नि ॥ ४ ॥

अ० ५ इन्द्राग्न्योः पक्षतिः सरस्वत्ये निपक्षतिर्मित्रस्य तृतीया-  
या चतुर्थी निर्वृत्ये पञ्चम्यग्नीषोमयोः षष्ठी सर्पाणां  
७ सप्तमी विष्णोरष्टमी पूषणो नवमी त्वष्टुर्दशमीन्द्र-  
स्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी यम्ये त्रयोदशी धावापु-



पि॒त्र्योर्दक्षिण॑पार्श्वे॒ विश्वेषां॑ दे॒वाना॒मुत्तर॑म् ॥३॥

अथ वामपार्श्वस्थं देवानाह । प्रथम (उपरिस्थ) वामपार्श्वस्थ इन्द्राग्नि देवताओं का हो । द्वितीया पक्षति सरस्वती का हो इत्यादि स्पष्टानि ॥  
अथ समस्तयोः पार्श्वयोर्देवानाह - दक्षिणपार्श्व द्यावा पृथिवी का हो । उत्तर वामपार्श्व सब देवताओं का हो ॥३॥

अ० ६ म॒रुता॑श्च॒ स्कन्धा॑ विश्वेषां दे॒वानां॑ प्रथ॒मा की॒कसा॑ रु॒द्राणां॑  
द्वितीया॑दित्यानां तृतीया वा॒योः पु॒च्छम॒ग्नीषोम॑योर्भा  
स॒दो कु॒ञ्चो॑ श्रोणि॒भ्यामिन्द्रा॑बृहस्पती॒ः ऊ॒रुभ्यां॑ मि॒त्राव॒रुणा॑  
व॒ल्गाभ्या॑मा॒क्रम॑णश्च॒ स्थूरा॑भ्यां ब॒लं कु॒ष्ठाभ्या॑म् ॥६॥

अथाङ्गान्तराणां देवता आह । विभक्ति व्यत्ययः । स्कन्ध प्रदेशों करि मरुत् देवताओं को प्री० । कीकस (पुच्छ के ऊपर की प्रथमा अस्थिपङ्क्तिः) विश्व देवाओं को० । द्वितीयास्थिपङ्क्तिः० रुद्रों० । तृतीया कीकस० आदित्यों० । पुच्छ० वायु० । भासदो (नितम्बों-चूतडों)० । अग्नीषोम देवताओं० । श्रोणि॒यो (दक्षिणवाम कटि प्रदेश)० । कु॒ञ्चो॑० । ऊ॒रुओं० । इन्द्रा॑बृहस्पती० । अ॒ल्गाओं० (होनों ऊरुसन्धिओं)० मि॒त्राव॒रुणो॑० । स्थू॒रो (नितम्बों के अधो॒भागों)० । अ॒क्रम॑ण० । कु॒ष्ठो (ककुन्दरों)० । ब॒ल दे॒वता॑को० ॥६॥

अ० ७ पू॒षणं॑ वनि॒ष्ठुना॑न्धाहीन्स्थूलगु॒दयो॑ सर्पा॒न्गुदा॑भिर्वि॒हुतं॑  
आन्वै॒रपो॑ व॒स्तिना॑ वृष॒णमा॑ण्डाभ्यां वा॒जिन॑रु॒धे  
शेपे॑न प्र॒जाश्च॑रेत॒सा चा॑षान्पि॒त्तेन॑ प्र॒दरा॑न्यायुना कू॒शमा॑च्छ॒कपि॑ण्डैः ॥७॥

वनिष्ठुः (स्थूलान्त्र) करि पूषा देवता को प्री० । स्थूलगुदा० अन्य सर्पों० ।

पुण्यं त्वयिकं इति क्षीणस्वामी त्वेको कुक्षियो

॥ लुक-अदाने वृक्यते स्वादुतर्था गुह्यते वृक्य नान्तः॥  
मासगोलकावामृफलाक्षिर् इति याज्ञिकाः॥

पुनर्देवे षष्ठी अङ्गे प्रथमा । क्रोड (वक्ष्यका मध्यभाग) इन्द्र देवता का हो  
अथवा क्रोड करि इन्द्र देवता को प्री० । पाजस्य (बलकर अङ्ग) अदिति  
जत्रुओं (अंस कक्षओं की संधि) दिशा देवताओं० भसत् (लिङ्ग का अग्र  
भाग) अदिति ॥ पुनर्देवे द्वितीया अङ्गे तृतीया । हृदयस्थ मांस करि जी  
मूतों को प्री० । पुरीतत् (हृदयाच्छादक अन्त्र)० अन्तरिक्ष० । उदरस्थ मां  
स० नभः० । मत्स्नाभ्यां (ग्रीवाधस्ताद्भागस्थित हृदयोभय पार्श्वस्थे अ  
स्थिनीओं०) चक्रवाकौ० । वृक्का (मुख्य मांस)० । दिवदे० । प्राशियों (शि  
मूल नाडियें) तिह नाडियों की ही द्वारा अन्न देही में चलता है तिहों०  
गिरी देवताओं० । लीहा (हृदय के वामभाग में स्थित मांस भाग पुष्पुस

+ लोमा उदरं जलाधारः हृदयस्य दक्षिणे यकटलोमा वामे मीना उल्लस्यति वैद्या इति शिरस्वामी लोमा गलनाडीति कर्कः

संज्ञ है तिस)० उपल देवताओं० लोमाओं० + वल्मीक देवताओं० ग्लो  
(ग्लावों-हृदयनाडियों)० गुल्म देवताओं० हिराओं (अन्नवाहिनीनाडि-  
ओं)० स्त्रवन्ति देवताः० कुक्षी (जठरके दक्षवामभाग)० हृद देवताओं०  
उदर (पेट)० समुद्र० अङ्गैः तथ भस्म करि वैश्वानर देवता को प्रीणामि॥ ८॥  
अ० ४ विधृतिं नाम्ना धृतं रसेनापो यूष्ण मरीचीर्विषुडभिर्नी-  
हारमूष्मणा शीनं वसया शुष्ना अश्रुभिर्हृदुनीर्दूषिका-  
भिरस्त्रा रक्षाथंसि चित्राण्यङ्गैर्नक्षत्राणि रूपेण पृथिवीत्व-  
चा जुम्बकाय स्वाहा॥ ४॥  
नाभि (उदर के नीचे की ग्रन्थि) करि विधृति देवता को प्रीणामि। रस (वीर्य-  
धानु विशेष)० धृत दे० यूष्ण (पक्वान्नरस)० आप दे० विषुट (वसाविन्दु-  
ओं)० मरीची० ऊष्णा (शरीरगत ऊष्णता)० नीहार० वसा० (मांसस्ने-  
ह)० शीन० दूषिका (नेत्रों के मल)० हृदुनी० असृक् (रुधिर)० राक्षसों०  
अङ्गैः (पूर्वोक्त अवयवों)० चित्र देवताओं० रूप (सौन्दर्य)० नक्षत्र देवता-  
ओं० त्वचा (चर्म)० पृथिवी देवी को प्रीणामि स्वाहेति मन्त्रों से आज्य को  
होमें इत्यर्थः॥ का० २० ८॥ १६॥ अवभृथ याग के अन्त में जल विषे मग्न  
पिङ्गलाक्ष खल्वाट दन्तुर अतिगौर पुरुष केशिर पर जुम्बकायेति म-  
न्त्र से सकृद्गृहीत आज्य को होमें॥ वरुण देवत्या द्विपदा यजुर्गायत्री  
उदन्यपुत्र सुण्डिभदृष्टा। जुम्बकाय वरुण के अर्थ स्वाहा सुद्धतम-  
स्तु वरुणे वै जुम्ब इति श्रुतेः। एषा चान्तर्जले जप्ता पापनाशिनी कात्या-  
सर्वा० अध्या० ३ रवण्ड ५ तथा चोक्तं हारीतेन जुम्बका नाम गायत्री  
वेदे वाजसनेयके। अन्तर्जले सकृज्जप्ता ब्रह्महत्या व्यपोहति॥ ४॥

\* वसा (मांस इत्यमरः २६० ४६ शुद्धमांसस्य यः स्नेह सावसेति वैद्या इति स्वामी

अ० १० हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रै भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । स राधार पृथिवी द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१०॥

यः प्राणतो निमेषतो महित्वेक इद्राजा जगतो बभूव । य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्यदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥११॥

चतस्रः कदेवत्याः त्रिष्टुभः प्रजापति सुतहिरण्यगर्भहृष्टाः प्राजापत्यपशूनामश्वादीनां याज्यानुवाक्याः द्वे व्याख्याते १३.४॥१०॥२३.३॥११॥

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहजः । यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१२॥

हम कस्मै (प्रजापति के अर्थ) हवि देते हैं । इन हिमाचल प्रभृति पर्वतों को जिस प्रजापति का महिमान कहिते हैं पण्डितलोग । नदियों सहित समुद्र को महिमान कहिते हैं । ये पूर्वोद्या प्रकृष्टा दिशाएँ जिसका महित्व कहते हैं जिस की बाहुएँ जगद्रक्षण को इति शेषः । अर्थात् सब जगत् जिस प्रजापति की विभूति है ॥१२॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्वः उपासते प्रशिष्य यस्य देवाः । यस्य व्यामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१३॥

कस्मै देवाय हविषा विधेमेति व्याख्यातम् । जो प्रजापति आत्मदा (आत्मा को देता) उपासकों का सायुज्यप्रदः) बलदा (सामर्थ्य देता) मुक्तिमु-

क्तिप्रदः। सव मनुष्य जिसके प्रशिष (शासन) की उपासते और देवता जिसके प्रशिष को उपासते। किंच जिस की छाया (आश्रय ज्ञान पूर्वक उपासन) अमृत (मुक्ति हेतु) और जिस का अज्ञान (न जानना) इति शेषः मृत्यु (संसार हेतु) है। ॥१३॥

अ० ११ आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽद्भ्यासोऽअपरीतास उद्भिदः। देवा नो यथा सदमिहृथेऽअसन्न प्रायुवो रक्षितारे दिवे दिवे ॥१४॥

वैश्वदेव पशु वपा पुरेडा शयश्रूनां याज्यानुवाक्या दश ऋचो विश्वदेवदेवत्या गोतमहृष्टाः। तत्रादौ पञ्च जगत्यः। क्रतवः (यज्ञ वा संकल्प) हमारे प्रति आवें अर्थात् हम यज्ञ कर्ता होंवें। कैसे क्रतवः कि कल्याण कारिणः। तथा निर्विघ्नाः। अपरीता (अज्ञाताः केनचित्फलानुमेया इत्यर्थः)। उद्भिदः (यज्ञान्तरो के प्रकरी कर्तार)। किंच जिस प्रकार करि देवता हमारी सदैव वृद्धि के अर्थ हों तैसे क्रतवः आवें। कैसे देवता कि अप्रायुवः (अनालसाः) हमारी वृद्धि के अर्थ हों तथा प्रतिदिन पालक हों ॥१४॥

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानां रतिरुभि नो निर्वर्तताम्। देवानां सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥१५॥

कल्याण कारिणी देवताओं की शोभना बुद्धि हमारे प्रति अभिमुखी हो। कैसे देवताओं की कि ऋजूयताम् (अवक्र गामियों वा साधु यजमान कामयमानों की)। किंच देवताओं का दान हमारे अभिमुख हो अर्थात्

\* तदुक्तम् येतद्विदुः श्रुत्वास्ते भवन्त्यथतरे दुःख मेवोपयन्तीति श्वेताश्वतरोपनिषत् ३०१०॥

यस्य तेनैव विज्ञातं विश्वं तस्यैव विज्ञातं विश्वं तस्यैव विज्ञातं विश्वं तस्यैव विज्ञातं विश्वं

देवता हमारे अर्थ दें। देवताओं की मैत्री को प्राप्त हों। देवता हम मित्रों की आयु को बढ़ावें ॥१५॥

तान्पूर्वया निविदा हूमहे वयं भग मित्रमदिति दक्षमसि-  
धम्। अर्यमाणं वरुणं सोममश्विना सरस्वती नः सु-  
भगा मयस्करतु ॥१६॥

पूर्वया (प्राचीना) अकृत्रिमा स्वयम्भुवा निविदा (वेदरूपवाचा)  
करि हूमतिन (प्रसिद्ध) देवताओं को बुलाते हैं। तिन किन्हें तत्राह  
भग को मित्र अदिति (देवमाता) दक्ष (प्रजापति) अर्यमा वरुण सोम  
अश्विनी कुमारों को। असिधम् इति भगादीनां विशेषणम् अच्युतों  
को। किंच सुभगा (शोभनभाग्या) सरस्वती भगादि सहिता हमारा सु-  
ख करे ॥१६॥

तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पि-  
ता द्यौः। तद्भावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणु-  
तं धियाया युवम् ॥१७॥

पवन हमारे को ओषध हित जैसे तैसे वंहे अर्थात् अनुग्रह करे वा  
हित देवै कैसा हित कि मयो भु (सुरवोत्पादक। माता जगत की निर्माण  
करनेवाली) पृथिवी तिसहित को दे। पिता (पालक) स्वर्ग हित दे। सोमा-  
भिषव करनेवाले पाषाण तिस भेषज को दें। कैसे हैं पाषाण कि सुख  
के देनेवाले। हे अश्विनी कुमारों तुम तिस वातादिकों से भेषज प्रार्थन  
को सुनों अर्थात् तुम भी हित देओ। कैसे हो तुम कि गृहवत् धारण  
करने वाले ॥१७॥

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियंजिन्वमवसे हूमहे वयम्।  
 पूषा नो यथा वेदसामसं हृधे रक्षिता पायुरदेव्यः स्वस्तये ॥१७॥  
 हम तिस (प्रसिद्ध) ईशान रुद्र को बुलाते हैं। कैसे तिसे कि जगत (जड़-  
 म) और स्थुषः (स्थावर) भूतजात के पति को। बुद्धिसंतोष कारक को किस  
 लिये बुलाते हैं कि तृप्ति करने को यथा (जिस प्रकारसे) पूषा हमारी बु-  
 द्धि और कल्याण के अर्थ हो तैसे बुलाते हैं। कैसा पूषा कि वेदसां धनों  
 वा ज्ञानों कारक्षक/पालक पुत्रादिकों का। अनुपहिंसितः ॥१७॥

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।  
 स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पति-  
 र्दधातु ॥१८॥

विराटस्थाना (त्रिष्टुप्) इन्द्र हमारे अर्थ स्वस्ति (अविनाशशुभ) देवें।  
 कैसा है इन्द्र कि वृद्धश्रवाः (बड़ी है कीर्ति जिसकी वोह) पूषा हमारे अ-  
 र्थ स्वस्ति देवें कैसा कि विश्ववेदाः (सबधन जिस का वा सब जानता।  
 तार्क्ष्य (रथवा गरुड) हमारे अर्थ स्वस्ति देवें कैसा कि अरिष्टनेमिः (अ-  
 नुपहिंसित हैं चक्रधार वा पक्ष जिस के। बृहस्पति (देवताओं का गु-  
 रु हमारे अर्थ स्वस्ति देवें ॥१८॥

पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु ज-  
 ग्मयः। अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अ-  
 वसा गमन्ति ह ॥१९॥

जगती। मरुत देवाः अन्न (हविर्लक्षण हेतु) करि इस यज्ञ में आवें।  
 कैसे मरुतः कि पृषदश्वा, पृषती संज्ञा हैं अश्वा (बडवा वाहन) जिन्हें

अग्निमुखां विदेवा इति  
श्रुतेः

वर्षासु सिक्ता-इव चर्म दण्डाः सर्वे प्रपत्ताः शिथिली भवन्तीति॥

हे देवताओ शतवर्ष पर्यन्त तुम समीप में होओ इति शेषः । जहां शतश  
रुद में हमारे शरीरों की तुम जरा करो अर्थात् वार्धकावधि तुम समीप  
में होओ । यत्र हमारे पुत्र पितर हैं (पुत्र वन्त हों) अर्थात् जब तक हमारे  
पौत्र हों तब तक मध्य में हमारी आयु मत नष्ट करो । कैसी आयु कि ग-  
न्तोः (गमनशील + ॥ २२ ॥



अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।  
विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्ज-  
नित्वम् ॥ २३ ॥

मन्त्रद्वयं सर्वात्मकत्वेनादितिं स्तोति । स्वर्ग अदिति है (तदधिष्ठातृत्वात्) ए-  
वमग्रेपि । अन्तरिक्ष अदिति है । माता और पिता बोह ही अदिति है । पञ्च ज-  
नाः (मनुष्य) भी अदिति है । किं बहुना उत्पन्न हुए प्राणी जात और होने हा-  
र अदिति ही है ॥ २३ ॥

अ० १२ मा नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतः परि-  
रव्यन् । यद्वाजिनो देवजातस्य सप्तैः प्रवक्ष्यामो विदथे वी-  
र्याणि ॥ २४ ॥

का० २० ८ ७ मान इत्यादि षोडश कण्डिकात्मक दो अनुवाकों से पूर्ववत्  
चतुर्गृहीत आज्य लेकर होमें और षोडश अश्वस्तोमीया जुहोतीति १३ ३  
५ ५ श्रुति में मानो यदश्वस्य ये दो अष्टक कहे हैं । द्वाविंश शतृचमश्व-  
स्तुति कात्या सर्वा खंड ५ द्वाविंशति ऋचो अश्वस्तुति परत्वादश्वदेवत्या-  
स्त्रिष्टुभो दीर्घतमो दृष्टा । अत्र एष छाग इति २६ तृतीया यूपवृत्का इति २६  
षष्ठी एते द्वे जगत्यौ । ततः षोडशों से होम छे ओं से स्तुति वा सबो से होम  
है अश्वस्तोमीयर्द्धत्वा द्विपदा जुहोतीति १३ ३ ५ ३ श्रुतेः ॥ अथ मन्त्रा-  
र्थः । विदथ (यज्ञ) में अश्व के वीर्यो (चरिर्वा) को जो कि हम उच्चार करते  
हैं तहां मित्रादयः देवाः हमारे को निन्दान करें अस्माभिर्देवाः स्तुत्या  
न त्वश्वाद्यस्तिर्यञ्च इति यद्यपि निन्दोचिता तथाप्यश्वरूपेण देवाना-  
मेव स्तुतिः क्रियते । अथवा महानुभाव देवजात अश्वको कुछ मनुष्य

स्तुति करते हैं यह न कहें। कैसे अश्व के कि वाजिनः (वेगवान) देवजात (मूर्त्यसे उत्पन्न वा देवताओं) करि उत्पन्न कराए हूए) के। सप्तेः (देवताओं सहित जोड़िये) हे तिस के। कैमानिन्दन्तु तानाह मित्रः (अहरमि मानी देव) वरुणः (अभिमानी देव)। अर्यमा (आदित्य) आयु (वायु) इन्द्रः (देवराज) ऋभुक्षाः (ऋभवो देवाः जहां निवास करते हैं वोह देवाधार) प्रजापति वा सवको व्याप्त इन्द्र विशेषण वा ॥२४॥

यन्निर्णिजा रेक्णासा प्रावृतस्य रातिं गृभीतां मुरवतो न यन्ति। सुप्राडजो मेम्यद्विष्वरूप इन्द्रा पूषणोः प्रियमप्येति पाथः ॥२५॥

जब कि विप्रलोग अश्व के मुरवाग्र में गृहीत राति (दान आज्यसक्तु धानान्नक्षण) को प्राप्त करते हैं + तब अज (छाग) भक्षण के अर्थ प्राप्त होता है। कैसा अज कि सुप्राड (भले प्रकार पूर्व की जाता अर्थात् ललाट में बंधा) + तथा मेम्यत् (शब्दानुकरणम्) मे-मे यह शब्द करता। विश्व रूपः (सर्वरूप) नानावर्ण किंच इन्द्रा पूषणोः (इन्द्र और पूषा के) प्रिय (इष्ट) पाथ (अन्न पशुलक्षण) को भक्ष के अर्थ वोह नाभि बद्ध आता है + अर्थात् हुतशेष अन्न जब अश्व के अर्थ दिया जाता है तब ललाट नाभि बद्ध छाग भक्ष के अर्थ आते हैं। कैसे अश्व के कि निर्णिजा (स्नान करि प्रावृत संस्कृत स्नापित के) तथा रेक्णासा (धन करि ५) प्रावृत (आच्छादित) के ॥२५॥

एष छागः पुरेऽपश्येन वाजिना पूषणो भागो नीयते विश्वदेव्यः। अभिप्रियं यत्पुरोडाशमवैता त्वष्टेदेनर्हं सौश्रवसा

\* सोमापेणः श्यामो नाभ्यामित्युक्तेः २४.१.

॥ धन (सौवर्णमणि लक्षण) एकशत एकशतसुवर्णमणियों को भूरित्यादि मन्त्रेण महिष्याद्या नीना पात्रिण अश्व केशिरादि के सरों में बांधती हैं इत्युक्तम् २३.८.

+ मुरादश्वव-  
सुबो निगष्टु  
मुक्तेः २४.२३.

का  
३३.८ रात्रि हुतशेष के  
३३.८ रात्रि हुतशेष के  
३३.८ रात्रि हुतशेष के

+ सुवर्णग्रीव + लाजी ३३.८ रात्रि हुतशेष के  
आने योग्य अश्व के अर्थ देने हैं इत्युक्तः।  
इत्युक्तः २४.२३.

+ रेक्णा इति धननाम  
नियं २४.१.

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।  
विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्ज-  
नित्वम् ॥ २३ ॥

मन्त्र दृक् सर्वात्मकत्वेनादितिं सौति । स्वर्ग अदिति है (तदधिष्ठातृत्वात् ए-  
वमग्रेपि) । अन्तरिक्ष अदिति है । माता और पिता वोह ही अदिति है । पञ्च ज-  
नाः (मनुष्य) भी अदिति है । किं बहुना उत्पन्न हुए प्राणी जात और होने हा-  
र अदिति ही है ॥ २३ ॥

अ० १२ मा नो मित्रो वरुणोऽय्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतः परि-  
रव्यन् । यद्वाजिनो देवजातस्य सप्तैः प्रवक्ष्यामो विदथे वी-  
र्याणि ॥ २४ ॥

का० २० ८ ७ मान इत्यादि षोडश कण्डिकात्मक दो अनुवाकों से पूर्ववत्  
चतुर्गृहीत आज्य लेकर होमें और षोडशाश्वस्तोमीया जुहोतीति १३ ३  
५ ५ श्रुति में मानो यदश्वस्य ये दो अष्टक कहे हैं । द्वाविंशत्पृथमश्व-  
स्तुति कात्या० सर्वा० खंड ५ द्वाविंशति ऋचोऽश्वस्तुति परत्वादश्वदेवत्या-  
स्त्रिष्टुभो दीर्घतमो वृष्टाः अत्र एष छाग इति २६ तृतीया यूपवृत्का इति २६  
षष्ठी एते द्वे जगत्यौ । ततः षोडशों से होम छेओ से स्तुति वा सबो से होम  
है अश्वस्तोमीयर्द्धत्वा द्विपदा जुहोतीति १३ ३ ५ ३ श्रुतेः ॥ अथ मन्त्रा-  
र्थः । विदथ (यज्ञ) में अश्व के वीर्यो (चरिणों) को जो कि हम उच्चार करते  
हैं तहां मित्रादयः देवाः हमारे को निन्दान करें अस्माभिर्देवाः स्तुत्या  
न त्वश्वाद्यस्तिर्यञ्च इति यद्यपि निन्दोचिता तथाप्यश्वरूपेण देवाना-  
मेव स्तुतिः क्रियते । अथवा महानुभाव देवजात अश्वको तुच्छ मनुष्य

स्तुति करते हैं यह न कहें। कैसे अश्व के कि वाजिनः (वेगवान) देवजात (सूर्य से उत्पन्न वा देवताओं) करि उत्पन्न करण हूए) के। सप्तेः (देवताओं सहित जोड़िये) हे तिस के। केमा निन्दन्तु तानाह मित्रः (अहरमि मानी देव) वरुणः (राज्यभि मानी देव)। अर्यमा (आदित्य) आयु (वायु) इन्द्रः (देवराज) ऋभुक्षाः (ऋभवो देवाः जहां निवास करते हैं वोह देवाधार) प्रजापति वा सवको व्याप्त इन्द्र विशेषण वा ॥२४॥

यन्निर्णिजा रेक्णासा प्रावृतस्य रातिं गृभीतां मुखतो न यन्ति। सुप्राडजो मेम्यद्विष्वरूप इन्द्रा पूषणोः प्रियमप्येति पाथः ॥२५॥

जब कि विप्रलोक अश्व के मुखग्र में गृहीत राति (दान आज्यसक्तु धानान्नक्षण) को प्राप्त करते हैं + तब अज (छाग) भक्षण के अर्थ प्राप्त होता है। कैसा अज कि सुप्राड (भले प्रकार पूर्व को जाता अर्थात् ललाट में बंधा) + तथा मेम्यत् (शब्दानुकरणम् मे-मे यह शब्द करता विश्व रूपः (सर्वरूप नानावर्ण) किंच इन्द्रा पूषणोः (इन्द्र और पूषा के) प्रिय (इष्ट) पाथ (अन्न पशुलक्षण) को भक्ष के अर्थ वोह नाभि बद्ध जाता है + अर्थात् हुनशेष अन्न जब अश्व के अर्थ दिया जाता है तब ललाट नाभि बद्ध छाग भक्ष के अर्थ आते हैं। कैसे अश्व के कि निर्णिजा (स्नान करि प्रावृत संस्कृत स्नापित के। तथा रेक्णासा (धन करि) प्रावृत (आच्छादित) के ॥२५॥

एष छागः पुरेऽश्वेन वाजिना पूषणो भागो नीयते विश्वदेव्यः। अभिप्रियं यत्पुरोडाशमवता त्वष्टेदेनर्दं सौश्रवसा-

\* सोमापेणः श्यामो नाभ्यामित्युक्तेः २४-१।

॥ धन (सौवर्णमणि लक्षण एकशत एकशतसुवर्णमणिके) को भूरित्यादिमन्त्रेण महिष्याद्यातीनां पालिए अश्व के शिर आदि के सरों में बांधती हैं इत्युक्तम् २३-८।

+ मुरारश्वव-  
सुखी निगष्टु-  
पुक्तेः २४-१३।

शक्ति हुनशेष को  
निति २३-८ रात्रि हुनशेष को  
३-६ छाची ३ निति २३-८ रात्रि हुनशेष को  
आश्व के अर्थ देते हैं इत्युक्तेः ॥  
इत्युक्तेः २४-१३।

३ रेक्णासा धननाम  
निघ-२ ४८।

यं जिन्वति ॥२३॥

जब कि यह छाग वेगवान अश्व करि पुरस्तात् प्राप्त करि ये है (ललाट बद्धत्वात्) कैसा छाग कि पूषणो भागः (पूषणति देवानिति पूषाग्नि तिसका भाग-भजनीय) तथा विश्वदेव्यः (सर्वदेवार्ह) है। तब त्वष्टा (प्रजापति) ही अर्ब (अश्व) सहित इस छाग को तृप्त करता है। किसलिये कि सौ अवस (सुकीर्ति) के अर्थ (यज्ञे मृतानां स्वर्गो भेरुक्तत्वात्) कैसे इसै कि देवताओं के समन्तात् तृप्त करने वाले। पुरोडाश (पुरस्ताद्वातव्य) को ॥२६॥

यद्ध विष्णुमृतुशो देवयानं त्रिर्मानुषाः पर्यग्नं नयन्ति ।  
अत्रा पूषणः प्रथमो भाग एति यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नुजः ॥२७॥

मनुष्याः (ऋत्विजः) जब कि अश्व को तीन बार पर्यग्नि जग्ते हैं। कैसे अश्व को कि हविर्योग्य। ऋतुशः (यज्ञकालमें) देवयान (देवताओं के प्रापणीय वा देवयानमार्गगामी यद्वा देव-आदित्यवत् गति जिसकी अर्थात् अनिवारित गति) को। इस समय (पर्यग्नि काल) में पूषणः पोषक वा वृद्ध अग्नि का भाग अज पुरोगामी हो चलता है। क्या करने कि देवताओं के अर्थ यज्ञ को प्रतिवेदयन् (प्रख्यापयन्-अपने शब्द करि जताने) ॥२७॥

होता ध्वर्युरावया अग्निमिन्धो ग्रावयाभ उत शथस्ता  
सुविप्रः । तेन यज्ञेन स्वरं कृतेन स्विष्टेन वक्षणा आपृ  
णध्वम् ॥२८॥

हे होवादयः ऋत्विजः तिस (प्रसिद्ध) यज्ञ (अश्वमेध) करि वक्षणाः (नदी-

घृतकुल्याद्याः) आपृणध्वम् (घृतपयोदधिपयस्या पुरोडाश मांससं पूरण करो अर्थात् यज्ञ को सम्पादन करि फल को साधन करो। कैसे यज्ञ करि कि स्वलंकृत विग्रहविर्दक्षणादि करि शोभित। सुष्टु इष्ट। के ऋत्विज स्नानाह होता (आह्वान करने वाला देवताओं का तन्नामक ऋत्विक्। अध्वर्यु (अध्वर चाहाता। आवयाः (अभिमुख्येनावयति) प्रतिप्रस्थाता। अग्निमिन्धः (अग्नि को जलाता। ग्रावग्राभः (ग्रावस्रोता। और शंस्त (प्रशस्ता। सुविप्रः (मेधावी) ब्रह्मा सर्वविद्यः। अयमनुक्तर्विष्णु पलक्षकः। एते यज्ञेन वक्षणा आपृणध्वमिति सम्बन्धः ॥२८॥

यूपव्रस्का उत ये यूपवाहाश्चषालं येऽश्वयूपाय तक्षति।  
ये चार्वाते पचनं सम्भरन्त्युतो तेषामभिगूर्तिर्न इच्च  
तु ॥२९॥

तिन ऋत्विजों का अभिगूर्ति (उद्यम) हमें तृप्त करे व्याप्त हो वा हमारे यज्ञ को भले प्रकार साधे। तिन किन्हीं का कि जे यूप के लिये वृक्ष छे दते हैं और जे यूप को लाते हैं। और जे अश्वबन्धन यूप के अर्थ चषाल (यूप के अग्रभाग में स्थाप्य काष्ठ) को तक्षति (तक्षन्ति) साधु सम्पादन करते छीलते हैं। और जे मुनुष्य अश्व के अर्थ पचन (पाकसाधनका) ष्टभाण्डादि लाते हैं तिन्हीं का उद्यम हमें तृप्त ॥२९॥

उप प्रागात्सुमन्मेऽधायि मन्म देवानामाशा उप वीत पृ-  
ष्ठः। अन्वेनं विप्रा ऋषयो मदन्ति देवानां पुष्टे चकृमा  
सुवर्त्युम् ॥३०॥

मन्म (मननीय फल) सुमत् स्वयं समीप प्राप्त हो वोह मननीय फल

सुरु करि धारण किया । किंच यह वीत (पुष्ट) पुष्ट यद्वा वीत (कामित)  
 पुष्ट अश्व + देवताओं के मनोरथों को पूरे इति शेषः । किंच देवपुष्टि  
 निमित्त जिस अश्व को हम शोभन बांधते हुए विप्रः (मेधाविनो) अ  
 षयः (मन्त्र दर्शिनो वरत्विजः) उस अश्व को तोषे ॥ ३० ॥

यद्वाजिनो दाम सदानमर्वतो या शीर्षण्या रशना  
 रज्जुरस्य । यद्वा घास्य प्रभृतमास्ये तृणैर् सर्वा ता ते  
 ऽपि देवेष्वस्तु ॥ ३१ ॥

वेगवान अश्व की जो दाम (ग्रीवाबद्धा रज्जु) और जो सदान (पादब-  
 न्धनरज्जु) और जो शिरोबद्धा इस अश्व की रज्जु और भी कटिस्था  
 रशना रज्जु है अथवा इस अश्व का घ (प्रसिद्ध) मुख में प्रक्षिप्त तृ-  
 ण है । हे अश्व तेरे सब तिन देवताओं में (देवोपयोगीनि) हो वा देव-  
 त्व को प्राप्त हो (अत्रोपयुक्तानां सर्वेषां देवत्वमाशास्यते ॥ ३१ ॥

अ. ०१३ यदश्वस्य क्वविषो मक्षिकाश यद्वा स्वरो स्वधितोरिप्त-  
 मस्ति । यद्धस्तयोः शमितुर्यन्नखेषु सर्वा ता ते अपि  
 देवेष्वस्तु ॥ ३२ ॥

मक्षिणं अश्व की क्ववि जो खाती हुई अथवा जो मांस स्वरु (पश्वञ्ज-  
 नकाल) लिप्त है । और जो स्वधित (शास) में लिप्त है छेदनकाल और  
 अवदानकाल में । और जो शमिता के हाथों में और जो नखों में लि-  
 प्त है हे अश्व सब त्वदीय देव भोग्य हो ॥ ३२ ॥

यद्वध्यमुदरस्यापवाति य आमस्य क्वविषो गन्धो  
 ऽपि । सुकृता नक्षमितारः कृणवन्तूत मेधैर् नृत्

पाके पचन्तु ॥३३॥

उदर का ऊवध्य (थोड़ा जीर्ण तृण पुरीष +) जो नीचे चलता है। आ + भक्षितम-  
म (अपक्व) के मांस का जो गन्ध (लेश) है विशसितारः तिस सबको पक्क मांस शय-  
सु संस्कृत करे। और मेध्य (अश्व) शृतपाक (देवयोग्य होवे) पाक जिस स्थ मूवधमुच-  
कर्म में) जैसे तेसे पचै अर्थात् अतिपक्व और ईषत्पक्व न करे ॥३३॥ ने।

यत्ते गात्राद्गिनता पच्यमानादभि शूलं निहतस्यावधा-  
वति। मा तद्धूम्यामाश्रिषन्मा तृणेषु देवेभ्यस्तदुशङ्गो  
शतयस्तु ॥३४॥

हे अश्व अग्नि करि पच्यमान तेरे शरीर से जो ऊष्मा वारस नीचे  
जाता है। तथा निःशेषेण हत का जो अङ्ग शूल करि किये पाक में  
निकलता है वोह निर्गत ऊष्माङ्गादिक भूमि में आश्लिष्ट न हो।  
तथा विशसन समय में तृणलग्न न हो। किं तर्हि वोह पतित तृण-  
लग्न सब देवताओं के अर्थ दत्त हो। कैसे देवताओं के अर्थ किचा  
ह करते हैं हविकी ॥३४॥

ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं य ईमाद्भुः सुरभिर्निर्हरेति।  
ये चार्चितो माथ्समिक्षामुपासतः उतो तेषामभिर्गति  
र्न इन्वतु ॥३५॥

जे मनुष्य अश्व को देखते हैं कि यह पक्व यह जानते हैं। और जे यह  
कहते हैं क्या कि सुगन्धपाक हुआ अतः अग्नि के सकाश से उतारो।  
और जे मनुष्य अश्व के मांस की याचना करते हैं। उतो अपि च.  
और तिन्हों का उद्यम हमें तृप्त करे यद्वायं मन्त्रो देव परो व्याख्येयः।



जे देवता पक्क अश्व को देखते हैं कि कब होजायगा और जे विलम्ब देखकर सुरभि पाकहुआ हमारे अर्थ देखो और जे घोड़े के मांस को याचते हैं तिन्हों का संकल्प हम को सफल हो ॥ ३५ ॥

यन्नीक्षणं मा० स्पृचन्या उखाया या पात्राणि यूषा  
आसेचनानि । ऊष्मण्यापिधाना चरूणामङ्गाः सूनाः  
परिभूषन्त्यश्वम् ॥ ३६ ॥

एते पदार्था अश्व को अलं (स्वव्यापारेण साधन) करते हैं। एते के तानाह कि जो उखा स्थाली का नीक्षण (पाकपरीक्षार्थ दर्शन) करते हैं। कैसी उखा कि मांस पाकाधिकरण भूता। तथा यूषा (पक्करस) के आसेचनपात्र। और जे चरूओं (मांस पूर्ण पात्रों) के अपिधाना (ढकने)। कैसे हैं ढकने कि ऊष्मण्यापिधाना (ऊष्मा भाप बाहिर को निकले)। तथा अङ्गाः (चिन्ह साधनानि) हृदयाद्यवयवज्ञापकानि वेतसपात्राणि। सूनां (विशसन कारण भूताः) स्वधित्यादयः। एते अश्व परिभूषयन्ति ॥ ३६ ॥

मा त्वाग्निर्धनयीधूमगन्धिर्मोखा भ्राजन्त्यभिविक्त  
जघ्निः । इष्टं वीतमभिगूर्तं वर्षदक्तं तं देवासः प्रतिगृह्ण  
न्त्यश्वम् ॥ ३७ ॥

हे अश्व (पच्यमानाश्वावयव) अग्निः तुम्हें धनि न करावे कारण यह है कि धनि होने में भाण्ड भङ्ग होता है। दह्यमान मांस सिमि-सिम यह शब्द करता है सो नहो। कैसा अग्नि कि धूमगन्धिः (धूम का है लेश जहां वोह) किंच भ्राजन्ती अतिताप करि दीप्यमाना उखा (स्थाली)

न चलै। कैसी उरवा कि जघ्निः (गन्ध को ग्रहण करती) अधिष्ठात्री दे-  
वता का घ्राण। तिस एवंविध अश्व की देवाः प्रतिग्रहण करें। कैसे अश्व  
कि इष्ट (प्रयाजों) वीतं (आप्रियों) करि पर्यग्निकिये अभिगूर्त (ये यजा  
मह इति आगूर्योक्त) वषट्कृत (वषट्कार करि संस्कृत) को ॥३७॥

निक्रमणं निषदनं विवर्तनं यच्च पङ्कीशं मर्वतः । य-  
च्च पयो यच्च घासिं जघास संवा ता तेऽपि देवेष्व-  
स्तु ॥ ३८ ॥

जो निक्रमण (निरन्तर करने का स्थान) निषदन (उपवेशन स्थान)  
विवर्तन (इधर उधर लुठने का स्थान) और जो अश्व का पङ्कीश (पाद-  
बन्धन) क्रियापरा वा निक्रमणादयः शब्दाः आलम्भ समय में जे  
अश्व की निक्रमणादि चेष्टाएं। किंच जो जलपीयां और जो तृणादि  
खाया सो सब तेरे निक्रमणादिक देवताओं में हों। अर्थात् देवार्थ  
अश्व के रेमादिकों का निरर्थकत्व न हो ॥३८॥

यदश्वाय वास उपस्तृणन्त्यधीवासं या हिरण्यान्यस्मे।  
संदानमर्वन्तं पङ्कीशं प्रिया देवेष्वायामयन्ति ॥ ३९ ॥

प्यारी ये वस्तुएँ देवताओं में आगमन कराती हैं अर्थात् ऋत्विज अ-  
श्व की ये देवताओं में ही प्राप्त कराते हैं। कानीत्यत आह अश्व के अर्थ  
जो अधीवास (आच्छादक वस्त्र) उढाते हैं तथा जे हिरण्यशकलें इस (अ-  
श्व) के अर्थ उपस्तृण करी हैं। तथा अश्व का शिर बन्धन और पाद  
बन्धन। ये देवताओं में प्राप्त कराती हैं। कैसी हैं ये कि देवताओं  
की प्यारी ॥३९॥

अ० १४ यत्ने सादे महसा श्रुक्कतस्य पाषाण्या वा कशया वा  
तुतोद । सुचेव ता हविषोऽध्वरेषु सर्वा ता ते ब्रह्मण  
सूदयामि ॥ ४० ॥

हे अश्व अश्ववार (घुडचढ़ा) चलते में तेरा (तुम्हें) पाषाण्य (पाद के  
अधो भाग एड) वा कशा (कोरडा वारज्जु) करि पीडा देता हुआ। कै-  
सा तेरा कि बल करि श्रुक्कत का यद्वा शब्दानुकरणम् बल करि श्रुकार  
करते हुए को। अध्वर में ते सब तेरे पाषाण कशादि ताडन ब्रह्म (म-  
न्त्र) करि मे चुवाता हूं अर्थात् यज्ञ में आहुतित्व करि कल्पता हूं। त-  
त्र दृष्टान्तः हवि (आज्यादिक) जैसे सुचि करि उपकाता हूं तद्वत्।  
एकं ता पादं पादपूर्णय ॥ ४० ॥

चतुस्त्रिंशद्वाजिनो देवबन्धोर्वङ्क्रीरश्वस्य स्वधितिः  
समेति । अछिद्रा गात्रा वयुना हृणोत परुष्यरुनुधुष्या  
विशस्त ॥ ४१ ॥

स्वधितिः (पशुछेदन साधन अस्ति) अश्व की चतुस्त्रिंशत्संख्या कान्यु-  
भयपार्श्वास्थियों की भले प्रकार आती है छेदन के अर्थ। कैसे अश्व की  
कि वेगवान। देवताओं के प्यारे वा देवता हैं प्यारे जिस के तिसकी  
अतः हे ऋत्विजः ज्ञान करि अश्व के गात्रों को छिद्रहीन करे स्वधि-  
ति करि सछिद्र वर्ते हैं तिन्हें अछिद्र करे। किं च परुष्यरुः (प्रतिपर्व-  
प्रत्यवयव) अनुधुष्य यह-यह इसनाम करितुम छेदन करे ॥ ४१ ॥

एकस्त्वष्टुरश्वस्या विशस्ता ह्ययुनासु भवतस्तथ ऋ-  
तुः । या ते गात्राणामृतुया हृणोमि ता-ता पिण्डानां

प्रजुहोम्यनो ॥४२॥

अश्व का विशसनकर्ता एक ऋतु। कैसे अश्व कि त्वष्टा दीप्त का।  
अर्थात् ऋतूपलक्षित कालात्मा प्रजायति ही अश्व का शास्ता है।  
तथा नियमकर्तारों दो द्यावा पृथिव्यभिमानी देवों होते हैं (तयोरेव सर्वे)  
षां नियन्तृत्वादिति भावः। एवमश्वस्य विशसत्यन्तृनुत्काधुर्युः  
स्वकर्माह हे अश्वतेरे गात्रसम्बन्धि मांसपिण्डों को जिन अङ्गों में  
छेदता हूँ ऋतूपलक्षित वसन्तादि यज्ञ काल में तिन अङ्गों को अ-  
ग्नि में प्रकर्षेण हुत करता हूँ ॥४२॥

मा त्वा तपस्त्रिय आत्मापियन्त मा स्वधितिस्तन् आ-  
तिष्ठियते। मा ते गृध्रुरविशंस्तातिहाय छिद्रा गात्राण्य-  
सिना मिथू कः ॥४३॥

हे अश्व प्यार + तेरा आत्मा (देह) तुम्हें प्राप्त दुःखित न करे (तुम्हें देह-  
वियोगजनिता व्यथा न हो इति विज्ञानात्मानं प्रत्युच्यते) कैसे तुम्हें  
कि देवलोक को चलते। किं च स्वधितिः (शस्त्र) तेरे अङ्ग न स्थापन क-  
रे अर्थात् सब छेदिके देवताओं के अर्थ दे। किं च शमिता तेरे अङ्गों  
को छोड़ि (शास्त्रोक्तक्रम छोड़ि) कर शास करि मिथ्या छिद्र (अयथछिन्न)  
न करे। कैसा शमिता कि लोभी (केवल मांस ग्रहण छुः) अत एव विश-  
सन में अकुशल है अर्थात् भले प्रकार अवदानानि करे ॥४३॥

न वाऽउऽएतन्मित्रयसे न रिष्यसि देवां ॥ इदं वि पृथि-  
भिः सुगेभिः ॥ हरी ते पुञ्जा पृथ्वी अभूतामुपास्थाद्वाजी धु-  
रि रसभस्य ॥४४॥

भोगायतनत्वात्

१०५  
# अथ हिंसायाः प्रमाणात्

वै- एवार्थे उ- अवधारणे । हे अश्व तू एतन्नैव मरता (इतराश्ववत् न-  
हीं मरता) है । अत एव नहीं हिंसा होता है । ननु प्रत्यक्षत्वे मरणभङ्गना-  
शश्च दृश्यते तर्हि कथमेव मुच्यते तत्राह साधु गमन मार्गो देवयान-  
रूपो करि देवताओं को जाता है अथोपुक्ता मदुक्तिः । कथं देवान्प्रति  
गमनम् तत्राह हे अश्व तेरे हरी (इन्द्र के घोड़े) रथ में युक्त होंगे तथा पृष-  
ती (मरुतों के घोड़े) रथ में होंगे । किंच रासभ (अश्विवाहन) के धुरि (स्था-  
न) में कोई वाजी (अश्व) उपस्थित होगा । देवत्वं प्राप्तस्य तव वहनाय  
इन्द्रादयो निजवाहनानि प्रेषयिष्यन्तीति भावः यद्वा तत्तद्देवभावं प्रा-  
प्तं त्वं तानि- तानि वाहनानि वक्ष्यन्तीत्यर्थः ॥४४॥

सुगव्यं नो वाजी स्वर्ग्यं पुंरसः पुत्रांश्च उत विश्वापुष्वर्ध-  
यिम् । अनागास्त्वं नोऽदितिः कृणोतु क्षत्रं नोऽश्वो व-  
नतां हविष्मान् ॥४५॥

इदानीं याच्चाक्रियते । वाजी (देवत्वं प्राप्तोऽश्वः) हमारा शोभन गोसमूह  
करे । तथा शोभन अश्वसमूह करे तथा पुंसः (पुत्र वा पुरुषार्थ साधक पु-  
त्रों को) करे । और सर्वजन पोषण समर्थ धन करे । किंच हमारा अनागा-  
स्त्व (निष्पापत्व) करे पापसद्भावे उक्त फल प्राप्तेः । किंच अश्व हमारा  
क्षत्र (क्षतत्राण बल वा पराभवा द्रक्षण) करे । कैसा अश्व कि अदितिः (न-  
हीं है खण्डन वा दैन्य जिसका । हविष्मान् यद्वा देवत्वाभ्यां हविष्मान् ।  
इह शोऽश्वः हमारा क्षत्र वननीय करे ॥४५॥

अ० १५ इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः । आ-  
दित्यैरिन्द्रः सर्गलो मरुद्भिर्स्मर्यं भेषजा करत् । य-

ज्ञं च नस्तन्तुं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह सीषधाति ॥४६॥  
 का० २०० ८० १२० अयस्मयपात्र करि अश्वलोहित होमानन्तर इमानु  
 कमित्याद्याः षट् द्विपदां होमं दो कण्डिकाओं की षट् अर्धारियें  
 हैं तिन्हों से षट् आहुतियें होमं ॥ द्विपदा छन्दस्का विश्वदेवदेवत्या आ-  
 प्य पुत्र भुवन दृष्टाः साधन दृष्टा वा तिस्रः ऋचः ॥ नु कम् एतो निपातो  
 पाद पूरणो ये भूतजात हम वशी करते हैं ॥ किं च इन्द्र (ऐश्वर्यवान्)  
 अपने गणों (परिवार) सहित और विश्वे देवा द्वादश आदित्यों और एको-  
 नपञ्चाशत्संख्य मरुतों सहित हमारे अर्थे ओषधें करें अर्थात् सब  
 देवता हमारे हितकारी हों ॥ किं च इन्द्र आदित्यों सहित हमारे यज्ञ (अ-  
 श्वमेध) शरीर और पुत्रादि प्रजा को वशी करें नीरोगाः सपुत्रा हमम-  
 ले प्रकार यज्ञ को करते हैं इति भावः ॥४६॥

अग्ने त्वं नोऽअन्तम उत ज्ञाता शिवो भवा वरूध्यः ॥  
 वसुरग्निर्वसुश्च वा अहो नक्षि युमन्तमर्हं रयिंदो ॥  
 तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥४७॥

इति संहितायां पञ्चदशोऽनुवाकः १५

इति श्री शुक्ल यजुषि माध्यन्दिन शारबीयायां वाजसनेयस-  
 हंहितायां दीर्घ पाठे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

तिस्रो द्विपदा व्याख्याताः अध्या० ३० २५ अ० ३० २६ अ० ॥  
 समिद्धोऽअश्वन् २६० १० आश्व मेधि कोऽध्याय इति वचनादत्र होत्रे  
 तन्मन्त्राणां विनियोगः ॥ समाप्तोऽश्वमेधः सप्तविंशत्युत्तरवर्ष-  
 साध्यः ॥४७॥

न देवत्व प्राप्तयेव क्षममाणत्वम्  
# अर्थे हिंसाया अप्रमावत्

वै-एवार्थे उ-अवधारणे। हे अश्व तू एतन्नैव मरता (इतराश्ववत् न-  
हीं मरता) है। अत एव नहीं हिंसा होता है। ननु प्रत्यक्षत्वे मरण भङ्गना-  
शश्च दृश्यते तर्हि कथमेव मुच्यते तत्राह साधु गमन मार्गो देवधान-  
रूपो करि देवताओं को जाता है अथोपुक्ता मदुक्तिः। कथं देवान्मति  
गमनम् तत्राह हे अश्व तेरे हरी (इन्द्र के घोड़े) रथ में युक्त होंगे तथा पृष-  
ती (मरुतों के घोड़े) रथ में होवेंगे। किंच रासभ (अश्विवाहन) के धुरि (स्थान-  
न) में कोई वाजी (अश्व) उपस्थित होगा। देवत्वं प्राप्तस्य तव वहनाय  
इन्द्रादयो निजवाहनानि प्रेषयिष्यन्तीति भावः यद्वा तत्तद्देवभावं प्रा-  
प्तं त्वां तानि-तानि वाहनानि वक्ष्यन्तीत्यर्थः ॥४४॥

सुगव्यं नो वाजी स्वर्ग्यं पुंसः पुत्रांश्च। उत विश्वापुर्वर्ध-  
यिम्। अनागास्त्वं नोऽदितिः कृणोतु क्षत्रं नोऽश्वो व-  
नतां हविष्मान् ॥४५॥

इदानीं याच्चाक्रियते। वाजी (देवत्वं प्राप्तोऽश्वः) हमारा शोभन गोसमूह  
करे। तथा शोभन अश्वसमूह करे तथा पुंसः (पुत्र वा पुरुषार्थ साधक पु-  
त्रों को) करे। और सर्वजन पोषण समर्थ धन करे। किंच हमारा अनाग-  
स्त्व (निष्पापत्व) करे पापसद्भावे उक्त फलाप्राप्तेः। किंच अश्व हमारा  
क्षत्र (क्षतत्राण बल वा पराभवा द्रक्षण) करे। कैसा अश्व कि अदितिः (न-  
हीं है खण्डन वा दैन्य जिसका। हविष्मान् यद्वा देवत्वाया हविष्मान्।  
इह शोऽश्वः हमारा क्षत्र वननीय करे ॥४५॥

अ० २५ इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः। आ-  
दित्येरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्मभ्यं भेषजा करतु। य-

ज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह सीषधाति ॥४६॥  
 का०२००८०१२० अयस्मयपात्र करि अश्वलोहित होमानन्तर इमानु  
 कमित्याद्याः षट् द्विपदाएँ होमें दो कण्डिकाओं की षट् अर्धारियें  
 हैं तिन्हें सैं षट् आहुतियें होमें ॥द्विपदा छन्दस्का विश्वदेवदेवत्या आ-  
 प्य पुत्र भुवन दृष्टाः साधन दृष्टा वा तिस्रः ऋचः ॥ नु कम् एनो निपातो  
 पाद पूरणो ये भूतजात हम वशी करते हैं किं च इन्द्र ऐश्वर्यवान्  
 अपने गणों (परिवार) सहित और विश्वदेवा द्वादश आदित्यों और एको-  
 नपञ्चाशत्संख्य मरुतों सहित हमारे अर्थ ओषधें करें अर्थान् सब  
 देवता हमारे हितकारी हैं किं च इन्द्र आदित्यों सहित हमारे यज्ञ (अ-  
 श्वमेध) शरीर और पुत्रादि प्रजा को वशी करें नीरेगाः सपुत्रा हम म-  
 ले प्रकार यज्ञ को करते हैं इति भावः ॥४६॥

अग्ने त्वं नोऽऽन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूय्यः ।  
 वसुरग्निर्वसुश्रवा अक्षा नक्षि शुमन्तमर्हं रयिं दोः ।  
 तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुन्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥४७॥

इति संहितायां पञ्चदशोऽनुवाकः १५

इति श्री शुक्ल यजुषि माध्यन्दिन शाखी याया वाजसनेयस-  
 हंहितायां दीर्घ पाठे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

तिस्रो द्विपदा व्याख्याताः अध्या० ३० २५ अ० ३० २६ अप० ॥  
 समिद्धोऽश्वन् २६०१० आश्व मेधि कोऽध्याय इति वचनादत्र होत्रे  
 तन्मन्त्राणां विनियोगः ॥ समाप्तोऽश्वमेधः सप्तविंशत्युत्तरवर्ष-  
 साध्यः ॥४७॥



इति भाष्ये पञ्चदशोऽनुवाकः १५

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दनिवारयन्

सुमार्थोऽश्वतुरोदेयाद्वर्मपुत्रोयुधिष्ठिरः २५

श्रीमच्छुक्ल यजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीयशारवाध्येत व्याघ्रपादान्वय  
विश्वामित्रपुराधिपति श्रीमज्जयकिशोरदेववर्मात्मजरोक्मिणेय  
नृपतिगिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये अश्वमेध  
प्रकरणे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

अथाग्नीलभाषणे श्रुतिः शत० काण्ड १३.

अप वाऽरातस्मात् । श्री राष्ट्रं क्रामति योऽश्वमेधेन  
यजते ॥१॥ ऊर्ध्वमेनामुच्छापयेति । श्रीर्वै राष्ट्रमश्वमेधः  
श्रियमेवास्मै राष्ट्रमूर्ध्वमुच्छयति ॥२॥ गिरौ भार्ठं हरन्निवे-  
ति । श्रीर्वै राष्ट्रस्य भारः श्रियमेवास्मै राष्ट्रं संनह्यत्य-  
ष्टो श्रियमेवास्मिन् राष्ट्रमधिनिदधाति ॥३॥ अथास्ये  
मध्यमेधतामिति । श्रीर्वै राष्ट्रस्य मध्यं श्रियमेव राष्ट्रं  
मध्यतोऽन्नाद्यं दधाति ॥४॥ शीते वांते पुनन्निवेति । क्षे-  
मो वै राष्ट्रस्य शीतं क्षेममेवास्मै करोति ॥५॥ युकास-  
को शकुन्तिकेति । विड्वे शकुन्तिकाहलगिति वृद्धती-  
ति विशो वै राष्ट्राय वृद्धन्त्याहन्ति गभे पसो निगल्वा-  
लीति धारकेति विड्वे गभो राष्ट्रं पसो राष्ट्रमेव विश्याहन्ति

तस्माद्वाष्ट्री विशं घातुकः ॥६॥ माता च ते पिता च नः  
 इति । इयं वै मातासौ पिताभ्यामेवैवैर्नरं स्वर्गं लोकं गम-  
 पत्ययं वक्षस्य रोहत इति श्रीर्वै राष्ट्रस्याग्रं श्रियमेवै-  
 नरं राष्ट्रस्याग्रं गमयति प्रतिलासीति ते पितृ गभो  
 मुष्टिमर्तं सयदिति विद्धे गभो राष्ट्रं मुष्टो राष्ट्रमेव वि-  
 श्याहन्ति तस्माद्वाष्ट्री विशं घातुकः ॥७॥ यद्धरिणे  
 यवमनीति । विद्धे यवो राष्ट्रं हरिणे विशमेव राष्ट्रया-  
 द्यां करोति तस्माद्वाष्ट्री विशमन्ति न पुष्टं पशुमन्यतश्च-  
 ति तस्माद्वाजा पशून् पुष्यति श्रद्धा यदर्यजारा न पोषाय ध-  
 नायनीति तस्माद्देशीपुत्रं नाभियिञ्चति ॥८॥ अप वाग्नेभ्यः  
 प्राणाः क्रामन्ति। ये यज्ञे पूता वाचं वदन्ति दधिक्रावोऽप-  
 कारिषमिति सुरभिमनीमृचमन्नतोऽन्वाहुर्वाचमेवपुनते  
 नेभ्यः प्राणा अपक्रामन्ति ॥९॥ ब्राह्मणम् ॥ ३॥ २ ॥ ९॥

आदितः अनुवाक संख्या ४६

इति सर्वानुक्रमणिभाष्ये गिरिप्रसाद रचिते वेदा-  
 र्थप्रदीपे तृतीयाध्यायस्य पञ्चमो खण्डः ५॥

समाप्तोऽयमश्वमेधः ॥

ज्येष्ठमासः मलेपक्षं पौर्णिमाभृगु वामरं  
 ग्रहनेत्राङ्कमूर्ध्वं हयमन्त्राः समागमन्  
 अतः परं दशभिर्ध्यायेः स्तिल्यान्मुच्यन्ते

विक्रमाब्दाः १९२६ शकाब्दाः १७४४ आश्विनशुक्ला ९ भृगुवारशुभं भवतु

\* विदित हो कि संवत् १८२८ अधिक भाद्रपद शुक्ला १२ रविवार से ही मैंने चौड़ा-चौड़ा अश्वमेध के भाष्य  
 लिखने का आरम्भ किया इस हेतु अग्निके समीप ही यह भी समाप्त हुआ ॥

## हरिःप्रोम्

### अथ संक्षेपत अश्वमेधमन्त्राणां सूचीपत्रम्

पृष्ठा	पङ्क्ति	विषय	पृष्ठा	पङ्क्ति	विषय
८११	५	निष्कधारणम्	८४४	७	सुरभि मती मृक
८११	५	रज्जु ग्रहणम्	८४४	२१	त्वग्भेदन संस्कार मन्त्राः
८१३	५	अश्व बन्धनम्	८४६	१७	अश्व विशसन मन्त्राः
८१४	४	अश्व प्रोक्षणम्	८४८	४	अथ ब्रह्मोद्यम्
८१५	१३	सोकीय संज्ञा दशाहुतिः	८५४	१०	याज्याऽनु वाक्या
८१६	६	अश्वस्यैकोनपञ्चाशच्चै क्षितानि	८५६	३	अश्वसूपरो ब्राह्मणोऽध्यायः
८१८	४	सावित्रीणमिष्टीनायाज्यानु वाक्या	८७५	५	शादादित्व गन्तदेवताश्चाङ्गा नि
८१९	१३	स्विष्टकृति पुरोऽनु वाक्या	८८२	८	पाप नाशिनी
८२०	१८	विभूर्मात्रे त्यादि मन्त्राः	८८३	९	याज्यानु वाक्या
८२२	१६	ऋग्वेदमण होमः	८८४	५	याज्यानु वाक्या
८२४	१८	अध्वर्युजप मन्त्रः	८८८	८	मान इत्यनु वाकः
८२५	१३	आज्यादि होमः	८९२	१३	यदत्यनु वाकः
८२६	१८	महि मग्रह ग्रहणम्	८९८	२०	इमान वित्यनु वाकः
८३२	२	रथयोजनादि मन्त्राः	९००	८	अथाश्लील भाषणे श्रुतिः
८३४	३	हेतुर्वैलक्षण्य प्रश्न प्रति प्र- श्नः			समाप्नोऽयमश्व मेधः
८३५	१०	अश्व प्रोक्षणदि मन्त्राः			
८४०	३	अश्लील भाषणम्			

हरिः ओम्

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

(अथ खिल्यानि विवस्वदृष्टानि)

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनेर्बहुरूपकम्  
स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः २६

अ०१ अग्निश्च पृथिवी च संनते ते मे संनमतामदो वायुश्चा  
न्तरिक्षं च संनते ते मे संनमतामद आदित्यश्च स्यो  
श्च संनते ते मे संनमतामद आपश्च वरुणश्च संनते ते मे  
संनमतामदः सप्त स्रष्टाः सदीः अष्टमो भूतसाधनी सकामो  
रं ॥ अध्वनस्कु रु संज्ञानं मस्तु मे भुनो ॥ १ ॥

नत्वारविंशत्यवल्क्यं तथामाध्यन्दिनं मुनिम्  
शुक्लवेदे दशाध्याया उच्यन्ते खिलसंज्ञकाः २७

इषे त्वेत्यारभ्य दर्शयैर्णमासपितृयज्ञाग्निहोत्रोपस्थानपञ्चातुर्मास्या  
ग्निष्टोमवाजपेयगजसूयाग्निषोत्रामण्यश्चर्मधसन्वद्धा मन्त्राः व्याख्याताः ।  
इदानीं खिल्यानुच्यन्ते कचिद्विनियोगानुक्तेः । तेषां विवस्वानृषिरन्यस्यानुक्तेः  
आदित्यानीमानि यजूंषि व्याख्यायन्त इति श्रुतेः बृहदारण्यक २.५.३३ याज्ञ  
वल्क्यो वा याज्ञवल्क्येन व्याख्यायन्त इति श्रुतेः ॥

ओं नमो याज्ञवल्काय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके

अनुक्तमन्त्रकथनः षड्विंशोऽध्याय ईर्यते २६

अग्निश्च। सप्तलिङ्गोक्तानि यजूंषि। अग्निश्च १ वायुश्च २ आपश्च  
४ आर्चीगा० आदित्यश्च ३ सप्तसंसदः ५ यथेमाम् ७ यजूंषि सका-  
माम् ६ आ-अ० ॥ अग्निश्चैरपृथिवी संनते (आनुकूल्येन प्रवृत्ति-भाग  
के अर्थ संगत हैं अतः कहिता हूं कि ते अग्नि पृथिव्यो मे (मेरे) अपदः (अ-  
मुक-देवदत्त को) संनमताम् (संनमयताम्, वशवर्तिकरै) ॥ १॥ एवमुक्त-  
रेष्वपि मन्त्रेषु योज्यम्। वायु और अन्तरिक्ष संनते ॥ २॥ आदित्य और  
द्यौ संन ॥ ३॥ आप (जल) और वरुण संन ॥ ४॥ परमात्मानं प्रत्युच्यते  
हे स्वामिन् जो कि तेरे सप्त संसदः (सात अधिष्ठानः अग्नि १ वायु २ अ-  
न्तरिक्ष ३ आदित्य ४ द्यौ ५ जल ६ वरुण ७) हैं तहां अष्टमी भूतसाध-  
नी (पृथ्वी-भूतों को उत्पादन करती) है अतः सर्वाधिष्ठान भूत तू आ-  
ध्वनः (मार्गों को) सकाम करि अर्थात् जिन मार्गों में मैं चलू तहां मुझे  
काम प्राप्ति हो। किंच देवदत्त करि मेरा संगत ज्ञान (मेरी इष्ट संप्रति)  
हो। विज्ञानात्मा वोच्यते जिस तेरे सप्त संसदः (पञ्च बुद्धीन्द्रियाणि म-  
न और बुद्धि सप्तायतन) हैं अष्टमी भूतसाधनी (भूतों को बशी कर-  
ने वाली बाणी) है सो तू हमारे अध्वनः सकाम करि अमुक सहित मे-  
रा संगत ज्ञान हो ॥ ५॥ ६॥ १॥

यथेमां वाचं कल्याणीमावदन्ति जनैभ्यः ब्रह्मरजिन्या-  
भ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च। प्रियो देवानां

दक्षिणाये दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुप  
मादो नमतु ॥२॥ + य-च।अ०।प्रि-तु।इ०॥२॥

यह कल्याणी अनुद्देशकरी वाचा को मैं यथा यतः सर्वतः कहता हूँ (दी-  
यताम् भुज्यताम् इति सर्वेभ्यो वच्मि। केभ्यस्तदाह ब्राह्मणों के अर्थ  
राजन्यों वैश्यों शूद्रों स्व (अपनों) अरणों (परायों) शत्रुओं वा वाक्सम्ब-  
न्धरहित शत्रुओं) के अर्थ ॥ प्रियो देवानाम् मय्यैव सान्निहितानुद्देश्य  
लोगाक्षिहृष्टा। यथेति पूर्वोक्तेरत्र तथाशब्दोऽध्याहार्यः यतः संशय  
णदिकों के अर्थ कल्याणी वाणी कहता हूँ तथा (ततः) देवताओं का ध्यान होवे  
और इस संसार में दक्षिण के दाता का ध्यान होवे अर्थात् देव दक्षिणा  
और दानार्थ मेरे विषे प्रीति करें। किं च मेरा अर्थ यह काम (अर्थमिति  
नामनिर्देशः धनपुत्र दिलाभकामः) सफल हो। किंच यह (देवदत्त) भू-  
मे प्रीणयतु (तृप्त करे) ॥२॥

बृहस्पतेऽति यदयोऽहोदयुमद्विभाति क्रतुमज्जने-  
षु। यहीदयच्छ्वेसः ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि  
चित्रम्। उपयामगृहीतोऽसि बृहस्पतये त्विष ते योनिर्बृह-  
स्पतये त्वा ॥३॥ + रु-मा।अ०।उ-त्वा।दु०।ग-त्वा।उ०॥३॥

ब्रह्मदेवत्या त्रिष्टुप् गृत्समददृष्टा बृहस्पतिसवे बार्हस्पत्यग्रहणेऽस्याः  
सोपयामाया विनियोगः ॥ हे ऋतप्रजात (सत्य वा ब्रह्म) के सकाशसे जन्म  
जिसका हे बृहस्पते (बृहत् वेदों के पालक) नानाविध बोह धन हम  
यजमानों में स्थापन करि। बोह कौन कि जिस धन की स्वामी पूजाकरे  
(अर्थात् ईश्वर योग्य धन दे। जो धन की लोकों में विविध शोभे। कैसे

धन किं द्युमत् (कान्तिमान्) क्रतुमत् (जिससे यज्ञ किये जावें) अर्थात् ताह  
 श्रुतन दे। जो धन बल करि दिलाता वा प्राप्ति करता अर्थात् धनान्ता वोह  
 धन दे ॥ उपयामेति सा-उ० उपयाम पात्र करि गृहीत है बृहस्पति के अर्थ  
 तुम्हें ग्रहण करता हूँ ॥ एष ते या-त्रि० यह तेरा स्थान बृहस्पति के अर्थ  
 तुम्हें सादन करता हूँ ॥ ३॥

इन्द्र गोमन्निहायाहि पिबा सोमं शतक्रतो विद्यद्भि-  
 र्ग्रीवभिः सुतम् । उपयाम गृहीतोऽसीन्द्राय त्वा गोमते  
 एष ते योनिरिन्द्राय त्वा गोमते ॥ ४॥ †

हे शतक्रतो (शत कर्म जिसके) हे इन्द्र हे गोमान् (गावः-धेनवः-स्तुत-  
 यः-किरण वा विद्यते यस्य स) तू इस यज्ञ में आ और सोम को पान क-  
 रि। कैसे सोम कि ग्रावों (पाषाणों) से अभिषुत कैसे पाषाणों कि विद्यत्  
 (विशेषों) खण्डन करते-पीसते हैं तिन्हों करि ॥ उप० ४. ५. सा-उ० गो-  
 मान् इन्द्र० सादयति एष० ४. ५. या-ज० ॥ ४॥

इन्द्रायाहि वृत्रहन् पिबा सोमं शतक्रतो । गोमद्भिर्ग्रीव-  
 मिः सुतम् । उपयाम गृहीतोऽसीन्द्राय त्वा गोमते एष ते  
 योनिरिन्द्राय त्वा गोमते ॥ ५॥

हे वृत्रहन् (वृत्र-दैत्य के मारने वाले) हे शतक्रतो हे इन्द्र तू आ और  
 सोम को पी कैसे सोम कि ग्रावों करि सुत कैसे ग्रावों कि स्तुति है जिन्हों  
 की ॥ उप० एष० व्याख्याते ॥ ५॥

ऋतवानं वैश्वानरसूतस्य ज्योतिषस्पतिम् । अजस्रं घ-  
 र्ममीमहे । उपयाम गृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वेष ते यो-

निर्वैश्वानराय त्वा ॥६॥ + कर-हे।अ०उ-त्वा।इ०ए-त्वा।उ०॥

तिस्रो वैश्वानरीयाः पुरोऽनुवाक्याः। आद्या गायत्री प्रादु राक्षिह-  
ष्टा। हम वैश्वानर की याचना करते हैं यज्ञ समाप्ति को इति शेषः।  
कैसे वैश्वानर कि करतावान (सत्य यज्ञ वा जलवान) को सत्य (अवि-  
नाशि) ज्योति के पति अर्थात् तेजो अधिष्ठान को। अजस्र (अनुपक्षी-  
ण) को। धर्म (जलक्षरते वा दीप्त) को ॥ उप० ६०७०८ सा-उ० वैश्वानर  
के अर्थ तुम्हें ग्रहण करता हूँ ॥ गण० ६०७०८ या-त्रि० सादन कर-  
ता हूँ ॥६॥

वैश्वानरस्य सुमतो स्याम राजा हि कं भुवनानामभि-  
श्रीः। इतो जातो विश्वमिदं विचष्टे वैश्वानरो यततेसू-  
र्येण। उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वेष ते योनिर्वै-  
श्वानराय त्वा ॥७॥ + + वै-ए।अ०उ-त्वा।इ०ए-त्वा।उ०॥

त्रिष्टुप्कुत्सदृष्टा। वैश्वानर की शोभन बुद्धि में हम होंवें। कं निपातः पा-  
दपूरणः। हि जिस हेतु से वैश्वानर इतः अरणि से उत्पन्न हो इस स-  
ब कर्मानुरूप को देखता और सूर्यसम तेजा है। कैसा अग्निः कि रजता  
भूतजातों का आश्रयणीय। उप० गण० व्याख्याते ॥७॥

वैश्वानरो न ऊतयः प्रयातु परावतः। अग्निरुक्थे  
न बाहसा। उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वेष ते  
योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥८॥ + + वै-सा।अ०उ-त्वा।इ०ए-त्वा।उ०॥

गायत्री। हमारी रक्षा के अर्थ दूर देश से वैश्वानर अग्नि आवे किस वा-  
हन करिकि उक्थ (स्तोम) करिके ॥ उप० गण० व्याख्याते ॥८॥



अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे  
महागयम् । उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा वर्चसे एष ते  
योनिर्ग्नये त्वा वर्चसे ॥ १० ॥ †

अग्निदेवता गायत्री वसिष्ठभरद्वाजदृष्टा पुरोरुक् । महान्नायः (म-  
हास्तुति जिस की वा महागृहरूप) तिस अग्नि को हम याचना करते  
हैं । तिस किसे कि जो अग्नि ऋषि (मन्त्रदृष्टा) पवमान (इधर उधर च-  
लता वा शोधता) है । पाञ्चजन्यः (पाञ्चजनों के अर्थहित) पुरोहित (अ-  
ग्न में स्थापित) है ॥ उप० सा-उ० तेजस्व अग्नि के अर्थ तुम्हें ग्रह ॥  
एष० या-उ० ॥ १० ॥

महो २॥ इन्द्रो वज्रहस्तः षोडशी शर्म यच्छतु । हन्तु पा-  
प्मानं योऽस्मान्नेष्टि । उपयाम गृहीतोऽसि महेन्द्राय-  
क्षेप ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥ १० ॥ †

महेन्द्रदेवता गायत्री वसिष्ठकृता । पुरोरुक् । इन्द्रशर्म (सुख) देवै ।  
और जो हमें सुख दे तिस पापिष्ठ को मारे यद्वा हमारे देखार और  
पाप्मान (पाप-ब्रह्महत्यादिक) को नाश करे । कैसा इन्द्र कि महान् (श्रे-  
ष्ठ) वज्र है हाथ में जिस के वोह । षोडशी-पञ्चप्राणा दशेन्द्रियाणि म-  
नश्चेति षोडशपदार्था लिङ्गशरीररूपा जिस के वोह आत्मरूप इत्यर्थः ॥  
उप० आसु-अ० एष० या-पं० द्वे उक्ते ॥ १० ॥

न वो दुस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः । अभि व-  
त्स न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गोभिर्निवामहे ॥ ११ ॥

इन्द्रदेवता पथ्या बृहती नोधागोतमदृष्टा । स्वाध्यायादिषु नियुक्ता ।

हे यजमानओं तिस इन्द्र को हम स्तुति लक्षण वाणियों करि स्तुति करते हैं। कैसे इन्द्र को कि तुम्हारे दर्शनीय। ऋतिषत् (अभिभवता शत्रुओं को) तिसे। स्थिति हे तुभूत अन्न करि मोदमान को। दृष्टान्तमाह वत्सं नखस-  
रेषु (दिनों में जैसे नख प्रसूता गायें बछड़े को बुलाती हैं। तद्वत् हम इन्द्र को स्तुति करते हैं ॥११॥

यद्वाहिंश्च तद्ग्नये बृहद्वर्चं विभावसो। महिषीव त्वद्र-  
यिस्त्व द्राजा उहीरते ॥१२॥

अग्निदेवत्यानुष्टुबम् युदृष्टा। हे उद्गातः अग्नि के अर्थ तिस बृहत्साम का गान करि। वाह क्या कि जो प्राप्त करता है अति शयन इष्ट को। किंच सामगान से प्रत्यक्ष अग्नि को कहि क्या कि हे विभाव (कान्तिही है धन जिस का वाह) हे अग्ने धन और अन्न तेरे सकाश से ऊंच चलते हैं। तत्र दृष्टान्तः महिषीव जैसे प्रथम परिणीता स्त्री घर से भाग के अर्थ ऊंची चलती है। एकं त्वत्यदं पादपूरणम् वाधन तुम् से ऊंचा चलता है ॥१२॥

एह्यु शु ब्रवाणि तेग्ने इत्येतरा गिरः। एभिर्विधास इन्दुमिः ॥१३॥

अग्निदेवत्या गायत्री भरद्वाजदृष्टा। हे अग्ने तू आ। इस प्रकार क-  
रि(+) इतराः (अन्याः) स्तुति लक्षण वाणिर्गं सुतरा कहें। किंच इन सोम विन्दुओं से बढि ॥१३॥

ऋतवस्ते यज्ञं वितन्वन्तु मासा रक्षन्तु ते हविः। सं-  
वत्सरस्ते यज्ञं दधानु नः प्रजां च परिपातु नः ॥१४॥

अग्निदेवत्या बृहती। हे अग्ने ऋतुलक्षणाः कालविशेषाः तेरे यज्ञ

को विस्तारें। चैत्रादि मासाधिष्ठातारो देवाः तेरे हवि (पुरोडाश) को रक्षा करें। संवत्सराधिष्ठाता देवता तेरे अर्थ हमारे यज्ञ को पुष्ट करें और हमारी पुत्रादि प्रजा को संवत्सर ही रक्षा करें ॥१४॥

उपह्वरे गिरीणां च संगमे च नदीनाम्। धिया विप्रो  
ऽऽजायत ॥१५॥

सोमदेवत्या गायत्री वत्सदृष्टा। वर्तों के निकट और नदीयों के संगममें मेधावी सोम उत्पन्न हुआ किस बुद्धि करि कि विप्रादिक मुझ करि यज्ञ करेंगे यह विचारि के इत्यर्थः ॥१५॥

अ० २ उच्चा ते जातमन्थसो दिवि सङ्गम्याददे। उग्रं शर्मम-  
हि श्रवः ॥१६॥

सोमदेवत्यास्तिस्रो गायत्र्य आमही यवदृष्टाः। हे सोम तेरे अन्न (रसरूप) से उत्पन्न होम से हुए अपूर्व ऊंचे गये स्वर्ग में विद्यमान को भूमि ग्रहण करती है। किं तत् द्युलोकस्थं भूमिर्गृह्णाति तदाह। उत्कृष्ट सुख (गृहपुत्रादिजन्य) को बड़े श्रवः (कीर्ति वा धन) को ॥ अनेन मन्त्रेण पञ्चाहुति परिणाम उक्तः। स यथा। होम किई हुई आहुति प्रथम दिवि में जाती है ततः अन्तरिक्षमें जलरूप करि फिरि भूमि में अन्नरूप से ततः नर में रेत रूप से फिरि योनि में नररूप करि आके नर को धन यश से सुखी करती है इति भावः ॥१६॥

स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः। वरिवो वितरि-  
स्रव ॥१७॥

हे सोम तू हमारा परिश्रव क्षररूप) होके आहुतित्व को प्राप्त हुआ

इत्यर्थः। किमर्थम्। कि इन्द्र वरुण और मरुतों के अर्थ अर्थात् इन्द्र-  
दिकों की तृप्ति के अर्थ परिस्रव। कैसे इन्द्र कि पूजने योग्य के अर्थ। य-  
ज्यवे (यज्यवे इदं त्रयाणां विशेषणम्। यज्युभ्य इति (पूजा योग्यो) मरुतों  
के अर्थ। कैसे है तू कि वरिवोवित् धनका ज्ञाता वा प्रापक ॥१७॥

एना विश्वान्यर्य आ युम्नानि मानुषाणाम्। सिषासन्तो  
वनामहे ॥१८॥

ईश्वर सोम इन सब मनुष्यों के युम्नों (धनों वा यशों) को लावै इति शेषः अ-  
र्थात् हमारे अर्थ देवै तिन सोमदत्त युम्नों को हम सम्भजें। कैसे हैं हम  
कि सिषासन्तः (दान को करते) धनभाज हों इत्यर्थः ॥१८॥

अनु वीरैरनु पुष्यास्म गोभिरन्वश्चैरनु सर्वेण पुष्टैः।  
अनु द्विपदानु चतुष्पदा वयं देवानो यज्ञमनुया न-  
यन्तु ॥१९॥

यज्ञपुरुषमुद्गलदृष्टा त्रिष्टुप् आशीरियं देव देवत्या। हम वीरों (पुत्रों)  
करि पुष्ट होंवेंगे धेनुओं से पुष्ट होंवेंगे अश्वों से पु० और और कामना-  
ओं गृहादिकों से पु०। द्विपदों (दासादि मनुष्यों) और चतुष्पदों (गजा-  
दिकों) से पुष्ट हों। किंच ऋतु-ऋतु में देव हमारे यज्ञ को प्राप्त हों ॥१९॥

अग्ने पत्नीरिहा वह देवानो मुशतीरुप। त्वष्टारुठं सोम-  
पीतये ॥२०॥

अग्नि देवत्या गायत्री मेधातिथिदृष्टा। इतः पञ्च ऋचोऽग्निष्टोमे  
नेष्टुर्याज्याः आद्या प्रातः सवने नेष्टुचमसयागे याज्याः। हे अग्ने देव-  
ताओं की पत्नी हैं इस यज्ञ में तूला कैसे पत्नी हैं कि कामयमानाः। किं-

च सोम पान के अर्थ त्वष्टा देवता को प्राप्त कर ॥२०॥

अभि यज्ञं गृणीहि नो ग्नावो नेष्टः पिबः ऋतुना । त्वर्हं  
हि रत्नधा असि ॥२१॥

हे ऋतुदेवते गायत्री मेधातिथिदृष्टे ऋतुयागे नेष्टुर्याज्ये । हे ग्नावः  
(पत्नीवन्) हे नेष्टः हमारे यज्ञ की स्तुति कर । किंच ऋतु देवता सहित पान  
करि सोम को इतिशेषः । क्यों कि तू रत्नों (रमणीयधनों) का दाता है ॥२१॥

द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्र च निष्ठत । नेष्ट्राहृतुभिरि-  
ष्यत ॥२२॥

द्रविणोदाः (धनदाता अग्नि) पीने चाहता है सोम को इतिशेषः । अतः  
हे ऋत्विजः तुम होमों और कर्म में उद्युक्त होओ । किंच नेष्टा के धि-  
षाय से देवों सहित सोम प्रति जाओ ॥२२॥

तवायर्हसोमस्त्वमेत्यर्वाङ् शश्वत्तमर्हं सुमना अस्य  
पाहि । अस्मिन्यज्ञे बर्हिष्या निषद्या दधिष्वेमं जठरं द-  
न्दुमिन्द्र ॥२३॥

इन्द्रदेवत्या त्रिष्टुप् विश्वामित्रदृष्टा । माध्यन्दिने सवने नेष्टुचमसयागे  
याज्या । हे इन्द्र तेरा यह सोम है अतः अस्मदभिमुखः तू आ सर्वकाल  
इस सोम की (को) रक्षा कर । कैसा है तू कि प्रसन्नचित्त । किंच इस यज्ञ  
में आस्तन दर्भों पर बैठ इस सोम की उदर में रख ॥२३॥

अमेव नः सुहवा आ हि गन्तन नि बर्हिषि सदतना र-  
गिष्टन । अथा मन्दस्व जुजुषाणोऽअन्धसस्त्वष्टर्देवेभिर्ज-  
निभिः सुमङ्गलः ॥२४॥

त्वष्ट्रदेवत्या जगती गृत्समदृष्टा । तृतीयसवने नेष्टृचमसागेयाज्या  
देवपत्न्यः प्राथ्यन्ते । अपने घर में ऐसे हमारे यज्ञ की हे देवपत्नीओं तुम  
आओ । हिं पादपूरणः । दर्भों पर बैठो । रणिष्ठनः फस्पर वार्ता करो । कैसी है  
तुम कि शोभन है आह्वान जिन्हों का । एवं देवपत्नीरुत्काथ त्वष्टार  
माह हे त्वष्टः तू निरन्तर आइ दुई देवपत्नीओं विषें तृप्त हो । कैसा है  
तू कि हविर्लक्षण अन्न को सेवमान और देवपत्नीओं से सुमङ्गलः (सं  
तुष्ट हैं देवगण और स्त्रीगण जिसके ॥ २४ ॥

स्वादिष्ट्या मदिष्ट्या पवस्व सोम धारया । इन्द्राय पार्त  
वे सुतः ॥ २५ ॥

सोमदेवत्ये द्वावनिरुक्तौ + गायत्र्यो मधुछन्दो दृष्टे जपादिषु नियुक्ते । हे सो-  
मधारा करि दशा पवित्र से द्रोण कलश प्रति जा । कैसी धार कि  
अत्यन्त स्वादवती । अत्यन्त मदयित्री । क्यों कि इन्द्र के पीने की तू अ-  
भिषुत है हम लोगों करि इस हेतु धारा ० प्रति जा ॥ २५ ॥

रक्षोहा विश्वचर्षणि रभि योनिमयी हते । द्रोणे सधस्य  
मासदत् ॥ २६ ॥

इति सठें हितायां द्वितीयोऽनुवाकः २

इति श्री शुक्लयजुषिमाध्यन्दिन शारवीयायां बाजसनेयस  
ठें हितायां दीर्घपाठे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सोम द्रोणकलश लक्षण स्थान को तिष्ठे है । कैसा है सोम कि राक्षसों  
(दुष्टों) का हन्ता विश्वचर्षणि (सब जगत को देखता वा सब मनुष्यत्र  
त्विग्यजमान लक्षण जिस के काण्डनाहरणादि में बोल) तथा कैसा है

व्रीण कलश कि लोह करिके हत (उत्कीर्ण) वनाया गया । तथा सधस्थ (सार्धं धैर्यं) हैं । सोमजहां ॥ २६ ॥

इति भाष्ये द्वितीयोऽनुवाकः १

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमो हार्द निवारयन् ॥

पुमार्थाश्च तरो देयाद्भानुदेवः सनातनः २६

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तरगत माध्यन्दिनीय शाखाध्येतृ व्याघ्रपादान्वयवि-  
श्वामित्रपुराधिपति श्रीमज्जयकिशोरदेववर्मात्मज रौक्मिणेय नृपति-  
गिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये खिलप्रकरणेऽनुक्तम-  
त्र कथनः षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

हरिः ओम्

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधने वैदु रूपकम्

स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं तु मः २६

समास्त्वाग्निर्कोऽध्यायः (प्रजापतिदृष्टः)

अ. १. समास्त्वाग्निः ऋतवो वर्षयन्तु संवत्सरा ऋषयो यानि सत्या ।  
सं दिव्येन दीदिहि रोचनेन विश्वा अभाहि प्रदिशश्चतस्रः १

ओं नमो याज्ञवल्क्याय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके ॥ ॥

सप्तविंशोऽयमध्याय आग्निर्कोवर्ण्यते धुना २०

अयमध्यायः पञ्चचितिकस्याग्नेः सम्बन्धी प्रजापतिदृष्टः । नव ऋचोऽग्नि-

देवत्यास्त्रिष्टुभोऽग्निना दृष्टाः दृष्टकापशौ समिध्यमानसमिदित्यो रन्तराले  
आसां विनियोगः। अग्निर्ऋषिः कर्मोद्भूतमग्निं स्तोति। हे अग्ने एते  
तुम्हें बढावें। के (कौन) कि समा (समाः-महीनें) वसन्ताद्या ऋतुएँ संवत्स-  
राः तिस के अधिष्ठातारः। ऋषयः (मन्त्रदृष्टारः) जे हैं सत्य अर्थात् सत्य-  
रूपामन्त्राः। और तू इन्हों से वर्धमान दिवि में हुई दीप्ति करि संदीप्त हो।  
किं च सब प्रदिशाएँ और चारों दिशाएँ दीप्त करि ॥१॥

सं चेंध्यस्वाग्ने प्र च बोधयेन्मुञ्च निष्ट महते सौभगाय  
मा च रिषदुपसत्ता तेऽग्ने ब्राह्मणस्ते यशसः सन्तु  
मान्ये ॥२॥

हे अग्ने संदीप्त हो और इस यजमान को ज्ञातार्थ करि। बडे ऐश्वर्य  
रूपे को उद्यम करि। किं च हे अग्ने तेरे समीप बैरनेवाला (यजमान) न-  
शान हो। तेरे ब्राह्मणः (ऋत्विग्यजमानाः) यशस्विनः हों। और और य-  
जन न करने वाले यशस्विनः नहीं ॥२॥

त्वामग्ने वृणते ब्राह्मण इमे शिवोऽग्ने संवरणे भवानः।  
सपत्नहा नोऽभिमातिजिच्च से गये जागृत्य प्रयुञ्जन् ॥३॥

हे अग्ने ये ऋत्विग्यजमानाः तुम्हें याग के अर्थ भजें हैं अतो हे अग्ने संव-  
रणे (ब्राह्मणों सहित एकस्मिन्वरणे सति) हमारे को शान्त हो। हमारे शत्रु-  
ओं का हन्ता हो और हतावशिष्टों का जेता हो। किं च अपने घर में प्रमाद  
छेडि सावधान हो ॥३॥

इहैवाग्ने अधिधारया रयिं मा त्वा निक्रन्पूर्वचितो निका-  
रिणः। क्षत्रमग्ने सुयममस्तु तुभ्यमुपसत्ता वर्धतां तेऽग्ने

संवत्सरस्य पृथगुक्तेः  
समा गच्छामासवाचकः

अग्निं ऋषिं ज्ञातुं  
यजमानोऽग्निं मुनीनां दातुं



निष्ठृतः ॥४॥

हे अग्ने इहेव- हम यजमानों में तू धन को अधिक दे। किंच पूर्वचितः  
(प्रथम अग्नि को चित करनेवाले) अतएव निकारिणः (निरन्तर यज्ञ  
करणशीलाः) तुम्हें नीचा न करें (मा अवजानन्वित्यर्थः)। किंच हे अ-  
ग्ने क्षत्रजाति तेरे सुख करिके वशी करने को समर्थ हो। किंच तेरा उ-  
पसदन कर्ता यष्टा अनुपहिंसितः सन् धन पुत्रादि करि बँदे ॥४॥

क्षत्रेणाग्ने स्वायुः सर्गं भस्व मित्रेणाग्ने मित्रधेये यतस्व।  
सजातानां मध्यमस्था एधि राज्ञामग्ने विहव्यो दीदि-  
हीह ॥५॥

हे अग्ने तू क्षत्रियों को यज्ञ कराय। कैसा है तू कि स्वायुः (शोभन है  
आयु-जीवन जिस का वा शोभन आयु + मनुष्य-यजमान है जिसका  
बोह। किंच हे अग्ने मित्र (सूर्य) सहित वर्तमान होते मित्रधेये यतस्व-  
मित्र (यजमान) का धेय (कार्ययागलक्षण) तहां यत्न करि (यजमान क-  
रियज्ञ कराय। किंच समानजन्मा भी यज्ञ कर्ता हों। किंच हे अग्ने इ-  
स यज्ञ गृह में दीप्त हो। कैसा है तू कि राजाओं करि यज्ञमें आह्वातव्यः ॥५॥

अति निहो अति स्त्रिधोऽत्यचित्तिमत्यरातिमग्ने विश्वा  
त्यग्ने दुरिता सह स्वायास्मभ्यर्धं सह वीराथं रुयिं दाः ॥६॥  
हे अग्ने हि (निश्चय) सब पापों को तू निवारि। क्या करिके कि नि-  
हः (मारनेवालों को अतिक्रमण करिके। कुत्सिताचारों को अति०  
अन्यमनस्कों को अति० अदातारों को अति० अर्थात् सब दुष्टों को  
अतिक्रम्य पाप का नाश करि। किंच निरन्तर हे अग्ने हमारे अर्थ

पुत्रों सहित धन दे ॥६॥

अनाधृष्यो जातवेदा अनिष्टृतो विराडग्ने क्षत्रमुही  
दिहीह । विश्वा आशाः प्रमुञ्चन्मानुषीर्भियः शिवेभि  
रद्य परिपाहि नो वृधे ॥७॥

हे अग्ने इस कर्मविषे वर्तमान तू सब दिशाएँ प्रकाशि। कैसा है तू  
कि अनाधृष्यः (परमभवितुं अशक्यः) जातवेदाः (जात है धन वा ज्ञान जि-  
ससे) अनिष्टृतः (नहीं है हिसित किसी से) । विविध यजमान क्षत्र को पु-  
ष्ट करता। किं च मानुषी भियः (जन्मजरा मृति दैन्य शोकादिकाः) को निव-  
र्तयन्सन् शान्तों से हमें रक्षा करि ॥७॥

बृहस्पते सवितर्वोध्यैर्नष्टं संशितं चित्संतरांश्च संशि  
शाधि । वर्धयेन्न महते सौभगाय विश्वेऽएन्मनुमद-  
न्तु देवाः ॥८॥

हे बृहस्पते हे सवितः इस यजमान को कर्माभिज्ञ करि किंच चित् चि-  
दप्यर्थे संशितं चित् शिक्षित को भी संतराम् (अतितरं) शंशिशदी  
शिक्षा करि। किंच वडे ऐश्वर्य के अर्थ इसें बढा । विश्वे देवा इस यज-  
मान को अनुमदन्तु (तृप्ता दृष्टा वा भवन्तु) हों बृहस्पति सवितृशब्दा-  
भ्यां सामिधेन्यङ्गभूतोऽग्निरेवोच्यते वाक्यद्वयं वा एकेन बृहस्पति  
रुक्तोऽन्येन सविता ॥८॥

अमुत्रभूयादध यद्यमस्य बृहस्पतेऽप्रभिशास्तेरमु-  
ञ्चः ॥ प्रत्योहतामश्विना मृत्युमस्माद्देवानामग्ने भि-  
षजा शन्वीभिः ॥९॥

हे बृहस्पते तू अमुत्र भूयात् परलोक गमन मरण से छुटा अर्थात् मरण से रक्षा करि। अथ (अथ) यम का भय (परलोक भय नरक पाता-दि तिस) से भी वचा। किंच अभिशाप (लोकापवाद) से भी छुटा। दे-वताओं के वैद्य अश्विनी कुमारों इस यजमान से मृत्यु को निवर्त करो किन्हीं करिके कि शचीओं कर्मों करिके अत्र बृहस्पति रगेन रेव सा-मिधेनी प्रकरणेन ग्नेयत्वात् ॥४॥

उदयं तममस्यारिस्वः पश्यन्त उन्नरम् । देवं देवानां सूर्य-  
मगन्मज्योतिरुत्तमम् ॥१०॥

व्याख्याता २०.२१. ॥१०॥

अ० २ ऊर्ध्वो अस्य समिधो भवन्त्यूर्ध्वो शुक्रा शोची धंध्युने।  
द्युमत्तमा सुप्रतिकस्य सूर्नोः ॥११॥

द्वादशाग्नीदेवत्या उषिणो विषमपादा आग्नेय्याग्निना हृष्टाः।  
अग्निः प्रजापतित्वेन स्तूयते तेन प्राजापत्या अपि। ता आग्नेय्यः  
प्राजापत्या यदग्निं पश्यन्तेनाग्नेयो यत्प्रजापतिमग्नीणाग्नेन प्रा-  
जापत्या इति श्रुतेः। इस अग्नि की समिधारों ऊर्ध्वो (देवगामिन्यः)  
होती हैं और तंजांसि ऊर्ध्वो होते हैं। कैसे तेज कि शुद्ध। द्युमत्तमा (वि-  
श्वप्रकाशक। कैसे अग्नि के कि सुष्ठु मुख जिस का। तथा यजमान  
पुत्र की। जो ऐसा तिसें स्तुति करते हैं इति शेषः ॥११॥

तनूनपादसुरो विश्ववेदा देवो देवेषु देवः। पयोऽज-  
नक्तु मधो घृतेन ॥१२॥

देवोऽग्नि मधुरघृत करि यज्ञमार्गों को छिड़के भाव्य है कि यज्ञमें घृ-

त बहुत हो कि जिस करि मार्ग घृताभ्यक्त हों। कैसा देव कि तनूनपात  
(जल का पौत्र)। असुरः (प्राणवान्)। विश्ववेदाः (सर्वधनः)। देवों में भी  
दीप्तिमान् श्रेष्ठ ॥१२॥

मध्वा यज्ञं नक्षसे प्रीणानो नराशंसोऽअग्ने। सुकृहे-  
वः सविता विश्ववारः ॥१३॥

हे अग्ने तू मधु स्वादघृत करि यज्ञ को व्याप्त है। कैसा है तू कि देव-  
ताओं को तृप्त करता। नराशंस (ऋत्विजों करि आशंस-स्तुत। शोभ-  
नकारी। दीप्तिमान्। विश्वात्पादक। विश्ववार (सबों करि सेवित वास-  
व को अङ्गी करता ॥१३॥

अच्छायमेति शवसा घृतेनैडानो बन्धिर्नमसा। अग्नि-  
ं सुचोऽअध्वरेषु प्रयत्सु ॥१४॥

यह अध्वर्यु अध्वरों में वर्तमान अग्नि को प्राप्त करता है। कैसा कि ज्ञा-  
नवल करिके स्तुतः। तथा बन्धिः (बहता है यज्ञभार को) यज्ञनिर्वाह-  
कः। क्या करिके कि घृत हविर्लक्षण अन्नसे उपलक्षितः जुह्वाद्याग्रहण  
करि इति शेषः ॥१४॥

स यक्षदस्य महिमानमग्नेः स ई मन्द्रा सुप्रयसः।  
वसुश्चेतिष्ठो वसुधातमश्च ॥१५॥

वोह अध्वर्यु इस अग्नि के महिमान को यज्ञ और मदजनक हवियों  
देवे। कैसे अग्नि के कि सुप्रयसः (शोभन हैं अन्नजिस के)। कैसे अ-  
ग्नि के महिमान को यज्ञ कि जो वसुः वासयिता अतिचेतयितायनों  
का दातृ तमः ॥१५॥

द्वारे देवीरन्वस्य विश्वे व्रता ददन्ते अग्नेः। उरुव्य-  
चसो धाम्ना पत्यमानाः ॥१६॥

द्वारे देव्यः इस अग्नि के व्रत(कर्म) धारण करती हैं। पीछे सब दे-  
वता अग्नि के०। कैसी हैं द्वार कि विशालान्तरा। तथा स्थानों से ऐश्व-  
र्य कराती अर्थात् ऋत्विजों को स्थान देतीं ताः स्तुमः ॥१६॥

ते अस्य योषणे दिव्ये नयोनाऽऽषासानक्ता। इमं यज्ञ-  
मवतामध्वरं नः ॥१७॥

अहोरात्रि देव्यो हमारे इस यज्ञ को रक्षा करें। कैसी हैं ते कि अग्नि  
की भार्यो हैं। तथा स्वर्गस्थे। कैसे अग्नि की योनि में कि गार्हत्य स्था-  
न में स्थित के इति शेषः नकारः पाद पूरणः। कैसे यज्ञ को कि  
अध्वर (अकुटिल) को ॥१७॥

देव्या होतारऽऊर्ध्वमध्वरं नोऽग्नेर्जिह्वामभिगृणीत  
मू। कृणुत नः स्विष्टिम् ॥१८॥

हे देव्या होतारो (अग्निवायू) तुम हमारा शोभन यजन करो। किंच ह-  
मारे यज्ञ को ऊँचा (देवमार्गगामी) करो। अग्नि की ज्वाला को वर्णन क-  
रो अर्थात् समीची वन्धिज्वाला है यह स्तुति करो ॥१८॥

तिस्त्रो देवीर्बहिरेदं सदनिकडा सरस्वती भारती। म-  
ही गृणाना ॥१९॥

तीनों देवि इस बहिर् पर बैठें। कोन तीनों कि बूडा (पृथिवी स्थाना) सर-  
स्वती (मध्यस्थाना) भारती (द्युस्थाना)। मही (महती) गृणाना (स्तुवन्ति इ-  
ति विशेषण द्वयं तिस्रणाम् ॥१९॥

तन्नस्तुरीयमद्भुतं पुरुक्षु त्वष्टा सुवीर्यम् । एयस्योष वि-  
ष्यतु नाभि मस्मे ॥२०॥

त्वष्टा देव तिस (प्रसिद्ध) धन की पुष्टि को हमारी नाभि प्रति छोड़ें (नाभि पर छोड़ा उत्सङ्ग में गिरता है इति भावः) । कैसे धन की पुष्टि को कि हमें शीघ्र प्रापक । अद्भुत (महान्) पुरुक्षु (बहुतों में निवास करता) साधु वीर्यो । अर्थात् ऐसे धन को दे ॥२०॥

वनस्यते वसृजा रराणस्मना देवेषु । अग्नि हव्यं  
शमिता सृदयाति ॥२१॥

अग्निः शमिता हव्य को संस्करता है यतः अतो हे वनस्यते तिस संस्कृत हव्य को अवसृज (सुड्युरव से अवाचीन डालि) । कैसा है तू कि आत्मा करि देवों में हवि देता ॥२१॥

अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेद इन्द्राय हव्यम् । विश्वे-  
देवा हविरिदं जुषन्ताम् ॥२२॥

हे अग्ने हे जात प्रज्ञान हवि को इन्द्र के अर्थ स्वाहाकार करि के दे किं च विश्वे देवा इस हवि को सेवन करें ॥२२॥

अ० ३. पीवोऽअन्ना रयिवृधः सुमेधाः श्वेतः सिषक्ति नियुताम-  
भिन्नीः । ते वायवे समनसो वितस्थुर्विश्वेन्नरः स्वपत्या-  
नि चक्रुः ॥२३॥

अथैतं वायवे नियुत्वते शुक्लं तूपरमालभते इति हुतस्य पशोः पीवोऽ-  
अन्ना रयिवृध इत्याद्याः षट् याज्यानुवाक्याः । हे वायुदेवत्ये त्रिष्टुभो व-  
सिष्ठदृष्टे । शुक्लो हि वायुरिति श्रुतेः । श्वेतो वायुः जिन नियुत्वां (अश्वों) को

सेवन करता है ने नियुतः समानमनस्काहो वायु के अर्थ विशेषेणति-  
ष्ठं हैं। कैसे अश्वों कि पुष्ट है अन्न जिन्हों का तिष्ठे। तथा धन को वढाते।  
कैसा श्वेत कि शोभन बुद्धि जिस की। अश्वों का आश्रयणीय। एवं वायु  
करि किये अश्व योग में नरः (ऋत्विजः) सर्वाण्येव शोभनापत्यप्राप-  
कानि करता ह्नु आ कर्म इति शेषः ॥२३॥

राये नु यं जज्ञतू रोदसी मे राये देवी धिषणा धाति देव-  
म् । अथ वायुं नियुतः सश्वत स्वा उत श्वेतं वसुधितिं  
निरेके ॥२४॥

ये रोदसी धावापृथिव्यो जिस वायु को उत्पादन करती हूर्ने नु (क्षिप्र)  
किमर्थम् कि धन (उदकरूप) के अर्थ। बुद्धि को देती वाणी देवी देव  
(वायु) को धारण करती है धन के अर्थ रोदसी के सञ्चाव में भी वा-  
यु विना जगद्धारण शक्त से वायु उत्पादितः। अथ उत्पत्त्यनन्तरमेव  
उत (निश्चय) निजाश्वा वायु को सेवन करते हैं। कहा कि निरेके (बहु-  
जनाकीर्ण स्थान में)। कैसे वायु कि श्वेत वर्ण को। तथा धन के धार-  
यितार को ॥२४॥

आपो ह यद्ब्रह्मतीर्विश्वमायन्नाभं दधाना जनयन्ती-  
रग्निम् । ततो देवानां च समवर्तता सुरेकः कस्मै देवाय  
हविषा विधेम ॥२५॥

हे प्रजापति देवत्ये विष्णुभो हिरण्यगर्भ प्राजापत्य दृष्टे प्रथमा स्रष्टिका। आ-  
पो हवा इदमग्रे सलिलमेवासेति ११.१६.१ ब्राह्मणमेतयोः कण्डिकयोर्नि-  
दानभूतं बोध्यम्। ह (प्रसिद्धो) जब कि जल विश्व को प्राप्त हुए। कैसे

जल कि वहुलाः॥ तथा गर्भ (हिरण्यगर्भलक्षण) को धारण करते अतए-  
व अग्नि (अग्निरूपहिरण्यगर्भ) उत्पादन करते ततः संवत्सरोषित  
गर्भ से देवताओं का प्राणरूप आत्मा लिङ्ग शरीररूप हिरण्यगर्भ उ-  
त्पन्न हुआ। प्रजापतिरूप हिरण्यगर्भ के अर्थ हवि देते हैं ॥२५॥

यश्चिदापो महिना पर्यपश्यदक्षं दधाना जनयन्तीर्य-  
ज्ञम्। यो देवेष्वधि देव एक आसीत्कस्मै देवाय हविषा  
विधेम ॥२६॥

विदप्यर्थः और जो अन्नर्यामी देव महिमा करि पूर्वोक्ता जलों को देवता  
हुआ। कैसी जल कि दक्ष (कुशल) प्रजापति को स्थापन करती। यज्ञ को  
उत्पन्न करती। अर्थात् सृष्टिकर्त्री। और जो देवताओं के ऊपर एक देव  
रहा तिस देवता के अर्थ हवि देते हैं ॥२६॥

प्र याभिर्योसि द्वाश्चाथ्समच्छा नियुद्धिर्वायविष्टये दुरे-  
णे। नि नो रयिर्हं सुभोजसं युवस्व नि वीरं गव्यमश्व्यं  
च राधः ॥२७॥

हे वायुदेवत्ये त्रिष्टुभो वमिष्ठदृष्टे। हे वायो तू जिन नियुतों (अश्वओं)  
करिके याग के अर्थ यज्ञगृह में वर्तमान हविर्दत्तवन्त यजमान को  
अभिमुख जाता है तिन नियुतों करि आके हमारे अर्थ धन को दे।  
कैसे धन कि सुष्ठु भोगिये है। किं च पुत्र और गौ अश्वरूप धन को दे ॥२७॥

आ नो नियुद्धिः शतिनीभिरध्वरुहं सहस्रिणीभिरुपया-  
हि यज्ञम्। वायो अस्मिन्सर्वने मादयस्व यूयं पोत स्वस्ति-  
भिः सदा नः ॥२८॥

यस्य शब्द न यज्ञकर्त्री प्रजापति



हे वायो अश्वार्थों करि हमारे यज्ञ को प्राप्त हो। कैसी अश्वार्थों करि किं  
शतिनी सहस्रिनी शतसहस्र संख्या हैं जिन्हें की भाव यह है कि ब-  
हु वाहन तर्पण में समर्थ हैं। और आकर इस तीसरे सबन में नृत्त  
हो। अथ पादेन ऋत्विज आह- हे ऋत्विज! कल्याणों करिके तुम  
हमें रक्षा करो ॥२८॥

नियुत्वान्वायवागह्ययर्धं शुक्रोऽयामि ते। गन्तासि सु-  
न्वतो गृहम् ॥२९॥

षडृचो वायुदेवत्याः वायव्येष्टकायशुपक्षे वषादीनां याज्यानुवाक्या-  
त्वेन नियुक्ताः आद्या गायत्री गृत्समदृष्टा। हे वायो यतः सुन्वतः (य-  
जमान के) गृह प्रति तू गमनशील है। अतः अश्ववान् हो आ। यह  
शुक्रो ग्रहः तुरू प्रति प्राप्त हो। शुक्रादि ग्रहाणां पात्रं त्वमेवेति भावः ॥२९॥

वायो शुक्रोऽयामि ते मध्वोऽग्रं दिविष्टिषु। आयाहि  
सोमपीतये स्यार्हो देव नियुत्वता ॥३०॥

अनुष्टुप्पुरुमीढाजमीढदृष्टा। हे वायो शुक्र ग्रह तुम्हें प्राप्त हो। कैसा शु-  
क्र कि दिविष्टिषु (द्यौः प्रार्थना करिये) हैं जिन्हें करि यज्ञाः। मधु (रस)  
का अग्र (सारभूत) अर्थात् यज्ञरस में शुक्रग्रह सारभूत है। किंच हे  
देव वायो अश्ववता रथ करि सोमपान के अर्थ आ कैसा है तू कि य-  
जमानादिकों करि स्पृहणीयः ॥३०॥

वायु रग्ने गा यज्ञप्रीः साकं गुन्मन्सा यज्ञम्। शिवो नि-  
युहिः शिवाभिः ॥३१॥

हे गायत्र्यो। वायु कल्याणरूपा अश्वार्थों करि चित्त सहित सादर

यज्ञ को चलें कैसा कि आगे चलने वाला । यज्ञर्षी यज्ञ करि वृत्त होता  
कल्याण कर ॥३१॥

वायो ये ते सहस्रिणा रथासलेभिर्गर्गहि । नियुत्वान्तो  
मर्षीतये ॥३२॥

हे वायो जे ते सहस्र संख्याकाः रथाः हैं तिन रथों करि सोमदान के  
अर्थ आगमन करि कैसा है तू कि अश्वायुक्तः ॥३२॥

एकया च दशभिश्च स्वभूते द्वाभ्यामिष्टयं विठंशती च ।  
तिसृभिश्च वहसे विठंशती च नियुद्धि वायविह ता  
विमुञ्च ॥३३॥

त्रिष्टुप् अनयश्चो पात्राणि मुच्यन्ते । हे स्वभूते निजा समृद्धिर्जगद्रूपा  
जिस की सो हे वायो एक दश दो बीस तीनि और तीस अश्वों क-  
रि के जे पात्र वंहे हैं ते पात्र इस यज्ञ में विशेषेण छांड़ि । पञ्च चका-  
राः समुच्चयार्थः ॥३३॥

तव वायवृतस्पते त्वष्टुर्जामातरद्भुत । अवाथं स्यावृणी-  
महे ॥३४॥

गायत्री आङ्गिरस्योव्यश्वदृष्टा । हे वायो हे ऋतस्पते (सत्य के पालक)  
हे त्वष्टुर्जामातः (आदित्य से जल लेकर वायु गर्भता है फिर दृष्टि हो  
ती है इस कारण वायु आदित्य का जामाता । हे अद्भुत (आश्चर्य रूप)  
तेरे अन्नों को प्रार्थना करते हैं ॥३४॥

अ० ४० अभि त्वा शूर नो नुमोऽदुग्धा इव धेनवः । ईशानमस्य  
जगतः स्वर्हशमीशानमिन्द्र तस्युषः ॥३५॥

बृहतीसतोबृहतीद्वयं प्रगाथं वसिष्ठदृष्टमिन्द्रदेवत्यम् । रथन्तरं द-  
क्षिणी पक्षे इति श्रुतेः । नान्योऽध्वर्योर्गायेदित्यध्वर्योर्गानं विहितम् ।  
अतः साम्नां योनय ऋचः पश्यन्ते तत्रैन्द्रः प्रगाथो रथन्तरस्य यो-  
निः । हे शूर हे इन्द्र हम तुम्हें आभिमुख्यकरि अत्यन्त स्तुति करते  
हैं । तत्र दृष्टान्तः जैसे अदुग्धा गौएँ वत्साओं को स्तुति करती हैं ।  
कैसे तुम्हें कि जङ्गम के ईशान स्वर्हश (आप देखता है वा आदित्य)  
को स्थावर के प्रभु अर्थात् नियन्तार को ॥३५॥

न त्वाँ वाँ ॥ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनि-  
ष्यते । अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा  
हवामहे ॥३६॥

हे मघवन् (धनवन्) हे इन्द्र दिवि में हुएओंविषें तेरे सहश नहीं हैं  
इति शेषः और न हुआ और न होगा । इस हेतु हम तुम्हें बुलाते हैं  
कैसे हैं हम कि अश्वों को कामयमानाः । हविर्युताः । गोकामाः । अ-  
र्थात् गोघोडेदे ॥३६॥

त्वामिद्धि हवामहे सातो वाजस्य कारवः । त्वां वृत्रेधि-  
न्द्र सत्यंति नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥३७॥

ऋग्वयमेन्द्रः प्रगाथः शस्युदृष्टः बृहत्साम्नो योनिः अध्वर्योर्गा-  
नस्योक्तेः आद्या बृहती द्वितीया सतोबृहती बृहदुत्तरे पक्षे इति  
श्रुतेः । हे इन्द्र कारवः (यज्ञों के करनेवाले) नरः (ऋत्विज) हम तुम्हें  
बुलाते हैं । इत् एवार्थे हि निश्चये । किसनिमित्त कि अन्न के लाभ  
निमित्त शत्रुघातनिमित्त दिग्विजयनिमित्त । कैसे तुम्हें कि सातों

(श्रुतिस्मृत्युक्ताचाररतों निषिद्धत्यागियों) के पालक को। तथा अश्वप्राप्ति निमित्त। त्वां शब्दावृत्तिरद्वयार्थः ॥३७॥

स त्वं नश्चित्रं वज्रहस्तं धृष्णुया महं स्तवानोऽद्रिवः ।  
गामश्चरं रथ्यमिन्द्रं संकिरं सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥३८॥  
हे चित्र (आश्चर्यकारिन्) हे वज्रहस्त हे अद्रिवान् हे इन्द्र सो तू हमारे गौ और अश्व दे। कैसे अश्व कि रथ वहन समर्थ। कैसे है तू कि प्रागल्भ्य और तेज करि स्तूयमानः। कैसे कि जैसे जिग्युषे (जीतते) अश्व वा हस्ती के अर्थ) अन्न देते हैं तैसे हमारे अर्थ दे ॥३८॥

कया नश्चित्रं आभुवदूती सदावृधः सर्वा। कया शचिष्ठया वृता ॥ ३९ ॥

तिस्रो गायत्र्य इन्द्रदेवत्या वामदेवदृष्टाः वामदेव्यं साम्नो योनिः वामदेव्यमात्मन्निति श्रुतेः अन्त्या पादनिवृत्त सप्ताक्षरत्रिपदाः पूर्वर्चः इन्द्रपदमनुषज्जनीयम्। इन्द्रः किस ऊती (अवन तर्पण वा प्रीणन) करिके हमारा सहाय आभिमुख्येन होता है। तथा तिस अतिशयवती यागक्रिया करि हमारा सर्वा होता है। कैसे इन्द्र कि चित्रः विचित्र बाष्प्य। सदा वर्धमानः ॥३९॥

कस्त्वा सत्यो मदानां मर्हिष्ठो मत्सदन्यसः। वृढा विदरुजे वसु ॥४०॥

हे इन्द्र अन्ध (सोमरूप अन्न) का कः (अंश) मत्त करता है। कैसे कि मदजनक हवियों के मध्य मर्हिष्ठ-अष्ट (अत्यन्त मदजनक वा अत्यन्त प्राकाशता वा बढाता। जिस अंश करि मत्त हो हृदों कन कादिधनों को

तू चूर्ण करता अर्थात् देने को ताँड़ि-तोड़िकर देता है ॥४०॥

अभी शु णः सखीनामविता जरितृणाम् । शानं भवास्तु-  
तये ॥४१॥

हे इन्द्र तू पालन के अर्थ भले प्रकार शान (बहुतरूप रखता) है।  
केसा है तू कि मित्रों स्तुति करने वालों हम ऋत्विजों का पालयि-  
ता ॥४१॥

यज्ञा-यज्ञा वोऽअग्नये गिरा-गिरा च दक्षसे । प्र-प्र-  
वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शर्हिमिषम् ॥४२॥

तृचः प्रगाथः आग्नेय्यः प्रथमा शम्पुदृष्टा यज्ञायज्ञियस्य साम्ना  
योनिः । यज्ञायज्ञियं पुच्छमिति श्रुतेः । हे बृहत्यो तृतीया सतो बृह-  
ती । अनेक यज्ञों में अन्या-अन्या स्तुति करि के तुम्हें वा तुम्हारे अ-  
र्थ अग्नि को स्तुति करता हूँ । कैसे अग्नि कि उत्साहिन वा बलव-  
न्त की । अमरणधर्म की । जात है ज्ञान वा धन जिस से तिसै प्रीतिज-  
नक की । जैसे कोई मित्र को स्तुति करता है तद्वत् अग्नि को स्तु-  
ति करता हूँ । अत्र विकरणव्यत्यः ॥४२॥

पाहि नोऽअग्नः एकया पात्युत द्वितीयया । पाहि  
गीर्भिस्तिसृभिर्रूर्जा पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥  
॥४३॥

भर्गदृष्टा । हे अग्ने हे अन्नों के पालक हे वसो (वासयित वा वसुमन्)  
एक गिरा ऋग्लक्षणा करिके स्तुतः सन् । हमें रक्षा करि । और दूसरी  
(यजुर्लक्षणा) से स्तुतः सन् हमें रक्षा करि । तीनों ऋग्यजुः सामल-

क्षणो) सैस्तु० चारों (ऋग्यजुः सामनि गदलक्षणो) सैस्तु० गद्य  
पद्य काव्यादिरूपा चतुर्थी गीः ॥४३॥

ऊर्जो नपातर्हं स हिनायमस्मयुर्दशैम हव्यदातये ।

भुवद्वाजैषविता भुवद्बुधः उत त्राता तनूनाम् ॥४४॥

शाम्युदृष्ट्वा यजमानोंऽयुं प्रार्थयते । हे अध्वर्यो जल के पौत्र अग्नि + को  
सो तू तर्पण करि । क्यों कि यह अग्नि हमें इच्छा करता है अतः हवियों  
के दानार्थ संकल्प करते हैं । यतः यह अन्नों में रक्षिता होता है और शरीरों  
(आर्या पुत्रादिकों के शरीरों) का रक्षिता होता है । अग्नि अन्न शरीर रक्षितावर्ध-  
यिता हमें चाहता है अतः हविर्दान के अर्थ तिसै संकल्प करते हैं ॥४४॥

संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसीदावत्सरोऽसीद्वत्सरोऽसि व-  
त्सरोऽसि । उषसस्ते कल्पन्तामहोरात्रास्ते कल्पन्तामर्ध-  
मासास्ते कल्पन्ता मासास्ते कल्पन्तामृतवस्ते कल्पन्ता-  
मसंवत्सरस्ते कल्पन्ताम् । प्रत्याऽण्ये मे चाञ्च य च सा-  
रय । मृगं चिदसि तथा देवतयाङ्गिरस्वदध्रुवः सो-  
द ॥४५॥

इति सठि हितायां चतुर्थोऽनुवाकः ४

इति श्री सुक्त यजुषि माध्यन्दिनीयायां वाजसनेयसठि हितायां  
दीर्घे पाठे सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

अग्नि देवत्यं यजुः चित्याग्निमर्शने विनियोगः । यच्च संवत्सरमयं-  
युगाध्यक्षं प्राजापतिमिति ज्यो० १० १० ज्योतिः शास्त्री क्तमिहोच्यते । हे  
अग्नि तू संवत्सर है परिवत्सर है इदावत्सर है इद्वत्सर है वत्सर है

अग्निः तृष्णा जयन्ते न-  
मोः निरिव्यक्तं योके  
मितिः

+ युग भवेदस्य पञ्चकं नैतज्ज्योतिः प्राचीनैः ।

अर्थात् निर्विशेषेण पांच संवत्सरात्मक युग रूप है । तिस तेरे उषसः (प्रातः कालादयः कालविशेषाः संगवमध्याह्नादयः) अहोरात्राः (दिवस निशाः) अर्धमासाः (पक्षाः) मासाः (चैत्रादयः) ऋतवः (वसन्तादयः) कल्यन्ताम्, अवयवत्व करि क्लृप्ताहोर्वे । संवत्सरश्च उपलक्षणमेतत् औं पांचो संवत्सरादिक भी कल्यन्ताम् । किं च प्रममन के अर्थ समञ्च औं र प्रसारय भाव यह है कि संकोच विकास करि । किं च सुपर्णाकारक रिचितत्व से सुपर्णचित है । तिस देवतया वाचा सहितः सन् अङ्गिरस इव (प्राण-इव) ध्रुवः (स्थिर) मीद (तिष्ठ ॥४५॥

इति भाष्ये चतुर्थोऽनुवाकः ४

श्री वेदार्थे प्रदीपेन तमोद्गाहं निवारयन्

पुमार्थाश्चतुरो देया दग्निदेवः मनातनः २७

श्रीमच्छुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनी शाखाध्यतृव्याघ्रपादान्वयविश्वामित्र पुराधिप श्रीमज्जयकिशोर देववर्मात्मज गौकिमणेयनृगिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थे प्रदीपे गिरिधरभाष्येखिलप्रकरणेऽग्निवर्णनो नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

हरिः ओम्

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

अ पञ्चत्मकं द्विरूपं च साधनेर्बहु रूपकम्

स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्म रूपपरं तुमः २८

इन्द्रमिडः सौत्रामणिकोऽध्यायः (प्रजापत्याश्चसरस्वत्यदृष्टः)

अ०१० होता यक्षन्समिधेन्द्रमिडस्यदे नाभा पृथिव्याअधि। दि  
वो वर्ष्मन्समिध्यतः ओजिष्ठश्चर्षणीसहं वेत्वाज्यस्य  
होतर्यज ॥१॥

ॐ नमो याज्ञवल्काय

गिरिप्रसादसंज्ञेन जीवेदार्थप्रदीपके

वसुनं त्रिमितेऽध्याये सौ. शिष्टः समीर्यते २८

अथमध्यायः सौत्रामणीसम्बन्धी सौत्रामण्यङ्गभूतयोरैन्द्रवायोधमयो  
रद्यन्तपञ्चोः प्रयाजानुयाजप्रेषरूपः ततश्च प्रजापत्यम्बिसरस्वत्योः ध्या  
यस्य ऋषयः । आद्यैः नुवाके एकादशैन्द्रपशोः सम्बन्धिन आग्नीदेवता  
समित्तनूनपादित्यादिदेवताकाः प्रयाजानां प्रेषाः होता यक्षत्समिधेन्द्र  
मित्यादयो होता यक्षदिन्द्रमित्यन्ताः क० ११ । हलायुधमते सर्वाणि यजू  
र्वाणि १-४६ महीधरमते आर्षीत्रि० १४६ २१ २२ ३५ ३६ अतिजगती २  
५ ७ ४ १२ १५ १७ १८ २४ ४० ४२ ४३ ब्रा- अ० ८ ४१ ४६ इ० प्राक्करी १  
११ १३ २६ २७ ३०-३२ ३४ विह्वति १६ २३ उ० ४६ उ० कृति १४ अतिश  
क्करी २० २८ २९ ३४ प्रा- ज० २३ अ० जगती २५ अत्यष्टि ३३ ब्रा- वृ०  
३७ ३८ ४४ ४५ ब्रा- गा० ४६ अ० + ॥ अथ मन्त्रार्थः । दैव्यो होता-  
समिधा (हविर्भूत समित्काष्ठ करि वा समिधाग्नीदेवता सहित इन्द्रको  
यजे । जो इन्द्र तीनों स्थानों में दीये है पहिले इडा (पृथिवी) के पद य-  
जनीय प्रदेश में अग्न्यात्मा करि दीये है । दूसरे पृथिवी (अन्तरिक्ष) के  
नाभि मध्य विद्युदात्मा करि अधि ऊपर में । तीसरे दिव (स्वर्ग) के वरि  
ष्ठ प्रदेश में आदित्यात्मा करि दीये है । कंसा कि च षणिसहामेजि

[illegible]

+ पृथिवी शक्तिः  
नानरिक्षमः



४ मनुष्यों के अभिभावकों में अत्यन्त ओजस्वि एवंविधि इन्द्र आज्य को पिये। हे मनुष्य होतः तूभी यजि ॥१॥

होता यक्षन् नूनपातमूतिभिर्जेता रमयराजितम् । इन्द्र  
देवत्वं स्वर्विदं पथिभिर्मधुमत्तमैर्नराशंसैर्न तेजसां  
वेत्वाज्यस्य होतुर्यज ॥२॥

नराशंस देवता सहित तनूनपात और इन्द्र देवता को होता यजे। किन्हीं  
सैं कि पथियों (जाते हैं स्वर्ग को यजमान जिन्हें सैं तिन हवियों) करि। के  
सीओं कि ऊतियों (तृप्ति करती हैं तिन्हें) तथा मधुमत्तमाओं सैं। कैसे इन्द्र  
कि शत्रुओं के जीतनेवाले किसी सैं भी न पराभूत स्वर्विद (स्वर्ग को  
जानते वा अपनों को जानते वा स्वर्ग में विद्यमान को। कैसे नराशंस  
कि तेजस्वि करि युक्त। एवं दस देवताओं युक्त इन्द्र आज्य पिये। शेष पूर्व  
वत्। अत्र तनूनपात शंसावेकत्र प्रयाजे पठिता वित्यु भयवानयं प्र  
याजः ॥३॥

होता यक्षदिडाभिरिन्द्रमीडितमाजुह्वानममर्त्यम् ।  
देवो देवेः सर्वीर्यो वज्रहस्तः पुरंदरो वेत्वाज्यस्य हो  
तुर्यज ॥३॥

होता इडाओं (प्रयाज देवताओं) सहित इन्द्र को यजे। कैसे इन्द्र कि ई-  
डित (ऋत्विजों करि स्तुत) आजुह्वान (यजमानों करि आहूयमान वा दे-  
वताओं को आह्वयन्त) अमरण धर्म को। ऐसा इन्द्र देव आज्य पिये। के-  
सा देव कि सर्वीर्य (समान वीर्य जिस का बोह अर्थात् सब देवताओं में जि-  
तना वीर्य बोह अकेले इन्द्र में। वज्रहस्त। पुरंदर (शत्रुओं के नगरों

को दाता । उक्तमन्यत् ॥३॥

होता यक्षद्वर्हिषीन्द्रं निषद्वरं वृषभं नर्यापसम् । वसुभी  
रुद्रे रदित्यैः सयुग्मिर्बर्हिरासद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥४॥

बर्हि प्रयाज देवता पर स्थित इन्द्र को होता यज्ञ कैसे इन्द्र कि उप देवाओं  
में श्रेष्ठ वर्षितार नरों (यजमानों) के अर्थ हितकारि । सो इन्द्र वसुओं रुद्रों  
आदित्यों तीनों सबन देवों सहित बर्हि पर भले प्रकार बैठे और आज्य  
पिये । कैसे वसु आदिकों कि सयुक् (समान योगों) सहित ॥४॥

होता यक्षदीजो न वीर्युर्धं सहो द्वार इन्द्रमवर्धयन् ।  
सुप्रायणा अस्मिन्यज्ञे विश्रयन्तामृतावृधो द्वार इन्द्राय  
मीदुषे व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥५॥

जे द्वारः प्रयाज देवाः इन्द्र में औज (इन्द्रियबल) वीर्य (शारीरबल) औ  
र सह (मनोबल) बढाते हुए तिन द्वारों को होता यज्ञ । और ते द्वार  
इन्द्र के अर्थ विवृता हैं और इस यज्ञ में आज्य पिये । कैसे द्वारः कि  
सुखेन प्रकृष्ट गमन जिन्हों में । अतः (यज्ञ) को बढाते । कैसे इन्द्र  
कि सींचने वाले के अर्थ ॥५॥

होता यक्षदुषे इन्द्रस्य धेनुं सुदुधे मातरा मही । स  
वातरौ न तेजसा वत्समिन्द्रमवर्धनां वीतामाज्यस्य  
होतर्यज ॥६॥

होता नक्तोषे + यज्ञे और ते तेजकरि इन्द्र को बढावे और आज्य पिये । + पूर्व परलोपः  
नत्र दृष्टान्तः सवातरौ न (समान हैं वाता वछडे जिन्हों के ते एक  
शिशु के गौरं वत्स को जैसे बढाती हैं तेसे इन्द्र को बढावे कैसे

नक्तोऽथे किं धेनूः (प्रीणयिष्ये) । दुग्धं को पूरयन्त्ये । मातृवत्यालिके ।  
महन्त्ये ॥ ६ ॥

होता यक्षदेव्या होताग भिषजा सर्वाया हविषेन्द्रं भिष-  
ज्यतः । कवी देवो प्रचेतसा विन्द्राय धत्त इन्द्रियं बीता-  
माज्यस्य होतर्यज ॥ ७ ॥

देव्यो होतारो (अयं चाग्निरसौ च मध्यमः) तिन्हे होता यजै और जे  
हवि करि इन्द्र को चिकित्सतः । इन्द्र के अर्थ वीर्य को धारण करते  
हैं । कैसे कि चिकित्सा कुशलौ अन्योन्य स्नेहवन्तो । क्रान्तदर्शनौ । दी-  
प्यमानौ । प्रकृष्टज्ञान जिन्होंका तौ ॥ ७ ॥

होता यक्षत्तिस्त्रो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवोऽपस इडा  
सरस्वती भारती महीः । इन्द्रपत्नीर्हविष्मतीर्व्यन्वाज्य-  
स्य होतर्यज ॥ ८ ॥

भेषजरूपा जे तीनों लोक तिन्हें और इडा सरस्वती भारती तीनों दे-  
वीओं को होता यजै और ते आज्य को पियें । कैसे हैं तीनों कि अग्नि  
वायु सूर्य तीनों धर्तार हैं जिन्हों के । अपस्विनः (कर्मवन्तः) शीतो  
ष्ण वात वर्षादि जिन्हों के कर्म हैं । कैसे हैं तीनों कि महत्त्वः इ-  
न्द्रकी पत्नी हैं (पालयिष्यः) । हविष्मती हैं ॥ ८ ॥

होता यक्षत्त्वष्टारमिन्द्रं देवं भिषजं सुयजं घृतश्रिय-  
म् । पुरुषं सुरेतां सं मघोनमिन्द्राय त्वष्टा दधदि-  
न्द्रियाणि वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ९ ॥

होता त्वष्टा प्रयाज देवता को यजै । कैसे त्वष्टा कि इन्द्र (प्रभु) देव (दाता

र)भिषज(रोगनिवर्तक)साधु यष्टव्य को घृत करि के प्रोभा है जि-  
स की तिसे पुरुष (बहुत हैं रूप जिस के तिसे) प्रोभन है रेत (वीर्य)  
जिस का तिसे मधुवन्त(धनवन्त) को और सो त्वष्टा इन्द्र के अर्थदीर्घ  
कोधारण करते सन् आज्य पिये ॥४॥

होता यक्षद्वनस्पतिर्न शमितारर्धं शतक्रतुं धियो जाष्टार-  
मिन्द्रियम्। मध्वा समज्जन्यथिभिः सुगेभिः स्वदाति यज्ञं  
मधुना घृतेन वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥१०॥

होता वनस्पति प्रयाजदेवता को यजे। कैसे वनस्पति कि उत्तूखलादिरू-  
प करि हवियों के संस्कर्ता। शतक्रतु(बहुकर्मा) बुद्धि के सेवितार इन्द्रि-  
य(आत्मा के हित वा वीर्यरूप)को। वोह वनस्पति मधु स्वादु घृत करि  
यज्ञ को समृक्षयन्सन् सुगमन मार्गों से मधु(स्वादु)घृत करि यज्ञ  
को देवताओं प्रति प्राप्त करे आज्य को पिये ॥१०॥

होता यक्षदिन्द्रश्च स्वाहाज्यस्य स्वाहा मेदसः स्वाहा स्तोका-  
नाथ् स्वाहा स्वाहा कृतीनाथ् स्वाहा हव्यसूक्तीनाम्। स्वा-  
हा देवा आज्यपा जुषाणा इन्द्र आज्यस्य व्यन्तु हात-  
र्यज ॥११॥

होता इन्द्र को यजे। स्वाहाकार करि आज्य के देवताओं को यजे। स्वा-  
हाका० मेद के देव०। स्वाहाका० स्तोकों(सौमविन्दुओं) के देव०। स्वाहा०  
स्वाहा कृतीः प्रयाजदेव०। स्वाहा० हव्यसूक्तीओं(हव्य सम्बन्धि सुवच-  
नों)के देव०। स्वाहाकार करि आज्यपा देवाः प्रीयमाणा होते और इ-  
न्द्र आज्य को पिये ॥११॥

अ० २. देवं बहिरिन्द्रं सुदेवं देवेवीरवत्स्तीर्णं वेद्यामवर्धयन् ।  
वस्तोर्वृतं प्राक्तोर्भृतं राया बहिष्मतोऽत्यगाहसुवने  
वसुधेयस्य वेतु यज ॥१२॥

एकादश ऐन्द्रपशोः सम्बन्धिन एवानुयाजप्रेषाः । देवता बहिरिन्द्रः  
॥ मंत्रावरुण कहिता है । बहिः संज्ञानुयाजदेवता इन्द्र की बढाता है  
कैसा बहिः कि शोभना देवा मरुदादयः जहां वोह । तथा देवों (दाताओं  
ऋत्विजों) करि वीरयुत । वेदी में आछादित । वस्त (दिन) में वृत (लून)  
अक्त (रात्रि) में प्रभृत (प्रकर्षण धृत) जो बहिः हविलक्षण धन करि ब-  
हिष्मत (बहिकरियुक्तों) अन्य प्राणों को अति क्रमण करि गया । संस्कारों-  
त्कर्ष से बंध बहि वसुवनन (धनदान) के अर्थ वसुधान (धननिधान)  
यजमान के घर में निरवनन के अर्थ वेतु (आज्य को पिये) और हेमनु-  
ष्य होतः तू यजि । एव मयेपि कण्डिका शेषो व्याख्येयः ॥१२॥

देवीद्वार इन्द्रं संघाते वीड़ीर्योमन्नवर्धयन् । आ व-  
त्सेन तरुणेन कुमारेण च मीवतापार्वीणं रेणु-  
ककाटं नुन्दन्ता वसुवनै वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥१३॥

यज्ञगृहद्वारेऽत्र देवताः । याम (नियत होते हैं ऋत्विज जहां कर्म) में  
जे द्वारे देविणं इन्द्र की बढाती हुई । कैसी द्वारः कि संघाते (देहली कपा-  
ट द्वार शाखा गला समूह सति हटा हैं (संघात विना द्वार हट नहीं हो-  
ता ॥ ते द्वार रेणुककाट (रेणुओं करि ककाट कुत्सित कूप) को निवर्त  
करें । किमित्यतो विशेषण । कैसे कूप कि वत्स (गोपुत्र) तरुण और  
कुमार करि आमिमुख्येन अर्वाण (जाते हैं जहां तिस) को । कैसे गोपु-

त्र कि मीवता (हिंसाशील करि। हिंसाशील(चञ्चल) उच्चलन्त वत्स-  
और कुमार जहां गिरते हैं तिस कृप को रोके- उपलक्षण मेतन् आशा-  
य यह है कि यज्ञ प्रजा के विघ्नकारी कृपा दिकों को मार्ग से निवर्तक-  
रे। और ते आज्य पियें ॥१३॥

देवीः उषासानकेन्द्रं यज्ञे प्रयत्युह्वेताम्। देवीर्विश्राः प्रा-  
यासिष्ठाश्च सुप्रीते सुधिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां य-  
जे ॥१४॥

अहो रात्राधिष्ठात्र्यो देवी देव्यो यज्ञ में प्रवर्तमाने सति इन्द्र को बुला-  
ती हुई। और जे देव सम्बन्धिनी प्रजा (वसवो रुद्र आदित्या विश्वे देवा  
मरुत इत्यादिकों) को चलाती हुई। और ते पियें कैसी हैं कि सुप्रीते (अ-  
तितुष्टे) सुधिते (सुतरां हिते) ॥१४॥

देवी जोष्टी वसुधिते देवमिन्द्रमवर्धताम्। अयाव्यन्या-  
घा द्वेषाश्चस्यान्या वक्षद्वसु वार्याणि यजमानाय शि-  
क्षिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यजे ॥१५॥

प्रीति युक्ते देव्यो वसुधिते घनका धारण जिन्हों से ते द्यावा पृथिव्यो  
अहोरात्रे वा-सत्यं च समाचेति कात्थक्यः निरु० ४१०) ते इन्द्र दे-  
वता को बढ़ाती हुई। तिन्हों के मध्य अन्या (एका) अर्घ्यो (पाप्यो) और द्वे-  
षो (दोर्भाग्यो) को दूर करती। दूसरी वार्यो (वरणीय भोगयोग्यो) धनों  
को प्राप्त कराती। कैसी हैं ते कि शिक्षिते (विदितवेद्ये) तत्त्वज्ञे। तेपीये ॥१५॥

देवीः कृज्जुह्वेती दुधे सुदुधे पयसेन्द्रमवर्धताम्। इषमू-  
र्जमन्या वक्षत्सग्धिष्ठं सपीतमन्या नवेन पूर्व दयमाने

पुराणेन नवमधातामूर्जं मूर्जाहुतीऽर्जयेमाने वसु वार्योणि  
यजमानाय शिक्षिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥१६॥  
अधस्तन मन्त्रोक्तो देवताविकल्पः । देव्यो पूर्व प्रेषोक्ते दुग्ध करिद्रुद्रको  
बढाती हुई । कैसी हैं कि ऊर्जाहुती बलयुक्ता आह्वान जिन्हों काते । दुग्धे  
(दोग्ध्यो) सुदुधे (साधुदोहने) तिन्हों के मध्य एका अन्न और दध्यादि  
यजमान के अर्थ प्राप्त करती है । दूसरी सग्धि (समान भोजन) और  
सपीति (पुत्रादि सहित पान भोजन) को वहती है । जे देवियें नये अन्न  
करि पुराने अन्न को पुराने अन्न करि नये अन्न को यजमान के धारण  
कराती और वार्यो वसुओं को रखाती अर्थात् अन्न धन को अक्षय  
करती हुई । कैसी हैं कि रयमाने (उक्षन्त्यो वा कृपयन्त्यो) शिक्षिते ।  
ते पियें ॥१६॥

देवा देव्या होतार देवमिन्द्रमवर्धताम् । हताघशंसो वा-  
भाष्टो वसु वार्योणि यजमानाय शिक्षितो वसुवने वसुधे-  
यस्य वीतां यज ॥१७॥

एकः पार्थिवो ग्निः अन्यो मध्यमः । देवो देव्यो होतारो इन्द्रदेव को ब-  
ढाते हुए और यजमान के अर्थ वार्यो वसुओं को आहरण करते हुए ।  
कैसे कि हताघशंसो (पापनिवर्तकों) । ते पियें ॥१७॥

देवीस्तिस्वस्तिस्वो देवीः पतिमिन्द्रमवर्धयन् । अस्पृक्षद्वारतीदि  
वर्धं रुद्रेयज्ञं सरस्वतीडा वसुमती गृहान्वसुवने व-  
सुधेयस्य व्यन्तु यज ॥१८॥

तीनों देवीयें पालक इन्द्र को बढाती हुई । ताणवाह भारती (भरत) रविनि

सकी कान्ति) स्वर्ग को स्पर्श करती है। सरस्वती रुद्रों युता यज्ञ को स्पर्श करती। वसुयुता इडागृहों (भूलोक) को स्पर्श करती है। ते पिये ॥१८॥

देव इन्द्रो नराशंसं सस्त्रिवरूथस्त्रिवन्धुरो देवमिन्द्रमवर्धयत्। शतेन शितिपृष्ठानामाहितः सहस्रेण प्रवर्तते मित्रावरुणेदस्य होत्रमर्हतो बृहस्पति स्तोत्रमश्विनाध्वर्यव वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥१९॥

नराशंस (यज्ञदेव) इन्द्रदेव को बढाता हुआ। कैसा नराशंस कि ऐश्वर्यवान्। त्रिवरूथ (तीनों घर, सब हविर्धान आग्नीध्र जिसके बोह। त्रिवन्धुर (ऋग्यजुः सामलक्षण तीनों बन्धन जिसके। बोह नराशंस शिति (श्याम) पृष्ठों गौओं के शत करि आहितः सन् गो सहस्र करि प्रवर्तते हैं। मित्रावरुण दस नराशंस के होतृ कर्म में योग्य होते हैं बृहस्पति औहोत्र को अश्विनो दस के आध्वर्यव को योग्य होते हैं। बोह पिये ॥१९॥

देवो देवेर्वनस्पतिर्हिरण्यपर्णो मधुशारवः सुपिप्यलो देवमिन्द्रमवर्धयत्। दिवमग्नेण स्पृक्षदन्तरिक्षं पृथिवीमहर्ह हीद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥२०॥

यूप उच्यते वनस्पतिर्देवः देवो सहित इन्द्र को बढाता हुआ। कैसा किहिरण्यमय हैं फले जिसके। रसवती शारवा जिसकी। शोभन फल जिसके। जो वनस्पति अग्र (टुकसी) करि स्वर्ग को स्पर्श करता है अन्तरिक्ष को मध्य करि इति शेषः सर्वतः स्पर्श करता पृथिवी को ऊपर करि इति शेषः हट करता। सो पिये ॥२०॥

देवं बर्हिर्वरितीनां देवमिन्द्रमवर्धयत्। स्वासस्यमिन्द्रे



एणसन्नमन्या बर्हीं ष्यभ्यभूदसुवने वसुधेयस्य वेतु  
यज ॥२१॥

बर्हि (अनुयाज देव) इन्द्रदेव को बढाता हुआ अन्य बर्हिओं को अभिहोता है वो-  
ह पिये। कैसा बर्हि कि वारितीयों (औषधीओं) के मध्य में देव (दीप्यमा-  
न श्रेष्ठ) स्वासस्थ (सुख आसन करि जहां स्थित होते हैं वोह) इन्द्र  
करि आश्रित ॥२१॥

देवोऽग्निः स्विष्टकृदेवमिन्द्रमवर्धयत्। स्विष्टं कुर्व-  
न्स्विष्टकृत्स्विष्टमद्य करोतु नो वसुवने वसुधेयस्य  
वेतु यज ॥२२॥

स्विष्टकृदेवः अग्निः इन्द्रदेव को बढाता हुआ वोह हमारा स्विष्ट  
(साधुदृष्ट) करे और पिये। कैसा कि स्विष्ट करते सन् स्विष्टकृत्नाम (शे-  
भन दृष्ट को करूंगा यह तिस का अधिकार है) ॥२१॥

अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन्यक्तीः प-  
चन्पुरोडाशं बध्नन्निन्द्राय ह्यगम्। सूपस्था अद्य देवो  
वनस्पतिरभवदिन्द्राय ह्यगैर्न। अयत्तं मे दस्तः प्रति प-  
चताग्रं भीदवी बध्नन्पुरोडाशेन। त्वामद्य ऋषे ॥२३॥†

त्वामद्य अयं प्रतीकः उभयत्रापि। ऐन्द्रपशुसम्बन्धी सूक्तवाक्प्रेषः  
त्वामद्य ऋषे इत्ययं मन्त्र उभयत्रापि ऐन्द्रानुवाके वायोधसानु-  
वाके च प्रतीकोक्तेः आदिमात्रेणोक्तः सकलो ज्ञेयः। व्याख्यातः  
प्रेषः २१. ५४-६१॥२३॥

अ. ३. होता यक्षत्समिधानं महद्यशः सुसमिद्धं वरेण्यमग्निमि

नं वयोधसम् । गायत्री छन्द इन्द्रियं अविं गां वयो  
दधदेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥२४॥

एकादश वयोधसे पशो प्रयाज त्रैषाः समित्तनूनपादाद्याप्रीदेवताः ।  
दैव्यो होता अग्नि को और वयोधा इन्द्र आयु के दातार वा धारयितार)  
को यजे । कैसे अग्नि कि दीप्यमान । वंडे प्रशकरि दीप्त । वरणीय को । क्या  
करता यजे कि गायत्री छन्द वीर्य एकवर्ष छे महीने की गो और आयुस्था-  
पन करता इन्द्र में इति शेषः । प्रयाज देवता इन्द्र युता आज्य को पिये ।  
हे मनुष्य होतः तू भी यजि । एवमग्रेऽपि ॥२४॥

होता यक्षत्तनूनपातमुद्भिदं यं गर्भमदितिर्दधे शुचिमि-  
न्द्रं वयोधसम् । उषिंहं छन्द इन्द्रियं दित्यवाहं गां वयो  
दधदेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥२५॥

होता तनूनपात प्रयाज देवता को और वयोधा इन्द्र को यजे अदिनि  
ने जिसे गर्भ में धारण किया अर्थात् तिस इन्द्र को । कैसे तनूनपात  
को कि उद्भिद (यज्ञफलों के उद्गतार । पवित्र को । क्या करता कि उषिंह-  
क छन्द वीर्य दो वर्ष की गो और आयु इन्द्र में स्थापन करता ॥२५॥

होता यक्षदीडेन्यमीदितं वृत्रहन्तममिडाभिरीड्य ठं  
सहः सोममिन्द्रं वयोधसम् । अनुष्टुभं छन्द इन्द्रियं  
यच्चाविं गां वयो दधदेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥२६॥

होता इडाओं प्रयाज देवताओं सहित वयो ० । कैसे इन्द्र कि ईडेन्य (स्तु-  
तियोग्य) को । ईडित (ऋषियों करि स्तुत । अत्यन्त वृत्रहा । ईड्य (सर्वों क-  
रि स्तुत्यः । सहः सोम (बल करि सोम वदाल्हादक) को । क्या करता कि अ-

नुष्टुप छन्द इन्द्रिय दोवर्ष छैं महीने की गौ और वय इन्द्र में स्थापन करता ॥२६॥

होता यक्षत्सु बर्हिषं पूषणवन्तममर्त्यं सीदन्तं बर्हिषि प्रियेऽमृतेन्द्रं वयोधसम् । बृहती छन्द इन्द्रियं त्रिवत्सं गां वयो दधद्देवाज्यस्य होतुर्यज ॥२७॥

होता वयो० । कैस को कि शोभन बर्हिः प्रयाज देवता जिस के तिसै। पूषणयुक्त । अमरण धर्मो । प्रिय अनश्वर बर्हि पर बैठे को । क्या० कि बृहती छन्द इन्द्रिय तीन वर्ष की गौ (का वृषभ) और आयु इन्द्र में स्थापन करता ॥२७॥

होता यक्षद्वचस्वतीः सुप्रायणा ऋतावृधो द्वारो देवीर्हिरण्ययी ब्रह्माणमिन्द्रं वयोधसम् । पङ्क्तिं छन्द इहेन्द्रियं तुर्यवाहं गां वयो दधद्द्वन्त्वाज्यस्य होतुर्यज ॥२८॥

होता द्वारो देवीः और ब्रह्मा (परिवृट) वयो० कैसी द्वारः कि गमनावकाश विद्यमान हैं जिन्हें में । अत एव शोभन प्रकर्ष करि गमन हैं जिन्हे में । सत्य की बढ़ाने वाली । हिरण्ययी ब्रह्माः । क्या० कि पङ्क्ति छन्द इन्द्रिय तीन वर्ष छैं महीने की गौ और वय इस इन्द्र में स्थापन करता ॥२८॥

होता यक्षत्सुपेशसा सुशिल्ये बृहतीऽनुभे नक्तोषासान दर्शते विश्वमिन्द्रं वयोधसम् । त्रिष्टुभं छन्द इहेन्द्रियं पष्टवाहं गां वयो दधद्दीतामाज्यस्य होतुर्यज ॥२९॥

होता दोनों नक्तोषा (रात्रि और रात्रि के अपरभाग) और सर्वात्मक वयो० कैसा  
ओं को नक्तोषसो कि शोभन है रूपांजनों के। मुशिल्य (यद्वे प्रतिरूपं तच्छि  
ल्यमिति युते) शोभन शिल्प जिन्हें केते अन्योन्य प्रतिरूपे। ब्रह्मणो। दर्श  
नीये। क्या० कि विष्टुषच्छन्द इन्द्रिय चारि वर्ष की गों और वय इन्द्र में  
स्था०। तेयिये ॥२६॥

होता यक्षत्वं चेतसा देवानामुत्तमं यशां हातां देव्या  
कवी सयुजेन्द्र वयोधसम् । जगती ह्यन्द इन्द्रियमनङ्गा  
हं गां वयो दधद्वातामाज्यस्य हातयेज ॥३०॥

होता देव्यो होता रों + और वयो०। कैसे होता रों का कि प्रचंत सो (प्रकृष्ट  
ज्ञान जिन्हें का तिन्हें। देवाना मुक्त मं यशः। युंजी कृत देव यशो रूपो। क  
वी (क्रान्त दर्शनों। समान योगों। क्या० जगती छन्द इन्द्रिय शकटक्षमो  
वृषः और वय इन्द्र में स्था०। तौ पियें॥३०॥

होता यक्षत्येषास्वतीमित्रां देवीर्हि राण्ययी भारतीर्दहती  
मेहीः पतिमिन्द्रे वयोधसम् । विराजं हृन्द इहेन्द्रियं धेनुं गां  
न वयो दध द्यन्वाज्यस्य होतर्यज ॥३१॥

होता तीनों देवियों और पालक वयो०। कैसी तीनों कि रूप समृद्धा। हिरण्या  
लङ्घुत देहाः। बृहतीः। प्रभाव करि। महतीः। तेज करि आदित्येन्द्राग्नि स  
म्बन्धात्। किन तीनों कि इडा सरस्वती भारती। क्या० विराज छन्द इन्द्रि  
य धेलु (दोग्धीगा) और वय इन्द्र में स्था०। इन्द्रसहिता तापिये ॥ ३५॥

होता यक्षत्सुरेते सं त्वष्टारं पुष्टि वर्धनठस्पाणि विभ्रतं  
पुयक्पुष्टिमिन्नं वयोधसम् । द्विपदं छन्द इन्द्रियमुक्षाणं

गां न वयो दध्नेत्वाज्यस्य होतुर्यज ॥३२॥

होता त्वष्टा और वयो० कैसे त्वष्टा कि शोभन रेत जिसका (जगदुत्पाद-  
कत्वाम्। पुत्रादि पुष्टि के वर्धयितार। पृथक् (नाना जातियों में) रूपों और  
पुष्टि को धारण करने को। क्या० द्विपद छन्द इन्द्रिय रेतः से कक्षम वृषभ  
और वय इ० इन्द्र सहित त्वष्टा पिये ॥३२॥

होता यक्षहनस्यतिष्ठं शमितारुं शतक्रतुं हिरण्यप-  
णमुक्थिनं रशनां विभ्रतं वशिं भगमिन्द्रं वयोधस-  
म्। ककुभं छन्द इहेन्द्रियं वशां वेहतं गां वयो दध्नेत्वा-  
ज्यस्य होतुर्यज ॥३३॥

होता वनस्यति और वयो० कैसे वनस्यति कि हवियों के संस्कर्ता। बहुक-  
र्मा। हिरण्यपणोंवाले। उक्थिन (शास्त्रवाले वा यज्ञवन्त। रज्जु को धार-  
ण करते)। कान्त। भजनीय। क्या० कि ककुपू छन्द इन्द्रिय वन्ध्या औ-  
र गर्भोपघातिनी गो और वय इ० इन्द्र सहित वनस्यति पिये ॥३३॥

होता यक्षत्वाहाकृतीरग्निं गृहपतिं पृथग्वरुणं भेषजं  
कविं क्षत्रमिन्द्रं वयोधसम्। अतिछन्दसं छन्द इन्द्रियं  
बृहद्वेषभं गां वयो दध्नेत्वाज्यस्य होतुर्यज ॥३४॥

होता स्वाहाकृतीः प्रयाजदेवताओं और इन्द्र को यजे। कैसे इन्द्र किञ्च-  
ग्नि (आगे में गन्तार) पृथक् (प्रत्येक) यज्ञों में गृह के पालक। वरुण  
(ऋत्विजों करि वरणीय। रोगनाशक। कान्तदर्शन। प्रहार से ज्ञातार।  
वयोधा (आयु के दातार। क्या० कि अति छन्द के छन्द इन्द्रिय (वीर्य)  
बड़े पुष्ट गो और वय इन्द्र में स्थापन करता। इन्द्र सहिताः स्वाहा-

कृतयः देवाः आज्यपिये। हे मनुष्य होतः त्वमपि यज ॥३४॥

अ० ४० देवं बर्हिर्वयोधसं देवमिन्द्रं मवर्धयन्। गायत्र्या छन्दसेन्द्रियं चक्षुरिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥३५॥  
वयोधसे पञ्चवैकान्तशान्तु याजानां प्रेषाः बर्हिर्गदिदेवताः॥ बर्हिदेव वयोधा इन्द्रदेवता को वराता हुआ। कैसा बर्हि कि गायत्री छन्द करि के वक्षु इन्द्रिय और वय इन्द्र में स्थापन करता। वोह वसुवनन और वसुधान के अर्थ आज्यपिये। हे मनुष्य होतः तू भी यजि। एव मग्नेऽपि व्याख्येयम् ॥३५॥

देवी द्वारे वयोधसं शुचिमिन्द्रं मवर्धयन्। उषिाहा छन्दसेन्द्रियं प्राणमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥३६॥

द्वारे देविये वयोधा यवित्र इन्द्र०। उषिाक छन्द करि प्राणेन्द्रिय०॥३६॥  
देवीऽउषा सानक्ता देवमिन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्धताम्। अनुष्टुभा छन्दसेन्द्रियं बलमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥३७॥

उषामानक्तौ देविये दीप्यमाना वयोधा दीप्यमान इन्द्र०। अनुष्टुप् छन्द करि बल इन्द्रिय० एकं देवी देवं शब्दो दीप्तिवाचको अन्यो सुखाचको ॥३७॥

देवी जोष्ट्री वसुधिति देवमिन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्धताम्। बृहत्या छन्दसेन्द्रियं ओत्रमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥३८॥

दीप्यमाने देव्यो (अनुयाज देवते) जोष्ट्रियं दीपवयोधा इन्द्र० ब्रह्मती  
छन्द करि श्रोत्रेन्द्रिय०॥३८॥

देवीऋजुर्जाहती दुधे सुदुधे पयसेन्द्र वयोधसं देवी देव-  
मवर्धताम्। पङ्क्त्या छन्दसेन्द्रियं ऋक्मिन्द्रे वयो दध-  
द्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥३९॥

ऊर्जा ह्वान्यो देव्यो (दात्र्यो) पयकरि दीप वयो० कैसीं कि दुधे सुदुधे। प-  
ङ्क्ति छन्द करि श्रुक्तेन्द्रिय०॥३९॥

देवा देव्या होतार देवमिन्द्र वयोधसं देवो देवमवर्धता-  
म्। त्रिष्टुभा छन्दसेन्द्रियं त्विषिमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने  
वसुधेयस्य वीतां यज ॥४०॥

देव्यो देवो (दीप्तौ) देवसम्बन्धिनी होतारो दीपवयो० त्रिष्टुप् छन्द क-  
रि कान्ति इन्द्रिय०॥४०॥

देवीस्तिस्तिस्तिस्त्रो देवीर्वियोधसं पतिमिन्द्रमवर्धयन्।  
जगत्या छन्दसेन्द्रियं ऋषमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने व-  
सुधेयस्य व्यन्तु यज ॥४१॥

तीनों देवियें भारतीडासरस्वत्यः वयोधा पति इन्द्र को० जगती छन्द  
करि बल इन्द्रिय० अभ्यास आदरार्थः॥४१॥

देवो नराशंसो देवमिन्द्र वयोधसं देवो देवमवर्धय-  
त्। विराजा छन्दसेन्द्रियं रूपमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने  
वसुधेयस्य वेतु यज ॥४२॥

दाता नराशंसो देवदीप वयोधा इन्द्रदेव० विराज छन्द करिरूप

न्द्रिय०॥४२॥

देवो वनस्पतिर्देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्धयत् ।  
द्विपदा छन्दसेन्द्रियं भगमिन्द्रे वयो दधेद्वसुवने  
वसुधेयस्य वेतु यज ॥४३॥

दाता वनस्पतिर्देव द्योतन वयोधा इन्द्रदेव० । द्विपदा छन्द करि  
भगेन्द्रिय ०॥४३॥

देवं बर्हिर्वोरितीनां देवमिन्द्रं वयोधसं देवं देवमवर्ध-  
यत् । ककुभा छन्दसेन्द्रियं यश इन्द्रे वयो दधेद्वसुवने  
वसुधेयस्य वेतु यज ॥४४॥

वारितीयोंके मध्यदीप्त (श्रेष्ठ) बर्हिः देव दीप्यमान वयोधा इन्द्रदेव० ।  
ककपू छन्द करि यशोरूप इन्द्रिय ०॥४४॥

देवोऽग्निः स्विष्टकृद्देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमव-  
र्धयत् । अतिछन्दसा छन्दसेन्द्रियं क्षत्रमिन्द्रे वयो दधे  
द्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥४५॥

दाता स्विष्टकृतू अग्निः देव (दीप्त) वयोधा इन्द्रदेव० । अति छन्द छन्द  
करि क्षत् सेवणरूप इन्द्रिय ०॥४५॥

अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन्पक्तीः ।  
पचन्पुरोडाशं बध्नन्निन्द्राय वयोधसे छागम् । सूपम्या  
अद्य देवो वनस्पतिरभवदिन्द्राय वयोधसे छागेन ।  
अद्यतं मेदुस्तः प्रति पचताग्रभीदवी हृद्यत्पुरोडाशेन ।  
त्वामद्य ऋषे ॥४६॥



इतिसर्गहितायां चतुर्थोऽनुवाकः४

इति श्री शुक्ल यजुषि माध्यन्दिनशारवीयायां वाजसनेयस  
र्गहितायां दीर्घ पाठेऽष्टाविंशोऽध्यायः॥२८॥

वायो धसपशुसम्बन्धि सूक्तवाकप्रेषः। व्याख्यातः कण्डि० २३। इन्द्रा-  
य वयोधसे इति विशेषः॥४६॥

इति गिरिधरभाष्ये चतुर्थोऽनुवाकः४

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमो हार्दनिवारयन्

पुमार्थाश्चतुरे देयाद्यज्ञदेवः सनातनः२०

श्रीमच्छुक्ल यजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीयशारवाध्येतु व्याघ्रपादान्वयवि-  
श्वामित्रपुराधिपश्रीमज्जयकिशोरदेववर्मात्मजरेणिक्मणायनृपतिगिरि-  
प्रसादेन रचितं श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये सोत्रामणि सम्बन्धि प्र-  
याजानुयाजप्रेषनिरूपणं नामाष्टाविंशोऽध्यायः॥२८॥

हरिः ओम्

ओं नमो यज्ञ पुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्बहुरूपकम्

स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः २६

समिद्धोऽञ्जन्नाश्च मेधिकोऽध्यायः (प्रजापतिदृष्टः)

अ० १० समिद्धोऽञ्जन्नुदरं मतीनां घृतमग्ने मधुमत्पिन्व-  
मानः। वाजी वहन्वाजिनं ज्ञानवेदो देवानां वक्षि प्रि-  
यमा सुधस्थम् ॥१॥

ॐ नमो याज्ञवल्क्याय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्री वेदार्थ प्रदीपके ॥

गृहनेत्रयुतेऽध्याये हयशिष्टः समीर्यते २५

अश्वमेधिकोऽध्यायः ततोऽस्य प्रजापतिर्ऋषिः । आद्या एकादशविष्टु-  
मः आप्रीसंज्ञा अश्वस्तुतयो वामदेवपुत्रेण बृहदुक्थेन समुद्रपुत्रे-  
णाश्वेन वा दृष्टाः समित्तनूनपादिडादिदेवताकाः । हे अग्ने हे जात-  
वेद तू देवताओं के सहस्थान प्रति प्रियमावक्षि (देवताओं को तृप्त क-  
रि। कैसा है तू कि दीप्तः मती-ओं (बुद्धि-ओं) के ऊपर (उदर-गर्भ) की व्यक्ती-  
करता अर्थात् बुद्धिरहस्य की प्रकाश करता । स्वादुघृत की देवताओं  
में सींचता । वाजी (चलनवान्) वाजिन (हवि) वहन् (देवताओं को प्राप्त  
करते सन् तृप्त करि ॥१॥

घृतेनाज्जन्तं यथो देवयानान्प्रजानन्वाज्ययेतु देवान् ।

अनु त्वा सप्ते प्रदिशः सचन्ताथ स्वधामसै यजमा-  
नाय धेहि ॥२॥

अश्वदेवताओं को प्राप्त करे । कैसा कि घृत करि देवताओं के मार्गों (ह-  
वियों) को आजता । प्रजानन् (देवताओं का हविहं यह जानता । एवं प-  
रोक्षमुक्ता प्रत्यक्षमाह । हे सप्ते (अश्व) दिगाश्रय भूत तुम्हें सेवन करें ।  
किं च इस यजमान के अर्थ अन्न दे । अत्र घृत शब्दस्तनूपादाची ॥३॥

ईक्षुश्चासि चन्दश्च वाजिन्नाशुश्चासि मेध्यश्च सप्ते ।

अग्निष्ठा देवैर्वसुभिः सजोषाः प्रीतं वह्निं वहतु जा-  
तवेदाः ॥३॥

अश्वमेधिकोऽध्यायः ततोऽस्य प्रजापतिर्ऋषिः । आद्या एकादशविष्टु-  
मः आप्रीसंज्ञा अश्वस्तुतयो वामदेवपुत्रेण बृहदुक्थेन समुद्रपुत्रे-  
णाश्वेन वा दृष्टाः समित्तनूनपादिडादिदेवताकाः । हे अग्ने हे जात-  
वेद तू देवताओं के सहस्थान प्रति प्रियमावक्षि (देवताओं को तृप्त क-  
रि। कैसा है तू कि दीप्तः मती-ओं (बुद्धि-ओं) के ऊपर (उदर-गर्भ) की व्यक्ती-  
करता अर्थात् बुद्धिरहस्य की प्रकाश करता । स्वादुघृत की देवताओं  
में सींचता । वाजी (चलनवान्) वाजिन (हवि) वहन् (देवताओं को प्राप्त  
करते सन् तृप्त करि ॥१॥

हे सन्ने हे वाजिन् सुत्यं हे नमनीयं हे ओम् आशुमेध्यः (अश्वमेधकं अर्थ योग्य है। किंच जात वेदाः अग्नि तुम्हे देवता ओम् को प्राप्त करें। कैसे अग्नि कि वसु देवता ओम् करि प्रीति सहित। कैसे तुम्हे कि- प्रीति (तुष्ट) वहि (हवियों के बोझार) को ॥३॥

स्तीर्णं वहिः सुष्टरीमा जुषाणोरु पृथु प्रथमानः पृथिव्याम् । देवेभिर्युक्तमदितिः सजोषाः स्योनं कृण्वन्ना सुविने दधातु ॥४॥

हम बर्हि सुष्टरीम (साधुस्तरण करते हैं) अदिति देवी स्तीर्ण वोह बर्हिः स्वर्गलोक में स्थापन करें। कैसी अदिति कि प्रीति करि युक्ता। सुप्रथम को करती। प्रीयमाण। कैसे बर्हि कि बहुत विस्तीर्ण। पृथिवी में विस्तार्येति मान देवता ओम् सहित ॥४॥

एता उ वः सुभगा विश्वरूपा वि पक्षोभिः श्रयम। एता उहोतैः। ऋषाः सतीः कवषः शुम्भमाना द्वारे देव। मीः सुप्रायणा भवन्तु ॥५॥

हे ऋत्विज यजमान ओम् तुम्हारी ये द्वारे देवीः (यज्ञगृह द्वारे देव्यः) ईदृशी हों। उ पादपूरणः। कैसी कि सुभगाः (शोभन श्रीजिन्हों में) नारूपचित्राः। पक्षों (पक्षप्राय कपाटों) से विस्तार्यमाणः। कैसे पक्षों कि ऊर्ध्व प्रसृतों। पुनः कैसी द्वारः कि इतस्ततो गमनशीलाः महत्यः सतीः (समीचीनाः। कवषः (कपाट जो डते समय शब्द करती वा सुषिरा शोभमानाः ॥५॥

अन्तरा मित्रावरुणा चरन्ती सुरंवे यज्ञानाममिसंविदा-

ने। उषासा वाथं सुहिरण्ये सुशिल्येऽऽमृतस्य योनावि-  
ह सादयामि ॥६॥

हे पत्नी यजमानो तुम्हारे यज्ञ के स्थान में इन रात्रिदिन को स्थापन करता हूँ। कैसी रात्रिदिन कि मित्रावरुणो अन्तरा (द्यावापृथिवी के मध्य में) वर्तमाने + यज्ञो (अग्निहोत्र) के मुख (होमकाल) को कहतीं- उठो यह अग्निहोत्र होमकाल है यह विप्र प्रातः काल कहते हे तदुषस्युपचर्यते। साधुहिरण्यं भूतं जिहो काने। अन्योन्यं प्रतिरूपे ॥६॥

अयं वेदो मित्रो सो वरुण इति श्रुतेः।

प्रथमा वाथं सरथिना सुवर्णा देवो पश्यन्तो भुवनानि  
विश्वा। अपि प्रयं चोदना वां मिमाना होता रा ज्योतिः प्र-  
दिशा दिशन्ता ॥७॥

हे यजमानो तुम्हारे मुखो होतारो (अयं चाग्निरसौ च मध्यमः) को में प्रीणितवान् हूँ। कीदृशो कि सरथिनो (एकरथारूढौ) शोभनवर्णौ। देवो (दीप्यमानो-दातारो)। सब भुवनों को देखते। तुम्हारे चोदना (कर्मों) को निर्मिमाणो। प्रदिशा (प्रदेश-अभिनय) करि ज्योतिः दिशन्तो (आहवनीयाख्यज्योति यष्टव्य यह दिखलाते) ॥७॥

आदित्यैर्नो भारती वष्टु यज्ञं सरस्वती सह रुद्रैर्न  
आवीत्। इडोपहृता वसुभिः सजोषा यज्ञं नो देवीर-  
मृतैषु धत्त ॥८॥

आदित्यों करि युता भारती हमारे यज्ञ को चाहै। सरस्वती रुद्रों सहित हमारे यज्ञ की रक्षा करें। और इडारक्षा करें कैसी कि उपहृता (कृतो-

तवा) वसुदेवताओं से प्रीति युता। एवं यरोक्षमभिधाय प्रत्यक्षमाह-  
देवीः (भारती सरस्वतीडाः) हमारे यज्ञ को देवताओं में स्थापन  
होतः ॥८॥

त्वष्टा वीरं देवकामं जजान त्वष्टुर्वी जायतः आश्वरथः  
त्वष्टेदं विश्वं भुवनं जजान बहोः कर्तारमिह यक्षि  
होतः ॥८॥

त्वष्टा वीर (पुत्र) को उत्पन्न करता है कैसे पुत्र कि देवकाम (अथवा  
या पाकरण समर्थ) को। त्वष्टा के सकाश से अश्व उत्पन्न होता है कैसा  
अश्व कि अर्वा (गमनशील) आश्व (दिशः व्याप्त होता वा भक्षण करता  
किंच त्वष्टा इस सब भूत को उत्पन्न करता। हे होतः एवं बृहत् कार्य के  
कर्तार त्वष्टा को इस यज्ञ में नू यजि ॥८॥

अश्वो घृतेन त्मन्या समक्त उप देवां २॥ ऋतुशः पाथ  
एतु। वनस्पतिर्देवलोकं प्रजानन्नग्निना हव्या स्वदिता  
नि वक्षत ॥९॥

अश्वः पाथः (अश्वरूप हवि) ऋतुशः (यज्ञकाल में) आप देवताओं को  
प्राप्त हो। कैसा अश्व कि घृत करि समक्त (पत्नीओं करि समुक्षित। किंच  
वनस्पति देव हवियें बहै देवताओं प्रति। कैसी हवियें कि अग्नि ने  
आस्वादन करि मिष्टी कि ई ॥९॥

प्रजापतेस्तपसा बार्हधानः सद्यो जातो दधिषे यज्ञमे  
ग्ने। स्वाहाकृतेन हविषा पुरोगा याहि साध्या हविरव  
न्तु देवाः ॥१०॥

हे अग्ने तू यज्ञ को धारण करता है कैसे तू कि प्रजापति के तप करि वर्धमान। सद्यो जातः (अरणी से उत्पन्न) किं च स्वाहाकार कहे हुत हवि सहित अग्रगामी सन् देवताओं प्रति जा तेरे गये सति देवताश्रेष्ठ हवि भोजन करें ॥११॥

अ० २ यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्तमुद्रादुत वा पुरीषात्। श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महिजातं ते अर्वेन ॥१२॥

त्रयो दशा ग्रीस्तुतिरूपास्त्रिष्टुभो भार्गवो जमदग्निहृष्टा दीर्घतमा हृष्टाश्च श्वस्तुतो विनियुक्ताः। हे अर्वेन (अश्व) जब कि तू अक्रन्द (बड़े शब्द से हींसता हुआ) तब तेरा माहात्म्य स्तुतियों ग्य हुआ। कैसी स्तुति योग्य तदाह कि श्येन के पक्षों हरिण के बाहू इस क्रन्दन से जीते इतिशेषः अर्थात् श्रेय्य करि श्येन पक्षों वेग करि हरिण बाहू। कैसा है तू किस मुद्र (अन्तरिक्ष वा उदधि) से जायमान उत वा (अथवा) पुरीष (पशु) के सकाश से उत्पद्यमान ॥१२॥

यमेन हन्तं त्रित एनमायुनगिन्द्र एणं प्रथमोऽप्यध्यतिष्ठत्। गन्धर्वोऽस्य रशनामगृम्णात्सूरादश्वं वसवो निरतष्ट ॥१३॥

वसवो ष्टगाणदेवाः सूर (आदित्यमण्डल) से अश्व को निरतष्टः (नितक्षते हुए) ततः त्रितः (विस्थानो वायु) यम करि दिये इस अश्व को जोड़ता हुआ। और इन्द्र इस अश्व को प्रथम अधिष्ठित हुआ। गन्धर्व (विश्वावसु) इस अश्व की रशना (रज्जु) पकड़ता हुआ। जो ऐसानि-

में स्तुति करते हैं ॥१३॥

असि यमोऽपस्यादित्योऽअर्वन्नसि त्रितो गुह्येन  
व्रतेन। असि सोमेन समया विप्रुक्त आहुस्ते त्रीणि  
दिवि बन्धनानि ॥१४॥

हे अर्वन् तू यम है और आदित्य है गोप्य व्रत (कर्म) करि त्रित (त्रि-  
स्थान इन्द्र) है। सोम सहित एकीभूत है। एव यमादि करि सायुज्य प्राप्त  
तुम् आदित्य रूप करि नभ में स्थित के तीनि बन्धन बुद्धिमान कहते हैं  
(ऋग्यजुः सामरूप मण्डलान्तर पुरुष की अर्चि हैं तीनि बन्ध-  
न स्वरूप हैं) ॥१४॥

त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समु-  
द्रे। उतेव मे वरुणश्छन्त्यर्वन्यत्रा त आहुः परमं ज-  
नित्रम् ॥१५॥

हे अर्वन् जहां तेरा परम जनित्र आदित्य रूप बुधा कहते हैं तहां तरे पूर्वमन्त्रोक्त  
तीनि बन्धन कहते हैं। जल में तीनि बन्धन कहते हैं (कवि-दृष्टि-बीज-  
रूप करि। समुद्र (अन्तरिक्ष) में तीनि बन्धन (मेघ-विद्युत्-स्तुनयितु) क-  
हते हैं। उतेव और वरुण रूप तू मुझे प्रशंस (अर्चन) है ॥१५॥

इमा ते वाजिन् वमार्जना नीमा शफानांश्च सनितुर्नि-  
धाना। अत्रा ते भद्रा रशना अपश्य मृतस्य या अभि-  
रक्षन्ति गोपाः ॥१६॥

हे वाजिन् तेरे इन अवमार्जनों (वेतसकरादिकों) को मैं देखता हूं। शफों  
(खुरों) के सनितुः (सम्भक्तुर्नियन्तुः पादवास के) इन निधानों (स्थानों)

की देखता हूँ। इस यज्ञ में तेरी रशना (मध्यबन्धनरज्जुः) देखता हूँ। कै-  
सी रशना कि भद्राः (कल्याणरूपाः) स्तुत्याः। गोपाः (रक्षणकर्त्र्यः) जो  
रशना यज्ञ को सर्वतः रक्षा करती है ॥१६॥

आत्मानं ते मनसा रादजानामवो दिवा पतयन्त पतंग-  
म्। शिरोऽपश्ये पृथिभिः सुगेभिररेणुभिर्जहमानं  
पतन्नि ॥१७॥

एवमश्वं स्तुत्वा भविष्यत्कर्मणा स्तोति। हे अश्व तेरे आत्मा को मन  
करि दूर में जानता हूँ। कैसे आत्मा कि अधः प्रदेश से नभो मार्ग  
करि पतंग (सूर्य) प्रति उत्पतन्त को। किं च तेरे शिर को सूर्य रूप दे-  
खता हूँ। कैसे शिर कि नभो मार्ग करि जहमान चलता कैसे मार्ग  
कि सुगमों रेणु (उपद्रव) रहितों करि। पुनः कैसे कि पतन्नि (प-  
तनशील-गन्ता को ॥१७॥

अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यं जिगीषमाणमिष आ पदे  
गोः। यदा ते मर्तोऽनु भोगमान डादिभू सिष्ठ ओष-  
धी रजीगः ॥१८॥

हे अश्व इस गोः पद (सूर्यके मण्डल) में तेरे उत्तमरूप को समन्तात्  
देखता हूँ। कैसे रूप कि इष (हविरूप अन्न) जीतने को इच्छा करता।  
किं च मनुष्य जब कि तेरे हविरूपभोग को समर्पण करता है अनन्तरमे-  
व नू हविर् (ओषधिरूपाः) भक्षण करता है कैसा है नू कि अत्यन्त  
भक्षयता ॥१८॥

अनु त्वा रयोऽनु मर्योऽवन्ननु गावोऽनु भगः



कनीनाम् । अनु ब्रातासस्तव सख्यमीयुरनु देवा  
ममिरे वीर्यं ते ॥१६॥

हे अर्बन् (अश्व) रथ तुमै अनुवर्ते है इति शेषः । मनुष्य तुमै अनु गौ  
तु० । कन्याओं का सोभाय तु० । अर्थात् जहां तू जहां रथादिक हैं ।  
किंच ब्राताः (मनुष्यसंघा) तेरे सख्य (मैत्री) को प्राप्त हुए । किं बहु  
ना देवता तेरे वीर्य (सामर्थ्य) को अनुममिरे (अनुमितवन्तः) ॥१६॥

हिरण्यशृङ्गोऽयोऽस्य पादा मनोजवा अवर इन्द्र  
आसीत् । देवा इदस्य हविरद्यमायन्योऽर्बन्तं प्रथ  
मोऽध्यतिष्ठत् ॥२०॥

जो प्रथम (मुख्य) अर्बन्त (अश्व) को अधिष्ठित हुआ वोह भी इन्द्राये  
क्षया न्यून था कैसा इन्द्र कि हिरण्यशृङ्ग (हिरण्यवत् दीप्तिजिसकी  
इस अश्व के पादा अयः (लोहरूपावा हिरण्यरूपा) के से पादा कि म  
नोजवत् वेग जिन्हों का ते । किंच देवा इस अश्व के हविरक्षणाभक्ष्य  
प्रति आये ॥२०॥

ईर्मान्तासः सिलिकमध्यमासः सर्गं शूरणासो दिव्या  
सोऽपत्याः । हर्षं सा इव श्रेणिशो यतन्ते यदाक्षिषु  
दिव्यमज्जमश्वः ॥२१॥

सूर्याश्वरूपेण यमश्वः स्तूयते । जब कि अश्वः (सप्त रविरथस्थाः) श्रेणि  
भूताः हंस ऐसे भले प्रकार प्रयत्न करते हैं तब दिवि में हुए अज्जम (गम  
न वा संग्राम) को व्याप्त होते हैं अर्थात् हंस जैसे गमन के अर्थ प्रयत्न  
करते हैं तैसे अश्व भी । कैसे घोड़े कि ईर्मान्तासः (पेरित है अन्तः श

रीरप्रान्तजिन्हों का अर्थात् पृथुजघनोरस्का। सिलिकमध्यमासः (संलग्न है मध्य प्रदेश जिन्हों का अर्थात् कशोदरा। शूरणासः (शीघ्र है स्ववायु ह्व जिन्हों का यद्वा शूरणा रवितिसके सम्बन्धिनः। दिव्यासः (दिवि में दृष्ट। अत्याः (सतत चलते हैं) सकृद्युक्ता ब्रह्माह पर्यन्त रविरथ को वह ते हैं ॥२१॥

नव शरीरं पतयिष्यन्वेन्तव चित्तं वात-इव ध्रुजीमान्। नव शृङ्गाणि विष्टिता पुरुत्रारण्येषु जर्भुराणां चरन्ति ॥२२॥

हे अर्वेन् तेरा शरीर उत्पतनशील है। तेरा चित्त गतिमान् वात जैसे वेगवत् सूक्ष्मार्थों को जाता। तेरे शृङ्ग (दीप्ति) वनों में दवाग्निरूप करि प्रसरती हैं कैसी शृङ्ग कि बहुधा विष्टिता (विविधस्थित) विद्युच्चन्द्रार्काग्नि में स्थित। जर्भुराणां (जृम्भ विकसन में विकसित हैं) ॥२२॥

उप प्रागाच्छसनं वाज्यर्वा देवद्रीचा मनसा दीध्यानः॥  
अजः पुरो नीयते नाभिरस्यानु पश्चात्कवयो यन्ति  
रेभाः ॥२३॥

अर्वा (अश्व) विशसनस्थान को समीप आया। कैसा अर्वा किवाजी (गमनशाल वा अन्नवान्) देवद्रीचा मनसा दीध्यानः (देवताओं प्रति गये चित्त करि दीप्यमान। किं च इस अश्व के आगे में अज स्थापन करिये हैं। इस की नाभि में अज स्थापन करिये हैं। इस के पीछे कवयः (ऋत्विजलोग) चलते हैं। कैसे कवयः कि रेभाः (स्तुतिकर्तारः) ॥२३॥

उप प्रागात्परमं यत्सद्यस्थमर्वा २॥५ अछा पितरं मा-  
तरं च । अद्या देवान्जुष्टतमो हि गम्या अथाशास्ते  
दाशुषे वार्याणि ॥ २४ ॥

एवमश्वं स्तुत्वा यजमानाह । अर्वांन् (अश्व) पिता और माता (द्यावापृ-  
थिव्यो) के अछ (समीप) में परम उत्कृष्ट जो सहस्थान तिसके समी-  
प गया अश्व के ही देवलोक को जाते है यजमान प्रीततमः सन् अद्यः (अव-  
तू देवलोक को जावैगा अथैवं देवत्व को गये हविर्देव वंते तेरे अर्थ  
वरणीय भोग्यवस्तुएँ क्षिप्र देवगण वा अश्व देवें ॥ २४ ॥

अ. ३. समिद्धोऽअद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान्यजसि जात-  
वेदः । आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान्त्वं दूतः कविरे-  
सि प्रचेताः ॥ २५ ॥

द्वादशाग्नी संज्ञास्त्रिष्टुभः जमदग्निदृष्टाः समित्तनूनपादादयो देवताः ।  
हे जातवेदः (जातज्ञान) मनुष्य (यजमान) के यज्ञ गृह में आज तू देवता-  
ओं को यजि। कैसा है तू कि दीप्तदानादिगुणयुक्त । और हे मित्रमहः (मि-  
त्रों-यजमानों को पूजता है) देवताओं को बुला अर्थात् यजि। क्योंकि  
तू ऐसा है कि चिकित्वान् (चेतनवान्) दूतक्रान्तदर्शी प्रचेता (प्रकृष्टचेतजि-  
सका बोह) अतएव यजि ॥ २५ ॥

तनूनपात्यथ ऋतस्य यानान्मध्वा समञ्जन्त्स्वदया  
सुजिह्व । मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन्देवत्रा च क-  
णुत्यध्वरं नः ॥ २६ ॥

हे तनूनपात् (अग्ने) हे सुजिह्व (शोभनाजिह्वा जिसकी बोह +) ऋत

के पथों (हवियों) को स्वदय (रोचय-भक्षण करि)। क्या करता कि मधु-  
र रस करि संभक्षयन्। किं च हमारे यज्ञ को देवता (देवताओं) प्रतिप्राप्त  
करि। क्या करता कि बुद्धिओं सहित ज्ञानों और यज्ञ को समर्थयन्-  
शीत् हमारे ज्ञान और यज्ञ को बढाके यज्ञ को देवलोक में प्राप्त  
करि ॥२६॥

— यायन्ते  
धैर्यं बु ते पा-  
नास्तान् अ-  
तो यज्ञः तस्य  
गमनसाधना  
हवींषि।

नराशंसस्य महिमानं मेघामुपस्लोषाम यज्ञतस्य य-  
ज्ञैः। ये सुक्रतवः शुचयो धियं धाः स्वदन्ति देवा उभ-  
यानि हव्या ॥२७॥

नराशंस (प्रजापति वा अग्नि) के महाभाग्य को इन देवताओं के मध्य  
में हम स्तुति करते हैं। कैसे नराशंस कि यज्ञों करि यज्ञ के। इनकि-  
न्हे के कि जे देवाः उभय हवियें (सोम और इतरों को) भक्षण कर-  
ते। कैसे देवा कि शोभन हैं कर्म जिन्हें के। निष्यायाः। बुद्धि वा कर्म  
को स्थापन करते ॥२७॥

आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्चायाह्यग्ने वसुभिः सजोषाः।  
त्वं देवानामसि यद्व होता स एनान्यक्षीषितो य-  
जीयान् ॥२८॥

हे अग्ने तू आ कैसा है तू कि देवताओं को बुलाता। स्तुत्यः। नमनी-  
यः। वसुदेवताओं से समान प्रीतिः। किं च हे यद्व (महन्) जो तू देवताओं  
का आह्वान है सो तू एतान् (आयों को) यजि। कैसा है तू कि इषितः (प्रे-  
षित वा अभीष्ट) यजीयान् (अत्यन्त यष्टा ॥२८॥

प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते अ-

रेऽअन्ताम् । व्यु प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्योऽआदित  
स्थोनम् ॥२४॥

दिनों के अग्र (पूर्वार्ध) में बर्हिः प्रागग्र प्रस्तीर्य है + अदिशा (प्रागग्र) इ-  
स वेदी के आछादन को। सो बर्हिः स्तीर्यमान सत् विविध स्तीर्ण होता  
है। कैसी बर्हिः कि अत्यन्त विस्तीर्ण। देवताओं और अदितिके अर्थ  
सुरवकर ॥२४॥

व्यचस्वतीरुर्विया विश्रयन्ता पतिभ्यो न जनयः शुभ-  
मानाः । देवीद्वारे बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सु-  
प्रायणाः ॥२५॥

द्वारे देव्यः विवृता हैं। कैसी द्वारः कि उरुत्व करि गमनवत्यः कैसे कि  
जैसे पत्निएँ पतिओं के अर्थ ऊरू फैलाती हैं। एवं परेक्षमुक्ताप्रत्यक्ष-  
माह हे द्वारे देव्यः तुम देवताओं के अर्थ सुप्रगमना होओ। कैसी  
कि बृहत्यः विश्वमिन्वा (विश्वजाता है जिन्हों में वे) शोभमानाः।  
उर्विया इति द्वारविशेषणम् उरवः (विशालाः) इयाद् (इयाज इयार-  
श्चेति ॥२५॥

आ सुषयन्ती यजतेऽउपाकेऽउषासानक्ता सदता नि-  
यानौ । दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मेऽअधि श्रियर्धं शु-  
क्रपिशां दधाने ॥२६॥

अहो रात्रे देवते यज्ञगृह में भले प्रकार बैठें। कैसी कि सुषयन्ती (पर-  
स्पर हसन्ती वा साधु स्वपन्ती) यजनीय में। परस्पर समीपस्थिते दि-  
वि में हुई। स्त्रीरूपिणीयें। बृहत्यो। सुरुक्मे (साभरणे) शुक्रपिशां (शुक्ला-

+ अत्र यो गता भव्य प्रसक्तता वन्ती मये इत्युक्तम्  
न किं स्व उक्ता चत्याद अदिशा प्रागग्र बर्हिः स्थाने नीति श्रुति वा कोन प्रादक प्राक्त्वेन श्रुति वाक्यम्

दिवसः कपिशा-रात्रिः श्रियः (शोभा) को धारण करती हैं ॥३१॥

देव्यां हांतां प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुष्यो  
यजथ्ये। प्रचोदयन्ता विदयेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः  
प्रदिशा दिशान्ता ॥३२॥

देव्यों होतारों ऐसे हैं इति शेषः। कैसे कि आद्यो। शोभनवाक् जिन्हों की  
तों। मनुष्य के यजनयोग्य यज्ञ को निर्मिमाणो। यज्ञों में ऋत्विजः  
प्रेरयन्तों। कारू (स्वयंकर्तारों) पूर्वदिशा में हुई ज्योति आहवनीया-  
रव्य की प्रदिशा (अभिनय श्रुतिवाक्य करि) दिशान्ता (पूजेंगे यह  
कहते ॥३२॥

आ नो यज्ञं भारती तूयमेतिडा मनुष्यदिह चेतय-  
न्ती। तिस्रो देवी बर्हिरेदं स्योनर्ह सरस्वती स्वपसः  
सदन्तु ॥३३॥

भारती इडा और सरस्वती हमारे यज्ञ को क्षिप्र आवें। कैसी कि मनु-  
ष्यवत् इस कर्म में चेतयन्ती (कर्मज्ञान को बोधयन्ती) यह तीनों का  
विशेषण। ये तीनों देवियों सुरवरूप इस बर्हि पर बैठें। कैसी कि शो-  
भन हैं कर्म जिन्हों के ॥३३॥

य इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिर्हं शद्रुवनानि  
विश्वो। तमद्य होतरिषितो यजीयान्देवं त्वष्टारमिह  
यक्षि विद्वान् ॥३४॥

हे होतः आजप्रेषितः सन् तू त्वष्टा देवता को इस यज्ञ में यजि। कै-  
सा है तू कि अत्यन्त यष्टा। अपने अधिकार को जानता। वोह क्या

किं जे। त्वष्टा ये द्यावाभूमीयें रूपों करि विचित्र करता हुआ। सबभूत-  
जातों को रूपों करि विविध करता हुआ। कैसी द्यावा पृथिवीएँ कि  
शायियों की उत्पादन करने वाली हैं॥३४॥

उपावसृज त्वन्या समञ्जन्देवानां पाथ ऋतुथा ह-  
वींषि। वनस्पतिः शमिता देवोऽग्निः स्वदन्तु ह-  
व्यं मधुना घृतेन॥३५॥

यजमानो वदति। हे होतः अपने सैं हवियें यज्ञकाल में तू दे। क्या क-  
रता कि देवताओं के पाथ (हवि) मधुररस (घृत) करि के समृक्षयन।  
देवताओं के इत्युक्त तानाह- वनस्पति (यूप) शमिता देवः अग्निः।  
ये तीनों होता करि समृज्यदिये हवि को भक्षण करें॥३५॥

संघो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत्यु-  
रोगाः। अस्य होतुः प्रदिश्युतस्य वाचि स्वाहाकृतं  
हविरदन्तु देवाः॥३६॥

देवा हवि भक्षण करें। कैसा हवि कि इस अग्नि के वाचि (वागिन्द्रियो-  
पलक्षित-मुख में) स्वाहा कार करि हुत को कैसा ईस काकि होतुः  
(देवताओं के बुलानेवाले) प्रदिशि (पूर्वदिशा में) ऋतस्य (आह-  
बनीयात्मा करि स्थित का। इस किस का कि जो अग्नि सद्य उत्पन्न  
हुए सन् यज्ञ को विशेष करि निर्माण करता हुआ और जो देवता  
ओं का अग्रगामी (मुख्य) हुआ॥३६॥

अ० ४. केतुं कृणवन् केतवे पेशी मर्या अपेशसे। समुष-  
डि रजायथाः॥३७॥

अग्निदेवत्या गायत्री मधुच्छन्दोद्दृष्टानिरुक्ता। हे अग्ने तू उषत् (अग्निहोत्रक-  
रीयजमानों) करि उत्पन्न है। कैसा है तू कि अकेतु (अज्ञानी) अर्थ (मनुष्य)  
के अर्थ केतु (ज्ञान) को करता। अपेश से (विन सुवर्ण के मनुष्य के अर्थ सुवर्ण करता ॥ ३७ ॥

जीमूतस्यैव भवति प्रतीकं यद्धर्मी याति समदामुष-  
स्थे। अनाविद्धया तन्वा जय त्वं स त्वा वर्मणो  
महिमा पिपर्तु ॥ ३८ ॥

एवमग्निं स्तुत्वाश्वरक्षणे योधा। युद्धोपकरणानि च स्तूयन्ते। भरद्वाज-  
सुतपादुः संमाङ्गानि प्रत्यृचं सौति त्रिष्टुब्धिः। वर्म स्तूयते। जब कि  
वर्मी (कवची) समदों (संग्रामों) के उत्सङ्ग में जाता है तब प्रतीक (से-  
नामुख) जीमूत (मेघ) का सा होता है। सहमाद्यन्ति (तृप्त होते हैं) योधा  
जिन्हों में ताः समदः (संग्रामाः)। मेघ का मुख विद्युत्स्तनयितु धाराओं  
से जैसे असह्य है एवं हस्त्यश्वरथपदात्यस्त्रजालतूर्यनादशरीर्यकरि  
सेनामुख असह्य होता है इत्यर्थः। अतः में कहिता हूं कि हे वर्मिन्  
अक्षत शरीर करि तू शत्रुओं को मारि के जय को प्राप्त हो। किं च वो-  
ह वर्म की महिमा तुम्हें पालन करे ॥ ३८ ॥

धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो  
जयेम। धनुः शत्रौरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्र-  
दिशो जयेम ॥ ३९ ॥

धनुः स्तूयते। धनुष करिके हम पृथ्वी जीतें। धनुष करि मार्गे जीतें।  
उग्र संग्रामों को धनुष करि जीतें। धनुष शत्रुओं के अनोरथाभाव क-  
रता है। किं च धनुष करि सब प्रदिशाएँ जीतें ॥ ३९ ॥



वक्ष्यन्ती वेदागनीगन्ति कर्णे प्रियर्हं सखायं प्रिय-  
स्वजाना। योषैव शिङ्गे वितनाधि धन्वन्त्याऽद्वयर्हं  
समने पारयन्ती ॥४०॥

ज्या स्तूयते। यह ज्या धनुष के ऊपर में विस्तारिता सती अव्यक्तशब्द  
करती है। कैसे कि जैसे कामिनी कामुक के रञ्जनार्थ अव्यक्त क-  
हती है ऐसे यह भी। कैसी ज्या कि संग्राम से उतारती अर्थात् वि-  
जय करती। यह कौन कि जो ज्या आकृष्टासती योधा के कर्णप्रति  
अत्यर्थ आती है। कैसी कि जैसे अन्य बोलने को इच्छा करता क-  
र्णप्रति आता है। इस प्रियसखा (इष्ट मित्रवाणस्स) को आलिङ्गन करती ॥४०॥

तेऽआचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्रं विभृतामु-  
पस्थे। अप शत्रुन्विध्यतां संविदानेऽआर्त्तीऽइमे  
विष्फुरन्तीऽअमित्रान् ॥४१॥

धनुः कोटी स्तूयेते। ते प्रसिद्ध आर्त्ती (धनुः कोटीयें) उत्सङ्ग (मध्यभा-  
ग) में धारण करें शर को दूति शेषः। तत्र दृष्टान्तः जैसे माता धार-  
ण करती है पुत्र को उत्सङ्ग में। और शत्रुओं को ताडन करें। कैसी  
आर्त्ती कि आती हैं धानुष्क प्रति तत्र दृष्टान्तः कि समान मन हैं  
जिन्हें के ते स्त्रियें जैसे कान्त को आती हैं परस्पर संकेत करती हैं।  
शत्रुओं प्रति टङ्कार करती हैं ॥४१॥

बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रश्चिश्चाकृणोति समना-  
वगत्य। दूषुधिः सङ्काः पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निन-  
द्यो जयति प्रसूतः ॥४२॥

इषुधिः स्तूयते। जो इषुधिः (तूण) बहूतों (बाणों) का पालक है। क्योंकि बा-  
 णों को रखता है। इस इषुधिके बहुत पुत्र + (बाण समूह पुत्रस्थानीय) + पुरुषबहूत  
 हैं (पाल्यमानत्वात्)। सो इषुधिः संग्रामों को जानि कर चिश्वा कणोति वायतेति पुत्रः  
 (चिश्च यह शब्द करता, शब्दानुकरणमेतत् तूण सैनिकलते हुए  
 बाण में चिश्च यह शब्द होता है। और वोह इषुधिः धानुष करि पीठि में  
 बंधा भी अनुज्ञातः सन् सब शत्रु सेनाएँ जीतता है। कैसी शत्रु सेनाएँ  
 कि सङ्गाः (सचन्ते संवध्यन्ते वा संकीर्यन्ते) योधाजिन्हों में ते ॥४२॥

रथे तिष्ठन्त्यति वाजिनः पुरे यत्र-यत्र कामयते सुषा-  
 रथिः। अभिश्चूना महिमानं पनायत मनः पश्चाद-  
 नुयच्छन्ति रश्मयः ॥४३॥

अर्धेन सारथिरर्धेन रश्मयः स्तूयन्ते। जगती इयम्। शोभन सारथि  
 जिस-जिस प्रदेश में चाहता कि मैं यहां जाऊंगा तहां- तहां पुरे वर्तमानों  
 वाजियों को प्राप्त करता है। कैसा कि रथ में बैठा। दिसें स्तुति करता  
 हूं इति शेषः। इदानीं रश्मयः स्तूयन्ते। हे मनुष्यश्रेष्ठो अभिश्चूनों (र-  
 श्मिओं) के महाभाग्य को तुम स्तुति करो। जे रश्मिएँ पीछे में वर्तमान  
 हुईं मन (अश्वचित) की वशवर्ति करती हैं ॥४३॥

तीव्रान्योषान्कृण्वते वृषपाणयोऽश्वा रथेभिः सह  
 वाजयन्तः। अवक्रामन्तः प्रपदैरमित्रोन्धिणन्ति  
 शत्रूँ ॥ रनपव्ययन्तः ॥४४॥

अश्वाः स्तूयन्ते। वृषाः (आश्वाः) हाथ में जिन्हों के ते वृषपाणयः (अश्व  
 वराः) तीव्रघोषों (जय-जय इन शब्दों) को करते हैं। अश्व भी रथस-

हित चलते हुए तीव्रघोषों (हेषाशब्दों) को करते और शत्रुओं को नाश करते हैं। कैसे अश्व कि पादाग्रों (खुरों) से रिपुओं को अवक्रामन (ठुकराते-रुंदते हैं) ॥४४॥

रथवाहनं हविरस्य नाम यत्रायुधं निहितमस्य  
वर्म । तत्रारथमुप शग्मं सदेम विश्वाहा वयं  
सुमनस्यमानाः ॥४५॥

शकटद्वारा रथः सूयते। इस (अन्न-शकट) का रथ वाहन (रथको वहता) नाम है। तथा इस का हविर्धान नाम है। जहां (इस शकट में) योधा के वर्म और आयुध स्थापित हैं तहां (शकट में) हम रथ को उपसादन करते हैं। कैसे रथ कि सुख कर को। कैसे हैं हम कि सर्वदा शोभन मन जिन्हें कीते ॥४५॥

स्वादुषंसदः पितरौ वयोधाः कृच्छ्रेश्रितः शक्तीवन्तो  
गम्भीराः । चित्रसेना इषुबला अमृधाः सतोबीरा  
उरवो ब्रातसाहाः ॥४६॥

रथ गोपान्तेति। ऐसे नर हमारे रथ के गोपार हों इति शेषः। कैसे कि स्वादुसंसदः (सुखजैसे जैसे भले प्रकार सीदे हैं ते। पितरः (रक्षितारः। अन्न वा आयु को धारण करते। कृच्छ्रेश्रितः (कष्ट में सेवन करते वा दुःख को प्राप्त होके भी स्वामि सेवन पराः। शक्तीवन्तः (सामर्थ्यवान् वा आयुधवान्। गम्भीरबलाः और गम्भीरप्रज्ञाः। नानाविधा सेना जिन्हें कीते। वाणं करि बल जिन्हें का। अमृधाः (कठिनाङ्ग वा उग्रशासना। सतोबीराः (अश्वमेधयाजिनः

शूराः यद्वा विद्यमानबलके प्रेरकाः । उरवः (प्रयुज्यन्ते नोरस्काः) व्रात-  
साहाः (शूरसमूहों को अभिभवते हैं ते) ॥४६॥

ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे नो द्यावापृथिवी  
अनेहसा । पूषा नः पातु दुरितादृतावृधो रक्षा माकि-  
र्नोऽप्रघशर्त्तुस ईशत ॥४७॥

जगती लिङ्गे क्तदेवता । ब्राह्मणाः हमें रक्षा करें । और पितर रक्षा करें । कै-  
से कि सोमसम्पादिनः वा सोमपानयोग्या द्यावाभूमी हमें रक्षा करें ।  
कैसी कि कल्याणकारिण्यो । अपराधनिवर्तके । किंच सूर्य हमें पापों से  
रक्षा करें । एवं परोक्षेणोक्ता प्रत्यक्षमाह हे ऋतावृधः (सत्यको बढाते  
देवाः) हमें रक्षा करें । कोई पापी हमारे ऐश्वर्य को न करे अर्थात् हम  
दुष्टवशान हों ॥४७॥

सुपर्णं वस्ते मृगोऽपस्या दन्तो गोभिः संनद्धा पत-  
ति प्रसूता । यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्य  
मिषवः शर्म यर्त्तसन् ॥४८॥

ह्याभ्यामिषुं स्तौति आद्या त्रिष्टुप् अन्यानुष्टुप् । जोवाण सुपर्ण (पक्षि-  
पिच्छ) को धारण करता है शोभन पिच्छ जिस का बोह सुपर्ण (पक्षी) तिस  
का विकार सौपर्ण (तत्र कृत्स्नवन्निगमा भवन्तीति निरु० २५ यास्कोत्तेः  
सुपर्ण शब्द करि तपिच्छलेंना-वाणपुच्छ में पिच्छ के आरोप्यमाणत्व  
से । किंच इस वाणका दन्तः (फल) मृगः (रिपुओं को मारता किंच जो  
वाण गोविकार (स्त्रायु) करि संनद्धा (बद्धा) प्रसूता (धनष्मता करि प्रेरि-  
तासती) पतति (शत्रुबल प्रतिजाती है) और जहां नर (योद्धार) भले प्रका-

प्रकाशयति वायं जलः (दुष्टः)  
शंसति बक्ति प्रकाशयति वायं जलः (दुष्टः)  
+ अघ (पाप) शंसति

रजाते और विविध प्रसरते हैं तहां (रण में) बाण हमें सुख देवें ॥४५॥

ऋजीते परिवृद्धि नोऽश्मा भवतु नस्तनूः । सोमो

अधिब्रवीतु नोऽदितिः शर्म यच्छतु ॥४६॥

हे ऋजीते (ऋजुगामिनि) हे इषो हमारे विषे मत पतन करि।

च हमारा शरीर याषाण तुल्य दृढ हो। सोम हम को अधिक कहै।

अदितिः (देवमाता) सुख देवै ॥४६॥

आजङ्घन्ति सान्वेषां जघनान् ॥ उपेजिघ्रते । अश्वज-

नि प्रचेतसोऽश्वान्समत्सु चोदय ॥५०॥

अनुष्टुप् । कशास्तूयते । हे अश्वजनि (अश्वचलाइयें और क्षिपियें

हैं जिस से वोह) हे कशे तू संग्रामों में अश्वों को जय के अर्थ प्रेरिकों

को कि प्रकृष्ट (शूर) हैं चेत (मन) जिन्हों के ते । हे कशे जिस तुरु करि अ-

श्ववारा इन अश्वों के सानु (सानुतुल्य मांसोपचित अङ्गों) को ताडन

करते जघनों (कटिभागों) को मारते हैं । अर्थात् तुरङ्गारेहा जिस क-

रि अश्वों को वश करते हैं सो तू अश्वों को प्रेरि ॥५०॥

अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेति परिवाधमा-

नः । हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान्पुमान्पुमाध-

सं परिपातु विश्वतः ॥५१॥

सप्तविष्टुभः । आद्या हस्तघ्नः स्तूयते । हस्त में स्थित होने है हस्तघ्न (खे-

टक) यद्वा हस्त को प्राप्त है हस्तघ्न (प्रकोष्ठत्राण) पुमांस मुझे सर्वतः

परिपातु (रक्षाकरै) कैसा है हस्तघ्न कि सब ज्ञानों को जानता । तथा पुमान्

(पुंस्त्वयुक्त-शूर) जो हस्तघ्न भागों (स्वशरीरवयवों) करिके हस्त को वे-

घृण करता है। कैसे कि अहिरवि (जैसे सर्प भोगों करि स्वदेह हस्तादि-  
कों) को वेष्टन करता है। कैसा कि शत्रु प्रेरित ज्यायाः हेति (वाण) को नि-  
वर्त करता खेटकपक्षे प्रकोष्ठत्राणपक्षे तु ज्यायाहेति (प्रहार) को नि-  
वारण करता (ज्याधातस्य निवारकत्वात्) ॥५१॥

वनस्पते वीडुङ्गो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः सु-  
वीरः। गोभिः संनद्धो असि वीडय स्वास्याता ते जय-  
तु जेत्वानि ॥५२॥

तिस्र ऋचो रथ देवता। हे वनस्पते (काष्ठमयरथ) नूढटाङ्ग हो।  
कैसा कि हमारा मित्र भूत। प्रतरणः (संग्राम पार को जाता। सुवीरः  
(शोभन रथीजहा)। किं च हे रथ यतः तू गोविकारचर्मों से बद्ध है  
अतः आत्मा को सम्मन करि। किं च तेरा स्याता (रथी) जेतव्य रि-  
पु धनों को जीते ॥५३॥

दिवः पृथिव्याः पर्योज उद्धृतं वनस्पतिभ्यः पर्योभृत-  
ं सहः। अपामोज्मानं परि गोभिराहतमिन्द्रस्य बज्र-  
ं हविषा रथं यज ॥५३॥

हे अध्वर्यो तू हवि करिके रथ को यजि। कैसे रथ कि ध्रुलोक से पृथि-  
वी के सकाश से समन्तात् उद्धृत को ओजः (तेजः) तथा वृक्षों से स-  
मन्तात् आनीत बल को। तथा जलों के ओज्मान (तेजः) सारभूत।  
अर्थात् द्यावापृथिवी वृक्षजल चारों के तेज करि निर्मित को।  
तथा किरिणों करि वेष्टित को + यद्वा गौ के चर्म से वेष्टित। तथा इन्द्र  
के बज्र से हुण को जबकि इन्द्र ने वृत्र के अर्थ बज्र को मारा तब वृत्र

+ कृत्स्न वनिगमः लिङ् २४.

लिङ् २४.

और वीर कठिना करि प्रतिहत चतुर्धा हुआ यूप. स्प्य. रथ. और शर  
 चतुः स्पाइ हैं तथा यूप और स्प्य विप्रों ने गृहण किये रथ और  
 शर वृषों ने †। अर्थात् ऐसे रथ को यजि ॥५३॥

इन्द्रस्य वज्रो मरुतामनीकं मित्रस्य गर्भो वरुणस्य  
 नाभिः। सोमाग्नौ हव्यदातिं जुषाणे देव रथ प्रति ह-  
 व्या गृभाय ॥५४॥

हे रथ हे देव सो तू हवियें प्रति गृह करि कैसा है तू कि इन्द्र का वज्र  
 (वज्रोत्पन्नत्वात्। मरुतों का मुख्य (देवताओं के जय प्रापकत्वात्।  
 मित्र (सूर्य) करि सूर्यमान। वरुण का नाभि (हन्ननसाधन †। हमारे  
 इस हवि के दान को सेवमान ॥५४॥

उपश्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा तै मनुतां विष्टितं  
 जगत्। स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराहवीयोऽप-  
 सेधु शत्रून् ॥५५॥

तिस्र ऋचो दुन्दुभिदेवत्याः। हे दुन्दुभे सो तू पृथिवी और द्यां (अन्न-  
 रिक्ष को) उपश्वासय (शब्दित करि। विविधस्थित जगत् (स्थावरजङ्ग-  
 मादिक) बड़धा तुम्हें जानें (यह कि दुन्दुभिनाद करता है)। सो तू अ-  
 त्यन्त दूर शत्रु को निकालि। कैसा है तू कि इन्द्र और देवताओं क-  
 रि प्रीतियुक्त ॥५५॥

आक्रन्दय बलमोजो न आधा निष्टनिहि दुरितावा-  
 धमानः। अपप्रोथ दुन्दुभे दुक्षुना इत इन्द्रस्य मुष्टि-  
 सि वीडयस्व ॥५६॥

हे दुन्दुभे तू बल (शत्रुसैन्य) को आक्रन्दय (रुलाय-भागो-भागो हमारे सब मारे गये इत्यादि शब्द कराय। हमारे को तेज दे। पापों को निरा करे सन् निष्टनिहि (शब्द करि। किं च हमारी सेना के सकाश से दुष्टों (दुष्ट श्वानों तिन दुष्ट श्वान सह श शत्रुओं) को नाश करि। क्यों कि तू दुन्दुका मुष्टि (मुष्टिवत् अङ्गभूत) है अतः हम लोगों को दृढ़ करि ॥५६॥

आमूरज प्रत्यावर्तयेमाः केतुमहुन्दुभिर्वावहीति। समं पण्यंश्चरन्ति नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ॥५७॥

हे इन्द्र अमूरः (शत्रुसेना) को तू समन्तात् परिक्षेप करि। क्यों कि दुन्दुभिः केतुमत् (प्रज्ञावत्) जैसे अत्यन्त बजै है अतः हमारी सेना प्रत्यावर्तये (जय को प्राप्त करि के लोटाया। किं च हमारे नर (योधा) संचरें हैं के से योधा कि अश्व का सा पतन जिन्हों का ते। किं च हमारे रथ स्थायु ह में जय को प्राप्त हों ॥५७॥

आग्नेयः कृष्णाग्नीवः सारस्वती मेषी वसुः सोम्यः पौ-  
णः प्रयामः शितिपृष्ठा बार्हस्पत्यः शिन्धो वैश्वदेव ऐ-  
न्द्रोऽरुणो मारुतः कल्माष ऐन्द्राग्नः सर्गहितोऽधोरोमः सा-  
वित्रो वारुणः कृष्ण एकशितिपात्येत्वः ॥५८॥

अश्वमेधेश्रुतिरस्ति द्वे त्वेवैतेश्चकादशिन्यावालभेतेति शत० १३० ५० १०  
३० तयोरेकादशिन्योऽपशवस्तद्देवताश्च कण्डिकाद्वयेनोच्यन्ते तेनेमानि  
ब्रह्मणवाक्यानि द्रव्यदेवता प्रतिपादकानि न तु मन्त्राः ॥ कृष्णाग्नीवा  
जिस की बार्ह कृष्णाग्नीव पशु आग्नेयः (अग्निदेवता) १ मेषी सार  
स्वती (सरस्वतीदेवताका) २ वसुः (पिङ्गलवर्णः पशुः) सोम देवतः ३



श्यामः (कृष्णवर्णः) पूषदेवत्यः ४ शिति (श्याम) पृष्ठजिसका वोह शि  
तिपृष्ठः बृहस्पतिदेवत्यः ५ शित्यः (विचित्रवर्णः) विश्वदेवदेवत्यः ६  
अरुणः (रक्तः) इन्द्रदेवत्यः ७ कल्माषः (कर्बुरः) मरुदेवत्यः ८ संहितः  
(हृदाङ्गः) इन्द्राग्निदेवत्यः ९ अधोरामः (अधोदेशमें श्वेत) सवितृदेव  
त्यः १० एकः शितिः (श्वेतपादजिसका) वोह एक शितिपात् (एकपदमें  
श्वेत अन्यवर्णः) पेतवः (पतनशील) वेगवान् पशुः वरुणदेवत्यः ११  
एवमेकादश जाताः ॥ १८ ॥

अग्नयेऽनीकवते रोहिताञ्जिरनृद्वान् अधोरामो सवित्रो  
पौष्णो रजतनाभी वैश्वदेवो पिशङ्गो तूपरो मारुतः  
कल्माष आग्नेयः कृष्णोऽजः सारस्वती मेषी वीरु  
णः पेतवः ॥ १८ ॥

द्वितीयैका दशिनी पशुदेवानाह। रोहित (रक्त) अञ्जि (तिलक जिस  
का सो अनृद्वान् (छकड़े का बैल) अनीकवान् (अनीक-सुरववा  
सैन्य जिसका उस) अग्नि के अर्थ १ अधोरामो (अधोभाग में श्वेत  
हो पशु) सवितृदेवतो २ ३ रजत वर्ण नाभि जिन्हों की वे रजत ना  
भी द्वौ पूष देवत्यो ४ ५ पिशङ्गो (पीतौ) तूपरो (शृङ्ग रहितौ) विश्वदे  
वदेवत्यो ६ ७ कल्माषः (कर्बुरः) मरुदेवत्यः ८ कृष्णः (श्यामः) अजः  
(मेषः) अग्निदेवत्यः ९ मेषी सारस्वती १० पेतवः (वेगवान्) वरुणदेव  
त्यः ११ एवमेकादश। अश्वमेध में एक विंशति यूप होते हैं तहां अ  
ग्निष्ट संज्ञक मध्यम यूप में दो पशु दोनो एकादशनियों (कृष्णाग्नीव  
पशु अग्निदेवत्यः १ रोहिताञ्जि अनृद्वान् अग्नयेऽनीकवते २) के वां

धे जाते हैं शेष विंशत यूषों में प्रत्येक यूष में प्रत्येक पशु बाँधते हैं ॥१५॥  
 अग्नये गायत्राय विवृते रथन्तरायाष्टाकपाल इन्द्राय  
 वैष्टुभाय पञ्चदशाय वार्हेतायेकादशकपालो विश्वेभ्यो  
 देवेभ्यो जागतेभ्यः सप्तदशेभ्यो वैरूपेभ्यो द्वादशक-  
 पालो मित्रावरुणभ्यामानुष्टुभाभ्यामेकविंशेभ्यो वै-  
 राजाभ्यो पयस्या बृहस्पतेये पाङ्काय त्रिणवाय शाकृग-  
 ये चरुः सवित्रे ओष्णिहाय त्रयस्त्रिंशाय ऐदताय द्वा-  
 दशकपालः प्राजापत्यश्चरुरदित्ये विष्णुपत्ये चरुरग्न-  
 ये वैश्वानराय द्वादशकपालोऽनुमत्याऽष्टाकपालः ॥१६॥

इति संहितायां चतुर्थीऽनुवाकः ४

इति श्री शुक्ल यजुषि माध्यन्दिनशार्वीयायां वाजसने-  
 यसंहितायां दीर्घपाठे एकोनविंशोऽध्यायः ॥२६॥

अथाग्निषोमीयस्य पशुपुरोडाशमनुदिशामावेष्टीर्निर्वपतीत्युपक्र-  
 म्य तदाहुर्दशहविषमन्त्यामिष्टिं निर्वपेदिति श्रुत्या दशहविष्कावे-  
 ष्टिसंज्ञेष्टिः कथिता तस्या देवता हवीषि चाह । इमान्यपि ब्राह्मणवा-  
 क्यानि न मन्त्राः ॥ अग्नि के अर्थ अष्टाकपालः (आठकपालों में संस्कृ-  
 त पुरोडाश करिये हैं) कैसे अग्नि कि गायत्री करि स्तुति किये के अर्थ  
 विवृत्तोम करि स्तुति किये के अर्थ रथन्तराया करि स्तुति किये के अर्थ इन्द्र के  
 अर्थ एकादशकपाल पुरोडाश करिये हैं कैसे इन्द्र कि जगती छन्द क-  
 रि स्तु० सप्तदशस्तोम० वैरूपसाम० २० विश्वदेवाओं के अर्थ द्वादशक-  
 पालः पुरोडाशः कैसे के कि जगती छन्द करि स्तु० सप्तदशस्तोमस्तु०

वैरूपसाम०३ मित्रावरुणों के अर्थ पय करि अत्र चरुः कैसें के अर्थ कि  
अनुष्टुप् करि स्तु० एकविंशस्तोम० वैराजसाम०४ बृहस्पति के अर्थ  
चरुः कैसें के कि पङ्क्ति छन्द० त्रिणवस्तोम० शाक्करसाम०५ सविता के अ-  
र्थ द्वादश कपालः पुरोडाशः कैसें कि उष्णिक् छन्द० त्रयस्त्रिंशस्तोम०  
रैवतसाम०६ एवं छन्दः स्तोमसहितानि षट् देवताओं को कहि कर  
चतुरः कंदलों को कहिता है प्रजापति देवत्यश्वरुः करिये है ७ वि-  
ष्णुपत्नी अदिति के अर्थ चरुरेव ८ वैश्वानर गुणविशिष्ट अग्नि-  
के अर्थ द्वादश कपालः पुरोडाशः ९ अनुमति देवता के अर्थ अष्ट  
कपालः पुरोडाशः करिये है १० दशहविषो वैष्टे देवता हवींष्यपि  
अश्वमेधो पयोगित्वा दुक्तानि समिद्धोऽञ्जन्नाश्वमेधिकोऽध्याय  
इति कात्यायनोक्तेः अनुक्रमणायाम् अ०३ ख० ११ ॥ ६० ॥

इति गिरिधरभाष्ये चतुर्थोऽनुवाकः४

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दनिवारयन्

पुमार्थोऽश्वतुरेदेयाद्धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः५

श्री मच्छुक्तयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीयशारवाध्येतृव्याघ्रपादान्वय  
विश्वामित्र पुराधिप श्रीमज्जयकिशोरदेवबर्मात्मरौक्मिणेयनृपति  
गिरिप्रसादेन रचिते श्री वेदार्थ प्रदीपे गिरिधरभाष्ये खिल प्रकरणे  
आषी आदि पुरोडाशान्त वर्णनो नामेकोनविंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

समाप्तोऽयमश्वशिष्टः

ओं शान्तिः

शान्तिः

शान्तिः



हरिः ओम्

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरुपं च साधनेर्वद्विरूपकम्

स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः ३०

देवसवितद्विध्यायै पुरुषमेधो नागायणः पुरुषो ३० ददर्श

अ० १० देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय । दिव्यो  
गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वीचं नः  
स्वदत्तु ॥ १ ॥

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्र-  
चोदयात् ॥ २ ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि यगमुवं । यद्गदं तन्न  
आसुव ॥ ३ ॥

विभक्तारं हवामहे चमोश्चित्रस्य राक्षसः । सवितारं  
नृचक्षुसम् ॥ ४ ॥

ओं नमो यज्ञवल्कपाय

गिरिप्रसाद संज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीप के ।

त्रिंशोऽध्याये प्रकथ्यन्ते पशवो नरमेधिकाः ३०

इतजतरं पुरुषमेधः । द्वादध्यायौ नागायणः पुरुषोऽपश्यत् । अतिष्ठा  
काम + ब्राह्मण राजन्य का पुरुषमेधसंज्ञक यज्ञ होता है । चैत्र शुक्ल  
शमी में आरम्भ है । अत्र त्रयोविंशति दीक्षा होती । द्वादश उपसद  
पञ्च सुत्या इति चत्वारिंशद्विनों करि सिद्धि होता है । अत्र यूपैकाद-

मन्त्रैश्च यज्ञं यतिः कृत्वा स्थानमभिष्ट

शिनी होती है एकादश अग्नीषोमीयाः पशु होते हैं तिन्हों का प्रतियू-  
प वा मध्यमयूप में यथेच्छनियोजन है ॥ का० २१.१.६ एक बार लिये  
आज्य करि देव सवितरिति प्रति ऋचा सै तीनि ३ आहुतियें आ हव-  
नीय में होमें ॥ तत्र देव सवितः ११.७ तत्सवितुः ३.३५ द्वे व्याख्यात-  
१॥२॥ विश्वानि देव द्वे गायत्र्ये सवितृदेवत्ये क्रमेण श्यावाश्व ३ मेधा-  
तिथि ४ दृष्टे । हे देव सवितः सब पापों को दूर में चला । जो कल्याण सो  
हमारे प्रति आगमन करि ॥ ३॥ हम सविता देवता को बुलाते हैं कैंसे  
को कि वासयितुः नाना विधधन के विभज्य दातार नरों के यथा यो-  
ग्य द्रष्टार को ॥ ४॥

ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे  
शूद्रं तमसे तस्करं नारकाय वीरहणं पाप्मनं क्लीब-  
माक्रयायाऽऽयोगं कामाय पुंश्चलूमति कुष्ठाय माग-  
धम् ॥ ५॥

ब्रह्मणे ब्राह्मणमिति हे कण्ड के तपसोऽनुवाकश्च ब्राह्मणरूपः ॥ अ-  
तः परं पुरुष मेधकाः पशवः आ अध्याय समाप्तेः । ततः प्रतियूप  
एक-एक एकादशिन को नियोग करि ब्राह्मणादीनि अष्टचत्वारिं-  
शत्संख्य पुरुषों प्रकामोद्याथोयसदमित्यन्तों को अग्निष्ट्र यूप में नि-  
योग करें इतर यूपों में एकादश-एकादश पुरुषों बर्णयानुरुधमि-  
त्यादीनि को जोड़े ॥ ब्रह्मणे ब्राह्मणम् तत्र ब्रह्मणे जुष्टं नियुनज्मीति  
अग्निष्ट्रे ब्राह्मणं ग्रन्थमं नियुनक्ति । एवमग्रे सर्वेषां यूये एव बन्धनम्  
चतुर्थ्यन्तं देवतापदं द्वितीयान्तं पुरुषपदं बोद्धव्यम् ॥ ब्रह्मा के अर्थप्रि-

य ब्राह्मण को नियोग करता हं १. क्षत्राय राजन्यं (क्षत्रियम्) २. महद्भ्यो  
वैश्यम् ३. तपसे शूद्रम् ४. तमसे तस्करं (स्तेनम्) ५. नारकाय वीरह-  
णं (नष्टाग्निं शूरं वा) ६. पाप्मने क्षीवं (नपुंसकम्) ७. आक्रयायै अयो-  
गूमयसो गन्तारम् ८. कामाय पुंश्चलं (अभिचारिणीम्) ९. अतिक्रु-  
ष्टाय मागधं मगधदेशजं क्षत्रियायां वैश्यपुंसो जातं वा १०॥५॥

नृत्ताय सूतं गीताय शैलूषं धर्मीय सभाचरं नरि-  
ष्टायै भीमलं नर्माय रेभं हसाय कारिमानन्दा-  
य स्त्रीषरं प्रमदे कुमारीपुत्रं मेधायै रथकारं धैर्या-  
य तक्षणम् ॥ ६ ॥

नृत्ताय सूतं (ब्राह्मण्यां क्षत्रियाज्जातः सूतः) ११. गीताय शैलूषं (नट-  
म्) १२. धर्मीय सभाचरं (सभायां चरतीति तम्) १३. नरिष्टायै भीमलं  
(भयकरम्) १४. नर्माय रेभं (शब्दकर्तारं वाचाटम्) १५. हसाय कारि-  
(करणविशिष्टम्) १६. आनन्दाय स्त्रीषरं (स्त्रियाः सरवायम्) १७. प्र-  
मदे कुमारीपुत्रं (कानीनम्) १८. मेधायै रथकारं (माहिष्येण करिण्यं  
जातम्) १९. धैर्याय तक्षणं (सूत्रधारम्) २०॥६॥

अ. २. तपसे कौलालं मायायै कर्मोर्धं रूपाय मणिकार-  
र्धं शुभे वपं प्रारब्धाया इषुकार्धं हेत्यै धनुष्कारं  
कर्मणे ज्याकारं दिष्टायै रज्जुसर्जं मृत्यवे मृगयम-  
न्तकाय श्वनिन्मम् ॥ ७ ॥

तपसे कौलालं (कुलालापत्यम्) २१. मायायै कर्मोर्धं (लोहकारम्) २२.  
रूपाय मणिकारं (रत्नकर्तारम्) २३. शुभे (शुभाय) वपं (बीजवत्तारम्)

२४. शरव्याये वृषुकारं (वाणकर्तारम्) २५. हेत्यै धनुःकारं (चापकारिणम्) २६. कर्मणे ज्याकारं (प्रत्यञ्चनकर्तारम्) २७. दिष्टाय रज्जुसर्जकं (स्रष्टारं, निर्मातारम्) २८. मृत्यवे मृगयुं (मृगग्राहम्) २९. अन्तकायश्च नि-  
न (शुनो नेतारम्) ३०॥ ७॥

नदीभ्यः पौञ्जिष्ठमृक्षीकाभ्यो नैषादं पुरुषव्याघ्राय दु-  
र्मदं गन्धर्वाप्सरोभ्यो ब्राह्म्यं प्रयुग्य उन्मत्तं सर्पदे-  
वजनेभ्यः प्रतिपदमयेभ्यः कितवमयीर्यतायाः अकि-  
तवं पिशाचेभ्यो विदलकारीं यातुधानेभ्यः कण्ट-  
कीकारीम् ॥ ८॥

नदीभ्यः पौञ्जिष्ठं (पुञ्जिष्ठोऽन्यजः) पुल्कसस्तदपत्यम् ३१. ऋक्षीका-  
भ्यो नैषादं (निषादपुत्रम्) ३२. पुरुषव्याघ्राय दुर्मदमुन्मत्तम् ३३. ग-  
न्धर्वाप्सरोभ्यो ब्राह्म्यं (सावित्रीपतितम्) ३४. प्रयुग्यः उन्मत्तम् ३५.  
सर्पदेवजनेभ्यः अप्रतिपदं (प्रतीपद्यते जातानीति प्रतिपत्, अतथा-  
विधं विकलमित्यर्थः) ३६. अयेभ्यः कितवं (द्यूतकारम्) ३७. इयता-  
यै अकितवमद्यूतकृतम् ३८. पिशाचेभ्यः विदलकारिणीं (वंश-  
पात्रकारिणीम्) ३९. यातुधानेभ्यः कण्टकीकारीं (कण्टकी कर्म-  
तत्कारिणीम्) ४०॥ ८॥

संधये जारं गेहायोपपतिमार्त्ये परिवित्तं निवर्तये प-  
रिविविदानमगच्छाऽणदिधिषुः पतिं निवर्तये पेशस्का-  
रीथं संज्ञानाय स्मरकारीं प्रकामोद्यायोपसदं व-  
र्णयानुरुधं बलायोपदाम् ॥ ९॥

संयये जारमुपपतिम् ४१. गेहाय उपपतिं (व्यभिचारिणम्) ४२. आर्त्ये  
परेवित्तम् (ऊढे कनिष्ठेऽनूढम्) ४३. निर्ऋत्ये परिविविदानम् (अ-  
नूढे ज्येष्ठे ऊढवन्तम्) ४४. अराद्धौ देव्ये एदिधिषुः पतिम् (ज्येष्ठा-  
यं पुत्र्यामनूढायामूढा एदिधिषुः तत्पतिम्) ४५. निःकृत्ये पेश-  
स्कारीं (रूपकर्त्रीम्) ४६. संज्ञानाय स्मरकारीं (कामदीप्तिकरीम्) ४७.  
प्रकामोद्याय तत्संज्ञाय देवाय उपसीदतीत्युपमत् (समीपस्थितस्त-  
म्) ४८. एतानग्निष्टेनियुनक्ति ॥ ॥ अथ द्वितीयं यूपे । वर्णाय अ-  
नुरुध्यते (नुसरतीत्यनुरुत्तम्) १०. बलाय उपदाम् (उपददातीत्युप-  
दास्तमुपायनदातारम्) २॥ ४॥

उत्सादेभ्यः कुञ्जं प्रमुदे वामनं द्वाभ्यः स्वप्ना-  
यान्धमधर्माय बधिरं पवित्राय भिषजं प्रज्ञानाय न-  
क्षत्रदर्शमाशिक्षायै प्रश्निनमुपशिक्षायै अभिप्र-  
श्निनं मर्यादायै प्रश्नविवाकम् ॥ १० ॥

उत्सादेभ्यः कुञ्जं (वक्राङ्गम्) ३. प्रमुदे वामनं (ह्रस्वाङ्गम्) ४. द्वाभ्यः स्व-  
पनं (सर्वदाजलक्लिन्ननेत्रम्) ५. स्वप्नाय अन्धं (नेत्रहीनम्) ६. अधर्मा-  
य बधिरं (कर्णेन्द्रियहीनम्) ७. पवित्राय भिषजं (वैद्यम्) ८. प्रज्ञा-  
नाय नक्षत्रदर्शं (नक्षत्राणि दर्शयति, गणकम्) ९. आशिक्षायै  
प्रश्निनं (प्रश्नवन्तम्, शुकमादिप्रष्टारमित्यर्थः) १०. उपशिक्षायै  
अभिप्रश्निनम् ११ ॥ ॥ अथ तृतीये यूपे । मर्यादायै प्रश्नविवाकं  
(कृतान्प्रश्नान्यो विविनक्ति ब्रूते स प्रश्नविवाकस्तम्) १० ॥ १० ॥

अभ्यर्चयेत् हस्तिपं जवायाश्चपं पुष्ट्यै गोपालं वीर्याय



विपालं तेजसं जपालमिराये कीनाशं कीललाय  
सुराकारं भद्राय गृहपथं श्रेयसे वित्तधमाध्यक्ष्याया  
नुक्षत्तारम् ॥ ११ ॥

अग्नेर्मयो हस्तिपं (गजपालकम्) २ जवाय अध्वपं (तुरगपालकम्)  
३ पुष्ट्यै गोपालकम् ४ वीर्याय अविपालम् ५ तेजसे अजपालम्  
६ द्राग्यै कीनाशं (कर्षुकम्) कीनाशः कर्षुवं यमे ७ कीललाय  
सुराकारं (मद्यकृतम्) ८ भद्राय गृहपथं (गृहपालकम्) ९ श्रेयसे वित्त-  
धं (वित्तं दधातीति वित्तधस्तम् धनकर्तारम् १० आध्यक्ष्याय अनु-  
क्षत्तारं (सारथ्यनुसारिणम् ११ ॥ ११ ॥

भायै दार्वहारं प्रभायोऽअग्न्यधं ब्रध्नस्य विष्टपाया-  
भिषेक्तारं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारं देवलोका-  
य पेशितारं मनुष्यलोकाय प्रकरितारं सर्वेभ्यो  
लोकेभ्य उपसेक्तारमवऋत्यै बधायोपमन्थितारं  
मेधाय वासः पत्न्यूलीं प्रकामाय रजयित्रीम् ॥ १२ ॥

अथ चतुर्थे यूये । भायै दार्वहारं (काष्ठानामाहर्तारम्) १ प्रभायै  
अग्न्येधम् (अग्निमेधयतीति तमग्नेर्वर्धकम् २ ब्रध्नस्य विष्टपाय  
(सूर्यलोकाय) अभिषेक्तारम् ३ वर्षिष्ठाय नाकाय (उत्कृष्टस्वर्गाय) प-  
रिवेष्टणकर्तारम् ४ देवलोकाय पेशितारम् (पेशावयवे विंशती-  
ति पेशिता तम् प्रतिमाद्यवयवकर्तारम्) ५ मनुष्यलोकाय प्रक-  
रितारम् (कृ विशेपे विशेष्टारम् ६ सर्वेभ्यो लोकेभ्यः उपसेक्तार-  
मुपसेचनकर्तारम् ७ अवऋत्यै बधाय उपमन्थितारमुपमन्थ-

नकर्तारम् ८. मेधाय वासः पल्यूलीम् वाससां प्रक्षालनकर्तारम्,  
पल्यूल प्रक्षालनच्छेदनयोः) ६. प्रकामाय रजयित्रीं (वस्त्राणां रङ्ग-  
कारिणीं नारीम्) १०॥ १२॥

ऋतये स्तेनहृदयं वैरहत्याय पिशुनं विविक्तेये क्षत्ता-  
रमोषद्रष्ट्यायानुक्षत्तारं बलायानुचरं भूम्ने परि-  
ष्कन्दं प्रियाय प्रियवादिनमरिष्ट्याऽअश्वसादथस्व-  
र्गाय लोकाय भागदुग्धं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवे-  
ष्टारम् ॥ १३॥

ऋतये स्तेनहृदयं (स्तेनस्यैव हृदयं यस्य तम्) ११. ॥ अथ पञ्च-  
मे यूपे । वैरहत्याय पिशुनं (परवृत्तसूचकम्) १०. विविक्तेये क्षत्तारं (प्र-  
तीहारम्) २. ओषद्रष्ट्याय अनुक्षत्तारं (प्रतिहारसेवकम्) ३. बलाय  
अनुचरं (सेवकम्) ४. भूम्ने परिष्कन्दम् (परितः स्कन्दति रेतः सिञ्च-  
ति तम्) ५. प्रियाय प्रियवादिनं (मधुरभाषिणम्) ६. अरिष्ट्ये अश्व-  
सादम् (अश्वारोहम्) ७. स्वर्गाय लोकाय भागदुग्धं (भागं दुग्धं  
भागदुग्धस्तन् विभागप्रदम्) ८. वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारम् १३॥

मन्यवेऽयस्तापं क्रोधाय निसरं योगाय योक्तारं  
शोकायाभिसर्तारं क्षेमाय विमोक्तारमुत्कूलनिकूले-  
भ्यस्त्रिष्टिनं वपुषे मानस्कृतं शीलायाञ्जनीकारीं  
निर्ऋत्यै कोशकारीं यमायासूम् ॥ १४॥

मन्यवेऽयस्तापमयस्तपं लोहतापकम् १०. क्रोधाय निसरं (नित-  
रं सर्तारम्) ११. ॥ अथ षष्ठे यूपे । योगाय योक्तारं योगकर्ता-

रम् १० शोकाय अभिसर्तारं (संसुरवमागच्छन्तम्) २ क्षेमाय विमोक्षारं (विमोचनकरम्) ३ उत्कूलनिकूलेभ्यः त्रिष्टु नम् (त्रिष्टु तिष्ठतीति त्रिष्टु तम् विद्यादिषु स्थितं शीलवन्तमित्यर्थः) ४ वपुषेमानस्कृतं पूजाया अभिमानस्य वा कर्तारम् सकृच्छान्दसः ५ शीलाय आज्ञनीकारीम् (अज्ञानविद्याकर्त्रीम्) ६ निर्वृत्यै कोशकारी (खड्गद्यावरणं कोशस्तत्कारिणीं स्त्रियम्) ७ यमाय असूम् (न सूते सा असूः ताम् वन्ध्याम्) ८ ॥ १४ ॥

यमाय यमसूमथर्वभ्योऽवतोकाथ संवत्सराय पर्यायिणीं परिवत्सरायाविजातामिदावत्सरायातीत्वरीमिद्वत्सरायातिष्कद्वरीं वत्सराय विजर्जराथ संवत्सराय पलिक्नीमृभुभ्योऽजिनसंधर्तं साध्येभ्यश्चर्ममम् ॥ १५ ॥

यमाय यमसू (युग्मप्रसवित्रीम्) ८ अथर्वभ्योऽवतोकां (निरपत्याम्) ९ संवत्सराय पर्यायिणीम् (पर्यायोऽनुक्रमस्तद्वतीमनुक्रमज्ञाम्) १० ॥ ॥ अथ सप्तमे यूपे । परिवत्सराय अविजाताम् (अप्रसूताम्) ११ इदावत्सराय अतीत्वरीमत्यन्तं कुलराम् पुंश्चली कुलठेत्वरी २ इद्वत्सराय अतिष्कद्वरीम् (अतिस्कन्दति स्रवति इत्यतिष्कद्वरी स्कन्देर्वन्नन्तात् डीब्रेफो) ३ वत्सराय विजर्जरां (शिथिलशरीराम्) ४ संवत्सराय पलिक्नीं (श्वेतकेशाम्) ५ ऋभुभ्यः अजिनसंधं (चर्मसंधातारम्) ६ साध्येभ्यः चर्मन्तं (चर्माभ्यासकरम्) ७ ॥ १५ ॥

सर्गेभ्यो वैवुरमुपस्थावरभ्यो हाशं वैशान्ताभ्यो वैन्दनद्वुलाभ्यः शौक्लं पारय मार्गारमवारय केवर्तती

र्थेभ्य आनन्द विषमेभ्यो मैनाल ७ स्वनेभ्यः पर्णकं गु-  
हाभ्यः किरातुं सानुभ्यो जम्भकं पर्वतेभ्यः किम्पू-  
रुषम् ॥ १६ ॥

सरोभ्यो धैवरं (कैवर्तपत्यम्) ८ उपस्थावराभ्यः दाशम् (दाशु दा-  
नं दातारम् दाशो धीवरो वा ६ वैशान्ताभ्यो वैन्द (विन्दो निषादा-  
पत्यम् १० नडुलाभ्यः शौष्कलं (मत्स्यजीविनम् शुष्कला मत्स्यासौ-  
जीवति तम्) ११ ॥ ॥ अथाष्टमे यूये । यागय मार्गारम् (मार्गारेप-  
त्यं मार्गारस्तम्) १२ अपवागय कैवर्तम् २ तीर्थेभ्यः आनन्दम् (अदि-  
तन्धने अदति आनन्दस्तं बन्धनकर्तारम्) ३ विषमेभ्यो मैनालम्  
(अल् वारणे मीनानलति वारयति जालैरसौ मीनालस्तदपत्यम्)  
४ स्वनेभ्यः पर्णकं (भिल्लम्) ५ गुहाभ्यः किरातम् ६ सानुभ्यः जम्भ-  
कं (जभि नाशने जम्भयतीति तम् हिंसकम्) ७ पर्वतेभ्यः किम्पूरुषं  
(कुत्सितनरम्) ८ ॥ १६ ॥

बीभत्सायै पौल्कसं वर्णाय हिरण्यकारं तुलायै वा-  
णिजं पश्चादोषाय ग्लाविनं विश्वेभ्यो भूतेभ्यः सि-  
ध्मलं भूत्यै जागरणमभूत्यै स्वपनमात्यै जनवादिनां  
व्युद्ध्याः अपयगुल्भठं सठं शरायै प्रच्छिदम् ॥ १७ ॥

बीभत्सायै पौल्कसं (पुल्कसापत्यम्) ८ वर्णाय हिरण्यकारं (स्वर्ण-  
निष्पादकम्) १० तुलायै वाणिजं (वाणिगपत्यम्) ११ ॥ ॥ अथ  
नवमे यूये । पश्चादोषाय ग्लाविनं (ग्लौ द्वर्षक्षणे अदृष्टम्) १२  
विश्वेभ्यो भूतेभ्यः सिध्मलं (सिध्मारव्य रोगवन्तम्) १३ भूत्यै जागर-

एणं जागरूपकम्) ३. अभूत्यै स्वपनं (प्रायालुम्) ४. आर्त्यै जनवादिनं  
(जनान्वदति तम्) ५. व्युद्यै अपगल्भम् ६. संशराय प्रच्छिदं (प्रच्छेदन-  
कर्तारम्) ७. ॥१७॥

अक्षराजाय कितवं कृतायादिनवदर्शं त्रैतायै कल्पि-  
नं द्वापरायाधिकल्पिनमास्कन्दाय सभास्याणुं मृत्यवे  
गोव्यच्छमन्तकाय गोघातं क्षुधे यो गां विकृन्तन्तं भिक्ष-  
माण उपतिष्ठति दुःकृताय चरकाचार्यं पाप्मने सै-  
लगम् ॥१८॥

अक्षराजाय कितवं (धूर्तम्) ८. कृताय आदिनवदर्शम् (आदिनवो-  
द्दोषस्तं पश्यति तथाभूतम्) ९. त्रैतायै कल्पिनं (कल्पकम्) १०. द्वाप-  
राय अधिकल्पिनम् (अधिकल्पनाकर्तारम्) ११. ॥ ॥ अथ दशमे  
धूपे । आस्कन्दाय सभास्याणुं (सभायां स्थिरम्) १२. मृत्यवे गोव्यच्छं (गा-  
प्रति गमनशीलम्) १३. अन्तकाय गोघातं (गवां हन्तारम्) १४. क्षुधे यो  
गां विकृन्तन्तं भिक्षमाण उपतिष्ठति यः पुमान् गां विकृन्तन्तं छिन्-  
न्तं भिक्षमाणो याचमानः उपतिष्ठते तं याचितारं क्षुधे दैव्ये आ-  
लभेत ४. दुःकृताय चरकाचार्यं (चरकाणां गुरुम्) ५. पाप्मने सैलगं  
(सीलगो दुष्टस्तदपत्यम्) ६. ॥१८॥

प्रतिश्रुत्वायाः अर्तनं घोषाय मयमन्ताय बहुवादिनम-  
न्ताय सूकठं शब्दाया उम्बराघातं महसे वीणावाद्  
क्रोशाय तूणवध्ममवरस्यराय शङ्खध्मं वनाय वनपमं  
न्यतीरण्याय दावपम् ॥१९॥

प्रतिश्रुत्कार्ये अर्तनं (दुःखिनम्) ७. घोषाय भयं (जल्पकम्) ८. अन्ताय ब-  
ह्वादिनम् ९. अनन्ताय मूकं (वाग्विकलम्) १०. शब्दाय आडम्बर-  
घातम् (आडम्बरमाहन्ति तम् कोलाहलकर्तारम्) ११. अर्थेयताय-  
यूपे । महसे वीणावादं (वीणावादनकर्तारम्) १२. क्रोशाय तूणवध्म-  
म् (तूणवं वाद्यविशेषं धमति तथाभूतम्) १३. अवरस्पर्शाय शङ्ख-  
(शङ्खवादकम्) १४. वनाय वनपं (वनपालकम्) १५. अन्यतोऽरायाय वा-  
वपं (वनवन्धिपम्) १६. ॥१६॥

नर्माय पुंश्चलं हसाय कारीं यादसे शाबल्या ग्राम-  
एयं गणकमभिक्रोशकं तान्महसे वीणावादं पाणिघ्नं  
तूणवध्मं तान्नुत्तायानन्दाय तलवम् ॥१७॥

नर्माय पुंश्चलं (दुष्टं नारीम्) ६. हसाय कारिं (करणशीलम्) ७. या-  
दसे शाबल्याम् (शबलः कर्बुरवर्णः तदपत्यभूतां स्त्रियम्) ८. ग्राम-  
एयं (ग्रामनेतारम्) ९. गणकं (ज्योतिर्विदम्) १०. अभिक्रोशकं (निन्दक-  
म्) ११. तान् त्रीन्महसे जुष्टं नियुनज्मीति एकादशे यूपे आलभते  
॥ ॥ एवं प्रतियूप एकादश-एकादश नियुक्तौमैजे अधिक (अवशिष्ट)  
हैं तिन समाप्ति पर्यन्तों को दूसरे उद्धृत यूपमें नियुक्त करें और ते  
वीणावादं पाणिघ्नमित्यादीनि रात्र्ये कृष्णं पिङ्गक्षमित्यन्ताः चतु-  
र्विंशहं ततः अथेतानष्टौ विरूपान् इत्यष्टौ और मागधादीनि  
चतुरः एवं षड्विंशति दूसरे यूपमें पूर्वोक्ता एकादश एवं सप्तत्रिं-  
शत् ३७। तान्नेवादं वीणावादम् पाणिघ्नं हस्ततालवादकम् तान् त्री-  
न् नृत्ताय आलभते ३. आनन्दाय तलवम् (वा गतिगन्धनयोः ग-

अथ न हिंसातलं हस्तादितलं वाति वाद्यमुखं हन्ति स तलवस्तम्  
वाद्यवादकम् ॥४॥ २०॥

अग्नये पीवानं पृथिव्यै पीठसर्पिणं वायवे चाण्डाल-  
मन्तरिक्षाय वंशानर्तिनं दिवे खलतिष्ठं सूर्याय हर्य-  
क्षं नक्षत्रेभ्यः किर्मिरं चन्द्रमसे किलासमन्त्रे शुक्लं  
पिङ्गाक्षं रात्र्यै कृष्णं पिङ्गाक्षम् ॥२१॥

अग्नये पीवानं (स्थूलम्) ५. पृथिव्यै पीठसर्पिणं (पीठेनासनेन सर्प-  
पति गच्छति पीठसर्पी तं पङ्क्तम्) ६. वायवे चाण्डालं (चाण्डालकर्म-  
णम्) ७. अन्तरिक्षाय वंशानर्तिनम् (वंशेन नर्तनशीलम्) ८. दिवे ख-  
लतिमलोमशिरस्कं खलत्वादमित्यर्थः ९. सूर्याय हर्यक्षं (हरितनेत्रम्)  
१०. नक्षत्रेभ्यः किर्मिरं (कर्बुरवर्णम्) ११. चन्द्रमसे किलासं (सिध्म-  
रोगवन्तम्) १२. अन्त्रे शुक्लवर्णं पिङ्गाक्षम् १३. रात्र्यै कृष्णवर्णं पि-  
ङ्गाक्षम् ॥४॥ २१॥

अथैतान्ष्टौ विरूपानालभते गतिदीर्घं चातिह्रस्वं चा-  
तिस्थूलं चातिकृशं चातिशुक्लं चातिकृष्णं चातिकु-  
ल्वं चातिलोमशं च । अश्वद्वा अब्राह्मणास्ते प्रजाप-  
त्याः । मागधः पुँश्चली कितवः स्त्रीबोऽश्वद्वा अब्राह्म-  
णास्ते प्रजापत्याः ॥२२॥

इति सर्गहितायां द्वितीयोऽनुवाकः २

इति श्री शुक्लयजुषिमाध्यन्दिनशारदीयायां वाजसने-  
यसर्गहितायां दीर्घपाठे त्रिंशोऽध्यायः ३०

ततः इन बक्ष्यमान आठों विस्त्रुओं (परस्परविरुद्ध) पशुओं को आलम्भ करे। तानाह। अतिदीर्घ (लम्बा) १. अतिह्रस्व (बौ-  
ना) २. अतिस्थूल ३. अतिकृश ४. अतिशुक्त ५. अतिकृषा ६.  
अतिकुल्व (रोमरहित) ७. अतिलोमश (सर्वाङ्गव्यापिरोम) काते  
आठों शूद्र ब्राह्मणव्यतिरिक्ता पशु होते हैं और ते आठों प्राजापत्या (प्राजा-  
पतिदेवता के) हैं ॥ अत्र जातिनियम से पूर्वी में जाति का नियम नहीं है  
वीणावादादयश्चतुर्दश अतिदीर्घादयोऽष्टौ एवं द्वाविंशतिः शेषाः ।  
तथा मागधः १. पुंश्चली २. कितवः ३. क्लीबः ४. ये चारों भी शूद्रब्राह्मण-  
व्यतिरिक्ताः प्राजापतिदेवताः पूर्वी सहित षड्विंशति हैं ते सब दूसरे  
यूप में नियोज्याः ॥ ॥ सर्वों के नियोगानन्तर तिन नियुक्त पुरुषों  
को सहस्रशीर्षा पुरुष इति ३१-१-१६ षोडशर्च अनुवाक करि द-  
क्षिणत उपनिष्टो होतृवदभिष्टौति (होतृवदिति प्रथमोत्तमयोस्त्रिर्व-  
चनम् ऋगन्तानां प्रणवेन संधानं च। यथा। सहस्रशीर्षा पुरुष-  
०ङ्गुलो ३। पुरुष एवेवर्ध-० रोहितो ३म्। एवमभिष्टौति। ततः आल-  
म्भन क्रमसे यथादेवत प्रोक्षणादि है। ब्राह्मणादिकों के पर्यग्नि क-  
रणान्तर इदं ब्रह्मणे. इदं क्षत्राय. इत्येवं सबों का यथास्वस्वदेवतो-  
द्देश करि त्याग है। ततः सब ब्राह्मणादिकों को यूपों से खोलि करि  
उत्सर्जन करे (छोड़े) ॥ ततः एका दक्षिणी के पशुओं से संज्ञयनादि  
प्रधान यागान्न वनस्पति याग करिके स्वष्टकृत से पहिले अर्धयु-  
आज्य को संस्कार करि एकवार लिये आज्य को लेकर ओम् पुरुष  
देवताभ्यो ब्रह्मादिभ्यः आहवनीय में होमें ओम् ब्रह्मणे स्वाहा १६

॥ अष्टौः उज्जमाना लभत इत्युपक्रम्य ते वै प्राजापत्या भवन्तीति १३-६. ३०-८. अमुतेः।  
॥ तानाह वेदिक, आराधन पशुलोचन, नष्टे ताते हैं इतने का हिमन नहीं है।



त्राय स्वाहा २ मरुद्भ्यः ३ तपसे ४ तमसे ५ इत्यादि अध्याय पर्यन्त च  
 तुरशीत्युत्तरशतसंख्याकों १८४ के अर्थ तितनी ही घृताहुती होमिके  
 सिष्टकृदादि उदवसानीयान्त कर्म करि अन्तमें यजमान अयंते यो-  
 निः ३-१४ इति मंत्रेण आत्मा में अग्नियें आरोपण करि अद्वाः स-  
 म्भृत इति ३१-१७-२२ षड्वच अनुवाक सैं सूर्य को उपस्थित करि  
 पीछे अनदेखते आरण्य को जाके संन्यास करे (गार्हपत्येऽधरा  
 रणिमनु प्रहृत्या हवनीयः उत्तरारणिमात्मन्नाग्नी समारोप्यारण्यं  
 ब्रजेदिति शाङ्खायनोक्तेः) यदि पुरुषमेधके अनन्तर ग्राम वासेछा  
 नहि उदवसानीयान्ते सायमाहुती होम के आरण्य में अग्नी स  
 मारोपण करि उत्तरनाशायण सैं अर्क को उपस्थान करि देवयज-  
 न को आदीपन करिके घरको चले घर में आ मन्यन करि अग्नि  
 को स्थापन करे और यथेच्छ यज्ञों को करे। अयमपि पक्षोऽस्ति।  
 तत्पुरुषमेधानन्तरं संन्यास एव ॥ २२ ॥

इति गिरिधरभाष्ये द्वितीयोऽनुवाकः १

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दनिवारयन्

पुमार्थाश्चतुरो देयाद्विराजपुरुषः परः ३०

श्री मच्छुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीय शारवाध्वेत व्याघ्रपादान्क-  
 यविश्वामित्र पुराधिप श्रीमज्जयकिशोरदेव वर्माज रैकिमणेयन-  
 पति गिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये नरमेधि-  
 का पशुवर्णनो. नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

ॐ शान्तिः

शान्तिः

शान्तिः

हरिः श्रीम्

ओं नमो यज्ञ पुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्बहु रूपकम्  
स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः ३१

अथ पुरुषसूक्तानुवाकः प्रथमः १

अ० १. सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । स भूमिर्दे-  
सर्वतः सृत्वात्यतिष्ठद्दृशाद्भुलम् ॥१॥

ओं नमो याज्ञवल्क्याय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्री वेदार्थप्रदीपके

नरमेधोऽध्याय एष एकं त्रिंशोऽयमीर्यते ३१

का० २१. १. ११. नियुक्तों ब्राह्मणमित्यादि पशुओं को सहस्र शीर्षेति षोड-  
शर्च अनुवाक करि ब्रह्मा होतृवत् (त्रिः प्रथमा त्रिः उत्तमा इत्यादि  
उक्त प्रकार से) स्तुति करे ॥ नारायण पुरुष दृष्टा जगद्बीज पुरुष देवत्या-  
षोडश ऋचः पञ्चदशानुष्टुभः षोडशी त्रिष्टुप् । ब्राह्मणे ब्राह्मणमि-  
त्यादि ॥ पुरुषमेधरूप परमात्मा के अवयव पूर्वाध्याय के अन्त में  
कहे तिन्हें का अवयवी पुरुष यहां स्तुति करिये हैं । अव्यक्त महदा-  
दि हिलक्षण चेतन जो पुरुष-पुरुषान्न परः किंचिदित्यादि श्रुतिषु  
(पुरुष से नहीं है परे कोई इत्यादि श्रुति में) प्रसिद्ध सर्व प्राणि समष्टि-  
रूप से ब्रह्माण्डदेह विराजनामा है । कैसा कि सहस्रशीर्षा (असंख्यात  
हैं तैश्वर जिस के हैं सब प्राणियों के जे शिर हैं ते सब तिस देह के अन्तः  
पाति तैश्वर से तिसी के हैं यह सहस्रशीर्षत्व है — मग्नेऽपि । असंख्यात

११ ग्रहणं सर्वावयवोपलक्षणम् ।

स्यत् नैव सहस्रक्ष इति विरोधः स्यात् नैव सहस्रक्ष इति विरोधः स्यात् नैव सहस्रक्ष इति विरोधः स्यात्

† नवग्रहों सर्वज्ञानि प्रयोगफलके कर्म  
+ पादग्रहों कर्मविशेष तत्त्वज्ञान

हैं नेत्र जिस के + असंख्यात हैं पाद जिस के +। सो पुरुष भूमि (ब्रह्मा-  
ण्डलोक रूपा वा यच्चभूतों) को व्याप्त हो दशाङ्गुल परिमित देश को अ-  
ध्यतिष्ठत् (अतिक्रमण करि अवस्थित) है। दशाङ्गुलमित्युपलक्षणम्  
अर्थात् ब्रह्माण्ड से बाहिर भी सर्वतः व्याप्त हो अवस्थित यद्वा नाभिके  
सकाशसे दशाङ्गुल अतिक्रमण करि हृदय में स्थित है नाभि से यह क-  
हां से पाया कि कतम आत्मेत्युपक्रम्य सोऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु हृदय-  
न्तर्ज्योतिरिति श्रुतेः विज्ञानात्मा का हृदय में अवस्थान है कर्मफल भो-  
ग के अर्थ अन्तर्यामी नियन्त्रत्व करिके तदुक्तम् ऋक्सं० अष्ट० २ अध्या०  
३ व० १७ मण्ड० १ अनु० २२ सू० १६४ द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं  
वृक्षं परिषस्वजाते तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचा-  
कशीति इति ॥ स पुरुषोऽत्र देवता तथा च श्रुतिः १३६ २ १ इमे वै  
लोकाः पूरयमेव पूरुषो योऽयं पवते सोऽस्यां पुरि शेते तस्मात्पुरु-  
ष इति ॥ १॥

पुरुष एवेदं सर्वं यद्वृत्तं यच्च भाव्यम् । उतामो  
स्येशानो यदन्नैनातिरोहति ॥ २॥

जो यह वर्तमान जगत् सो सब पुरुष ही है और जो भूत जगत्  
जो भविष्य जगत् वोह भी पुरुष ही है (जैसे इस कल्प में वर्तमान जगत्  
देहाः सब विराट् पुरुष के अवयव हैं तैसे ही भूत भविष्य कल्प  
भी द्रष्टव्य हैं इति भावः । और अमृतत्व (देवत्व) का स्वामी  
पुरुष जिस से प्राणियों के भोग्य अन्न (फल-निमित्तभूत) का  
पानी कारण अवस्था को अतिक्रम्य परिदृश्यमान जगत्

त्रयसा  
मणोय  
नरको  
शा

को प्राप्त होता है तिस से पुरुष है। अर्थात् प्राणियों के कर्मफलभोग के अर्थ जगदवस्थास्वीकार से नहीं है तिस का यह वस्तुत्व ॥२॥

एतावानस्य महिमातो ज्यायैश्च पूरुषः। पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिषादस्यामृतं दिवि ॥३॥

अतीतानागतवर्तमानकालसम्बद्ध यावत् जगत है एतावान् (सर्वे र्ग्ये) इस पुरुष की महिमा (स्वकीयसामर्थ्यविशेषविभूति) है न तु वास्तव स्वरूप है वास्तव तो पुरुष है और यह महिम्न (पुरुष) जगज्जाल से ज्यायान् (अतिशयेनाधिकः)। एतदुभयं स्पष्टीकियते- इस पुरुष के सब भूत (कालत्रयवर्ति प्राणिजात) पादः (चतुर्थीशः) इसका अवशिष्ट (त्रिपात्स्वरूप) अमृत (विनाशरहित) वोह दिवि (द्योतनात्मक स्वप्रकाशस्वरूप) में अवतिष्ठे है इतिशेषः। यद्यपि संत्य ज्ञानमननं ब्रह्मेत्याम्नात परब्रह्म की इयता के अभाव से पादचतुष्टय निरूपण करने को अशक्त तदपि यह जगत् ब्रह्मरूपापेक्षा करि अल्प है इति विवक्षतत्वात्पादत्वोपन्यासः ॥३॥

त्रिपादूर्ध्व उदैत्युरुषः पादोऽस्येहामवत्युनः। ततो विषुड्व्युक्रामत्साशनानशनेऽग्नि ॥४॥

औ यह त्रिपात्युरुष संसारस्पर्श रहित ब्रह्म रूप ऊर्ध्वः उदैत् (इस अज्ञानकार्य संसार से बहिर्भूत यहां के गुण दोषों से अस्पृष्ट उत्कर्ष करि स्थित हुआ। तिस का पाद (लेशजगद्रूप) इस माया में फिर उत्यन्न हुआ (सृष्टिसंहार करि फिर-फिर आता है) फिर साया में आकर निरन्तर उदवतिर्यगादिरूप करि विविध हो व्याप्त हुआ क्या क-

रिके कि साशनानशने अभि अर्थात् अशनादि व्यवहारोपेत चेतन  
प्राणिजात अशनरहित अचेतनगिरिनद्यादिक ते अभिलक्ष्य स्व-  
यमेव विविधहोके व्याप्त हुआ ॥४॥ .

ततो विराडजायत विराजोऽधि पूरुषः । स जातोऽं-  
त्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥५॥

विष्वङ् व्यत्क्रामदिति यदुक्तम् तदेव प्रपञ्च्यते । तिस आदिपुरु-  
ष से विराट् (ब्रह्माण्डदेह) हुआ (विविधराजें हे वस्तुएँ जहां इति विराट्)  
विराट् देह के ऊपर उसही देह की अधिकरण करिके पुरुषः (तिसदेहभि-  
मानी एक एव पुमान् हुआ (अर्थात् सर्ववैद्वान्तवेद्यः परमात्मा स्वमाया  
करि विराट् देह ब्रह्माण्डरूप को सृजि के तहां जीवरूप करि प्रविश्य  
ब्रह्माण्डाभिमानी देवता आत्मा (जीव) हुआ + किं च सो हुआ विराट्  
पुरुष अतिरिक्त देवतिर्यङ् मनुष्यादिरूप हुआ पीछे ( देवादि जीवभा-  
व से ऊपर) भूमि को सृजा इति शेषः अथः (भूमि सृजने के अनन्तर)  
तिन जीवों के पुर (पूरे हैं सात धातुओं से शरीर) सृजे ॥५॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्मृतं पृषदाज्यम् । पशून्तान्श्च-  
क्रे वायव्या नारुण्या ग्राम्याश्च ये ॥६॥ ८॥

तिस सर्व हुत् (सब होमियें हैं जिस में तिस पुरुषमेध) यज्ञ से पृषदा-  
ज्य (दधिमिश्रित आज्य दध्याज्यादि भोग्यजात) सम्पादित हैं पु-  
रुष करि इति शेषः । तथा वोह पुरुष वायु देवता काः तिन (प्रसिद्ध)  
पशुओं को उत्पन्न करता हुआ । तिन किन्हे कि जे आरण्याः (अर-  
में हु (एह रिणादयः) और जे ग्राम्याः (गाँव में हुए गवाश्वादयः) तिन

पशुओं को किया ॥६॥८॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे। छन्दा-  
र्थसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥७॥ ४ ॥

तिस सर्वहुत यज्ञ से ऋचाएँ और सामाएँ उत्पन्न हुई। और गाय-  
त्र्यादीनि छन्दांसि उत्पन्न हुई तिस से यजु उत्पन्न हुआ (ऋग्यजुः  
साम और छन्दों विना यज्ञ नहीं सिद्धि होते ॥७॥ ४ ॥

तस्मादश्वो अजायन्त ये के चोभयादतः। गावो हज-  
ज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥८॥ १० ॥

तिस यज्ञ से अश्व उत्पन्न हुए तथा जे कोई अश्व से अतिरिक्त ग-  
र्दभादयः और अश्वतराः उभयदन्ता (ऊपर नीचे दाँत युक्ता) हैं ते  
भी उत्पन्न हुए। तथा ह (स्फुट) और तिस यज्ञ से गौएँ हुई। किं-  
च तिस यज्ञ से छेरी और भेड़ी हुई। नहीं पशुओं विना यज्ञसि-  
द्धि होता ॥८॥ १० ॥

ते यज्ञं बर्हिषि प्रोक्षन्पुरुषं जातमग्रतः। तेन देवा  
अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥९॥ ७ ॥

यज्ञसाधनभूत तिस पुरुष को पशुत्व समझकर यूप में बँधे को  
वर्हिषों से मानसयज्ञ में प्रोक्षणादि संस्कारों से संस्कार करते  
हुए। कैसे को कि सृष्टिसे आगे हुए पुरुषत्व करि उत्पन्न को (एतच्च  
प्रागेवोक्तम् ततो विराडजायत विराजोऽपधिपूरुषः इति। ति-  
स पुरुषरूप पशु करि देवाः पूजते (मानसयाग करते) हुए कौन ते  
देवाः इत्यत्राह कि जे साध्याः (सृष्टिसाधनयोग्याः) अजायति प्रभृत-

यः) और जे तदनुकूला ऋषयः (मन्त्रद्रष्टारः) ते सबभी यज-  
ते हुए ॥ ४॥ १॥

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् । मुखं किमस्या-  
सीत्किं बाहू किमूरू पादाऽउच्येते ॥ १०॥ १२॥

प्रश्नोत्तररूपेण ब्राह्मणादिस्थितिं वक्तुं ब्रह्मवादिनां प्रश्ना उच्यन्ते ।  
प्रजापति के प्राणरूपा देवा जब कि पुरुष को व्यदधुः (कालकरि उ-  
दपादयन् तब कितने प्रकारों करि विविध कल्पना करते हुए कि  
इस पुरुष का मुख क्या है कौन बाहुएँ और कौन ऊरू हैं कि च पाद  
भी कौन हैं ॥ १०॥ १२॥

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः । ऊरू  
तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽज्जायत ॥ ११॥ १३॥

पूर्वोक्तप्रश्नोत्तराण्याह । ब्राह्मण (ब्रह्मजातिविशिष्ट पुरुष) इस  
प्रजापति का मुख हुआ (अर्थात् मुख से उत्पन्न । राजन्य (क्षत्रियत्व  
जातिविशिष्ट) बाहुकृतः (बाहुत्व करि निष्पादितः । तब इस प्रजा-  
पति के जे ऊरू तद्रूप वैश्य सम्पन्न (ऊरूओं से उत्पादितः । तथा  
इस के पैरों करि शूद्रत्वजातिमान् पुरुष उत्पन्न हुआ ॥ ११॥ १३॥

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षुः सूर्योऽज्जायत । ओत्रा-  
द्वायुश्च प्राणश्च मुखोद्गनिर्जायत ॥ १२॥ १४॥

यथा दध्यादिद्रव्याणि गवादयः पशवः ऋगादिवेदाः ब्राह्मणा-  
दयो मनुष्याश्च तस्मादुत्पन्नाः एवं चन्द्रादयो देवा अपि तस्मा-  
देवोत्पन्ना इत्याह । मन के सकाश से चन्द्रमा हुआ चक्षुओं से

सूर्यं ह्यग्ना वायुं और् प्राणं ओत्र सै उत्पन्नं ह्यग्ना मुखसै अग्नि  
उत्पन्नं ह्यग्ना ॥१२॥ ॥१४॥

नाभ्यां आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णे द्यौः समवर्तत । प  
द्भ्यां भूमिर्दिशः ओत्रात्तथा लोकां ॥१३॥ अकल्पयन् ॥१३॥ ॥१४॥

यथा प्रजापतेर्मनः प्रभृतयश्चन्द्रादीनकल्पयन् तथान्तरिक्षादिलो-  
कानित्याह नाभ्येति प्रजापति की नाभि के सकाश सै अन्तरिक्षं ह्यग्ना  
शिरसै द्यौः (स्वर्ग) उत्पन्नं ह्यग्ना । पैरों सै भूमि उत्पन्नं ह्यग्ना ओत्र सै दि-  
शाँ उत्पन्नं ह्यग्ना तथा तिस (उक्त प्रकार) करि भूरादि लोकों की प्रजापति  
के सकाश सै कल्पना करते हुए फलदानोत्सुकाः काला इति शे-  
षः ॥१३॥ ॥१४॥

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतेन्वत । वसन्तोऽस्यासी-  
दाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्विः ॥१४॥ ॥१६॥

जब कि (पूर्वोक्तक्रम सै) देव शरीर में ही देवता उत्तर सृष्टि सिद्ध्यर्थ बा-  
ह्यद्रव्य के अनुत्पन्नत्व करि मन सै हविष् करि संकल्प्य पुरुषारव्य  
हवियों सै मानस यज्ञ को विस्तारते हुए तब इस यज्ञ का वसन्त ऋ-  
तु आज्यत्व करि संकल्प करते हुए एवं ग्रीष्म इध्मत्व करि संकल्प क-  
रते हुए तथा शरद को पुरोडाशादि हविष् करि संकल्पते हुए । यहि-  
ले पुरुष के हवि सामान्यरूपत्व सै संकल्प है अनन्तर वसन्तादिकों  
का आज्यादिविशेषरूपत्व करि संकल्प इति द्रष्टव्यम् ॥ यहां कण्डि-  
का व्युत्क्रम है इस ऋचा के अनन्तर तं यज्ञम् अ. गिरितस्माद्य गान्  
तीर्थो क्रम सै ६. ७. ८. ततः सप्तास्यासन् १५. यह क्रम अपेक्षित है ॥१४॥ ॥१६॥



सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः । देवा यज्ञ-  
ज्ञं तन्वाना अबध्नन्पुरुषं पशुम् ॥ १५ ॥ ॥ ११ ॥

जब कि देवाः (प्रजापतिप्राणेन्द्रियरूपा) मानसयज्ञ को करते पुरुष प-  
शुमवध्नन् (विराट्पुरुषको ही पशुत्व करि भावना करते हुए। यह ही  
अभिप्राय पहिले १४ पुरुषेण हविषेत्युक्तम् तव इस संकल्पित यज्ञ के  
सातों गायत्र्यादीनि छन्दसि परिधयः हुए (ऐष्टिक आहवनीय के तीनि  
परिधि औत्तरवेदिक तीनि आदित्य सातवां परिधि प्रतिनिधिरूपहै।  
त्रिः सप्त ३+) एकविंशति संख्याकाः समिधाएँ किई (द्वादशमहीने पाँ-  
च ऋतुएँ ये तीनों लोक यह आदित्य इक्कीसवां इक्कीसौ दारुयुक्त इ-  
ध्मत्व करि कल्पना किये वा तीनि सातगुने छन्दवर्ग समिधः कृताः  
गायत्र्यादीनि सप्त ७ अतिजगत्यादीनि सप्त ७ कृत्यादीनि सप्ते-  
नि ७ ॥ १५ ॥ ॥ ११ ॥

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्या-  
सन् । ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वं साध्याः  
सन्ति देवाः ॥ १६ ॥

पूर्व प्रयञ्चनोक्तमर्थं संक्षिप्याह । देवाः (प्रजापतिप्राणरूपः) यज्ञ  
(यथोक्तमानससंकल्पः) करि यज्ञ (यज्ञस्वरूप प्रजापति) को पूजते हुए  
तिस पूजन सैं तिन (प्रसिद्ध) धर्म (जगद्रूपविकारों के धारकों) प्रथ-  
मों (मुख्यभूतों) को हुए । एतावता सृष्टिप्रतिपादक सूक्तभागार्थः सं-  
गृहीतः अथोपासन्नतत्फलानुवादकभागार्थः संगृह्यते । यत्र (जि-  
सविराट्प्राप्तिरूप) नाक (स्वर्ग) में पूर्वं साध्याः (पुराने विराडुपा-

न तया च श्रुतिः गुप्ते वाऽऽभिहितः परिधयो भवन्त्यर्थे तत्सूत्रे मेव पुर माज्ञाप्रारं करोतीति  
न एते आदित्यसदितोः सप्त परिधयोऽत्र सप्तकन्दोत्तराः ॥

धिसाधकाः) देवाः तिष्ठे हं तिस विराट्प्राप्तिरूपस्वर्ग को ही ते महिमा-  
नः (तिस के उपासक महात्मा) प्राप्त होते हैं। सृष्टेः प्रवाहनित्यतां द-  
र्शयति तदुक्तम् सूर्योच्चन्द्रमसौ धातायथा पूर्ध्वमकल्पयदिति ॥१६॥  
इति पुरुषसूक्तानुवाकः प्रथमः ॥१॥

अथोत्तरनारायणो मन्त्रः

अ० २ अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्त-  
ताग्रे । तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देव-  
त्वमाजनमग्रे ॥१७॥

का० २१-२०-१७-१८ त्रैधातवी (उदवसानीयेष्टिः) तिस के अन्त में अ-  
यंते योनिरित्यग्नि आत्मा में समारोहण करि तिस उष्माण को सु-  
ख में प्रवेश करिके अद्भ्यः सम्भृत इति षड्चेनानुवाकेन सूर्यको  
उपस्थित करि पीछे न देवते वन को जाकर ग्राम को न आवै अ-  
र्थात् वानप्रस्थ हो। यद्वा ग्राम में वास करने को इच्छा करता अर्णी-  
ओं में अग्नी समारोपण करि अर्कोपस्थान के अनन्तर ग्राम में जाकर य-  
ज्ञों को करे ॥ इति मन्त्रार्थः ॥ अद्भ्यः सम्भृत इत्युत्तर नारायणो नादित्यमुपस्था-  
येति १३-६-२० षट्कण्डिका उत्तरनारायणाम्। उपान्त्ये द्वे अनुष्टुभौ शो-  
षास्त्रिष्टुभः आदित्यदेवताः। पूर्वकल्पे पुरुषमेधयाजी आदित्यरूपं प्रा-  
प्तः स्तूयते। अद्भ्यः (जल) और पृथिवी के सकाश (पृथिव्यं पां ग्रहाणं भूतष-  
ट्कोपलक्षकम् पांचोभूतों) से जो रस सम्भृत (पुष्ट) तथा विश्व कर्म (क-  
ल) के रस (प्रीति) से जो रस अग्र (पहिले) में हुआ अर्थात् भूतपञ्चक और  
काल के सबों प्रति कारण होने से पुरुषमेधयाजी के लिङ्ग शरीर में

पाँचोभूत तुष्ट और काल ततः तुष्टों से कोईक रसविशेष फलरूप  
उत्तमजन्म प्रदहृष्टा। तिस रस के रूप को धारण करता त्वष्टा (आदि-  
त्य) प्रतिदिन उदय करता है। अग्र (पहिले) में तिसमर्त्य (पुर्षषमेधया-  
जी मनुष्य) का आज्ञान (मुख्य) देवत्व है सूर्यरूप करिके। द्विविधा दे-  
वता हैं कर्मदेवाः (उत्कृष्टकर्म करि देवत्व को प्राप्ताः) और आज्ञान देवाः  
(सृष्टि की आदि में उत्पन्नाः) ते कर्म देवाओं से श्रेष्ठ हैं + ॥१७॥

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः पुरस्तात्  
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽय-  
नाय ॥१८॥

इस महान्त (सर्वोत्कृष्ट) पुरुष सूर्यमण्डलस्थ को मैं जानता हूँ इतिक्व-  
षेवचनम् कैसे कि. आदित्य वर्ण (आदित्य का सा वर्ण जिस का तिस उ-  
पमान्तर अभाव से स्वोपम) तथा तम (अविद्या) से दूर (तमरहित) ति-  
स आदित्य को जानकर मृत्यु को अतिक्रामति (परं ब्रह्म को जाता है।  
अयन (आश्रय) के अर्थ अन्य पन्था नहीं विद्ये है (सूर्यमण्डलान्तः  
पुरुष को आत्मरूप जानना ही मुक्ति है ॥१८॥

ऋजापतिश्चरति गर्भेऽन्तरजायमनो बहुधा विजायते।  
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्युर्भुवना-  
नि विश्वा ॥१९॥

जो सर्वात्मा प्रजापति हृदय के भीतर स्थितः सन् गर्भ मध्य में प्रवे-  
श करता है। और जो उत्पद्यमानः नित्यः सन् बहुधा (कार्यकारण-  
रूप करि) विजायते (माया करि प्रपञ्चरूपेण उत्पन्न होता है) धीराः

+ ते प्रातः कर्म देवानामानन्दः स रात्रिः आज्ञान देवानामानन्द इति श्रुतेः ब्रह्मराम. मा. ४. २. ३५. सू-  
रीदयश्च आज्ञान देवाः ॥

(ब्रह्मविद्) तिस प्रजापति के योनि (स्वरूप) को देखते (अहं ब्रह्मास्मि जानते) हैं। सब भुवन (भूतजात) तिस ही कारणात्मा ब्रह्म में स्थित हैं। अर्थात् सब तदात्मक हैं ॥१४॥

यो देवेभ्य आतर्पति यो देवानां पुरोहितः। पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ॥२०॥

जो प्रजापति आदित्यरूप देवताओं के अर्थ प्रकाश है और जो देवताओं का पुरोहित (सब कार्यों में नीत) है और जो देवताओं के सकाश से प्रथम उत्पन्न है तस्मै आदित्याय नमः (तिस आदित्य के अर्थ नमस्कार) कैसे कि रुचः (दीप्यमान) के अर्थ तथा ब्रह्मये (ब्रह्म के अपत्य ब्राह्मण, वा ब्रह्मावयव भूत के अर्थ ॥२०॥

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा अग्रे तद्ब्रुवन्। यस्त्वेवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवा असुन्वशे ॥२१॥

देवाः (दीप्यमानाः प्राणाः) रुच (शोभन) ब्राह्म (ब्रह्म के अपत्य आदित्य) को उत्पादन करते हुए बोह वचन बोले। बोह क्या अत आह कि जो ब्राह्मण है आदित्य तुरै एवं (उक्तविधिकरि) उत्पन्न जानें तिस ब्राह्मण के देवता वशी होते हैं अर्थात् आदित्योपासिता जगत्पूज्य होता है ॥२१॥

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यातम्। इष्टान्निषाणामुं मेऽइषाण सर्वलोकं मेऽइषाण ॥२२॥

इति संहितायां द्वितीयोऽनुवाकः २

इति श्री शुक्ल यजुषि माध्यन्दिन शाखीयायां वाजसनेय-  
सर्गहितायां दीर्घ पाठे एकविंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

अयिरादित्यं स्तुत्वा प्रार्थयते । हे आदित्य श्री ओं र लक्ष्मी तेरी पत्नि  
हैं (जायाभ्यानीये त्वद्वेश्ये) हैं । तिस करि सर्वजनाश्रणीय होता है को-  
ह श्री (श्रीयते नयाश्रीः) अर्थात् सम्पत् । जिस करि लखिये (देखिये) है ज-  
नों करि बोह लक्ष्मी अर्थात् सौन्दर्य । अहो एते तेरी पार्श्वस्थानीये । नक्ष-  
त्राणि (गगन में चलने वाले तारा) तेरा रूप (तेरे तेजसे भासैं) हैं । अश्विनो  
(द्यावापृथ्व्यो) तेरे व्यात (विकासित) मुखस्थानीये हैं । जो ईदृ-  
श तिस तुरे याचना (कर्मफल को इच्छा) करते वा अन्नेच्छा करते  
सन् इच्छा करता है । किमेषणीयं तत्राहं अमुं (परलोक) मे (मम) इ-  
षाण (परलोक समीचीन हो यह इच्छा अर्थात् अमोघेच्छत्वं से इष्ट  
होता है । सर्व मे (मम) इषाण (सर्वलोकात्म में होंउ यह इच्छा अर्था-  
त् मुक्त होंऊ । सर्व खल्विदं ब्रह्मेति सामश्रुतेः ॥ ३२ ॥ इत्युत्तरना-  
रायणोमन्त्रः ॥ समाप्तश्चायं पुरुषमेधः ॥

इति गिरिधरभाष्ये द्वितीयोऽनुवाकः २

श्रीवेदार्थप्रदीपन तमो हार्दनिवारयन्

पुमार्थाश्चतुरे देया द्विराजपुरुषः परः ३१

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीय शाखाध्येतव्याघ्रपादान्वयवि-  
श्वामित्रपुराधिय श्रीमज्जयकिशोरदेवदम्भीत्मज रौद्रिचणोय नृपति  
गिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये पुरुषमेधप्रकरणे पु-  
रुषसूक्तानुवाकसूर्योपस्थानवर्णनो नामैकविंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

+ अश्विनो द्यावु तस्यो अश्विनो द्यावापृथिव्यो इमे ही देवव गश्रुवात  
निर्देवो नो ।

हरिः शोभ

ॐ नमो यज्ञपुरुषाय

अथ सर्वमेधमन्त्राः स्वयम्भुवत्सदृशाः

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्बहु रूपकम्

स्वानन्दहायकं कृष्णवत्सरूपं परं स्तुमः ३२

अ० १० तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः । तदेव शु-

क्रं तद्वत्स ता आपः स प्रजापतिः ॥१॥

ॐ नमो याज्ञवल्क्याय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके

सर्वमेधिकमन्त्रोक्तिर्द्वात्रिंशोऽध्याय ईर्यते ३२

पुरुषमन्त्रा उक्ताः । अथ सर्वमेधमन्त्रा उच्यन्ते प्रवायुमच्छे-

त्यस्मात्प्राक् ३३, ५५ स्वयम्भुवत्सदृशाः आत्मदेवत्याः सप्तमेऽहनि

आप्तेर्योमसंज्ञिके सर्वहोमे विनियुक्ताः आप्तेर्योमः सप्तमहर्भव-

तीत्युपक्रम्य सर्वं जुहोति सर्वस्याप्ये सर्वस्यावरुद्धे इति श्रुतेः ३३

७१ ६० ॥ द्वे अन्तुष्टुभौ । विज्ञानात्मा परेणात्मना विंशष्टौ ऽग्न्या-

दिष्वेतत्प्रोतत्वेनोपास्योऽभिधीयते । अग्निः तदेव कारणं है (ब्रह्मैव)

आदित्य वोहही है वायुवोही है तैसै ही चन्द्रमा । शुक्र प्रसिद्ध । ब्रह्म

(त्रयीलक्षण) ब्रह्मैव । प्रसिद्धाः जलानि प्रसिद्ध प्रजापति भी वोह ही

ब्रह्म है ॥१॥

सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषार्थं । नैनमूर्ध्वं

न तिर्यञ्चं न मध्ये परिजग्रभत् ॥२॥

सर्वे निमेषाः त्रुटिकाष्टा यटी आदिक कालविशेष अधियुरुष के स-  
काश से उत्पन्न हुए। कैसे पुरुष से कि विशेषेण प्रकाशमान। किंच  
कश्चिदपि इस पुरुष को उपरि भाग में नहीं परिगृह्णाति-गृहण करता।  
न इसे चारों दिशा में न परि-मध्यदेश में भी नहीं गृहण करता अर्थात्  
तु यह प्रत्यक्षादिकों का विषय नहीं है + जग्रभूत-ग्रहेः शतरिजुहो-  
त्यादित्वेन रूपम् ॥२॥

न तस्य प्रतिमाऽअस्ति यस्य नाम महद्यशः। हिर-  
ण्यगर्भ इत्येष मा मा हिंसीदित्येषा यस्मान्न जा-  
त इत्येषः ॥३॥ + न-शः। अ० हि-ष। इ० ॥३॥

द्विपदा गायत्री। तिस पुरुष का प्रतिमा (प्रतिमान-उपमान) निर्देवतु  
नहीं अत एव नाम (प्रसिद्ध) बडा यश जिसका अर्थात् स-  
शा है ॥ हिरण्यगर्भ इत्येषोऽनुवाकश्चतुर्चः हिरण्यगर्भः ० ५.  
एतः ० यस्ये मे ० य आत्मदाः इति २५-१०-१३। मा मा हिंसीज्जनिते  
त्येका एषा १२०-१०२०। यस्मान्न जातः ० इन्द्रश्च सम्राडिति ७३६-१०  
इवोऽनुवाकः। एताः प्रतीकचोदिताः पूर्वं पठितत्वादादिमात्रेणोक्ताः  
ब्रह्मयज्ञे (जपे) च सर्वा अध्येयाः ॥ एवं सर्वत्र ॥३॥

एषो हे देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ ग-  
र्भेऽश्नन्तः। स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ् ज-  
नास्तिष्ठति सर्वतो मुखः ॥४॥

चतस्रस्त्रिष्टुभः। यह प्रसिद्ध + देव सब दिशाओं को व्याप्त हो स्थि-  
त है। हे मनुष्यओं यह प्रसिद्ध प्रथम उत्पन्न है। गर्भ के मध्य में

न स एष जनि-न जन्मा गृहो न हि गृह्यत इति श्रुतिः

न स एष जनि-

वोह ही स्थित है। और वोह ही उत्पन्न है। और वोह ही उत्पत्त्यमा-  
गा है। प्रत्यङ् (प्रति पदार्थ) को अञ्चन करता है। सर्वतः सुखाद्यव-  
यव जिस के (अचिन्त्य शक्ति) है ॥४॥

यस्माज्ज्ञातं न पुरा किंच नैव य आवभूव भुवनानि  
विश्वा । प्रजापतिः प्रजया सर्गराणस्वीणि ज्योती-  
न्धि सचते स षोडशी ॥५॥

जिस से पहिले कुछ भी न हुआ और जो सब भूतजातों को समन्ता-  
द्भावयामास। वोह षोडशावयवलिङ्गः शरीरी प्रजापति प्रजाकरि-  
र्यमाण तीन् ज्योतिर् (सूर्यचन्द्र अग्निरूपी) सेवन करता है ॥५॥

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च हृदा येन स्वस्तभितं येन ना-  
कः । योऽन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय ह-  
विषा विधेम ॥६॥

जिस पुरुष ने द्यौ उद्गूर्ण दृष्टि का देनेवाला किया इतिशेषः। और  
जिसने पृथिवी हृद की (सबप्राणियों का धारण दृष्टि का ग्रहण और  
अन्ननिष्पादन यह भूमि की हृदता है। जिसने आदित्य मण्डल  
को धौभा और जिसने स्वर्ग धौभा। जो अन्तरिक्ष (नभ) में जल  
(दृष्टिरूप) का निर्माता। तिसै छोडि किस देवता के अर्थ हवि देते हैं  
अर्थात् किसी के अर्थ नहीं ॥६॥

यं क्रन्दसीऽवसा तस्तभाने अभ्येक्षेता मनसा रे-  
जमाने । यत्राधि सूर उदितो विभाति कस्मै देवाय  
हविषा विधेम । आपो ह यद्दहतीयश्चिदापः ॥७॥



क्रन्दसी (द्यावापृथिवीएँ) जिस पुरुष को मन कार साधु कृत यह देव  
तीं दुर्द केसी हैं क्रन्दसी कि अवसा हविलक्ष्णा वृद्धिजन अन्न करि  
प्राणिजात को थांभतीं। शोभमान हैं। सूर्यजिन द्यावा पृथिवीओंमें  
उदित हो अधिक प्रकाशता वा शोभता है तिसे छोडि किस देवता के  
अर्थ हवि देते हैं ॥ आपो ह यद्वहतीः २७.२५ यद्विदापः २७.२६ द्वे प्रती-  
कोक्ते जपादावध्येये ॥ ७ ॥

अ० २. वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहा सद्यत्र विश्वं भवत्येकनी-  
डम् । तस्मिन्निदं सं च वि चैति सर्वं स ओतः प्रो-  
तश्च विभूः प्रजासु ॥ ८ ॥

वेनः (विदितवेदान्तरहस्यः पण्डितः) तत् (ब्रह्म) कीदेवता (जानता) है।  
कैसे तत् को कि गुहा (रहःस्थान) में स्थापित दुर्ज्ञेय। स  
स ब्रह्म विषे विश्व (कार्यजात) एकनीड (एक ही है आश्रय जिस ५..  
अर्थात् अविभक्तमविशेषकारणमेव) होता है। तिस ब्रह्म में यह  
भूतजात संहार समय जाता और सर्गकाल में निकलता है। सोपर  
मात्मा प्रजाविषे ओत और प्रोत (ऊर्ध्वतुन्तु में पट जैसे शरीर भावक-  
रि ओत तिर्यक्तु में पट जैसे प्रोत) है। कैसा है कि विभूः (कार्यका-  
रणरूपेण विविध होता है) सब बोह ही है ॥ ८ ॥

अ तद्वैचिदमृतं तु विद्वान्गान्धर्वो धाम विभृतं गुहास-  
त् । त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स  
पितुः पिता सत् ॥ ९ ॥

गंधर्व (वेदवाचाको विचार करने वाला वेदान्तवेत्ता) विद्वान् (पण्डित)

क्षिप्र अमृत (शाश्वत) तत् (ब्रह्म) को प्रहृष्टेन कहें गुहा विषे विद्यमान धाम (स्वरूप) विभूत (सर्गस्थिति प्रलय रूप से विभक्त) किं च इस अमृत के तीन पद (स्वरूप) गुहाविषे निहित हैं (तीन पद सर्गस्थिति प्रलय वा वेद ३ काल वा ब्रह्म अनर्थात्मी विज्ञानात्मा) किं च जो तीन पदों को जानता है वोह पिता (पर ब्रह्म) ही होता है ॥४॥

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवना-  
नि विश्वा । यत्र देवा असृतमानशान्नास्तृतीये धा-  
मेन्द्रधैर्यन्त ॥१०॥

वोह परमात्मा हमारा बन्धुवन्मान्य है उत्पन्न करने वाला और वोह धारण करने वाला । वोह सब भूतजातों और स्थानों को जानता । अग्न्यादिक देवता तीसरे स्थान (स्वर्ग) में स्वेच्छया बंते हैं । कैसे हैं देवता कि अमृत (मोक्षप्रापकज्ञान) को जिस ब्रह्म विषे व्याप्त हुआ । भाव यह है कि ब्रह्मनिष्ठज्ञान को प्राप्त हुआ स्वर्ग में देवता मोदते हैं ॥१०॥

परीत्य भूतानि परीत्य लोकान्परीत्य सर्वाः प्रदिशो  
दिशश्च । उपस्थाय प्रथमजामृतस्यात्मनात्मानम-  
भि संविवेश ॥११॥

इदानीं सर्वभूतेष्वहमस्मि सर्वाणि भूतानि मयीति ज्ञानवतः सर्वमेधयाजिनो मुक्तिरुच्यते । किं च सर्वमेधग्रहोऽपि न ज्ञानं प्रधानम् ब्रह्मज्ञानवतो यजमानस्याग्निहोत्रादयोऽपि यज्ञाः सर्वमेधा एवेत्याह परीत्य भूतानीति कण्डिकाश्रयः ॥ एवं ज्ञानवान् सर्वमेधयाजी आत्मा (जीवरूप) करि ऋत (यज्ञ) क आत्मा (अधिष्ठा-

तार (यः मात्मा) को प्रवेश करता अर्थात् ब्रह्म ही होता है। क्या करिके कि सब भूतों को ब्रह्मत्वेन जानि। सब दिशा और विदिशाओं को तद्रूपे जानि के। प्रथमोत्पन्ना (त्रयीरूपावाचा) को उपस्थित हो (संसेव्य-अर्थात् यज्ञादिकरिके)। अपिहि तस्मात्पुरुषाद्ब्रह्मैव पूर्वमसृज्यते-ति श्रुतेः प्रथमा वाक् वेदरूपा ॥११॥

परि द्यावापृथिवी सद्य इत्वा परि लोकान्परि दिशः  
परि स्वः। ऋतस्य तन्तुं विततं विवृत्य तदपश्यन्तद-  
भवत्तदासीत् ॥१२॥

सर्वमेधयाजी तत् (ब्रह्म) को देखता है ब्रह्म ही होता वास्तव्य में ब्रह्म ही है। भाव यह है कि अज्ञान निवृत्ति देखना और होना है। क्या करिके कि द्यावापृथिवी सद्यः तद्रूपेण जानि कर लोको दिशाओं और आदित्य को तद्रूपेण। गुह्यं वस्तु पुनः-पुनः कथितं चित्तमारोहतीति पुनरुक्तिः॥ ऋत (यज्ञ) के तन्तु (कर्तव्यता) को जैसे प्रसार तैसे समाप्त करि अर्थात् यज्ञ करिके ॥१२॥

सदस्यति मद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्। सुनि मेधा-  
मया सिषिष्वं स्वाहा ॥१३॥

इत उत्तरमृच्छये मेधा याच्यते चतुर्थ्या श्रीर्याच्यते। प्रथमा गायत्री लिङ्गे क्तदेवता। अग्नि द्रव्यदान और मेधा को याचना करता हूँ। कैसे अग्नि को कि यज्ञ गृह के पति अचिन्त्य शक्ति इन्द्र के मित्र धनमेधार्थियों करि कामनीय ॥१३॥

यां मेधां देवगणाः पितरं श्रोषासते। तया मामद्य मे-

धयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥१४॥

अनुष्टुप् । हे अग्ने तिस मेधा से आज मुझे मेधावी (बुद्धियुक्त) करि  
स्वाहा सुहृतमस्तु । तिस किस से कि जिस मेधा को देवताओं के समू-  
ह और पितर पूजते हैं । अर्थात् देवपितृमान्या बुद्धिहमारे कोहो ॥१४॥

मेधा मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः । मेधा-

मिन्द्रश्च वायुश्च मेधा धाता ददातु मे स्वाहा ॥१५॥

लिङ्गोक्त देवतानुष्टुप् । वरुण मेरे अर्थ मेधा देवे अग्नि और प्रजा-  
पति मेरे • देवे इन्द्र और वायु मेधा को देवे धाता मेरे • स्वाहा सु-  
हृतमस्तु ॥१५॥

इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं चोभे श्रियमश्नुताम् । मयि देवा

दधतु श्रियमुत्तमां तस्यै ते स्वाहा ॥१६॥

इति सठं हितायां द्वितीयोऽनुवाकः २

इति श्री शुक्लयजुषि माध्यन्दिन शारवीयायां वाजसने-

य सठं हितायां दीर्घ पाठे द्वाविंशोऽध्यायः ॥३२॥

मन्त्रोक्त देवतानुष्टुप् । श्री कामोऽनयाश्रियं याचते । ब्राह्मणजाति क्ष-  
त्रियजाति ये दोनों मेरी श्री को सेवन करें । देवता मेरे विषे उत्तमा  
श्री को स्थापन करें । असिद्धा तुरु श्री के अर्थ सुहृत हो । श्री मेधेविना  
यज्ञासिद्धेस्ते आर्थ्ये ते ॥१६॥

इति श्रीगिरिधरभाष्ये द्वितीयोऽनुवाकः २

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दनिवारयन्

पुमायांश्चतुरोदयात्स्वयंब्रह्मस्मना तनः ३३

श्रीमच्छुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीयशाखाध्येतव्याप्र पादान्वयदि  
श्वामित्र पुराधिप श्रीभज्जय किशोर देव वर्मात्मज रौक्मिणेय नृ-  
पति गिरिप्रसादेन रचिते श्री वेदार्थ प्रदीपे गिरिधर भाष्ये गिरिप्र-  
सादसर्वस्वे सर्वमेधवर्णनो नाम त्रविंशोऽध्यायः ॥३२॥

हरिः शौम्

ॐ नमो यज्ञ पुरुषाय

पञ्चात्मकं ॥ १ ॥ रूपं च साधनैर्वहु रूपकम्

स्वानन्द दीयकं कृष्णं ब्रह्मरूप परं तु मः ॥ ३३

अ. २.

अस्याजरासो दमामरित्रा अर्चद्भूमासोऽअग्नयेः पा-  
वुकाः ॥ अग्निचयः आत्रासो भुरण्यवो वनर्षदो वा-  
यवो न सोमाः ॥ १ ॥

ॐ नमो याज्ञवल्क्याय

गिरिप्रसाद संज्ञेन त्रयस्त्रिंशः प्रदीपके

सर्वमेधो ब्रह्मयज्ञारम्भान्नोऽध्यायर्क्षिते ॥

सर्वमेधेऽग्निष्टोम संस्थेऽग्निष्टुतं संज्ञे त्रयमेऽहनि अस्याजरास इ-  
त्याद्या महो अग्ने इत्यन्ताः सप्तदश ऋचोऽग्निदेवत्याः पुरोरु-  
चो भवन्ति । पुरोरुक्शाब्देन ऋगूपा गृहाणमन्त्रा उच्यन्ते न य-  
जूरूपाः ऋग्धि पुरोरुगिति श्रुतेः । उक्थ्य महावैश्वदेवपात्नी-  
वतहारिषीजनेषु यजूरूपे गृहाणमन्त्रे सत्यपि तं वाऽअपुरो-  
रुक्कं गृह्णातीति श्रुतेस्तत्र न दोषः अत एवाग्नेयीभिर्ऋच एव

निवर्त्यन्ते नोपयामादीनि ॥ ॥ आद्ये द्वे ऐन्द्रवायवग्रहस्य पुरो-  
रुचौ । वत्सप्रीहृष्टाग्नेयी त्रिष्टुप् आ वायवित्यस्याः ७.७. स्थाने ।  
इस यजमान के अग्न्ययः ऐसे हैं कैसे कि अजरामः (वाद्धेक्पद्मीना)  
दमामरित्रा घरों के रक्षकाः (अरित्राः वैरियों से ब्राण करनेवाले यद्वाद-  
मामरित्रा दमनीय रक्षकों से तारकाः । अर्चनीय धूमोपलक्षिता ज्वा-  
ला जिन्हें की ते अर्चद्भूमाः । पावकाः (सोधकाः) श्वितीचयः (यजमा-  
न का उज्जलत्व बढ़ाते) श्वात्रासः (क्षिप्रफलप्रदाः) भरणकर्तारः । व-  
नर्षदः (वन-काष्ठ में स्थितः) वायु-इव दीप्तारः । सोमा-इव य-  
जमानेष्टदाः ॥ १॥

हरयो धूमकेतवो वातजूता उप द्यवि । यतन्ते वृथ-  
गगनयः ॥ २॥

गायत्री विरूपहृष्टा इन्द्रवायू इत्यस्याः ७.८. स्थाने । अग्नयः  
वृथक् (नानाप्रकारेण) स्वर्ग चलने को यत्न करते हैं । कीदृशाः  
कि हरितवर्णाः । धूमकेतवः (धूमएव ज्ञापक जिन्हें का ते) । वात-  
जूताः (वात करि प्रसार जिन्हें का ते) ॥ आ वायो इन्द्रवायू इमे ७.  
७.८. अग्नयोः स्थाने एते द्वे उक्ते ॥ २॥

यजा नो मित्रावरुणा यजा देवां २॥ ऋतं वृहत् ।  
अग्ने यक्षि स्वं दमम् ॥ ३॥

गायत्री गोतमहृष्टा मित्रावरुणस्य पुरोरुक् अयं वामित्यस्याः ७.९.  
स्थाने । हे अग्ने हमारे मित्रावरुणा यजि । देवताओं को यजि । बडे  
यज्ञ को यजि । अपने गृह को यजि ॥ ३॥

धूमकेतवो वातजूता उप द्यवि । यतन्ते वृथ-  
गगनयः ॥ २॥

युक्त्वा हि देवहूतमाँ २॥ अश्वौ ॥ अग्ने रथीरिव नि  
होता पूर्यः सदः ॥ ४॥

आश्विनग्रहस्य पुरोरुक या वा कशेत्यस्याः स्थाने ७.११ व्या-  
ख्यातेयम् १३.३७ ॥ ४॥

द्वे विरूपे चरतः स्वर्थे अन्यान्या वत्समुपधापये-  
ते । हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाञ्छुक्रो अन्यस्यां  
ददृशे सुवर्चाः ॥ ५॥

शुक्रग्रहपुरोरुक कुत्सदृष्टा त्रिष्टुप् तं प्रत्नथेत्यस्याः ७.१२ स्थाने ।  
द्वे रात्र्यहनि निरन्तरं प्रवर्तते हैं । कीदृशे कि विविधरूपजिन्हों के क-  
षण रात्रि, शुक्ल अहः । स्वर्थे (कल्याणप्रयोजने) । अन्यान्या (अन्या  
और अन्या) वत्स को उपधापयेते (क्षीरपिलाती) अर्थात् अन्या (ए-  
का) रात्रि वत्स (अग्नि) को उपधापयते । अन्या दिवसरूपा वत्स (आ-  
दित्य) को उप० । किं च तदेवाह अन्यस्यां (रात्रिमें) हरिः (हरितवर्ण-  
अग्नि) अन्नवान् होता है दिनमें शुक्ल आदित्य शोभन तेजादीस-  
ता है । यद्वा द्वेद्यावा पृथिव्यो अग्निभूमौ स्वधावान् रविर्दिवि सुवर्चा  
दृश्यते ॥ ५॥

+ रात्रि वत्स (अग्नि) को उपधापयते ।

अयमिह प्रथमो आयि धातुभिर्होता यजिष्ठो अध-  
रेष्ठीऽयः । यमप्रवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं  
विम्बं विशेविशे ॥ ६॥

मन्थिग्रहपुरोरुक अयं वेन इत्यस्याः ७.१६ स्थाने । व्याख्याता  
३.१५ ॥ ६॥

\* अग्नि सूर्य देवर्षमग्नि होवम् ।

त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव  
चासपर्यन् । ओक्षेन्धृतेरस्तृणन्वर्हि रस्मा आदिहोता  
रं न्यसादयन्त ॥ ७ ॥

विश्वामित्रहृष्टा त्रिष्टुप् विश्वदेवं देवतस्याग्रयाणग्रहस्य पुरोरुकृ ये  
देवास इति ७.१६. स्थाने । त्रीणि शतानि त्रीणि सहस्राणि त्रिंशान् ओ-  
र नव देवाः यथा ३३३६ । एते वस्वादिगणं देवा अग्नि को परिचरते  
हैं । यद्वागमोक्ता देवाः नवैवाङ्गास्त्रिवृद्धाः स्युर्देवानां दशकैर्गणैः  
ते ब्रह्मविष्णुरुद्राणां शक्तीनां वर्णभेदत इति ते च ३३३ ३३३ ३३३  
एतावन्तो भवन्ति । कथं परिचरन्ति तदाह ते घृत करि अग्नि को सींच-  
ते अस्मै (इस अग्नि के अर्थ) वर्हिः आच्छादन करते अनन्तरमेव हो-  
ता को वरण करिके होत्रकर्म में विठलाते हैं । घृत सेचनवर्हिः स्तरणहो-  
त्रवरणमेवाग्निपरिचर्येति भावः ॥ ७ ॥

मूर्धानं दिवोऽअरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृतः आ जात-  
मग्निम् । क्विठं सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं  
जनयन्त देवाः ॥ ८ ॥

प्रकृतिवदेव ध्रुवग्रहपुरोरुकृ । व्याख्याता ७.२४. ॥ ८ ॥

अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्वविणस्पुर्विषन्यया । समिद्धः  
शुक्र आहुतः ॥ ९ ॥

गायत्री भरद्वाजहृष्टा ऐन्द्राग्नग्रहपुरोरुकृ इन्द्राग्नी आगतमित्य-  
स्याः ७.३१. स्थाने । अग्नि पापों को अत्यन्त नाश करता है । किससे  
कि विविधा पूजा करि । कैसा अग्नि कि हविर्लक्षणधन को इच्छा



करता। दीप्त। शुद्ध। निमन्त्रित॥४॥

विश्वेभिः सोम्यं मध्वग्न इन्द्रेण वायुना। पिबामि  
त्रस्य धामभिः॥१०॥

गायत्री मेधातिथिदृष्टा वैश्वदेवग्रहपुरोरुक् ओमासश्चर्यणीत्य-  
स्याः ७.३३. स्थाने। हे अग्ने विश्वेदेवाओं इन्द्र और वायु सहित मे-  
म मय मधु को पी। कैसा है तू कि मित्र के नामों करि स्तुत इति  
शेषः +॥१०॥

आ यदिषे नृपतिं तेज आनद शुचिं रेतो निषि-  
क्तं द्यौरभीर्के। अग्निः शर्धमनवद्यं युवानथस्वा-  
द्यं जनयत्सुव्यच्च॥११॥

+ स्वमतेवरुणे जगत्सुव्यच्च मित्रो भवसिद्धयः देवाः त्रिभुवः।

त्रिष्टुप्शक्तिमुतपराशरदृष्टा मरुत्वतीयग्रहपुरोरुक् इन्द्र मरुत्व इत्य-  
स्याः ७.३५. स्थाने। जब कि तेज का हेतुभूत हवि नृपति (यजमान  
के पालक अग्नि) को व्याप्त होता है अर्थात् जब अग्नि में हवि हो-  
मिये है तब अग्नि रेत (जगद्बीजभूतजल) को द्यौ के समीप अन्तरि-  
क्ष में उत्पन्न करता है और मेघरूपेण पुरः वृष्टि द्वारा करि सरता  
है। कैसा तेज कि वृष्टि के अर्थ देवतोद्देश करि अग्नि में हुत। शुचि  
(मन्त्रसंस्कृत) कैसा रेत कि शर्द्ध (बलहेतुभूत) अनवद्य (निर्दोषप्र-  
शस्य) युवतुल्य (परिपक्व) हृद। स्वाध्य (चिन्तनीय) सब वृष्टिके  
चाहते हैं। अर्थात् हवि करि तर्पित अग्नि अष्टमास करि जलको  
निष्यादन करिके वर्षा में वर्षता है। व्यवहितपदो मन्त्रः॥११॥

अग्ने शर्धं महते सोमगाय तव युञ्जान्युत्तमानि

सन्तु। सं जास्यत्यर्धं सुयममाकृणुष्व शत्रूयतामभि-  
तिष्ठा महाधंसि॥१२॥

त्रिष्टुप् अत्रदुहिता विश्ववारादृष्टा द्वितीयमरुत्वतीयपुरोरुक  
मरुत्वन्तं वृषभमित्यस्याः ७. ३६. स्थाने। हे अग्ने तू बल को प्रकट  
करि किस लिये कि बडे सौभाग्य (लोकस्थिति) के अर्थ। तेरे उदय हो-  
ने शुम्भ (हविर्लक्षण अन्न वायु) उत्कृष्ट हों। किं च जास्यत्य (जा-  
यापत्य पत्नीयजमानरूपा) को सुयम (जितेन्द्रिय मन्योन्या बद्धराग)  
करि। किं च शत्रुत्व को इच्छा करते औ तेजवानों को पराभव दे ॥१२॥  
त्वाधं हि मन्द्रतममर्कशोकैर्वृष्टमहे महि नः श्रो-  
ष्यग्ने। इन्द्रं न त्वा शर्वसा देवता वायुं पृणन्ति  
रार्धसा नृतमाः॥१३॥

त्रिष्टुभ्ररवाजदृष्टा माहेन्द्रग्रहपुरोरुक इन्द्रो नृवदित्यस्याः ७.  
३६. स्थाने। हे अग्ने हम तुम्हें वरण करते हैं कैसे तुम्हें कि अतिग-  
म्भीर किन्हीं से कि अर्कशोकैः (अर्कवत् दीप्त मन्त्रों अविश्रुत ब्रह्मच-  
र्य करियथोक्त अधीतों से। क्यों कि हमारे स्तोत्र को तू सुनता है। किं  
च नृतमाः (मनुष्यश्रेष्ठाः) तुरू देवता को हविरूप अन्न करि पूर-  
ण करते हैं। कैसे तुम्हें कि बल करि इन्द्र जैसे और वायु जैसे स्थि-  
त को ॥१३॥

त्वेऽग्ने स्वाहुत त्रियासः सन्तु मय्यः॥ यन्तारो ये  
मयवानो जनानामूर्वान्दयन्त गोनामू॥१४॥

वे बृहत्यो आदित्यग्रहपुरोरुचौ आद्या वसि दृष्टा अन्या प्रस्क-

एवहृष्टा कदाचन स्तरीरसि कदा चन प्रयुच्छसीत्यनयोः ८.२.३.  
स्याने । हे स्वाहुत (सुष्टुहूयते) हे अग्ने जनों के मध्य में जनाः गौश्रो-  
सम्बन्धि दुग्ध दधियुत सहित अन्नविशेष पुरोडाशादिकों को देते हैं ।  
ते पण्डिताः तेरे प्यारे हैं । कैसे हैं ते कि निगृहीतेन्द्रियाः ॥ धनवन्तः ॥ १४ ॥

शुधि शुत्कर्णे वह्निभिर्देवैरग्ने स्यावभिः । आ-  
सीदन्तु बर्हिषि मित्रैः अर्यमा प्रातर्यावाणोऽपध-  
रम् ॥ १५ ॥

† शुत्कर्णे + देवताओं सहित नूयज्ञ को सुनि । कैसे देवताओं कि वह्नि-  
ओं से हवियों को वहाते तिन्हें करि । साथ चलने वालों । किं च मित्र अ-  
र्यमा और प्रातर्यावाणः । प्रातः काल हवि को प्राप्त होते हैं ते प्रातः स-  
वन में जिन्हें की हविः प्राप्त है ॥ १५ ॥

विश्वेषामदितिर्यज्ञियानां विश्वेषामतिथिर्मानुषाणा-  
म् । अग्निर्देवानामव आवृणानः सुमृडीको भवतु  
जातवेदाः ॥ १६ ॥

विष्टु बोतमहृष्टादित्यग्रहदधिअयणे विनियुक्ता यज्ञो देवानामित्य-  
स्याः ८.४.स्याने । अग्नि ऐसा हो कैसा कि सब देवताओं के मध्य में अ-  
दितिः (नहीं है खण्डन जिसका अदीन) कैसे देवताओं कि यज्ञा हैं ।  
तथा सब मनुष्यों के पूज्य देवताओं के हविर्लक्षण अन्न को परिच-  
रण करता । सुमृडीकः (शोभन सुख जिससे) । जातवेदाः ॥ १६ ॥

महोऽग्नेः समिधानस्य शर्मण्यनागा मित्रे वरुणे  
स्वस्तये । श्रेष्ठे स्याम सवितुः सवीमनि तद्देवानामवौ

† शुत्कर्णे + देवताओं सहित नूयज्ञ को सुनि । कैसे देवताओं कि वह्नि-  
ओं से हवियों को वहाते तिन्हें करि । साथ चलने वालों । किं च मित्र अ-  
र्यमा और प्रातर्यावाणः । प्रातः काल हवि को प्राप्त होते हैं ते प्रातः स-  
वन में जिन्हें की हविः प्राप्त है ॥ १५ ॥

अथा वृणीमहे ॥१७॥

लुशोधानाकदृष्टा त्रिष्टुप् सावित्रग्रहपुरोरुक् वाममध्येत्यस्याः ७. स्थाने। देवताओं के तिस हविलक्षणा अन्न को हम संस्करते हैं। क सति कि सूर्य की आज्ञा में +। कैसी आज्ञा कि श्रेष्ठ (अन्यदेवताओं की आज्ञा से सूर्य आज्ञा उत्कृष्ट)। कैसे हम कि अग्नि मित्र वरुण के आश्रय में अपराधरहिता। कैसे अग्नि कि पूज्य दीप्यमान के ॥१७॥ अग्निष्टुत्संज्ञं प्रथममहः समाप्तः ॥ ॥

अ० २. आपश्चित्पिष्यु स्तुर्यो न गावो नक्षन्तृतं जरितारस्त  
इन्द्र। याहि वायुर्न नियुतो नोअच्छा त्वर्हि हि धी-  
भिर्देयसे वि वाजान् ॥१८॥

इन्द्रस्तु दुक्थ्यो द्वितीयमहर्भवति तस्यैन्द्राग्रहा भवन्त्येन्द्रः पुरोरु-  
चः सर्वमेन्द्रमसदिति सर्वमेधे श्रुतिः १३.७.१.४. ततः इन्द्रस्तुत्सं-  
ज्ञे उक्थ्यसस्ये सर्वमेधस्य द्वितीयेऽहनि आपश्चिदित्यादि इमां त इत्यन्ता  
द्वादश ऋचः तं प्रत्नया अयं वेनः महा इन्द्रः कदा चनस्तरीः कदा चन प्रय-  
च्छसीति पञ्च प्रतीकांताः एवं सप्तदशेन्द्र देवत्याः ऐन्द्रवायवादिसा-  
विवान्तानां ग्रहाणां ग्रहणमन्त्राः ॥ ॥ वसिष्ठदृष्टा त्रिष्टुप् ऐन्द्रवाय-  
वस्य पुरोरुक् आ वायो इत्यस्याः ७.७. स्थाने। हे इन्द्रः ऋत्विजतेरे-  
यज्ञ को व्याप्त होते हैं। आपः चित् (निग्राभ्या रूपा जल भी सोम को बदा-  
ती हैं। तत्र दृष्टान्तः स्तुर्यो गावो न (जैसे सोम सवन कराने वाली वेद-  
रूपा वाणी सोम को बदाती है तैसे जल भी। अत एव तू हमारे अभिमु-  
ख प्राप्त हो कि जैसे वायु अपने नियुतों (अश्वों) को रिसंमुख आता है। क्योंकि

मविदुः  
सर्वदेवता  
सर्वदेवता

तू बुद्धिओं वा कर्मों करि अन्नों को विविध देता है अत एव आगमन करि ॥१८॥

गाव उपावतावतं मही यज्ञस्य रसुदा । उभा कर्णे  
हिरण्ययो ॥१९॥

तिस्रो गायत्र्यः आद्या पुरुमीढाजमीढदृष्टा ऐन्द्रवायवस्य द्वितीया  
पुरोरुकू इन्द्रवायू इत्यस्याः ७०८ स्थाने । गाव उच्यन्ते हेगौओ अव-  
त(कूप+चात्वालरूप)के समीप में प्राप्तहोओ (दानार्थम् चात्वाला-  
न्तरेण गवां संचरोऽस्ति)को हेतुरागमने तत्राह मही(महत्यो)द्यावा-  
पृथिव्यो) यज्ञ की रूपदेनेवाली हैं (शोभाकरें इति तुम आओ)किं  
च तुम्हारे देनों कर्णों हिरण्मयों अत एव दानार्थ आओ इत्य-  
र्थः ॥१९॥

+ अत्र इति कूपत्वात् नियं ३२३

यद्य सूर्य उदितेऽनागा मित्रोऽर्घ्यमा । सुवति स-  
विता भगः ॥२०॥

वसिष्ठदृष्टा मैत्रावरुणपुरोरुकू अयं वामित्यस्याः ७०४ स्थाने ।  
आज सूर्य उदिते सति मित्र अर्घ्यमा सविता और भग जो प्रेरता है  
सो कर्म करे इति शेषः । नहीं है अपराध जिसका वेह अपनागा इ-  
ति चतुर्णो विशेषणम् ॥ २०॥

आ सुते सिञ्चत श्रियर्धं रोदस्योरभिश्चियम् । रसा  
दधीत वृषभम् । तं प्रत्नथायं वेनः ॥२१॥

सुनीतिदृष्टाश्विनपुरोरुकू या वामित्यस्याः ७०११ स्थाने । रसा  
(नदी) वृषभ (वर्षितार सोम) को पुष्ट करती है + तिस सोम के

अभिषुत होने में समन्तात् सौ चो चमसों में इति शेषः ऋत्विजः प्रति  
वचनमेतत् । कैसे वृषभ कि पृथिवी के आश्रय को । सर्वतः शोभाजि  
स की तिसै ॥ तं प्रत्नया अयं वेनः द्वे प्रती कोक्ते शुक्रमन्थिनोः प्राह  
ते ७.१२.१६ पुरोरुचौ ॥ २१ ॥

आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषन्त्रियो वसानश्चरति  
स्वरोचिः । महत्तद्वृषाणो असुरस्य नामा विश्वरूपोऽ  
मृतानि तस्थौ ॥ २२ ॥

विश्वामित्रहृष्टाग्रयणपुरोरुक् ये देवास इत्यस्याः ७.१६ स्थाने ।  
इन्द्रस्य वृष्टिकर्मोच्यते । विश्वे देवाः समन्तात्स्थित इन्द्र को परिरक्षत-  
वन्तः । सो इन्द्र सर्वतः चलता है । कैसा है कि त्रियो वसानः (देवताओं  
की दीप्ति आच्छादन करता) स्वरोचिः (अनन्याधीन दीप्ति) । किं च वि-  
श्वरूपः (विश्व को निरूपण करता इन्द्र) जिस कारण जलों को आ-  
स्थितवान् वृषाः (इन्द्र) का बोह प्रसिद्धनाम वासवो वृत्रहा इत्यादि ।  
कैसे वृषा कि असुर (प्राणवान् सावधान प्रज्ञावान्) का ॥ २२ ॥

प्र वो महे मन्दमानायान्धसोऽर्चो विश्वानराय विश्वामु-  
वे । इन्द्रस्य यस्य सुमरुर्धं सहो महि श्रवो नृमां च रो-  
हसी सपर्यतः ॥ २३ ॥

सुर्चाकदृष्टा त्रिष्टुप् ध्रुवग्रहपुरोरुक् मूर्धानमित्यस्याः ७.२४ स्थाने ।  
हे ऋत्विजो तुम विश्वानर (सब यजमान जिस के तिस) के अर्थ पूजा  
को कैसे कि बडे के अर्थ । तुम्हारे हविर्रूप अन्न करि भोगमान के । विश्वभू (स-  
र्वव्यापि वा सब होता है जिस से तिस के) किं च द्यावा पृथिवी जिस द-

जगत्  
+ सोमस्य  
धारत्वात्

इन्द्र की इन पदार्थों से पूजा करते हैं किन्हीं से कि शोभन यज्ञ बल  
बड़ा यश और धन। अर्थात् जिस की द्यावाभूमी मरवादिकों से मान-  
ता करते हैं तिसे पूजो ॥२३॥

बृहन्निदिध्म एवां भूरिं शस्तं पृथुः स्वरुः। येषामिन्द्रे  
युवा सर्वा ॥२४॥

त्रिशोकदृष्टा गायत्री ऐन्द्राग्नपुरोरुक् इन्द्राग्नी इत्यस्याः ७०३१  
स्थाने। युवा (समर्थ) इन्द्र जिन यजमानों का सरवा है इन्हीं का इन्द्र म-  
हानेव होता है। शस्त (शस्त्र) भूरि (बहुत) स्वरुः (खड्ग) पृथुः (विशाल) य-  
ज्ञ बाहुल्यमाशास्यत इत्यर्थः ॥२४॥

इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः। महोऽ  
अभिष्टि रोजसा ॥२५॥

मधुच्छन्दोदृष्टा गायत्री वैश्वदेवपुरोरुक् ओमास इत्यस्याः ७०२३  
स्थाने। हे इन्द्र आगमन करि आके हविर्लक्षण अन्न और सो-  
मांशुओं करि तृप्त हो। कैसा है तू कि तेज करि श्रेष्ठ। अभियष्टव्य ॥२५॥

इन्द्रो वृत्रमहृणो छर्धनीतिः प्र मायिनाममिनाह-  
र्पणीतिः। अहन्व्यर्धं समुशयगवनेष्वविर्धेना अ-  
कृणोद्गाम्याणाम् ॥२६॥

विश्वामित्रदृष्टा त्रिष्टुप् प्रथममरुत्वतीयपुरोरुक् इन्द्र मरुत्व  
इत्यस्याः ७०३५ स्थाने ॥ इन्द्र वृत्र (दैत्य) को युद्ध के अर्थ टकता  
हुआ। मायावी दैत्यों का मारता है। व्यंसमहन् (दुष्ट को मारता  
है) तिसे कहाँ कि वनों में अर्थात् वनस्थों को मारता है। राग्या-

एतन्ना आविः अह्णोत् (यजमान स्तुति करते हैं यह देवताओं में प्रकट करता है) कैसा है इन्द्र कि शर्यनीतिः (चतुरङ्ग बल में नीतिः जिस की) वर्ष नीतिः (नाना रूपधारी) उशधक् (चोरों का दाहक) ॥२६॥

कृतस्त्वमिन्द्र माहिनः सन्नेको यासि सत्यते किं ते इत्या। ममृच्छसे समरणः शुभानैर्वोचस्तन्नो हरिवो यत्ते अस्मे। महो २॥ इन्द्रो य ओजसा कदा च न स्तरी रसि कदा च न प्रयुक्षसि ॥२७॥

अगस्त्यहंष्टा त्रिष्टुप् सशस्त्रमरुत्वतीयपुरोरुक् मरुत्वन्तमित्यस्याः ७.३६. स्थाने। इन्द्र प्रति मरुद्वाक्यम्। हे इन्द्र हे सत्यते (श्रुतिस्मृतिसंवाचाररतों के पते) तू एक (असहाय) होकर कहा जाता है तेरे गमन में क्या प्रयोजन है। कैसा है तू कि माहिनः (पूज्य वा उत्सववान्) किं च भले प्रकार चलते सन् शोभन वचनों से तू प्रहृष्टता है कि कौनसा पन्था यह लोगों से (एकाकित्वात्) हे हरिवः इन्द्र हमसे उस एका की गमन कारण को कहि क्यों कि हम तेरे हैं इस हेतु कहि ॥ तिस्रः प्रती कोक्ताः तत्र महो इन्द्र इत्यस्याः ७.४०. माहेन्द्र ग्रहणे विनियोगः नृवदित्यस्याः ७.३६. स्थाने कदा चनेति ८.२.३ द्वयोः सदित्य ग्रहणे विनियोगः ॥२७॥

आ तत्त इन्द्रायवः यन्ताभि यः ऊर्व गोमन्तं तित्त्सान्। सक्तस्त्वं ये पुरुषुवा महीथं सहस्रधारां बृहतीं दुदुक्षन् ॥२८॥

शक्तिसुतगोरीवितिहंष्टा त्रिष्टुप् आदित्यग्रहस्य दधिअयणे विनियोगः यज्ञो देवानामित्यस्याः ८.४. स्थाने। हे इन्द्र मनुष्य के वाहकर्म पूजत हैं।

अगस्त्यहंष्टा त्रिष्टुप् सशस्त्रमरुत्वतीयपुरोरुक् मरुत्वन्तमित्यस्याः ७.३६. स्थाने। इन्द्र प्रति मरुद्वाक्यम्। हे इन्द्र हे सत्यते (श्रुतिस्मृतिसंवाचाररतों के पते) तू एक (असहाय) होकर कहा जाता है तेरे गमन में क्या प्रयोजन है। कैसा है तू कि माहिनः (पूज्य वा उत्सववान्) किं च भले प्रकार चलते सन् शोभन वचनों से तू प्रहृष्टता है कि कौनसा पन्था यह लोगों से (एकाकित्वात्) हे हरिवः इन्द्र हमसे उस एका की गमन कारण को कहि क्यों कि हम तेरे हैं इस हेतु कहि ॥ तिस्रः प्रती कोक्ताः तत्र महो इन्द्र इत्यस्याः ७.४०. माहेन्द्र ग्रहणे विनियोगः नृवदित्यस्याः ७.३६. स्थाने कदा चनेति ८.२.३ द्वयोः सदित्य ग्रहणे विनियोगः ॥२७॥



किं जे मनुष्यसोमरूप अन्न को सर्वतः हिंसा करने (गुवाने) चाहते हैं। कैसे  
 अन्न कि गोमन्त (निग्राभ्यालक्षणोदक युक्त † को। किं च जे मनुष्य भू-  
 मि को दुहते ते भी तेरा कर्मसुत करते हैं। कैसी भूमि कि सकृत्त्वम् एक-  
 बार ही सवती हिरण्यधान्यादि देती है। पुरुपुत्रा (बहुत पुत्रा †) सहस्रधा-  
 रा (असंख्य धाराएँ हिरण्यादयः जिस की तिस बहुभोगदा वा असंख्य प्रा-  
 णिजात को धारण करती। बड़ी। अर्थात् जे विप्र सोमाभिषव करते और  
 जे क्षत्रिय भूमि को दुहते (पालते-देते हैं) ते इन्द्र का वृत्र वधादि कर्म सुति  
 करते हैं नहीं कोई अन्य दुर्बुद्धि॥२८॥

इमां ते धियं प्रभरे महो महीमस्य स्तोत्रे धिषणा यत्तः  
 आनजे। तमुत्सवे च प्रसवे च सासहिमिन्द्र देवासः  
 शर्वसामदन्ननु॥२९॥

कुत्सदृष्टा जगती सावित्रपुरोरुक् वाममद्येत्यस्याः ८.६. स्थाने। हे इन्द्र  
 इस अपनी धी (बुद्धि-स्तुति वा कर्म) को तेरे अर्थ समर्पण करता हूँ। तुम्हें  
 कैसे कि पूज्य के। कैसी बुद्धि कि बड़ी जिससे इस यजमान की धिषणा  
 (बुद्धि वा वाक्) क्रियमाण स्तोत्र में तुम्हें व्याप्त करती है। किं च देवता ति-  
 स इन्द्र की स्तुति करते हैं। कहाँ स्तुति करते हैं कि उत्सव (अभ्युदय) और  
 प्रसव (गुर्वाद्यनुज्ञा वा पुत्रादिरूप उत्सव) में। कैसे इन्द्र कि बल करि  
 शत्रुओं के अभि भवितार को॥२९॥ इन्द्रस्तुत्संज्ञं द्वितीयमहः समाप्तम्॥

अ० ३ विभ्राड्बृहत्पिबनु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यत्तपतावविदु-  
 तम्। वातेजुतो योऽभि रक्षति त्वना प्रजाः पुपोष पु-  
 रुधा विराजति॥३०॥

अथ तृतीयमहः सूर्यस्तु तथा च श्रुतिः १३.७.१.५ सूर्यस्तु दुक्थ्यस्ते-  
तीयमहर्भवति तस्य सौर्या ग्रहा भवन्ति सौर्यः पुरोरुचः सर्वर्षे सौर्य-  
मसदिति । चतुर्दश पुरोरुचस्तिस्त्रः प्रतीकोक्ताः एवं सप्तदश ऋचः  
सूर्यस्तुत्संज्ञे उक्थ्यसंस्थं सर्वमेधस्य तृतीये स्थाने ॥ ऐन्द्रवायवादिसा-  
विवान्तानां ग्रहाणां पूर्वोक्तकर्मण ग्रहाणामन्त्रा बोध्याः ॥ विभ्राड्मे-  
र्यदृष्टा जगती ऐन्द्रवायवपुरोरुक । विविधराजमान सूर्य सोम्य (सो-  
मरूप हवि) को पिये कैसे सोम्य कि बडे मधुर स्वादु को । जो सूर्य आ-  
त्मा करि प्रजा पालन करता और पुष्टि करता बहुधा शोभे है । कैसा है  
कि यज्ञपति (यजमान) में अखण्डित आयुस्थापन करता । वात करि-  
के प्रेरित (वात करि प्रेरित रवि मण्डल भ्रमता है इति प्रसिद्धः ॥ ३० ॥

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वा-  
य सूर्यम् ॥ ३१ ॥

तिस्रः प्रस्कण्वदृष्टाः आद्या ऐन्द्रवायवस्य द्वितीया पुरोरुक । व्याख्या-  
ता ७.४१. ॥ ३१ ॥

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनां २.५ अनु । त्वं व-  
रुण पश्यसि ॥ ३२ ॥

गायत्री मैत्रावरुणपुरोरुक । सर्वमेधे पक्ष्याकारेणग्निश्चीयते  
तद्रूपमात्मानं सम्पाद्य मुक्तिमाप्नोति तदत्र प्रार्थ्ये ते । हे पावक (शो-  
धक) जिस दर्शन करि तू भुरण्यन्त (भुरण्यु-क्षिप्रयाती पक्षि सदृश आ-  
त्मा करता है तिस) को देखता है । अर्थात् सर्वमेध यज्ञि भुरण्युपक्षि-  
रूप आत्मा को करि के स्वर्ग जाते को जिस दर्शन करि देखता है । निसी द-

पूजन करि हम सुरणों को हे वरुण (सूर्य) देखि ॥३२॥

देव्यावधूर्युः आगतं रथेन सूर्यत्वचा । मधो यज्ञ-  
हं समञ्जाथे । तं प्रत्नथाय वेनश्चित्रं देवानाम्

॥३३॥

आश्विनपुरोरुक् गायत्री । हे देव्यो अधूर्यो अश्विनो तुम रथ करि आ-  
ओ कैसे रथ कि सूर्य की सी कान्ति जिस की । आके गधुर हवि (सोमपुरो-  
डाशदध्यादि) करि यज्ञ को बहु हवि करे ॥ तं प्रत्नथा ७.१२ अयं वेनः  
७.१६ चित्रं देवानाम् ७.४२ तिस्रः प्रतीकोक्ताः आद्ये द्वे शुक्रमन्थि-  
पुरोरुचौ तृतीयाग्रयणस्य ॥३३॥

आ न इडाभिर्विदधे सुशस्ति विश्वानरः सविता दे-  
व एतु । अपि यथा युवानो मत्सथा नो विश्वं जग-  
दभिपित्वे मनीषा ॥३४॥

अगस्त्यदृष्टा त्रिष्टुप् ध्रुवपुरोरुक् । विश्वनरहितकारी सवितादेवः  
हमारे यज्ञ गृह में आवे । कैसे कि इडाभिः सुशस्तिः (जैसे इडा भ-  
क्षण करि शोभना प्रशंसा जिस में अर्थात् सब इडा भक्षण करते हैं  
तैसे आवे यद्वा इडाओं करि शोभन प्रशंसायुक्त यज्ञ गृह में । एवं  
सूर्यमुक्त्वा देवानाह हे जरारहिताः देवताओ तुम निश्चय आग-  
मन काल में तृप्त होओ तैसे हमारे जगत् (पुत्रगवादिकों) को बुद्धि  
करि तृप्त करे । अर्थात् जैसे आप लोगों करि तृप्ति करिये तैसे हमारे  
ही प्रजा तर्पणीय है ॥३४॥

यद्य कच्च वृत्रहन्तुदगा अभि सूर्य । सर्वं तद्विद्म

ते वशे ॥३५॥

श्रुतकक्षसुतकक्षदृष्टा गायत्री ऐन्द्राग्नपुरोरुक् । हे वज्रहन् (एवि-  
ननित अन्धकार के नाशक) हे सूर्य हे इन्द्र (ऐश्वर्य युक्त) आज ज-  
हां कहीं तू उदय होता है सो सब तेरे वश में है इति शेषः । यद्वा जो  
कुछ प्राणिजात उदय होता सो सब तेरे वश में है अर्थात् सबों का  
प्रेरक तू ही है ॥३५॥

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कदमि सूर्य । विश्वमाम्भा-  
सि रोचनम् ॥३५॥

प्रस्फावदृष्टा गायत्री वैश्वदेवपुरोरुक् । हे सूर्य तू तेज का कर्ता  
है और विश्व को प्रकाशता अर्थात् अग्नि विद्युन्नक्षत्र ग्रहताण्डों  
में तेरा ही तेज है । कैसे विश्व कि दीप्यमान को तेरे प्रकाश करि दू-  
ति भावः । कैसा है तू कि तरणिः (अतिक्रमण करता नभोवर्त्म में)  
विश्व का दर्शनीय ॥३६॥

तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततर्ठं सं-  
जमार । यदेदयुक्त हरितः सद्यस्यादा ग्रात्री वासस्त-  
नुते सिमस्मै ॥३७॥

कुत्सदृष्टे द्वे त्रिष्टुभौ मरुत्वतीययोः पुरोरुचौ । सूर्य का वोह दे-  
वतानुभाव और वोह महाभाग्य ऐश्वर्य है वोह क्या कि कर्ताः (ई-  
श्वर कार्यश्रेष्ठ जगद्रूप के) मध्य में विस्तारित अंशुजाल को संह-  
रता है अर्थात् नहीं कोई एतादृश अंशुजाल के प्रसारने वा संह-  
रने को समर्थ है । किं च जब ही हरितवर्णरश्मिओं को अपने में

+ वृत्रो मेघेरिषो ध्यान्ते दानवे वासवो गिराविति कोशत

आरोपण करता सधस्थ (सह तिष्ठे) हैं अंशुजाल जहां तिस व्योममण्डल से अर्थात् सन्ध्या काल में पीतवर्ण अंशुओं को जबकि व्योममण्डल से अपने में योजता है। अनन्तर ही रात्री सर्व वस्तु को तम से आच्छादन करती है ॥३७॥

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्यौरुपस्थे । अनन्तमन्यदुशदस्य पाजः कृष्णमन्यहरितः सम्भरन्ति ॥३८॥

सूर्य द्युलोक के उत्सङ्ग में मित्र और वरुण के तिस रूप को करता है कि जिस रूप से जनों को देवता अर्थात् मित्ररूप करि सुकृतिओं पर अमुगृह और वरुणरूप करि दुःकृतिओं का निगृह करता। इस सूर्य का एकरूप अनन्त (काल और देश करि परिच्छेद्य) रुशत (शुक्ल दीप्यमान विज्ञानयनानन्द ब्रह्मैव) है। अन्यत् (दूसरा) कृष्ण (द्वैत लक्षणरूप) हरित दिशाएँ वा इन्द्रियें धारण करती हैं। इन्द्रियग्राह्य द्वैतरूप एक और दूसरा शुद्ध चैतन्य अद्वैतरूप ये दो रूप सूर्य के सगुण निर्गुण हैं अर्थात् ब्रह्म सूर्य ही है ॥३८॥

ब्रह्महो २॥ असि सूर्य बडादित्य मुहो २॥ असि । मह-  
से सतो महिमा पनस्पते द्वा देव मुहो २॥ असि ॥३९॥

जमदग्निदृष्टे द्वे बृहतीसतो बृहत्यौ । आद्या माहेन्द्रपुरोरुक् । हे सूर्य  
प्रेरे है कर्मों में जगत् को) वद (सत्य) तू महान् (श्रेष्ठ) है। हे आदित्य (आ-  
दान करता है अंशुओं को) सत्य तू श्रेष्ठ है। किंच तुम्हें बड़े निम्न की  
महिमा लोकों करि स्तुति करिये है। हे देव अद्वा (सत्य) तू बड़ा है। पुन

रुक्तिरदरार्थी ॥३४॥

बर्हस्य अवसा महो॥ असि सत्रा देव महो॥ असि  
सि। मन्हा देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदा-  
भ्यम् ॥४०॥

आदित्यग्रहप्रथमग्रहणम्। हे सूर्य सत्य अव (धनवा यथा) करिसे  
महान् है। हे देव सत्य तू महत्व करि देवताओं के मध्य में श्रेष्ठ है। कैसा है तू कि  
असुर्यः (प्राणिहितः) पुरोहितः (अग्र में स्थापित) सब कार्यों में पूज्य  
क्यों कि सब देवताओं की पूजा का सूर्यार्घ्य दानान्तर ही अधिकारसे।  
व्यापक अनुपहिंस्य तेज तू ही है ॥४०॥

आयन्त-इव सूर्य विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत। वसूनि जाते  
जनमानः ओजसा प्रति भागं न दीधिम ॥४१॥

नृमेधदृष्टा बृहती। आदित्यस्य पुनर्ग्रहणम्। सूर्य को आश्रयन्त  
(रश्मीर्गै) ही इन्द्र के सब धनों (दृष्टिधान्यनिष्यत्यादिकों) को विभा-  
ग करि प्राणियों को देती अर्थात् इन्द्र दत्ता दृष्टि को भूमि में विभाग  
करती हैं। किं च हम तिन्द्र ही धनों करि उत्पद्यमान पुत्र में तेज स-  
हित धारण करते हैं। कैसे कि जैसे अपने भाग को पुत्रादिकों में धार-  
ण करें हैं ॥४१॥

आद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरर्हंसः पिपृता निर-  
वद्यात्। तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः मिथुः  
पृथिवीः उत द्यौः ॥४२॥

कुत्सहृष्टा विदुषु दध्नादित्यग्रहत्रयणे विनियोगः। (हे देवाः (रश्मयः)

हमें पापों से छुड़ाओ और दुर्यशों से पृथक् करो। कहा कि आज के दिन सूर्य उदय में हमें शुद्ध करो। किं च मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी और द्यौः हमें पूजें अर्थात् अङ्गीकरें ॥४२॥

आ कृष्णो न रजसा वर्तमानो निदेशयेन्न मतं मर्त्यं च । हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥४३॥

अङ्गिरसो हिरण्यस्तूपदृष्टा त्रिष्टुप् सावित्रपुरोरुक् । सविता देवता हिरण्यमय रथ करि आता है। क्या करने कि कृष्ण रजं रजितलक्षण सहित पुनर्भूमां करने अमृत (देवादिक) और मर्त्य (मनुष्यादिक) को अपने-अपने प्रदेश में स्थापन करने भुवनों को देखने कि कौन भला और कौन बुरा करते यह विचारने ॥४३॥ तृतीयं सूर्यस्तुतुक्थमहः समाप्तम् ॥

अ० ४० प्रवाहजे सुप्रया बर्हिरेषामा विशपतीव वीरिदः इयाते । विशामुक्तोरुषमः पूर्वहंतो वायुः पूषा स्वस्तये नियुत्वान् ॥४४॥

अथ चतुर्थमहः वैश्वदेवस्तुत् तथा च श्रुतिः १३.७.१.६ वैश्वदेववच्चतुर्थमहर्भवति वैश्वदेवा ग्रहा भवन्ति वैश्वदैव्यः पुरोरुच इति । वैश्वदेवस्तुति चतुर्थेऽग्नि एकादश पुरोरुचः षट् प्रतीकोक्ताः इति सप्तदश ऐन्द्रवायवादि सावित्रान्तग्रहाणां पुरोरुचो ग्रहणमन्त्राः ॥ वसिष्ठदृष्टा त्रिष्टुप् ऐन्द्रवायव पुरोरुक् । इन यजमानों के कल्याणार्थ अन्तरिक्ष में वर्तमान वायु

और पूषा आते हैं। केसा वायु कि नियुत्संज्ञा अश्वों वाला। किस समय कि रात्रि और दिवस के प्रथमाह्वान (अग्नि होत्र होम समय) में (दि-  
न के पूर्वाह्न में) रवि आता है रात्रि में वायु वायु सखत्व करि अग्नि जानना-  
रात्रि होम के अग्निदेवत्व से। तत्र दृष्टान्तः जैसे विशां पती (होराज)  
मनुष्यों के गण में आते हैं तद्वत् ते भी तिन्हों के कल्याणार्थ आते हैं।  
इन किन्हों कि जिन्हों की बर्हिणं शोभन प्रस्तरण प्रस्तीर्य हैं ॥४४॥

इन्द्रवायू वहस्पति मित्राग्निं पूषणं भगम् । आदित्या-  
न्मरुतं गणम् ॥४५॥

मैधातिथिदृष्टे द्वे गायत्र्यो आद्या ऐन्द्रवायवस्य पुनर्ग्रहणे द्विती-  
या मैत्रावरुणग्रहणे । इन्द्रवायू वहस्पति मित्र अग्नि पूषा भग-  
आदित्यों मरुत्सम्बन्धिगण इन्हों को आह्वान करता हूँ ॥४५॥

वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः । करतं  
नः सुरार्धसः ॥४६॥

वरुण और मित्र सब रक्षणप्रकारों से प्रकर्षेण रक्षक हों। किंच-  
हमें शोभन धनवान् करें ॥४६॥

अधि न इन्द्रैषां विष्णो सजात्यानाम् । इता मरुतो  
अश्विना । तं प्रत्नथायं वेनो ये देवास आ न इडा-  
भिर्विश्वेभिः सोम्य मध्वोमासश्चर्षणीधृतः ॥४७॥

कणवसुत कुसीदिदृष्टा गायत्र्याश्विनपुरोरुक् । हे इन्द्र हे विश्वो  
हे मरुतः हे अश्विनौ हमारे इन सजातीयों के मध्य तुम आओ ॥  
अत्र प्रतीकोक्ताः तं प्रत्नथा ७.१२ शुक्रग्रहे अथ वेनः ७.१६ मयि-



ग्रहे ये देवासः ७.१६. आग्रयणस्य आन इडाभिः ३३.३४. ध्रुव-  
त्य विश्वेभिः सोम्यं मधु ३३.१०. ऐन्द्राग्नस्य ओमासश्चर्षणी-  
धृतः ७.३३ वैश्वदेवस्य ग्रहणे ॥४७॥

अग्नः इन्द्र वरुण मित्रं देवाः शर्धः प्रयन्त मारुतो व-  
विष्णो । उभा नासत्या रुद्रोऽध ग्नाः पूषा भगः सर-  
स्वती जुषन्त ॥४८॥

प्रतिक्षत्रहृष्टा त्रिष्टुप् मरुत्वतीयपुरोरुक् । हे अग्ने हे इन्द्र हे वरुण  
हे मित्र हे देवताओ हे मरुद्गणः और हे विष्णो तुम बल देवो । एवं प्र-  
त्यक्षमुक्ता परोक्षणमाह दोनो नासत्याः (अश्विनौ) रुद्रः अध (अ-  
थ) ग्नाः (देवपत्यः) पूषा भग और सरस्वती सेवन करें हवियें ॥४८॥

इन्द्राग्नी मित्रावरुणादिति स्वः पृथिवीं द्यां मरुतः  
पर्वतां २॥ अपः । हुवे विष्णु पूषां ब्रह्मणस्पतिं भगं  
नु शर्धंसं सवितारमृतये ॥४९॥

काश्यपोवत्सारहृष्टा जगती सशस्त्र मरुत्वतीयपुरोरुक् । इन्द्राग्नी  
मित्रावरुणो अदिति स्वः (आदित्य) पृथिवीं द्युलोक मरुतः पर्वतां अ-  
पः विष्णु पूषा ब्रह्मणस्पतिं भग शंस (स्तुत्य) सविता । इन्हें क्षिप्र र-  
क्षा के अर्थ बुलाता हूं ॥४९॥

अस्मे रुद्रा मेहना पर्वतासो वृत्रहत्ये भरहूतो सजोषाः ।  
यः शर्धंसते स्तुवते धारि पञ्च इन्द्रज्येष्ठा अस्मां २॥  
अवन्तु देवाः ॥५०॥

पञ्च त्रिष्टुभः आद्या प्रगाथहृष्टा माहेन्द्रपुरोरुक् । जो नर शंसा

(शस्त्रों) को करता है स्त्रीयों को प्रकर्षण जपता है पञ्चः (प्रातर्जि-  
तधनः) सन् देता है हवियें तैसे और हम यजमानों को देवाः र-  
क्षा करें। कैसे देवा कि हम यजमानों के विषे धन के सेतारः। रुद्राः  
(रुलानेवाले शत्रुओं को) पर्वतासः (उत्सववन्तः) दृत्रासुरबध के अ-  
र्थ संग्राम में बुलाये एकमतयः। इन्द्र है ज्येष्ठ जिन्हें काते। ऐसे दे-  
वा रक्षा करें ॥५०॥

अर्वाञ्चोऽपद्या भवता यजत्रा आ वो हार्दि भयमा-  
नो व्ययेयम्। त्राधे नो देवा निजुरो वृकस्य त्राधे  
कर्ता देवपदो यजत्राः ॥५१॥

गार्त्समदो कूर्मदृष्टादित्यस्य प्रथमा पुरोरुक्। हे यजत्राः (यजन्तं  
त्रायते वायष्टव्याः) देवाः आज तुम हमारे अभिमुख होओ। क्योंकि  
में भयमान तुम्हें मन करि बुलाता हूं। किं च हे यजत्राओ हमें वृक  
से रक्षा करो कर्त (कूप) से रक्षा करो। कैसे कूप वृक कि निजुर (हिंस-  
क) से। सीढ़ियों करि उतर ते हैं तिस कूप से ॥५१॥

विश्वेऽद्य मरुतो विश्वेऽजुती विश्वे भवन्त्वग्नयः स-  
मिद्धाः। विश्वे नो देवा अवसागमन्तु विश्वमस्तु द्रवि-  
णं वाजोऽस्मे ॥५२॥

लुशोधानाकदृष्टादित्यपुनर्ग्रहणे। व्याख्याता १८.३१.॥५२॥

विश्वे देवाः शृणुतेमर्हं हवं मे येऽन्नरिक्षे यऽउ-  
प क्षवि ष्ट। येऽग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसधा-  
सिन्वर्दिषि मादयधम् ॥५३॥

सुहोत्रहृष्टादित्यग्रहस्य दध्ना अयणे विनियुक्ता । हे विश्वेदेवाः ओजे  
तुम अन्तरिक्ष में स्थित हो और जे स्वर्ग समीप में और जे बन्हिमु-  
खाः और जे यजत्रा ते सब तुम मेरे आह्वान को सुनो और सुनिके  
बहिःओं पर बैठे तत्त होओ ॥५३॥

देवेभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्योऽमृतत्वर्तं सुवसि भागमु-  
त्तमम् । आदिहामानर्तं सवितर्व्यूर्णुषेऽनूचीना जीवि-  
ता मानुषेभ्यः ॥५४॥

वामदेवहृष्टा जगती सावित्रग्रहस्य पुरोरुक् । हे सवितः निश्चय उ-  
दय समय में यज्ञियार्ह देवताओं के अर्थ तू उत्तम भाग (अग्निहोत्ररू-  
प) को प्रेरता (आज्ञादेता) है । कैसे भाग कि अमृतप्रद को । उदय के अ-  
नन्तर ही रश्मिसमूह को प्रसारता है । फिर मनुष्यों के अर्थ जीवन हेतु  
कर्मों को विस्तारता । कैसे कर्मों अनूचीनों रश्मिसमूहानुगतां । अर्था-  
त् लौकिक वैदिक व्यवहार का प्रवर्तयिता तू है ॥५४॥ इति वैश्व देवस्तुत्र-  
तुर्थमहः समाप्तः ॥ ॥ समाप्तोऽयं सर्वमेधः ॥

अथानारभ्याधीतं मन्त्रगणं आदित्ययाज्ञवल्क्यदृष्टम्

अ० ५ प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा बृहद्रथि विश्ववारर्तं र-  
थप्राम् । द्युतद्यामा नियुतः पत्यमानः कविः कविमि-  
यक्षसि प्रयज्यो ॥५५॥

अथ पञ्चदशपञ्चदशत्रयोदशर्चास्त्रयोऽनुवाकाः पुरोरुचोऽना-  
रभ्याधीताः श्रोत कर्मण्यविनियुक्ताः ब्रह्म यज्ञार्हा आदित्ययाज्ञ-  
वल्क्यदृष्टाः पितृमेधपर्यन्तम् । पञ्चदशत्रयः द्वेच प्रती कोक्तेः

१ सूक्तोद्घातनारभेव श्राणिनां कर्मसु प्रवर्तते

एवं सप्तदशकः पुरोरुगाणः॥ ऋजिष्वदृष्टा त्रिष्टुप् वायुदेवत्या ।  
हे प्रयज्यो (प्रकर्षेण यजति अर्घ्यो) बड़ी बुद्धि करिके आभिमुख्ये-  
न तू वायु को प्रकर्षेण यजने चाहता है। कैसा है तू कि ज्ञानी। कैसे  
वायु कि महाधन। विश्ववार (संव के वरणीय वा सर्वव्यापक। यजमा-  
न के अर्थ देने योग्य धन करि रख को पूरने वाले। दीप्यमान नि-  
यमन वाले। नियुत्संज्ञक अश्वों करि चलते। क्रान्तदर्शन। अर्था-  
त् ईदृश वायु को यजि ॥५५॥

इन्द्रवायू इमे सुता उप प्रयोभिरागतम् । इन्द्रो वा-  
मुशन्तिहि ॥५६॥

व्याख्याता ७.८.॥५६॥

मित्रं हवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् । धियं घृ-  
ताचीं साधन्ता ॥५७॥

हे मधुच्छन्दोदृष्टे गायत्र्यो आद्या लिङ्गोक्तदेवत्या । मित्र ओर व-  
रुण को आह्वान करता हूं। कैसे को कि पूतदक्ष (सदाचार को धन-  
पुत्रादि करि बढाता। रिशादस (दुष्टों को नाश करता। कैसे को कि  
घृताची (घृत होमते हैं जहां तिस) धिय (कर्म) को साधन करते ॥५७॥

दस्त्रा युवाकवः सुता नासत्या वृक्तबर्हिषः । आयातर्ह-  
रुद्रवर्तनी ॥५८॥

आश्विनी । द्वयोरश्विनोरेकस्य दस्त्र इति नामापरस्य नासत्य इ-  
ति । हे दस्त्रो (दर्शनीयो) हे नासत्यो (सत्यवादिनो) तुम आश्वीको  
कि अभियुत हैं सोमा इति शेषः । कैसे सोम कि युवाकवः (तुम्हें च-

हते यह कि हमें पीवें यह इच्छा करते यद्वा अग्नि में मिश्री होते हैं  
वृक्त हैं बहियें जहां ते। कैसे हो तुम कि रुद्रवज्रमनशीलो। तं प्रत्न  
था ७.१२. अयं वेनः ७.१६. एते द्वे प्रतीकोक्ते ॥५८॥

विदध्यदी सरमा रुग्णमद्रेर्महि पाथः पूव्यं ठं सध्य-  
क्कः। अग्रं नयत्सुपद्यक्षराणामच्छा रवं प्रथमा जानती  
गात् ॥५९॥

कुशिकदृष्टा त्रिष्टुप् इन्द्रदेवत्या। पहिली सरमा (त्रयीलक्षणवा-  
णी) यज्ञ को प्रतिपादन करती है। कैसी सरमा कि सुपंदी (शोभनप-  
द सुविद्युन्त हैं जिसमें) अकारादिक अक्षरों के शब्द को ज्ञापन  
करती। जो कि तिस सरमा को अध्वर्यु जानें तो पाथः (सोमलक्षण  
अन्न को) क्या करें क्यों कि वेदों के अभिज्ञ का सोमकाण्डन की अ-  
धिकार नहीं। कैसे पाथ कि सोमाभिषव गावों करि अभिषुत। महत्  
उपांश्वन्तर्यामैन्द्रवायव पात्रों में पूर्व गृहीत। सदैव हवनार्थ चलते।  
यजमान को मुख्यत्व प्राप्त करने वाले को (यज्ञ करि यजमान मु-  
ख्य होता है) ॥ एवमधियज्ञं मन्त्रो व्याख्यातः। बहुचानां तु संवा-  
दसूक्तमिदम् ऋक्संम० ३.३.३१. अ० ३.२६. तत्र पणिभिरसुरैर्दे-  
व गोधने स्पृहते इन्द्रेण देवशुनी तद्धीन्यै प्रेरिता तदभिप्रायेण व्या-  
ख्यायते। सरमा (देवशुनी) इन्द्र करि गवान्वेषण के अर्थ प्रहिता-  
सती जब कि गिरि के द्वार को प्राप्त हुई तब इन्द्र ने हवि (अन्न) को  
क्या किया कि तिस के अर्थ दिया। फिर शोभनपादयुक्ता बौह सर-  
मा अनपद्रुत गौओं के प्राक्त को प्राप्त हुई। प्रथम गौओं के रम्माने

को जानकर सामनें गई। कैसा अन्न कि बड़ा। पूर्व (पूर्व-प्रेषणको)  
त में तेरी प्रजा अन्नादिनी करूंगा यह प्रतिज्ञात। सध्यक (इतरो)  
सहित भोज्य ॥५८॥

नहि साशमविदन्नन्यमस्माद्वैश्वानरात्पुनरातारम-  
र्गः। एमैनमवृधन्नमृता अमर्त्य वैश्वानरं क्षेत्रजि-  
त्याय देवाः ॥६०॥

विश्वामित्रदृष्टा त्रिष्टुब्वैश्वानरी। देवाः वैश्वानर (अग्नि) से अ-  
न्य स्पश (दूत) और पुनरातार (सवकार्यो में पुनः सर) को नहीं प्राप्त हु-  
ए। आ ईमू (अथ) अमृता (देवा) इस वैश्वानर को बढ़ाते। कैसे कि  
अग्नि अमरणधर्मो को यजमान की क्षेत्र प्राप्ति के अर्थ ॥६०॥

उग्रा विघ्निना मुध इन्द्राग्नी हवामहे। ता नो मृ-  
डात ईदृशौ ॥६१॥

भरद्वाजदृष्टा ऐन्द्राग्नी गायत्री। हम इन्द्राग्नी को आह्वान करते  
हैं कैसे इन्द्राग्नी कि उद्गृह्णन्ते, हिंसकों को नाश करते। वे इ-  
न्द्राग्नी हमें ईदृश भयानक संग्राम वा कर्म में सुख देवें ॥६१॥

उपास्मे गायता नरः पवमानायेन्दवे। अभि देवाँः  
इयक्षते ॥६२॥

देवलदृष्टा सितदृष्टा वा सोम देवत्या गायत्री। हेनरः (ऋत्वि-  
जः) हम सोमके अर्थ उपगान (उद्गातृशास्त्र को अनुसरण करिबो-  
ला-स्तोत्रों) को करो। कैसे सोम कि पवमान (दृष्टाय वित्र करि द्रोण कलश  
को चलते। संमुख देवताओं के यजने को दृष्टा करत के अ-

र्थ॥६२॥

ये त्वाहिहत्ये मधवन्नवर्धन्ये शाम्बरे हरिवो ये गवि  
ष्टो । ये त्वा नूनमनुमदन्ति विषाः पिबेन्द्र सोमर्धं  
सगणो मरुद्विः ॥६३॥

विश्वामित्रहृष्टाद्या द्वे त्रिष्टुभौ इन्द्रदेवत्यास्तिस्रः । हे मधवनू जे  
मरुतो गण देवाः वृत्रहन्नन रूप कर्म में तुम्हें जहि वीरयखेत्यादि ब-  
चनों से बढाते हुए । हे हरिवः (हरिनामकाश्वयुक्त) शाम्बर सम्बन्धि  
युद्ध में जे तुम्हें बढाते हुए । और जे मरुतः पणि असुर करि हरी हु-  
ई गौ के इष्ट (प्रत्याहरण) युद्ध में तुम्हें बढाते हुए । और जे विषाः (म-  
धाविनः मरुतः) निश्चय तुम्हें उत्कर्ष देते वा वृत्त करते हैं । हे इन्द्र ति-  
न मरुतों करि गण सहित हो सोम को पान करि (आतृप्तेः मरुत्व  
नीयादि ग्रह को पी ॥६३॥

जनिष्ठा उग्रः सहसे तुराय मन्द्र औजिष्ठो बहुलाभि-  
मानः । अवर्धन्निन्द्र मरुतश्चिदत्र माता यद्वीरं दधनद्ध-  
निष्ठा ॥६४॥

गोरीवितिहृष्टा । हे इन्द्र तू बल के अर्थ उत्पन्न हुआ है । कैसे बलकि  
वेगवान् । कैसा है तू कि उत्कृष्ट । स्तुत्य । अत्यन्त औजस्वी । बलाभि-  
मानः (सब जगत् मेरी विभूति यह भूयिष्ठाभिमानः । यहां वृत्रवध  
में ईहृष्ट इन्द्र को मरुतः भी बढाते हुए स्तुति सहायों करि इति शेषः ॥  
और इन्द्र से भाग्य गर्भकालीन को यह कहिते हैं कि अदिति माता  
धनिष्ठान्या वीर इन्द्र को गर्भ में धारण करती हुई ॥६४॥

आ तू न इन्द्र वृत्रहन्स्माकमर्धमागहि । महान्मही-  
भिरूतिभिः ॥६५॥

वामदेवदृष्टा गायत्री । हे वृत्रहन् (आवरक पापों के नाशक) हे इन्द्र तू  
हमारे प्रति क्षिप्र आ ओर आके हमारे देवयजन देश को प्राप्त हो ।  
कैसा है तू कि बड़ी रक्षाओं करि महान् (जो दूसरों को रक्षा करता  
है) वोह महान् कहलाता है ॥६५॥

त्वमिन्द्र प्रवृत्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः । अशस्तिहा  
जनिता विश्वतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥६६॥

तृमेधदृष्टे हे ऐन्द्र्यो यय्यावृहतीसतो वृहत्यो । प्रहृष्टा है हिंसाजि-  
न्हों की जहां वा शत्रु वा संग्राम तिन प्रवृत्तिर्तिओं में है इन्द्र तू सब श-  
त्रुसेनाओं को अभिभवता है । किंच यतः सब रिपूओं को मारता है ततः  
शत्रुओं को मारि । कैसा है तू कि अशस्तिहा (शंसारहितो) दुष्टों का  
हन्ता । जनिता (स्वपक्ष प्रशंसोत्पादकः) ॥६६॥

अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मात-  
रा । विश्वास्ते स्पृधः अथयन्त मन्यवे वृत्रं यद्विन्द्र  
तूर्वसि ॥६७॥

हे इन्द्र क्षोणी (द्यावापृथिवीस्थालोका) तेरे बल को अनुगमन करते (ब-  
हुत मानते हैं) । कैसे बल कि शत्रुओं के हिंसक को । अनुगमने दृष्टा-  
न्तः जैसे मातापिता बालक को अनुगमन करते हैं यस्य बलाद्  
द्यावापृथिव्यावप्यविभीतामिति निरु० १०१० यास्कः । तेदेव प्र-  
पञ्चयति सब शत्रुसेनाएँ तेरे क्रोध से टिना हंती हैं अर्थात् तेरे



क्रोधदर्शन से उद्विग्न हैं युक्तमेतत् क्यों कि युद्ध में इन्द्र तू देवासु  
में करि अबध्य वृत्र को मारता हुआ ॥६७॥

यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृडय-  
न्तः॥ आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादृढं होश्चिद्या वैरि-  
बोवित्तरासत् ॥६८॥

कुत्सहृष्टा त्रिष्टुप् व्याख्याता ८४॥६८॥

अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्टुढं शिवेभिरद्य परिपाहि-  
नो गयम् । हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षामाकि-  
नोऽअघशर्ढस ईशत ॥६९॥

भरद्वाज हृष्टा जगती सवितृदेवत्या । हे सवितः (सब के उत्पन्न करने  
वाले) पालनों करि हमारे गय (घरवाधन) को तू आज सर्वतः पालि। कैसे  
पालनों कि अनुपहंसितों । शान्तों । कैसा है तू कि हिरण्यजिह्व (हिरण्य-  
वत् अचलाजिह्वा जिसकी सत्यवाक् वा हित रमणीया ज्वाला जिस  
की ॥ किं च नवन्तर सुखके अर्थ हमें रक्षा करि । किं च कोई अघशं-  
स (शत्रु) हमारे ऊपर समर्थ न हो ॥६९॥ पञ्चमः पुरोरुगगणः समातः

अ० ६ प्र वीरया शुचयो दद्विरे वामध्वर्युभिर्मधुमन्तः सुता-  
सः । बहे वायो निपुतो यात्यच्छा पिवा सुतस्यान्धसो म-  
हाय ॥७०॥

पञ्चदश ऋचः द्वे प्रतीकोक्ते एवं सप्तदशकः पुरोरुचां समूहः । व-  
सिष्टहृष्टा त्रिष्टुप् वायुदेवत्या ॥ हे पत्नीयजमानौ तुम्हारे सोमाः चू-  
र्णाहुए । कैसे सोमाः कि प्रवीरया (ज्ञानोद्भवा ऋत्विज जिन्हों के)

हिरण्यकस्मादित्यादि हितरमणीयं भवतीति  
सि० २१३ यास्किकः

निर्मलाः। अधरनेताओं ऋत्विग्विशेषों करि सुता। मधु (निग्रा-  
म्यारूपजल) वन्तः। एवं पूर्वार्धे पत्नी यजमानो सम्बोध्य वायुमाह  
हे वायो (सर्वत्र चलनेवाले) नियुतसंज्ञाओं को तू देवयजन को  
प्राप्त करि के सोमाभिमुख वा सोम प्राप्ति को आ। और आकर मद  
(तृप्ति वा मत्तता) के अर्थ अभिप्रेत सोम के अंश को पी ॥७०॥

गाव उपावतावतं मही यज्ञस्य रप्सुदा । उभा कर्णे  
हिरण्ययो ॥७१॥

व्याख्याता ३३-१६॥७१॥

काव्ययो राजानेषु कृत्वा दक्षस्य दुरोणे । रिशादसा  
सुधस्थः आ ॥७२॥

दक्षदृष्टा गायत्री मैत्रावरुणी । हे रिशादसौ (शत्रूपक्षयितारे मित्रा-  
वरुणे) यजमान के सुधस्थ (देवमनुष्यों के सह सोमपानस्थान) में तु-  
म आओ। कैसे यजमान कि काव्ययोः (तुमक्रान्तदर्शनों ज्ञानसमुच्च-  
यकार्यों) के हित समन्तात् जन्म में सोमपानार्थ आविर्भूत देव यजन  
भूमि और यज्ञगृह में यज्ञकर्म करि दक्ष (उत्साहवान् यजमान के य-  
ज्ञ को बढ़ावो इत्यर्थः) ॥७२॥

दैव्यावधूर्युः आगतुं रथेन सूर्यत्वचा । मध्वा यज्ञं  
समञ्जायेत प्रत्नयायं वेनः ॥७३॥

व्याख्याता ३३-३३ । तं प्रत्नया ७-१२ । अयं वेनः ७-१६ । इति द्वे प्र-  
तीकोक्ते ॥७३॥

तिरश्चीनो विततो रश्मिरयामधः खिदासी ३ रुपि-

स्विदासी३त्। रेतोधा आसन्महिमान आसन्त्स्वधा  
अवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ॥७४॥

परमेशी प्रजापतिहृष्टा त्रिष्टुप् भाववृत्तदेवत्या भावेषु पदार्थेषु वृ-  
त्तः स्थितो भाववृत्तः परमात्मा सोम्या देवता। आग्रयणग्रहे विनि-  
योगः क्रमपाठाल्लभ्यते ततोऽधियज्ञं तावद्धारय्यते। आधवनी-  
यादुन्नेता निगूभ्यास्वासिञ्चति ताः पवित्रे यजमानस्ततो ग्रहग्र-  
हणमा ध्रुवादिति का० ६०५१७ कात्यायनेनोक्तम् तदभिप्रायेणो-  
च्यते। इन् प्रयमान सोमों की रश्मिँ ऋजीषादिकल्कनियाम-  
क दशापवित्रलक्षणः तिर्यङ् एव विस्तारितहं उद्गाता ओं करि-  
इति शेषः। तिस दशापवित्र के नीचे हुआ और ऊपर हुआ। किं-  
च तहां एके पदार्थी ग्रहचमसाधव नीयद्रोणकलशादयः रेत (जग-  
दुत्पत्तिबीजसोम) की धारण करते हैं तेरे तोधा (सोमाधार भूता)  
हैं + तथा परे पदार्थीः सोमरसरूपा तहां आधेय होके महिमान (उ-  
त्क्राष्टा) हैं। आधाराधेयभाव करि यह सब यज्ञात्मा ही स्थित है इ-  
ति भावः। किंच स्वधा (अन्न तद्रूप) अवस्तात् (होम से पहिले नी-  
चे) रहा। प्रयतिः (प्रयत्नवान् होमानन्तर लब्धफलकः सन्) परस्ता-  
त् (उत्क्राष्ट) हुआ ॥ ॥ अथाधिदैवतं व्याख्या। इन् प्रसिद्ध सूर्य-  
रश्मिओं के एक सुषुम्णारव्योरश्मि तिरश्चीन। विस्तृतः सन् कि-  
म् द्युलोक से नीचे स्वित् हुई और ऊपर स्वित् हुई (स्विदिति वि-  
तर्के)। किंच वोह रश्मि रेत (विश्वबीज उदक) की धारण करने हा-  
जी हुई ॥ और-और रश्मिँ महात्म्याध्यायिका हैं (विश्वप्रकाश-

सोमस्य  
+ यज्ञादे प्रजाः प्रजायन्त इति श्रुतेर्जा-

अथर्वविरिति स्मृतेः भगवद्गी० अ० ४० श्लो० २४०

रश्मिर्विष्टवनिर्नाम येनेमाः सर्वाः प्रजा विभर्तीति श्रुतेः॥

त्वेन। किं च स्वधा (अन्ननिष्पादकः) वोहही रश्मि अवरः (भूम्यभि-  
 मुखः) प्रयतिः (अपत्न से ऊर्ध्वमुखः सन्) परस्तात् (परः उत्कृष्टः दर्श-  
 नमात्र करि देवताओं की नृप्ति देनेवाली है। तथोक्तं छान्दोग्यश्रुतौ  
 छान्दोग्योपनिषत् ५.१-६) असौ वाऽऽदित्यो देवमधित्युपक्रम्य  
 न वै देवा अश्नन्ति न पिवन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा नृप्यन्तीति ॥  
 अथाध्यात्मपक्षे व्याख्या। नासदासीदिति सप्तर्चेऽध्यात्मप्रतिपा-  
 दके सूक्ते अष्ट०८०१.१७ माण्ड०१०.११.१० बहुत्रा इमामृतं पठन्ति  
 तत्र नासदासीदिति निरस्तसमस्तप्रपञ्चां प्रलयावस्थामनूद्य विश्व-  
 बीजमविद्योक्ता। कामस्तदग्रे समवर्ततेति पादेन च काम उक्तः। म-  
 नसो रेतः प्रथमं यदासीदिति पादेन पुण्यपुण्यात्मकं कर्मोक्तम्। ए-  
 वमविद्याकामकर्माणि सृष्टिहेतून्मुक्तातेषां स्वकार्यं जनने शेष्य-  
 माह तिरश्चीन इति। इन अविद्याकामकर्मां का रश्मि जैसै कार्य-  
 वर्ग वियदादि विस्तृतः सन् तिर्यक् अवस्थित (मध्यमस्थित) हुआ  
 और नीचे और ऊपर अर्थात् सूर्य रश्मिवत् युगपत्सर्व व्यापी हुआ।  
 तेदव विभज्यते रेतोधा इति। सृष्ट कार्य वर्ग में कोईक रेतोधा (बी-  
 जभूत कर्म के कर्तार और भोक्तार) हुए दूसरे महिमानः (महान्त-  
 विपुला वियदादयः भोग्या) हुए। एवं माया में ईश्वर सब जगत्  
 को सृजि और आप प्रवेश करि भोक्तृभोग्यरूपेण विभाग कर-  
 ता हुआ। तिन भोक्तृभोग्यों के मध्य में स्वधा (अन्न) भोग्यप्रपञ्च  
 अयस्तात् (निकृष्ट) हुआ प्रयतिः (भोक्ता) परस्तात् (उत्कृष्टः) अ-  
 र्थात् भोक्तृप्रपञ्चाधीन भोग्यप्रपञ्च किया ॥ ७४ ॥

आ रोदसीः अपृणदा स्वर्महज्जातं यदेनमपसोऽअ-  
धोरयन् । सोऽअध्वराय परिणीयते कविरत्यो न वा-  
जसातये चेनोहितः ॥७५॥

तमेव वैश्वानराख्यं भोक्तारं परमात्मानं स्तोति । विश्वामित्रदृष्टा  
जगती भाववृत्तदेवत्या (वैश्वानरदेवत्या) । जब कि अरणी से उत्पन्न मात्र श-  
स वैश्वानर को कर्मवन्त यजमानाः कर्म में स्थापन करते हुए तब वोह  
द्यावाभूमी को सर्वतः पूरताहुआ । न केवल द्यावापृथिवी किंतु मह-  
त् (प्रभूत) स्वः (अन्तरिक्ष) को सूर्यात्मा करि पूरताहुआ । अर्थात् त्रै-  
लोक्य को जाठरात्मा करि पूरित किया । गार्हपत्यादीनां लोकत्वं श्रु-  
त्योक्तम् । अयं वै लोको गार्हपत्यो द्यौराहवनीय इति । उक्तार्थमेव वि-  
वृणोति स इति वोह अग्नि याग के अर्थ सर्वतः अतिप्राणीत (आग्नी-  
ध्रीयादि धिषायादिकों में प्रकर्षेण प्राप्त किया है) । नयने दृष्टान्तः अ-  
त्योन वाजसातये (जैसे अश्व अन्नलाभ के अर्थ सर्वतः प्राप्त करिये है) ।  
जैसे राजा अश्ववान् भोगजात को प्राप्त होता तद्वत् विप्र अग्नि को सेवमा-  
न ब्रह्मलोकान् भोगों को इति भावः । कैसा अग्नि कि सर्वज्ञ । अन्न के  
अर्थ हित अर्थात् सर्वभोगसम्पादकः ॥७५॥

उक्थेभिर्वृत्रहन्तमा या मन्दाना चिदा गिरा । आङ्ग-  
धैराविवसतः ॥७६॥

वसिष्ठदृष्टा भाववृत्तदेवत्या (इन्द्राग्निदेवत्या) गायत्री । जे इन्द्रा-  
ग्नी आङ्गधैराविवसतः (आद्योयो) चित् (लौकिक वाक्स्तोमों से भी) आते हैं ।  
वे उक्थे गिरा (स्तोत्रात्मिका सुति) करि परिचरण करिये हैं य-

जमानों करि इति शेषः। कैसे हैं वे कि वृत्र (आवरकपापो) के अति श-  
येन हन्ता। स्वभाव से मोदमानौ ॥७६॥

उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये। सुमृडी-  
का भवन्तु नः ॥७७॥

सुहोवृष्टा वैश्वदेवी गायत्री। जे मरणहीन प्रजापति के पुत्र  
(विश्वदेवा) हैं ते हमारी गिरा समीप आकर सुनें और सुनि के  
हमारे शोभन सुख करने हारे हों ॥७७॥

ब्रह्माणि मे मतयः शर्तं सुतासुः शुष्म इपतिं प्रभृतो  
मेऽद्विः। आशासते प्रतिह्यन्त्युक्थेमा हरी वहत-  
स्ता नोऽपछ ॥७८॥

तिस्रस्त्रिष्टुभः द्वे इन्द्रमरुत्संवादे इन्द्रमरुद्देवत्ये आद्येऽगस्त्यह-  
ष्टे। इन्द्रो मरुतः सहचरणाह हे मरुतः ब्रह्माणि (मन्त्रवाक्यात्म-  
क स्तुति वचन वा आज्यादि हवियें) मेरा स्वभूत हैं चोदनावाक्ये  
अग्न्यादि देवान्तरसम्बन्धेन प्रतीयमानान्यपि सर्वदेवता प्राणा-  
त्मनः मुरु इन्द्र के ही ते हैं इति भाव। मननयुक्ता स्तुतियें भी मेरी  
सुरवोत्पादिका हैं। तथा अभिषुतासोमा मेरे अर्थ ही हैं इस हेतु  
यज्ञ में चलना चाहिये इति भावः। किंच मुरु करि प्रकर्षण कि-  
या अद्वि (वज्र) जाते ही लक्ष्य (बेमे) प्रति नहीं प्रतिहत होता। कैसा  
वज्र कि शत्रुओं को सुरवाता अतएव चलने में राक्षसादिकों का  
उपद्रव नहीं है। केवल हवि आदिक ही मेरे न जानना। अपि तु  
यजमान प्रार्थना करते हैं जिन उक्थ शास्त्रों से वोह स्तोत्रशस्त्र भी

मुंमे चाहते हैं। किंच हमारे ये हरी घोड़े यज्ञाभिमुख मुंमे प्रा-  
प्र करते हैं अतएव हमें शीघ्र चलना योग्य है इतिभावः। यद्वा-  
र्थान्तरम्। ब्रह्माणि मतयः सुताः सोमाः प्रहृतः अद्रिः (सोमाभि-  
षवगावा) शुष्मः (सुरवरूपः) एतत्सर्वं मम शं (सुरवं) अर्पयति (उ-  
द्गमयति) समानमन्यत् ॥७८॥

अनुत्तमा ते मधवन्नकिर्तु न त्वावौ ॥ अस्ति देवता  
विद्वानः। न जायमानो न शते न जातो यानि करि-  
ष्या कृणुहि प्रवृद्ध ॥७९॥

एवमिन्द्रेणोक्ता मरुतः प्रत्याहुः। आ इति स्मरणे (हमजानते हैं  
कि) हे मधवन् (धनवन् इन्द्र) तेरा किसी करि नहीं नाशित महाभा-  
ग्य इति शेषः। तु (निश्चय) नहीं कोई भी तुरू से महाभाग्यनाश  
इति शेषः। नहीं केवल तेरा ऐश्वर्यमात्र किंतु सर्वज्ञत्वमपीत्याह  
तेरे सदृश विद्वान् देवता नहीं है। किंच हे प्रवृद्ध (पुराणपुरुष) जि-  
न कर्मों वृत्र वधादिकों को तू करता है तिन कर्मों को वर्तमान  
और भूत देवमनुष्यों में नहीं करता है। और न करेगा उत्पत्त्य-  
मान इति शेषः। अर्थात् तीनों काल में तेरे सदृश नहीं है इस  
हेतु तू यज्ञेश है ॥७९॥

तदिदं भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञः उग्रस्त्वेष नृमाः  
सद्यो जज्ञानो निरिणति शत्रून्नु यं विश्वे मद-  
न्त्यूमाः ॥८०॥

आथर्वणो बृहद्विबृहद्वा माहेन्द्री त्रिष्टुप्। भुवनों (भूतजातों) में

बोह ही ज्येष्ठ (श्रेष्ठ) होनेहार सर्वोत्कृष्ट ब्रह्म ही या कि जिस ज्येष्ठ से उत्कृष्ट इन्द्र हुआ। कैसा कि त्वेषन्मृगाः (तेजोधनः) कार्ये दृष्ट्वा कारण महत्त्वं कल्पते। किं च जो इन्द्र जायमान एव तत्क्षण शत्रुओं को मारता है। किं च सब देवता जिस इन्द्र को अनुत्पन्न करते हैं। कैसे सब देवता कि रक्षक हैं ॥८०॥

इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम। पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥८१॥

मेधातिथिदृष्टे आदित्यदेवत्ये हे बृहत्यो। हे पुरूवसो (बहुधनादित्य जे मेरी ये गिरः (शस्त्ररूपा वाचाएँ) तुम्हें बढावें। किं च विद्वंसः (तेरे स्वरूपाभिज्ञा उद्गातारः) स्तोमों (स्तोत्रों) वहिष्णवमानादि) करि तुम्हें स्तुति करते हुए। कैसे विद्वंसः कि पावकवर्णाः (अग्नि तुल्यतेजसः ब्रह्मवर्चसवन्तः) अत एव शुचयः (शुद्धागमाः) अर्थात् स्तोत्रशस्त्ररूपा गिरः तुम्हें स्तुति करती हैं ॥८१॥

यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेषधिपा अरिः। तिरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत्सोऽप्रज्यते रयिः ॥८२॥

हे आदित्य यह सर्वोऽपि आर्यः (वर्णाश्रमविहितकर्मनुष्ठाता) होकर दासवत् सर्वद्वारक्षणीयः शेषधिपाः (निधिरक्षक कृपाण) तेरा शत्रु। किं च एवंविध कृपाण अर्य (धनस्वामी वा वैश्य) विशेष अन्तर्भूत (भूमिगर्तादिक में निक्षिप्तोऽपि) तिस का धन निचयः तेरे अर्थ ही व्यक्त होता है अर्थात् कृपाण का धन तेरे अर्थ उपयुक्त



हैं पक्षहरणादि करि ननु कृपण भोग के अर्थ होता है। कैस अर्थ  
 वि. रुशमः (धनापहर्ता) आतिथ्यादितिरस्कार करि आत्माही के  
 हिमक) विषे यवीरवान् (आयुधवान् इन्द्र है। धनि करि अतिय  
 त्व से गुप्तमपि धन को छीनि कर धर्मिष्ठ के अर्थ देता है इति  
 भावः ॥८२॥

अयं सहस्रमृषिभिः सहस्रतः समुद्र- इव प-  
 प्रथे। सत्यः सोऽस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु  
 विप्रराज्ये ॥८३॥

मेधातिथिदृष्टादित्यदेवत्या सतोवृहती। यह आदित्य रूप इन्द्र उद-  
 धिवत् प्रथित (व्यापक) हुआ। कैसा यह कि सहस्र संख्या का ऋषि-  
 यों (अतीन्द्रियार्थदर्शिओं) करि बल से युक्त किया। किं च आदि-  
 त्य की वोह महिमा सत्य (अवितथ) और बल सत्य है। यज्ञों विषे  
 विप्रों के राज्य (स्तोत्रशास्त्रसंघ) में स्तुति करता हूं तिस महिमान-  
 को इति शेषः। अर्थात् स्तोत्रशास्त्रों के संघ में पठन करि सो यह  
 स्तुति करिये है ॥८३॥

अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्टुर्दं शिवेभिरद्य परिपा-  
 हि नो गयम्। हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षामा-  
 किर्तोऽघशठैः इषात ॥८४॥

व्याख्याता ३३. ६६. ॥८४॥ षष्ठः पुरोरुग्गणः समाप्तः ॥

अ० ७. आ नो यज्ञं दिविस्पृशं वायो याहि सुमन्मभिः।  
 अन्तः पवित्रः उपरि श्रीणानोऽयं शुक्रोऽयं

मि ते ॥ ८५ ॥

इतोऽध्याय समाप्यन्ते त्रयोदश ऋचः प्रतीकोक्ताश्च तस्यश्चेति ऐन्द्र-  
वायवादि सवित्रान्तानां ग्रहाणां ग्रहणमन्त्राः पूर्ववत् ॥ जमदग्निदृष्टा  
वायुदेवत्या । वृहत्स आद्या नव द्वादशी च दशम्येकादशी त्रयोदश्यः स-  
तो वृहत्सः । हे वायो हमारे यज्ञ को आगमन करि कैसे यज्ञ कि ह्यलोक-  
व्यापि अर्थात् ऋत्विग्यजमान वैदुष्य और दक्षिणासम्पन्नत्वसे स्वर्ग  
में भी श्रूयमाण को । आगम्य किं फलमत आह कि पात्र मध्यस्थ दशाप-  
वित्र के ऊपर में होतृत्वमस करि विषिच्यमान यह शुद्ध (ऋजीषकल्कर-  
हित) सोम (रसात्मा) त्वदीय भागत्व करि मूर्धसे संस्कृत है ॥ ८५ ॥

इन्द्रवायू सुसंहशां सुहवेह हवामहे । यथा नः सर्व इ-  
ज्जनोऽनमीवः संगमे सुमना असन्त ॥ ८६ ॥

तापसदृष्टेन्द्रवायवी । इस यज्ञ में हम इन्द्रवायू को बुलाते हैं । कैसे इ-  
न्द्रवायू कि भले प्रकार देवते । शोभनाह्वानों । तैसे बुलाते हैं कि जैसे हमारे  
सर्व एव जनाः (पुत्रपौत्रादि) ऐसे हों कैसे कि व्याधिरहित संगम (धनप्र-  
प्ति वा समागम) में सुमनाः (शोभनचिताः वा उत्सार और वक्ता ॥ ८६ ॥

ऋधगित्या स मर्त्यैः शशमे देवतातये । यो नूनं मित्रावरुण-  
वभिष्टयः आचुके हव्यदातये ॥ ८७ ॥

जमदग्निदृष्टा मित्रावरुणी । निश्चयः स्यो मनुष्य अभिमत्तलाभ और  
हव्य दानि (हवि के दान) के अर्थ मित्रावरुण को सेवन करता है । वोह मनुष्य  
इस हेतु (सेवनरूप) करि यमनियमशमादि युक्त होता है । कैसे वह कि देवतातिः  
देवता के कर्म-यज्ञ के अर्थ समृद्धिवान् (यज्ञसम्पन्नमधनाढ्यः हो) ॥ ८७ ॥

न होता है। सत्य वचन वा सत्य युक्त होता है ॥८७॥

आयातमुपभूषतं मध्वः पिवतमश्विना । दुग्धं पयो  
वृषणा जेन्यावसू मा नो मर्धिष्टमागतम् ॥८८॥

वसिष्ठहृष्टाश्विदेवत्या। हे अश्विनो तुम यज्ञ प्रति आओ। और आ  
के यज्ञ को अलं करो। मधुरसोम को पियो। किंच हे यज्ञफल के  
सींचनेवालेओ हे जेन्यावसू (जेतव्य वा जित समन्तात् धन जिन्हों  
करि ताहणों वशी धनो) तुम वृष्ट्युदक दुग्ध को अन्तरिक्ष से दुहा  
ओ। किंच हमें हिंसा न करो। किं बहुना तुम आओ (आदरार्थ पुनर्व  
चनम् ॥८८॥

प्रेतु ब्रह्मणस्पतिः प्रदेव्येतु सूनृता । अछा वीरं न  
र्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥८९॥

कावहृष्टा वैश्वदेवी। ब्रह्म (वेद) का पति (हिरण्यगर्भ) हमारे यज्ञ को  
प्रकर्षण आवे। तथा देवी (देवतात्मा) सूनृता (प्रियसत्यस्वरूपातिस  
की वाली त्रयीरूपा) यज्ञ को प्रक०। किंच यष्टव्या देवा हमारे यज्ञ को  
करावें। कैसे यज्ञ कि वीर (शत्रुओं के विशेषेण उन्मूलयितार) को। म-  
नुष्यों के अर्थ हित को। पङ्क्तिराधस को (इन्द्र का पुरोडाश हर्योर्धनाः  
पूषणकाकर्मः सरस्वती के अर्थ दधिमित्रावरुण की पयस्या यह ह-  
विः पङ्क्ति है। दिनाराशंस प्रातः सवन दिनाराशंस माध्यन्दिन सवन  
सहन्वाराशंस तृतीय सवन यह नाराशंसंपत्ति है। त्रीणि सवनानि  
पशुरूपवसथ्यः पशुरनुवन्थ्यः यह सवन पङ्क्तिः इन पङ्क्तिओं करि समृद्धि  
स की। वा पङ्क्तिः साधियें हैं जहां तिस को। ब्रह्मणस्पत्यादयः ऐसे

यज्ञ को हमलोगों से करावें इति सर्वार्थः ॥८५॥

चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णे धावते दिवि । रयिं पिश-  
गं वहलं पुरुस्पृहं हरिरेति कनिक्रदत् ॥८६॥

आस्यसुत त्रितहृष्टाहतिपरिणामवादिन्येन्द्री । आहुतेर्होमद्वयस्य  
परिणामो द्युपर्जन्यपृथिवीपुरुषयोषात्मकपञ्चाग्निक्रमेण परि-  
पाकः इति तु पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भवन्तीति श्रु-  
त्योक्तः तं वदत्येषा ऋक् । अधियज्ञं तावदर्थः । चन्द्रमा (देवताओं  
का आल्हाद करता) लतारूप सोम अभिषुतः सन् जल (वसती व-  
री निग्राभ्यादिजलोंके) मध्य में रसरूप करि स्थित अग्नि में हुतः  
सन् सुपर्ण (गरुडाहति वा साधुपतन) होके दिव में शीघ्र चलता है ।  
हरितवर्ण सोमही दिवमें गया पर्जन्यरूप को धारण करि उदक-  
दानद्वारा से धान्यभाव को प्राप्त होता अर्थात् व्रीहि आदि अन्नरू-  
प होता है । कैसा धान्य कि पिशंग (परिपाक करि पीतवर्ण) होता है ।  
वहल (असंख्यात-चतुर्विधभूतग्रामजीवनपर्याप्त । पुरुस्पृह (बहु-  
तजिसधान्य को इच्छा करते तिसरूप) होता है । कैसा हरि कि कनि-  
क्रदत् (पर्जन्यरूप अत्यर्थ गर्जता ॥८६॥

देवं देवं वोऽवसे देवं-देवमभिष्टये । देवं-देवं हवेम-  
वाजसातये गृणान्तो देव्या धिया ॥८७॥

मनुहृष्टा वैश्वदेवी । देवं-देवं + (जितने देवता तिन तुम्हें पालन के  
अर्थ हम बुलाते हैं । अभिलषितफलप्राप्ति के अर्थ देव-देवं हमसे  
अन्नलाभ के अर्थ देवं-देवं ह० । कैसे हैं हम कि देव्या (देव्यु-  
॥८७॥

वोऽवसे देवं-देवमभिष्टये

त्स्यान्नुसंधानपरा) बुद्धि करि स्तुति करते वा स्वरादिसौष्टव करि दीप्य-  
मानः स्तुति करि स्तुति करते ॥४१॥

दिवि पृष्ठोऽग्रे च तारिनिर्वेश्वानरे बृहन् । क्षमया  
वृधान ओजसा च नो हितो ज्योतिषा बाधते त-  
मः ॥४२॥

इन्द्रसुतमेधहृष्टा वैश्वानरी । जो अग्नि धुलोक में पृष्ठः (सिक्तः)  
आदित्यात्मा करि स्थितः सन् प्रकाशे है । कैसा अग्नि कि सवनरें  
का हित । बडा । किं च वोह अग्नि स्वप्रकाश करि लोकांनुग्रह के  
अर्थ रत्विजनिततम को निवर्त कती है । कैसा कि पृथिवीस्थामं-  
नुष्ये करि दिये हवि से वर्धमान अत एव ओजसो च नो हितः (ओ-  
जसा कक्षम तेज करि अन्न के अर्थ हित अर्थात् अन्ननिष्पाद-  
कः ॥४२॥

इन्द्राग्नीऽप्रपादियं पूर्वागात्पद्वतीभ्यः । हिल्वी शि-  
रो जिह्वया वावदच्चरन्निर्दशत्यदा न्यक्रमीत ॥४३॥

सुहोत्रहृष्टा इन्द्राग्निदेवत्या प्रवल्हिका । हे इन्द्राग्नी यह स्वयं पाद  
रहिता उषापादयुक्ता सीती हुई प्रजा के अर्थ प्रथम भाविनी सती  
आती है और वोह तिस प्रजा के शिरो हिल्वी (निद्रात्याजन करि प्रे-  
रयित्री वा आप अशिरस्कासती) प्राणियों की वागन्द्रिय करि शब्द  
कराती हुई प्रसरती है । एवं चरती हुई उषा एकदिन (अहोरत्र)  
करि त्रिंशत्संख्याक पदों (गमनसाधनभूत मुहूर्तों) को निरन्तर  
सकावे है ॥ यद्वा वाक्पक्षेऽर्थः । इन्द्र (प्राण) अग्नि (पुरुष) हे

इन्द्राग्नी तुम्हारा एतत्कर्म जो पादरहिता (गद्यात्मिकात्रयीलक्षणायह  
वाणी) प्रथमभाविनी सती आता है पादयुक्तों रामायणभारतादिहो-  
कात्मक वाल्मीकि व्यासादि वाणी के सकाश से। वेदवाचः प्राथम्यं शु-  
त्योक्तम् ततो ब्रह्मैव प्रथमं सृज्यतेति। एवं प्रथमजाया वाणी का अ-  
विकृतत्व निर्णय करि मानुष्या वाणी का विकृतत्व कहिता हैं हित्वा  
शिर इति प्राधान्यात् आख्यातपदमुच्यते अभ्याज गां दण्डे-  
न शुक्तां गां दण्डेनाभ्याजेत्येवं लौकिक्या वाणी पदप्रयोगनियमा-  
भाव से शिरः स्थानीय आख्यातपद को हित्वा (छोड़िके) विदुषः  
(विद्वानोंकी) वागिन्द्रिय करि अतिवदन्ती सती चरति (प्रकाशी  
होती है)। एवं चरन्ती वोह त्रिंशत्पदों को निक्रमण करती है (यहां  
पदशब्द अङ्गुलवाची है) मूलाधार से ले मुखपर्यन्त त्रिंशदङ्गुल  
को क्रामति। एवं वाग्विषयोऽर्थः ॥ ४३ ॥

देवासो हि ष्या मनवे समन्यवो विश्वे साकं स रात-  
यः । ते नोऽप्यद्य तेऽप्यपरं तुचे तु नो भवन्तु वरिवो  
विदः ॥ ४४ ॥

मनुहृष्टा वैश्वदेवी। ते प्रसिद्धा विश्वे देवाः राकी ह्य आज (वर्तमा-  
न कालमें) हमारे की धन प्रायकाः हैं। पुनः भविष्यत्काल में हमारे  
तुचों + (पुत्रादिकों) के अर्थ धनप्रायकाः हैं। कैसे हैं ते कि मरु मनु  
नामक मुनि (मन्त्रदर्शि) के अर्थ समन्यवः (एकमत्य को शत्रु वा  
क्रोध सहित वर्तमानाः अर्थात् हमारे शत्रुहनन के अर्थ क्रोधयु-  
क्ताः तथा सगतयः (दानसहिताः अर्थात् दानारः ॥ ४४ ॥

मनुगित्यपत्य नाम नियमः १०४८

अपाधमदभिशास्ती रशस्तिहायिन्द्रो द्युम्याभवत्। हे-  
 वास्तः इन्द्र सखाय येमिरे बृहद्वानो मरुद्गणः ॥ ४५ ॥  
 नृमेधदृष्टे द्वे मरुत्वद्गुणविशिष्टेन्द्रदेवत्ये। हे वृहद्वानो (बड़ी दीप्ति-  
 ओंवाले) हे मरुद्गणः (मरुत हें गण जिसके बोह) हे इन्द्र देवाः (वसु-  
 रुद्रादित्याः) तेरे सख्य (मैत्री) के अर्थ येमिरे कैसे कि इन्द्र हमको म-  
 खिभाव के अर्थ वरुणको इस अभिप्राय से अपने को संयत करते  
 हुए सो तू अभिशापो (शत्रुप्रयुक्तापवादों) को निवर्त करता है। अ-  
 थ (पीछे) द्युम्नी (अन्नवान् वायशस्वी) सर्वतः धनवान् होता है।  
 कैसा है तू कि अशस्तिहा (निन्दित असुरों का मारने हारा। इन्द्रः  
 (ऐश्वर्यवान्। भाव यह है कि जो दुष्टहन्ता अभिशापनाशक पश-  
 स्वी तेजस्वी बहुभृत्यसेव्य है तिसके सख्य को अन्य भी यत्न  
 करते हैं यह युक्त है ॥ ४५ ॥

अ व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत। वृत्रं हन-  
 ति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा ॥ ४६ ॥  
 हे मरुतः अपने स्वामी इन्द्र के अर्थ तुम ब्रह्म (वेद-सामरूप स्तो-  
 त्र) को प्रकर्षण उच्चारण करो। कैसे इन्द्र कि बडे। ततो वृत्रहा (वृ-  
 त्र-असुर वापापी का मारने हारा। किस करि कि अपने आयुध श-  
 त हें वर्ष (धराएँ वाग्रन्थियें) जिसकी तिस वज्र से। कैसा वृत्रहा  
 कि शतक्रतु (बहुक्रमो वा बहुप्रज्ञ ॥ ४६ ॥

अस्येदिन्द्रो वावृधे वृषयर्धं शवो मदे सुतस्य वि-  
 षावि। अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनुष्टुवन्ति पू-

वैथा। इमा उ त्वा यस्यायमयर्धं सहस्रमूर्ध्व ऊषुणः  
॥२७॥

इतिसर्धं हितायां सप्तमोऽनुवाकः ७

इति श्री शुक्लयजुषामाध्यन्दिनशाखीयायां वाजसने-  
यसर्धं हिताया दार्घ्यपाठे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

वधातिथिदृष्टा माहन्ती। इन्द्र इमं यजमान के वृषाय (वीर्य) और  
शत्रु बल को बढ़ाता है। कहाँ में कि अमिषुत सोम के विष्णु (सर्वेश-  
्वर) व्यापक मद में से यहा विष्णो (यज्ञ में अमिषुत के इतिमन्त्र)।  
अर्थात् सोमपान करि मत्त इन्द्र यजमान के महात्म्य और बल को  
बढ़ाता है। किं च इन्द्र के तिस उक्त) यश्वन् (वीर्योदिवर्धनरूपमहि-  
मान) को इस काल में भी मनुष्य आनुपूर्व्येण स्तुति करते हैं त-  
त्र दृष्टान्तः जैसे पूर्व ऋषि स्तुति करते हुए ऐसे अब भी मनुष्य स्तु-  
ति करते हैं इत्यर्थः ॥ इमा उ त्वा यस्यायमू अयं सहस्रमू ३३.७१-  
७३ ऊर्ध्व ऊषुणः ११.४२ गताः प्रती कोक्ताः ॥ २७ ॥

इति भाष्ये सप्तमोऽनुवाकः ७

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दनिवारयन्

पुमार्थाश्चतुरेदेयात्स्वयं ब्रह्मसनातनः ३३

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीयशाखाध्येतव्याप्रपादान्वयवि-  
श्वामित्र पुराधिपति श्रीमज्जयकिशोरदेववर्मात्मज ऐकिमण्यनृप-  
तिगिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपेगिरिभाष्ये खिलप्रकरणे सर्व-  
मेधादिब्रह्मयज्ञारम्भान्तवर्णनो नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥



हरिः श्रौम्

ॐ नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरुपं च साधनैर्बहुरूपकम्

स्वानन्द रायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः ३४

अ० १० यज्जाग्रतो दूरमुदैति देवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।  
दूरगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसं-  
कल्पमस्तु ॥ १॥

ॐ नमो यज्ञवल्काय

गिरिप्रसाद संज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके

चतुस्त्रिंशोऽयमध्यायो ब्रह्मयज्ञार्थं ईर्यते ३४

अनारभ्याधीतोऽध्यायः आपितु मेधातु आदित्य यज्ञवल्कलदृष्टा  
मंत्रा पाठे विनियुक्ताः ॥ षडृचस्त्रिष्टुभो मनोदेवत्याः शिवसंक-  
ल्पदृष्टाः ऋषिर्वदति। तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु शिवः (कल्या-  
णकारी-धर्मविषयः) संकल्पजिसका तैसा हो अर्थात् मेरे मनमें  
सदा धर्म ही हो न कदाचित्पाप हो। बोह क्या कि जो मन जाग्रत  
पुरुष का दूरको चलता अर्थात् चक्षुःगद्यपेक्षा करि दूरगामी है।  
और जो देव (विज्ञानात्मा-आत्मग्राहक)। और जो मन सोते हु-  
ए पुरुष का जैसे गया तैसे ही फिर आता (स्वायकालमें सुषुप्ता-  
वस्थाविषे फिर आजाता है)। और जो दूरगमम् (दूरचलता अर्थात्  
तत् अतीतो आगतवर्तमान विप्रकृष्ट व्यवहित पदार्थों का ग्राह-  
क। और जो मन ज्योतिषों (प्रकाशकों-ओत्रादीन्द्रियों) का एक ही

† मनः सेवानुदृष्टव्यमेतदप्रमेयं  
शुचिर्मतिश्चुतेः।

ज्योतिप्रकाशकः प्रवर्तकः प्रवर्तित ही ओत्रादीन्द्रिये स्वविषय में प्रवर्तित हैं। आत्मा मन करि संयुक्त होता है मन इन्द्रियों से इन्द्रिय अर्थ से इस न्यायोक्ति से मनः सम्बन्धमन्तरातिन्हों की अप्रवृत्ति है। तादृश मेरा मन शान्तसंकल्प हो ॥१॥

येन कर्मण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथे-  
षु धीराः। यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शि-  
वसंकल्पमस्तु ॥२॥

मेधावि लोग यज्ञ में जिस मन से कर्मों को करते हैं + किन्हों में कि-  
विदथों (यज्ञसम्बन्धि हविर्गदि पदार्थों के ज्ञान) में। कैसे मेधावि-  
नः कि अपसः (कर्मवन्तः सदाकर्मनिष्ठः) तथा धीराः (धीमन्तः।  
और जो मन अपूर्व (इन्द्रियों से प्रथम वा आत्मरूप। और जो य-  
जने को शक्त। और जो प्रजाओं (प्राणि-ओं) के शरीर के भीतर में स्थि-  
त हैं। तादृश मेरा मन शिवसंकल्प हो ॥२॥

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजा-  
सु। यस्मान्नः कृते किं च न कर्म क्रियते तन्मे मनः  
शिवसंकल्पमस्तु ॥३॥

जोमन प्रकर्षेण ज्ञानजनक और जो सामान्य विशेषज्ञानजनक और जो  
धैर्यरूप। और जो जनों के भीतर में वर्तमान हुए परज्योतिः (सब इन्द्रि-  
यों का प्रकाशक। और जो अमरणधर्म आत्मरूप जिस से कृतमें  
जिसमन बिना कांड भी कर्म नहीं करते हैं अर्थात् सब कर्म में प्रा-  
णि-ओं के मन की पूर्ण प्रवृत्ति है। तादृश मेरा ॥३॥

+ मनः स्वास्थ्यं विना कर्मो प्रवृत्तः।

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्व-  
म् । येन यज्ञस्तुयते सप्तहोता तन्मे मनः शिव-  
संकल्पमस्तु ॥४॥

जिस मन करि यह सब परिगृहीत (सर्वतः ज्ञात) है । यह कि भूत  
वर्तमान भविष्यत् कालसम्बन्धि वस्तु अथोत्त्रिकालसम्बद्ध व-  
स्तु में मन प्रवर्तते है । ओत्रादिक तो प्रत्यक्ष ही ग्रहण करत है । कैसे  
जिस कि अमृत (शाश्वत) मुक्तिपर्यन्त अर्थात् ओत्रादिक नाश हो-  
ते हैं परंतु मन अनश्वर है । और जिस करि यज्ञ (अग्निष्टोमादि)  
विस्तारिये है । कैसा यज्ञ कि सप्त होता (देवताओं के आह्वाता होता)  
प्रशास्ता २ ब्राह्मण छठ्ठी ३ पोता ४ नेष्टा ५ आग्नीध्र ६ अछावाक ७  
हैं । तादृश ॥४॥

यस्मिन्नुचः साम यजूंश्च यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथना-  
भाविद्वाराः । यस्मिंश्चित्तु सर्वमोतं प्रजानां तन्मे  
मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥५॥

जिस मन में ऋचाएँ प्रतिष्ठिता हैं जिस में सामाएँ प्रतिष्ठिता जिस  
में यजुषिएँ प्रतिष्ठिता हैं । तत्र दृष्टान्तः । जैसे रथचक्र की ना-  
भि के मध्य में आरा प्रतिष्ठित है तद्वत् छन्दजाल मन में । किंच  
प्रजाओं का सर्व (सर्वपदार्थविषयि) चित्त (ज्ञान) जिस मन में  
ओत प्रोत (पहुँचैसै) निहित है । तादृश मेरा मन प्रान्तव्या-  
पार हो ॥५॥

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयते भीषु

† मनः सास्थ्ये एव ज्ञानोत्पत्तिर्मनोवैयाग्ये ज्ञानाभावः ।

† अग्निष्टोमसप्तहोतारो भवन्ति ।

† मनसः सास्थ्ये एव वेदवेदीसु तेर्मनसि प्र-  
त्यक्षमस्य प्रतिष्ठितवत् अन्तर्मनसि हि सोम्य मन-  
सो ज्ञानोत्पत्तिर्मनस एव सास्थ्ये वेदोत्पत्ति-  
रप्युक्तः प्रतिपादिताः ।

भिर्वाजिन- इव । हृत्प्रतिष्ठं च दर्जिरं तविष्ठं मनो  
मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ ६ ॥

जो मन मनुष्यों को इधर उधर से अत्यर्थ लाता है (मनः प्रेरिता हा-  
प्राणी वर्तते हैं मनुष्यग्रहण प्राणिमात्र का उपलक्षक है। तत्र दृष्टा-  
न्तः। जैसे शोभन सारथि कशा करि अश्वों को लाता है। द्वितीयो  
दृष्टान्तः जैसे शोभन सारथी रश्मिओं करि अश्वों को लाता है  
इत्यनुषङ्गः। उपमाद्वयम् प्रथमायां नयनम् द्वितीयायां नियम-  
नम् तैसे मन प्रवर्तते और नियच्छे है नरों को इत्यर्थः। और जो मन  
हृदय में स्थित है (हृदय में ही मन उपलभिये है। और जो मन अ-  
जर (जरारहित- बाल्य यौवनस्थाविरों में मन के तिस अवस्थत्व  
से। और जो मन वेगवत् + तादृश ॥ ६ ॥

पितुं नु स्तोषं महो धर्माणं तविषीमू। यस्य त्रितो  
व्योजसा वृत्रं विपर्वमुर्दयेत् ॥ ७ ॥

अगस्त्य दृष्टा उषिणक् अन्नस्तुति। तिस बल के धारयितार अन्नको  
स्तुति करता हूँ। तिस किसे कि जिस अन्न के बल करि त्रितः (विस्था-  
न- इन्द्र) वृत्र (दैत्य) को विपर्व (विगतसम्बन्धन) करि के विविधम-  
र्दन करता हुआ अर्थात् इन्द्र ने वृत्र अन्न बल ही से मारा ॥ ७ ॥

अन्विदनुमते त्वं मन्यासै शं च नस्कथि। कृत्वे  
दक्षाय नो हिनु अ एण आयुधं धितोरिषः ॥ ८ ॥

चतस्रोऽनुष्टुभः द्वयोरनुमतिर्देवता। इत् निपातोऽनर्थकः ॥ हे अ-  
नुमते तू हमारे कहे को बोधन करि। और हमारा सुख ही करि। पु-

किं चनाशोयोऽस्ति हे  
न मनसः किं चनाशोयोऽस्ति  
किं चनाशोयोऽस्ति  
+ मन्वे वा किं चनाशोयोऽस्ति

नः हमारे ऋतु (संकल्प) और दक्ष (तत्समृद्धि के अर्थ) अर्थात् सं-  
कल्पसिद्धि के अर्थ हमें प्राप्त करि हमारी अवस्थाएँ बढ़ाय ॥८॥

अनु नोऽद्यानु मतिर्यज्ञं देवेषु मन्यताम् । अग्निश्च  
हव्यवाहेनो भवतं दाश्रुषे मयः ॥९॥

अनुमति आज हमारे यज्ञ की यज्ञिय देवताओं में आज्ञा देवे औ-  
र हवियों का वोटा अग्नि यज्ञ की य० किं च हवियें देनेवाले य-  
जमान के अर्थ अनुमत्यग्नी सुख रूपों होंवें ॥९॥

सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसो । जुषस्व  
हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिष्टि नः ॥१०॥

हे गृत्समदृष्टे आद्यासिनीवाली देवता । हे सिनीवालि हे पृथुष्टु-  
के (पृथुके प्रभारे वा महास्तुते वा पृथुकामे) जो तू देवताओं की भ-  
गिनी (बहनि) है सो तू आहुत हव्य को ग्रहण करि और हे देवि ह-  
मारे अर्थ प्रजा की दे ॥१०॥

अ० २० पञ्च नद्यः सरस्वतीमपियन्ति सस्रोतसः । सरस्वती  
तु पञ्चधा सो देशोऽभवत्सरित् ॥११॥

सरस्वती नदी देवत्या । जे दृषद्वत्याद्याः पाँच नदिएँ सरस्वती को जाती  
हैं कैसी कि समान हैं प्रवाह जिन्हों के ते । सो सरस्वती ही पञ्चधा  
देश में नदी हुई (पाँचों अपने नामों को छोडि सरस्वती ही  
हुई ॥११॥

त्वमग्ने प्रथमोऽङ्गिरा ऋषिर्देवो देवानामम-  
वः शिवः सर्वा । तव व्रते कवयो विप्रनायसोः

जायन्त मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥१२॥

चतस्र आग्नेयः द्वे जगत्यौ आङ्गिरसो हिरण्यस्तूपदृष्टे अन्ये त्रि-  
ष्टुबन्तुष्टुभौ भार्गवो देवश्च देव वातश्च दृष्टे । हे अग्ने तू देवताओं  
का आद्यो मित्रभूतः तूही हुआ । कैसा है तू कि आङ्गिराः (अङ्गोका-  
रस वा यजमानों के अर्थ सुख । ऋषि (दृष्टा) देव (द्योतमान) शिव (क-  
ल्याण) । किं च तेरे व्रत (वर्तमानकर्म) में मरुतः ऐसे हुए । कैसे कि  
ज्ञानदर्शिनः । विद्यनायसः (विदितकर्माणः) । भ्राजदृष्टयः (शोभ-  
मान आयुध जिन्हों के ते ॥१२॥

त्वं नो अग्ने तव देव पायुभिर्मघोनो रक्षतन्व-  
श्च कन्य । वाता तोकस्य तनये गवामस्य निमेषठं  
रक्षमाणस्तव व्रते ॥१३॥

रक्षणार्थो मन्त्रः । हे अग्ने हे देव (द्योतमान) हे स्तुत्य तेरे कर्म में व-  
र्तमान धनवानों (यजमानों) को पालि । हमारे शरीरों को पालि ।  
किन्हीं करि कि अपने पालनों से क्यों कि तू सावधान पालन क-  
रते सन् पुत्र पौत्र और गोओं का रक्षक है ॥१३॥

उत्तानायामवभार चिकित्वान्तुद्यः प्रवीता वृष-  
णं जजान । अरुषस्तूपो रुशदस्य पाज इडायासु-  
त्रो वयुनेऽजनिष्ट ॥१४॥

जो इडा (पृथिवी) का पुत्र अग्नि वयुने (प्रज्ञान-कर्तव्यमें) अज-  
निष्टः (हुआ) कैसा कि अरुषस्तुपः (अहिंसक है ज्वालोछ्राय जि-  
स का बोह) । इस अग्नि का दीप्त बल उत्तानां (अरणी) में अवाची-

न हर। चिकित्वान् (अरणिबल को जानता। क्याबल इति चेत्  
जो अरणि कामिता सती सेक्तार अग्नि को तत्काल उत्पन्न  
करती है सो अग्नि उत्पन्न हुआ ॥१४॥

इडायास्त्वा पदे वयं नाभा पृथिव्या अधि।  
जातवेदो निधीमह्यग्ने हव्याय वोढवे ॥१५॥

हे जातवेदः (जातप्रज्ञान) हे अग्नि पृथिवी के स्थान देवयजना-  
ख्य में और पृथिवी की नाभि उत्तर वेदी के मध्य में हवि वहाने  
के लिये हम तुम्हें स्थापन करते हैं ॥१५॥

प्रमन्महे शवसानाय शूषमाङ्गुषं गिर्वणसे अ-  
ङ्गिरस्वत्। सुवृत्तिभिः स्तुवत् ऋग्मियायार्चामा-  
र्कं नरे विश्रुताय ॥१६॥

चतस्र ऐन्द्रस्त्रिष्टुभः द्वे नोधादृष्टे। हम इन्द्र के अर्थ स्तोम (त्रिवृ-  
त्पादिक) को प्रमन्महे (जानते हैं)। कैसे स्तोम कि बलहेतु। और अ-  
र्क (मन्त्र) अर्चाम (उच्चारण करते हैं)। अङ्गिरस्वत् (अङ्गिराओं-  
नं जैसे स्तोम जाना और मन्त्र पढ़ा तद्वत्)। कैसे इन्द्र कि शवसानः  
(बलभिलषमाण) के अर्थ। पुनः कैसे कि गिर्वणसे (गिरा स्तु-  
ति करि सम्भजवाता है आत्मा को अभिलषितदान से स्तोतृयों  
के अर्थ वागिर करि इसे देवता भजते हैं तिस के अर्थ। पुनः कै-  
से कि शोभना स्तुतिओं करि स्तुति करता है तिस के अर्थ यजमा-  
नों को इति शेषः। पुनः कैसे कि ऋग्मियाय (वेदमय वास्तुति  
योग्य के अर्थ)। पुनः कैसे कि नररूप के अर्थ। पुनः कैसे कि

+ शर्वमन्महे को ध्यात्वा

विश्रुताय (शौर्यदानवलादिलब्धख्यातिके अर्थ) ॥१६॥

प्र वो महे महि नमो भरधमाङ्गुष्युर्धं शवसानाय  
साम। येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञा अर्चन्तोऽप-  
ङ्गिरसो गा अविन्दन् ॥१७॥

बड़े बल को अभिलषमाण इन्द्र के अर्थ बड़े अन्न को तुम स-  
मर्पण करो (मुनियों का पुत्रादिकों प्रति वचन है)। आङ्गुष्यसोम  
आघोष के अर्थ हित साम उच्चारण करो। क्योंकि हमारे पूर्व पि-  
तरः अङ्गिरसः जिस अन्न और साम करि अर्चन करते गाः (सू-  
र्यकिरणों की प्राप्त हुए वोह ही सामों का लोक है वोह साम उच्चा-  
रण करो)। कैसे अङ्गिरसः कि पदज्ञाः (आत्मस्वरूप को जानते) ॥१७॥

इच्छन्ति त्वा सोम्यासुः संवायः सुन्वन्ति सोमं दध-  
न्ति प्रयाथ्सि। तितिक्षन्ते अभिशस्तिं जनानामि-  
न्द्र त्वदा कश्चन हि प्रकेतः ॥१८॥

वे भारती देवश्रवा देववातश्च दृष्टे। हे इन्द्र तेरे सकाशसे कोई  
भी लोकान्तरः प्रकेतः (प्रकृष्टोक्तानविशेषः) समन्तात् यतः हो-  
ता है अतः संवायः (ब्राह्मणः) तुम्हें इच्छा करते हैं अथ जे  
ब्राह्मणः शुश्रुवाथ्सः (अनूचानाः) ते +। कैसे ब्राह्मणः कि सोम  
सम्पादिनः। इच्छन्तीति कथं ज्ञातम् तत्राह यतः ते सोम को अभि-  
षव करते हैं और हवियों को धारण करते हैं। त्विं च जनो के अ-  
भिशास्ति (दुर्वचन) को सहते अर्थात् मनोवाक्कायसंयताः क्षा-  
न्तिपराः हैं ॥१८॥

मनुष्यदेवा इत्युक्ते देवानां विप्राणां च संवित्वम्



न हर । चिकित्वान् (अरणिबल को जानता । क्याबल इति चेत्  
जो अरणि कामिता सती सेतार अग्नि को तत्काल उत्पन्न  
करती है सो अग्नि उत्पन्न हुआ ॥१४॥

इडायास्त्वा पदे वयं नामा पृथिव्या अधि ।  
जातवेदो निधीमह्यग्ने हव्याय वोढवे ॥१५॥

हे जातवेदः (जातप्रज्ञान) हे अग्ने पृथिवी के स्थान देवयजना-  
ख्य में और पृथिवी की नाभि उत्तर वेदी के मध्य में हवि वहाने  
के लिये हम तुम्हें स्थापन करते हैं ॥१५॥

प्रमन्महे शवसानाय शूषमाङ्गुषं गिर्वणसे अ-  
ङ्गिरस्वत् । सुवृत्तिभिः स्तुवत् ऋग्मियायार्चामा-  
र्कं नरे विश्रुताय ॥१६॥

चतस्रेन्द्रस्त्रिष्टुभः द्वे नोधादृष्टे । हम इन्द्र के अर्थ स्तोम (त्रिवृ-  
त्पादिक) को प्रमन्महे (जानते हैं) । कैसे स्तोम कि बलहेतु । और अ-  
र्क (मन्त्र) अर्चाम (उच्चारण करते हैं) । अङ्गिरस्वत् (अङ्गिराओं  
नें जैसे स्तोम जाना और मन्त्र पढ़ा तद्वत्) । कैसे इन्द्र कि शवसानः  
(बलभिलषमाण) के अर्थ । पुनः कैसे कि गिर्वणसे (गिरा स्तु-  
ति करि सम्भजवाता है) आत्मा की अभिलषितदान से स्तोतृयों  
के अर्थ वा गिर करि इससे देवता भजते हैं तिस के अर्थ । पुनः कै-  
से कि शोभना स्तुतिओं करि स्तुति करता है तिस के अर्थ यजमा-  
नों को इतिशेषः । पुनः कैसे कि ऋग्मियाय (वेदमय वास्तुति  
योग्य के अर्थ) । पुनः कैसे कि नररूप के अर्थ । पुनः कैसे कि

+ शान्तमनःको ध्यात्वा

विश्रुताय (शौर्यदानवलादिलब्धख्यातिके अर्थ) ॥१६॥

प्र वो महे महि नमो भरधमाङ्गुष्यर्धं शवसानाय  
साम। येना नः पूर्व पितरः पदज्ञा अर्चन्तोऽअ-  
ङ्गिरसो गा अविन्दन् ॥१७॥

बड़े बल को अभिलषमाण इन्द्र के अर्थ बड़े अन्न को तुम स-  
मर्पण करो (मुनियों का पुत्रादिकों प्रति वचन है)। आङ्गुष्यसोम  
आघोष के अर्थ हित साम उच्चारण करो। क्योंकि हमारे पूर्व पि-  
तरः अङ्गिरसः जिस अन्न और साम करि अर्चन करते गाः (सू-  
र्यकिरणों की प्राप्त हुए वोह ही सामों का लोक है वोह साम उच्चा-  
रण करो)। कैसे अङ्गिरसः कि पदज्ञाः (आत्मस्वरूप को जानते) ॥१७॥

इच्छन्ति त्वा सोम्यासुः संवायः सुन्वन्ति सोमं दध-  
ति प्रयाथ्सि। तितिक्षन्ते अभिशस्तिं जनानामि-  
न्द्र त्वदा कश्चन हि प्रकेतः ॥१८॥

वे भारतौ देवश्रवा देववातश्च दृष्टे। हे इन्द्र तेरे सकाशसे कोई  
भी लोकान्तरः प्रकेतः (प्रकृष्टोक्तानविशेषः) समन्तात् यतः हो-  
ता है अतः संवायः (ब्राह्मणाः) तुम्हें इच्छा करते हैं अथ जे  
ब्राह्मणः शुश्रुवाथ्सः (अनूचानाः) ते। कैसे ब्राह्मणः कि सोम  
सम्पादिनः। इच्छन्तीति कथं ज्ञातम् तत्राह यतः ते सोम को अभि-  
षव करते हैं और हवियों को धारण करते हैं। किं च जनो के अ-  
भिशास्ति (दुर्वचन) को सहते अर्थात् मनोवाक्कायसंयताः क्षा-  
न्तिपराः हैं ॥१८॥

मनुष्यदेवा इत्युक्ते देवानां विप्राणां च संखितम्

न ते दूरे परमा चिद्रजाधस्या तु प्रयाहि हरिवो  
हरिभ्याम् । स्थिराय वृष्णे सवना कृतेमा युक्ता  
ग्रावाणः समिधानेऽग्नौ ॥१४॥

हे हरिवान् हृदसौ हृद तुम्सेक्तु के अर्थ समिध्यमान अग्नि में ये  
प्रातः सवनादीनि किये हैं और ग्रावाणः अभिष्वकर्म में जोड़े हैं  
इस हेतु हरी अश्वों करिके आगमन करि। ननु स्वर्ग से अतिदूर  
में कैसे मेरा जाना यह तहां कहता है कि दूरदेशस्थस्थान तुम्हें दूर  
र नहीं हैं अर्थात् अति दूर भी तेरे निकट है इस हेतु आ ॥१४॥

अषाढं युत्सु घृतनासु पवित्रं स्वर्षामप्सां वृजनस्य  
गोपाम् । भरेषु जाधं सुक्षितिर्ह सुश्रवसं जयन्तं त्वा  
मनुमदेम सोम ॥ २० ॥

चतस्रः सोमदेवत्यास्त्रिष्टुभः गोतमदृष्टा । हे सोम तुम्हें जयन्त (उत्कर्षणवर्तमान) को अनुमदेम (अनुसरण करते हम लहष्ट होंवें) । कैसे तुम्हें कि युद्धोंमें अनभिभूत को । पुनः कैसे कि सेनाओं के प्रतिपालयितार । दिवि को सम्भजन करते । जलों को सम्भजन करते । बल के रक्षक । संग्रामों के जेतार । सुनिवास । शोभनकीर्तिवाले को ॥२०॥

अ० ३० सोमो धेनुर्ह सोमो अर्वन्तमाशुर्ह सोमो वीरं कर्म  
एयं ददाति । सादन्यं विदध्युधं समेयं पितृश्रवणं  
यो ददाशदसे ॥ २१ ॥

जो यजमान इस सोम के अर्थ हविदेता है तिस के अर्थ यह सोम धेनु देता है । और शीघ्र अश्वको सोम देता है । और वीर (पुत्र) को सोम दे

ता है। कैसा पुत्र कि कर्म में साधु। गृह में साधु। यज्ञ में साधु।  
पित्राज्ञाकारी (विनीत) ॥२१॥

त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपोऽञ्जनयस्त्व  
गाः। त्वमाततन्थोर्वन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो  
ववर्थ्य ॥२२॥

हे सोम तू ये सब ओषधीएँ जल गौएँ उत्पन्न करता हुआ। तू  
विस्तीर्ण अन्तरिक्ष को विस्तारता हुआ और तू तेज (आदित्यात्मा) करि  
अन्धकार को दूर करता है अर्थात् सर्वात्मा तू है ॥२२॥

देवेन नो मनसा देव सोम रायो भागर्हं सहसावन्-  
मियुध्य। मा त्वातनदीशिषे वीर्यस्योभयेऽपः प्रवि-  
कित्सा गविष्ठो ॥२३॥

हे देव सोम बलवन् देवसम्बन्धि मन सहित धन के भाग को ह-  
मारे अर्प दे। एवं हानप्रवृत्त तुझे कोई मत बाँधो। कुतस्त्वमेवमुच्य-  
स इति चेत् यतः तू वीरकर्म का ईश्वर है। किं च गविष्ठो (स्वर्गैषणा  
विषयभूता में) दोनों लोक प्राप्त्यर्थचिकित्सा करि उभयलोक प्रति-  
बन्धक विघ्न को निवर्तकरि। देवमन को प्राप्त हो लब्धधना और  
रोगा सत्कर्म करते जैसे स्वर्ग को जावे तैसे करि इति वाक्यार्थः ॥२३॥

अष्टौ व्यरव्यत्कुभः पृथिव्यास्त्री धन्व यो जेता स  
प्त सिन्धून्। हिरण्याक्षः सविता देव आगादध्व इ-  
त्ना दाशुषे वार्योणि ॥२४॥

चतस्रः सावित्र्यः आङ्गिरसो हिरण्यस्तूपदृष्टा। द्वितीया जगती

त्रिष्टुभोऽन्याः॥ वोह सविता देव आवे । क्या करने कि हविदेनेवालेय-  
जमान के अर्थवरणीय रत्नों को देने वा स्थापन करने । कैसा कि हिर-  
ण्यक्षः (हिरण्यकी सी कान्तियुक्त नेत्र जिस के वा अमृत दृष्टि) वो-  
ह कौन कि जो सविता पृथिवी सम्बन्धिनी आँठो ककुभः (दिशाएँ)  
प्रकाश करता हुआ । और जो तीनि धन्व (लोकों) को प्रका० और जो  
येजन गव्यूति क्रोशादि + अध्व (मार्ग) परिमाण विशेषों को प्रका०  
और जो सप्तसिन्धुओं (गङ्गादि सप्तनदीओं) को प्रका० उपलक्षण-  
मेतत् सर्वजगत्प्रकाशकः सवितारत्नों को देने आवे ॥२४॥

हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिरुमे द्यावा पृथिवी-  
अन्तरीयते । अपामीवा बाधते वेति सूर्यमभि कृणे-  
न रजसा द्यामृणोति ॥२५॥

सविता (प्रसविता) सूर्यः दोनो द्यावा पृथिवीओं के मध्य में जब कि  
आता है तब अन्धकारलक्षणरोग को निवर्त करता है । अथ ज-  
ब कि अस्तमय समय में जाता है तब अन्धकारलक्षण करि दुलो-  
क को अभिव्याप्त करता है । कैसा सूर्य कि हिरण्यपाणि । कृताकृ-  
त प्रत्यवेक्षक ॥२५॥

हिरण्यहस्तो असुरः सुनीथः सुमृडीकः स्ववा या-  
त्वतीङ् । अपसेधन्क्षसौ यातुधानानस्था देवः प्र-  
तिदोषं गृणान् ॥२६॥

जो देव (रवि) राक्षसों और यातुधानों (असुखकारों) को अपगमन  
करते सन् उदय होता है वोह देव हमारे अभिमुख आवे । कैसा देव

किं हिरण्यहस्तः (हिरण्य दानार्थं हाथ में जिस के वा रूपेण । असुरः  
प्राणिं को देता । सुनीयः (कल्याण सुति । साधु सुखयिता । धनवान् । प्र  
तिदोष (प्रतिजन दोष) श्रुति स्मृति विहितधर्मपराङ्मुखों के जितने  
शेष तिनः को उच्चारण करता उप भोगार्थ को इत्यभिप्रायः ॥ २६ ॥

ये ते पन्थाः सवितः पूर्वोसोरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे ।  
तेभिर्नोऽद्य पथिभिः सुगोभी रक्षा च नोऽ  
अधि च ब्रूहि देव ॥ २७ ॥

हे देव हे सवितः पन्थाः (मार्गः) अन्तरिक्ष में साधुकृताः (धात्रा) वर्तते हैं।  
कैसे हैं ते कि पूर्वकालों में हुए । रेणुरहित । तिन मार्गों करि हमें अप्रा-  
प्त करि इति शेषः । पुनः चलता हमें रक्षा करि और अधिब्रूहि अङ्गीक-  
रि के कहि किये मेरे वा हमारा जोहित वोह उपदेश करि यद्वा अधिक  
कहि किये महा याज्ञिक दातार हैं । कैसे मार्गों कि सुगमनों अर्था-  
त् अन्नपान प्रभूतों करि ॥ २७ ॥

उभा पिबतमश्विनोभा नः शर्म यच्छतम् । अविद्वि-  
याभि स्तुतिभिः ॥ २८ ॥

आश्विन्यस्तिस्रः एका गायत्री प्रस्कण्वदृष्टा । हे अश्विनो तुम दोनों  
हमारे अर्थ अविदीर्ण (अस्वण्डिता) पालनों सहित शर्म (सुख वा  
शरण) को देखो । और दिये सुख की पालन करे इत्यर्थः ॥ २८ ॥

अप्रस्वतीमश्विना वाचमस्मे कृतं नो हस्त्रा वृषणा  
मनीषाम् । अद्युत्ये वसे निह्वये वा वृथे च नो  
भवतं वाजसन्तो ॥ २९ ॥

हे त्रिष्टुभो कुत्सदृष्टे। हे अश्विनौ हे दर्शनीयो हे सेक्तारौ तुम  
हमारी वाणी को कर्मवती करो तथा हमारे मन की इच्छा को कर्म  
वती करो। अर्थात् मन वाणी से यज्ञ करें तैसे करो। क्योंकि हम तु-  
म्हें बुलाते हैं किस निमित्त कि अद्यत्य (सन्मार्गागत) अन्न के श-  
नार्थ। किं च वाजसानि (यज्ञमें) हमारी वृद्धि के अर्थ होओ ॥२६॥

द्युभिरक्षुभिः परिपातमुस्मानरिष्टेभिरुश्विना सोम-  
गेभिः। तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः  
पृथिवीः उत द्यौः ॥३०॥

हे अश्विनौ दिवसों और रात्रियों करि हम लोगों को सर्वतः रक्षा  
करो। किन्हीं से कि सोमगों (शोभनधनों) अनुपहिंसितों से अर्था-  
त् अरवण्डितधनों से हमें रक्षा करो। किं च मित्र वरुण अदिति  
सिन्धु और द्यौः ये हमारे उस तुम से किये पालन को पूजन करें  
अर्थात् मानें ॥३०॥

अ० ४. आ कृष्णो न रजसा वर्तमानो निवेशयन्मृतं मर्त्यं  
च। हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि  
पश्यन् ॥३१॥

व्याख्याता ३३-४३ ॥३१॥

आ रात्रि पार्थिवं रजः पितुरप्रापि धामभिः।  
दिवः सदा धंसि बृहती वितिष्ठस आ त्वेष वर्तते  
तमः ॥३२॥

भरद्वाजपुत्री कश्यपादृष्टा रात्रिदेवत्या पथ्याबृहती। हे रात्रि जिस

† द्युतादागतं द्युते भवे वा द्युत्यम् न द्युत्यमद्युत्यम् तस्मिन् द्युतादागतं कर्मण्यं न भवतीत्यवमुच्यते द्युते  
मन्त्रेषामप्यन्यायधनारामानामुपलक्षकम्।

तुम्हें करि पार्थिवं रजः (पृथिवीसम्बन्धिलोकः) पितुः (मध्यमलोक) के स्थानों सहित समन्तात् पूरती है। और जो तू द्युलोक के स्थानों को महती सती व्याप्त होती है। तिस तेरा तम आवर्ते तथापि प्रवर्ते है। कैसा तम कि त्वेष (महाप्राग्भार ॥ ३२॥

उषस्तच्चित्रमामरास्मभ्यं वाजिनीवति। येन लोकं च तेनयं च धामहे ॥ ३३॥

उषो देवत्या गोतमदृष्टा पुरोषिणक्। हे उषः हे वाजिनीवति (अन्नवति) हमारे अर्थ वोह (प्रसिद्ध) आश्चर्यकारि महनीयधन दे किजि- स धन करि हम पुत्र और पौत्र (सब संतानवर्ग) को पुष्ट करें ॥ ३३॥

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणं प्रात-  
रश्विनो। प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत-  
रुद्रं हुवेम ॥ ३४॥

सप्तर्चं वसिष्ठदृष्टं आद्या जगती बहुदेवत्या। हम प्रातः पुनः पुनः इन देवताओं को बुलाते हैं इति प्रत्येकं सम्बध्यते। किन्हे कि अग्नि को इन्द्र मित्रावरुणो अश्विनो भग पूषा बृहस्पति सोम और रुद्र को ॥ ३४॥

प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेयो विधतो।  
आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुराश्चिद्राजा चिद्यं भगं भ-  
क्षीत्याहे ॥ ३५॥

यच्च भगदेवत्यास्त्रिष्टुभः। हम तिस भग (आदित्य) को बुलाते हैं। के-  
से की कि प्रातः जयनशील उग्र (उत्कृष्ट वा उद्गुणदान) आदित्य के

प्रातः पुनः पुनः



पुत्र। तिस किसे कि जो जगत का धारयिता। और जो आध्रश्चित् (नही  
 नृप होता वा समन्तात् नृप होता वा अतृप्त बुभुक्षित द्रिहो वापि) जि-  
 स भग को भजता है अर्थात् उदय को इत्याह क्या करने कि स्वार्थ-  
 सिद्धि के अर्थ पूजने वोह ही सूर्योदय में भिक्षादि करि किंचित् पाता  
 है ततः उदय को वाञ्छा करता है। नुरः (आतुर) भी जिस भग को भज-  
 ता है उदय को दिवस में तिस के सुखोदय से रोगी की रात्रि कष्ट से जा-  
 ती है यद्वा तुरोयमः वोह भी मारण के अर्थ दिनों को गिनता है। राजा  
 भी जिस भग को भजता है इत्याह तिस के उदय में ही राजों की व्यव-  
 हारदर्शन करि सर्वेष्टसिद्धि है ॥३५॥

भग प्रणेतुर्भग सत्यराधो भगेमा धियमुदवा ददन्तः॥

भग प्र नो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्व-  
 म ॥३६॥

+ आदेशार्थं पुनः सत्याधनम्  
 हे भगः हे प्रणेतः (प्रकर्षेण धन को प्राप्त करता है) हे भगः + हे सत्यरा-  
 धः (वाचिनश्च धन जिस का वोह) हे भग तू धन को देते सन् हमारी  
 (रे) इस धी (प्रज्ञा वा कर्म) को ऊंची (चा) चला जैसे सूक्ष्मार्थों को देखें  
 तैमें करि इति भावः ॥ किं च हे भग हमें गो और अश्वों करि बटा। हे  
 भग हम मनुष्यों (पुत्रादिकों) करि मनुष्यवन्त प्रकर्षेण हों ॥३६॥

दुर्गन्तानीं भगवन्तः स्यामीत प्रयित्वऽउत मध्येऽश्व-  
 न्नाम्। उतोदिता मयवन्तसूर्यस्य वयं देवानां सुम-  
 ती स्याम ॥३७॥

हे मयवन्त (धनवन्त नृवन्त) और भी हम ऐसे भगवन्त (धनवन्त वा ज्ञान

वन्त) हैं और सूर्य के अस्तमय में भग०। और मध्यदिन में भग०। और सूर्य के उदय में भग०। किं बहुना सर्वदा हमारी धनवन्ता हो इत्यर्थः॥ किं च देवताओं की कल्याण बुद्धि में हम हैं अर्थात् देवता हमारे में शोभना अनुग्रह विषया बुद्धि धारण करें ॥३७॥

भग एव भगवाँ ॥ ३७ ॥ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्या-  
म। तं त्वा भग सर्व इज्जोहंवीति स नो भग पुराणा  
भवेत् ॥ ३८ ॥

हे देवताओं भग ही भगवान् (धनवान्) हो फिरि क्या अदाता धनी दे-  
वताओं करि इति भावः॥ तिस भगदत्त धन करि हम भगवन्त हैं। ए-  
वं देवानुत्क्याथ भगमाह हे भग सब ही मनुष्य तिस (प्रसिद्ध) तुम्हें  
इष्टसिद्धि के अर्थ अत्यन्त आह्वान करता है हे भग सो तू इस हमारे  
कर्म में अग्रयायी हो अर्थात् अग्रे सर होके सब कार्यों की साधि ॥३८॥

समध्वरायोषसो नमन्त दधिकावेव शुचये पदाय।  
अर्वाचीनं वसुविद् भग नो रथमिवाश्वा वाजिन  
आवहन्तु ॥ ३९ ॥

प्रातः काल के अधिष्ठाता देवता अध्वर के अर्थ प्रह्वी होते हैं के-  
से कि दधिकावा (अश्व) जैसे अग्न्याधान के अर्थ शुचि पद की।  
ने देवाः भग (आदित्य) को हमारे अभिमुख आगमन करावें कैसे म-  
ग कि वसु (धन) लाभ होता है जिस से तैसे। पुनः कैसे कि जैसे  
वाजिनः (वेगवन्त वा अन्नवन्त) घोड़े रथ की चलाते हैं ॥३९॥

अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भ-

द्राः। घृतं दुहोना विश्वतः प्रपीता यूयं यात स्वस्ति-  
भिः सदा नः॥४०॥

उषो देवत्या त्रिष्टुप्। उषा ऐं सदा काल हमारे अज्ञान लक्षणापाव  
को छुड़ावें। कैसी उषा ऐं कि अश्वं वती ऐं गोमती ऐं वीरवती ऐं क-  
ल्याणरूपाः जल को क्षरती ऐं सर्वतः धर्मार्थकामों को बढ़ाती ऐं।  
एवं परोक्षं प्रार्थ्य प्रत्यक्षमाह हे उषाओ तुम स्वस्तिओं (अविना-  
शों) करि हमें रक्षा करो॥४०॥

अ० ५. पूषन्तव व्रते वयं न रिष्येम कदा च न। स्तोतारस्त-  
इह स्मसि॥४१॥

हे पोषण्यो गायत्री त्रिष्टुभौ आद्या सुहोत्र दृष्टा द्वितीया ऋजिष्वा-  
दृष्टा। हे पूषन् तेरे कर्म में बतमाना हम कदापि विनाशन हों। किं-  
च इस कर्म में तेरे स्तुतिकर्तारः हों॥४१॥

पथस्यथः परियतिं वचस्या कामेन कृतोऽभ्युपान-  
दुर्कम्। स नो रासल्लुरुधश्चन्द्राग्रा धियं-धियं  
सीषधाति प्र पूषा॥४२॥

जो पूषा अर्कदेव को सर्वतः व्याप्त होता है कैसा कि वाञ्छितवेदे-  
क्तवचन करि अभिसुखी किया। कैसा अर्क कि सबमार्गों का स्वा-  
मी। वोह पूषा हमारे अर्थ शोकनाश करने हारे साधनों को देवों  
कैसे शोकनाश करने हारे साधन कि चन्द्राग्राः आल्हादक है  
अग्र जिन्हें की-तिन साधनों के करने में आल्हाद होता है। पुनः पू-  
षा सब कर्मों को प्रकर्षण सिद्धि करावै॥४२॥

त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः॥ अतो  
धर्माणि धारयन् ॥४३॥

वैष्णव्यो गायत्र्यो मेधातिथिदृष्टे द्वयार्कचो रेकवाक्यम् । जोवि-  
ष्णु (यज्ञ) तीनि पदों (अग्निवाद्यादित्यारव्यों) का व्याप्तहुआ । कै-  
सा विष्णु कि जगतका रक्षक अहिंस्य । क्या करन कि इन तीनि  
पदों धर्मों (पुण्यों • कर्मों) की धारण कराने ॥४३॥

तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवाथ्सः समिन्धते । विष्णो-  
र्यत्परमं पदम् ॥४४॥

तिस विष्णु (यज्ञ) का जो परमपद (ब्रह्मलक्षण) वोह ब्राह्मणलोग प्र-  
काशते (उपासते) हैं । कैसे ब्रा० कि विगत है संसार व्यग्रहार जिन्हें से  
(निष्कायाः जागरणशीलाः अप्रमत्ताः) ज्ञान कर्म में समुच्चय क-  
रने हार ॥४४॥

धृतवती भुवनानामभिधियोर्वी पृथ्वी मधुदुग्धे सुपे-  
शसा । द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मिण विष्कभितेऽ-  
अजरे भूरिरेतसा ॥४५॥

भरद्वाजदृष्टा जगती द्यावापृथिवी देवत्या । द्यावापृथिव्यो वरुण  
(आहित्य) की धरणशक्ति करि दृढी हैं अर्थात् वरुण ने अपनी  
शक्ति से दृढी करीं । कैसी हैं ते कि धृतवती हैं (उदकवती हैं) । भूतजातों  
की आश्रयाणीयें । उर्वी (वस्तीर्ण) पृथिव्यो (पृथुल) । उदक की  
बुहने हारी हैं । मुरूपाएँ । जररहिते । भूरिरेतसों (वहतरंत दालि) हैं म-  
ब भूतों के रेत तिन्हों से ही उत्पन्न होते हैं ॥४५॥

विशेषार्थः महत्त्वं विष्णुस्य धर्मं ।

ये नः सपत्न्या अप ते भवन्ति न्द्राग्निभ्यामववाधामहे  
तान् । वसवो रुद्रा आदित्या उपरिस्पृशो मोमं चेतोर-  
मधिराजमक्रन् ॥४६॥

विष्टुविष्टव्यहृष्टा लिङ्गोक्तदेवता । जे हमारे शत्रु ते अप (अपगतवी-  
र्यो निरुद्यमा पराभव) हों । यतः हमतिन शत्रुओं को इन्द्राग्निबल  
करि नाश करें । किंच आठौ वसु एकादश रुद्र द्वादश आदित्य ये मुँहें ऐसा  
करें । कैसा कि उच्चस्थानस्थित । उल्लूष । ज्ञातार । अधिपति । ईश्वर ॥४६॥

आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिर्यातं मधुपे-  
यमश्विना । प्रायुस्तु रिष्टु नी रपांश्चसि मृक्षतर्हं से-  
धतं द्वेषो भवतर्हं सचाभुवा ॥४७॥

हिरण्यस्तूपहृष्टा जगती अश्विदेवत्या । हे नासत्यो हे अश्विनो त्रि-  
गुण एकादशौ (त्रयस्त्रिंशत्संख्याक) देवों सहित मधुपेय (सोमपान)  
प्रति आशौ । किंच आयु बदाशौ । पापों को नाश करो । दोर्भाग्य  
को नाश करो । संयुक्तो होशौ । अष्टौ वसव इत्यादिना त्रयस्त्रिं  
शहेवा गणिताः ॥४७॥

एष व स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मानस्य का-  
रो ॥ एषा यासीष्ट तन्व वयां विद्यामेष वृजनं जी-  
रदानुम् ॥४८॥

अगस्त्यहृष्टा मारुती त्रिष्टुप् । हे मरुतः कारोः (यजमान का) यह स्तो-  
म और यह गीः सत्या और प्रियावाणी । तुम्हारे अर्थ वर्ते हैं इति  
शेषः । कैसे यजमान कि मान्दार्य (मैं मेरा इस स्वस्वामि सम्बन्ध-

को दारण करता है तिसवीं तरंग) की यद्वा मुझे दारण करता इत्ये-  
वं शत्रुओं के प्रत्यय को स्थापन करता तिसकी। वा मन्दार (कल्प-  
वृक्ष तिस) तुल्य अर्थात् कामपूरक की। मान्य (मानार्ह) की। किंच  
हे मरुतः तुम अन्ननिमित्त करि आओ किये कि हमारे बाल्य  
यौवन स्थाविर अवस्था सम्बन्धिनी देही की स्थित्यर्थ (हमारे श-  
रीर दृढी करने के लिये इति भावः)। किंच अन्न और बल को हम प्राप्त हों के-  
से अन्न बल कि जीवित दातु (अन्न और बल को प्राप्त हों इति प्रार्थना) ॥४८॥

सहस्रोमाः सहस्रन्दस आवृत्तः सहप्रमा ऋषयः

सप्त दैत्याः । पूर्वेषां पन्थामनुदृश्य धीरा अन्वाले-

भिरे रथ्यो न रश्मीन् ॥४६॥

ऋषिसृष्टिप्रतिपादिका त्रिष्टुप् प्राजापत्यो यज्ञहृष्टा। देव्याः सप्त ऋषयः देव (प्राजापति) के ये (प्राजापतिप्राणभिमानिनः सप्त ऋषयः भरद्वाजः कश्यपः गोतमः अत्रिः वसिष्ठः विश्वामित्रः जमदग्निः संज्ञाः)। अन्वालेभिरे (सृष्टवन्तः सृष्टियज्ञ को इति शेषः)। क्या करिके कि अधस्तन कल्पोत्यन्त्रों अवसिताधिकारों के मार्गों को देखि अर्थात् पूर्व कल्पोत्यन्त्र ऋषियों करि जैसे सृजा गया तैसे सृजते हुए (सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयदित्युक्ते)। कैसे कि जैसे रथ्यः (रथमें साधु) दृष्ट देशप्राप्त्यर्थ पहिले रश्मियों (ग्रहों) को आलभते (स्पर्शकरता वास्तवता है) तैसे ते भी सृष्टि यज्ञको सृजते हुए। कैसे ऋषयः कि स्तोमसहिताः। गायत्र्यादि छन्दों करि सहिताः। आवृत् (कर्म) सहिताः। अद्वासत्यप्रधान कर्मों के

+ इमावेव गातमम रद्वाजाविति शत० १४५२६ श्रुतेः ।

अनुष्ठातारः । प्रभा सहिताः (शब्दप्रमाणपरोक्षानतत्पराः॥धीरः  
(धीमन्तः॥४५॥

आयुष्यं वर्चस्पृष्टं रायस्योषमोद्भिदम् । इदं हिर-  
ण्यं वर्चस्वज्जैत्रायाविशतादु माम् ॥५०॥

तिस्रः उषिक् शक्करीत्रिष्टुभः दक्षदृष्टाः । हिरण्यस्तुतिः । यह हिर-  
ण्य जय के अर्थ मुरु विषे तिष्ठे । कैसा कि आयु के अर्थ हित तेज  
के अर्थ हित धन का वर्धक उद्भिद (धन वा स्वर्ग का प्रकाशक) व-  
र्चस्वत् (अन्नसंयुक्त) ॥५०॥

अ० ६० न तद्रक्षांश्च न पिशाचास्तरन्ति देवानामोजः प्रथ-  
मजं ह्येतत् । यो विभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं स देवेषु  
कृणुते दीर्घमायुः समनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः ॥५१॥

रक्षसलोग और पिशाचलोग तिस हिरण्य को नहीं हिंसा कर स-  
कते क्यों कि यह हिरण्य प्रथमोत्पन्न देवताओं का तेज ही है । अतः  
एव जो हिरण्य को दाक्षायण (अलंकारत्व) करिधारण करता है  
वोह देवलोक में बहुत काल तक बसता है और वोह मनुष्य लोक  
में अपनी आयु को दीर्घ करता है (मनुष्यायु को अतिक्रम्य  
जीवता है) ॥५१॥

यदा बध्नन् दाक्षायणा हिरण्यं शतानी काय सुम-  
नस्समानाः । तन्मः आवध्नामि शतशोरदायायु-  
ष्मान्तरदेष्टुर्यथासम् ॥५२॥

दाक्षायणाः (दक्षवंशोत्पन्ना ब्राह्मणाः) जिस हिरण्य को शतानी-

क (बहुत सैन्यों वाले) राजा के अर्थ बाँधते हुए। कैसे दाक्षायणादि सुमनस्यमानाः (मन में शोभन ध्यान करते शोभन मन करते) वोह हिरण्य अपने में बाँधता हूँ किस लिये कि शत शरदजीवने के अर्थ। जिस प्रकार हिरण्य बन्धनारंभ करि में दीर्घजीवी और जरदष्टि जरा को व्याप्त वा जरा प्राप्त शरीर होऊँ तेसे बाँधता हूँ ॥५२॥

उत नोर्हिर्बुध्यः शृणोत्वज एकपान्पृथिवी सं-  
मुद्रः। विश्वे देवा ऋतावृधो हुवाना स्तुता मन्त्राः  
कविशस्ता अवन्तु ॥५३॥

ऋजिष्वदृष्टा त्रिष्टुप्। और अहिर्बुध्यः (रुद्रविशेषः) सुनें हमारे वचनों की इतिशेषः अज एकपात् (रुद्रवाप्राण) सुनें और पृथिवी सुनें और समुद्र सुनें और विश्वे देवा सुनें। और सुनि के ते अहिर्बुध्यादयः हम को पालन करें कैसे हैं ते किं ऋत (सत्य वा यज्ञ) के बढाने हारे। मन्त्रों करि स्तुताः। कविशस्ताः (मेधावियों) करि पूजिताः ॥५३॥

इमा गिर आदित्येभ्यो घृतस्त्रुः सनाद्राजभ्यो जु-  
ह्वो जुहोमि। शृणोतु मित्रोऽर्यमा भगो नस्तुविजा-  
तो वरुणो दक्षोऽर्धशः ॥५॥

गार्तमदो कूर्मदृष्टा आदित्यदेवत्या त्रिष्टुप्। इसवाणी जुहू (स्त्रुचा) करि आदित्यों के अर्थ होमता हूँ (स्तुतिलक्षणावाणी बुद्धिरूपा सुचा करि आदित्यों के अर्थ समर्पण करता हूँ। कैसी वाणी कि घृतस्त्रुः (घृत प्रसारिणी वा घृत होम सहचरिता। कैसे आदित्यों कि चिर-



काल दीप्यमानों के अर्थ। वोह सुचाह्यमाना हमारी वाणी सुनें।  
 कौन कि मित्र अर्पमा और भग। नुविजातः (त्वष्टा वा वान। व-  
 रुण दक्ष और अंश। एते सूर्यविशेषाः ॥५४॥

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सदम-  
 प्रमादम्। सप्तापः स्वपतो लोकमीयुस्तत्र जागृताः  
 अस्वप्नजो सत्रसदौ च देवौ ॥५५॥

अध्यात्मवादिनी जगती। सप्त ऋषयः (प्राणाः त्वक् चक्षुः श्रवण-  
 रसना घ्राण मनो बुद्धिलक्षणाः) शरीर में व्यवस्थित हैं ते ही सा-  
 तों सहकाल सावधान जैसे तैसे शरीर को रक्षा करते हैं। ते मातों  
 सोते हुए मनुष्य के लोक (आत्मा) को प्राप्त होते हैं। कैसे हैं सातों  
 कि आपः (व्याप्त होते हैं देह को) तहां तिन ऋषीओं की लोकगम-  
 नावस्था में देवौ (दीप्यमानों, प्राणपानों) जागरण करते हैं। कैसे  
 कि अस्वप्नजौ (नही निद्रा जाती है जिन्हें में) तथा सत्रसदौ (जी-  
 वितदातारौ) ॥५५॥

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे। उप प्रय-  
 न्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राश्नुर्मवा सचा ॥५६॥

तृचो ब्रह्मणस्पतिदेवतः द्वे बृहत्यौ अधोरोकएवदृष्टे तृतीयान्नि-  
 ष्टूप गृत्समदृष्टा। हे ब्रह्मणस्पते (ब्रह्मणः देवस्य पते) उत्तिष्ठ (ऊ-  
 चा आरब्ध कार्य हो) क्यों कि हम देवताओं को चाहने हारे तुम्हें  
 याचना करते हैं अतः आगमन कर। तेरे आने के समीप में  
 मरुतः आवें। कैसे मरुतः कि सुदानवः (शोभनदातारः) हे इन्द्र

तू भी सहगमन के अर्थ प्रकर्षेण शीघ्र हो ॥५६॥

प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं ब्रह्मव्युक्थ्यम् । यस्मिन्नि-

न्दो वरुणो मित्रोऽग्निर्यमा देवा ओकांक्षसि चक्रिरे ॥५७॥

ब्रह्मणस्पति निश्चय उक्थ्य (शास्त्रयोग्य) मन्त्र को प्रकर्षेण उ-  
च्चारता है कि जिस मन्त्र में इन्द्र वरुण मित्र अग्निर्यमा और अ-  
न्यदेवाः निवासों को करते हुए । अर्थात् सर्वदेवाधारभूत श-  
स्त्रपठनीय मन्त्र की कहिता है ॥५७॥

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं

च जिन्व । विश्वं तद्भद्रं यदवेन्ति देवा बृहद्वदे-

म विदथे सुवीराः ॥ य इमा विश्वा विश्वकर्मा

यो नः पिता नैषते नैस्य नो देहि ॥५८॥

इति संहितायार्थ षष्ठोऽनुवाकः ६

इति श्री शुक्लयजुषिमाध्यन्दिन शार्वीयायां वाज-

सनेय संहितायां दीर्घपाठे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

हे ब्रह्मणस्पते यतः तू इस जगत का नियन्ता है अतः प्रार्थना  
है कि मेरी कही स्तुति को बोधन करि । और मेरे तनयों (अपत्यों)  
को प्रीति करि । देवाः जिस भद्र (कल्याण) को पालन करते हैं  
बोह सब भद्र हमारे को हो इति शेषः । किं च सुवीराः (कल्याण-  
पुत्राः) हो कर हम यज्ञ में बृहत् (महत्) बोलें (देवो भोगो इत्या-  
दि उच्चारण करें) ॥ अथ चतस्रः कण्डिकाः प्रतीकोक्ताः य इमा  
विश्वा भुवनानि जुह्वत् १०-१० विश्वकर्मा विमनाः १०-२६ यो

नः पिता १७.२७. अन्नपतेऽन्नस्य नो देहि १७.८३. इति। ता ब्रह्म-  
यज्ञेऽध्येयाः॥५८॥

इति भाष्ये षष्ठोऽनुवाकः६

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दनिवारयन्

पुमार्थाश्चतुरो देयात्स्वयं ब्रह्मसनातनः३४

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीयशारवाध्येतृव्याघ्रपादा-  
न्वयविश्वामित्रपुराधियश्रीमज्जयकिशोरदेववर्मात्मजरो-  
क्मिणेयचूषतिगिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपेगिरिधर-  
भाष्येरिवलप्रकरणे ब्रह्मयज्ञवर्णनो नाम चतुस्त्रिंशोऽध्या-  
यः॥३४॥

॥समाप्तोऽयं ब्रह्मयागः॥

॥

॥

हरिःॐम्

ओंनमोयज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्वद्भूत्यकम्

स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः३४

अध्यायस्य पितरो देवता आदित्या ऋषयो देवावा

अ० १.

अपेतो यन्तु पणयोऽसुम्ना देवपीयवः। अस्य लो-  
कः सुतावतः॥द्युभिरहोभिरक्षुभिर्व्यक्तं यमो दे-  
दात्ववसानमस्मै॥१॥ + अ-तः। अ०द्यु-स्मै। इ०॥१॥

ओंनमोयाज्ञवल्क्याय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके

पञ्चत्रिंशोऽयमध्यायः पितृमेधार्थं द्रव्यते३५

त्रयस्त्रिंशोऽध्याये सर्वमेधसम्बन्धिनः कियतो मन्त्रानुक्ता प्रवायु-  
मच्छेत्यारभ्य ३३. ५५. अनारभ्याधीतान्मन्त्रानुक्ता चतुस्त्रिंशोऽ-  
ध्याये तानेव समाप्येदानीं पञ्चत्रिंशोऽध्याये पितृमेधसम्बन्धि-  
नो मन्त्रा उच्यन्ते स च पितृमेधो मृतस्य वर्षास्मरणे भवति वर्ष-  
स्मृतौ तु विषमवर्षेषु भवति एकतारकनक्षत्रे चित्रादेो दर्शो चाग्नी-  
ष्ये शरदि माघे भवति ॥ पितृमेध करनेहारे द्विज करि कुम्भ में  
अस्थिसंचय करिये हैं। और मृतक के जितने अमात्य पुत्र पौ-  
त्र हैं तितने कुम्भ कर्मदिन में लाइयें हैं और कुम्भों से अधि-  
क छत्र हैं। ततः अरण्य में कुम्भ विषे किये अस्थिसंचयन को ग्र-  
मसमीप में लाकर शय्या में कुम्भ को स्थापन करि वस्त्र के एक  
देश से वेष्टन करि लोहमय बाजों के बाजते और वीणा के बाजते  
में मृतक के पुत्र पौत्र उत्तरीयों और वीजनाओं से अस्थि कुम्भ को  
बीजते हुए तीनि-तीनि प्रदक्षिणाएँ फिरें। कोईक आचार्यस्त्रियों  
को भी फिरना कहिते हैं। रात्रि के पूर्व मध्यअपरभागों में तिसदि-  
न विषे बहुत अन्नदान करते और नाचते गाते बजाते और अस्थि-  
कुम्भ के अर्थ अन्न को उपहरते हैं। फिर उपप्रात अस्थिकुम्भस-  
हिताः पूर्वोक्त कुम्भों और छत्रों कैलेकर ग्राम से दक्षिण दिशा को बा-  
हिर चलते हैं अध्वर्यु यजमानामात्याः ॥ प्रमशानान्तकर्म करते जैसे  
रवि उदय हो तैसे रात्रि में आरम्भ करना तहां वन में चलि के ग्राम  
से मार्ग से और अश्वत्थ तिल्वक हरिद्र सूर्जक विभीतक श्लेष्मान्त-  
क को विदारादिकों से दूर में अन्यवृक्षगुल्मादिवृत वा ऊषर वा उ-

दक्षवण दक्षिणवण वा सम में वा सुखकारि रम्य में वन वा उ-  
 दक में पूर्वभाग वा उत्तरभाग में वर्तमान गर्तवान् वीरणतृणवान्  
 प्रदेश में श्मशानार्थे दिक्कोण पुरुषप्रमाणक्षेत्र को मान करते हैं।  
 तत्कालं द्वि पुरुषं समचतुरस्रं कृत्वा कंरणीमध्येषु शङ्कुवः स समा-  
 धिरिति यजुः परिशिष्ट ०७२ शुल्वांक्तविधि करि वोह चतुरस्र उ-  
 त्तर और पश्चिम से पृथु (विशाल) होता है। तत्र साधन प्रकारः पूर्व  
 दक्षिणपार्श्वों से नौ अङ्गुल अपने त्रयोदशांश करि अङ्गुलचतु-  
 र्थ भाग सहित पुरुषप्रमाणमध्य में न्यून करियें हैं पश्चिमोत्तरपा-  
 र्श्वों से तितने पुरुषप्रमाण से अधिक तथा हि पुरुषमात्रक्षेत्र की  
 अक्षणाया प्राची करिके तिस के प्रान्तों में शङ्कुएँ रवि सार्धाष्टादशा-  
 ङ्गुलहीना पुरुषद्वयप्रमाण उभयतः पाशा रज्जु को मध्यमदेशमें  
 सलक्षणकरिके पूर्वा शङ्कुओं से तिस की पाश छोडि मध्यलक्षण  
 करि दक्षिण से चलाय दक्षिण कोण साधियें है ततः सार्धाष्टादशा-  
 ङ्गुलाधिका पुरुषद्वयप्रमाण रज्जु उभयतः पाशा को मध्यलक्षणपु-  
 ता करिके शङ्कुओं के पाश छोडि मध्यलक्षण करि उत्तरतः चलाय  
 उत्तरकोण साधियें है इति। ततः पूर्वादिकोणों में पालाश शमी वा-  
 रण अशमयचारि शङ्कुएँ रवियें हैं। इस कर्म करनेहारों के निक-  
 ट में कोई यजमान पुरुष तृणपूलक ऊँचा करिके धारण करे। क-  
 र्म समाप्ति में घर को आ कर तिसै घर में ऊँची करे प्रजावृद्धि के अ-  
 र्थ। इत्यादि बोध्यम् ॥ कात्यायनः २१.३.३२ अप्रादक्षिण्येन नि-  
 ष्यादिन कीर्त्तुं रज्जु से तिस क्षेत्र को समन्तात् अप्रादक्षिण

वेष्टित करि अपेतो यन्त्विति मन्त्रेण क्षेत्रमध्यपतित तृणपर्ण-  
दिकों को पलाशशारवा करि क्षेत्र से बाहिर निकालै इति सूत्रार्थः।  
अस्याध्यायस्य पितरो देवता आदित्या ऋषयो देवा वा। आद्या  
गायत्रीः पण्यः। (परायेद्रव्य को व्यवहार करने हारे असुरलोक)  
निकलजावें। कैसे पण्यः कि असुम्नाः। (असुरवकराः)। तथा देव  
पीयवः। (देवताओं के द्वेष करने हारे)। किमिति असुराणां अपग-  
मोऽर्थ्यते तत्राह इस अस्थिभूत यजमान का यह लोक (स्थान)  
है। कैसे यजमान कि सोमाभिषव करने हारेका॥ युभिरहोभिरि-  
ति यजुः॥ यम इस यजमान के अर्थ अवसान (स्थान) दे। कैसे  
स्थान कि युओं। (ऋतुओं)। दिवसों और रात्रियों करि स्पष्टी कि-  
या (अर्थात् ऋत्वाद्यधिष्ठातृ देवताओं से प्रकटित स्थान इ-  
स के अर्थ यम देवै॥१॥

सविता ते शरीरेभ्यः पृथिव्यां लोकमिच्छतु। त-  
स्मै युज्यन्ता मुस्त्रियाः॥२॥

का० २१० ३० ३४ फिरि अध्वर्यु तिस पलाशशारवा को दक्षिणमा-  
ही निकालि परिश्रितों से वेष्टन करि तिस क्षेत्र के दक्षिणतः  
वा उत्तरतः छै ६ बेलों करि हल को जोड़े तिस युज्यमान में युद्धे-  
ति सम्प्रेष्य सवितेति मन्त्र को जपे॥ गायत्री। हे यजमान सूर्य तेरे  
शरीरों के अर्थ पृथिवी में स्थान को इच्छा करे। (सविता की आज्ञा बि-  
ना कोई भी ठगने को समर्थ नहीं होता।) द्वितीयं वाक्यमाह तिस स-  
विता करि दिये क्षेत्र के संस्कारार्थ अनङ्गाहः युक्ता होंवें॥२॥

तदेन मुत्तुमिश्वा हारा वेत्र मन्त्रेण करेतीति श्रुतेः॥३०॥३१॥

वायुः पुनानु सविता पुनात्वग्नेर्भोजसासूर्यस्य  
वर्चसा। विमुच्यन्तामुस्त्रियाः॥३॥†

का० २१-४-१-२-अधर्यु सर्वतः वेष्टित रज्जु को अनुलक्षी क-  
रिके वायुः पुनात्विति प्रतिमन्त्रं पादेन-पादेन सीताएँ (हला-  
ये-हरैया) अप्रदक्षिण कृषे (जोते) तहां पहिली सीता उत्तर  
पार्श्व में पश्चिम को कृषे दक्षिणतः सीरयोजनपक्षेऽपितिससी-  
र (हल) को अप्रदक्षिण उत्तर से लाकर पहिले उत्तर से ही क-  
षे ॥ चत्वारि यजूंश्च १-३- है-पं० २-४- है-वि० लिङ्गोक्तदेवतानि।  
हे पृथिवि तुम्हें वायु पुनानु (विदारै) सूर्य तुम्हें विदारै। अग्नि दीप्ति करि  
और सूर्य तेज करि तुम्हें विदारै ॥ का० २१-४-४- एवं पूर्वोक्त चारों मन्त्रों से  
चारों पार्श्वों में कर्षण करिके मध्य में भी सर्व क्षेत्र जैसे कृष्ट हो  
तैसे परिमिताः सीताः करिके बेलों को हल से छोड़े विमुच्यन्ता-  
मिति ॥ है-ज० वृषदेवत्यम्। उस्त्रा (धेनुतिस) के अपत्य उस्त्रियाः  
(अनुद्धाहः) सीरसे छूटे ॥३॥

अश्वत्थे वो निषदनं पूर्णे वो वसतिष्कृता। गोभा-  
ज इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम् ॥४॥

का० २१-४-४- हल को दक्षिण दिशा में चुपके से फेंकि जुते क्षे-  
त्र में सर्वोषधि बीवें ॥ अनुष्टुप् व्याख्याता १२-७४- ॥४॥

सविता ते शरीराणि मातुरुपस्य आवपतु। तस्मै  
पृथिवि शं भव ॥५॥

का० २१-४-५- तिस पुरुषमात्र क्षेत्र के मध्य में मृतक के अस्थियों

† नदप्रसववि पर्याहृत्यो नरतः। प्रतीची प्रथमाधरसीता कृषति वायुः पुनात्विति  
सविता पुनात्विति जयनाथिन दक्षिणमरनेर्भोजसिति दक्षिणधेन प्राची धे-  
सूर्यस्य वर्चसेत्यग्रेणादीचीमिति १३-८-२-६- अने ॥

की राशि करें और यह कर्म सूर्योदय काल में कर्तव्य है + ॥ सवित-  
देवता गायत्री। हे यजमान सूर्य तेरे शरीरों (अस्थियों) को माता  
(पृथिवी) की अवस्थ (गोदी) में स्थापन करें। हे पृथिवी तिस सविता  
करि स्थापन किये यजमान के अर्थ सुखरूपा हो ॥ ५ ॥

प्रजापतौ त्वा देवतायामुपोदके लोके निदधाम्यसौ॥

अप नः शीशुचदधम् ॥६॥

उष्णिक् प्रजापतिदेवत्या अस्थिनिवापे एव विनियुक्ता। असा-  
विति नाम ग्रहणम् अनुदात्तत्वात्तमन्त्रितम्। हे देवदत्त उद-  
क समीवर्तिस्थान में प्रजापति देवता विषे तुमै स्थापन करता हूं। वो  
ह प्रजापति हमारे पाप को अत्यर्थ दहै यद्वा हमारे सै निकालि-  
हमारे शत्रु को दहै † ॥ ६ ॥

परं मृत्योः अनु परं हि पन्थां यस्तेऽन्य इतरो  
देवयानोत् । चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा  
नः प्रजाथं रीरिषो मोत वीरान् ॥७॥

का० २१०४७ दक्षिण की चलि कर चुपके सैं कुम्भ को डालि-  
कर लौटि। यह कोई विप्र भेजा है तिस के कुम्भ को डालि कर  
लौटते में यजमान वा अध्वर्यु जयै ॥ मृत्युदेवत्या त्रिष्टुप् संक-  
सुकदृष्टा। हे मृत्यो पराङ्मुख होके पर (अन्य) पन्था को अनु-  
गमन करि। तमेव दर्शयति जो कि तेरा पन्था देवयान मार्ग  
से इतर (तुल्य) अन्य (पितृयानाख्य) है। किं च चक्षुष्मान् (जा-  
नी) और सुनने हारा तेरा कुछ एक कहिता हूं। आदरार्थ क्व



नम् नहि तस्यादृष्टमश्रुतं वास्तिषष्ठ्यर्थे चतुर्थ्यो) क्या कि  
हे मृत्यो हमारी प्रजा (संतति-वंशपरम्परा) को मत हिंसा क  
रि और हमारे वीरों (पुत्रों) को मत हिंसि ॥७॥

शं वातः शर्हं हि ते घृणिः शं ते भवन्तिष्टकाः  
शं ते भवन्त्वग्नयः पार्थिवासो मा त्वाभिभू-  
शुचन् ॥८॥

का० २१०४०८० शंवात इति हो मन्त्रों करि तिन मध्य में न्युप्त-अ-  
स्थिओं को यथाङ्ग (जो अस्थि जिस अङ्ग का तिस अस्थि से  
तिस अङ्ग) को कल्पना करि आकाश पुरुषाकृति करिके ति-  
स के मध्य में पादमात्री दृष्टका को चुप के से रखें ॥ द्वे अचाचनु-  
ष्टुब्धहृत्यो विश्वदेवदेवते । हे यजमान वायु तेरा सुखरूप हो । हि  
(पुनः) घृणिः (सूर्यकिरणः) तेरा सु० दृष्टका मध्य में और प्रतिदि-  
शा तीनि-तीनि डाली हुई तेरी सु० हों । और अग्निहोत्र तेरे सु० हों ।  
और पृथिवी में हुए अग्निहोत्र तुम्हें सर्वतः न तपावें ॥८॥

कल्पन्तां ते दिशस्तुभ्यमार्यः शिवतमास्तुभ्यं भ-  
वन्तु सिन्धवः । अन्तरिक्षं शिवं तुभ्यं कल्पन्तां  
ते दिशः सर्वाः ॥९॥

दिशाएँ तेरे अर्थकृता होंवें । जल तेरे अर्थ कल्याणकारिणीएँ  
होंवें । और सिंधुएँ (समुद्र वा नदिहोत्र) कल्या० । अन्तरिक्ष (आका-  
श) तेरे अर्थ कल्याणकारिहो । सब दिशाएँ तेरे अर्थ कृता हों । आ-  
दरार्थ कात्स्न्यार्थ वा पुनर्वचनम् ॥९॥

अश्वमन्वती रीयते सर्धं भधमुत्तिष्ठत प्रतरता  
सखायः। अत्र जहीमोऽशिवा येऽसंख्वान्वय-  
मुत्तरेमाभि वाजान् ॥१०॥

का० २१४. २२. गर्त वा पूर्वे वर्जित कृषी (जुती) दुई दिशासै मृदा  
लेकर तिस सै विष का मुखमित क्षत्रिय का उरोमित वैश्य का ऊ-  
रुमित स्त्री का भगमित शूद्र का जानुमित वा सर्वों का जानुमित  
ऊँचा श्मशान को करि शौवल और कुशाओं सै आछादि तिसके  
दक्षिणातः दो गर्त खोदि दूधजल सै सम्पूरि श्मशान के उत्तर में सा-  
त ७ गर्तों को खोदि दक्षिणोत्तरों को जल करि पूरि उत्तर गर्तों में  
अध्वर्यु यजमान अमान्य तीनि पाषाणों को डालि कर अश्वमन्व-  
तीरिति मन्त्र करि तिस गर्त के ऊपर चलते हैं ॥ विश्व देवदेवत्या  
त्रिष्टुप् सुचीकहृष्टा। हे मित्रओ यह पाषाणवती नदी चलतीहै इसहेतु  
तुम उतरने के अर्थ प्रयत होओ। उगे (अभिसुरवहोओ) प्रकर्षेण ति-  
स नदी को तरो। किमिति क्यों कि इस प्रदेश में जे अशिवाः (अशा-  
न्ताः दुष्टा राक्षसादयः) हैं तिन्हें हम परित्याग करते हैं तिन्हें केत्या-  
गने में सुरव करें वाजो (अन्न विशेषों) को हम प्राप्त करावेंगे ॥१०॥

अ० २. अपाघमप किल्बषमप कृत्यामपो रपः। अपामा-  
र्ग त्वमस्मदप दुःष्येष्ट सुव ॥११॥

का० २१४. २३. ते अमात्या यज्ञोपवीतिनः होके जल का उपस्पर्-  
श करि हाथ में लिये अपामार्ग करि अपने शरीर को शोध के  
चित् अपामार्गवीजों सै उद्धर्तन करें ॥ लिङ्गोक्तानुष्टुप् शुनः शेष-

दृष्ट्वा दुःस्वप्ननाशनी । हे अपामार्गं तू हमारे सकाश से अघ (मान-  
सपाप) को दूर चलाय । और किल्बिष (कीर्तिभेदक कायकपाप)  
को दूर चलाय । और कल्पा (परकृत अभिचार) को दूर । और रपः (वाचिक  
पाप) को दूर । और दुःस्वप्न से उसे असुरवरूप फल को हम से  
दूर चलाय ॥११॥

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्त  
स्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥१२॥

का० २१.४.२४. सुमित्रिया इति मन्त्रेण स्नान करिके नूतनवस्त्रों  
को धारण किये अनङ्गाहमिति मन्त्रेण वृषपुच्छ को स्पर्श क-  
रि उद्वयमिति मन्त्रेण यजमानामात्या ग्राम को आते हैं यद्य-  
पि यहां सुमित्रिया इस मन्त्र से स्नान कहा तथापि सुमित्रिया  
इति जल अञ्जलि करि लेके दुर्मित्रिया इति शत्रु को सींचे  
का० १४.५.५५. द्वयं विधेयम् । दुर्मित्रिया -- द्विष्म इति यामस्य  
द्वेष्ट्यः स्यातां दिशं परासिञ्चते नैव तं पराभावयतीति १३.७.  
४.५. श्रुतेः ॥ व्याख्याता ई. २३॥ १२॥

अनङ्गाहमन्वारमामहे सौरमेयथं स्वस्तये । स न  
इन्द्र-इव देवेभ्यो वह्निः संतारणो भव ॥१३॥

अनुष्टुप् अनुदुहेवत्या उत्तरोऽर्थर्चः प्रत्यक्षकृतः ततः सर्वना-  
म्नोऽध्याहारेण सामर्थ्यम् । हम स्वस्ति (अविनाश) के अर्थ अ-  
नङ्गाह को स्पर्श करते हैं कैसे कि सुरभी के अपत्य को । हे अनङ्ग-  
नू सो तू हमारा दुःस्वप्ननाशक हो । किं च तू वह्नि (देवताओं का

वोदा । तत्र दृष्टान्तः जैसै इन्द्र देवताओं के अर्थ तारक हैं ॥ १३ ॥

उदयं तमसस्परिस्वः पश्यन्त उतरम् । देवं देवत्रा  
सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ १४ ॥

उदयं तमिति ग्राम को आते हैं । व्याख्याता २०२१ ॥ १४ ॥

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरोः  
अर्थमेतम् । शतं जीवन्तु शरदः पुरुचीरुत्तमं  
त्यु दधतां पर्वतेन ॥ १५ ॥

का० २१०४२५ स्वनिवासग्राम और शमशान के मध्य में बड़ा भा-  
री मृदा का ढेला अध्वर्यु ही रखे ॥ मृत्युदेवत्या मनुष्यदेवत्या  
त्रिष्टुप् संकसुकदृष्टा । जीवों (विद्यमान जन्तुओं) के अर्थ परिधि  
(मर्यादा) की स्थापन करता हूँ कथमिति चेत् कि इन जीवों के मध्य  
में अपर (कोई) क्षिप्र (वेदोक्त आयु से बरें) इस अर्थ (पितृलोक  
गमनकार्य को उद्देश करि) न जावें । ये जीवाः शतवर्षायुषः हों  
कैसे शतवर्षायुषः कि पुरुचीः (दानाध्यनयागानुकूलाः) किंच  
पर्वत (लोष्ट ढेले) करि ही मृत्यु को अन्तर्हित करें ये जीवाः ॥ १५ ॥

अग्नः आयुः क्षिपवसः आसुवोर्जमिषै च नः । आ-  
रे बाधस्व दुष्कुनाम् ॥ १६ ॥

का० २१०४२६ कज्जलादि करि नेत्रों को आँजि तेल से पेरों को चु-  
परि औपासन करने आवश्यक्याग्नि को दर्भों से परिस्तरण क-  
रि वारणवृक्ष के अवयवों से चारि ४ परिधिओं को चारों दिशा  
में चुप के से शरि वारणस्तुवा कारि एका आहुति दो १ ऋचा

† अथर्व आध्यायि आध्यायान्न इति

श्रीं + से होमें। औपासनः प्रेतस्यैव तस्यैवाद्वारेण निरसनीयत्वा-  
दिति हविस्वामिनः कर्तुरेवौपासने होमस्तस्यैकदेशनिरसनमि-  
ति कर्कोदयः॥ व्याख्याता १६७३८॥ १६॥

॥ पायुष्मानग्ने हविषा वृधानो घृतप्रतीको घृतं  
 योनिरेधि । घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पु-  
 त्रमभिरक्षतादिमान्स्वाहो ॥ १७ ॥

अग्निदेवत्या त्रिष्टुब् वैरवानसदृष्टा । हे अग्ने तू ऐसा हो केसा  
कि आयुष्मान् (चिरंजीवी) । तथा हवियों करि वृद्ध । तथा मृत  
मुरव जिस का । घृत उत्पत्तिस्थान जिस का (उत्तरवेद्याधार गा-  
भिप्रायमेतत् । सो तू गो सम्बन्धि घृत को पीकर इन जीवों को  
समन्तात् रक्षा करि । तत्र दृष्टान्तः जैसे पिता पुत्र को रक्षा क-  
रता है । केसा घृत कि मधुर चारु (सुगन्धि) स्वाहा (सुहृत्तम-  
स्तु ॥ १७ ॥

परीमे गार्मनेषत पर्यग्निमहृषत। देवेष्वक्रत  
श्रवः क इमां राज आदधर्षति॥१८॥

का० २१४०२१० अध्वर्यु यजमानामात्यो का परिदा (रक्षण)  
संज्ञक मन्त्र परीमे गामिति कहै ॥ इन्द्रदेवत्यानुष्टुप् भरद्वा-  
जात्मजशिरिम्बिठहृष्टा। ये जीवलोग गो (अनडाह) को प-  
रिणीतवन्तः (अनुदुत्युच्छालभनाभिप्रायम्। और ये जीवलो-  
ग अग्नि को परिहृतवन्तः (यस्मिन्नग्नावेतत्कर्म कृतं तं परि-  
जहूः। अद्वारेणोपासनं निरस्यतीत्येतदभिप्रायम्। ये देवाः

(कर्म में प्रकाश करते ऋत्विजः) तिन्हों में अबः (दक्षिणास्त-  
क्षण-धन) करते हुए। अतः इन कर्मों से कृतकृत्य हुए इन जी-  
वों को कौन निरस्कार करने को समर्थ होगा (अशक्यप्रतिक्रि-  
या ये हुए इति भावः ॥ १८ ॥

क्रव्यादमग्निं प्रहिणोमि दूरं यमराज्यं गच्छतु  
रिप्रवाहः। इहैवायमितीरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं  
बहन्तु प्रजान् ॥ १९ ॥

का० २१.४.२८. आहुतिहोम के अनन्तर जहां हुता तिस ओ-  
पासन के एकदेश को निरसे प्रेत का ही उपासन इस पक्ष में  
सब को निरसे क्रव्यादमित्यर्थेन ॥ अग्निदेवत्या त्रिष्टुप्। जि-  
स करि पुरुष जलता है तिस क्रव्यादअग्नि को अपुनरागम-  
न के अर्थ दूर पहुंचाता हूं बोहगया हुआ क्रव्यादाग्नि य-  
म के राज्य प्रति जावे कैसा कि रिप्रवाहः (पाप का नाश कर-  
ने हारा ॥ का० २१.४.२९. इहैवायमिति यजमान जपे ॥ यह  
क्रव्यादाग्नि से इतर (अन्य) जातवेदाः (जातः प्रज्ञानोऽग्निः)  
इस घर में देवताओं के अर्थ हवि को प्राप्त करें क्या करिके  
कि अपने अधिकार को जानिकर ॥ ॥ इति पितृमेधः समाप्तः ॥  
उपधानासन्दी वृषभ अजीर्णयवों को तिस के दक्षिणात्व क-  
रि देवे जो इच्छा होतो सुवर्णादि भी देवे ॥ १९ ॥

बह वपां जातवेदः पितृभ्यो यत्रैनान्वेत्य निहिता-  
न्यराके। मेदसः कुल्या उप तान्स्त्रवन्तु सत्या ए-

षामाशिषः संनमन्ताथं स्वाहा ॥२०॥

जातवेदो देवत्या त्रिष्टुप् । अस्या विनियोगः श्रौतसूत्रे नास्ति गृ-  
ह्यसूत्रे गति तथा हि पारस्कर० ३३ मध्यमाष्टका गोपशु करि-  
करिये है तिस धेनु की वपा को होमे वह वपामिति मन्त्रेण ॥ हे जा-  
तवेदः (जात है धन जिस से) पितरों के अर्थ तू वपा (धेनुसम्बन्धि-  
नी चर्मविशेष) को प्राप्त कर । पराक्रान्त (दूरभी) जिस देश में स्था-  
पितों इन पितरों को तू जानता है तहां प्राप्त कर इत्यर्थः । तिस वपा  
से निकले मेद (धातुविशेष) की कुत्याः (नदियें) तिन पितरों प्रति  
उपस्त्रवे (प्रसरें) किं च इन देनेहारों के आशिषः (मनोरथाः) सत्याः  
(अवितथाः) प्रह्वीहों । स्वाहा (सुहुतमस्तु) स्वाहेति ऋग्भिन्नं यजुः ॥२०॥

स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी । यच्छानुः  
शर्म सप्रथाः ॥ अप नः शोशुचदधम् ॥२१॥

पृथिविदेवत्या गायत्री मेधातिथिदृष्टा । अस्या अपि श्रौते विनि-  
योगो नास्ति स्यार्ते प्रस्तरारोहणे शयने विनियोगः । तथा हि पार-  
स्कर० ३२ स्योना पृथिविनो भवेति दक्षिण करवट करि पूर्व में  
शिर करिके शयन करे ॥ हे पृथिवि तू हमारी सुखरूपा हो । कैसी  
है तू कि अन्वक्षरा (नहीं हैं चोर काँटे दुखदायि जिस में) तथा  
निवेशनी (साधु प्रतिष्ठाना) तथा सप्रथाः (सर्वतः विस्तारसहिता) ।  
किं च हमारे अर्थ शर्म (शरण) दे ॥ अतः परं यजुः तद्विनियोगो  
गृह्यसूत्रे सम्बन्धि मरणनिमित्ते स्नाने जलापनोदने तथा हि  
पारस्कर० ३१० सव्यस्यानामिकया अपनोद्याप नः शोशुचद-

धमिति। यह जल हमारे पाप को अत्यन्त दहै ॥२१॥

अस्मान्त्वमधि जातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः॥

असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा ॥२२॥

इति संहितायां द्वितीयोऽनुवाकः॥

इति श्री शुक्ल यजुषि माध्यन्दिन शार्वतीयायां वाजसने-

य संहितायां दीर्घ पाठे पञ्चविंशोऽध्यायः ३५

का० २५.७.३७. साग्निक की पात्र प्रतिपत्ति के अन्त में दाह से पूर्व पुत्र वा भ्राता वा अन्य ब्राह्मण आज्याहुति को होमें ॥ अग्नि देवत्या गायत्री अनिरुक्ता। हे अग्ने तू इस यजमान से आधान काल में अधि उत्पन्न है। इस हेतु यह यजमान तुर से उत्पन्न हो। असाविति विशेष नाम वचनः तथा हि देवदत्त स्वर्गलोक की प्राप्त्यर्थ तुर से उत्पन्न हो। (तेरा वंश ही हो) इति भावः॥ स्वाहा सुहुत मस्तु ॥२२॥

इति श्री गिरिधर भाष्ये द्वितीयोऽनुवाकः॥

श्री वेदार्थप्रदीपेन तमोहार्द निवारयन् पुमार्थाश्चतुरो देयाद्गयाधीशंगदधरः ३५

श्रीमच्छुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीय शारवाथ्येतु व्याघ्रपादान्वय वि-  
श्वामित्र पुराधिप श्रीमज्जयकिशोर देववर्मात्मज रौक्मिण्यनृपति-  
गिरिप्रसादेन रचिते श्री वेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये पितृमेधवर्ण-  
नो नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥३५॥ ॥ आदितोऽनुवाकस्तरव्या ॥३५॥

इति सर्वानुक्रमणिभाष्ये गिरिप्रसाद रचिते चतुर्थ अध्यायस्य चतुर्थोऽर्वाङ्कः ४४॥  
अश्विनस्यासिते पक्षेऽभावायां बुधवासरे ॥ गृहनेत्राङ्क भूवर्षे रिवल्यमन्त्रा-  
समागमन् ॥ अतः परं पञ्चभिरध्यायैः शुक्रमन्त्रा भविष्यन्ति ॥



## अथ संक्षेपतः खिल्यमन्त्राणां सूचीपत्रम्

पृष्ठा	पङ्क्तिः	विषयः	पृष्ठा	पङ्क्तिः	विषयः
६०३	६	अनुक्तमन्त्राध्यायः			अथ सर्वमेधः
६१४	१६	आग्निकोऽध्यायः	१००१	६	आप्नोर्यामः
		सौत्रामणिकोऽध्यायः	१००८	१०	अग्निष्टुत्
६३१	१	ऐन्द्रपशोः प्रयाजानां प्रेषाः	१०१५	८	इन्द्रस्तुत्
६३६	१	ऐन्द्रपशोः नुयाजप्रेषाः	१०२०	१४	सूर्यस्तुत्
६४०	२१	वायोधसे पशोः प्रयाजप्रेषाः	१०२६	१३	वैश्वदेवस्तुत्
६४५	२	वायोधसे पशवनु यज्ञप्रेषाः			ब्रह्मयज्ञः
		आश्वमेधिकोऽध्यायः	१०३०	१६	प्रवायुमहेत्यनुवाकः
६४८	१४	आप्नीसंज्ञा अश्वस्तुतयः	१०३६	१६	प्रवीरयेत्यनुवाकः
६५३	५	आप्नीस्तुतिरूपाः	१०४४	२०	आ न इत्यनुवाकः
६५८	४	आप्नीसंज्ञाः	१०५२	५	यज्जाग्रतः
६६२	२०	अग्निस्तुतिः सङ्ग्रामाङ्कः	१०५६	१४	पञ्चनद्यः
		स्तुतिश्च	१०६०	१७	सोमो धेनुम्
६७१	१३	द्वावेकादशिन्यो	१०६४	१४	आ कृष्णेन
		द्वावध्यायौ पुरुषमेधः	१०६८	८	पूषन्तव
६७५	६	होममन्त्राः	१०७२	४	न तत्
६७६	१०	पुरुषमेधकाः पशवः	१०७६	१६	पितृमेधमन्त्राः
६८६	६	पुरुषसूक्तानुवाकः			इति सूचीपत्रम्
६८७	६	उत्तरनारायणी मन्त्राः			

विश्वामित्रपुरीयनवलदुर्गस्थव्याघ्रपादप्रकाशकाशमयन्त्रालये मुद्रितम्  
 विक्रमाब्दाः १४२४ शकाब्दाः १७४४ चैत्रकृष्ण ७ भृगुवार उमू शान्तिः ३

हरि ओम्

ॐ नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनेर्वह्निरूपकम्  
स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुतम् ॥ ३६ ॥

ऋचं वाचं पञ्चाध्यायी दध्यङ्गायवर्णे ददर्श

आद्योऽध्यायः शान्त्यर्थो वैश्वदेवः

अ० १० ऋचं वाचं प्रपद्ये मनो यजुः प्रपद्ये सामं प्राणं प्रपद्ये

चक्षुः श्रोत्रं प्रपद्ये । वागोजः सहोजो मां रये प्राणपानौ ॥ १॥

दध्यङ्गायवर्णं नत्वा नासत्यो च पुरं दरम्

वेदे पञ्चभिरध्यायैः शुक्रभाष्यं तमो महम्

पञ्चाध्यायी अथर्वण के पुत्र दधीच ने देखी (दध्यङ्ग हवा : आथर्व-  
ण एतर्हं शुक्रमेतं यज्ञविदां चकारेति १४.१.१.२०. श्रुतेः) उग्रश्वे-

त्याग्नि को मन्त्रः ३६.७. अग्निर्हृदयेनेत्यादि अध्याय समाप्ति

पर्यन्त आश्वमेधिक हैं ३६.८-१३. तिन दोनों को छोड़ि कै ॥ का०

२६.७. ५०. प्रवर्ग्यचरण की आदि और अन्तमें ऋचं वाचमिति

अध्याय करि शान्ति करण करना स्वाध्याय मन्त्र पाठ प्रवर्ग्य म-

न्त्रों की आदि में दूस अध्याय के दर्शन से । अत एवोक्तम्

का० अनुक्रम ०४.५॥

ओंनमोयाज्ञवल्काय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीविदार्थप्रदीपके

अध्यायः शान्तिपाठार्थः षड्विंशोऽप्यसमीर्यते ३६.

अध्यायो विश्वदेवदेवत्यः। पञ्च यजूंषि लिङ्गेऽक्तदेवत्यानि। ऋगू-  
पावाचा को में प्रपद्ये। प्रवेशकरता प्रारण जाता हूं। यजुस्त्व म-  
न को प्र०। प्राणरूप साम को प्र०। चक्षु इन्द्रिय और ओत्रेन्द्रिय को  
प्र०। वागादिकों का ग्रहण सप्तदशावयवोपलक्षण है अर्थात् सप्त-  
दशावयव प्रजापति के लिङ्ग को प्र० भाव यह है कि त्रयीविद्या औ-  
र लिङ्गशरीर को प्रवेश हुए प्रवर्ग्य नहीं नाश करें। तथा वागि-  
न्द्रिय ओज (मानसबल धार्य) और पुनः ओजोग्रहण से शरी-  
र बल है और प्राणपानो (उच्छासनिश्वासवायु) ऐसे एकी भूताः  
सन्तः मूर्खविषे वर्ते हैं। अतोऽपि प्रवर्ग्य हम लोगों को न मारे  
इति भावः ॥१॥

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातित्वं बृ-  
हस्पतिर्मे तदधातु। शं नो भवतु भुवनस्य यस्यतिः ॥२॥

बृहस्पतिदेवत्या यद्विः। प्रवर्ग्याचरण करि इति शेषः। मेरी चक्षु-  
रिन्द्रिय का जो छिद्र (अवरवण्डन) हुआ। हृदय वा बुद्धि का जो  
छिद्र हुआ। मन का वा जो अतिनृण (अतिहिंसन) प्रवर्ग्याच-  
रण करि जो चक्षु बुद्धि मन का व्याकुलत्व हुआ बृहस्पति (दे-  
वगुरु) मेरे तिस छिद्र और अतिनृण को दधातु (सं दधातु-छिद्र  
को निवर्त करें। भूतजात का जो अधिपति प्रवर्ग्यरूपो यज्ञः सो

हमारे को सुख रूप हो। अर्थात् बृहस्पति करि छिद्रापाकरण से प्रवर्ग्य कल्याण रूप हो॥२॥

भूर्भुवः स्वः॥ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि॥  
धियो यो नः प्रचोदयात्॥३॥ + भू-स्वः॥ अ० त० त० ३०॥३॥

कया नश्चित्र आभुवदूती सदावृधः सर्वा। कया  
शचिष्ठया वृता॥४॥

कस्त्वा सत्यो मदानां मर्हिष्ठो मत्सदन्धसः। हुता  
चिदारुजे वसु॥५॥

अभीषुणः सर्वाणामविता जेरितृणाम्। शान्तं  
भवास्पृतिभिः॥६॥

भूर्भुवः स्वः त्रीण्यजूर्ध्विः तत्सवितुः कया नः कस्त्वा अभीषु-  
णः एताश्च तस्र ऋचो व्याख्याताः ३ ३५ २७ ३६-४१ अभी-  
षुण इति इस ऋचा में शान्तं भवास्पृतिभिः यह बहुवचन है  
पहिले ऊतये यह पाठ था। ऊतिभिः (अवनों के हेतुओं से) श-  
न (असरव्य) रूप है॥३॥४॥५॥६॥

कया त्वं न ऊत्याभि प्रमन्दसे वृषन्। कया स्तो-  
तृभ्य आभर॥७॥

इन्द्रदेवत्या गायत्री अनिरुक्तेन्द्रपदहीना। हे वृषन् (सेतः) इन्द्र  
किस ऊति (तर्पण हविर्दान) करि हमलोगों को सर्वतः तृप्तः +  
करता है। और किस ऊति करि स्तुति करनेवाले यजमानों के अ-  
र्थ आहरण करता है धन देने को इति शेषः तिन दोनों करि तैसी

गते स्तुति मरे मोदे स्तुति गते  
+ यदि स्वप्न जाये मरे मोदे स्तुति गते

हम करते हैं इति भावः॥७॥

इन्द्रो विश्वस्य राजति । शं नोऽयस्तु द्विपदे शं च  
चतुष्पदे ॥८॥

द्विपदा विराट् । जगत का इन्द्र (परमेश्वर महावीर वा आदित्य) राजति (प्रकाशो वा ईश्वर है) । सो हमारे द्विपदों (युत्रादिकों) का सुख रूप हो और चतुष्पदों (गवादिकों) का सुखरूप हो ॥८॥

शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वयमा । शं न

इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ॥९॥

दे अनुष्टुभो । महावीर के प्रसाद से मित्र (भक्तों में स्नेह रखता है) देव हमारा सुखरूप हो । वरुण (अङ्गी करता है भक्तों को) सुख ० अर्यसा (चलता है भक्त प्रति) हमारा ० इन्द्र (देवेश) हमारा बृहस्पति (देवगुरु वेदों का पालक) सुख ० विस्तीर्ण है पादन्यास जिस का वह विष्णु (व्याप्त) हमारा ॥९॥

शं नो वातः पवतां शं नस्तपतु सूर्यः । शं नः

कनिः क्रदद्देवः पर्जन्योऽभिर्वर्षतु ॥१०॥

वायु हमारा सुखकारी (अपरुष और अव्याधिजनक) वह है । सूर्य (प्रेरण करता है जनों को अपने-अपने व्यापार में) सुखरूप (अदहन और भेषजरूप) हमारे को किरणों प्रसारें । पर्जन्य (पूरता है जल को वा पहिले उत्पन्न होता है जल इस करि पर्जन्यो देवः) हमारा सुखकर (काशानिहार रहित जैसे तेसों) सर्वतः सींचे । कैसा कि कनिः क्रदत् (अत्यन्त शब्द करता ॥१०॥

अहानि शं भवन्तु नः शर्तं रात्रीः प्रतिधीयताम्  
शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरु-  
णा रातहव्याः। शं न इन्द्रापूषणा वाजसातो श  
मिन्द्रासोमा सुविताय शं योः॥११॥†

द्विपदागायत्री। दिन हमारे सुरवरूप हों रात्रीः सुरवरूपाः हमारे वि-  
षे प्रति स्थापन करें महावीर इति शेषः॥शं न इन्द्राग्नी त्रिष्टुप्।  
इन्द्राग्नी पालनों करिके हमारे सुरवरूप हों। हविस्तृप्ते इन्द्रा-  
वरुणो हमा०। अन्न के दान निमित्तभूत में इन्द्रपूष संज्ञो देवो  
हमा०। इन्द्रसोमो देवो सुरव०। किमर्थम् कि सुविताय। साधुग-  
मन वा साधु प्रसव के अर्थ। तथा शं। रोगों के शमन के अर्थ। योः  
भयों के प्रथक्करण के अर्थ। अर्थात् रोग और भय को निवर्त  
करि सुरवस्त्यो हों॥११॥

शं नो देवीरभिष्टयः आपो भवन्तु पीतये। शं यो-  
रभिस्रवन्तु नः॥१२॥

गायत्री। दीप्यमाना जल हमारे अभिषेक वा अभीष्ट और पा-  
न के अर्थ सुरवरूपा हों। हमारे स्नान और पान में जल सुरवीर-  
ज्यो हों। जल रोगों का शमन और भयों का प्रथक्करण अ-  
भिस्रवे अर्थात् भयरोगनाश करें॥१२॥

स्योना पृथिवि नो भवानृक्षग निवेशनी। यक्षा-  
नः शर्म सप्रथाः॥१३॥

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे-

रणाय चक्षसे ॥१४॥

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः ॥ उश  
तीरिव मातरः ॥१५॥

तस्मात् अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ ।

आपो जनयेथा च नः ॥१६॥

स्योना पृथिवि । व्याख्याता ३५०२१० ॥ आपो हिष्ठा । नृचो व्या  
ख्यातः ११०५०-५२० ॥१३॥१४॥१५॥१६॥

अ० २० द्योः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्ति-  
रापः शान्तिरेषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शा-  
न्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः  
शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥ २० ॥

यजूंषि संहशि जीव्या समित्यन्तानि क० १६० । द्युलोकरूपा जो  
शान्ति ओर अन्तरिक्षरूपा जो शान्ति भूलोकरूपा जो शान्ति  
जलरूपा जो शान्ति ओषधिरूपा जो शान्ति वृक्षरूपा जो शा-  
न्ति सर्वदेवरूपा जो शान्ति ब्रह्म (त्रयीलक्षण वा परं तिस) रूपा  
जो शान्ति सर्वजगद्रूपा जो शान्ति स्वरूप सै ही जो शान्ति वोह  
शान्ति मुरु प्रति हो । अर्थात् महावीर प्रसाद सै सब शान्तिरूप  
मुरु प्रति हो । यद्वा दिवि अन्तरिक्ष पृथिवि इत्यादिकों में जो शा-  
न्ति वोह मुरु प्रति हों + ॥ १७ ॥

दृते हर्षं मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूता-  
नि समीक्षन्ताम् । मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि

भूतानि समीक्षे । मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥१८॥  
हृते (हृ विदोरे विदीर्णे जराजर्जरितेऽपि शरीरे) हे महावीर मुझे तू  
हृटी करि यद्वा हृते (विदीर्णे कर्म विषे) मुझे हृटी (अच्छिद्रकर्म) क  
रि यद्वा समुधिरत्व और सेक्तृत्व से हृति शब्द करि महावीर है हे ह  
ते (महावीर) मुझे हृटी करि । कथं दाह्यं तदाह सब प्राणी मुझे मि  
त्र की आरव से देखें न बैरी की दृष्टि से अर्थात् सबों का प्यारा  
होंकं । किंच में भी सब भूतों को मित्र की आरव से देखू (सबमें  
प्यारे हों) । मित्रचक्षुः शान्त होती है मित्र किसी को नहीं मारता  
और मित्र को कोई नहीं मारता एवं परस्पर अद्रोह करि सबों को  
न मारते मित्र की आरव से हम देखते हैं ॥१८॥

हृते हृहं मा । ज्योक्ते संदृशि जीव्यासं ज्योक्ते संदृशि  
जीव्यासम् ॥१९॥

हे हृते (वीर) मुझे हृटी करि । हे महावीर तेरे संदर्शन विषे में ज्यो  
क् (चिर) जीकं । पुनरुक्तिरादरार्थः ॥१९॥

नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्तेऽस्तुर्विषे । अ  
न्यास्तेऽस्मत्तेयन्तु हेतयः पावकोऽस्मभ्यं  
शिवो भव ॥२०॥

व्याख्याता १७११० ॥२०॥

नमस्तेऽस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयितृवे । नमस्ते  
भगवन्स्तु यतः स्वः समीहसे ॥२१॥

हे अनुष्टुभो । हे भगवन् (महावीर) तू विद्युद्रूप के अर्थ नम

नमस्तेऽस्तुर्विषे



स्कार हो तेरे तिस गर्जितरूप के अर्थ नमः। जिस कारण से स्वर्ग  
जाने के लिये तू चेष्टा करता है इस हेतु तेरे अर्थ नमस्कार हो ॥२१॥

यतो-यतः समीहसे ततो नोऽभयं कुरु। शानः  
कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥२२॥

हे महावीर जिस कारण-जिस कारण दुश्चरित से तू हमारे विषे अ-  
प करने के लिये चेष्टा करता है तिस कारण-तिस कारण से हमें  
अभय करि। किं च हमारी प्रजा के अर्थ सुख करि और हमारे प-  
शुओं के अर्थ अभय करि ॥२२॥

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै  
सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥२३॥

यजुः। चारव्यातम् ६-२२ ॥२३॥

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शर-  
दः शान्तं जीवेम शरदः शान्तं शृणुयाम शरदः  
शान्तं ब्रूवाम शरदः शान्तमदीनाः स्याम शरदः  
शान्तं भूयश्च शरदः शान्तात् ॥२४॥

इति संहितायां द्वितीयोऽनुवाकः २

इति श्री सुक्तयजुषिमाध्यन्दिन शार्वीयायां वाजसने-  
यसंहितायां दीर्घपाठे षट् त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥

सूर्यदेवता (अक्षरातीत) पुर उषिक् छन्दस्का। इन मन्त्रों करि  
जो महावीर हम लोगों ने स्तुति किया वोह चक्षुः (जगत के नेत्रमू-  
त आदित्यरूप को) पूर्व की दिशा में उदय करता है। कैसा वोह कि

देवहित (देवताओं) करि स्थापित वा देवताओं का प्यारा) शुक्र (पा-  
पासंस्पृष्ट वा शोचिष्मत्) तिस के प्रसाद से शत १०० शरद + (वर्ष) + शत वर्ष में शत  
हम देखें (शतवर्षपर्यन्त हम अव्याहत चक्षुरिन्द्रिया होंगे)। शत श-  
रद अपराधीनजीवना होंगे। शत शरद स्पष्ट श्रोत्रेन्द्रिया होंगे।  
शत शरद असबलितवागिन्द्रिया होंगे। शत शरद किसी के भी  
अगाडी दें न करें। और शत शरद के ऊपर भी बहुत काल त-  
क पश्येमेत्यादि योज्यम् ॥ २४ ॥

+ शत वर्ष में शत  
शरद होती है

इति भाष्ये द्वितीयोऽनुवाकः २

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमो हार्दनिवारयन्  
पुमार्थाश्चतुरोदेयाद्विश्वदेवाधिपः स्वयम् ३६

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीय शारवाध्येत व्याघ्रपादा-  
न्वय विश्वामित्रपुराधिपति श्रीमज्जयकिशोरदेव वर्मात्मज से-  
विमणाय नृपतिगिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपेगिरिधरभाष्ये  
शुक्रियायां शान्तिपाठ वर्णनो नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

हरिओम्

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्वहुस्त्यकम्

स्वानन्ददायकं कृपां ब्रह्मरूपं परं स्तुमः ३७

अ० १० देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूषणो ह-  
स्ताभ्याम् । आदेदे नारिरसि ॥ १ ॥ +

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृह-  
तो विपश्चितः ॥ वि होवा हधे वयुना विदेक इन्मही  
देवस्य सवितुः परिधृतिः स्वाहा ॥२॥

ओं नमो याज्ञवल्काय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके ॥

अभ्यादिरोहिणान्तोऽयं सप्तविंशो निरूप्यते ३७

का० २६० १०३ उदुम्बरतस्त्या वा विकङ्कततस्त्या हस्त प्रमाण  
अग्नि को देवस्य त्वा नारिरसीति मन्त्र से ले वाम हस्त में तिसै  
करिके दक्षिणहस्त से स्पर्श करि युञ्जते मन इति मन्त्र को ज-  
पे ॥ देवस्य त्वा प्रा-बृ० सावित्रम् । आददे० अग्निदेवत्यं दे-ज०  
हे अग्ने सविता देवता की आज्ञा में स्थित अश्विनीकुमारोंको  
बाहुओं पूषा के हाथों से तुम्हें ग्रहण करता हूं और तू नारि (स्त्री-  
नाम्नी) है ॥ युञ्जते मनः । व्याख्याता ५०१४० ॥१॥ २॥

देवी द्यावापृथिवी मरुवस्य वामद्य शिरो राध्यासं  
देवयजने पृथिव्याः । मखाय त्वा मरुवस्य त्वा  
शीर्षो ॥३॥† दे-व्याः । अ० म-र्षो । ई० ॥३॥

का० २६० १०४ अध्वर्युः देवीति मन्त्र करि विद्यण मृत्पिण्ड को  
लेवे पिण्डवदिति पाणिओं से ग्रहण करे दक्षिणः साग्निरिति  
लभ्यते इति सूत्रार्थः ॥ देवीति यजुः । मखायेति या-पं० । देवी-  
शीर्षो त्रा-गा० द्यावापृथिवी देवतम् । हे देवी (दीप्यमाने) द्यावा  
पृथिव्यो इस दिन में पृथिवी के देवयजनस्थान में मख (यज्ञ) का

शिरः सध्यासम् + (साधन) सिद्ध करता हूं। महावीरो यज्ञशिरः।  
क्या करिके कि तुम द्यावा पृथिवीओं (दिवों) श जल पृथिव्यंशमृ-  
द) को लेके इत्यर्थः। एवं द्यावा पृथिव्यौ प्रार्थ्य मृदमाह हे मृत् मरव  
(यज्ञ) के अर्थ तुम्हें ग्रहण करता हूं। एवं सामान्येनोक्ता विशेषमा-  
ह मरव (यज्ञ) के शिर (महावीर) के अर्थ तुम्हें ग्रहण करता हूं इति  
शेषः। तिस मृत्पिण्ड को उत्तरस्थापित कृष्णाजिन पर स्थापन करे ॥३॥

+ गद्य साध  
के संसिद्धे।

देव्यो वम्यो भूतस्य प्रथमजा मरवस्य वोऽद्य शिरों  
राध्यासं देवयजने पृथिव्याः। मरवाय त्वा मरवस्य  
त्वा शीर्षो ॥४॥

+ दे-व्याः। अ० म-पौ। इ० ॥४॥

का० २६.१०.५.६. देव्यो-शीर्षो। उपदी कृतो मृत्संचयः (वल्मी-  
कः) तिस की वषा तिस के मध्यस्थ लोष्ठ को लेके कृष्णाजिन पर  
मृत्पिण्ड से उत्तर में चुपके से स्थापन करे ॥ देव्यो० यजुः। मरवा-  
य० या-पं०। देव्यो-शीर्षो अर्षी पंक्तिः। हे देव्यो (दीप्यमानाः)  
वम्यः (उपजिह्विकाः) तुम्हें लेके पृथिवी के देव० करता हूं। कै-  
सी हो तुम कि भूत (प्राणिजात) की प्रथमजाः (प्रथमोत्पन्नाः) पृ-  
थिवी जन्तुओं की प्रथमजा तिस सम्बन्ध से वम्यः भी प्रथम-  
जा कहियें ॥४॥

इयत्यग्र आसीन्मरवस्य तेऽद्य शिरों राध्यासं दे-  
वयजने पृथिव्याः। मरवाय त्वा मरवस्य त्वा शीर्षो ॥५॥

का० २६.१०.७. इयत्यग्र इति वराहोत्वातमृदा को ले चुपके से कृ-  
ष्णाजिन पर वल्मीकवषा के उत्तर में स्थापन करे ॥ इयतीति

आर्ची अ०। मरवायेति या-पं०। इय-शीर्षो ब्रा-गा० वराहविह-  
तमृदेवत्यं। हे पृथिवि भवती आदि (वराहोदरणसमय) में इयती  
(प्रादेशमात्री†) थी तुम्हें पृथिवि के देवयजनस्थान में० कर-  
ता हूँ ॥ मरवायेति व्याख्यातम् ॥ ५॥

इन्द्रस्योजं स्थ मरवस्य वो० धृशिरो राध्यासं देवयजने  
पृथिव्याः॥ मरवाय त्वा मरवस्य त्वा शीर्षो॥ मरवाय त्वा  
मरवस्य त्वा शीर्षो॥ मरवाय त्वा मरवस्य त्वा शीर्षो॥ ६॥

का० २६०१०० पूतीकों (रोहिण्यतणों) को इन्द्रस्येत्यादि शीर्षो इ-  
त्यन्त ले चुपके से कृष्णाजिन पर वराहविहत के उत्तर में स्थापन  
करे ॥ इन्द्रस्य-शीर्षो आदारदेवत्यम् ऋक्त्रिष्टुप्। हे पूतीकाओ तु-  
म इन्द्र का ओज (तेजरूप) हो तुम्हें लेकर पृथिवी के देवयजन में  
यज्ञ का शिरसिद्धि करता हूँ मरव के अर्थ तुम्हें ग्रहण करता हूँ  
और मरव के शिर (महावीर) के अर्थ ग्रहण करता हूँ ॥

का० २६०१०४ मरवायेति यय लेकर चुपके से कृष्णाजिन पर स्था-  
पन करे ॥ या-पं० ययोदेवत्यम्। हे यय मरव के अर्थ मरवशिर  
के अर्थ तुम्हें ग्रहण करता हूँ ॥ का० २६०१०१० चुपके से गवेधुका  
भी ग्रहण करियें ॥ का० २६०१०११ मरवायेति सम्भृत सम्भा-  
रों की हाथ से स्पर्श करे ॥ या-पं० सम्भारदेवत्यम्। हे सम्भार-  
ओ मरव और मरवशिर के अर्थ तुम्हें स्पर्श करता हूँ ॥ ६॥

प्रेतु ब्रह्मणस्पतिः प्रदेव्येतु सूनृता। अछा वीरं नयि  
पङ्क्तिरधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः॥ मरवाय त्वा मरव

† इयती हे वाऽ इयमती पृथिव्यास प्रादेशमात्रीत्यादि वराह उज्जयान्ति १४०१०२०१२० अने ॥

स्य त्वा। शीर्षो मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्षो॥  
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्षो॥७॥ +

प्रेतु ७. मखस्य ८. अश्वस्य ९. ऋजवेत्वा १०. यमाय त्वा. त्वेव  
स्त्वा. अर्चिरसि ११. धर्मदेवत्यानि (यो धर्मः स आदित्यो य एष  
तपति॥ का० २६. १. १२. अध्वर्यु प्रति प्रस्थात्रादयः कृष्णाजिन को  
समन्तात् लेकर प्रैत्विति जपतेहुए अन्तःप्रात्य सै उत्तर में परिवृ-  
त (पञ्चारत्निमितः समचतुरस्रः प्राग्द्वारः सिकतोपकीर्णः पूर्व-  
मेव किये सप्तभूसंस्कारसंस्कृतः छायेहुए प्रदेश) प्रतिजावे॥ वृहती।  
व्याख्याता ३३. ८६॥ का० २६. १. १३. १४. अध्वर्यु कृष्णाजिनस्थो-  
ही सम्भारों को मखायेति परिवृत में स्थापन करे कैसे परिवृत कि  
उल्लिरिवत जलसिक्त (ये दो संस्कार पञ्चसंस्कारों से अधिकहैं)  
और सिकता युक्त प्राग्द्वार में इति सूत्रार्थः॥ हे सम्भारो मख के  
अर्थ तुम्हें स्थापन करता हूँ॥ का० २६. १. १५. मखायेति गंवधु-  
का अजापय पृथक् करिके वल्मीकवपादि तीनि सम्भारों का  
रि मृत्पिण्ड को मिश्रित करे॥ हे सम्भारओ तुम्हें मख के अर्थ मृ-  
त्पिण्ड करि संयुक्त करता (मिलता) हूँ॥ का० २६. १. १६. महावी-  
रपर्याप्त चुपके से मृदा लेकर मखायेति मन्त्रेण महावीर करे  
कैसा कि प्रादेशोच्च गर्तवन्त मेखलायुत मध्य में संकुचित मेख-  
ला के ऊपर तीनि अद्भुल ऊंचा इति सूत्रार्थः॥ हे महावीर मख  
और तिस के शिर के अर्थ तुम्हें करता हूँ॥७॥

मखस्य शिरोऽसि। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्षो॥

मरुवस्य शिरोऽसि। मरुवाय त्वा मरुवस्य त्वा शीर्षो।  
 मरुवस्य शिरोऽसि। मरुवाय त्वा मरुवस्य त्वा शीर्षो।  
 मरुवाय त्वा मरुवस्य त्वा शीर्षो। मरुवाय त्वा मरुवस्य  
 त्वा शीर्षो। मरुवाय त्वा मरुवस्य त्वा शीर्षो॥८॥

यजुः॥ का० २६.१.१० वामकरस्थ निष्यन्न महावीर को मरुवस्य  
 शिर इति स्पर्श करे॥ मरुवस्य शिरोऽसि या-गा०। हे महावीर तू म-  
 र्व का शिर है॥ का० २६.१.१० इतर दो महावीरों को प्रतिमन्त्र  
 वैसे ही करे और स्पर्श करे॥ मरुवाय दूसरे महावीर को करता  
 हूं। मरुवस्य निष्यन्न को स्पर्श करता हूं॥ मरुवाय तीसरे महा-  
 वीर को करता हूं। मरुवस्येति निष्यन्न को स्पर्श करे + मरुव का  
 शिर है मरुव के अर्थ तुम्हें मरुव के शिर के अर्थ तुम्हें स्पर्श करता  
 हूं॥ का० २६.१.२२ गवेधुकाओं से तीनों महावीरों को रगड क-  
 र सचिकण करे मरुवायेति प्रतिमन्त्र से एक-एक को॥ मरुव ओ-  
 र मरुव के शिर के अर्थ तुम्हें गवेधुकाओं करि श्लक्ष्ण करता हूं॥  
 एवमग्निमो मन्त्रो॥८॥

+ तीसरे महावीर के स्पर्श में मरुवस्य मरुवाय दोनों पदे।

अश्वस्य त्वा वृषाः शुक्रा धूपयामि देवयजने पृ-  
 थिव्याः॥ मरुवाय त्वा मरुवस्य त्वा शीर्षो। अश्वस्य त्वा  
 वृषाः शुक्रा धूपयामि देवयजने पृथिव्याः॥ मरुवाय  
 त्वा मरुवस्य त्वा शीर्षो। अश्वस्य त्वा वृषाः शुक्रा  
 धूपयामि देवयजने पृथिव्याः॥ मरुवाय त्वा मरुवस्य  
 त्वा शीर्षो॥ मरुवाय त्वा मरुवस्य त्वा शीर्षो। मरुवाय

त्वा मरवस्य त्वा शीर्षो । मरवाय त्वा मरवस्य त्वा  
शीर्षो ॥४॥+

का० २६.१.२३. दक्षिणाग्नि करि दीप्त अश्वपुरीष से तीनों मन्त्रों  
करि तीनों महावीरों को धूपे एक-एक धूपने में सात-सात अश्व  
लेण्ड ग्रहण करें ॥ अश्वस्य० प्रा-बृ० हे महावीर पृथिवि के देवयज  
न स्थान में मरव और मरवशिर के अर्थ सेक्ता अश्व के पुरीष करि तु  
के धूपन करता हूँ ॥ एवं इतरमन्त्रों से इतर दोनो को का० २६.१.२४. म  
रवायेति तीनों मन्त्रों से तीनों महावीरों को पिन्वन रौहिणों सहित उखा  
वतू अपे (पकावे) ॥ मरव और मरवशिर के अर्थ तुम्हें निर्देह कर  
ता हूँ ॥ एवं इतरो ॥४॥

ऋजवे त्वा साधवे त्वा सुक्षित्यै त्वा । मरवाय त्वा  
मरवस्य त्वा शीर्षो । मरवाय त्वा मरवस्य त्वा शीर्षो ।  
मरवाय त्वा मरवस्य त्वा शीर्षो ॥१०॥+

का० २६.१.२५. पक्क महावीरों को अपाकादिव उद्धार करें (निका  
ले) तीनि मन्त्रों से ॥ ऋजवे त्वा तिस्रो दे-बृ० ऋजवे प्रथमम् ।  
असौ लोक ऋजुः तत्र सत्यमेव न तु कौटिल्यम् । सत्यमादित्यः  
हे महावीर ऋजु (सत्य-आदित्य) के अर्थ तुम्हें उद्धपन करता  
हूँ इति शेषः तथा च श्रुतिः १४.१.२. २२. स उद्धयेत् ऋजवे त्वेत्यसौ वै लो  
क ऋजुः सत्यं वै ऋजुः सत्यमेष य एष तपत्येष उ प्रथमः प्रवर्ग्यस्त  
देत मेवेतन्प्रीणाति तस्मादाहर्जवे त्विति ॥ अथ द्वितीयम् साधवे  
त्वा । साधु (वायु) की प्रीति के अर्थ तुम्हें उद्धप ० तथा च श्रुतिः

+ अ- व्याः । अ० म- धी० । इ० अ- व्याः । उ० म- धी० । ऋ० अ- व्याः । लृ० म- धी० । आ० ॥४॥  
+ ऋ- त्वा । अ० सा- त्वा । इ० सु- त्वा । उ० म- धी० । ऋ० ॥१०॥



१४.१.२.२३. साधवे त्वेत्ययं साधुर्योऽयं पवतः एष हीमां लो-  
कान्तिस्त्रोऽनुवतः एष उ द्वितीयः प्रवर्ग्यस्तदेतमेवैतत्प्रीणा-  
ति तस्मादाह साधवे त्वेति ॥ अथ तृतीयम् सुक्षित्ये त्वा सुतरं  
क्षियन्ति निवसन्ति सर्वभूतानि यस्यां सुक्षितिः (भूमिः) तथा  
च श्रुतिः १४.१.२.२४. सुक्षित्ये त्वेत्ययं वै लोकः सुक्षितिर्स्मि-  
न्हि लोके सर्वाणि भूतानि क्षियन्त्यथोऽग्निर्वै सुक्षितिर्ग्नित्वेवा-  
स्मिं लोके सर्वाणि भूतानि क्षियत्येष उ तृतीयः प्रवर्ग्यस्तदेत-  
मेवैतत्प्रीणाति तस्मादाह सुक्षित्ये त्वेति ॥ का० २६.१.२६. अ-  
जापय करि तीनों महावीरों को सींचे मरवाय त्वेति प्रति म-  
न्त्र से ॥ मरव और मरवशिर के अर्थ अजापय करि तुम्हें सींच-  
ता हूं ॥ एवमितरौ द्वौ ॥ १० ॥ इति महावीरसम्भरणं समाप्तम् ॥

अ० २. यमाय त्वा मरवाय त्वा सूर्यस्य त्वा तपसे । दे-  
वस्त्वा सविता मधानक्तु पृथिव्याः सत्स्वृश-  
स्पाहि । अर्चिरेसि शोचिरेसि तपोऽसि ॥ ११ ॥ +  
का० २६.२.१३. प्रचरेति ब्रह्मा सै आज्ञा पाया अध्वर्यु बैठि-  
कर यमाय त्वेति तीनि मन्त्रों करि प्रचरणीय महावीर को ती-  
निवार प्रोक्षण करे ॥ द्वे द्वे-बृ० तृतीया द्वे-ज० यमयति (नि-  
यच्छति) सर्वमिति यम (आदित्य) तिस की प्रीति के अर्थ तुम्हें  
प्रोक्षण करता हूं तथा च श्रुतिः १४.१.३.४. सप्रोक्षति यमाय  
त्वेत्येष वै यमो य एष तपत्येष हीदर्थं सर्वं यमयत्येतेनेदर्थं  
सर्वं यतमेष उ प्रवर्ग्यस्तदेतमेवैतत्प्रीणाति तस्मादाह यमाय

त्विति॥ मरवाय त्वा॥ मरव (यज्ञ-सूर्यरूप प्रवर्ग्य) की प्रीति के अ-  
र्थ तुम्हें प्रीक्षण करता हूँ। तथा च श्रुतिः १४.१.३.५ एष वै म-  
रवो य एष तपत्येष उ प्रवर्ग्यस्तदेतमेवैतत्प्रीणाति तस्मादाह  
मरवाय त्विति॥ सूर्यस्य त्वा तपसे। तपतीति तपः (तेजः) सूर्यतेज  
रूप प्रवर्ग्य के अर्थ तुम्हें प्रीक्ष० तथा च श्रुतिः १४.१.३.६ एष  
वै सूर्यो य एष तपत्येष उ प्रवर्ग्यस्तदेव मेवैतत्प्रीणाति तस्मा-  
दाह सूर्यस्य त्वा तपस इति॥ का० २६.२.२० होता करि अज्ज-  
न्ति यं प्रथयन्तीति मन्त्र पाठ करते में आज्य को विधि से सं-  
स्कार करि तिस आज्य से प्रचरणीय महावीर को देवस्त्वेति  
मन्त्र करि लेंगे (चुपेंगे)॥ या-पं० सविता देवः सर्वजगद्रूप मधुर  
आज्य करि हे महावीर तुम्हें लेंगे (चुपेंगे) तथा च श्रुतिः १४.१.३.  
१३ सर्वे वा इदं मधु यदिदं किं च तदेनमनेन सर्वेण समनक्ती-  
ति॥ का० २६.२.२१ रजत का शतमान (शतरक्तिका मित रजत)  
रवर में सिकतान्तर उपगूहन करें॥ या-अ० १॥ हे रजत संस्पृश  
(उपद्रव के अर्थ स्पर्श करने हारे राक्षस) से तू महावीर को रक्षा  
करि। राक्षसों में डंर हुए देवता यज्ञरक्षार्थ अग्नि के अपत्य र-  
जत को राक्षसों के घात के लिये ररवते हुए और पृथिवी भी म-  
हावीरपाक में अग्नि में डरी ततः यह न जले इस हेतु रजत रव-  
र में अन्तर्हित किया यह श्रुति में कथा है तथा च श्रुतिः १४.१.  
३.१४ देवा अविभयुर्यद्वै न इममधस्ताद्रक्षां न नाश्या न ह-  
न्युरित्यग्नेर्वा एतद्वैतौ यद्विरण्यं नाश्याणां रक्षसामपहत्या-

रजतं देवयेति महीधरः॥

इति तथा १४.१.३.१४. अथो पृथिव्यु ह वाऽएतस्माद्विभयाच-  
 कार यद्वै मायं तत्तः शुशुचानो न हि श्वं स्यादिति तदेवास्याऽएत-  
 दन्तर्दधाति रजतमिति॥ का० २६. ३. ३. ४. होता करि संहिंसीदस्वे-  
 ति ११.३.७. पठते अध्वर्यु अर्चिरसीति मन्त्र से द्विगुणित मुञ्ज-  
 रवाण्डों को गार्हपत्य में प्रदीपन करि रवर में चारों दिशाओं प्र-  
 ति करि तिन मुञ्जों में संस्कृताज्यपूर्ण प्रचरणीय महावीर को  
 स्थापन करै॥ या-त्रि० हे महावीर तू अर्चि (चन्द्रक्रान्तिरूप) है  
 शोचिः (अग्नितेजरूप) है तपः (सूर्यतपरूप) है तथा च श्रुतिः १४.  
 १.३.१७. एष वै यमो य एष तपति सर्वे वाऽएतदेष्ट तदेतमेवैतत्प्री-  
 णातीति । स्मृतेश्च भगवद्गी० १५.१२. यदादित्यगतं तेजो जगद्भा-  
 सयतेरिवलम् । यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नेो तत्तेजो विद्धिमामकमिति॥११॥

अनाधृष्टा पुरस्तादग्नेराधिपत्येऽप्यग्नेर्मे दाः पुत्रव-  
 ती दक्षिणत इन्द्रस्याधिपत्ये प्रजां मे दाः सुषदा  
 पश्चाद्देवस्य सवितुराधिपत्ये चक्षुर्मे दाः आश्रुति-  
 रुत्तरतो धातुराधिपत्ये रायस्योष मे दाः । विधृति-  
 रुपरिष्टा हृहस्पतेराधिपत्येऽञ्जो मे दाः विश्वाभ्यो  
 मा नाष्ट्राभ्यस्याहि मनोरश्वासि॥१२॥+

का० २६. ३. ५. महावीर के ऊपर अङ्गुष्ठाङ्गुलि रखते यजमान  
 को अध्वर्यु अनाधृष्टेति मन्त्रों को पढ़ै॥ सप्तपृथिवीदेवत्यानि य-  
 जमानस्याशीः । १.३.४. ५. यजूंश्चि २. आर्ची गा० हे पृथिवीजो  
 तू पूर्वदिशा में राक्षसों करि अनाधर्षिता अग्नि के आधिपत्य में

होती मेरे अर्थ आयु दे। अग्नि मे वास्याऽअधिपतिं करोतीति १४.१.३. १४. अत्रुतेः॥ जो तू दक्षिणदिशा में इन्द्र के आधिपत्य में होती पुत्रपुता सो मेरे अर्थ पुत्रादिका प्रजा दे। इन्द्र मे वास्याऽअधिपतिं करोति नाष्ठा-  
णार्हं रक्षसामपहत्या इति १४.१.३. २०. अत्रुतेः जो तू पश्चिमदिशा में सुसदा है सविता देवता के आधिपत्य में होती मेरे अर्थ नेत्रेन्द्रिय को दे। देव मे वास्ये सवितारमधिपतिं करोतीति १४.१.३. २१. अत्रु-  
तेः॥ हे पृथिवी जो तू उत्तर दिशा में ब्रह्मा के आधिपत्य में होती आश्रु-  
ति (आश्रावन करने हैं ऋत्विज जिस में बौह यज्ञिय उत्तरदेश) हैं सो तू मेरे अर्थ धन की पुष्टि दे। धातार मे वास्याऽअधिपतिं क-  
रोतीति १४.१.३. २२. अत्रुतेः॥ जो तू उपरि प्रदेश में बृहस्पति के आधि-  
पत्य में होती सो तू मेरे अर्थ बल दे। बृहस्पति मे वास्याऽअधिपतिं करो-  
तीति १४.१.३. २३. अत्रुतेः॥ का. २६.३. ७. विश्वाभ्यो मेति महावीर  
सै दक्षिणभूमि में यजमान मन्त्र पठते अपने करको उत्तानस्था-  
पन करें॥ या-बृ०। हे महावीर दक्षिणभूमे सब नाश करने वा-  
लों (लोकप्रसिद्ध पिशान्वादिकों) सै हमलोगों को रक्षा करि।  
सर्वाभ्यो गोपायेति १४.१.३. २४. अत्रुतेः॥ का. २६.३. ८. मनोरथे-  
ति महावीर सै उत्तर में यजमान अपने प्रादेश को स्थापन करें॥  
दे-पं०। हे घर्मोत्तरभूमे तू मनु राजा की बहने के अर्थ अश्व (घो-  
डी) है। अश्व ह वा इयं भूत्वा मनुमुवाहेति १४.१.३. २५. अ-  
त्रुतेः॥ १२॥

स्वाहा मरुद्भिः परिरुन्नीः स्व दिवः सधंस्पृशास्याहि।

मधु मधु मधु ॥१३॥ + स्वा-स्वा.अ.दि-हि.म-धु.॥१३॥

का० २६.३.४.१०. धृष्टियों से गार्हपत्य के भस्म और अङ्गारों को  
महावीर के परितः डालि कर प्रागग्रों उदगग्रों त्रयोदश विक-  
डुत शकलों से महावीर को वेष्टन करे (अङ्गारों के ऊपर शकलों  
को डाले) तिसके मध्य दो शकलें खाहा मरुद्भिरिति मन्त्र करि प्रा-  
ञ्चो ररेवे शेषों को चुपक से एवं प्रतिदिशं तीनि-तीनि स्थितों  
में अधिक त्रयोदशको दक्षिण में स्थापन करे ॥ महीनों के तेरह  
होने से तेरह शकलों से स्थापन है त्रयोदश वै मासाः संव-  
त्सरस्य संवत्सर एष य एष तपत्येष उ प्रवर्ग्य इति १४.१.३.२८.  
श्रुतेः । या-यं० घर्मदे० हे घर्म तू स्वाहाकार है (हवि के आधार-  
त्वसे) सूर्यरूप है (एष वै स्वाहाकारो य एष तपत्येष उ प्रवर्ग्य  
इति १४.१.३.२६. श्रुतेः) अतः तू मरुतो (हमरूप प्रजाओं) से प-  
रि श्रीयस्व (सेव्यस्व) अर्थात् मरुतः तुम्हें आश्रय हों । विशो वै  
मरुतो विशो वतत्क्षत्रं परिवर्द्धति तदिदं क्षत्रमुभयतो विशा प-  
रि वृद्धमिति १४.१.३.२७. श्रुतिः ॥ का० २६.३.१०. दिवः सत्स्व-  
ष्टा इति शतरक्तिकामित सुवर्ण करि महावीर को आच्छादन  
करे ॥ दे-ज० सुवर्णदेवत्या । हे शतमान धुलोकसम्बन्धिस्य  
श्री करनेवालों (देवताओं) को रक्षा करि देवा राक्षसों से डरि क-  
रि महावीर की रक्षा के अर्थ स्वर्ण को स्थापन करते हुए यह श्रु-  
ति में कथा है देवा अविभयुरित्यादिकार्यो १४.१.३.२८. ॥ का०  
२६.४.२. कृष्णाजिन से किये (बनाये) तीनि दण्ड (डांडी) यु-

क्व तीनि बीजनाम्नोऽंसे अग्नि को दीपन के अर्थ बीजै मधु मधु म-  
धु इति ॥ त्रीणि यजूंषि प्राणदेवत्यानि १-३ दे-उ० मधुरससाम्या  
प्राणो मधु उच्यते मधु मधु मधु (प्राण उदान व्यान) तीनों म-  
हावीर में स्थापन करता हूं इत्यर्थः ॥ तथा च श्रुतिः १४.१.३.३०  
अथ धर्वित्रैराधूनाति मधु मधिति त्रिः प्राणो वै मधु प्राण मे-  
वास्मिन्नेतदहधाति त्रीणि भवन्ति त्रयो वै प्राणाः प्राण उदानो व्या-  
नस्तानि वास्मिन्नेतदहधाति ॥ १३ ॥

अवकाशमन्त्राः

गर्भो देवानां पिता मतीनां पतिः प्रजानाम् । सं  
देवो देवेन सवित्रा गतं स्रष्टुं सूर्येण रोचते ॥ १४ ॥

का० २६.४.११ बीजनाम्नोऽंसे बीजन समय में उत्तर देववत् प-  
रिक्रमणं प्रागुक्तं चेदिह तीनि परिक्रमा करि और इतरथावृत्तिको सक्र-  
तु करिके गर्भो देवानामित्यादि नमस्तु मा मा हिर्हि सीरित्य-  
न्त अवकाशसंज्ञक मन्त्रों से यजमान सहित ऋत्विजलोग महा-  
वीर को उपस्थान करें ॥ धर्मदेवत्या अवकाशमन्त्रा मा मा हिर्हि सी-  
रित्यन्ताः ॥ आद्या ऋचां पङ्क्तिः ॥ अथ मन्त्रार्थः ॥ देव (दीप्यमान-  
महावीर) सविता देवता सहित संगत होता है ॥ और जो धर्म सूर्य स-  
हित एकी भूतः सन् भले प्रकार दीप्ये है तिसै हम स्तुति करते हैं इ-  
ति शेषः ॥ कैसा कि देवों (दीप्यमानों) रश्मिओं वा सब दृश्यमानों  
का गर्भ (गृहीता) है ॥ एष वै गर्भो देवानां य एष तपत्येष हीदृष्टं सर्व-  
ं संगृभ्यत्येतेनेदं सर्वं गृभीतमेष उ प्रवर्ग्य इति १४.१.४.२०

श्रुतिः। तथा मतीश्रो (बुद्धिश्रो) का पिता (पालक-प्रवर्तक) प्रजाश्रो  
का पति (पालक) है ॥१४॥

समग्निरग्निना गतु सं दैव्येन सवित्रा संहं सूर्येणारो-  
चिष्टु। स्वाहा समग्नस्तपसा गतु सं दैव्येन सवित्रां स-  
ंहं सूर्येणारुरुचत ॥१५॥†

समग्निः सा-वि० स्वाहेति यजुः वामिलित्वात् ब्रा-अ०। जो  
अग्नि (धर्म) अग्नि सहित एकी होता है देव एव दैवः सविता देवता स-  
हित संगत होता है और जो सूर्य सहित सं रोच्ये है ॥ अवरं स्वाहाकारं  
करोति परं देवतामसावेव बन्धुरिति १४.१०.४.६. श्रुतेः। स्वाहा स-  
हित अग्नि (धर्म) तप (सूर्यतेज) करि संगत होता है और सविता देव-  
ता करि संगत होता है सूर्य सहित सब को भले प्रकार प्रकाश कर-  
ता है तिसै हम स्तुति करते हैं इति शेषः ॥१५॥

धृती दिवो विभाति तपसस्पृथिव्या धृती देवो देवाना-  
ममर्त्यस्तपोजाः। वाचमस्मे नियच्छ देवायुवम् ॥१६॥

ऊर्ध्वबृहती। वोह देव (धर्म) हम लोगों में वाचा (यज्ञ) को स्थापन क-  
रै कैसी वाचा कि देवयुवा (देवताओं को मिश्रित करने हारीतिस)  
को अर्थात् देवसमूह को आह्वान करने हारे यज्ञ को समाप्त करै  
(यज्ञो वै वाग्यज्ञमस्मभ्यं प्रयच्छ येन देवान्प्रीणमेत्येवै तदाहेति  
१४.१०.४.८. श्रुतेः। वोहो कौन कि जो देव पृथिवी में शोभे है।  
कैसा कि धुलोक का धारयिता। और तप (रश्मिजाल) का धार-  
यिता। और देवताओं का धारयिता। मनुष्यधर्मरहितः (अजरा-

मरः। तपः(आदित्य) से उत्पन्नः॥१६॥

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पृथिभि-  
श्चरन्तम्। स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान् आवरी-  
वर्ति भुवनेष्वन्तः॥१७॥

विष्टुब्दीर्घतमो हृष्टा। वोह धर्म भुवनों (तीनों लोकों) के मध्य में  
व्यवस्थित पुनः-पुनः आवर्तते हैं। कैसा कि सध्रीचीः (दिशाओं  
वारुणीयों) को आछादन करता। विषूचीः (दिशाओं वारुणीयों)  
को आछादन करता। सध्रीचीश्च तेषां विषूचीश्च दिशो वस्तेभ्यो  
रश्मीनिति १४.१४.१० श्रुतिः। एकः स शब्दः पादपूरणः। वोह  
कोन कि जिस आदित्यरूप को में देखता हूं कैसे को कि गोपाय-  
ता। न निपद्यमान (अन्तरिक्ष में चलते भी नहीं गिरते) को। पुनः  
देवमार्गो करि आते और जाते को॥१७॥

विश्वासां भुवां यते विश्वस्य मनसस्पते विश्वस्य  
वचसस्पते सर्वस्य वचसस्पते। देवश्रुत्वं देव धर्म  
देवो देवान्यात्यत्र प्रावीरन्तु वां देववीतये। मधुमा-  
ध्वीभ्यां मधु माध्वीभ्याम्॥१८॥†

अ० यजुः। इ० सा-उ० ऋ० आसुरी वृ० लृ० आसुरीयं०॥ हे सब पृथि-  
वीयों के स्वामिन् सर्वप्राणिगतमन के अधिपते सर्वप्राणिवच-  
न के पालक सर्व त्रयीलक्षणवचन के प्रवर्तक हे देवश्रुत (देव-  
प्रसिद्ध) हे देव (दीप्यमान) हे धर्म देव तू देवताओं की रक्षा कर।  
एवं धर्म सम्प्राप्त्याश्विनावाह हे अश्विनो इस यज्ञ में देवतर्पण



के अर्थ अनन्तर धर्म तुम्हें वृष करे (तुम्हारी वृषि से सब देवता वृष होते हैं इति भावः कों कि जिन तुम्हारे अर्थ दध्यङ्गार्थवर्ण में मधुसंज्ञक ब्राह्मण को कहा दध्यङ्ग ह वाः आभ्यामायवर्णो मधुनाम ब्राह्मणमुवाचेति १४. १४. १३. श्रुतेः। कैंसों के अर्थ कि माध्वीभ्यां (मधुब्राह्मण को जानते तिन्हों के अर्थ। तथा माधूचीभ्यां (मधुब्राह्मण को पूजते तिन्हों के अर्थ॥ १८॥

हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्याय त्वा । ऊर्ध्वेऽ  
अध्वरं दिवि देवेषु धेहि॥ १९॥

परोषिणक्। हे धर्म हृदयस्वास्थ्य के अर्थ तुम्हें स्तुति करते हैं इति शेषः मन की शुद्धि के अर्थ तुम्हें स्तु. स्वर्गप्राप्ति के अ. (हृदय को शोधि मन को निर्मल करिके स्वर्ग को हमारे को लेजाकर सूर्य को वृष करि इति भावः। किं च ऊर्ध्व (सावधान) होकर हमारे यज्ञ को शुलोक में वर्तमान देवताओं विषे स्थापन करि यज्ञ के जाने में यजमान भी जाता है इति भावः॥ १९॥

पिता नोऽसि पिता नो बोधि नमस्तेऽस्तु मा मा  
हि ठंसीः। त्वष्टमन्तत्त्वा सपेम पुत्रान्यभून्मयि  
धेहि प्रजामस्मासु धेह्यरिष्टाहं सहयत्या भू-  
यासमे॥ २०॥ +

+ पि-सीः। अ. त्व-म. इ. ॥ २०॥

ऋगगायत्री वा साम्नी वृ. हे महावीर नू हमारा पिता (पालक) हे पिता ऐसै हमें बोधन करि सर्वथा तेरे अर्थ नमस्कार हो मुझे मत जी-  
ति॥ ॥ महावीरोयस्थानं समाप्तम् ॥ ॥ का. २६. ४. १३.

महावीर को देवती अपनीतशिरोवस्त्रा घर्म को देवती पत्नी  
को अधर्यु पदवावै ॥ ऋचां त्रिष्टुप् घर्मदेवत्या पत्न्याशीः ॥ हे  
घर्म हम मैथुन के अर्थ तुम्हें स्पर्श करती हें। कैसी हें हम कि  
त्वष्टमन्तः (रेत के अधिकारी त्वष्टा तिस सहिता)। अतः पुत्रों औ  
र पशुओं को मेरे विषे स्थापन करि प्रजा (उत्तरोत्तरवंशवृद्धि)  
हमारे विषे स्थापन करि। किं च पति (भर्तार) सहित में अनुपहि-  
सिता होऊँ अर्थात् भर्तृमती चिरजीऊँ। वृषावै प्रवर्ग्यो योषा पत्नी  
मिथुन मैवै तत्प्रजननं क्रियतः इति १४.१.४. १६. श्रुतेः ॥ २० ॥

अहः केतुना जुषताथं सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा।

रात्रिः केतुना जुषताथं सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वा-

हा ॥ २१ ॥ + अ-हा। अ०। रा-हा। इ० ॥ २१ ॥

इति सठं हितायां द्वितीयोऽनुवाकः २.

इति श्री शुक्ल यजुषि माध्यन्दिनीयायां वाजसनेय-

सठं हितायां दीर्घपाठे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३ ॥

का० २६.४.१४. उपस्थान और गान की समाप्ति में रोहिणहव-  
नि स्तुचा करि अहः केतुनेति दक्षिण रोहिण पुरोडाशसर्वहुत  
को होयें ॥ घर्मदेवत्ये यजुषी सामानुष्टुभौ। केत/प्राज्ञा वा कर्म)  
सहित दिन को जुषताम् (रोहिण होम करि प्रीति हों कैसा दिन  
कि स्वकीयतेज करि शोभन ज्योतिजिस की वोह विशिष्टतेज-  
स्क स्वाहा (यह हविः सुहुत हो। रोहति स्वर्ग यजमानो याभ्यां  
तौ रोहिणो अग्न्यादित्यो अहोरात्रे वा इमौ लोकौ वा चक्षुषी

+ मैथुनार्थोपसर्गो वीज-  
धिरात्तापेक्षितोऽनन्तयुतः।

वा शिरः प्रवर्ग्यो रोहिणौ चक्षुषी तत्र दधातीत्यादि रोहिण प्र-  
 शांसा श्रुतो १४.२.१-५ ज्ञेया ॥ का० ३६. ४. १५. सायंकालीन प्र-  
 वर्ग्य मे रात्रिरिति मन्त्रेण देवो प्रवर्ग्यो को यथाकाल होमे ॥  
 केतु सहिता रात्रिः प्रीयताम् ज्योति करि सुज्योरितित्युक्तम् ॥ २२ ॥

इति भाष्ये द्वितीयोऽनुवाकः २

श्रीवेदार्थप्रदीपन तमोहार्दनिवारयन् ॥

पुमार्थाश्चतुरो देयान् महावीरो मखाधिपः ३७

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनी शास्त्राध्येतव्या घ्राणादान-  
 य विश्वामित्रपुराधिप श्रीमज्जयकिशोरदेववर्मात्मज रोहि-  
 ण्यनृपति गिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये  
 शुक्रियायामभ्यादानादि रोहिण होमान्तः सप्तविंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

हरिः श्रीम्

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं द्विरूपं च साधनैर्बहुरूपकम् ॥

स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः ३७

अ० १०

हेनस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूषणो  
 हस्ताभ्याम् । आददेऽदित्ये रात्रासि ॥ १ ॥ †

ओं नमो याज्ञवल्काय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके ॥

अष्टाविंशोऽयमध्यायो महावीरः समीर्यते ३८

का० २६. ५. १. अध्वर्यु देवस्य त्वेति रज्जुसंदान को लेकर गार्हप-  
त्य के पीछे चलता दृडः एहीति तीनों वाक्यों करि घर्मदुधा गो को  
बुलावे और असावेहीति नाम करि तीनवार ऊँचे स्वर से ढेरें॥ दे-  
वस्य त्वा प्रा-बृ० आददे रज्जुदेवत्यं प्रा-गा० वा या-अ० हे रज्जो  
सविता देवता की आज्ञा में वर्तमान आश्वनीकुमारों के बाहुओं पू-  
षा के हाथों से तुम्हें ग्रहण करता हूँ क्योंकि तू अदिति (देवमाता)  
की रसना (मेखला) है॥ १॥

दृडः एह्यदितुः एहि सरस्वत्ये हि॥ असावेत्यसावेत्य-  
सावेहि॥ २॥ +

अ० दे-बृ० इ० उ० दे-यं० गौर्देवत्याः॥ हे इडे (मानवि) आगमन-  
करि॥ हे अदिते (देवमातः) आ०॥ हं सरस्वति (वाणी) आ०॥ इडा  
हि गौरदिति हि गौः सरस्वती हि गौरिति १४. २. १. ७. श्रुतेः॥ ती-  
नों नामों से ऊँचे ढेरें। दे-बृ० असो (धवलि) आ० एवं त्रिः॥ २॥

अदित्ये रास्नासीन्द्राण्याः उष्णीषः॥ पूषासि घर्मा-  
य दीक्ष॥ ३॥ + अ-षः॥ अ० पू-सि। इ० घ-अ० उ०॥ ३॥

का० २६. ५. ३. आई हुई गो को अदित्या इति मन्त्रेण पाशा करि  
बाँधि तिस पाश को लम्ब में बाँधिकर पूषासीति वत्स को छोड़े।  
या-त्रि० हे रज्जुपाश तू अदिति की रसना है इन्द्राणी का उष्णी-  
ष (शिरोवेष्टन) है अर्थात् इस पाश करि इन्द्रपत्नी उष्णीष करती  
है तमैवेन मे तत्करोतीति १४. २. १. ८. श्रुतेः॥ वत्स को छोड़े। पूषासि  
दे-अ० वत्सो देवता। हे वत्स तू पूषा (वायु) है जैसे वायु वृष्टि आप्या-

+ इ-हि॥ अ० आ-हि। इ० स-हि। उ० अ-हि। अ० ल० आ०॥ २॥

अश्विभ्यां पिन्वस्व सरस्वतये पिन्वस्वेन्द्राय पि  
स्व । स्वाहेन्द्रवत्स्वाहेन्द्रवत्स्वाहेन्द्रवत् ॥ १॥

यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्यो रत्नध  
 विद्यः सद्वः । येन विश्वा पुष्यसि वार्योणि  
 स्वति तमिह सोऽथा शर्ते नो सार्धं नो ॥ न

का० २६. ५. ७. यस्त इति गौ के लीवेदास स स्तन को इस स्थान  
त्या त्रिष्टुप् दीर्घतमोदृष्टा हे सरस्व महावी

में पानार्थ करि अर्थात् मेरे पान के लिये दे। तिस किसे कि जो तेरा स्तन (जैसे) सोता ही है (अन्ये रनुपभुक्तत्वात् यस्ते स्तनो निहितो गुहायामिति १४.२.१.१५. श्रुतेः। और जो स्तन सुख प्राप्त करता है सब भूतों को। और जो रमणीय धनों का धारयिता। और जो धन को विन्दति वा वेति। और जो शोभनदाता (ओस्को) ई धनवान् धन देने को नहीं समर्थ है परन्तु तेरा स्तन धनवान् और दाता यह औरों से आधिक्य है। किंच जिस स्तन करि सब वरणीय वस्तुएँ तू पुष्टि करती है तिस स्तन को मेरे पीने के अर्थ दे इत्यर्थः ॥ का. २६. ५. ११. होता करि उपद्रवेति मन्त्र पठते उर्विति मन्त्र करि अध्वर्यु गोसमीप से गार्हपत्य प्रति जावै ॥ प्रा. गा. विशाल अन्तरिक्ष को अनुसरण करिके जाता हूँ ॥ ५ ॥

गायत्रं छन्दोऽसि त्रैष्टुभं छन्दोऽसि द्यावापृथिवीभ्यां त्वापरिग्रहाम्यन्तरिक्षेणोपयच्छामि। इन्द्राधिना मधुनः सारथस्य घर्मं पातु वसवो यजत वाट। स्वाहा सूर्यस्य रश्मये वृष्टिवनये ॥ ६ ॥

का. २६. ५. १२. गायत्रमिति मन्त्रों से परीक्षाओं को ग्रहण करे ॥ यजुर्गायत्र्यो वादे-त्रि. परीक्षाओं देवते। हे परीक्षास तू गायत्री छन्द रूप है ॥ त्रिष्टुप् छन्द रूप है ॥ इति द्वितीयम् ॥ का. २६. ५. १४. तिन परीक्षाओं से द्यावापृथिवीभ्यामिति महावीर को लेवै ॥ या-ज. सा. गा. वा महावीरो देवता। हे महावीर द्यावा पृथिवीओं करिके तू मेरे परिग्रहण करता हूँ (परीक्षास्यो द्यावाभूमी अध्यस्ते महावीर

+ गा-मि। अ. त्रै-सि। इन्द्रा-मि। उ. अ-मि। ऋ. इ-ना। लृ. म-ट। आ. स्वा-ये। इ. ॥ ६ ॥

चादित्योऽध्यस्तः तथा च श्रुतिः १४.२.१.१६. इमे वै द्यावा पृथिवी-  
 वीपरीणासाचादित्यः प्रवर्ग्योऽमुं तदादित्यमाभ्यां द्यावापृथिवीभ्यां  
 परिगृह्णातीति ॥ का. २६.५.१५. परीणासां करि गृहीत महावीर को ऊँचा  
 करिके मूँज के बने वेद से संमार्जन करि उपयमनि सुक् करि  
 के अन्तरिक्षेणोपयच्छामीति तिसै ग्रहण करै ॥ या-वृ० हे धर्म  
 अन्तरिक्ष (आकाश वा उदर) करि तुम्हें निग्रहण करता हूँ (उपय-  
 मन्यन्तरिक्षेणोदरत्वेन च सूयते तथा च श्रुतिः १५.२.१.१७.  
 अन्तरिक्षं वा उपयमन्यन्तरिक्षेण हीदर्थं सर्वमुपयतमथोऽ-  
 उदरं वा उपयमन्युदरेण हीदर्थं सर्वमन्नाद्यमुपयतं तस्माद्ग्र-  
 हान्तरिक्षेणोपयच्छामीति ॥ का. २६.५.१६. अजादुग्ध करि चु-  
 पके से महावीर को सींचिके क्षीणज्वाला में इन्द्राश्विनेति मन्त्रेण  
 गौ का पय सींचे ॥ त्र. दे-वृ० आ० आर्चीगा० ई० आसु-अ०  
 विश्वदेव देवत्यानि मिलित्वा द्वा-गा० वा० हे इन्द्र हे अश्विनो हे  
 वसंवः (वासयितारः) तुम मधु (मधुर-पय) के धर्म (रस) को पान-  
 करो। कैसे मधु कि सारथ (मधुमक्षिका-भ्रमरा) जैसे कृत्विज-  
 लोग तिन्हें करि किये) का। किं च हे इन्द्रादयः वाट् (वषट्कार क-  
 रि) स्वाहा (सुष्ठु हुत) सारथ मधु को सूर्य की रश्मि (किरण) के अ-  
 र्थ नुम देखो (वषट् कृतं हुतमेव तस्यैतद्ववतीति श्रुतेः १४.२.  
 १.२०. कैसी रश्मि कि वृष्टि देनेहारि के अर्थ (जो रश्मि वृष्टि  
 देती है तिस के अर्थ मधु देखो)। तथा च श्रुतिः १४.२.१.२१.  
 सूर्यस्य हवा गहकी रश्मि वृष्टि वनिर्नाम येने माः सर्वाः प्रजा वि-

भर्ति तमेवैतत्प्रीणातीति ॥६॥

समुद्राय त्वा वाताय स्वाहा सरिराय त्वा वाताय  
स्वाहा। अनाधृष्याय त्वा वाताय स्वाहा प्रतिधृष्या-  
य त्वा वाताय स्वाहा। अवस्य वै त्वा वाताय स्वा-  
हा शिमिदाय त्वा वाताय स्वाहा ॥७॥+

का० २६. ६. १. प्रैतु ब्रह्मणस्पतिरिति होता करि उच्चारण करते  
आहवनी प्रति चलता अध्वर्यु समुद्रायत्यादीनि वातनामों को  
स्वर करि जपे ॥ द्वादश यजूंषि वातनामदेवत्यानि १०. २. ५. ८.  
६. या-पं० ३. ६. या-त्रि० ४. या-ज० ७. ११. १२. सा-उ० १०. आर्ची  
गा० हे घर्म वात के अर्थ तुम्हे स्वाहा (होमता हूं) कैसे वात कि स-  
मुद्र (उत्पन्न होते हैं सर्वभूत जिस से तिस) के अर्थ। अयं वै स-  
मुद्रो योऽयं पवतः एतस्माद्देसमुद्रात्सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि  
समुद्रवन्ति तस्मादण्वैनं जुहोतीति १४. २. २. २. श्रुतेः ॥१॥ सरि-  
र (साथ चलते हैं सिद्धि के अर्थ सर्वभूत जिस से तिस) वात के अ-  
र्थ हे घर्म तुम्हे होमता हूं। अयं वै सरिरो योऽयं पवतः एतस्मा-  
द्दे सरिरात्सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि सहेरतः इति १४. २. २. ३. श्रु-  
तेः ॥ २॥ अनाधृष्य (नही पराभव करने को शक्यतिस) के अर्थ।  
अप्रतिधृष्य (नही प्रतियुद्ध को शक्यतिस) के अर्थ। वातायेत्यु-  
क्तम्। अयं वाऽअनाधृष्योऽप्रतिधृष्यो योऽयं पवतः इति १४. २.  
२. ४. श्रुतेः ॥ ३॥ ४॥ अवस्यु (अवनशील) के अर्थ। अशिमिद  
(क्लेशनिवर्तक) के अर्थ। अन्यदुक्तम्। अयं वाऽअवस्युरशिमि-



हो योऽयं पवत इति १४. २. २. ५. श्रुतेः ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥

इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवते स्वाहेन्द्राय त्वादित्य  
वते स्वाहेन्द्राय त्वाभिमातिघ्ने स्वाहा । सवित्रे  
त्वऋभुमते वाजमते स्वाहा । बृहस्पतये त्वा  
विश्वदेव्यावते स्वाहा ॥ ८ ॥ †

वसुमान् रुद्रवान् इन्द्र (वात) के अर्थ हे धर्म तुम्हें होमता हूँ । अयं  
वाः इन्द्रो योऽयं पवत इति १४. २. २. ६. श्रुतेः ॥ ७ ॥ आदित्ययुक्त  
इन्द्र (वात) के अर्थ स्वाहा ॥ ८ ॥ अभिमातिघ्नों (शत्रुओं) के हन्ता  
वात के अ० सपत्नी वाः अभिमातिरिति १४. २. २. ८. श्रुतेः ॥ ९ ॥  
सविता (चेष्टयिता) वात के ० कैसे के कि ऋभुमान् विभुमान् वा-  
जवान् आङ्गिरस सुधन्वा के तीनि पुत्र तिन्हो करियुक्त । अयं  
वै सविता योऽयं पवत इति ॥ १० ॥ बृहस्पति (वडों के पति) तिस  
वात के अर्थ । अयं बृहस्पतिर्योऽयं पवत इति १४. २. २. १०. श्रु-  
तेः ॥ ११ ॥ ८ ॥

अ० २. यमाय त्वाङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा । स्वाहा घ-  
र्माय स्वाहा धर्मः पित्रे ॥ ९ ॥ †

यम (वायु) के अर्थ हे धर्म तुम्हें । अयं वै यमो योऽयं पवत इति  
१४. २. २. ११. श्रुतेः । कैसे यम कि आङ्गिरः पितृयुक्त ॥ १२ ॥ वात  
नामानि समाप्नानि ॥ ॥ का० २६. ६. २. स्वाहा यर्मायेति उप-  
यमनी सुकू करि सुवस्थ घृत को धर्म में सींचें ॥ धर्म देवत्या  
दे-पं० धर्म के अर्थ स्वाहा (एतदाज्यसुहृत हो ॥ का० २६. ६. ३.

† इ-हा। अ०। उ०। स-हा। ऋ०। द-हा। ल० ॥ ८ ॥

† य-हा। अ०। स्वा-य। इ०। स्वा-त्रे। उ० ॥ ९ ॥

अपसव्यवान्दक्षिणास्यः स्वाहेति मन्त्र को स्वरेण जपि कर सव्येन  
जल को स्पर्श करिके धर्महस्तोऽतिक्रम्याश्राव्य धर्मस्य यजेत्याह ॥  
धर्मदेवत्याहे-त्रि० स्वाहा धर्मः पितृर्थ हो ॥६॥

विष्वा आशा दक्षिणासद्विष्वान्देवानयाडिह स्वा-  
हाकृतस्य धर्मस्य मधोः पिबतमश्विना ॥१०॥

का० २६. ६. ४. वषट् कृते सति धर्म को होमें ॥ अश्विदेवत्यानुष्टु-  
प्। इस यज्ञ में दक्षिणातः स्थितोऽध्वर्यु सब दिशाओं और सब दे-  
वताओं को पूजता हुआ (दक्षिणातः स्थितो ह्याहुतीर्जुहोति। इस हे-  
तु से कहिता है कि हे अश्विनो वषट्कार के अनन्तर मधुर स्वाद ध-  
र्म को तुम पीओ ॥१०॥

दिवि धा इमं यज्ञमिमं यज्ञं दिवि धाः स्वाहाग्न-  
ये यज्ञियाय शं यजुर्म्यः ॥११॥ +

का० २६. ६. ५. महावीर को तीन बार ऊँचा कैंपावै एक बार दिवि  
धा इति मन्त्रेण दो बार चुपके से ॥ धर्मदेवत्यं सा-उ० आसु-उ०  
वा। हे महावीर इस मेरे यज्ञ को तू धुलोक में स्थापन करि (पुन-  
रुक्तिरदरार्था ॥ का० २६. ६. ६. अनुवषट् स्वाहेति मन्त्रेण धर्म को हो-  
में ॥ या-ज०। यज्ञहित अग्नि के अर्थ सुकृत हो यजुषों के सकाशों से  
हमारा सुख हो ॥११॥

अश्विना धर्मं पातठं हार्द्दी नमहर्दिवाभिरूतिभिः ॥

तन्त्रापिणे नमो द्यावापृथिवीभ्याम् ॥१२॥

का० २६. ६. ७. ब्रह्मा धर्म को अभिमन्त्रण करे ॥ स्वरादुष्णिक

अश्विनावादित्यो द्यावापृथिव्यो च देवताः। हे अश्विनौ तुम अ-  
बनों करिके धर्म को पियो कैसे अबनों कि प्रातः सायंकालोपल-  
क्षिताओं सै (प्रवर्ग्यकालः स एव यतः। कैसे धर्म कि हृदयप्रिय।  
एवं धर्म पीने के अर्थ अश्विनौ को प्रार्थना करि तिन्हों की सहाय  
के अर्थ सूर्यादिकों को नमस्कार करता है। तन्त्र (कालचक्र) में  
निरन्तर चलते सूर्य के अर्थ नमस्कार हो। एष वै तन्त्रायी य एष  
तपत्येष हीमां लोकांस्तन्त्रमिवानुसंचरन्तीति १४.२.२२ श्रु-  
ते। द्यावा पृथिवीओं (दोनों लोकों) तिन्हों के अधिष्ठाताओं के  
अर्थ नमः ॥१२॥

अपातामश्विना धर्ममनु द्यावापृथिवीऽअमर्षं सा-  
ताम्। इहैव रातयः सन्तु ॥१३॥

का. २६. ६. ८. यजमान धर्म को अभिमन्त्रित करे ॥ ककुबुषि-  
क् अश्विदेवत्याः। अश्विनौ धर्म को पियें द्यावा पृथिवी भला कि-  
या यह जानें अतएव अश्व्यादिकों के प्रसाद सै हमारे घर में स्थि-  
त हमारे धन हों (इहैव रातयः सन्ति त्वीहैव नो धनानि सन्ति त्वे-  
वैतदाहेति १४.२.२. २६. श्रुतेः ॥१३॥

इये पिन्वस्वोर्जे पिन्वस्व ब्रह्मणे पिन्वस्व क्षत्राय  
पिन्वस्व द्यावापृथिवीभ्यां पिन्वस्व। धर्मासि सुध-  
र्मा मेन्यसे नृमणानि धारय ब्रह्म धारय क्षत्रं धा-  
रय विंशं धारय ॥१४॥

का. २६. ६. ८. इये पिन्वस्वेति अतितप्ते धर्म को अभिमन्त्रण क

रे॥ अ०० इ०० दे० पं०० उ०० ऋ०० दे० वि०० लृ०० या०० बृ०० मिलित्वा  
 त् ऋगायत्री धर्मदेवता हे पिन्वमान (अतितप्त) धर्म वृष्टि के  
 अर्थ पिन्वस्व (पुष्ट हो) अन्न के अर्थ पिन्वस्व (अन्न को बढ़ा) ब्रा  
 ह्मणों के अर्थ पिन्व० क्षत्रियों के अर्थ पि० द्यावापृथिवीओं के  
 अर्थ पि० ब्राह्मण क्षत्री द्यावापृथिवी तृप्त करि ॥ का० २६. ६. १०  
 धर्मासीति ईशानी दिशा प्रति उत्क्रामण करें ॥ या-गा० धर्मदे०  
 हे धर्म हे सुधर्म (साधु धारणशील) तू धर्म (सब जगत का धार  
 ण) हे अर्थात् आहुति परिणामद्वारा करि सब को धरता है ॥  
 का० २६. ६. ११ अमेन्यस्मे इति महावीर को स्वरपै स्थापन क  
 रे ॥ स्वर देवत्यं यजुः ॥ हे धर्म अमेनिः (अक्रुध्यन्) सन् हमारे वि  
 धे धनों को स्थापन करि (अक्रुध्यन्तो धनानि धारयेति १४. २. २  
 ३० श्रुतिः) ब्रह्म क्षत्र और विश को स्थापन करि (विप्रादिकों  
 को हमारे वश करि ॥ १४ ॥

स्वाहा पूषण शरसे स्वाहा ग्रावभ्यः स्वाहा प्रतिर  
 वेभ्यः ॥ स्वाहा पितृभ्य ऊर्ध्ववर्हिभ्यो धर्मपावभ्यः  
 स्वाहा द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा विश्वेभ्यो देवे  
 भ्यः ॥ १५ ॥ †

का० २६. ६. १२ धर्म में निरन्तर लिप्त करि विकङ्कत शकलों से  
 धर्माज्य को होमें स्वाहा पूषण इति प्रतिमन्त्रम् ॥ सप्तलिङ्गोक्त  
 देवतानि १. ३. या-उ०२. दे० पं०४. आसु-गा० ५. ६. या-अ०७.  
 या-पं० शरसे † (स्नेह करनेहारे) पूषा (प्राणरूपवायु) के अर्थ सु

† स्वा-से। अ०। स्वा-भ्यः। इ०। उ०। ऋ०। सा-म्। लृ०। स्वा-भ्यः। आ०॥ १५ ॥

अत्र स्नेहमात्रवाची  
 शब्दो दधुर्पागस्यस्नेहवाचकः  
 † शः

हुत हो। अवरर्द्धं स्वाहाकारं करोति परं देवतामिति १४.२.२.३२।  
 श्रुतेरादौ स्वाहाकारस्ततो देवतापदानि। अयं वै पूषा योऽयं पव-  
 नः ण्य हीदृष्टं सर्वं पुष्यत्येष उ प्राणः प्राणमेवास्मिन्नेतद्वाती-  
 ति १४.२.२.३२. श्रुतिः॥१॥ ग्रावों (विषयग्रहणशीलों प्राणों) के  
 अर्थ स्वाहा। प्राण वै ग्रावाणः प्राणानेवास्मिन्नेतद्वातीति १४.२.  
 २.३३.॥२॥ प्रतिरवों (शब्द करतेओं वा प्रति रमते हैं जिन्हें पाक-  
 र निन प्राणों) के अर्थ स्वाहा। प्राण वै प्रतिरवाः प्राणहीदृष्टं स-  
 र्वं प्रतिरतमिति १४.२.२.३४. श्रुतिः॥३॥ का. २६. ६. १४. चतुर्थ  
 शकल को अहुतमेव उदीची को देवता वेदि के दक्षिणभा-  
 ग में आनिष्ठ्याबर्हि में प्रवेश करै॥ पितरों के अर्थ स्वाहा कैसे  
 पितरों उर्ध्वबर्हिओं (प्रागग्र दहिर्हैं जिन्हें की तिन सोम पीने-  
 हारों) के अर्थ तथा घर्म पीनेहारों के अर्थ॥४॥ द्यावापृथिवी-  
 ओं (प्राणोदानों) के अर्थ स्वाहा। प्राणोदानों वै द्यावापृथिवी  
 प्राणोदानावेवास्मिन्नेतद्वातीति १४.२.२.३६. श्रुतिः॥५॥ वि-  
 श्वे देवाओं (प्राणों) के अर्थ स्वाहा। प्राण वै विश्वे देवाः प्राण-  
 नेवास्मिन्नेतद्वातीति १४.२.२.३७. श्रुतिः॥६॥१५॥†

स्वाहा रुद्राय रुद्रहृतये स्वाहा सं ज्योतिषा ज्यो-  
 तिः। अहः केतुना जुषतां सुज्योतिर्ज्योति-  
 षा स्वाहा। रात्रिः केतुना जुषतां सुज्योतिर्ज्यो-  
 तिषा स्वाहा। मधु हुतमिन्द्रतमेऽग्नावश्या-  
 म ते देव घर्म नमस्तेऽस्तु मा मा हिंसीः॥१६॥†

का० २६.६.१५ मूलाग्रावधि धर्मघृताभ्यक्त सप्तम शकल को द-  
क्षिण की ओड़ी देवता प्रतिप्रस्थाता के अर्थ देवै ॥ रुद्रों + (स्तो-  
तृयों) से स्तुत रुद्र के अर्थ सुहुत हो ॥ ७ ॥ एवं सप्त यजुषां मध्ये च-  
तुर्थ सप्तमयोर्विनिर्योग उक्तः शेषैः पञ्चशकलै रज्य होमः ॥  
का० २६.६.१७ स्वाहा समिति धर्मसम्बन्धि घृत को उपयमनि  
में सींचे पहिले सुक्स्थ को धर्म में सींचा अब धर्मस्थ को सुक्स्थ  
में डाले ॥ पयो देवत्यम् प्रा-गा० या-अ० वा० ज्योतिः (धर्मस्थ-  
घृत) ज्योतिः (उपयमनीस्थघृत) करि संगत हो स्वाहा (सुहुतमस्तु।  
ज्योतिर्वाः इतरस्मिन्ययो भवन्ति ज्योतिरितरस्यां ते ह्येतदुभे ज्यो-  
तिषी संगच्छेते इति १४.२.२.४० श्रुतेः पयो देवता ॥ का० २६.६.  
१८ उत्तररौहिण को संज्योतिषा ज्योति एतन्मन्त्रकर्म के अनन्त-  
रहोमें ॥ अहः केतुना। व्याख्याते यजुषी ३७.२१ ॥ का० २६.६.२०  
उपयमनी में आनीत धर्माज्य को अग्निहोत्रहोमप्रकारेण सम-  
न्त्रक होमि के वाजिनवत् उपहवप्रार्थनपूर्वक होता अध्वर्युः ब्र-  
ह्मा प्रस्तोता प्रतिप्रस्थाता आग्नीध्र यजमान भक्षण करें ॥  
धर्मदेवत्यम् आर्चीवृ० अग्निमें मधुर (धर्माज्य) हमलोगों ने होमा  
कैसे अग्नि कि इन्द्रतम (वीर्यवत्तम) में (मधुहृतमिन्द्रियवत्तमे  
अग्नावित्येवैतदाहेति १४.२.२.४२ श्रुतेः) हे धर्म हे देव तेरे हुत  
शेष को हम भक्षण करते हैं तेरे अर्थ नमस्तार ही हमें हिंसा न  
करि (अपना परित्राण प्रार्थना करियें) ॥ १६ ॥

अभीमं महिमा दिवं विप्रो बभूव सप्रयाः ॥ उत

विप्रो  
महिमा  
दिवं  
विप्रो  
बभूव  
सप्रयाः

अवसा पृथिवीथं सर्गसीदस्व मुहो ॥२॥ असि रो-  
चस्व देववीतये विभुममने अरुवं मिरेथ्य सज  
प्रशस्त दशतम् ॥२॥ +

का० २६. ६. २५. प्रचरणीय महावारकों अभिममिति समन्त्रक आ-  
सन्दी में करें इतरो को चुपके से ततः शान्तिपादः ॥ गायत्री बृ-  
हत्यो मध्ये वसानहीने अभिममू गायत्री सर्गसीदस्व बृह-  
ती यद्वा वसानत्रयोपेताति शक्करी अग्निदेवत्या एवैवत्रकृत्  
गदयं वा। हे अग्ने तेरी महिमा दूस दिवि को अभि होती है। कैंसा  
महिमा कि विप्रः विशेषेण पूरता है सब को मेधावी विस्तार-  
सहित। और अव (धनवायश) करि पृथिवी को अभिभवतीत्यनु-  
षङ्गः ॥ सर्गसीदस्वेति व्याख्याते कादशेध्याये षड्विंशी कण्ड-  
का ११. ३६. तत्र शोचस्वेति पाठे त्ररोचस्वेति अर्थ एक एव ॥ ११॥

या ते धर्म दिव्या शुग्या गायत्र्याथं हविर्धाने।  
सा तः आप्यायतां निष्पायतां तस्यै ते स्वाहा॥  
या ते धर्मोन्निरिक्षे शुग्या त्रिष्टुभ्याग्नीध्रे। सा तः  
ऽआप्यायतां निष्पायतां तस्यै ते स्वाहा॥ या ते  
धर्म पृथिव्याथं शुग्या जगत्याथं सदस्यो। सा तः  
ऽआप्यायतां निष्पायतां तस्यै ते स्वाहा॥ १८॥ +

का० २६. ७. ४. अध्वर्यु आज्य को संस्कार करि चतुर्गृहीत करि-  
के तिस से होमें अग्नीधा धियमाण तीन शालाकात्रिकों में ती-  
नों मन्त्रों से तीसरे की वैठि करि ॥ धर्मदेवत्यानि त्रीणि १. ३.

+ अ०। ६५ अभिममू सर्गसीदस्व अनवसानत्वात् ॥ १७॥

+ या- हा। अ०। ३०। ३० ॥ १८॥

ऋक्पङ्क्तौ २ यजुः ॥ हे धर्म जो तेरी धु में जुड़ दीप्ति जो गायत्री  
छन्द में प्रविष्टा जो हविर्धान (यज्ञगृह) में प्रविष्टा सो तेरी दीप्ति  
बढ़ो दृढ होओ तिस तेरी दीप्ति और तेरे अर्थ सुहत हो ॥१॥ हे ध-  
र्म जो तेरी दीप्ति अन्तरिक्ष में त्रिष्टुप् छन्द में और आग्नीध्र  
सदन में प्रविष्टा सो तेरी इति पूर्ववत् ॥२॥ जो तेरी हे धर्म पृथि-  
वी में दीप्ति जगती छन्द में प्रविष्टा सद (यज्ञगृह) में स्थिता सो  
तेरी इत्युक्तम् ॥३॥ १८॥

अ० ३. क्षत्रस्य त्वा पुरस्याय ब्रह्मणस्तन्वं पाहि । विश-  
त्त्वा धर्मणा वयमनुक्रामाम सुविताय नव्यसे ॥१९॥  
का० २६. ७. ६. होम के अनन्तर अध्वर्यु पत्नी की आगे करि  
शाला से निकलें ॥ उपरिष्टादुहती धर्म देवत्या । हे धर्म हम तु-  
म्हें अनु चलते हैं तू ब्रह्म के शरीर को पालि । कि मर्यमनुग-  
मनम् कि क्षत्रिय (देव-सूर्य) के परम (उत्कृष्ट) पालने के अर्थ  
(एतद्वै देवं क्षत्रं य एष तपतीति १४. ३. १. ४. श्रुतेः) किंच वि-  
शः (यज्ञ) की धारणानिमित्त करि हम तुम्हें अनु चलते हैं (य-  
ज्ञो वै विज्यज्ञस्य त्वारिष्ट्ये इति १४. ३. १. ४. श्रुतेः) ॥ किमर्थ-  
म् कि नूतन सु प्रसूत कर्म की सिद्ध्यर्थ ॥ १९॥

चतुःस्रक्तिर्नाभिर्ऋतस्य सप्रथाः स नो विश्वा-  
युः सप्रथाः स नः सर्वायुः सप्रथाः । अपहे-  
योः अपह्वरोऽन्यब्रतस्य सश्रिम ॥२०॥

का० २६. ७. १४. प्रवृज्जनीय महावीर की उतरवेदि में स्थापन



करे॥ महाबृहती धर्मदेवत्या। बौह धर्म हमारा सर्वायुः (पूर्णयुः प्रदः) हो (पुनरुक्तिरदरार्था)। कैसा बौह कि चतुः सक्तिः (चारों कोण दिगूषा जिस के-एष वै चतुः सक्तिर्य एष तपति दिशां ह्येतस्य सक्तय इति १४.१.३. १७. श्रुतेः। तथा ऋत (सत्य वा यज्ञ) का नाभि (बन्धनस्थान) सविस्तारः। जगत की आयु का दाता। और सर्वतः प्रययिता। हे धर्म तेरे प्रसाद करि हमलोगों से द्वेष निकलजावे इति शेषः (बीतराग हों इति भावः)। और हमारे सै ह्वर (चलन-जन्ममरणलक्षण) निकलजावे। हम अन्यव्रत (मनुष्य कर्म के सकाश भिन्न व्रत जगदनुग्रहरूप परमात्मा) को सेवन करते हैं (परमात्मा की सायुज्य को प्राप्त होते हैं इति भावः)। अन्यद्वा एतस्य व्रतमन्यन्मनुष्याणामिति १४.३.१. १६. श्रुतेः॥ २०॥

धर्मे तने पुरीषे तेन वर्धस्व चा च प्यायस्व।  
वर्धिषीमहि च वयमा च प्यासिषीमहि॥ २१॥

का. २६. ७. ३२. गर्तेयुक्त पात्रों को दुग्ध से पूरण करे और ते पात्र सप्त हैं (३ महावीर २ पिन्वने १ उपयमनि १ सुवः)। अनुष्टुप् धर्मदेवत्या। हे धर्म यह पय तेरा पुरीष (पूरण करने हारा अन्न) है (अन्नं वै पुरीषमन्नमेवास्मिन्नेतद्वातीति १४.१.३. २३. श्रुतेः)। तिस (पय) करि वृद्ध हो और पूर्ण हो तेरे प्रसाद से हम वर्धिषीमहि आप्यासिषीमहि चेति व्याख्यातम् २. १४. ॥ २१॥

अचिक्रद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शितः। सठं  
सूर्येण दिद्युतदुद्धिर्निधिः॥२२॥

का० २६०७१२० सामगानानन्तर उत्सादन देश में अचिक्रद-  
दिति तीनि वार परितो जलसेक करिके वक्ष्यमाण करै॥ परोषिा क-  
यमदेवत्या। धर्मः सूर्यात्मना स्तूपते। आहुतिद्वारेण वृष्टि कर्ता य-  
र्म प्रवृज्यमानः सन् पुनः-पुनः शब्द करता हुआ। केसा  
कि हरितवर्ण वारसों का हर्ता। एष वै वृषा हरिर्य एष तपत्ये-  
ष उ प्रवर्ग्य इति १४०३१०२६० श्रुतिः। महान् (प्रभावसे) मि-  
त्र ऐसे दर्शनीय अत एव सूर्यतुल्य प्रकाश है जल का धर्ता  
निधि सुखों का इति शेषः॥२२॥

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रि-  
यास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्वि-  
ष्मः॥२३॥

का० २६०७३७० सपत्नीकाः ऋत्विग्यजमानाः चात्वाल  
में यार्जन करते हैं। पत्न्या अपि मन्त्रपाठः॥ व्याख्यात  
६२२॥२३॥

उद्वयं तमेसस्यरि स्वः पश्यन्त उत्तरम्। देवं दे-  
वत्रा सूर्यमगेन्म ज्योतिरुत्तमम्॥२४॥

का० २६०७३८० ऐशानी दिशा प्रति यजमान चलता है॥ व्या-  
ख्याता २००२१०॥२४॥

एधोऽस्येधिषीमहि समिदसि तेजोऽसि तेजो

मयि धेहि ॥२५॥ + ए-हि।अ०स-हि।इ०॥२३॥

का० २६.७.३६. यजमान पीछे को न देखना ईशानदेश से लो-  
दि करि एधोः सीति मन्त्रेण एक समिध लेके समिदसीति मन्त्रे-  
ण आहवनीय में रखे ॥ मन्त्रद्वयं व्याख्यातम् २००२३॥२५॥

यावन्ती द्यावापृथिवी यावच्च सप्त सिन्धुवो वि-  
तस्थिरे। तावन्तमिन्द्र ते ग्रहमूर्जा गृह्णाम्य-  
क्षिते मयि गृह्णाम्यक्षितम् ॥२६॥

का० २६.७.५४. सपवित्रा अग्निहोत्राहवणी में दधिधर्म ग्र-  
हण करें ॥ ब्राह्मी उषिणक् दधिधर्मदेवत्या इन्द्रदेवत्या च। हे  
इन्द्र अन्न सहित अनुपक्षीण तेरे ग्रह नितने परिमाण को में  
ग्रहण करता हूं और मुरु विषे अनुपक्षीण जैसे हो तैसे ग्र-  
हण करता हूं (तेरे ग्रहण करि मुरु में यज्ञक्षय न हो इत्यर्थः।  
नितना कितना कि द्यावापृथिवी जितनी और सप्त समुद्रा  
जितने परिमाण देश में विषेण स्थित हैं तितने महत्तर दधि-  
धर्म को ग्रहण करता हूं इत्यर्थः ॥२६॥

मयि त्यदिन्द्रियं बृहन्मयि दक्षो मयि क्रतुः॥  
धर्मस्त्रिभुग्विराजति विराजा ज्योतिषा सह  
ज्योतिषा तेजसा सह ॥२७॥

का० २६.७.५५. इतौषे दधिधर्म को यजमान ऋत्विज सो-  
पहव भक्षण करें ॥ यच्चपदायङ्गिर्यजमानाग्नीदेवत्या दधि-  
धर्म देवत्या चेति महीधरः। वडा वोह (प्रसिद्ध) इन्द्रिय (वीर्य)

मुरु में विराजै। दक्ष (संकल्पसिद्धि) मुरु में वि०। क्रतु (सत्संकल्प) मुरु०। विराज (जगत्प्रसिद्ध) ज्योति (तेज आदित्याख्य) सहित और ब्रह्म (त्रयीलक्षण) तेज सहित धर्म मुरु०। कैसा धर्म कि त्रिशुक्र तीनि हैं दीप्ति हैं जिस की बोह-या ते धर्म दिव्या-श्रुगित्यष्टादशी कण्डिका शालाक मन्त्र में कह गया ॥२७॥

पयसो रेत आभृतं तस्य दोहमशीमत्युत्तरामुत्तरा-  
थं समाम्। त्विषः संवृक् क्रत्वे दक्षस्य ते सुषुमा-  
स्य ते सुषुमाग्निहृतः। इन्द्रपीतस्य प्रजापति-  
भक्षितस्य मधुमत उपहृत उपहृतस्य भक्षयामि ॥२८॥

इति संहितायां तृतीयोऽनुवाकः ३

इति श्री सुक्त यजुषि माध्यन्दिनीयायां वाजसनेय  
संहितायां दीर्घपाठेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥३८॥

धर्मदेवत्या। गायत्र्यनवसाना। दधियर्मभक्षणे एव विनियु-  
क्ता। पय का रेत (वीर्य-सार-जगदुत्पत्तिबीज) जो आहरण  
किया दधियर्मरूप तिस के दोह (प्रपूरण) को हम उत्तरो-  
त्तर इस वर्ष में व्याप्त हों (सर्वदा हम यायजूका हों इत्यर्थः॥  
का० २६०७५६० महावृतीय दिवस में त्विष इति मन्त्रेण हु-  
तशेष दधियर्म को भक्षण करना ॥ इन्द्रियर्मदेवत्यं यजुः॥  
हे त्विषः संवृक् (कान्ति के स्वीकर्त्तेह) हे सुषुमाः (शोभ-  
नसुरबदातः) हे दधियर्म में उपहव किये सन् तेरा अंश वा  
तुम्हें भक्षण करता हूं + कैसा तेरा कि संकल्प का सिद्धिदाता। +

तथा शोभन सुखभूत। अग्नि में होमाहुआ। इन्द्र करि भक्षित। प्रजापति करि भक्षित। मधुर स्वादोपेत। उपहृत। कृतोपहव। एवं विध तेरे अंश को हे दधिधर्म में भक्षण करता हूँ इत्यर्थः॥ समाप्ता धर्मेति कर्तव्यता॥२८॥

इति भाष्ये तृतीयोऽनुवाकः३

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दनिवारयन्

पुमार्याश्चतुरो देयान्महावीरो मखेश्वरः॥४॥

श्रीमच्छुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनी शारवाथ्येत व्याघ्रपाश-  
न्वय विष्णुमित्रपुराधिप श्रीमज्जयकिंशोरदेव वर्मात्मज से-  
विमणेय नृपतिगिरिप्रसादेन रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधर-  
भाष्ये श्रुक्रियायामहावीरनिरूपणेऽष्टाविंशोऽध्यायः॥३८॥

हरिः ओम्

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

पञ्चात्मकं हिरूपं च साधनेर्बहुरूपकम्

स्वानन्ददायकं कृष्णं ब्रह्मरूपं परं स्तुमः३९.

अ. १.

स्वाहा प्राणेभ्यः साधिपतिकेभ्यः। पृथिव्यै स्वा-

हाग्नये स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा वायवे स्वाहा। दि-

वे स्वाहा सूर्याय स्वाहा॥१॥+

ओं नमो याज्ञवल्काय

गिरिप्रसादसंज्ञेनोपान्त्येऽध्याये प्रदीपके

र्यते संहिताभाष्ये शुक्ले धर्मादिनिष्कृतिः३९.

प्रवर्ग्ये यमभेदे प्रायश्चित्तम् नत्र का० २६.०.४६. अर्घ्ये भूमि-  
मिम् यः ऋतेचिदिति हो मन्त्रों से भग्नधर्म को स्पर्शकरि परमे-  
ष्वादि ८.५४-५६. चतुर्विंशत् आहुतियों होमिके स्वाहा प्राणेभ्य  
इति आद्या (पहिली) पूर्णाहुति को होमि पृथिव्ये स्वाहेति विंश-  
ति २० आहुतियों को सहजहुतीत करि होमि के मनस इति अन्त्या  
(पिछिली) पूर्णाहुति को करे ॥ स्वाहा प्राणेभ्यः १-३. मान्त्रवर्णि-  
को देवता। स्वाहा प्राणेभ्यः या-त्रि० मन्त्रार्थस्तु। अधिपति (हि-  
रण्यगर्भ) सहित वर्तमान प्राणों के अर्थ स्वाहा (सुहुनमस्तु) इति  
पूर्णाहुतिमन्त्रः। ततो विंशतिः स्यष्टा मन्त्राः १. २. ४. ६. ८. ११. १४.  
१६. १७. १८. १९. २०. दे-यं० ३. दे-ज० ५. ७. १०. १२. १४. दे-वृ० ६.  
११. दे-त्रि० पृथिवी के अर्थ सुहुन हों। एवमग्रेपि अग्नये अ-  
न्तरिक्षाय वायवे दिवे सूर्याय ॥ १॥

दिग्भ्यः स्वाहा चन्द्राय स्वाहा नक्षत्रेभ्यः स्वाहा-  
इयः स्वाहा वरुणाय स्वाहा। नाम्भ्ये स्वाहा पूता-  
य स्वाहा ॥ २॥+

दिग्भ्यः चन्द्राय नक्षत्रेभ्यः अइयः वरुणाय नमिदेवता-  
शोधकदेवता ॥ २॥

वाचे स्वाहा प्राणाय स्वाहा प्राणाय स्वाहा। चक्षुषे  
स्वाहा चक्षुषे स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा श्रोत्राय स्वा-  
हा ॥ ३॥+

वागभिष्टान् एवमग्रेपि। प्राणेन्द्रियाधिष्ठान् (प्राणदीनां हि

+ दि-हा। अ० च-हा। इ० न-हा। उ० ज-हा। ऋ० व-हा। ल० ना-हा। आ० पू-हा। ई० ॥ २॥  
+ वा-हा। न० ज्ञा-हा। इ० उ० च-हा। ऋ० ल० श्रो-हा। आ० ई० ॥ ३॥

त्वान्मन्त्रावृतिः। चक्षु तिस के अधिष्ठान्। श्रोत्र के अधिष्ठा  
न०॥३॥

मनसः काममाकृतिं वाचः सत्यमशीय। पशू-  
नां रूपमन्नस्य रसो यशः श्रीः श्रयतां मयि  
स्वाहा ॥४॥

द्वितीयः पूर्णहुतिमन्त्रः। अनुष्टुब्यजमानाशी श्रीदेवत्या। में  
मन के अभिलाष और आकृति (प्रयत्न) को प्राप्त होंउ और  
वाणी सत्य को प्राप्त होवै। मेरे विषे यह सब तिष्ठे पशुसम्ब-  
न्धिनी शोभा अन्न का स्वादुत्व यश (कीर्ति) और लक्ष्मी ॥४॥

प्रजापतिः सम्भ्रियमाणः सम्राट् सम्भृतो वैश्व-  
देवः संसृजो घर्मः प्रवृत्तस्तेज उद्यत आग्नि-  
नः पयस्यानीयमाने पोषणो विष्यन्दमाने मा-  
रुतः कथन्। मैत्रः शरसि संताप्यमाने वायव्यो  
द्वियमाण आग्नेयो ह्यमानो वायुतः ॥५॥

का० २६.७.५०० सम्भ्रियमाणाय वस्था (महावीरभेद) में प्रजा  
पतये स्वाहात्याद्या यथा काल आहुतियें होमियें हैं ॥ तद्यथा  
मन्त्री दर्शयति सम्भ्रियमाण महावीर जब कि फट्टे दूटै त-  
ब प्रायश्चित्तहोम में प्रजापति देवता हैं प्रजापतये स्वाहेति  
प्रायश्चित्ताहुति होमियें हैं इत्यर्थ (प्रजापतिः सम्भ्रियमा-  
णो यथाकालं प्रायश्चित्तदेवतेत्युक्तत्वात् अनुक्रम० ४.  
८। द्वे ५.६ यजुषी ॥ पयोऽवसेकानन्तर कुशासादन सैर्ष्य

सम्भृत कहियेहै तिस के भेद (फटने-टूटने) में सम्राट् प्रायश्चित्तदेवता, सम्राजे स्वाहेति ॥ आसादन सै ले मुञ्जप्रलवों पर अधिश्रयण सै प्राक् सठसन्नः तहां भेद में विश्वदेवदेवतः विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहेति ॥ अधिश्रयण सै ले परिशासों करि ग्रहण सै पूर्व प्रवृक्तः (प्रवृज्यत इति) तत्र भेदे धर्माय स्वाहेति ॥ उद्यमनसै ले अजापयो वसेक सै प्राक् उद्यतः तत्र भेदे तेजसे स्वाहेति ॥ अजापय के आसिच्यमान धर्मभेद में अश्विदेवत्यः धर्महै, अश्विभ्यां स्वाहेति होमियेहै ॥ विशेषेण स्पन्दमान (धीके बाहिर स्रवते) में धर्मः पूषदेवत्यः पूषो स्वाहेति हो ॥ मध्य में धीका आवर्तन तब मरुदेवत्यः तत्र भेदे मरुद्भ्यः स्वाहेति जुहोति ॥ पयो वसेक में योपरि तरिका उत्पन्न होती है वो ह शर कहिलाती है तिस के संताप्यमान (एध्यमान) में मित्रदेवत्यः तत्र शरआदि हरण सै प्राक् भेदे मित्राय स्वाहेति जु ॥ आहवनीय को द्वियमाण होम सै पहिले वायुदेवत्यः तत्र भेदे वायवे स्वाहेति जु ॥ ह्यमान धर्म अग्नि देवत है तत्र तवे दे अग्नये स्वाहेति जु ॥ होम सै ऊपर उत्तरधर्मारम्भ सै पहिले वाग्देवतः तत्र भेदे वाचे स्वाहेति जु ॥ एता आहुतियें सकृद्गृहीत आज्य करिकें होमिये हैं ॥ ५ ॥

सविता प्रथमेऽहन्नग्निर्द्वितीयं वायुस्तृतीयं आदित्यश्चतुर्थं चन्द्रमाः पञ्चमः ऋतुः षष्ठे मरुतैः सप्तमे बृहस्पतिरष्टमे मित्रो नवमे वरु-



एण दशमः द्वादशे विश्वे देवा द्वादशे ॥६॥  
 का० ३६.७.५१ और सविता प्रथमे हन्ति प्रतिदिन में तथाचा-  
 नुक्रमणी ८.४ सविता प्रथमे हन्ति प्रत्यहं क्रमेण ॥ प्रथम दिन  
 धर्म भेद में सविता सवित्रे स्वाहेति जु ॥ एवमग्रेऽपि ॥ दूसरे दि-  
 न य० अग्नि दे० अग्नये स्वा ॥ तीसरे दिन वायवं स्वा ॥ चौ-  
 थे दिन आदित्येभ्यः स्वा ॥ पाँचमे चन्द्रमसे स्वा ॥ छठवें ऋ-  
 तु ॥ सातवें मरुतः ॥ आठवें बृहस्पतिः ॥ नवमे मित्रः ॥ दश-  
 मे वरुणः ॥ एकादशे इन्द्रः ॥ द्वादशे विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वा-  
 हेति जु ॥ उपसत्प्रवृद्धो एता एवाहुतयः पुनरादित आरभ्या-  
 वर्त्यन्ते ॥६॥

अ० २० उग्रश्च भीमश्च धान्तश्च धुनिश्च । सामह्वंश्चामि-  
 युग्वा च विक्षिपः स्वाहा ॥७॥

का० १८.४.२४ चयन में मारुतों षट् पुरोडाशों को शुक्रज्यो-  
 तिश्चेत्यादि षट् मारुतमन्त्रों से १०.८०-८५ होमि के अरण्यमें  
 अनूच्यसंज्ञक सप्तमपुरोडाश विमुख संज्ञक को उग्रश्चेति  
 मन्त्र करि हेमें तथाचानुक्रमणी ४.८ उग्रश्च मारुती गायत्री  
 विमुखारव्यो मन्त्रोऽग्नौ विनियुक्तस्तस्मादाग्निक एवास्यऽर्घिः  
 परमेश्वी प्राजापत्यो वेति ॥ अग्निकः प्रजापतिर्ऋषिः ॥ अस्य म-  
 न्त्रस्यात्र पाठोऽरण्ये पाठयोग्यत्वात् ॥ अथ मन्त्रार्थः ॥ जो एते  
 उग्रदिनामकाः सप्त मरुतः तिन्हों के अर्थ सुहुत हो ॥ उग्र (उ-  
 त्कृष्ट ॥ ४३ ॥ विभेदने हारा ॥ ४४ ॥ शब्द करता ॥ ४६ ॥ शत्रुओं की

कंपाता॥४६॥ शत्रुओं को अभिभवता॥४७॥ हमारे संमुख योग  
को प्राप्त होता॥४८॥ रिपुओं को विविध क्षपता॥४९॥ ७॥

अग्निर्हं हृदयेनाशनिर्हं हृदयाग्रेण पशुपतिं कृ-  
त्स्नहृदयेन भवं यक्रा। शर्वं मतस्नाभ्यामीशानं  
मन्युना महादेवमन्तःपरीक्ष्येनोग्रं देवं वनिष्पु-  
ना वसिष्ठहनुः शिङ्गीनि कोश्याभ्याम् ॥ ८ ॥

का० २०.८.६-८. उग्रश्चेति मन्त्र विमुख है तिस से परे देवता अश्व-  
जों के अर्थ अग्निर्हं हृदयेनेत्यादिकों से चतुर्गृहीत आज्य को ले-  
लेकर होमें। तत्रापि यक्षद्वयम्। अग्नये स्वाहा हृदयाय स्वाहा अश-  
नये स्वाहा हृदयाग्राय स्वाहा इत्यादि कात्यायनादिकों का अभि-  
प्राय है अग्निर्हं हृदयेन ग्रीणामि स्वाहेत्यादि हरिस्वामिमते  
प्रयोगः। ततश्चाग्निर्हं हृदयेनेत्यादीन्विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहे-  
त्यन्तो होमें को करिके मान इति अनुवाकों २५. २४-३६.  
से षोडशाहुतियें होमिके द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहेति चरमा आ-  
हुति को होमें इति सूत्रार्थः॥ अरण्येऽनूच्यान्नुवा द्यावापृथिव्या-  
मुत्तमाहुतिं जुहोतीति श्रुतेः॥ अरण्य में अनूच्यों (पठितों) अ-  
ग्निर्हं हृदयेनेत्यादिकों विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहेत्येवमन्तो होमें  
को करिके द्यावापृथिवीयामुत्तमा आहुति को होमें इति श्रुत्य-  
र्थः॥ तथा चानुक्रमणी ४.८. अग्निर्हं हृदयेणाश्वमेधिकानि  
तत्रोक्त एवर्षिलोमभ्यः स्वाहेति प्रायश्चित्ताहुतयो द्वित्वा-  
रिर्हंशत्। तत्राग्निं हृदयेण उग्रं लोहितेन द्वं कण्डिके ब्राह्मण-

रूपे देवताश्चावयवसम्बन्धविधानात् अरण्येऽध्येयत्वादिह  
पाठः । लोमादीन्यङ्गान्येव परितानि आमासादयो देवता ए-  
व ॥ अथ मन्त्रार्थः ॥ हृदयाङ्गं करि अग्निदेव को प्रीणामि (तृ-  
प्त करता हूँ) ॥ हृदय के अग्रभाग करि अश्वनिदेव को प्री० ॥ स-  
मग्रहृदय करि पशुपतिदेव को प्री० ॥ यकृत (कालखण्ड) करि  
भवदेव को प्री० ॥ मतस्ताम्रं (हृदयास्थिविशेषों तिन्हें) करि श-  
र्वदेव को प्री० ॥ मन्यु (अश्वसम्बन्धिक्रोध) करि ईशान देव को  
प्री० ॥ अन्नवर्ति पर्शव्य (पार्श्वस्थ सम्बन्धिमांस) करि महादेव-  
देव को प्री० ॥ वनिष्टः (स्थूलान्न) करि उग्रदेव को प्री० ॥ वसिष्ठदे-  
व का हनुः (कपोलैकदेश) जानना । यद्वा वसिष्ठा जो हनुः (कपोल  
का अधोभाग हनता आहार को) हनुः लिङ्गव्यत्यः वसिष्ठहनुः  
तिसः करि और कोश्याम्रं (हृदयकोशस्थमांसपिण्डों) करि शि-  
ङ्गि संशकदेवताओं को प्री० ॥ ७ ॥

उग्रं लोहितेन मित्रं सौव्रत्येन रुद्रं दौर्ब्रत्येनेन्द्रं  
प्रकीडेन मरुतो बलेन साध्यान्प्रमुदा । भुवस्य  
कण्ठ्यं रुद्रस्यान्तःपार्श्वं महादेवस्य यकृच्छर्व-  
स्य वनिष्टः पशुपतेः पुरीततू ॥ ८ ॥

लोहित (असक्त) करि उग्रदेव को प्री० ॥ सौव्रत्य (शोभनगत्यादि-  
कर्मकर्तृत्व) करि मित्रदेव को प्री० ॥ दौर्ब्रत्य (दुष्ट-स्वलनोच्छल-  
नादिव्रत) करि रुद्रदेव को प्री० ॥ प्रकीड (प्रकृष्टक्रीडन) करि इन्द्र  
देव को प्री० ॥ बल (सामर्थ्य) करि मरुदेवताओं को प्री० ॥ प्रमुदा

(प्रहृष्टहर्ष) करि साथ्य देवताओं को प्री०॥ कण्ठ में हुआ मांस भ-  
व देवता का हो वा कण्ठ में हुआ मांस करि भवदेवता की प्री०॥ एवम-  
येऽपि। पार्श्व के मध्य में हुआ मांस रुद्रदेवता का हो॥ यकृत (काल-  
खण्ड) महादेव-देवता का हो॥ स्थूलान्त्र शर्वदेवता का हो॥ परीत-  
त (हृदयाच्छादक अन्त्र) पशुपति देवता का हो॥ ४८॥

लोमभ्यः स्वाहा लोमभ्यः स्वाहा त्वचे स्वाहा त्व-  
चे स्वाहा लोहिताय स्वाहा लोहिताय स्वाहा मेदो-  
भ्यः स्वाहा मेदोभ्यः स्वाहा। माथंसेभ्यः स्वाहा मा-  
थंसेभ्यः स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहास्थ-  
भ्यः स्वाहास्थभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः  
स्वाहा। रेतसे स्वाहा पायवे स्वाहा॥ १०॥

त्रीणि यजूंषि ॥ लोमभ्यः स्वाहेति प्रायश्चित्ताहुतयो द्विचत्वारि-  
ंशत् ॥ लोमादिक अङ्ग-हे। लोमभ्यः स्वाहा (लोमों की होमता  
हूँ इत्यर्थः) २. त्वचे ४. लोहिताय ६. मेदोभ्यः (मेदो-धातुविशेषः  
८. माथंसेभ्यः १०. स्नावभ्यः (स्नायवो-जनसाः) १२. अस्थभ्यः  
१४. मज्जभ्यः (मज्जा, षष्ठोधातुः) १६. रेतसे (वीर्यः) १७. पाय-  
वे (गुदा) १८॥ १०॥

आयासाय स्वाहा प्रायासाय स्वाहा संयासाय स्वा-  
हा वियासाय स्वाहोद्यासाय स्वाहा। शुचे स्वाहा  
शौचते स्वाहा शौचमानाय स्वाहा शौकाय स्वा-  
हा॥ ११॥

तपसे स्वाहा तप्यते स्वाहा तप्यमानाय स्वाहा  
तप्ताय स्वाहा घर्माय स्वाहा । निष्कृत्यै स्वाहा प्रा-  
यश्चित्यै स्वाहा भेषजाय स्वाहा ॥१२॥

यमाय स्वाहान्तकाय स्वाहा मृत्यवे स्वाहा ब्रह्मणे  
स्वाहा ब्रह्महत्यायै स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वा-  
हा द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा ॥१३॥

इति संहितायां द्वितीयोऽनुवाकः २

इति श्री शुक्ल यजुषि माध्यन्दिनशाखीयायां वाजस-  
नेय संहितायां दीर्घपाठे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३६॥

आयासाय (आयासादयो देवविशेषाः) १६. प्रायासाय २० संयासाय  
२१. वियासाय २२. उद्यासाय २३. शुचे २४. शोचते २५. शोचमानाय  
२६. शोकाय २७. तपसे २८. तप्यते २९. तप्यमानाय ३०. तप्ताय ३१.  
घर्माय ३२. निष्कृत्यै ३३. प्रायश्चित्यै ३४. भेषजाय ३५. यमाय ३६. अ-  
न्तकाय ३७. मृत्यवे ३८. ब्रह्मणे ३९. ब्रह्महत्यायै ४०. विश्वेभ्यो देवे-  
भ्यः ४१. एतेभ्यो देवेभ्यः सुज्ञतमस्तु । एता आहुतियै होमिके द्या-  
वापृथिवीभ्यां स्वाहेत्यन्ता अहुतिहोमै ४२. ॥ एता वता  
कर्म काण्डं समाप्तम् ॥११॥ १२॥ १३॥

इति श्री गिरिधरभाष्ये द्वितीयोऽनुवाकः २

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमोहार्दनिवारयन्  
पुमांश्चतुरो देयान्महाविष्णुर्मखाधिपः ३६.

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीयशाखाध्येतृव्याघ्रपादान्व-  
यविश्वामित्रपुराधिपश्रीमज्जयकिशोरदेववर्मात्मजरेविक्रमेय  
नृपतिगिरिप्रसादेनरचिते श्रीवेदार्थप्रदीपेगिरिधरभाष्ये शुक्रि-  
यायां प्रायश्चित्तवर्णनो नामैकोन चत्वारिंशोऽध्यायः॥३६॥

गिरिप्रसादसर्वस्वे श्रीवेदार्थप्रदीपके  
व्यरमत्कर्मकाण्डोऽयंवल्लभाग्निप्रसादतः१

अस्याग्रे एकेनाध्यायेनज्ञानकाण्डोभविष्यति

आश्विनस्यामले पक्षे चतुर्थ्यामानुवासरे  
ग्रहनेत्राङ्कभूवर्षे कर्मकाण्डः समागमत्१

ॐ शान्तिः

शान्तिः

शान्तिः

हरिः शोम्

ॐ नमः परमात्मने

नमो भगवते तस्मै कृष्णायानुत कर्मणे  
रूपनामविभेदेन जगत्कीडनि यो यतः ४०

अ० १० ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किं च जगत्यां जगत्। ते  
न त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥ १॥  
नत्वा रविं याशवत्क्यं दध्यङ् दायर्वणं तथा  
संहिता चरमाध्याये ज्ञानकाण्डो वितन्यते २

एकोनचत्वारिंशताध्यायैः कर्मकाण्डं निरूपितम् इदानीं क-  
र्माचरणशुद्धान्तःकरणं प्रति ज्ञानकाण्डमेकेनाध्यायेन निरूप्यते।  
ईशा वास्यमित्यादिमन्त्राणां कर्मसु विनियोगो नास्ति तेषां शुद्ध-  
त्वेकत्वापापविद्धत्वाशरीरत्वसर्वगतत्वाद्यात्मयाथात्म्यप्रतिपाद-  
नात् तच्च कर्मण विरुध्यते न हीदृगात्मोत्पाद्यो विकार्यग्राप्यः  
संस्कार्यः कर्ता भोक्ता वा भवेद्येन कर्मशेषता स्यात् तस्मा-  
दविद्याकृतमात्मनोऽनेकत्वकर्तृत्वभोक्तृत्वाशुद्धत्वपापविद्ध-  
त्वाद्यङ्गीकृत्य लोकबुद्धिसिद्धानि कर्माणि विहितानि यो  
हि दृष्टेन ब्रह्मवर्चसादिना दृष्टेन स्वर्गादिना कर्मफलेनार्थी स-  
न्नहं द्विजातिः कर्माधिकारवानित्यात्मानं मन्यते तस्य कर्म-  
धिकारः तस्मादेते मन्त्रा आत्मयाथात्म्यप्रकाशनेन शोक-  
मोहादिसाधनमज्ञानं विनिवर्त्यात्मज्ञानं जनयन्तीत्यभि-  
ध्येयसम्बन्धप्रयोजनानि। इदानीं ते मन्त्रा व्याख्यायन्ते ॥

हरिः ओम्

ओं नमो वेदपुरुषाय

गिरिप्रसादसंज्ञेन श्रीवेदार्थप्रदीपके

इर्यते चरमोऽध्यायः परमात्मनिरूपकः ४०

ईशा वास्यम्। आत्मदेवत्य अनुष्टुप्छन्दस्कोऽध्यायो दधीचार्थ-  
वर्णेन दृष्टः॥ ॥ गर्भाधानादिसंस्कारसंस्कृतमधीतवेदं ज-  
नितसुतं यथाशक्तिकृतयज्ञं निष्पापं निःस्पृहं यमनियमोपेतं  
सुमुक्षुमुपसन्नं शिष्यं पुत्रं वा ऋषिरुषदिशन्नाह ॥  
ईशा (परमेश्वर) सो ही सब जन्तुओं का आत्मा होते सब को ई-  
शे तेन अपने आप करि ईशा यह प्रत्यक्ष से दृश्यमान सब  
वास्यम् (आच्छादनीय है) परमात्मा हमें वेद सर्व इति परमार्थस-  
त्यरूपेण आत्मा करि सब यह आच्छादनीय अनृत है पर-  
मात्मा हमें वास्मि नान्यदस्तीति चिन्तन करे इत्यर्थः। यत्  
किम् चेति भिन्नक्रमः किं च जो जगती (तीनों लोक) में ज-  
गत् (जङ्गमादिक स्वामिसम्बन्धालिङ्गित) हो तिस सब त्यक्त  
स्वस्वामिसम्बन्ध करि भोग को अनुभव करे मा गृधुः (आ-  
कांक्षा मत करि यह मेरा यह बुद्धि त्यागि) किमिति स्वदि-  
ति निपातों वितर्के धन किस का स्वित् किसी का भी नहीं  
इत्यर्थः सब द्रव्यें अन्योन्य के समीप में जाते दीरव पड़ते  
हैं इस हेतु यह मेरा यह बुद्धि अविद्या है तिसें छोड़ते  
योग में अधिकार है इत्यर्थः ॥ १॥



कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छुतर्हं समाः। एवं त्व-  
यिनान्यथेतुःस्ति न कर्म लिप्यते नरः॥२॥

आत्मज्ञानाशक्तस्य कर्मोपदेशमाह। कर्मो (अग्नि होत्रादि-  
कों निष्कामों मुक्ति के हेतुओं) की करते ही इस लोक में शतव-  
र्ष तू जीने के लिये इच्छा करे (पुरुषायुषः शतवर्षत्वाच्छतग्रहण-  
म्। तेरी ऐसे कर्म करते जीतेजी मुक्ति है इतिशेषः) उस प्रकार से  
अन्यप्रकार करि मुक्ति नहीं है अयमर्थः स्वर्गादिप्राप्ति  
में जैसे नानाप्रकार हैं नहीं हैं तैसे मुक्ति में इत्यर्थः निष्का-  
मकर्मानुष्ठान करि शुद्धान्तः करण की ही मुक्ति है इत्य-  
र्थः न तु कर्म की फल करि चाहकरना कथं मुक्तिरि-  
त्यत आह न कर्मेति मुक्त्यर्थं क्रियमाणं कर्म मनुष्य में न  
लिपे (बँधे) मुक्तिकारणान्तःकरणशुद्धि अपादकत्व करि उ-  
पक्षीणशक्तित्व से जितनी इच्छा तितने कर्मों में अधिकार य-  
ह दिखलाया। उत्तरार्थस्यार्थान्तरं वा इस प्रकार तू जीनेकी  
इच्छा रखनेहारे नर (नरमात्राभिमानी) में इस कर्म करनेसे अ-  
न्यथा (प्रकारान्तर) नहीं कि जिस प्रकार से अशुभकर्म न  
लिपे अतः शास्त्रविहित कर्म करते ही जीने के लिये  
इच्छा करे प्रत्यवायपरिहार के अर्थं तदुक्तम् द्वाविमावय प-  
न्थानो यत्र वेदाः प्रतिष्ठिताः प्रवृत्तिलक्षणो धर्मो निवृत्तो  
च विभाषित इति॥२॥

असुर्यो नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।

तांस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥३॥  
अथ काम्यकर्मपरान्निन्दति । जे कोइक मनुष्य आत्महनः  
(आत्महत्यारे) अविद्वांसः काम्यकर्मपराः विद्यमान अजर  
अमर आत्मा का अविद्यादोष करि अनादर करते हैं ते मृत्यु  
हो (देहछोडि) कर तिन लोकों (स्थावरान्त जन्मों) को प्राप्त  
होते हैं । तिन किन्हों कि नाम (प्रसिद्ध) जे + लोक (लोकियें-  
देखियें-भोगियें-हैं कर्मफल जहां इतिजन्म) असुर्योः असु-  
रों (प्राणपोषणपरायणों) के अद्वैत को अपेक्षा करि दे-  
वता भी असुर हैं । कैसे लोक कि अदर्शनात्मक अज्ञानक-  
रि आच्छादित हैं । अर्थात् आत्मा के न जाननेहारे पुनः-  
पुनः उत्पन्न होते और मरते हैं ॥३॥

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आपुवन्पू-  
र्वमशीत् । तद्भावतो न्यानत्येति तिष्ठन्तस्मिन्नपो  
मातुरिश्वा दधाति ॥४॥

मुमुक्षुभिर्याहंशं ब्रह्मात्मत्वेनोपास्यम् यस्याज्ञानात्संसार-  
स्तदात्मस्वरूपमाह । त्रिष्टुब्धन्दस्केयमृक् । जो ब्रह्म अनेजतुल-  
हींकौपता\* चलता सदा एकरूप एक (अद्वितीय) सब भूतोंमें  
विज्ञानधनरूप करिके । मन (संकल्पादिलक्षणा) में जवीयः (अ-  
त्यन्तवेगवान्) ननु अनेजद्देवतोर्विराधः मैवम् निरुपाधि-  
त्वकरि अनेजत् और संकल्पविकल्परूप अन्तःकरण की  
उपाधि के अनुवर्तन से जविष्ठ देहस्थ मन का दूरस्थ ब्रह्मलो-

कादिसंकल्पन क्षणमात्र से होता है इस हेतु मन वेगवत्तर लोक में प्रसिद्ध है मनसि दूरं गच्छत्यात्म चैतन्यावभासः प्रथम प्राप्त इव गृह्यते इस कारण मन से जवीय यह कहा गया । देवाः (द्योतनात्मकाः चक्षुः से आदि ले इन्द्रिये) एतत् (प्रकृत आत्मतत्त्व) को नहीं प्राप्त होते हैं अर्थात् चक्षुरादिकों से मन जवीय अतः मनोव्यापार में व्यवहितत्व से आत्मा का आभासमात्र भी देवताओं का गोचर नहीं होता है इत्यर्थः क्योंकि पूर्वमर्शे तत् (वेगवन्मनसै) भी प्रथम ही गया-व्योमवद्भाषित्व से सर्व संसारधर्मवर्जित सो आत्मतत्त्व निरुपाधिकस्वरूप करि अविक्रिय ही सत् उपाधि करी हुई सब संसारविक्रिया अनुभव करै है ऐसे यह अविवेकियों के प्रतिदेह को अनेक ऐसे प्रतिभासे है इतिभावः यद्वा पूर्वम् (पूर्वविद्यमान) अर्थात् (नही नाश होता) किं च तत् (जो) आत्मतत्त्व धावतः (शीघ्रचलते) अन्यो (मनोवागिन्द्रियादिकों आत्मविलक्षणों) को अत्येति (अतीत्य जाता) ऐसा है कैसा कि तिष्ठत् (आप अविक्रिय होने से ही चलता है) मातरिश्वा (वायु ५) तस्मिन् (तिसनित्यचैतन्यस्वभाव आत्मतत्त्व में) अपः (कर्मों को दधाति (धारण करता है) कार्यकारणजात जिस में ओतप्रोत हैं और जो सूत्रसंज्ञ सब जगत का विशेष करि धारण करने हारा सर्वप्राणभृत्क्रियात्मक सो वायु भी प्राणियों की चेष्टालक्षण अग्निरविमेधादिकों के ज्वलनदहनप्रकाशाभिवर्धन कर्मों को जिस जल में दधाति

+ रिश हिंसायाम्  
# तदः स्थाने यतो वृत्तिः

विभजवाता वा धारण कराता है + सब ही कार्य कारण दिक्रियाएँ  
सर्वास्पद नित्यचेतन्यरूप ब्रह्म में सत्येव होती हैं इत्यर्थः। य-  
द्वा मातरिश्वा (वायु) अपः (कर्मों-यज्ञ होमादिकों) को जिस में  
स्थापन कराता है स्वाहा वाते धा इति ८-११ समिष्टयजु  
में वायुस्थत्व कहिने से कर्मों को तब तक वायु में स्थापन करिये  
है समिष्टरूप वोह वायु भी जिस में कर्मों को स्थापन करा-  
ता है यागहोमदानादि कर्मों का परम निधान है इत्यर्थः ॥४॥

तदेजति तन्नेजति तदूरे तदन्तिके। तदन्तरस्य स-  
र्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥५॥

रहस्यं सहदुक्तं चित्ते नायातीति पूर्वमन्त्रोक्तमप्यर्थं पुनर्वद-  
ति। सो प्रकृत (आत्मतत्व) एजति (चलता) और सो ही आप  
से नहीं चलता है अचल होने से मूढ़ दृष्टि करि चलता ऐसा है इ-  
त्यर्थः। किं च सो दूर में (अविद्वानों को) कोटि वर्ष पर्यन्त न प्रा-  
प्त होने से दूर में ऐसा है इत्यर्थः। सो ही समीप में (विद्वानों को)  
आत्मत्व करि भासमानत्व से नहीं केवल दूर और समीप में।  
इस सब (नामरूपक्रियात्मक जगत) के भीतर सो ही है। इस  
सब के बाहिर भी सो ही है ब्रह्मन भोवत् व्यापक होने से ॥  
अस्य मन्त्रस्यार्थान्तरं यथा पूर्वमन्त्रेण कारणरूपमा-  
त्मानमुद्दिश्य कार्यरूपमुद्दिश्यति। तदेजति। तिस्रोऽनुष्टुभः।  
सो आत्मतत्व एजति (सर्वजन्तुरूप करि स्थित होने से) कांपता  
क्रियावत् होता है। और सो ही स्थावररूपावस्था में नहीं चलता

+ भीषां ऽस्माद्वृत्तः पवते। भीषो देति सूर्यः। भीषा ऽस्मादग्निश्चेन्द्रश्च। मृत्युर्धावति पञ्च-  
म इति तैत्तिरीयार. ०. ८. ८. श्रुतिः। ३. आप्यन्ते (प्राप्यन्ते) मुखदुःखानि याभिस्ता-  
आपः कर्मणि।

५ सो ही दूरमें (आदित्यनक्षत्रादिरूप करि स्थितत्वसे) सो ही समीप में (धरादिरूपत्वसे) सर्व खल्विदं ब्रह्मेति श्रुतेः। इस सब प्राणिजाति के भीतर में सो ही है विज्ञानधनरूप करिके। इस सब के बाहिर में सो ही है जडरूपत्व से अर्थात् चेतनाचेतनरूप अनन्त ब्रह्म है ऐसे के जयासक का अर्चिरादिमार्ग करि गमन नहीं है यहां ही ब्रह्मप्राप्ति से नहीं तिस के प्राण ऊंचे चलते यहां ही भले प्रकार लय होते हैं ब्रह्मैव सन्नत्वाप्येतति श्रुतेः॥५॥  
 यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति। सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति॥६॥

अथोपासनप्रकारमाह। पुनः जो मुमुक्षुः सब भूतों (अव्यक्तों में आदिले स्थावरान्तों चेतनों) को अपने में ही देखता है (मुख में ही सब भूत स्थित हैं नहीं हैं मुख से व्यतिरिक्त) और सब भूतों में अपने को अवस्थित अव्यतिरिक्त देखता है अर्थात् तिन भूतों के स्व आत्मा को आत्मत्व करि देखता है इत्यर्थः। अयमर्थः। इस कार्यकारणसंघात का आत्मा हूं सर्वप्रत्ययसाक्षीभूतश्चेतयिता और निर्गुण और तैसे ही स्वरूप करि अव्यक्तादि स्थावरान्तों का मैं ही आत्मा यह सबों में अपने को निर्विशेष देखता है। ततः (तैसे देखनेसे) न विचिकित्सति (नहीं संशय को प्राप्त होता। भाव यह है कि आत्मा को अन्य न देखते सब संदेह होता है आत्मा को अत्यन्त शुद्ध निरन्तर देखते नहीं है संदेहावकाश इस हेतु आत्मज्ञ की विचारनि-

वृत्ति है ॥६॥

यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ॥ तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥७॥

इसमें वेदार्थमन्यो मन्त्रो वदति। जिस (अवस्थाविशेष) में विजानतः (यह जानते) कि आत्मा ही है यह (उस सर्वस्वत्विदं ब्रह्मेत्यादि वाक्यविचारकर अवधृत परमार्थके) सब भूत आत्मा ही हुए (परमार्थदर्शनसे आत्मा ही संवृत्त है) तिस अवस्था विषे एकत्व (विशुद्धगणोपम आत्माके एकत्व) देखते (जानते) कहां मोह और कहां शोक भाव यह कि अविद्या कार्य शोक मोहों के न होनेसे सकारण संसार का अत्यन्त उच्छेद है ॥७॥

स पर्यगाच्छुक्रमकायमब्रणमस्त्राविरहं शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छ्वतीभ्यः समाम्यः ॥८॥

एवम्भूतात्मज्ञस्य फलमाह। जगती छन्दस्केयमुक्त्वा जो ऐसे आत्मा को देखता है सो ऐसे ब्रह्म को प्राप्त होता है। कैसे कि शुक्ल (शुद्ध) विज्ञानानन्दस्वभाव अचिन्त्यशक्ति। अकाय (शरीररहित)। अकायत्व से अब्रण (अक्षत)। अस्त्राविर (शिरारहित)। अकायत्वादेव। शुद्ध (सत्वरजतमों से अनुपहत)। अपापविद्ध (लेशकर्मविपाकाशयों से अस्पृष्ट)। ऐसे ब्रह्म को आत्मज्ञ प्राप्त होता है इत्यर्थः ॥ पुनस्तस्यैव फलान्तरमाह जो ऐसा उपासक सो अनन्तवर्षप्राप्ति के अर्थ यथात्मनस्वस्वा-

इति यास्कः ॥ अस्यासि भूतसमर्थं मन्यन्तः इति यास्कः ॥ अस्यासि भूतसमर्थं मन्यन्तः इति यास्कः ॥ पुनरुक्तमर्थानि शयद्योतनाय निरु ११० ॥ ४२ ॥

मिसम्बन्ध छोड़ि चेतनाचेतन अर्थों से उपभोग करता हुआ।  
 कैसा कि कवि (कान्तदर्शी) मनीषी (मेधावी) परिभूः (ज्ञानवल  
 से सर्वरूप स्वयम्भूः (ब्रह्मरूप करि होनेहार) ऐसा पूर्वोक्त शु-  
 क्रमकायमित्यादिविशेषणविशिष्ट ब्रह्म को प्राप्त होता है इ-  
 त्यर्थः॥ एतस्या ऋचोऽर्थान्तरम्। यथा। जो यह अतीतमन्त्रोक्त  
 आत्मा सो सर्वत्र चलता (नभोवत्सर्वव्याप्त) है और व्याप्त हो  
 साश्वती (नित्या) समा (सम्बत्सरनामा प्रजापति ने) के अर्थ  
 याथातथ्यतः (यथाभूतकर्मफलसाधन से) अर्थों (कर्तव्य-  
 पदार्थों) को व्यदधात् (यथानुरूप विभाग करता हुआ)। सो  
 कैसा कि शुक्र (शुद्ध दीप्तिमान्) अकाय (लिङ्गशरीरवर्जित)  
 अब्रण (अक्षत) अस्त्राविर (शिरारहित) अब्रण अस्त्राविर इन  
 दोनों विशेषणों करि स्थूलशरीरप्रतिषेध है) शुक्र (शुद्ध निर्म-  
 ल) अपापविद्ध (अधर्मादिवर्जित) कवि (सर्वदृक्) मनीषी  
 (मनकास्वामी सर्वज्ञ) परिभूः (सर्वों के ऊपर-ऊपर में होता है)  
 स्वयम्भूः आप ही होता जिन्हें के ऊपर में होता और जो ऊपर में  
 होता है) सो आप ही होता है। सो नित्य ईश्वर सब करता हुआ इत्यर्थः॥ च।  
 अ० २० अन्यं तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते। ततो भू-  
 य-इव ते तमो यऽउ सम्भूत्याथ रताः॥ ४॥  
 अतः परमुपासनामन्त्रा उच्यन्ते। षडनुष्टुभः। येमनियमसम्बन्ध-  
 वान्निश्चानात्मा कोई भी नहीं जलबुद्बुद जीव है मदशक्तिवद्विज्ञा-  
 न है इत्यादि मतवादि बौद्धलोग कहिकर निन्दा करते हैं।

+ नान्यदतोऽस्ति दक्षिणि शुभेः

जे मनुष्य कि असम्भूति (असम्भव-मृतक का फिर सम्भव नहीं इस हेतु शरीर के अन्त में ही हमारी सुक्ति है यह) उपासते (कहते) हैं ते अन्य तम (अज्ञानलक्षण) को प्रवेश करते हैं। और जे सम्भूति (आत्मा) में ही रत (आसक्त-कर्म से पराङ्मुख अपनी बुद्धि के लाघव को न जानते आत्मज्ञानमाचरत) हैं आत्मा ही है नहीं हैं अन्यकर्मदिक कर्मकाण्डज्ञान काण्ड का सम्बन्ध नहीं है इस अभिप्रायवाले इत्यर्थः ते मनुष्य तिस अन्यतम से बहुतर+ अज्ञान को प्रवेश करते हैं ॥

अस्या ऋचोऽर्थान्तरमुच्यते अधुना व्याकृताव्याकृतोपासनयोः समुच्चिचीषया प्रत्येकं निन्देच्यते। सम्भूति (कार्य की उत्पत्ति तिस) से अन्या असम्भूति प्रकृति कारण अव्याकृतारव्य तिस असम्भूति अव्याकृतारव्याप्रकृति कारण अविद्याकामकर्मबीजभूता अदर्शनात्मिका को जे उपासते हैं ते तिसी के अनुरूप ऐसे अन्यतम (अदर्शनात्मकसंसार) को प्रवेश करते हैं। और जे सम्भूति (कार्यब्रह्म-हिरण्यगर्भाख्य) में रत हैं ते तिस से भी बहुतर ऐसे तम को प्रवेश करते हैं ॥४॥

अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहु रसम्भवात् इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥१०॥

अथोभयोरुपासनयोः समुच्चयकारणमवयवफलभेदमाह। सम्भव (कार्यब्रह्मोपासन) से अन्यदेव (प्रथमेव-अणिमाद्यैश्चर्यलक्षणा फल) कहिते हैं धीरलोग। तथा असम्भव (अव्याकृत

ननु तस्यैव प्रमाणं ननु तस्यैव प्रमाणं



तोपासन)सै अन्यदेव(अन्धं तमः प्रविशन्तीत्युक्तं प्रकृतिलय  
यह पौराणिकोक्तफल) कहिते हैं। इति (एवंविध) धीरों (विद्वानों)  
का वचन हम सुनते हुए कि जे धीर लोग हमारे प्रति तिस (पूर्वोक्त  
सम्भूत्य सम्भूत्युपासनाफल) को व्याख्या करते हुए ॥१०॥

सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयर्हं सह। विना-  
शेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते ॥११॥

सम्भूति (सर्वजगत्सम्भवैकहेतु परब्रह्म। और विनाश (विना-  
शधर्मकशरीर। तिन दोनों शरीरिशरीररूप को जो योगी एकी-  
भूत जानता अर्थात् में देही से भिन्न हूं देही में वास कर्मव-  
श से यह जानि शरीर करि जानोत्यति करनेहारे निष्काम  
कर्मों को करता है। सो विनाशी (शरीर) से मृत्यु को तरि (अ-  
न्तः करण शुद्धि को सम्पादन करि) सम्भूति (आत्मज्ञान) करि  
अमृत (मुक्ति) को प्राप्त होता है ॥ अस्या ऋचोऽर्थान्तरम्। य-  
था। सम्भूत्युपासनयोरेकपुरुषार्थत्वात्समुच्चय एव युक्त इत्या-  
ह। अत्र विनाशशब्दद्वयेऽर्वालापो द्रष्टव्यः पृषोदरादित्वात्  
अन्यदाहुरसम्भवादियुक्तेः। सम्भूतिमविनाशं च व्याकृताव्याकृत-  
तोपासन दोनों को जो एकी भूत उपासना कराता है सो योगी अ-  
विनाश (अव्याकृतोपासन) करि मृत्यु (अनेश्वर्य और अधर्म-  
कामादिदोषजात) को अतिक्रम करि सम्भूति (हिरण्यगर्भो-  
पासना) से अमृत (प्रकृतिलयलक्षणा) को प्राप्त होता है ॥११॥

अन्धं तमः प्रविशन्ति ये विद्यामुपासते। ततो

भूय- इव ते तमो य उ विद्यायाश्च रताः॥१२॥  
 ये तु कर्मनिष्ठाः कर्म कुर्वन्त एव जिजीविषन्ति तान्प्रत्यु-  
 च्यते। विद्याविद्ययोः समुच्चिचीषया प्रत्येकं निन्देच्यते। वि-  
 द्यां सैः अन्या अविद्या (कर्म) जे मनुष्य अविद्या (केवल अग्नि-  
 होत्रादिलक्षणा) को उपासते (स्वर्गके अर्थ केवल कर्मों को क-  
 रते) ते अदर्शनात्मक अज्ञान को प्रवेश करते (संसारपरम्परा  
 को अनुभव करते) हैं। और तिन्हें सै भी बहुतर तम को ते प्र-  
 वेश करते हैं कि जे विद्या (आत्मज्ञान-देवताज्ञान) में ही रत  
 हैं (कर्मों को छोड़ि कर्म के न करने में प्रत्यवाय के उत्पन्न हो-  
 ते अन्तः करणशुद्धि के अभाव करि ज्ञान का उदय न होने  
 सै इति भावः॥१२॥

अन्यदेवाहुर्विद्याया अन्यदेवाहुरविद्यायाः॥ इति  
 श्वश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे॥१३॥

तयोः फलभेदमाह। विद्या (आत्मज्ञान) का फल (अमृतस्वरूप)  
 अन्यत् कहिते और अविद्या (कर्म) का फल (पितृलोकस्वरूप)  
 अन्यत् कहिते हुए धीरलोग। कि जे धीर (धीमन्तः आचार्य)  
 लोग हमारे अर्थ ज्ञान और कर्म को कहिते हुए सो कहा-  
 यह ही धीरों का वचन हमने सुना है॥१३॥

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयर्हं सह। अविद्या-  
 या मृत्युं तीर्त्वा विद्यायामृतमश्नुते॥१४॥

समुच्चयमाह। विद्या (देवताज्ञान) और अविद्या (कर्म) तिन दो-

श्रुतिः।  
 इति  
 पितृलोक  
 विद्या  
 कर्मणा

नों विद्याविद्यारूप को जो एकी करि के जानता (एक पुरुष करि अनुष्ठेय हैं कर्मकाण्ड को ज्ञानकाण्ड का गुणभूत जानता) है। सो अविद्या (अग्निहोत्रादिकर्म) करि मृत्यु (स्वभाविक कर्म ज्ञान) को उत्तरि के अन्तः शुद्धि करि कृतकृत्य हो विद्या (देवता ज्ञान) करि अमृत (देवतात्मभाव) को प्राप्त होता है + ॥१४॥

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तर्धं शरीरम् ॥ ओ३

मू कृतो स्मर क्लिबे स्मर कृतं स्मर ॥१५॥

अथ कृतोपासनो योगी अन्तकाले प्रार्थयते। वायुरनिलममथेदमिति द्वे यजुषी तत्र प्रथमा प्राजापत्या गायत्री द्वितीया याजुषी बृहती। अथेदानीं परीष्यतः मेरा वायु (प्राण वायुग्रहणं सप्तदशकलिङ्गोपलक्षणार्थम् सप्तदशात्मकलिङ्गरूप प्राण अध्यात्मपरिच्छेद को छोड़कर) अधिदैवतरूप सर्वात्मक अमृत सूत्रात्मक अनिल (वायु) को प्राप्त हो इति वाक्य शेषः = अर्थात् ज्ञानकर्मसंस्कृतलिङ्ग को ऊँच निकाले ॥१॥ अथ यह स्थूलशरीर अग्नि में होमा हुआ भस्मान्त (भस्मरूप हो कृतप्रयोजनत्वात् ॥२॥ अथ योगिनोऽवलम्बभूतमक्षरमुच्यते ओमिति ब्रह्मणः प्रतिमा नाम वा। ओ३मिति परमाक्षरस्य योगिनामालम्बभूतस्य यस्य ब्रह्मणः प्राणवारव्यस्यास्थूलादिगुणयुक्तस्य ब्रह्म ऋषिः छन्दो गायत्रं ५ परमात्मादेवता ब्रह्मारम्भे विरामे च याग होमादिषु शान्तिपुष्टिकर्मसु चान्येष्वपि काम्यनेमित्तिकादि-

+ नक्षत्रमृतमुच्यते यदेवनात्मजमिति श्रुतिः।

५ देवीगायत्री

५ वायुर्वाव गौतम सूत्रं वायुना गौतम सूत्रेण दर्शं सर्वं संवर्धयामिति श्रुतिः बृहदारण्यकं माध्य. ३. ५. ६.

षु सर्वेषु विनियोगोऽस्येति कात्या० सर्वानु० ४.४.॥ ३ ॥ प्रती-  
कात्मकत्वात्सत्यात्मकमग्न्याख्यं ब्रह्माभेदेनोच्यते। कतो-  
क्तिवे० कृतम्० त्रीणि यजूंश्चिदैवी बृहतीछन्दस्कानि। हे अ-  
म् हे कृतो (संकल्यात्मक) स्मर (जो मेरा स्मर्तव्य है तिस का यह  
काल प्रत्युपस्थित है इस हेतु स्मर + जो कि तू ब्रह्मचर्य और  
गार्हपत्य में मैंने परिचरतिसे स्मर ॥ १ ॥ क्तिवे स्मर कल्प्यते  
भोगायेति कृपू लोकः तिस के लिये स्मर (में इस के लिये यह  
लोक दूंगा तिस के लिये स्मर ॥ २ ॥ कृतं स्मर और जो मैंने बा-  
ल्यप्रभृति में अनुष्ठान किया कर्म तिससे स्मर। स्मरेत्यस्याबु-  
त्तिरादरार्थी ॥ ३ ॥ कतो विभिर्यजुर्भिरन्ते यज्ञान्योगीस्मारय-  
तीति कात्या० सर्वा० ४.४.॥ १५ ॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयु-  
नानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूर्यिष्टां  
ते नमउक्तिं विधेम ॥ १६ ॥

पुनरन्येन मन्त्रेणाग्न्याख्यं ब्रह्म प्रति योगी मार्गं याचते।  
अग्ने नयान्ते नमस्कारोक्तिः। अगस्त्यहृष्टाग्नेयी त्रिष्टुप् व्या-  
ख्यातापि ५.३६ विशेषाय पुनर्व्याख्यायते। हे देव (दानादिगु-  
णयुक्त) हे अग्ने हम को शोभनमार्ग (देवयान) कर ले चलि (सु-  
पथ यह विशेषण दक्षिणमार्गनिवृत्त्यर्थ है) गतागतलक्षणा द-  
क्षिणमार्गकर निर्विष्ट हूं इस कारण हे अग्ने तुम्हें याचता हूं कि  
पुनर्गमनागमनवर्जित शोभनपथ कर हम कर्मफलविशिष्टों

+ सुमिर-सम्भारि

को ले चलि। किस लिये कि गये (धन, मुक्तिलक्षण कर्मफल भोग के अर्थ)। कैसा है तू कि सब वयुनो (कर्मों वा प्रज्ञानों) को जानता। किं च जहुराण (कुटिल, प्रतिबन्धक वच्चनात्मक) पाप को हमारे सकाश से पृथक् करि अर्थात् नाश करि। फिर विशुद्ध हुए हम तेरे लिये बहुत-बहुत नमस्कार वचन करेंगे क्यों कि यहां सपापत्व से तेरी परिचर्या करने को नहीं समर्थ हैं तिस हेतु तुरु करि पापनाश किये में शुद्ध हुए हम नमस्कार करि तुम्हें परिचर्येंगे ॥१६॥

हिरण्मयेन यात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।

योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्।

श्री ३ मू खं ब्रह्म ॥१७॥

इति संहितायां द्वितीयोऽनुवाकः २.

इति श्री शुक्लयजुर्वेदे माध्यन्दिनीयायां वाजसनेय-  
संहितायां दीर्घपाठे चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥

पुनरादित्योपासनमाह। उष्णिक् यजुर्द्वयान्ता। हिरण्यरेसे (हिरण्य-ज्योतिर्मय) जो यात्र (मण्डल-पीठी) हैं जहां स्थिता रवि मण्डल रसें को तिस तेजोरूप मण्डल करि सत्य (आदित्य-मण्डलस्थ अविनाशी पुरुष) का मुख (शरीर) अपिहित (आच्छादित) वर्तते है। तथापि जो असे (प्रत्यक्षः) आदित्य (रवि मण्डल) में पुरुष है (पुरुषाकारत्व से पूर्ण है इस से प्राणवुद्धि आ-  
ती है)। अस्तजगत् यह वा परिशयन से सो मण्डलस्थ पु-

रुष असौ (प्रत्यक्षः कार्यकारणसंघातप्रविष्टः) में हूं। और इस उपासना को करे इत्यर्थः॥ ओम् एवं ब्रह्मेति द्वे यजुषी। ओमिति नामनिर्देशो ब्रह्मणः एवं ब्रह्मेत्याकाशरूपमन्ते ब्रह्मध्यायेत् कात्या० सर्वा० ४०४० यद्यपि ब्रह्मचेतन और आकाश अचेतन है तथापि एकदेश में सादृश्य है अर्थात् नभोवद्व्यापक ब्रह्म को ओम् यह जपते ध्यान करे। सूर्यमण्डलस्थपुरुष में ही हूं यह अभेद से चिन्तन करे॥ १७॥

अथविचारः॥ विद्यां चाविद्यां चेत्यत्र क० १४ विद्याशब्देन किं मुख्या परमात्मविद्योच्यते उतो यासना वा अमृतमश्नुत इत्यत्र क० १४ अमृतशब्देन साक्षान्भुक्तिरुत्तरमार्गेण परम्परया वा। नाद्यः॥ विद्याकर्मणोर्यस्तद्वेदोभयं सहेति क० १४ समुच्चयानुपपत्तेः तयोर्विरोधात् विद्योत्पत्तौ तदाश्रये विद्यानुत्पत्तेः वह्निरुष्णाः प्रकाशश्चेति ज्ञानोत्पत्तौ शीतोऽग्निरप्रकाशश्चेति अविद्योत्पत्तिर्न सम्भवति नापि संशयोऽज्ञानं वा यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विज्ञानतः तत्र को मोहः कः शोक इत्युक्तत्वात् किं च विद्याशब्देन परमात्मविद्याग्रहणेऽग्ने नयेति सुपथयाचनमनुपपन्नम्। तस्माद्विद्योपासना अमृतं चापेक्षकमिति दिक्॥

श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमो हार्दनिवारयन्

पुमर्थीश्चतुरो दयात्कृष्णः स्वानन्ददायकः ४०

इति श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधरभाष्ये द्वितीयोऽनुदाकः २

श्रीमच्छुक्लयजुर्वेदान्तर्गतमाध्यन्दिनीयशारवाध्येतव्याघ्रपा-  
दान्वयविश्वामित्रपुराधिप कुरुकुलकमलकमलाकर श्रीम-  
ज्जयकिशोर देववर्मात्मज रौक्मिणेयगिरिधरदेववर्मणस्त-  
स्यानुजनृपति गिरिप्रसाद रचिते श्रीवेदार्थप्रदीपे गिरिधर-  
भाष्ये गिरिप्रसादसर्वस्वे शुक्रियायां परमात्मवर्णनोनाम  
चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥

गिरिप्रसादसर्वस्वे श्रीवेदार्थप्रदीपके  
व्यरमज्ज्ञानकाण्डोऽयं बालकृष्णः प्रसादतः २

आदितोऽनुवाकसंख्या ११.

इति सर्वानुक्रमणिभाष्ये गिरिप्रसादरचिते श्रीवेद-  
ार्थप्रदीपे चतुर्थोऽध्यायस्य नवमो खण्डः ४.  
पौषे मासेऽसिते पक्षे सप्तम्यां रविवासरे  
ग्रहनेत्राङ्कभूवर्षे शुक्रमन्त्राः समागमन् ६.  
समाप्ता चैयं माध्यन्दिनीया वाजसनेयसंहिता  
ओं तत्सत् श्रीबालकृष्णार्यणमस्तु  
अतः परं सर्वानुक्रमणिभाष्य उच्यते

विश्वामित्रपुरीयनवलदुर्गस्थव्याघ्रपादप्रकाशकाशमयत्रालये मुद्रि-  
तम् विक्रमाब्दाः १४३० शकाब्दाः १०४५ वैशाखशुक्ला १५ चन्द्रवासरः  
ओम् शान्तिः ओम् शान्तिः ओम् शान्तिः

## अथ संक्षेपत शुक्रमन्त्राणां सूचीपत्रम्

पृष्ठा	पङ्क्तिः	विषयः	पृष्ठा	पङ्क्तिः	विषयः
१०४१	७	शान्तिपाठः			उपासनमन्त्राः षट्
१०४४	२०	प्रवर्ग्यधर्ममहावीरः			तत्रादौ
११३४	१६	प्रवर्ग्यधर्मभेदे प्रायश्चित्तम्	११५२	१७	सम्भृत्यसम्भृत्योः प्रत्येकं
११३६	३	द्वितीयः पूर्णाहुतिमन्त्रः	११५३	१७	उभयोरुपासनयोः समुच्चयः
११३६	१०	सम्भ्रयमाणद्यवस्थायां होमः			यकारणमवयवफलभेदः
११३७	१४	प्रथमादिद्वादशाहपर्यन्त होमः	११५४	२१	विद्याविद्ययोः समुच्चिची
११३८	११	आग्निको मन्त्रः			षयाप्रत्येकं निन्दा
११३८	३	आग्निमेधिको मन्त्रो	११५५	१२	तयोः फलभेदः
११४१	६	अश्वमेधे प्रायश्चित्नाहुतयः	११५५	१४	समुच्चयः
११४३	२१	कर्मकाण्डं समाप्तम्	११५६	६	कृतोपासनो योगी अन्न-
		अथज्ञानकाण्डः			काले प्रार्थयते
११४४	५	उपदेशोऽधिकारश्च	११५६	७	योगिनोऽवलम्बभूतोऽक्षरः
११४६	१	आत्मज्ञानाशक्तस्य कर्मोपदेशः	११५६	७	त्रीणि यजूंश्चि
११४६	२१	काम्यकर्मणो निन्दा	११५७	१२	अग्न्याख्यं ब्रह्म प्रतिमा-
११४७	१२	आत्मस्वरूपः			र्गयाचनम्
११४८	८	आत्मस्वरूपस्य पुनरुपदेशः	११५८	४	आदित्योपासनम्
११५०	८	उपासानप्रकारः	११५८	११	द्वे यजुषी
११५१	२	पुनरुपासनम्			इति सूचीपत्रम्
११५१	११	आत्मज्ञस्य फलम्	११६०	२१	इति संहिता भाष्यम्



## सर्वानुक्रमणी

अथातः पृच्छन्ते देवता गायत्र्या अग्निरुषिहः सवितानुष्टुभः सो-  
मो बृहत्या बृहस्पतिः पङ्केर्वरुणस्त्रिष्टुभ इन्द्रो जगत्या विश्वे देवा  
विराजो मित्रः स्वराजो वरुणोऽतिछन्दसः प्रजापतिर्विछन्दसो वायुर्द्वि-  
पदायाः पुरुष एकपदाया ब्रह्मा । सर्वाचरुच आग्नेय्यः सर्वाणि य-  
जूंषि वायव्यानि सर्वाणि सामानि सौराणि सर्वाणि ब्राह्मणानि  
च । स्वाहाकारस्याग्निर्वषट्कारस्य विश्वे देवाः । व. गोरम्भे म-  
न्त्राणां देवता वेदितव्याः संन्यस्य मनसि देवतां ततो हविर्ह-  
यते देवतामविज्ञाय यो जुहोति देवास्तस्य हविर्न जुषन्ते । स्वा-  
ध्यायमपि योऽधीते मन्त्रदेवतज्ञः सोऽमुष्मिं लोके देवैरपीड्यते  
तस्माच्च देवता वेद्या मन्त्रै मन्त्रे प्रयत्नतो ।  
मन्त्राणां देवताज्ञानान्मन्त्रार्थमधिगच्छति ॥

मन्त्रार्थज्ञानात्तु विधूतपाप्मा नाकमभ्येति

न हि कश्चिदविज्ञाय याथातथ्येन देवताः ।

श्रीतानां कर्मणं विप्रः सार्त्तानां चाश्रुते फलम् ॥१०॥

एवं मन्त्राणां देवानुक्ता छन्दसां देवानाह । अथातः छन्दों के  
देवतेति गायत्री का अग्नि. उषिह का सविता. अनुष्टुप् का  
सोम. बृहति का बृहस्पति. पङ्क्ति का वरुण. त्रिष्टुप् का इन्द्र. जग-  
ती के विश्वे देवा विरट का मित्र. स्वराट का वरुण. अतिछन्द  
का प्रजापति. विछन्द का वायु. द्विपदा का पुरुष. एकपदा का ब्रह्मा ।  
सब ऋचाएँ (गायत्र्यादि सप्तछन्दों तथा तिनके पदपङ्क्त्यादिभेदों और

अतिनगत्यादि सप्त अतिछन्दों करि लक्षणयुताँ) अग्निदेवता का है। सब यजुःछत्यादि सप्त छन्दों और देव्यादि एकोन पञ्चाशत् तथा आर्ष्यादि सप्त मिलित्वा त्रिषष्टि ६३ और छन्द लक्षणरहिताः वायुदेवता का है। सब साम (गीता ऋचाँ) सूर्यदेवत्याः और सब (ऋग्यजुःसाम) ब्रह्मदेवता का है। स्वाहाकार का अग्नि-वषट्कार के विश्वे देवाः। कर्म के आरम्भ में मन्त्रों के देवता जानने चाहिये मन में देवताओं को धारण करि के फिरि हवि होमिये है देवताओं को विनंजाने जो होमता है देवता तिस का हवि नहीं सेवन करते। और स्वाध्याय जो अध्यन करता है मन्त्रदेवता का जानने हारा सो इस लोक में देवताओं करि पीडा नहीं पाता

तिस हेतु यत्नपूर्वक देवता जानने चाहिये मन्त्र-मन्त्र में क्योंकि मन्त्रों के देवता जानने से मन्त्र के अर्थ को प्रवेश करता है॥ और मन्त्र के अर्थज्ञान से विधूत पाप्मानाक (स्वर्ग) को प्राप्त होता है

नहीं कोई विप्र (वैदिक) विनजाने जों के तों देवताओं के श्रोत और स्मार्त कर्मों के फल को व्याप्त होता ॥१०॥

अनादिष्टमध्वरादौ सवान्ते कर्माणि परिभाषितं मन्त्रगणं वक्ष्यामः । सर्वमाग्नेयं गायत्रं गौतमीयं सर्वं सावित्रीमोषिणं भारद्वाजीयं सर्वं सौम्यमानुष्यममार्थवतिकं सर्वं बार्हस्पत्यं बार्हतमाङ्गिरसं सर्वं वारुणं पाङ्कमालम्बायनी-

यर्धं सर्वमेन्द्रं त्रैष्टुभं याज्ञवल्कीयर्धं सर्वमादित्यदेवतं जा-  
गतं कौत्सम् ॥११॥

अध्वरः गृहः सवनः तीर्था काण्डविहित कर्म में तिस-तिसप्र-  
करणेत्यमन्त्र के ऋष्यादिक इस अनादेश में जानना। समस्त  
अग्निदेवताके मन्त्रों का गायत्री छन्द गीतम ऋषि है अन्य-  
त्स्पष्टम् ॥११॥

ज्योतिष्टोमो दीक्षाप्रभृति वक्ष्यामो दीक्षायां भृगुर-  
ग्न्याविष्णू गायत्री प्रायणीयः आङ्गिरसोऽदितिरुषिणः क्रये  
विश्वामित्रः सोमोऽनुष्टुप् आतिथ्ये वसिष्ठो विष्णुर्बृहती प्रव-  
र्ग्ये कश्यप आदित्यः यङ्गिः उपसत्स्वात्रेय उपसद्देवता त्रिष्टुप्  
अग्नीषोमीयेऽगस्त्योऽग्नीषोमौ जगती प्रायणीयेऽतिरात्रः आ-  
ग्निवेश्योऽहोरात्रेऽअतिजगती चतुर्विंशत्यहे सोमरायणः  
संवत्सरः शक्करी अभिप्लवे षडहे सावर्णेऽधर्मासा मासाश्चा-  
तिशक्करी पृष्ठ्ये षडहे सायकायन ऋतवोऽष्टिः अभिजिति  
प्रियव्रतोऽग्निरत्यष्टिः स्वरसामसु सरस्वत्यापो धृतिः विषुव-  
ति रौहिणायन आदित्योऽतिधृतिः विश्वजिति सौभर-  
इन्द्रः कृतिः गोऽआयुषोर्वाकलिर्मित्रावरुणो प्रकृतिः द-  
शरात्रः आचार्यो विश्वे देवा आकृतिः दशरात्रिके पृष्ठ्ये ष-  
डहे भाल्लवेयो दिशो विकृतिः छन्देभ्यु शौल्वायन इमे लो-  
काः संकृतिः दशमेऽहनि पराशरः संवत्सरोऽभिकृतिः महा-  
व्रते शैलिनः प्रजापतिरुत्कृतिः उदयनीयेऽतिरात्रे भौबनायनो

वायुश्छन्दोऽसि सर्वाणि ॥१२॥

न्योतिष्ठेऽम मे दीक्षाप्रभृति वक्ष्यमाण जानना दीक्षामेभृ-  
 गु ऋषि अग्नाविष्णु देवता गायत्री छन्द एवमग्रेपि स्पष्टार्थः ॥१२॥  
 ऋषिभिरुपलक्षितं वाक्यमृषयः छन्दोभिरुपलक्षिता दे-  
 वता मन्त्रवर्णाह्वयजुषयोर्विनियोगतश्च विज्ञेयाः । सर्वमेतच्छ-  
 न्दो देवतमार्थं च विज्ञाय यत्किञ्चिज्जपहोमादि करोति तस्य  
 फलमश्नुते । ब्रह्मयज्ञारम्भे यथाविधि स्नात्वा छन्दः पुरुषमे-  
 नोनिर्णोदनर्हं शरीरे न्यसेत् तिर्यागबलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नः  
 (निरु० १२. ३८. बृहदा० माध्य० २. २. ५. ६. ब्रह्मसूत्रम् २. ४. १)  
 तस्याक्षिणी गौतम भरद्वाजौ श्रौत्रे विश्वामित्रजमदग्नी ना-  
 सिके वसिष्ठकश्यपौ वागत्रिः । गायत्रीं छन्दोऽग्निदेवतार्हं शि-  
 रांसि विन्यसेदेवमेवोष्णिहर्हं सवितारं ग्रीवास्वनूके बृहतीं  
 बृहस्पतिम् बाह्वोर्बृहद्रथन्तरे द्यावापृथिवी मध्ये त्रिष्टुभ-  
 मिन्द्रर्हं आणयोजगतीमादित्यम् मेद्रेऽतिछन्दसं प्रजापतिम्  
 पायौ यज्ञायज्ञियं वैश्वानरम् ऊर्वारनुष्टुभं विश्वान्देवान् अ-  
 ष्ठीवतोः पङ्क्तुं मरुतः पादयोर्द्विपदां विष्णुम् प्राणेषु विछन्द-  
 सं वायुम् न्यूनातिरिक्तैश्चङ्गेषु न्यूनाक्षरं छन्द आपो देवतेत्येव-  
 र्हं सर्वाङ्गेषु योजयित्वा वेदमयः सम्पद्यते प्राणानुग्रहसमर्थो  
 भवति ब्राह्म्यं तेजश्च वर्धते न कुतश्चिद्वयं विन्दते ऋद्धयो  
 यजुर्मयः साममयो ब्रह्ममयस्तेजोमयोऽमृतमयः सम्भूय  
 ब्रह्मेवाभ्येति । तस्मादेतन्नाब्रह्मचारिणे नातपस्विने नासंव-

त्सरोषिताय नाप्रवक्तुं ब्रूयादनेनाधीतेन चान्द्रायणाब्दफल-  
मवाप्नोति अनेन च सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मणः सायुज्यं सत्तो-  
कतामाप्नोत्याप्नोति ॥१३॥

इति सर्वानुक्रमणीये चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

ऋषियों करि उपलक्षित वाक्य ऋषि और छन्दों करि उपलक्षि-  
ता देवता मन्त्रवर्ण (अक्षरसंख्या) और विनियोग से ऋचा-  
ओं और यजुओं के जानना। इस सब छन्द देवत और  
आर्ष को जानि जो कुछ जपहोमादिक करता है तिस के फ-  
ल को प्राप्त होता है। ब्रह्मयज्ञ (स्वाध्यायपाठ) के आरम्भ में  
विधिपूर्वक स्नान करि एनोनिर्णेदन छन्दः पुरुष को शरीर  
में स्थापन करें चमसा का शिरोलक्षण तिर्यग्विल ऊर्ध्वबु-  
ध है तिस के नेत्र गोतम और भरद्वाज ओत्र विश्वामित्र औ-  
र जमदग्नी नासिका वसिष्ठ और कश्यप वाचा अत्रि है।  
गायत्री छन्द अग्निदेवता को शिर पर स्थापन करें एवं उ-  
ष्णिक् - न्यूनातिरिक्त अङ्गों में न्यूनाक्षर छन्द जलदेवता  
को इति एवं सर्वाङ्गों में योजन करि वेदमय सम्पद्ये है शाय-  
देंने और अनुग्रह करने को समर्थ होता और ब्रह्मतेज बढ-  
ता है नही किधर ही से भय प्राप्त होती ऋद्धय यजुर्मय सा-  
मय ब्रह्ममय तेजोमय अमृतमय हो कर ब्रह्म को प्राप्त हो-  
ता है। तिस कारण इस न्यास को अब्रह्मचारी अतपस्वि अ-  
संवत्सरोषित अप्रवक्त के अर्थ न कहें क्यों कि इस के अध्य-

यन करने से एकवर्ष चान्द्रायणव्रत किये के फल को प्राप्त होता और इस के सम्यग्ज्ञान करि ब्रह्म की सायुज्य और सलोकता को प्राप्त होता है प्राप्त होता है ॥१३॥

इति सर्वानुक्रमणिभाष्ये गिरिप्रसादरचिते वेदार्थप्रदीपे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अथ छन्दार्थसि गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्हतीपङ्क्तित्रिष्टुब्जगत्यतिजगती शक्यतिशक्यरूपत्यष्टिधृत्यतिधृतयः कृतिप्रकृत्या कृतिविकृतिसंकृत्यभिकृत्युक्ततयश्चतुर्विंशत्यक्षरादीनि चतुरुत्तराणि । ऊनाधिकेनैकेन निचृद्भुरिजौ द्वाभ्यां विराटरवराजौ । पादपूर्णार्थं तु क्षेप्रसंयोगैकाक्षरीभावान्व्यूहेत् । आद्ये तु सप्तवर्गे पादविशेषात्संज्ञाविशेषास्ताननुक्रामन्त एवोदाहरिष्यामो विराड् रूपा विराट्स्थानाश्च बहूना अपि त्रिष्टुभ एवेत्युद्देशः । तत्र दशैकादशाद्वादशाक्षराणां वैराजत्रैष्टुभजागता इति संज्ञा अनादेशोऽष्टाक्षराः पादाश्चतुष्यदाश्चर्चः ॥१॥

छन्दसां स्वरूपमाह । अथछन्दार्थंसीति अथ गायत्र्यादि एकविंशति छन्द चतुर्विंशति अक्षरों से आदि ले चारि-चारि अक्षर वढाकर चतुरुत्तर एक शत अक्षर पर्यन्त हैं । तहां गायत्र्यादि उक्तति पर्यन्त एकविंशति छन्दों की एक अक्षर ऊन होने से निचृत् और एक अक्षर अधिक से भुरिक् संज्ञा है तथा दो अक्षर ऊन विराट् और दो अक्षर अधिक स्वराट् ।

और जो इतने पर भी अक्षर ऊन रहें तो पादपूरण के अर्थ क्षेत्र संयोग से एकाक्षरी भाव करि व्यूहै यथा तत्सवितुर्वरेण्यम्- तत्सवितुर्वरेण्यम्- दिवं गच्छस्वः पतः- दिवं गच्छ सु- वः पत इत्यादि। और पहिले वर्ग गायत्र्यादि सप्त में पादविंश-

१ छन्दांशसि			२ अति छन्दांशसि			३ अति छन्दांशसि यजुर्वेद		
संख्या	नाम	अक्षर	संख्या	नाम	अक्षर	संख्या	नाम	अक्षर
१	गायत्री	२४	१	अतिजगती	५२	१	कृति	८०
२	उष्णिक्	२८	२	शक्ती	५६	२	प्रकृति	८४
३	अनुष्टुप्	३२	३	अतिशक्ती	६०	३	आकृति	८८
४	बृहती	३६	४	अष्टि	६४	४	विकृति	९२
५	पङ्क्ति	४०	५	अत्यष्टि	६८	५	संकृति	९६
६	त्रिष्टुप्	४४	६	धृति	७२	६	अभिकृति	१००
७	जगती	४८	७	अतिधृति	७६	७	उत्कृति	१०४

ष होने से संज्ञाविशेष होजाती हैं तिनमें क्रमपूर्वक उदाहरण करूंगा विराड्रूपा और विराटस्थाना बहुत ऊनाभी त्रिष्टुप् (खण्ड ७) ही है यह उद्देश है तहां दश अक्षर का विराट्छन्द का एकपाद और एकादश अक्षर का त्रिष्टुप् द्वादश अक्षर का जगती एकपाद होता है अनादेश में जहां अक्षर नहीं कहे गये तहां अष्टाक्षर का पाद है और जहां पाद संख्या नहीं कही तहां चतुः पाद हैं ॥१॥

अथमं छन्दस्त्रिपदा गायत्री। पञ्चकाश्चत्वारः षड्-  
 श्वेकश्चतुर्थश्चतुष्को वा पदपङ्क्तिः। षट्संज्ञैकादशा उषिण-  
 गगर्भा। त्रयः सप्तकाः पादनिचृन्मध्यमः षड्श्वेदतिनिचृ-  
 द्दशकश्चेद्यवमध्या। यस्यास्तु षट्सप्तकाष्टकाः सा वर्ध-  
 माना विपरीता प्रतिष्ठा। द्वौ षड्को सप्तकश्चेति हसीयसी॥२॥  
 पहिला छन्द त्रिपदा (तीनि पद ८ + ८ + ८। का) गायत्री। प-  
 दपङ्क्तिर्गायत्री ५ + ५ + ५ + ५ + ६। अथवा ५ + ५ + ५ + ४ + ६।  
 उषिणगगर्भा गायत्री ६ + ७ + ११। पादनिचृद्गायत्री ७ + ७ +  
 ७। अतिनिचृद्गायत्री ७ + ६ + ७। यवमध्यागायत्री ७ + १० +  
 ७। वर्धमाना गायत्री ६ + ७ + ८। प्रतिष्ठागायत्री ८ + ७ + ६।  
 हसीयसी गायत्री ६ + ६ + ७॥ ॥ गायत्री उषिणग्वा २६  
 अक्षर होने से विकल्प है अध्या० १७ काण्डी ८५। अनवसा-  
 ना (अवसानहीना, अवसानरहिता) गायत्री ५ + ३५। एकप-  
 दा गायत्री ८ अक्षर होने से ३०६। द्विपदा गायत्री २६ अक्षर  
 होने से २००१ एकद्वित्रिचतुष्पादमिति पिङ्ग० खण्ड ६ स-  
 व १८०॥२॥

द्वितीयमुषिणक् त्रिपदान्त्यो द्वादशकः। आद्यश्चेत्युरउ-  
 षिण् आध्यमश्चेत्ककुप्। त्रैष्टुभजागतचतुष्काः ककुबन्यङ्कु-  
 शिरैकादशिनोः परः षड्स्तनुशिरा मध्ये चेत्पिपीलिकम-  
 ध्याद्यः पञ्चकस्त्रयोऽष्टका अनुष्टुबार्भा। चतुःसप्तको-  
 षिणगेव॥३॥



दूसरा छन्द पर उषिणक् ८+८+१२। पुर उषिणक् १२+८+८।  
 ककुबुषिणक् ८+१२+८। ककुब्रुङ्गुशिरोषिणक् ११+१२+४।  
 तनुशिरोषिणक् ११+११+६। पिपीलिकमध्योषिणक् ११+६+११।  
 इति त्रिपदा। अनुष्टुबाभोषिणक् ५+८+८+८। उषिणक् ७+  
 ७+७+७॥ ॥ विषमपदोषिणक् (पादानियमान्) २७-२८-  
 २९। वर्धमानोषिणक् ६+७+८+९ (वृद्धितः) ७-२९॥ ३॥

तृतीयमनुष्टुप्। पञ्च पञ्चकाः षड्द्व्यैको महापदप-  
 ङ्क्तिः। जागतावष्टकश्च कृतिः। मध्ये चेदष्टकः पिपीलिक-  
 मध्या। नवकयोर्मध्ये जागतः काविराट्। नववैराजत्रयो-  
 शेर्नष्टरूपा। दशकास्त्रयो विराडेकादशका वा ॥४॥  
 तीसरा अनुष्टुप्छन्द ८+८+८+८। महापदपङ्क्तिरनुष्टुप् ५+  
 ५+५+५+६। कृतिरनुष्टुप् १२+१२+८। पिपीलिकमध्यानु-  
 ष्टुप् १२+८+१२। काविराडनुष्टुप् ९+१२+९। नष्टरूपानुष्टुप्  
 ९+१०+१३। त्रिपदाविराडनुष्टुप् १०+१०+२० अथवा ११+११  
 +११॥ ॥ द्विपदाविराज २० अक्षर होने से ३२५ एकप-  
 दाविराज १० अक्षर ५०३५॥ ४॥

चतुर्थं बृहती तृतीयो द्वादशकः। आद्यश्चेत्पुरुस्ताहु-  
 हती। द्वितीयश्चेन्त्यङ्गुसारिएयुरोबृहती स्कन्धोग्रीवी वा। अ-  
 न्त्यश्चेद्गुपरिष्ठाहृहती। अष्टिनोर्मध्ये दशको विष्टारबृहती।  
 त्रिजागतोर्ध्वबृहती। त्रयोदशिनोर्मध्ये ष्टकः पिपीलिकम-  
 ध्या। नवकाष्टकेकादशाष्टिनो विषमपदा। चतुर्नवका बृह

त्येव ॥५॥

चौथा बृहती छन्दः पथ्या बृहती ८+८+१२+८। पुरस्ता बृहती १२  
+८+८+८। न्यङ्कुसारिणी वा उरो बृहती वा स्कन्धोग्रीवी ८+१२  
+८+८+८। उपरिष्ठा बृहती ८+८+८+१२। विष्टार बृहती ८+  
१०+१०+८। ऊर्ध्व बृहती १२+१२+१२। पिपीलिक मध्या बृह-  
ती १३+८+१३। विषमपदा बृहती ६+८+१०+८। बृहती ६+६  
+६+६॥ ॥ अनुष्टुप् बृहती वा ३४ अक्षर होने से ४-२१॥५॥

पञ्चमं पङ्क्तिः पञ्चपदा। अथ चतुष्पदा विराट् दश-  
काः॥ अयुजो जागते सती बृहती युजो चेद्विपरीताद्यो चेत्यस्ता-  
रपङ्क्तिराद्यन्ते चेत्यंस्तारपङ्क्तिर्मध्यमो चेद्विष्टारपङ्क्तिः॥६॥  
पाँचवाँ पङ्क्तिः छन्दः पञ्चपदापङ्क्तिः ८+८+८+८+८। चतुष्पदा वि-  
राट् पङ्क्तिः १०+१०+१०+१०। सती बृहती १२+८+१२+८। विपरी-  
ता बृहती ८+१२+८+१२। प्रस्तारपङ्क्तिः १२+१२+८+८। आस्ता-  
रपङ्क्तिः ८+८+१२+१२। संस्तारपङ्क्तिः १२+८+८+१२। विष्टारप-  
ङ्क्तिः ८+१२+१२+८॥ ॥ पङ्क्तिः बृहती वा ३८ अक्षर  
होने से ८-२६। स्वराट् पङ्क्तिः १०+१०+११+११+ होने से ११-  
२६॥६॥

षष्ठं त्रिष्टुप् त्रैष्टुभपदा। द्वौ तु जागते यस्याः सा जा-  
गते जगती त्रैष्टुभे त्रिष्टुप्। वैराजो जागते चाभिसारिणी। नवको  
वैराजस्त्रैष्टुभश्च द्वौ वा वैराजो नवकस्त्रैष्टुभश्च विराट्स्था-  
नेकादशिनस्त्रयोऽष्टकश्च विराट् रूपा। द्वादशिनस्त्रयोऽष्ट-

+ पथ्या पूर्वश्चेत्तृतीयः पङ्क्तिः ० ५-१०

८ कोष्टकिमेत स्कन्धोग्रीवी। या स्कमते उरो बृहती। पङ्क्तिः ० ५-६-१०

पङ्क्तिः ० ६-१०  
+ आदिः संहिधे

कश्च ज्योतिष्मती यतोऽष्टकस्ततो ज्योतिः । चत्वारोऽष्टका  
जागतश्च महाबृहती । मध्ये जागतश्चेद्यवमध्या । आद्यो  
दशकावष्टकास्त्रयः पङ्क्त्युत्तरा विराट्पूर्वा वा ॥७॥  
छठा त्रिष्टुप्छन्द ११+११+११+११ । जगतीत्रिष्टुप् १२+१२+  
११+११ । त्रिष्टुब्जगतीवा ११+११+१२+१२ । अभिसारिणीत्रिष्टु-  
प् १०+१०+१२+१२ । विराट्स्थानात्रिष्टुप् ८+८+१०+११ ।  
यद्वा १०+१०+८+११ । विराट्पात्रिष्टुप् ११+११+१+८ । उप-  
रिष्टाज्योतिस्त्रिष्टुप् १२+१२+१२+८ । पुरस्ताज्योतिस्त्रिष्टुप्  
८+१२+१२+१२ । महाबृहतीत्रिष्टुप् ८+८+८+८+१२ । यवमध्या  
त्रिष्टुप् ८+८+१२+८+८ । पङ्क्त्युत्तरात्रिष्टुप् यद्वा विराट्पूर्वा-  
त्रिष्टुप् १०+१०+८+८+८ ॥७॥

सप्तमं जगती जागतपदा । अष्टनस्त्रयः स्त्रो च द्वौ म-  
हासतोबृहती । अष्टकौ सप्तकः षड्को दशको नवकश्च षड-  
ष्टका वा महापङ्क्तिः ॥

माध्यन्दिनीये वाजसनेयके सर्वानुक्रमणिकेष्वा कृ-  
तिर्भगवतः कात्यायनस्येवा कृतिर्भगवतः कात्यायनस्य ॥८॥

इति सर्वानुक्रमणीये पञ्चमोऽध्यायः ॥८॥

सातवां जगती १२+१२+१२+१२ । महासतोबृहतीजगती ८+८  
+८+१२+१२ । महापङ्क्तिर्जगती ८+८+७+६+१०+८ । अथ वा  
८+८+८+८+८+८ ॥ माध्यन्दिनीया वाजसनेय संहिताकी  
सर्वानुक्रमणिका यह करी हुई भगवान् कात्यायन की-यह

करी हुई भगवान कात्यायन की ॥८॥

श्री वेदार्थप्रदीपेन तमो हार्द निवारयन्  
 पुमार्थाश्चतुरे देयात्कृपाः स्वानन्ददायकः  
 माधवे त्वसिते पक्षे पञ्चम्या गुरुवासरे  
 व्योमरामाङ्कभूवर्षेऽनुक्रमार्थः समागमत्  
 इति सर्वानुक्रमणिभाष्ये गिरिप्रसादरचिते श्री वेदार्थप्र-  
 दीपे पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

अतः परं अनुवाकाध्यायो भविष्यति

हरिः ओम्

ओं नमो यज्ञपुरुषाय

अथानुवाकान्वक्षामि ब्रह्मण विहिता (निर्मिता) न्युरा  
 शिष्याणामुपदेशाय यज्ञ संस्करणयच  
 विप्राणां यज्ञकालेषु जपहोमार्चनादिषु  
 ऋषिर्वदति। अब मैं अनुवाकों को कहिता हूं कि जो पहिले ब्र-  
 ह्मा से उत्पन्न हुई (नें निर्माण करीं)। किमर्थम् कि विप्रों के य-  
 ज्ञकाल तथा जपहोमार्चनादिकों में शिष्यों के उपदेश और  
 यज्ञसंस्कार के अर्थ॥

इषेतैका वसोः पवित्रं तिस्रोऽग्ने व्रतपते सप्त पवित्रे  
स्थो द्वे शर्मासि तिस्रो धृष्टिरसि शर्मासि द्विको देवस्य त्वा  
तिस्रो देवस्य त्वा पञ्च प्रत्युष्टं रक्षस्तिस्त्रो दशैक त्रिं-  
शत् ॥ १० ॥ ३१ ॥ १ ॥

इषे त्वा अनुवाक १० काण्डी १० वसोः पवित्रम् २० ३० अग्ने  
व्रतपते ३० ७० पवित्रे स्थो ४० २० शर्मासि ५० ३० धृष्टिरसि ६० २०  
शर्मासि ७० २० देवस्य त्वा ८० ३० देवस्य त्वा ९० ५० प्रत्युष्टं १०  
३० अनुवाक १० काण्डी ३१ अध्याय १ एवमग्रेऽपि

कृषोऽसि षडग्ने वाजजित्तिस्त्रो मयीदमग्नीषोमयोः  
पञ्चकावग्नेऽद्वयायो त्ततस्रः संवर्चसा पञ्चाग्नये कव्यवाह-  
नाय षट् सप्त चतुस्त्रिंशत् ॥ ७ ॥ ३४ ॥ २ ॥

समिधार्गिन् भूर्भुवः स्वश्चतुष्कावग्निर्ज्योतिर्द्वे उप प्रय-  
न्तः षड्विंशतिर्भूर्भुवः स्वश्चतस्रो गृहा मा तिस्रः प्रधासिनः  
पञ्च पूर्णा दर्वि द्वे अक्षन्नमीमदन्त षडेष्ट ते सप्तदश त्रिष-  
ष्टि ॥ २० ॥ ६३ ॥ ३ ॥

एदं द्वे महीनां पयश्चतस्रः आकृत्या ऋक्सामयोर्द्वि-  
को व्रतं कृणुत षडेष्टा ते चतस्रो वस्यसि तिस्र एष्ट ते द्वे  
शुक्रं त्वा चतस्रोऽदित्यास्त्वगष्टौ दश सप्त त्रिंशत् ॥  
१० ॥ ३७ ॥ ४ ॥

अग्नेस्तनूरापतये चतुष्को तप्तायनी द्वे इन्द्रयोषस्ति-  
स्त्रो युञ्जतेऽष्टौ देवस्य त्वा चतस्रो देवस्य त्वा पञ्च विभूरसि

चतस्रो ज्योतिरसि षडुरु विष्णो तिस्रो दश त्रिचत्वारिंशत् ॥  
१० ॥ ४३ ॥ ५ ॥

देवस्य त्वा षडुपावीरसि पञ्च माहिः षट् ते तिस्रः स-  
मुद्रं गच्छ हविष्मतीर्द्विकौ हृदे त्वा पञ्च देवस्य त्वाष्टावष्टौ स-  
प्तत्रिंशत् ॥ ८ ॥ ३७ ॥ ६ ॥

वाचस्पतय उपयामगृहीतोऽसित्रिकावा वायोऽयं वा-  
द्विकौ यावामेका तं प्रत्यथा चतस्रोऽयं वेनो ये देवासस्त्रिकावि-  
न्त्राय मूर्धनं द्विकौ यस्त एका प्राणाय तिस्रो मधव इन्द्राग्नीश-  
गतमाधौ मासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास आगतेन्द्रमरुत्वो मरुत्व-  
न्तं वृषभं मरुतां त्वोजसे सजोषा इन्द्र मरुत्वां रे ॥ इन्द्र महा रे ॥  
इन्द्रो महा रे ॥ इन्द्र एकैकोदुत्यमष्टौ पञ्चविंशतिरष्टाचत्वारिं-  
शत् ॥ २१ ॥ ७ ॥

आदित्येभ्यः पञ्च वाममद्य द्वे सुशर्मास्येका बृहस्पति-  
सुतस्य द्वे हरिरसि चतस्रः समिन्द्राणोऽष्टौ माहिरेजतु दशमास्यः  
पञ्चकावातिष्ठ युस्वाहीन्द्रमिदेकैका यस्मान्न द्वे अग्ने पवस्वो-  
तिष्ठन्नहश्चममुदुत्यमेकैकाजिघ्र द्वे विन इन्द्र वाचस्पतिं वि-  
श्वकर्मन्नेकैकाग्नये त्वा चतस्र इह रतिसि सः परमेष्ठीदश  
त्रयोविंशतिस्त्रिषष्टिः ॥ २३ ॥ ६३ ॥ ८ ॥

देव सवितश्चतस्र इन्द्रस्य वज्रः पञ्च देवस्याहं द-  
शापये तिस्रो वाजस्यमष्टावग्निरेकाक्षरेणेषते चतुर्धौ सवि-  
ता द्वे अष्टौ चत्वारिंशत् ॥ ८ ॥ ४० ॥ ६ ॥

अपो देवाश्चतस्रः सोमस्य त्विषिः पञ्चावेष्टाः सप्त सो-  
मस्य त्वा चतस्र इन्द्रस्य वज्रः पञ्च स्योनासि चतस्रः सवित्रैका-  
श्विभ्यां चतस्रोऽष्टौ चतुस्त्रिंशत् ॥८॥३४॥१०॥

युञ्जान एकादश प्रतूर्तं षोडश देवस्य त्वा दशापो  
देवीर्द्वादशापोह्येकादशादितिष्टा पञ्चाकृतिमष्टादश सप्तत्र्य-  
शीति ॥९॥८३॥११॥

दृशानः सप्तदश दिवस्यरि द्वादश समिधं नि पञ्चद-  
शापेत सप्तदशासुन्वन्नं त्रयोदश या ओषधीः सप्तविंशतिर्मा मा  
षोडश सप्त सप्तदंशतम् ॥१०॥११०॥१२॥

मयि गृह्णामि पञ्चदश ध्रुवासि मधु वाता एकादशकौ  
सम्यक्स्रवंतिनवेमं मा षडपां त्वेकायं पुरः पञ्च सप्ताष्टापञ्चश-  
त् ॥११॥५८॥१३॥

ध्रुवक्षितिः षट् सजूर्ऋतुभिर्मूर्द्धा वयो द्विकाविंश्रग्नी आयुर्मै  
षट्कावाशुस्त्रिदृदेकाग्नेर्भागोऽस्येकया चतुष्कावष्टावेकत्रिंशत् ॥  
८॥३१॥१४॥

अग्ने जातान्यञ्च रश्मिना सत्याय चतस्रो राजस्ययं पुरः प-  
ञ्चकावग्निर्मूर्द्धैकोनत्रिंशद्येन ऋषयोऽष्टौ तपश्च नव सप्तपञ्च  
षष्टिः ॥१२॥६५॥१५॥

नमस्ते षोडश हिरण्यवाहव उष्णीषिरो तक्षभ्यो ज्येष्ठाय  
पञ्चकाः स्रुत्यायचतस्रः शंभवायैका पार्याय पञ्चद्रापे अन्धसो वि-  
ंशतिर्नव षट्षष्टिः ॥१३॥६६॥१६॥

अश्वमन्त्रूर्जे दश नमस्ते पञ्चाग्निस्तिग्मेन नव चक्षुषः  
पित्ताष्टावाशुः शिशानः सप्तदशोदेनं क्रमध्वमग्निना पञ्चदश-  
कोः शुक्रज्योतिः सप्तेमधं स्तनं त्रयोदश नवैकोनशतम् ॥६॥  
॥७७॥१७॥

वाजः सत्यमूर्खीतुक्का अश्वमग्निस्त्रिकावर्तशुः पञ्चका-  
चतस्रो वाजाय द्वे वाजस्यन्वष्टावृताषाड्भ्यां दशगिर्न युनज्मि-  
सप्त यदाकूताद्वात्रै हत्याय दशकोः त्रयोदश मप्तसप्ततिः ॥१३॥  
॥७७॥१८॥

स्वाही त्वेकादश देवायज्ञं विंशतिः सुरावन्तं सप्त-  
दशोदीरतां त्रयोदशाच्या जानु दशमोमौ राजाष्टौ सौमेन तन्त्र-  
ठं षोडश सप्त पञ्च नवतिः ॥७॥१९॥२०॥

क्षत्रस्य योनिस्त्रयोदश यद्देवादशाभ्यामधाम्यंष्टौ यो-  
मूतानां चतस्रः समिद्ध इन्द्र एकादशायात्वष्टौ समिद्धो अ-  
ग्निर्द्वादशाश्विना हविस्त्रयोदशाश्विना तेजसेकादश नव-  
नवतिः ॥८॥२०॥२१॥

इमं मे समिद्धो अग्निरेकाशको वसन्तेन ऋतुना षट्-  
होता यत्तद्वादशाश्विनो छागस्य सप्त देवं वर्हिश्चतुर्दश षडेक-  
षष्टिः ॥९॥२१॥२२॥

तंजोऽसि पञ्चाग्नये एका हिंकाराय द्वे तत्सविर्दश-  
विभूर्मात्रैका काय द्वे त्रयोदश शेषादेकैकोनविंशतिश्चतुस्त्रि-  
ंशत् ॥१०॥२२॥२३॥



हिरण्यगर्भो यः प्राणतो द्विको युज्जन्येष्टो वायुश्च पञ्च  
प्राणाय तिस्र उत्सकय्या द्वादश गायत्री कस्त्वा षट्को कःस्वि-  
दष्टो कास्विद्वश सुभूः स्वयंभूस्तिस्र एकादश पञ्चषष्टिः ॥११॥  
६५॥२३॥

अश्वस्तूपरो धूम्रान्वसन्ताय समुद्राय शिशुमारान्मयुः  
प्राजापत्यो दशकाश्वत्वारश्चत्वारिंशत् ॥४॥४०॥२४॥

शादं दद्विर्नवैकैका हिरण्यगर्भश्चतस्र अ. रो दश मानो  
यदश्वस्याष्टको यत्ते षडिमानु कं द्वे पञ्चदश सप्तचत्वारिं  
शत् ॥१५॥४१॥२५॥

अग्निश्च पञ्चदशोच्चात एकादश द्वौ षड्विंशतिः  
॥२॥२६॥२६॥

समास्त्वा दशोर्ध्वा अस्य पीवो अन्ना द्वादशकावभि त्वे-  
कादश पञ्चचत्वारिंशत् ॥४॥४५॥२७॥

होता यक्षदेकादश देवं वर्हिर्द्वादश पुनरप्येवं चत्वारः  
षट्चत्वारिंशत् ॥४॥४६॥२८॥

समिद्धो अज्जन्तेकादश यदक्रन्दस्त्रयोदश समिद्धो अद्य द्वा-  
दश केतुं कण्वंश्चतुर्विंशतिश्चत्वारः षष्टिः ॥४॥६०॥२९॥

देव सवितः षट् तपसे कोलालर्धं षोडश द्वौ द्वाविंशतिः  
॥२॥२२॥३०॥

सहस्रशीर्षा षोडशाद्वयः संभृतः षट् द्वौ द्वाविंशतिः ॥२॥  
२२॥३१॥

तदेव सप्त वेनस्तन्नव द्वौ षोडशः ॥२॥१६॥३२॥

अस्याजरासः सप्तदशापश्चिद्द्वादश प्र बावृज एकादश  
इन्द्रवायुं प्रवीरया पञ्चदशाकावानस्त्रयोदश सप्त सप्तनवतिः ॥  
७॥४७॥३३॥

यज्जाग्रतः पञ्चनद्यः सोमोऽधेनुमाह्वयो न पूषं तव द-  
शका न तदष्टौ षडष्टापञ्चाशत् ॥ ६॥५८॥३४॥

अपेतो दशापाद्यं द्वादश द्वौ द्वाविंशतिः ॥२॥३२॥३५॥  
ऋचं वाच ठं षोडश द्वौः शान्तिरष्टौ द्वौ चतुर्विंश-  
तिः ॥२॥२४३६॥

देवस्य त्वादश यमाय त्रैकादश द्वावेकविंशतिः ॥  
२॥२१॥३७॥

देवस्य त्वाष्टौ यमाय त्वा क्षत्रस्य त्वा दशको त्रयोऽष्टावि-  
ंशतिः ॥३॥२८॥३८॥

स्वाहा प्राणेभ्यः षडुग्रश्च सप्त द्वौ त्रयोदश ॥२॥१३॥३९॥  
ईशा वास्यमष्टा बन्धं तमो नव द्वौ सप्तदश ॥२॥१७॥४०॥  
॥१६७५॥३०३॥ ४०॥

दशाध्याये समारव्याता अनुवाकाः सर्वसंख्यया  
शतं दशानुवाकाश्च नवान्ये च मनीषिभिः १  
सप्तषष्टिश्चाग्नेो ज्ञेयाः सौत्र द्वाविंशस्तथा  
अथ एकोनपञ्चाशन्पञ्चविंशतृक्संस्मृताः २  
श्रुक्रियेषु तु विज्ञेया एकादश मनीषिभिः

एकीकृत्यसमाख्यातं त्रिशतं अधिकंमतम् त्रिशतं अधिकंमतम् ३  
इत्यनुवाकाध्यायः

आदि के दश अध्यायों में ११४ अनुवाक हैं ॥१॥ और आ-  
ग्निक आठ अध्यायों में ६७। सौत्र के तीनि अध्यायों में २२। तथा  
आश्वमेधिक चारि अध्यायों में ४६। खिल के दश अध्यायों में ३५  
॥२॥ शुक्ल के पाँच अध्यायों में ११। समस्त संहिता के मिलि-  
कर ३०३ अनुवाक हैं ३०३ अनुवाक हैं ॥

इति वेदार्थप्रदीपे गिरिप्रसादरचिते अनुवाकाध्यायव्या-  
ख्या समाप्ताः ॥

माधवे विमले पक्षे पञ्चम्या गुरुवासरे ।  
व्योमरामाङ्कुभूवर्षे वेदभाष्यः समागमत् ॥१॥  
गिरिप्रसादपुत्रेण गरुडध्वजवर्मणा ।  
स्वपित्राल्लब्धविद्येन लिखितो वेददीपकः ॥२॥  
श्रीवेदार्थप्रदीपेन तमो हार्द निवारयन् ।  
पुमार्थश्चतुरोदेयात्कृष्णः स्वानन्ददायकः ॥३॥

यं ब्रह्मावरुणेन्द्ररुद्रमरुतस्तुन्वनि दिव्यैः सत्तवे-  
र्वेदैः साङ्ग्यदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः ॥  
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो  
यस्यानं नविदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥४॥

परंब्रह्म परमात्मा सच्चिदानन्द की प्रेरणा से मैंने श्री शुक्लयजुर्वेद की माध्यन्दिनीया वाजसनेयसर्वाहिता के श्रीवेदार्थ प्रदीप गिरिधरभाष्य कहिने का विचार करि विक्रमसेन के सम्वत् १८२६ शालिवाहन के शाके १७८१ आश्विनशुक्ला नवमी ६ सुरगुरुवासर विजय दशमी को आरम्भ किया परन्तु उस दिन मुहूर्त मात्र करिके सम्वत् १८२७ शाके १७८२ वैशाखशुक्ला पञ्चमी सुरगुरुवासर में मन्त्रार्थ लिखा और उसी अविनाशी की कृपाकटाक्ष से सम्वत् १८२८ शाके १७८४ पौष कृष्ण सप्तमी ० रविवासर को इखे लादि खं ब्रह्मान्त मन्त्रों की आज्ञा समाप्त हुई ॥

यथापि आश्विनशुक्ला विजयदशमी से पौष कृष्ण सप्तमी पर्यन्त ११६ दिवस होते हैं तथापि ५११ दिवसों में (दुसरे क्रम में कि दश अध्याय २०१ दिवस में और आत्म १५३ मौत्र ३३ अथ २६ गिदन्त ७२ श्रुत २७ दिवस में) भाष्य लिखा गया प्रोष ६५५ दिवस सांसारिक व्यवहार में व्यतीत हुए अवभैग संस्कृत में भाष्य संग्रह करने और पुनः ब्रज भाषा में भी दूसरी बार लिखने का विचार है सो भी निःसन्देह उसी अन्तर्यामी के अनुग्रह और वेदिकों की आशिषा से पूरा होगा हे विद्वानओ जहां कहीं भूलचूक हो तहां कृपा करिके शोधोगे ओम् नमः ॥ इत्युपसंहारः ॥

अथाशीः ॥ हे भगवन् हे वेदपुरुष धन्य है धन्य है धन्य है तू मर्तवा जययुक्त हो तूने मेरे छोटे छोटे हाथों से बहुत बड़ा काम करा दिया यह तेरी ही सामर्थ्य है हे स्वामिन् जो कुछ तूने देखा है तैसे धन्यवादपूर्वक स्वीकार करता हूं तथा जो कुछ देखेगा उसे मैंने चटा-

कर लूंगा और धन्य कहूंगा हे ईश यह माँगता हूँ कि मेरे मातापिता गुरु और ज्येष्ठ भ्राता की स्वर्ग में पदवी तथा मेरी वेद में श्रद्धा वढ़ाई जावे किंच जैसा महाराजा सम्राट् मनु रामचन्द्र युधिष्ठिर परीक्षित के समय में वेद का प्रचार था तैसा इस समय में कराया जावे हे सेखे मेरे वंश में जे हैं और जे उत्पन्न होंवे तिन्हें वेद पारंगी कीजियो और तुरु तेज पुञ्ज से ही यह प्रदीप हुआ है सो इस की दिन-दिन ज्योति तथा जे इसे अनुसरें उन्हों की विद्याशक्ति वढ़ाई मे हमारे समस्त अपराध क्षमा किये जावे और हमारी सेवा स्वीकार हो क्यों कि हम तेरे सेवक हैं तथा तू हमारा स्वामी है हरिः ओम् तत्सत्

ओम् तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्तादुक्कमुच्चरत् । पश्येम शरदः शान्तं जीवेम शरदः शान्तं शृणुयाम शरदः शान्तं प्रब्रूयाम शरदः शान्तमदीनाः स्याम शरदः शान्तं भूयश्च शरदः शान्ताम् ओम् तत्सत्

श्रीमच्छुक्लयजुषो माध्यन्दिनीयशारदाध्येत श्रीसोमवर्धं शोधय व्याघ्रपादान्वयं विश्वामित्रपुराधिप कुरुकुलकमलकमलाकरपादव श्रीभज्जय किशोरदेववर्मोत्तमजरोक्मिणोय श्रीगिरिधरदेववर्मणस्तस्यानुज गिरिप्रसादवर्मरचितः श्रीवेदार्थप्रदीपको गिरिधरभाष्यः समाप्तिमगात् श्रीस्तु कल्याणमस्तु ओम् तत्सत् श्रीबालकृष्णार्पणमस्तु श्रीविश्वामित्रपुरीयनवलदुर्गस्थव्याघ्रपादप्रकाशकाशमयन्त्रालये मुद्रितमेतन्मङ्गलम् विक्रमाब्दाः १८३१ शकाब्दाः १९८५ माघशुक्ला ५ श्रीपञ्चमीसुरगुरुवासरः ओम् शान्तिः ओम् शान्तिः ओम् शान्तिः

हरिःउम

भगवद्वचन से मैंने श्रीवेदार्थप्रदीपगिरिधरभाष्य लिखा और प्रतिदिन के लेख की समाप्ति पर तिथिवार भी लिखना गया परं तु भूल से भाष्य के साथ ही मुद्रित न हुआ सो विद्वानों के विमोक्षार्थ उस की प्रति मुद्रित होती है इस में मूलशब्द से काण्डी और सूत्र से सूत्रार्थ तथा भाष्य से मन्त्रार्थ लेना इस से भली भाँति करि ज्ञात होगा कि असुक दिवस में इतना लिखा गया ॥

संहिता अध्याय	संवत् १८२० वै	२० १५ भाष्य	४ बुध	३० २० भाष्य	१५ बुध
१ काण्डी १० मूल	शारव शुक्ला ५	२० १६ भाष्य	१० गुरु	दिवस २१	
१० १ भाष्य	चामी ५ गुरु	२० १८ मूल	१२ भृगु	३० ३० भाष्य	पौष कृ० २ शनि
१० १ भाष्य	वे० सु० ६ भृगु	२० १८ भाष्य	१३ शनि	३० ३४ भाष्य	३ रवि
१० १ भाष्य	वे० सु० ७ शनि	२० २१ भाष्य	१४ रवि	३० ३७ मूल	४ भौम
१० १ भाष्य	वे० सु० ८ रवि	२० २४ मूल	१५ सोम	३० ४० भाष्य	५ भौम
१० २ भाष्य	४ सोम	दिवस २२		३० ४३ मूल	६ बुध
१० ४ मूल	१० भौम	२० २६ मूल	आषाढ कृ० २ बुध	३० ४४ भाष्य	७ गुरु
१० ६ भाष्य	११ बुध	२० २८ भाष्य	३ गुरु	३० ४६ भाष्य	८ भृगु
१० ८ भाष्य	१२ गुरु	दिवस २		३० ४८ भाष्य	९ शनि
१० १० भाष्य	१३ भृगु	२० २८ भाष्य	मार्गशीर्ष कृ० गुरु	३० ५१ भाष्य	११ रवि
१० १२ भाष्य	१४ शनि	२० ३१ भाष्य	४ शनि	३० ५५ भाष्य	१२ सोम
१० १४ भाष्य	१५ रवि	२० ३४ भाष्य	६ सोम	३० ५७ भाष्य	१३ भौम
दिवस ११		२० ३४ मूल	७ भौम	३० ५९ भाष्य	१४ बुध
१० १६ मूल	पौष कृ० २ भौम	३० १ मूल	८ बुध	३० ६१ मूल	३० गुरु
१० १६ भाष्य	३ बुध	३० ३ भाष्य	४ गुरु	३० ६२ भाष्य	पौष सु० २ शनि
१० १८ भाष्य	५ गुरु	३० ५ भाष्य	१२ रवि	४० १ सूत्र	२ रवि
१० २० भाष्य	६ भृगु	३० ७ भाष्य	१३ सोम	४० २ सूत्र	३ भौम
१० २२ मूल	७ शनि	३० ८ भाष्य	१४ सोम	४० २ भाष्य	४ भौम
१० २२ भाष्य	१० भौम	३० १० मूल	३० बुध	४० ८ मूल	१२ पौष
१० २६ मूल	१० बुध	३० ११ भाष्य	मार्गशु० ३ भृगु	४० ४ सूत्र	१ गुरु
१० २८ भाष्य	११ गुरु	३० १४ मूल	४ शनि	४० ६ मूल	१० रवि
१० ३१ भाष्य	१२ भृगु	३० १५ भाष्य	५ रवि	४० ७ मूल	११ सोम
२० २ मूल	शुक्ला २ बुध	३० १६ भाष्य	८ बुध	४० १० मूल	१३ बुध
२० ३ भाष्य	३ गुरु	३० १८ मूल	९ गुरु	४० ११ सूत्र	१४ गुरु
२० ६ मूल	४ भृगु	३० १९ सूत्र	१० भृगु	४० १२ भाष्य	१५ भृगु
२० ७ भाष्य	५ शनि	३० २० भाष्य	११ शनि	दिवस २४	
२० ८ भाष्य	६ रवि	३० २२ मूल	१२ रवि	४० १५ मूल	माघ कृ० २ रवि
२० १० भाष्य	७ सोम	३० २४ भाष्य	१३ सोम	४० १६ मूल	४ भौम
२० १३ भाष्य	८ भौम	३० २६ भाष्य	१४ भौम	४० १८ सूत्र	५ बुध

+ अथ मन्त्रः यहाँ पर्यन्त लिखा गया

क का० ४० २० २० १० गदा तक लिखा गया

\* का० ई. २०८० यहाँ पर्यन्त भाष्य लिखे। ५ का० ०८.७.१० नया व श्रुति: १२.५.१.१.२.  
॥ का० ०२५.२.४.

2.

++ तदभिधायकामन्त्रः

पक्र. २५००२३ क्र. १६३७४  
कै. क. नौ. न. न.



१४-२३-भाष्य+	५ गुरु १६-६१-मूल	१४ गुरु १८-५४-मूल	४ बुध
१४-२४-भाष्य+	६ भृगु १६-६६-भाष्य	३० भृगु १८-५६-मूल	१० गुरु
१४-२६-मूल	७ शनि १७-३-मूल	शु० ४ सोम १८-६३-भाष्य	११ भृगु
१४-२८-भाष्य+	८ रवि १७-८-मूल	५ भौम १८-७२-मूल	१२ शनि
१४-३०-मूल	९ सोम १७-१३-मूल	६ बुध १८-७७-भाष्य	चेन्नशुदी १३ रवि
१४-३१-भाष्य	११ बुध १७-१७-मूल	७ गुरु १८-८२-भाष्य	संवत् १८२६-अगस्तमास कृष्ण
१४-४-मूल	१२ गुरु १७-१८-मूल	८ भृगु	
१४-५-मूल	१३ भृगु १७-२५-मूल	९ शनि १८-१-३-मूल	१३ भौम
१४-६-भाष्य+	१४ शनि १७-३०-मूल	फाल० क० २ सोम	तिवस २१
१४-१०-मूल	शु० २ भौम १७-३२-भाष्य	३ भौम १८-७-मूल	विशा० क० २ गुरु
१४-१५-मूल	३ बुध १७-३६-मूल	६ भृगु १८-१३-भाष्य+	३ भृगु
१४-२३-मूल	४ गुरु १७-४३-मूल	७ शनि १८-२५-मूल	४ शनि
१४-२८-मूल	५ भृगु १७-५०-मूल	८ रवि १८-३२-मूल	५ रवि
१४-३४-भाष्य+	७ रवि १७-५७-मूल	९ सोम १८-३८-मूल	शु० २ गुरु
१४-४०-मूल	८ सोम १७-६०-मूल	११ भौम १८-४७-मूल	३ भृगु
दिवस १७	१७-६२-मूल	१३ गुरु १८-५०-मूल	४ शनि
१४-४०-भाष्य++	पौषशु० ४ रवि १७-६५-मूल	३० शनि १८-५७-मूल	७ भौम
१४-४१-मूल	६ भौम १७-७०-मूल	शु० ११ बुध १८-६३-मूल	८ बुध
१४-४४-मूल	७ बुध १७-७८-मूल	१२ गुरु १८-७१-मूल	९ भृगु
१४-४५-मूल	८ गुरु दिवस २७	१४-७५-मूल	१० शनि
१४-५४-मूल	९ भृगु १७-८०-मूल	चेन्नक० ३ बुध १८-८३-मूल	११ रवि
१४-६३-मूल	१० शनि १७-८७-मूल	४ गुरु १८-८९-मूल	१२ भौम
१४-६५-भाष्य	११ रवि १७-८८-मूल	५ भृगु २०-१-मूल	१४ बुध
१६-३-मूल	१२ सोम १७-८९-भाष्य++	६ शनि दिवस १४	
१६-८-भाष्य	१३ भौम १७-९३-भाष्य+	८ सोम २०-१-मूल	ज्येष्ठक० ३ शनि
१६-१६-भाष्य	१४ बुध १७-९७-मूल	९ भौम २०-१४-मूल	७ बुध
दिवस १०	१८-१-मूल	१० बुध २०-२१-मूल	८ गुरु
१६-२०-मूल	माघक० ३ रवि १८-५-मूल	११ गुरु २०-३०-मूल	९ भृगु
१६-२२-मूल	४ सोम १८-१३-मूल	१२ भृगु २०-३६-मूल	१० शनि
१६-२४-मूल	५ भौम १८-२८-मूल	१३ शनि २०-४७-मूल	११ रवि
१६-२५-मूल	६ बुध १८-३१-मूल	शु० २ भौम १८-२४-२०-५३-मूल	१२ सोम
१६-३५-मूल	१० रवि १८-३३-मूल	३ बुध २०-६१-मूल	१३ भौम
१६-४१-मूल	११ सोम १८-३८-मूल	६ रवि २०-७८-मूल	१४ बुध
१६-४६-भाष्य+	१२ भौम १८-४१-मूल	७ सोम २०-८७-मूल	३ गुरु
१६-५२-मूल	१३ बुध १८-४८-मूल	८ भौम २१-५-मूल	शु० २ शनि

शान्ति

५

२१-१३ मूल	४ सोम	२५-१६ मूल	११ सोम	२६-४३ मूल	१२ बुध
२१-३० मूल	५ भौम	२५-२३ भाष्य	१२ भौम	२६-४७ भाष्य	१३ गुरु
२१-४० मूल	६ बुध	२५-२४ मूल	१३ बुध	२६-५३ मूल	१४ भृगु
२१-५६ मूल	७ गुरु	२५-३६ भाष्य	१४ गुरु	२६-५८ मूल	१५ शनि
२१-६७ भाष्य	८ भृगु	२५-४७ भाष्य	ज्येष्ठ शु० १५ भृगु	दिवस २७	
२१-७५ मूल	९ शनि	संवत् १८२८ अश्वमेधसमाप्त दुष्प्रा	२६-६० भाष्य	श्रा० क० २ सोम	
२१-६९ भाष्य	ज्येष्ठ शु० १० रवि	दिवस १०	३०-१२ भाष्य	३ भौम	
संवत् १८२८ सोम समाप्त दुष्प्रा		द्वितीय भाद्रपद शुक्ला १२ चन्द्र	३०-२२ भाष्य	४ बुध	
दिवस १८		वार संवत् १८२८ से मेने कि सी-कि	३१-३ भाष्य	५ गुरु	
		सी दिन अश्वमेध पर भाष्य किया	३१-२० भाष्य	६ भृगु	
		इस हेतु से सोम के समीप ही समाप्त दुष्प्रा	३१-१६ भाष्य	७ शनि	
२२-१-५ सूत्र	द्विभाष्य १२ सोम		३१-२२ भाष्य	८ रवि	
२२-६ भाष्य	१३ भौम		३१-२२ भाष्य	१० सोम	
२२-१५ मूल	१५ गुरु	२६-१-८ मूल	आषाढ क० २ रवि	१० भौम	
दिवस ३		२६-२० भाष्य	४ सोम	१२ गुरु	
२२-१६ भाष्य +	आषाढ क० ५ भौम	२६-२६ भाष्य	५ भौम	१३ भृगु	
२२-२० सूत्र	७ गुरु	२७-६ मूल	६ बुध	१४ शनि	
२२-३४ भाष्य	७ भृगु	२७-१५ मूल	७ गुरु	२० रवि	
२३-७ भाष्य	८ शनि	२७-२३ मूल	८ भृगु	२० भौम	
२३-१३ भाष्य	९ रवि	२७-२६ भाष्य	९ शनि	१० बुध	
दिवस ५		२७-३४ भाष्य	१० रवि	११ गुरु	
२३-१७ भाष्य	माघ क० ७ गुरु	२७-३४ मूल	११ सोम	१२ भृगु	
दिवस १		२७-४३ भाष्य	१२ भौम	६ शनि	
२३-२१ भाष्य	वै० क० १२ शनि १८२८	२७-४५ भाष्य	१३ बुध	७ रवि	
२३-३२ भाष्य	१३ रवि	२८-५ भाष्य	१४ गुरु	८ सोम	
२३-३८ भाष्य	३० भौम	२८-११ भाष्य	३० भृगु	९ भौम	
२३-४४ भाष्य	शु० ५ रवि	२८-१६ मूल	शु० २ रवि	१० बुध	
२३-५० भाष्य	६ सोम	२८-२६ भाष्य	३ सोम	११ गुरु	
२३-५८ भाष्य	८ गुरु	२८-३७ मूल	४ सोम	१२ भृगु	
२३-६१ भाष्य	१३ भौम	२८-२ मूल	५ बुध	१३ शनि	
दिवस ७		२८-८ मूल	५ गुरु	१५ रवि	
२४-१-४० भाष्य	ज्येष्ठ क० २ भृगु	२८-१५ मूल	६ भृगु		
२४-२ मूल	४ रवि	२८-२१ मूल	७ शनि	३३-६३ भाष्य	भाद्र क० २ भौम
२४-४ मूल	५ सोम	२८-२६ मूल	८ रवि	३३-७३ भाष्य	३ बुध
२४-७ मूल	६ भौम	२८-३१ मूल	९ सोम	३४-३ भाष्य	१२ भृगु
२४-८ भाष्य	शु० ३ रवि	२८-३८ मूल	१० भौम	३४-८ मूल	१३ शनि

## आन्धिक

३४. १४. मूल	१४ रवि	३६. १-१०. भाष्य	भा. क. ४ गुरु १४. २४	३४. ५. मूल	आश्वि. शु. २ भृगु
३४. १६. मूल	३० सोम	३६. २४. भाष्य	भा. क. ५ भृगु	३४. ७. सूत्र	आ. शु. ३ शनि
३४. २५. मूल	शु. २ गुरु	३७. ६. मूल	६ शनि	३४. १३. भाष्य	आ. शु. ४ रवि
३४. ३२. मूल	३ भृगु	३७. ४. मूल	७ रवि	संवत् १४२४ कर्मकाण्ड समाप्त दुष्प्रा दिवस ८	
३४. ४०. भाष्य	४ शनि	३७. ११. मूल	८ सोम		
३४. ४६. भाष्य	५ रवि	३७. १४. मूल	९ भौम	४०. १. भाष्य पौ. क. २ सोम १४. २४	
३४. ५०. भाष्य	६ सोम	३७. १८. मूल	१० बुध		
३४. ५४. मूल	८ भौम	३७. २१. भाष्य	११ गुरु	४०. ३. भाष्य	पौ. क. ३ भौम
३४. ५८. भाष्य	९ बुध	३८. ३. भाष्य	माद्र. शु. १२ शनि	४०. ५. भाष्य	पौ. क. ४ बुध
दिवस १३		३८. ६. मूल	१३ रवि	४०. ८. भाष्य	पौ. क. ४ गुरु
३५. १. सूत्र	आश्वि. क. १० भृगु	३८. ७. भाष्य	१४ सोम	४०. १४. भाष्य	पौ. क. ५ भृगु
३५. ६. भाष्य	११ शनि	३८. ११. मूल	१५ भौम	४०. १६. भाष्य	पौ. क. ६ शनि
३५. १२. मूल	१२ रवि	दिवस १२		४०. १७. भाष्य	पौ. क. ७ रवि
३५. १८. भाष्य	१३ सोम	३८. १३. भाष्य	आ. क. ३ भृगु	संवत् १४२४ ज्ञानकाण्ड समाप्त दुष्प्रा शेषर संहिता भी पूर्ण हुई दिवस ७	
३५. १४. भाष्य	१४ भौम	३८. १६. मूल	५ शनि		
३५. २२. भाष्य	आश्वि. क. ३ बुध	३८. १८. भाष्य	६ सोम	इत्याहिकं समाप्तम् उम्शान्तिः	
संवत् १४२४ खिल समाप्त दुष्प्रा		३८. २५. मूल	७ भौम		
दिवस ६		३८. २८. भाष्य	८ बुध		

## सूचना

विद्वानों को उचित है कि मुरझा लेखनी से भाष्य में चिन्ह देकर आर्विल पर आन्धिक में से तिथिवार उठाकर लिखें दूस लिखने से भाष्य बहुत कुछ प्रीति हो जावेगा और दुष्टा व लोकन में अतिशयेन चिन प्रसन्न होगा तथा पाठ के साथ में ही प्रतिदिन का लेख अकट होगा ॥

पाण्डव गुरुद्वयजवः

# हरिः श्रीम्

श्रीवेदार्थप्रदीपगिरिधरभाष्यस्य शुद्धिपत्रम्  
श्रीवेदार्थप्रदीपगिरिधरभाष्य के पढ़ने वालों को उचित है कि पढ़ने से पहिले इस शुद्धिपत्र  
से उसे शुद्ध कर लें वे

पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१६	भाष्या	दीपो	१६	६	मभि	माभि
३	२१	षड्गों	षड्गों .	१७	१३	सावित्री	सावित्री
४	४	भारथा	भारता	१७	१७	वैश्वदेवी	वैश्वदेवी
७	३	द्विरूपं	द्विरूपं	१८	५	ज्ञ	ज्ञो
७	८	ऋषि	ऋषि	१८	१८	गायत्री	गायत्री
८	१	मन्त्रा एत	मन्त्राणा	१८	१८	पाण्डु	पाण्डु
८	६	प्राजापत्या	प्राजापत्यं	२०	५	ऐन्द्री	ऐन्द्री
८	८	सूर्यो	सूर्यो	२०	१०	ब्रह्म	ब्रह्म
८	२०	घर्मो	घर्मोऽसि	२२	१४	विष्णोर्लि	विष्णोर्लि
८	११	वैष्णवे	वैष्णवेऽग्ने	२३	१	वीरप्स्व	वीरप्स्व
८	११	देवर्षे	देवर्षे	२३	७	इन्द्र	इन्द्र
८	१६	यजुरन्ताग्नेः	यजुरन्ताग्नेः	२६	१२	मा	द्वितीया जगती
८	२१	यवमान्	यवमान्	२७	१६	गृत्समद	गृत्समदस्त्रिष्टुभ
१०	२	लिङ्गोक्ते	लिङ्गोक्तं	२८	१६	नाष्टि	सानाष्टि
१०	३	देवत्या	देवत्या	३०	२०	त्रातार	त्रातार
१०	४	॥७॥४॥	॥७॥म	३१	२	यः इन्द्र-देवत्याति	यः इन्द्र इन्द्र-देवत्या
१०	६	देवर्षे	देवर्षे	३३	१५	माहेन्द्री-ऐन्द्री-हती	माहेन्द्री-ऐन्द्री-हती
११	२	वुपवत्यो	वुपवत्या	३४	१०	शुक्र	शुक्रः
११	४	देवताश्च	देवताश्च	३६	५	था	या
११	१८	रन्वा	रन्वा	३६	७	दशाग्निष्टोमिके	दशाग्निष्टोमिके
११	२०	स्पत्यः	स्पत्यः	३६	१३	हे	हे
१२	१	नुष्टुवेः	नुष्टुब	३६	२०	इन्द्रोहि	इन्द्रे हि
१२	६	एतदा-उषिह	एतदौद्या-उषिह	३७	१०	इन्द्र	इन्द्र
१२	१४	मनुष्टुमृ	मनुष्टुमृ	३८	२०	द्य	द्य
१२	१५	यो	योः	४०	८	कश्च	काश्च
१२	१६	सुसस्या	सुसस्याः	४१	११	मन्त्रवर्णिको	मान्ववर्णिको
१२	१७	स्य	स्व	४२	२	नेमिनिकादिषु	नेमिनिकादिषु सर्वेषु
१२	१८	आधिदे	अधिदे	४२	१४	गुन्यकं	गुन्यकी
१२	२१	न्सोम	न्सोम्य	४२	२०	जो जो	जो
१३	१५	याग्नि	यावग्नी	४६	८	स्मताः	स्मताः
१४	२	वक्षं	वक्ष	४६	१६	मत्प	मत्प
१४	१८	हं	हं सोम्यर्षे	४८	४	पनायते-कन्दामि	पनायते-कन्दामि
१५	१३	दानां	दानं	५१	६	माध्या	माध्या
१६	२	त्वमङ्ग	त्वमङ्ग	५२	१७	विना नीति	विना नीति

पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५४	१८	कि	किं द्यु (स्वर्ग) से	५५	४	भुवन	भुव
५८	८	यहां	यहां ध्रुवाः (शाश्वतिकी)	५५	७	को	के अर्थ
६२	१	२३	२३	१०१	८	समिदरसीति	समिहसीति
६३	११	बोधमा	बोधमात्र	१०१	१५	+ पुत्र	+ पुर
६४	१७	र्ष	र्ष	१०१	१८	प्रस्तरण	प्रस्तर
६५	५	यो	यो	१०६	४	॥१०॥	॥१०॥ + म-वः ॥ अ० ॥
६६	१३	( )	(हलसा)				उ-हा ॥ इ० ॥ १०॥
७०	१३	का० २.३.३२.	का० २.३.३१.३२.सम-	१०६	१३	घं	ध
		- के अन्नर्गर्भ	प्रमाण अपक्षरिताग्र	१०७	४	प्रश्नाति	प्रश्नाति
		पत्र	अनन्तर्गर्भ	१०७	१०	२८	१८
७०	१६	हविग्रहण	हविग्रहणी	१०८	११	सविता	सविता देवता
७२	१४	त्य	त्या	१०८	१२	रार्थः ॥	रार्थः तथास्तु ॥
७३	७	उलूल	उलूलवल	१०८	८	तः ॥	तः इयः विशेषः ॥
७३	१५	अग्नि	अग्नि में	११०	४	करे ॥	करता है
७३	२१	अपां प्राणयनका	+	११०	६	करे	करते हैं
		ल में खोलनेवाला		११०	८	करूंगा	करता है
७४	१२	नाद्या	नादद्या	१११	४	वात्	त्वात्
७५	५		का० २.४.१५.	१११	१४	हेग.	हेग करिके
७८	१	पहिली	पहिला	११३	४	प्रियत्व	प्रियत्व से
७८	८	उपवेश	उपवेश	११४	८	अध्यायो	अध्यायो
७८	१४	अन्तरि	अन्तरिक्ष	११४	१८	पूर्वक	पूर्वक एकत्र
७८	१७	की	की	११५	२	॥२१॥	॥२१॥ + वे-याः ॥ अ० ॥
८१	४	पवनात्मिका	पर्वतात्मिका				दे-धाः ॥ इ० ॥ २१॥
८१	१३	धिषणा	धिषणा (पेषण)	११८	४	दीरवता	देरवता
८५	१०	अर्थ	अर्थ प्रवृत्त	११८	१४	आकाश	स्वर्ग
८५	१२	पेषण	पेषण	११८	१७	वर्द युक्त	वर्दयुक्त
८५	१५	पृथिवी	पृथिवीरूपा	१२२	२	रेखा के	रेखा से
८०	५	पर्य	पर्य	१२२	२०	रवाते हुए	रवाते हुए + यथाभाग
८१	३	असर	असुर				माशिषरित्येवैतद्दे-
८१	७	दध्यावती	दध्यादिवती				ति २.४.२.२२. श्रुतिः ॥
८१	१४	अत्रेय	अत्रेय	१२३	१४	हेतु	हेतु भूत
८२	१८	हवणि	हवणि का	१२४	१	तुम्हारे विचार	तुम्हारे अर्थ विद्यमान
८२	२०	संमाजन	संमार्जन			से देवें ॥	से देवें ॥ विद्यमान धन
८४	१३	उत्तम	उत्तम				से हयलोकां करि दात-
८५	१५	करे ॥	करे ॥ प्राजापत्यापङ्क्तिः				व्य है ॥
			रायः देवता	१२५	२०	क्रमेण	क्रमेण
८६	१६	पुमार्थी	पुमर्थी	१३३	४	सामान	समान
८८	५	दर्भ	दर्भ तू	१३४	१७	तैसे	तैसे यह
८८	२०	स्वास्था	स्वासस्था	१३५	४	भारद्वाज	भारद्वाज

# शुद्धिपत्रम्

पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४१	८	सर्वत	गार्हपत्य को	१७५	१३	की बराबर	की संमित
१४३	२०	कक्षा	कक्षी	१७६	१५	की	को
१४४	१८	हे आने तेरे	अग्नि के	१७६	१६	यज्ञ	यज्ञ की सिद्धि
१४७	६	ध्याय	ध्यान	१७६	१३	गमन	गन्
१४७	१२	नष्टान	नुष्टान	१८०	१७	को	का
१४७	१५	मण्ड	मण्डल	१८१	१	४०	४० इस से होमें ॥
१४८	१०	को	की	१८१	१४	स्स	स्वे
१४८	३	होंज ॥	होंज । तथा हिरण्यादि	१८२	६	रूपों	रूपत्व
			पुष्टिकरिबहुमुल्याहं	१८२	२१	दक्षिण	दक्षिणपाद
			रण्यादियुक्तहोंज ॥	१८३	८	की	की
१४८	११	मेरी प्रजापुत्रादिका	मेरे पशुओं	१८३	११	हो (जा)	होने के लिये जा ।
१५०	५	हमारे	हमारे अर्थ वा	१८३	१८	१६	१६ अभिमन्त्रण के अन-
१५२	१७	रेकेण	रिक्तेन				न्तर उत्तर में लार्द सोमक
१५४	४	रत्य	स्त्य				यणी को अध्वर्युयजमाना
१५६	२	प्रसाद	प्रसाद से				अनुगमन करते हैं ॥
१५६	१४	यम	मय	१८४	११	चलता	मराता
१६६	१४	का० ७० १० १६	का० ७० १० ३६	१८४	१२	है	है + पृथिव्या लेश मूर्धा
१६६	२०	में	को				यह वयजनमिति ।
१६७	२	क्यों करिके	क्या करते	१८४	२०	कोदे	को यजमान के अर्थ देवे
१६८	४	शाला	प्राचीन शाला	१८४	२१	तेरे	तेरे में
१६८	७	को	के अर्थ	१८६	१२	अधिपत्य	आधिपत्य
१६८	१५	मुक्तो	मेरे अर्थ	१८७	१७	कीजिये	करता
१७०	१०	सार्थ	शक्त	१८७	१४	२०	२० कोणेशों की
१७१	४	दे०	दे० + स्वाहाशब्दस्य नि	१८८	२	लेती (जीती) है	लेवे (जीवे)
			पातत्वेना ने कार्यत्वाद्	१८८	१०	वोले	बुलवावे
			चिता अर्था ३१३२४	१८८	४	कहे - वकरी	कहवावे - अजे
			२८ ब्राह्मणानुसारेण ग्रा	१८८	३	प्रीतिरूप	प्रीतियुक्त
			ह्या ॥	१८८	५	को	की
१७१	१२	यह सिद्ध हुआ	एवं सिद्ध इति शेष	१८८	६	की	करिये है
१७२	३	करूं	करूं गा	१८८	२१	जिसका	जिस के
१७२	५	करें	करता है	१८९	१०	३	३ उदायुषति
१७२	७	२	विद्याधारणशक्तिमन्	१८९	११	को	को सर्वत
			में होती है २	१८९	१३	पंटे - को	पटवावे - का
१७३	२	और	वा	१८९	१५	आपने किये यम	आपनी आज्ञा
१७३	१२	तेसे ही	तेसी	१८९	३	के	
१७३	१७	अरुक्तामयो	अरुक्तामं वै	१८९	८	के	
१७४	१३	को	का	१८९	५	अश्वपार चदि	अश्वों की तु चलता है
१७४	२१	को	का	१८९	१५	प्रति - स्वे	को पटवावे
१७५	७	का०	का० ७	१८९	१६	ही	हो मांम

पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१८४	२१	चार) मतदीर्घयो	(मर्वतः चलते ह्यतस्कार विशेष) न जानें				रतिसे देवता पाँचों में ज्यों से होमें॥
१८५	४	घर-तिस-घर	घरों- तिन-घरों	२१३	१२	में हैं	से ही हैं
१८७	१३	करें	करते हैं	२१३	१६	गार्ग	मार्ग
१८७	१६	का	को	२१४	८	जैसे	जैसे दक्षिणशकरके
१८८	१७	ध्य के आठ	ध्यष्टि के	२१४	१०	हो	होओ
१८८	१	नों का	सका	२१५	१	है	है देवश्रुती
१८८	१२	४	४ + तथा च श्रुतिः ३४	२१५	८	रानेवाले-होनेवाले	रों-होओ
			११२ सा यज्ञायत्रीष्ये	२१५	२०	हुए	ओं के
			नो भूत्वा दिवः सोममा-	२१६	८	दृष्टा	दृष्टे
			हरदिति	२१६	११	कहें	कहते हैं
१८८	१८	हैं	है + तदाह तितिरिः। या-	२१७	१२	करिये है	करिये हैं सबों करि दु-
			वद्विर्वै राजानुचौरेगच्छ-				ति प्रोष-
			ति सर्वेभ्योवै तेभ्यः श्रुतिः	२१८	६	प्रति	वर्ति
			ध्य क्रियते छन्दसिख-	२१८	१२	रराटियों के प्रान्त	रराटी के प्रान्तों
			लुवै सोमस्य राज्ञोऽनुच-	२१८	१०	देवता में	देवता की आज्ञा में
			राणीति।	२२०	२०	प्रतिक्ष	प्रत्यक्ष है
२००	१४	१०२२	१०२२ उर्वशी वाऽऽपस-	२२०	२१	बराबर	सदृश
			राः पुरुरवाः पतिरथय	२२१	४	फेंता हूं	फेंकता हूं
			त्समान्मिथुनादजाय-	२२१	१५	१६ दूसरे यजमा-	दूसरे को। द्वादशाहादि
			त तदापुरिति।			नों में राजमानः	सत्रों में राजमानशत्रुघा-
२०१	७	हो	होओ			तीसरे यज्ञ के वि	ती॥२॥ तीसरे यजमानों
२०१	१३	हो	होओ			नाश करनेवाला	में राजमान यज्ञविनाश
२०१	२१	स्था	स्थान			राक्षसों का घाती	करनेवाले राक्षसों का घाती॥
२०२	२१	अज्य	आज्य	२२३	१०	की बराबर	की मात्र
२०३	२०	ही	होते	२२४	२१	करते हैं	किये गये
२०३	२१	हैं।	हो।	२२५	६	की	
२०६	४	तीव्रं	त्वषं	२२६	२	से	से कुटी
२०६	१५	द्व	द्वता	२२७	८	४	२४
२०८	३	को	के	२२७	१५	सदस	सद
२०८	१७	ति को	ति के अर्थ	२२४	११	स्तुति समेत	स्तोतु समेता
२१०	१६	नामा	नामा मध्य देश है	२३०	११	वर्ति	वर्ति पुरातन
२१०	१४	करें॥	करें॥ कैसे कि कोणसू-	२३०	१२	अर्ह	अहिः
			त्र प्रदेश करिके। तद्यथा	२३१	१	२१	२१०२२
			पहिले दक्षिण अंस फि-	२३२	१	आज्य	(दधिमिश्रित आज्य)
			रि उत्तर अंश फिरे दक्षि-	२३२	५	लीपक	संदीपक
			ण अंश फिरे उत्तर अंस	२३२	१२	होमें	होमी
			फिरे मध्य में। एवं पांच	२३२	२०	पड़े	पद वाँचे
			स्थानों में हिरण्यगर्भिक	२३३	१४	तब	ततः

शुद्धिपत्रम्

पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२३४	१५	* स्वस्याहा	स्वस्याहा स्वाहा	२५०	१६	कीमनमाकेसंगतहैं	किमन करि संगत हो
२३४	१६	आत्मीहीमेगहै	आत्मीय में हूं	२५०	१७	हैं।	हैं।
२३५	८	करै	करता हुआ	२५२	१०	अङ्गः अङ्गः	अङ्गः अङ्गः
२३५	९	करै	करता हुआ	२५३	१८	संवन्धि	संवन्धि
२३५	१४	के अर्थ	के लिये गमन करने की	२५५	१	अर्थ	अत एव
२३६	२	यूयों	यूयों	२५५	१५	वहते हुए	वहती हुई
२३६	३	यूयों	यूयों	२५६	१५	वसतीवरी	वसतीवरी को
२३६	४	पाया	पाया निकटों से परे	२५६	१६	हूं	हूं। कैसे अग्नि के कि
			न पाया				नहीं है पतित गृहजि-
२३६	५	में सेवन करूं	हम सेवन करें				स का तिस अविनश्व-
२३६	६	में	के अर्थ				र गृहके
२३६	७	न करै	करै	२५७	४	जो	जे
२३६	८	न करता	करता	२५७	५	है	है
२३६	१८	तेरी मत हिंसा करौ	को तू हिंसा न करि	२५७	६	जिस जल-सो	जिन जलों- ते
२३६	२०	मत हिंसा करौ	को हिंसा न करि	२५८	३	उत्कृष्ट	उत्कृष्ट करिके
२३७	५	को नहीं भेदता हूं	की पीडा न करनी चाहिये	२५८	६	आपत्य	आपत्य
२३७	६	२०२१	२०२१	२५८	७७	रषि	रमी
२४०	५	इस	ऐसे	२६०	१५	संग्राम- करै	संग्रामों- करता है
२४०	१०	ब्रह्मर्ष	ब्रह्मर्ष	२६०	१७	पहुंचे	पहुंचा है
२४०	१६	प्रति पढ़े	को पढ़ावे	२६०	१८	में स्थित	संस्थ में
२४१	५	प्रति पढ़े	को पढ़ावे	२६१	११	मे- करूं	को- करता हूं
२४१	७	वाप-आदि	व्याप्त-आदित्य	२६१	१३	करूं	करता हूं
२४३	८	हजियों	हजियों पाश करिके	२६१	१५	पढ़े	पढ़ावे
			बंधने में	२६२	३	से प्रीति	को तृप्त
२४३	१३	३८	२८	२६२	५	से प्रीति	को तृप्त
२४३	१४	को	के अर्थ	२६२	१३	४०८८	४०८८
२४४	१८	में पहुंचो-में पहुंचो	करि संगत हों- करि सं	२६३	१८	कैसी हो	रोगी हो
			गत हों	२६३	२०	करनेवाली	करनेवाली वा शिवा
२४४	२०	में पहुंचो	करि संगत हों				पुत्र देत्य को माने श
२४५	८	प्रति पढ़े	को पढ़ावे	२६४	५	तुम-दों-कायें	तु-दों-कायें
२४५	१२	से अपने को	के आत्मा करि	२६४	६	तुम	तुम
२४५	१३	अपने को	आत्मा करि	२६४	७	करे-दों	करे-दों
२४६	६	२	१	२६४	१७	अंत पढ़े	को पढ़ावे
२४६	४	१० प्रति पढ़े	को पढ़ावे	२६४	१६	नहीं कहना कहें	मे इन वाचाओं व निय
२४६	१२	आ	समीप में आ	२६६	६	वाप्यते	वाप्यते ७
२४६	१८	॥	॥ हैं	२६६	१७	२	२
२४८	४	में	में	२६६	१८	२	२
२४८	१२	संबंधियों	संबंधि वि श्रुतों				
२५०	१७	देवम	देवम				



शुद्धिपत्रम्

पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२८६ ८	अन्न	पाशुग्रहस्य	२८६ १४	विप्रट्	विप्रट्	
२८६ ४	उत्पत्त	अन्नां	२८७ १७	पटे	परवावै	
२८६ १४	तुम् परिधिका	उत्पत्ति	२८७ १८	प्राण करि	प्राणरूप करि	
२८६ २१	अभिचारिकं	तुम् परिधि में	२८८ १३	धनी यो	धवनीयो	
२८६ ३	अमर्द से माराहु	आभिचारिकं	२८८ ६	हैं	हुए	
२८६ ३	आ + यह	(अमर्द करिके) मार	२८८ ७	हैं	हुए	
२८६ ४	स्थाप	ते सन् + चौह	२८९ १६	मासो॥	मासो सहेने प्रसहना	
२८९ ८	ग्रह से	स्थापन			र्थस्य प्रयोगः प्रसहनम	
२८९ १३	आज्य	ग्रह में			भिभवनं यतो हेमन्तः श्री	
२८९ २१	शृत	आग्रयण			तेन नरानभिभवती ॥	
२८९ २०	इस- को	मिश्रित	२८९ १५	द्युलो	द्युलोक	
२८९ २१	में	तिस- करिके	२८९ ८	पयलक्षण	पयस्यालक्षण जिसके	
२८९ ११	हादणी	को	२८९ १०	सोम	सोमों	
२८९ ७	प्रत्यय	हादशार्णी	२८९ ११	अभिषुतो में	अभिषुतो का	
२८९ ६	छोड़े विसर्ग-	था प्रत्यय	२८९ १४	महेन्द्र	माहेन्द्र	
२८९ १४	श्रीणि	विसर्ग न- श्रीणिश्रीं	२८९ २१	सोम	स्वर्णि	
२८९ १	वीर्योपेत	श्रीर्योपेत	२८९ १	दक्षिण	दाक्षिण	
२८९ १	॥	॥ विष्टुवेन दृष्टा सोमस्तु	२८९ २	रश्मि	रश्मिर्	
२८९ १०	हं	५ (ति	२८९ १०	पुक्त	वाङ्मिरसकुत्स	
२८९ ८	संकल	शंकल	२८९ २१	का	को	
२८९ १२	दोनों	का ०४.६.१४. दोनों	३०० ७	हं- सोमपान	हं और अन्नरिक्ष (पि	
२८९ १३	श्री	श्री जे		भूता	तयानमार्गी को देखता	
२८९ १६	तथा- श्री	तथा जे- श्री ते	३०१ २०-	२१ की आयु काजी	हं- सोपानभूता श्री	
२८९ ३	रि।	रि। और यज्ञपति (यज	३०१ २०-	वन- का	के अर्थ आयु (जीव	
२८९ १४	अर्थ वृष्टिके	मान) को रक्षा करि।	३०३ १	विनिनक्ति	न)- के अर्थ	
२८९ १०	करते हैं	अर्थ ऊर्जे (क्षीरादिक)	३०३ २	यो	विविनक्ति	
२८९ १३	तेसे	के अर्थ वृष्टिके अर्थ	३०४ १७	संस्त्रव	यस्यो	
२८९ ४	२.२.	करता हूं	३०४ २०	इन्द्र	संस्त्रवों	
२८९ १२	को।	तिस	३०५ १४	मनुष्य। जन्मनी	इन्द्र नू	
२८९ २१		२२.		देव।	जन्मनी देव मनुष्य	
२८९ २१		को। तथा ऋत (यज्ञनि	३०५ १६	से	में	
२८९ २१		मित) में दो अरणियों	३०६ २	सवन	सवन द्युलोकसमान	
२८९ २१		से उत्पन्न को।	३०७ ५	नी	नश्री	
२८९ २१		एव	३१० १-२	रूपमभि औरत	रूपत्वमभि- में और	
२८९ २१		शसनप्रस्थानं		था में	तथा	
२८९ ८	पूर्वी	पूर्वीऽ	३११ १	८.१०.	८.१०.	
२८९ १४	ए	ए	३११ १७	जाने हुए	आज्ञापाये	
२८९ १६	ए	ए	३१२ ३	६.८.	८.६.	

शुद्धिपत्रम्

पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३१३	६	देवत्या	देवदेवत्या	३३४	१२	एक	भिन्न
३१३	४	ब्रा	ब्र	३३४	२०	१२	१२.५
३१४	२	पद्यादि	पद्यादिनव	३३५	१६	पूषणो	पूषणो
३१४	८	करते	करते	३३८	१७	रस	स्कन्नरस
३१४	१८	तुमने	तूने	३३८	१८	सोमरूप	स्कन्न
३१४	१४	चलाओ	चलाय	३३८	२०	ह	स्कन्न ह
३१४	२०	चलाओ	चलाऊ यह कहो	३३८	११	का	के स्कन्न
३१५	१	वा स्वः	घर्म, आदित्यमण्डल	३४०	१५	+ १२	१२.५.१.१०.
			वा स्वः	३४०	१६	प्रति पड़े	को पढ़वावे
३१७	४	प्रति वांचे	को पढ़वावे	३४०	२०	दिशा	आठोदिशा
३१७	११	प्रति वांचे	को पढ़वावे	३४२	१०	बीवेरार्थप्रदीपके	नवमी वेददीपके
३१८	८	तिस	तहां	३४२	११	रम्भान्तोनवमोक्ष	रम्भान्तोऽध्यायैर्यते
३१४	५	३.४८—अग्न	३.४८.॥का०५.५.३५	३४३	१	हमारे अर्थ	हमारे
			स्नामानन्तर लोटिके	३४३	११	१४.२	१४.१
			देवानाई समिदिति आ	३४३	१७	य	ग्रह
			हवनीयमें समिधाधा	३४४	८	यजुः	र्यजुः
			नकरे ॥—अग्नि	३४४	११	सोम	प्रजापति
३१४	११	विषे	विषे माता के सकाश	३४५	१६	ज	जी
३२०	२	मयि	मयी मन्त्रेण करिये है	३४६	२	सविता	सवितादेव
३२१	८	यि	यिबी	३४६	१२	और	और जलों के
३२१	२०	हुन्	हुन्	३४७	१०	जोड़े—अश्व	जोड़े—अश्व तेरे
३२३	१६	अर्थात्	सोही	३४७	१६	पक्षी	पक्षी जो
३२६	५	की	की मरे	३४७	१७	और	और जो
३२६	८	दीप्ति	दीप्त	३४८	१४	पूर्वोक्त	पूर्वो
३२६	८	दीप्ति है—नुष्यों	दीप्त है—मनुष्यों	३४८	१६	का	को अन्न की जप कराई
३२६	१४	सन्न	सन्न	३५०	५	पड़े	पढ़वावे
३२७	४	संख्या	सहस्रसंख्या	३५०	१२	अभि	अनु
३२७	८	रे	रे	३५१	२०		। स्वकीः (मुरुचः वा
३२८	२	तुम्हारे	तेरे				स्वच्छनाः।
३२८	१४	वर्धयत्र	वर्धयित्रा	३५२	८	पूजा वा	वड़े वा पूज्य
३३०	१०	ते	मन्त्र	३५३	१	१	१२.
३३०	१८	जाने	जाने अंशुओं करि	३५३	१६	पड़े	पढ़वावे
३३१	७	रश्मि	रश्मिओं	३५४	१०	पड़े	पढ़वावे
३३१	१२	का	का बहुत बड़ा	३५४	११	हुआ	हुआ पञ्चदशिकः
३३१	१५	से	के अर्थ	३५५	४	है।	है।
३३३	४	मात्सत्य—सोम	मात्स—साम	३५५	५	हो—हो।	हो—हो।
३३३	१३	का अक्ष	के अक्ष के	३५५	६	हो—हो।	हो—हो।
३३३	१४	निकालें।	निकालें। परछेपट्टा	३५५	७	है।	है।
३३४	५	पृष्टि	पृष्टिओं	३५६	१७	दक	दक प्रजापति

शुद्धिपत्रम्

अ.सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३५६	१८	न	नोंको	३८१	११	३६.	२६.
३५७	१८	विषे	विषे हमारे	३८३	१	अरति	अरति
३५७	१८	हो	हो। हे	३८३	४-	१६ हैं - - - - -	हैं-हैं-हैं-हैं-हैं-हैं
३६२	१७	वि	वि			दुई करती हैं	दुई- करती हैं
३६२	२०	में	से	३८३	१८-	२० हैं	हैं-हैं-हैं
३६४	५	का	का राजा हो तिस का	३८४	३	पात्र	पात्रों के
३६५	१	अर्थ।	अर्थ। वड़े जान राज्य	३८५	४	हैं॥	हो॥
			(ज नों के आधिपत्य)	३८५	२१	अनि	अना
			के अर्थ	३८६	८	धुर्यु	धुर्यु
३६५	५	हैं	हो	३८६	१०	अन्तर	उत्तर
३६५	२१	सो	सोचा-१०	३८६	१३	इन्द्रियों	इन्द्रिय
३६६	५	वृक्षपात्र	वृक्ष के पात्रों	३८६	११	बंधे-मणि	बंधे दो-मणिओं
३६६	११	जिस जल	जिन जलों-हैं-पेता:-	३८६	१८	तिस शतमान	तिन ६ १० शतमानों
			नीएँ-लीएँ-लिएँ-जिन	३८२	४	॥	॥ ब्रह्मन् ब्रह्मदेवतम्
			जलों-जिनजलों-तिन				युजमान पहिले ब्रह्मा
			जलों				को आमन्त्रण करें-
३६७	२४	आप	अपि				हे ब्रह्मन् ऋत्विक् तु-
३६८	१४	जल	जलों				हैं आमन्त्रण करता
३७०	८	रते	रती				हूँ इति शेषः॥
३७०	१२	बोड़ा	बोड़शा	३८२	११	को	करि
३७०	२०	कैसे	कैसी	३८२	१२	उपाधि दे वॉले	नर को बुलवावे
३७१	१	कर्तो	करती	३८२	१५	करते हैं	करता हूँ
३७१	१५	सोमों	सामों	३८३	४	भूमि	द्युतभूमि
३७१	१७	सेव्यते	सेव्यते	३८३	१२	स्थान	अवस्थान
३७२	४	जल	अभिवेकार्यो जलों	३८४	४	+पक्षः	+पक्षः श्रेयानिति।
३७३	१	रां	एँ पात्रों को आह्वा	३८५	१	कुमार	कुमारों
			न करने वालीएँ	४००	४-	५१-३-१०४-७.	५३-४-१०७-१.
३७३	२	स्थान	महस्थान			११६-१३-१२२-५.	११६-१८-१२०-२१.
३७३	४	कैसा जल	कैसे जलों			६-१२६-६-१३१-	१२१-३-१२६-८.
३७३	५	वली	वालीओं			१२-१३३-१६-१४८-	१३१-१४-१३३-१५.
३७४	१४	विषे	सकाश से			४-१४८-१२-१५२-	१४८-११-१४८-१४-
३७४	२०	प्रति पढ़े	करि पढ़वावे			८-१६५-२०.	१५२-६-१६५-१६.
३७५	२१	वे	वै	४०२	१७	वैष्णवी	वैष्णवी
३७८	१३	२४	१४	४०३	८	दृष्टकाविषय	दृष्टकादिविषय
३८०	१	+ मृ-सि।	+ मृ-हि। इ०। ओ-सि	४०३	११	प्रजाति	प्रजापति
			। उ०	४०४	३	विषय	विषया
३८०	७	जीतुं	जीतूंगा	४०४	८	पुण्य	पूराण
३८०	१८	किं	किं जे	४०४	१०	का	का
३८१	१०	यप्रयत्नं स्व	यप्रयत्नं स्व	४०४	१२	अभिज्ञ	प्रयोगाभिज्ञ

शुद्धिपत्रम्

पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४०५	४	है	है + ब्रह्म शब्देन प्रा-	४२४	११	गमन कुशल	गमन कुशल एसम
			णः सप्त ऋषयो ब्रा-	४२४	१२	प्रजा	प्रजाप्रा
			ह्मणाश्चाच्यन्ते	४२७	१४	कैसी	कैसे
४०५	१५	पृथिवीप्रमृतिने	पृथिवी प्रमृति तीनों	४२७	१८	का० १६.३.३६.	का० १६.३.१६.
		कों को जाना	लोकों को मान किया	४२८	१८	पञ्चाहुति क्रमे	पञ्चाहुतिपरिणामक्रमे
४०६	२	कथ्यन्ते	कथ्यते	४२८	२०	देवमा	देवत्वमा
४०६	४	परिचिति	परचिन्न	४२८	२१	का० १६.३.२७.	का० १६.३.२०.
४०६	५	चिनिवर्ति	चिन्नवर्ति	४३१	४	+आहवनीयाय	आहवनीयोयस्स
४०६	१४	स्त्रिवृदादिक	त्रिवृदादिक			सस	स्य
४०७	१६	यशव्य	पशव्य	४३१	१८	१४वाच्यि वना-	वच्यि (कहिता हूँ
४०७	१८	चारण	चार			ताहं	
४०८	२	घ्रगामिन्	शीघ्रगामिन्	४३२	३	उरवा	उरवे
४१०	१४	कूडर	कूर	४३३	२	भूत।	भूता .
४११	५	आग्नेयी	त्रीण्याग्नेयानि	४३४	४	अषाढ	अषाढा
४११	७	का० १६.३.१२.	का० १६.२.११.	४३४	८-८	अषाढ	अषाढा
४११	१०	का० १६.२.३.	का० १६.२.१३.	४३५	१०	अवणीय	अवणीय यश
४१२	२	देरेवें	देरेवें हैं	४३८	३-४	सर्वात्मना	सर्वात्मा
४१२	१३	का० १६.१.१७.	का० १६.२.१७.	४३८	६	करी	करीगे
४१३	६	का	को	४३८	११	हो	हो आगमन कराय
४१४	१८	कै।	को	४३८	१२.	पोले- करे	पालि- करि
४१५	५२	हम- ते- तेहें	में ता- ताहूं	४४१	११	आवेतिस- जो	आमें तिन- जे
४१५	१४	परया बहिः	परया-परया बहिः	४४१	१२	डे तिस- स्तोमा	डें तिन- स्तोमाओं को
४१५	१७	का	को	४४२	३	अश्रित	आश्रित
४१५	२०	का- का	को- को	४४२	७	हो	हों
४१६	१६	जायते	जायसे	४४२	१४	ओंके	ओंमें
४१७	१८	पात्र	पत्र	४४३	१-४	करे- करे- करे-	करता है- करता है-
४१८	२	समन्ताम्	समन्तात्			देवे जिघांसे	करता है- मारनेकी
४१८	८	के	की				इच्छा रखता है
४१८	१०	कैसे	कैसी	४४३	१२	शक्ति	शक्ति शरीर शक्ति
४१८	१५	भीतर में	भीतर (उदर) में	४४४	६	डालि	उरव्य
४१८	१७	देवाहवाची	देवाहवाची	४४७	१०	रज्जुण	रज्जुण
४१८	१७	दध्यङ्गामक	दध्यङ्गामक ऋषिः	४४७	१३	निधारण	निवारण
४२०	११	हवि करि पूजता	हवि करि देवताओं	४४८	२	के ऊर्ध्वको	का ऊँचे को
		है	को पूजता है	४४८	३	जः	जः मः।
४२२	४	पिण्डावरूप	पिण्डावरूप	४४८	२४	३.	१३.
४२२	१०	॥३४॥	+॥३४॥ नो है नाव-	४४८	२४	दिश	दिशाओं को
			त्यन्याहुतिगमि य-	४४८	२४	है	आग्नेयीमहामतो-
			थेवेति ६.४.३.४.				सतीतिष्टुहं
			श्रुतेः।	४४९	२	मादृति	आवृत्त्युपावृत्ति

पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४५२	१	करे	करे	४७०	११	देवः	बाः अद्भिर्ग इति श्रुतिः
४५२	१५	वित	विष्टुप् वित	४७०	१५	जमन्	दिवः
४५३	३-४	रुशता कि	कि रुशता	४७१	१	प॥	जन्मन्
४५३	१४	अर्वि	तप कार्य है अर्वि	४७१	११	और	प॥ सब
४५४	६	ज्योति	ज्योति करि	४७२	१८	अत्यन्त एक	और एक
४५४	१३	२४	२१	४७२	१४	का	ऐकमत्य
४५६	१७	सहस्य	सहसः	४७३	७	अब	करि
४५७	६	ज्ञान	विज्ञान	४७३	२०	ष	आप
४५७	१८	व्याप्त करता	व्याप्त होता	४७३	२१	रती	वे
४५७	१४	व्याप्त करता	दुलोक को व्याप्त होता	४७४	१८	वयव - जो	रती ऐकमत्य को प्राप्त
४५८	७	२१	२१०	४७५	५	भूत	हुई
४५८	१८	नो	नयो	४७५	१३	दति	वयवों - जिस
४५८	२०	करि	करे	४७५	१६	कस्ता	भूति
४६०	३	अन्तर	अनन्तर	४७५	१७	पत	ति
४६०	६	चित्तिभिः	चित्तिभिः (उद्यमन- प्रवीणा	४७६	५	ह	करता
४६०	७	मेरे	हमलोगों का	४७६	६	हल (बैल)	पैत
४६०	१४	कातमनाशकारि	औं को नाश मत करि	४७६	१६	अनाज	वि
४६३	१५	३	३०	४७७	२	गी	हल को बैलों करि
४६३	२०	अग्ने	अग्ने तुम्हें	४७८	३	की - गो	अनाज लुना हुआ
४६४	३	है	है	४८०	१	जा	ति शेषः
४६४	६	धनपत	(धन) पते	४८०	५	२६	य
४६४	१४	उठा	उठि	४८०	७	को	— वेगो
४६४	२१		अ०४	४८१	५	प्रयत्न	२६ मनुष्यों की
४६५	७	अध	अर्ध	४८१	११	है	को को
४६६	१५	पूर्व	उत्तर	४८१	१२	षण	बहुता हमारे
४६६	१८	कतुष्क	क्रुतुष्क	४८२	१३	अस्मर्य	बहुना हमारा
४६७	५	में	में नही	४८३	१	विस्तार करें	≠ कार्योपचा
४६८	१	हो	होता है	४८३	१४	ब्री	की
४६८	४	हैं है तिस जल	हैं हैं तिन जलों	४८४	१८	का +	प्रयत्न
४६८	८	व्याधि (-का-कृ)	व्याधि जिन्होंने करि (-का (-क्री)	४८५	१	का +	हैं हीन
४६८	११	अहिंसता - ताः	अहिंसितारः - ताः	४८५	१५	इ	षेण
४६८	१५	पाद्या	पद्याएँ	४८५	१७	क	अस्मर्यमाण
४६८	१५	छेदन	छेदन	४८५	१८	क	स्पर्श करें
४६८	१४	सावधान - अङ्ग	सादन - अङ्गों	४८५	२४	श्री	ब्रू
४६८	१३	करि।	करि + + तथा देवत येतिवाग्ने सा देवत याङ्गिरस्वदिति प्राणो	४८५	२५		क +
				४८५	२७		न
				४८५	२८		कर
				४८५	२९		श्री
				४८५	३०		सी

शुद्धिपत्रम्

पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४४७	१२	३०२४	४०२०	५१८	१	से	स
४४७	१४	रोचन	रोचनों	५१८	३	सन्	सन्
४४७	१५	निवृत्त	निवृत्त	५२१	६	प	पा
४४८	१३	जे	जो	५२१	४	पञ्च-पञ्च	पञ्च-पञ्चाप
४४८	११	तिष्ठो	तिष्ठो (चन्दनादिबुद्धों)	५२१	१०	पस्था	पस्था
५००	२	परिसर्पण	परिसर्पण-परिसर्पण	५२३	८	सु	सु
५००	८	कैसा - प्रसित	कैसा - प्रसिति	५२३	११	ज्ञाता	ज्ञाता प्राण
५०१	२०	म्य	मिम	५२५	४	ई	ई सोवर्ध
५०२	१	कर्ष	कार्ष	५२५	१०	यी	यी
५०२	७	३	१३	५२७	११	वे	वे
५०३	१		अ०२०	५२८	१	अ	आ
५०४	१८	विस्तर	विस्तार	५३०	४	पालाय	पालयि
५०५	६	आगे - इन	आगे द्वितीये पद्यालो	५३०	१६	हा	हो
			के - इन दो	५३२	१२	करै	करें
५०५	१२	को	को तिन दीप्तिष्ठों में	५३२	१६	बाध	बाध
५०५	१५	सर्वा	सर्वा	५३४	१३	पति	पते
५०५	१६	ह	है	५३५	१	(	(विविध
५०६	३	हित - चो	हिते - चो	५३५	४	निरुक्तानि	निरुक्तानि पशून्ति
५०६	४	इष्टका	इष्टका पद्या				रुक्तानि
५०६	१२	सर्व	सर्वज्योतिष्ठों की	५३६	१	चाहते	योग्य
५०६	१३	कारि	करि	५३८	१	इष्टके	इष्टके तू
५०७	५	पाषा	पाषाणा	५३८	१०	२५	५
५०७	६	कल्पता	कल्पन्ता	५४०	४	छन्दः	छन्दः यह लोक
५०७	८	कल्पताम्	कल्पन्ताम्	५४२	१४	तु	तू
५०७	१४	को पत्नी कृता पद्या	पत्नी कृता पद्या को	५४५	६	ख	ख
५०८	६	२७	२७ तीनि कृत्वाओं करि	५४६	१२	का	को
५०८	२१	ये	ये	५४६	१४	का	को
५०८	६	पद्या	पद्या लोक	५४६	२०	का है	कार्य है
५०८	७	ता शेषाल	ता में शेषाल पर	५४७	३	+	इति शेषः । एवं सर्वत्र
५१०	१	रथा	स्था	५४७	१३	जया	जया
५११	५	नार्थ	नार्थः राये धनार्थः	५४८	१५	करतु	करतु
५१३	४	होत्रा	होत्रा	५४८	१८	भूत	भूतों को
५१३	१०	जात	जात और	५४९	६	तुल्यम्	तुल्यम्
५१३	११	और		५४९		करिके	( करिके नव * उसेर
५१५	८	अनन्तर	अन्तर				करिके
५१६	३	सूयमानः	सूयमानः सो तू	५५१	१	भूत	देवः
५१६	५	मामा	मा	५५१	२	नाभि में	
५१६	१८	तृ	तृ	५५१	१४	सं	सृजे
५१७	२	एव	स एव	५५२	१२	वी	नी

पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५५३	२०	चितिमें	चिति के मन्त्र कहिये हैं॥ का०१७०-११-१०३				सब यजमानजन वा सब जगत के दूतवत्कार्य करने
५५४	५		पञ्चमी चिति में क्या करते कि अहेडन्	५५४	७	सते	जते
			(क्रोध छोड़ि शोभनमनस्क हो उपदेश करि इत्यर्थः)	५५४	८	एण्डु	एण्डु
				५५४	१३	गोप	गुप
				५५५	२०	वृ	हृ
५५५	४	जिस का	जो	५५६	११	भमषड्वि	भगषड्वि
५५५	१३	ककुच्छन्दः	ककुच्छन्दस्त्रिककुच्छन्दः	५५६	१६	तूये	तूर्ये
५५५	२१	इष्टके	इष्टके तू तद्रूपा है	५५७	२		आद्या कुमारवृषोदृष्टा
५५६	१८	भ्रजते	भ्राजते	५५७	७	जि	जिसे देवि के घर को लोट ते दे। अर्थात् जि
५५७	८	वृक्षां	वृक्षादिकों	५५८	८	पद	पदप
५५७	११	भक्षण	भक्षण	५५८	१०	इस	इस दिन
५५७	१२	सन्तुष	सन्तुष	५५८	१८		ओं करिके।
५५७	१३	ध्यते-ष्टप	रुध्यते-ष्टप	५५८	१	देवताओं प्रतिजा	देवान्य
५५७	१७	धिव्य	धिव्यदर्शन			ताहे	
५५८	१७	जी	जी	५५९	१३	करे	करनेवाले
५५८	१८	+ अयु-३	अयु-३३	५५९	१४	प्रति	प्राप्ति
५५८	८	तिस०	तिस० बसुओं के०	५५९	१	कर्मविधिं) हो	कमएणी) होंवे और यह
५५८	८	तिस०	तिस० आदित्यों के०				यजमान तेरे प्रमाद से
५५८	१६	तिस०	तिस० ओषधीयों के०				इष्टापूर्ते करि संसृष्ट हो
५६०	२	मन्त्र	मन्त्रा	५५८	१०	की	कृता
५६०	७	को	का	५५८	२१	द्वयलोक-तृतीय	लोकद्वय-तृतीय से
५६०	१३	मुप	उप				आरम्भ करि अथम-
५६०	१८	उत्क्रमण	उत्क्रम				चितिवत्
५६०	२०	तू	तू उत्क्रान्ति है	५५९	७	संज्ञा	संज्ञे
५६१	२०	+ प्राण	+ प्राण	५५९	११	तिस-प्रकाश	तिस से-प्रकाशित
५६२	७	स्तोमः	स्तोमाः	५५६	३	५)	५) के
५६५	८		अ०४	५५६	१४	करिके	करिके प्रेक्षण करे
५६६	८	सर्प	सर्पः	५५६	२०	सो	सो २०० प्रतिमन्त्र से
५६७	२०	हेमन्तिकी	हेमन्तिकावृतू	५५८	५	प्राजा	प्रजा
५७०	१८	तिस	तिसो	५५८	२	नेत्य	नेचेत्य
५७१	१६	हुआ	होता है	५५८	६	धिव्या	धिव्या
५७२	११	फल-प्राप्त होता	फलों को-संगत कराना	५५०	६	के	को
५७२	१६	नान	नाना	५५०	११	कैलास	कैलाश
५७२	१	चो	चः	५५१	१८	रुद्र	रुद्र देखते सन्
५७५	५	पयाप्त-युक्त	पयाप्त-युक्ताशोभन	५५२	२	म्यापि	स्वरूपी
			यज्ञ जिसके तिस	५५२	१८	एक-एणी	एक-एणी

पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५६४	१८	हैवी	हैवी बहती पञ्चाक्षर	६१७	३	जल	जली
			हैवी	६१७	१३	निरम	निरसन
५६५	१६	झा	झ	६१४	२	में- गिनते	में इष्टदा हो-चिन्ते
५६६	११	का	के	६२०	४	छ्यत	छ्य से
५६७	१८	कही	कहीं	६२१	७	गूणया करि	गूण करि स्थित है
५६८	१५	द्रष्टो	द्रष्टो	६२१	८	वगै	वगे
५६८	१४	तिन्हों	तिन तुम्हारे	६२३	८	पात्र	पात्री
६००	३	रूपो	रूपी	६२३	१६	न है	ना है
६०१	४	यज्ञों	यज्ञों	६२३	२०	विषे	विषे अधिष्ठानत्वेन
६०१	१५	+विशेषण	वेषण	६२५	५	विहव्या	विहव्यो
६०१	२०	यज्ञो	यज्ञे	६२५	७	कर्मण	कर्मण
६०२	७	एड	गिड	६२५	११	स्थितवान्	एक ही रहा
६०२	१३	वेगवान्	वेगवहन्तुओं में हुआ	६२७	१०	ना है	जाता है
६०४	१८	धनुष	धनुष पिनाक	६२७	१४	६०० अनुवाकयो	६०० अनुवाके ६०० का
६०५	३	मार्गयोग्य	योग्यमार्ग				गिडकयोः
६०५	६	नदी में हुआति	नदी में हुआतिसज्जल	६२८	४-५	तें हैं	ता हैं
			रूप के	६२८	४	से-सन्	हवि में-सन् मेरे य
६०६	४	रूपी	रूपीओं				ज में
६०८	६	शंहार	संहार	६२४	७	करिके	करते
६०४	२०	सन्ने	सन्ने	६३०	६	जिसका	जिस
६१०	५	का	को	६३०	११	अमूर्ते	अमूर्ते मूर्ते
६१०	११	चीन	चीना	६३०	१४	हैं।	हुआ।
६१०	१५	मेडू	मीडू	६३०	१५	हैं	हुआ
६११	१	बा	बा उन्नत	६३१	१०	त हैं	त
६११	६	का	को	६३१	१८	हैं	हुआ
६११	१८	असंख्यात	असंख्यात अमित	६३१	१८	गहिक	ऐहिका मुष्मिक
६१२	७	रुद्र	जेरुद्र	६३३	१४	प्रति	अप्रति
६१२	८	तिन्हों	जिन्हों	६३३	१५	हाद	हादश
६१२	१२	अद्यो	अद्यो	६३४	१	जित	जितु
६१३	११	वा पाणी	वा जीवन को पाणी	६३५	४	ति	ति वा
६१३	२०	विषे	विषे स्थित	६३६	११	गण्य	गण्य शर्ध
६१४	१६	वाधके	वाधिके सबदिशा	६३७	१२	हैं	होते हैं
			ओं में	६३७	२०	हैं	हो
६१४	१८	हमें	हमें रक्षा करें तरुद्र	६४०	७	वद	बदाड
			हमें	६४०	१०	को	को है
६१४	२४	जिम	जिम	६४२	१०		हैं
६१४	२७	हिष्य	हिष्य	६४४	१		गड मध्य
६१५	१८	अन्ना	अन्ना	६४५	११		उप
६१५	२०	अग्नि में	आग्नीध्र	६४५	१२		हो कि च सबदिशा



शुद्धिपत्रम्

पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
		को प्रकाश करते सन्	६७७	१४	यद्वा	यद्वा एते
		तू विशेषण दीप्त हो।	६७८	७	जल में	जलों में
४७	११	हूँ (पाकंगा	६७८	११	दिवरा	दिवस
४७	१२	ये	६७८	११	। मु	। अमु
४८	७	अग्ने	६७८	१२	ते राज्य	तेरा राज्य
४८	५	मूर्ध	६७८	२	प्रजा	प्रजाओं
४२	५	स्वाद	६७८	१५	॥ यज्ञेन	॥ यज्ञेन दानेन
४२	११	वृष्टा	६८०	८	वप	वपन
४३	१६	का सा तेज	६८०	१८	तम)	त)
६५४	८	उषागर्भा।	६८१	७	प्रकृष्टेन	प्र
६५४	१८	कैसे	६८१	१५	देव	ऋतु
६५५	३	अन्न	६८१	१६	ताओं सहित	ओं सहित देवताओं
६५७	१४	घृत	६८३	४	षध	षधश्रेष्ठ (को
६५८	५	से	६८३	८	उदु	औदु
६५८	८	विद्धि	६८३	२	ज्ञातः	ज्ञाति
६५८	१८	मीव - झी	६८४	७	र	रो
६५८	४	पितु	६८४	१७	ब्रीद्या	ब्रीद्या
६६०	८	तत	६८७	१८	+ ४२ - ६ - मारुत	+ ४२ - ६ - अवस्यू
६६०	१४	तू	६८८	६	नवा	न दवा
६६०	२१	+ अग्निर्ह	६८८	३	धी के	धि को
६६२	१	शू	६८९	११	ऐसा	ऐसा है
६६२	४	ऊर्मि (- दक)	६८९	६	वैश्य	वश्य
६६२	२१	तँ	६८९	८	तू	स्तू
६६३	७	+) )	६८४	६७	तुम्हें करता है।	कर्मसमाप्ति में तुम्हारे
		स्वर्गों येन स आजि-				रे प्रति आगमन करेगा।
		र्यज्ञः।	६८४	१४	(वित्त)	तव
६६३	४	हमारे क	६८४	१६	सब	तब
६६४	५	(मुख)	६८५	१७	एण - नी	एणः - नीएँ
६६४	२	दाना	६८५	२१	आग्नि	अग्नि
६६४	७	देनिय	६८६	१	कीच	की
६७०	१३	कृषि	६८६	२०	कं भावयति	कत्वं सम्पादयति
६७२	१०	अथो	६८७	४	अहित	हित
६७२	१५	मरुतश्च	६८७	५	आग्ने	अग्नि
६७३	११	इ	६८८	४	भार	भार
६७३	१७	ए	६८८	८	जय	इन्द्र सुतजय
६७४	१२	शम्यु	६८८	६	+) )	+) में
६७५	८	अ० ७	६८८	८	ओर	ओर जो
६७५	१८	एक	७००	८	यष्ट	यज्ञिष्ट
६७६	३	नाः	७००	१६	प्रकृष्टेन	प्रकर्षण

शुद्धिपत्रम्

११

पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७००	२०	समाना	समान ज्ञाना	७३७	२०	इन्द्रियहा	यज्ञहा
७०४	७		(एकी किये	७४०	८	से	से पशुओं की
७०६	७	ऋत्विः	ऋत्विजः	७४०	१८	रूप के	रूप की
७०८	१	होती	होता	७४१	१४	चूर्ण	चूर्ण चरु
७०४	१३	वत्या	वत्या जगती	७४३	२	त्रो	त्रो करि
७०६	१५	ओं के अर्थ पथ्यवा	ओं का पथ्य वा देवताओं	७४३	७	पत्र	पात्र
७११	१७	अग्नि	अग्नि	७४३	८	पात्र-स्य स्थि	पात्र-स्थ शिथिल
७१२	२	पितरों	पितरों	७४४	५	कि तरस्वी वे	कि हरसा तरस्वी (वीर्य
७१४	७	सार	सर			वान्	करि वेगवान्
७१७	१	प्रणवेः	प्रणवेः	७४४	४	रुस-ग्रहों	ग्रहों करि
७१७	४	प्रणव (ओंकार)	प्रणवों (ओंकारों)	७४६	६	नै	नैसे
		पसस्त्र	शस्त्रों	७४६	१०	लेकर	लेकर इन्द्र के अर्थ
७१४	६	+	++ सुखान्वा एषव-	७४७	१७	सोमा	सोमास
			हिषद्यज्ञो यत्सोत्राम-	७५०	५	वायु	भुखवायु
			णीति १२.८.१.२. श्रुतेः॥	७५१	१७	पादा	पदा
१४	१४	प्रोत्तरवल से दक्षिण	प्रोत्तरवल से दक्षिण	७५३	७	आनति	आनतिरागतिः
		में अग्नि विषे	ग्नि में	७५३	८	मन	नमम
७२०	५	सोमे	सोमो	७५३	१०	अन	आन
७२१	६	१४.१.१७.	१४.३.१७.	७५३	१६	निति	नि
७२१	४	मन्त्र-मध्यम	मन्त्र करि-मध्यम	७५५	१४	कोरे	कोरे
७२२	७	प्रति वांचे	को पठवावे	७५५	१८	मुद्ध	मुद्ध
७२४	१४	सोत्रामणी	सोत्रामणी	७५७	२	रुक्ता	रुक्ता
७२४	१६	कामित	कामित	७५७	१३	व्रतों (कर्मों)	व्रत (कर्म)
७२५	१२	से	से आज्य	७५८	१०	से	सेस
७२६	१	पितरों-मातरों	पिता-माता	७५८	११	तेरे अंशुओं-	तेरा अंशु-अंशु-तेरा
७२६	१५	ती-ती	ता-ता		१२	अंशुओं-तों-	पर्व-हो। तेरा
७२६	१६	एवं प्राथ्या	एवं हविः प्राथ्या			पर्वों-हों। तों	
७२७	२	दृष्टो	दृष्टा	७५८	८	अपृ	अपृप
७२८	२	गून्य	गौरप	७५८	१५	गान	गान करि
७२८	१५	की वेष्टि में	में विष्टि के अर्थ	७६०	८	रव	रव
७३२	१४	चित्त	चित्तत्व	७६१	२०	ह-अ	ह-आ
७३५	५	पातो	यात्रो	७६२	६	प	प उगवाओं के
७३५	६	दीधित	दीधिति	७६३	२	मान	मान। रिपुओं के पुंका
७३५	११	कारण	करण				गयिता।
७३६	४.१७	नाश	त्याग	७६४	१७	न	न विकान्त
७३६	१२	हुआ-अ	होवे-अ	७६५	५	प्रा	प्रा
७३६	१३	मृत	मृत	७६५	१४	म	म अन्वन शीलः (मर्द
७३७	३	ऋजीय	ऋजीय				पानः।
७३७	२३	नाश	त्याग	७६६	१३	ह	ह

पृष्ठा	कि	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठा	कि	अशुद्ध	शुद्ध
७६६	२०	भू	भू	८०२	१४	को	के
७६७	४	सू	इति सू	८०४	४	रक्षया	रक्षण
७६७	१७	युक्तः	युक्त	८०४	१७	दुहे	दुधे
७७०	१२	गुणा	गुणा	८०६	५	दे।	देता है।
७७१	४	कुमारों के	कुमार	८०७	२	करै (यजै)	करता (यजता) हुआ
७७५	१८	त्यू	चात्यू	८०८	२	?	?) है
७७६	२	ए	ए	८०८	१९	ये	यें
७७७	१३	आह	आहा	८१२	४	का०२०	का०२०
७७७	२१	हा	हो	८१२	५	पटै	पदवावै
७७८	१६	होता	होता जो धनधनान्तर	८१३	२	प्राजापत्यादिक	प्राजापत्यादिक
			हेतुभूत है	८१४	१	प्रसीति	प्रसीति
७८०	१२	कर्मों-उदकी	कर्म-उदक	८१५	४	प्रति पटै	को पदवावै
७८१	३	प्र	प्रे	८१५	६	करक	कट
७८१	१७	जाके	आके	८१६	१७	कदन	कन्दन
७८१	१८	यन्तों	मन्तों	८१६	६	कर्मों को	कर्म में
७८३	७	१७.	७.	८२०	६	हवि	के हवि
७८४	१४	+	+ त्रिष्टुप्।	८२१	११	ययु	नाम करि ययु
७८६	५	को	को सुनों	८२२	८	अग्नि होम	अग्नि होत्र होम
७८६	१०	दे	हैं	८२५	३	श्रयति	श्रयति
७८६	२०	दीप्ति	दीप्ति	८२६	४	व्युष्टये	व्युष्टये
७८७	४	तनू (जल)	तनूओं (जलों)	८२६	५	इज्यते	रज्यते
७८७	११	इडा-ता	इडाओं-ताओं	८३१	७	मै हविदिया	हवि देते हैं
७८७	१४	को	की	८३२	२०	प्रति पटै	को पदवावै
७८८	७	यहो	यहो	८३३	१	और इन्द्र के प्यारे	
७८९	६	१८.	१८.			शरीर को अत्यर्थ	
७८९	७	वाज्या	वाज्या			गया	
७८९	११	५१.	५१.	८३६	११	संनष्टो	संनष्टो
७८९	१५	भेष	भेषज	८३६	६	क्रमेण +।	क्रमेण + रथ गपिम करि
७८९	२	करिके	करता	८३६	७	वा	(संशित है)
७८९	११	वेद्यो	वेद्यो	८३७	१४	का०२०	
७८९	६	ओंज	ओं	८३८	१४	हो	हो
७८९	१४	यज	यज	८३८	५	गोम	गोम
७८९	१५	अश्वि	अश्वि	८४०	४	यसो	यस
७८९	१६	भेषज	भेषज	८४०	५	नमीच्चारण	नामोच्चारण
७८९	६	देवताओं	देवताओं	८४२	७	अग्नीहोत्र	अग्नीहोत्र
७८९	१७	नमः	नमः	८४२	४	परवतवाह	परवतवाह
७८९	१८	चलित	चलित	८४४	१६	+ मन्तो	मन्ततो
७८९	१९	को	को	८४५	१८	में	में रेवत
७८९	२०	पान्ति	पान्ति	८४६	३	पान्ति	पान्ति

पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८४६	१०	+	+ त्रय्यः सूच्यो भव- नीत्यादि १३.२.१०.३	८८२	१३	पूर्वोक्त	त्रके जल १० पुष्पा ०
			श्रुतेः।	८८२	१४	श्रुतेः।	पूर्वोक्त
८४७	१७	देवसंवन्धिनी	देवसंवन्धिनः।	८८८	५	माता और पिता बो	माता पिता और पुत्र
८४८	१६	५-६२	५७-६२			ह ही अदिति है।	बोह ही अदिति है।
८५२	३-४	तिष्ठे हे	तिष्ठे हे			पञ्च	सव देवता अदिति है।
८५३	१	प्रकाशे है।	प्रकाशे है। यज्ञ के वे				। पञ्च
			दन हेतु करिके तेरे अ	८८८	१८	करते हैं	करेंगे
			र्थ भली भांति कहिता	८८९	५	आभिमुख्येनावय	आभिमुख्येनावय
८५४	३	रेतः	रेतो (है)।			ति	जति
८५४	८	अश्व	सीचने हारे अश्व	८८२	१०	प्रक्षिप्त	प्रक्षिप्त जो
८५४	१५	नुष्टुप।	नुष्टुप। ह इति प्रसिद्ध	८८२	१७	+	+) में
			म् प्रथम (सब की आ	८८३	४	करे	करें
			दि) अनादि निधनः	८८३	५	पचें - कों	पचें - करें
८५७	१५	मध्ये	मध्यमे	८८३	२०	अश्व के मांस	अश्व के (हुत शिष्ट)
८५८	१२	रन्ध्रः	रन्ध्रः समन्त सर्वतः				मांस
			शित रन्ध्रः	८८४	१	हो जायगा	होमा जायगा
८५८	१४	लोहितोर्णी	लोहितोर्णी	८८५	८	करने	फिरने
८६०	१	यस्य	यस्य महदस्त्रियस्य	८८७	६	को जिन अङ्गों में	के जिन अङ्गों को
८६१	२०	चिन्हा	चिन्ह	८८७	७	तिन	तिन-तिन
८६३	२	क्षन्दमे	क्षन्दमे	८८८	२	मरणमङ्ग	मरणमङ्ग
८६४	११	इन्द्राग्निदेवताः	इन्द्राग्निदेवताः षो	८८९	२३	अग्नि के समीप	सोत्र के समीप
		बो ०।	। कृष्णाः कृष्णा वर्णा	८९३	३	वि वस्वहृष्टानि	विवस्वहृष्टानि
			स्त्रियः वारुणाः व	८९३	१६	२७	२६
			रुण देवताः षो ०।	८९४	८	करे	करें
८६२	१	क्रमेण	क्रमेण	८९५	३	यह	इस
८६५	६	माहेन्द्रदेवताः	माहेन्द्राः महन्द्रदेव	८९६	२	धनान्ता	धनान्तर
			ताः	८९६	३	॥	॥ सादयति
८६६	१२	शुनाग	शुनासीर	८९६	४	हे शतक्रतो	हे इन्द्रदेवत्ये गाय
८६८	२१	वर्ति	वर्तिका				यो गम्याक्षिष्टेषु गो
८७१	२५	पर्जन्यः	पार्जन्यः				मवे यज्ञे ग्रहग्रहणे
८७५	१८	अश्वमेधत्वात्	अश्वमेधिकत्वात्				नियुक्ते सोपथामे
८७६	५	।	। स्वपक्षे तु				हे शतक्रतो
८७६	१३	प्राणामीति	प्रीणामीति	८९८	७	हित।	हितः। विप्रादयश्चत्वा
८७७	२५	विरूपनियो	विरुनीयो				प्राणिः निषादश्चेति
८७७	२१	पार्थीः	पार्थीः	८९८	२०	विमान	विमानसे
८८१	३	निङ्गो	निङ्गः	८९८	१२	के अश्व	के अश्व पति प्रति
८८३	१२	कृष्णा	कृष्णाणा	८९९	६	वर्ता	वर्तों
८८२	१३	शीन ०।	शीन ०। अश्वों ने	९००	१७	आक	आकर तिस

पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४१०	२१	सोम	सोम सो	४५८	४	यजमानाह	यजमानमाह
४१३	२	यज्ञा को	यज्ञग्रह को	४५८	१६	चेतनवान्	चेतनावान्
४१३	६	और	और देवों तथा	४६०	२०	यजनीय में	यजनीये
४१३	१६	को	को समन्तात्	४६३	२	अये	मये
४१८	२	यम	जो यम	४६३	८	समाङ्गानि	सङ्गमाङ्गानि
४२०	८	गार्हपत्य	गार्हपत्य	४६५	२१	वराः	वाराः
४२५	५	हे	गृत्समददृष्टा। हे	४६६	३	रूदते हैं	रूदते। अनपव्य-
४२५	१६	आङ्गिरस्यो	आङ्गिरसो				यन्तः। (अनश्यन्तः)
४२६	७	अर्थात्	अर्थात् विश्व				समर्थः। वाजयन्तः
४२६	११	में	दुए और पृथिवी में				(गतिवन्तः)
४२६	१७	प्रगाथः	प्रगाथः बृहस्पतिसुत	४६६	१	अहिरवि	अहिरिव
४२६	२०	सातों	सातों	४७०	७	हविये	हवियों की
४२७	६	मारें	मारें अर्थ	४७३	१५	२० जगती छन्दक	विष्टु ह करिस्तु
४२७	१४	अंश	अंश तुम्हें			रिस्तु सप्तदशस्तो	पञ्चदशस्तोम वृ
४२८	१४	चित्याग्नि	चित्याग्निरभि			म वैरूप सा	हत्साम
४३०	५	प्रगमन	प्रगमन और आ	४७४	५	सहितानि	सहितों
			गमन	४७७	१२	भयकरम्	भयकरम्
४३०	६	हैं कि	हैं कि स्वेच्छा से	४७७	१२	वाचादम्	वाचादम्
४३२	१२	तनूनपान्नशंसा	तनूनपान्नशंसा	४७८	१५	विदलकारिणीं	विदलकारी (वंशवि-
४३४	१६	महत्त्वः	महत्त्वः				दारिणीं
४३७	१६	सत्यं	सत्यं	४७८	१८	शुकमादि	शकुनादि
४३८	८	के	के अर्थ	४७८	१८	अभिप्रश्ननम्	अभिप्रश्ननमभिप्र-
४३८	१०	कृपयन्त्ये।	कृपयन्त्ये। ऊर्जोद्				श्ववन्तम्
			ती (ऊर्जयुत होम हैं)	४८०	५	गोपालकम्	गोपाल (धेनुपाल-
			जिन्हों का ते। ऊर्ज				कम्)
			(रम्) को वर्धयन्त्ये	४८२	५	खड्ग	खड्ग
४४५	४	वयोधसे	वायोधसे	४८४	१	जागरूपकम्	जागरूपकम्
४५०	१६	में	की	४८५	१७	परिध	पाणिध
४५०	१६	सुषिरा	ससुषिरा	४८७	१	विरुद्ध	विरुद्ध रूप
४५०	२०	॥५॥	। सुप्रायणाः (प्रकृष्ट-	४८७	४	का	की
			गमन जिन्हों में सुग	४८७	१६	रणान्तर	रणानन्तर
			मनाः ॥५॥	४८८	१६	विरज	वैरज
४५२	१	हवा	पहवा	४८८	१७	परः	पर
४५२	८	दिशः	दिशाओं की	४८२	१९	+ एतच्च	+ एतच्चाद्यर्चणोत्त
४५२	१०	भूत	भूतजात				रतापनीये (नृसिं
४५२	१७	प्रति।	प्रति। कैसा वनस्पति				हतापनी २०००००००
			कि देवलोका को ज				ष्टमुक्तम् स जा राष
			नता				भूतानीन्द्रियाणि
४५६	५	मनुष्यसंघा	मनुष्यसंघा				रज देवता का

शुद्धिपत्रम्

पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
			असृष्टान् प्रविष्ट-	१०३५	१०	प्रतुनिति	प्रतुति
			इव विहरतीति	१०३५	२०	तदेव	तदेव
८८२	२१	हु (ए	हुण	१०३८	१०	तिस	तिस दशां पावेन में
८८४	१२	ब्रह्म	ब्रह्मत्व				सोम डालते सन्
८८५	१४	अनुत्पन्नत्वकरि	अनुत्पन्नत्व करि पुरु	१०३८	१८	के	के मध्य में
			षस्वरूप को ही	१०३८	१६	भोक्ता	भोक्ता जीवाः
८८५	७	कार्यो में	कार्यो विषे अग्र में	१०३८	२०	अयस्तात	अवस्तात
१००१	१७	ते मे ही चन्द्रमा	वाह ही चन्द्रमा हे	१०४१	१४	देवान्तर	देवतान्तर
१००१	१७	शुक्र	शुक्र (शुक्ल) तत्	१०४१	१७	प्रकर्षण	प्रकर्षण धारण
१००३	१४	तिस	जिस	१०४४	११	किं च	किं च इस
१००४	१	कार	करि	१०४५	१५	वा	वा वहुतों के
१००४	२	वृष्टिजन	वृष्टिजनक	१०४६	७	वशीधनो	वशीकृतधनो
१००४	-	कार्यकारण	कार्यकरण	१०४६	१२	को	को अभिमुख
१००६	२	जानि।	जानि। भूरादिलोको	१०४८	२०	करि	करि उपलब्धिये हे
			को ब्रह्मत्व०।				मन्त्राः कोश नीतिव
१००६	५	प्रथमा	प्रथमजा				त (भूस्थवर्णाश्रमों
१००६	१४	ज्ञापक	ज्ञापक				के मनुष्यों करि
१०१२	११	पुरोक्	पुरोक्	१०४८	१८	+ १००२८	+ २०२
१०१३	३	अत्र	अत्रि	१०५०	६	वरुण	वरुण
१०१४	२	में	में ज.	१०५१	१०	किं च	किं च इस
१०१५	५	उत्कृष्टा।	उत्कृष्टा। तिसकिं मे	१०५४	४०	यह	यह क्या
			कि जिस अन्न करि	१०५७	४	हुजा	हुजा
			हम स्वस्तिमन्त होंगे।	१०५७	१७	सू	सू
१०१५	२१	नियुत्वां	नियुतो	१०५८	१६	बलभि	बलमभि
१०१७	८		त्रिष्टुप्	१०५८	१	लादि	लादि करि
१०१८	१३	और	और सब	१०५८	१५	लोकान्तरः	लोकोन्तरः
१०१८	२०	को	को	१०६१	१	यज्ञ में साधु।	यज्ञ में साधु। सम्यु।
१०१८	१६	सदित्य	गदित्य	१०६३	१६	दोनो	दोनो पियो सोम को
१०१८	२१	पूजत	पूजते				इति शेषः। दोनो
१०२०	७	देत	देत	१०६४	४	वाजसानि	वाजसाति
१०२१	१८	दर्शन-याती	दर्शन-पाती	१०६४	४	करि	विषे
१०२२	१	सिये)	(सय) त्	१०६५	१५	बृहस्पति	ब्रह्मणस्पति
१०२३	१०	नक्षत्र	नक्षत्रचन्द्र	१०६५	६	पदों	पदों ही में
१०२५	१८	आद्या	अद्या	१०६६	१८	को आ	को आ
१०२६	३	हमें	तिस हमारे को	१०७०	१२	सहित	सहित इस स्थान में
१०२६	१३	कूपरक	रक	१०७२	१	प्रभा - परीक्षा	प्रभा - परीक्षा
१०३०	२	समीप में	समीप में स्थित हो	१०७३	४	दृष्टा	दृष्टा बहुदेवत्याः
१०३०	१३	लौकिक	लौकिक	१०७३	१३	हो	हो। आहूयमानाः।
१०३४	१७	ओजस्वी	ओजस्वी	१०७३	१८	गतिमन्ता	गतिमन्ता

सुहिपत्रम्

पृष्ठा	पङ्क्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठा	पङ्क्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०७८	१२	पूर्वो	पूर्वोपर	१११५	१६	गोक्षि	गोहि
१०७८	१७	अश्रमय	अश्रमय	१११५	१७	प्राज्ञा	प्रज्ञा
१०७८	२१	व्यादिन	व्यादन	१११५	१८	हो	हो
१०८०	४	सीताण	चारि सीताण	१११८	१०	सं	तु सं
१०८१	३	पृथि	पृथिवि	१११८	१२	१०२	२०१
१०८१	४	किये	किये अस्थिरूप	११२०	१२	गो	तहां गो
१०८१	२१	तेरा	तेरे अर्थ	११२२	४	अर-जमते	अरुमते वि-जमते
१०८३	१६	करावेंगे	होंवेंगे	११२२	१४	ते	ते, कैसे के किविश्व
१०८४	२	कायक	कायिक				देवाओं के समूह युक्त
१०८४	१३	यामस्य	यामस्य दिशं	११२३	८	नर	नर हुत तिस०
१०८५	१०	परिधि	इस परिधि	११२४	१३	पिये	पीते हुए
१०८५	१३	गमन	गमन लक्षण	११२४	१४	जाने	जाने हुए
१०८५	२१	कारि	करि	११२५	६	ई	ऐ
१०८६	४	धार	घार	११२७	१६	आर्ची-ज्य)	आर्ची-ज्य) को
१०८७	१०	त्रिष्टुप	त्रिष्टुप दमनदृष्टा	११२७	१८	को	अंश को
१०८८	१०	तुरु	पुनः तुरु	११२८	२	तये	तमः
१०८७	७	देखू	देखता हूँ	११२८	८	रता	स्ता
१०८८	१४	देवया	देवत्या	११२८	२१	को	में
११००	३	तिः स्वाहा	तिः	११२८	२१	में	में नाभिलग्न
११०१	१०	छोर्गे	छोर्गे	११३०	४	१०३	३०१
११०२	१०	छोर्गे	छोर्गे	११३०	८	श	श में
११०२	११	में	में आज	११३१	४	गाण	माण
११०२	१४	पर	पर प्रतीकाओं के	११३१	५	यम	घर्म
			उत्तर में	११३२	१०	का	को
११०३	१७	मृदा	मृत्पिण्ड	११३२	१२	तेरे	तेरे ग्रह
११०४	६	इति	इति दक्षिण कर से	११३२	१४	विषे	विशेषे
११०४	१२	१६	२६	११३६	१५	स्था	स्था विषे
११०५	१८	पे	प	११३६	१६	हा	हे
११०७	७	ज्ज	ज्ज	११३६	१६	मा-आ	मामा-आ
११०७	८	में	में अध्वर्यु	११४०	८	ये	य
११०७	१७	लिये	लिये स्वर	११४०	२०	प्रकी	प्रकी
११०८	१४	पढ़े	पढ़ावे	११४२	४	परी	पुरी
११०८	२२	होती	होती विद्युति (विशेषे	११४२	१६	वीर्यः	वीर्यम्
			ण धारण करती उप	११४४	२७	ध्येय	ध्येय
			रिष्टाज्जुह्विकं धियते)	११४८	१७	करता	कगता
११०८	१६	भ्यो	भ्यो मातिभ्यो	११५३	७	मात्र	मात्र
१११०	२	१०	१० अध्वर्यु	११५४	१५	लोपो	लोपो
१११३	६	चल	त	११५४	१७	करता	करता
१११४	५	जान	चल	११६३	१८	कर्माणि	कर्माणि

## शुद्धिपत्रम्

२१

पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११६४	४	कै	कु	११७६	११	पञ्चश	पञ्चाश
११६४	७	शेमो	शेमो . .	११७७	१३	मूता	भूता
११६४	१३	धर्मा	धर्म .	११७७	१४	इश	दश
११६४	१७	क	कै	११७७	१६	शको	दशको
११६५	३	शु	शु	११७७	२०	कैको	कैको
११७१	२	पथ्यावृहती	पथ्यावृहती +	११७८	१३	पञ्च	चत्वारः पञ्च
११७१	८	सती-त्प्रस्ता	सती-त्प्रस्तारपङ्क्ति	११७८	२	प्र	विभ्राद्वतुर्देशप्र
			रन्त्यो चेदास्तार	११७८	७	पाद्य-३	पाद्य-२२
११७२	८	तिति	ति	११८०	१६	पुमार्थी	पुमार्थी
११७५	२०	स्यम	स्यमम				इति शुद्धिपत्रम् १

३०१	१६	१७ वरुण-दिया	मुरु अग्निरूपायन				अर्थ वरुण तुम्हें
			कै अर्थ वरुण तुम्हें देवै				देवै
३०१	२०	२१ की आयु का	का आयु (जीवन)	३०३	१०-	११ यम-दिया	मुरु यम रूप के अर्थ
		जीवन					वरुण तुम्हें देवै
३०२	२३	रुद्र रूप-दिया	मुरु रुद्र रूप के अर्थ	४६५	२१	पुरी	पुरीष
			वरुण तुम्हें देवै	१०००	४	तिस	जिस
३०२	६-७	बृह-दिया	मुरु बृह स्पति के				इति शुद्धिपत्रम् २

वैश्वमेति प्रसिद्धिं गतेति प्राची विश्वामित्रपुरीयनवलदुर्गस्थव्याघ्रपादप्रकाशकाप्रमयन्त्रालये ज्ञासीगमकागर्षी मुद्रितम् संवत् १४३० शाका १७४५ फाल्गुण कृष्ण १२ शुक्रवासे

## प्रसिद्धिपत्रम्

ग्रन्थकर्ता तथा सम्पादकाभ्यां की विदित हो कि ४ अप्रैल १८७९ का श्रीवेदार्थप्रदीपगिरिधरभाष्य एकट २४ बीअर १८६७ अनुसार रजिस्टरी हुआ और इस के लिखने में मैंने तथा मेरे ज्येष्ठ पुत्र ने अतिशयेन परिश्रम किया है इससे मेरी वा मेरे पुत्र की आज्ञा बिना छापने का विचार न करें और जिनकी की अपनी पुस्तक वा सम्पादनपत्र में इससे कुछ विषय लेकर छापना हो वोह सुखेन ग्रन्थ के नाम पूर्वक लिखकर मुझे वाधित करें

भाष्यकार  
गिरिप्रसाद त्रिपाठी

ओम् शान्तिः

ओम् शान्तिः

ओम् शान्तिः













